

॥ श्री ॥

तत्त्वनिर्णयप्रासाद.

TATVANIRNAYAPRA8AD.

३६ स्तंभ.

प्रस्तावना, उपोद्घात, ग्रंथकर्त्ताका संपूर्ण जन्मचरित्र और बहुतसी तस्वीरे
(छबी), रंगीन वंशवृक्ष वर्गैरहके साथ.

जैन श्वेतांबर-तपगच्छाचार्य

श्रीमद्विजयानंदसूरि (आत्मारामजी) विरचित.

संशोधनकर्त्ता

मुनि श्री बल्लभ विजयजी.

प्रसिद्धकर्त्ता

अमरचंद पी० परमार.

नं. ५२३, पायधुनी, मुंबई.

मुंबई.

इंदुप्रकाश जाईटस्टॉक कं. ली० में छापकर प्रसिद्ध किया.

वीर संवत् २४२८.

वि०सं० १९९८.

१० स० १९०२.

आम संवत् ३.

(यह ग्रंथ १८६७ का २५ मा एकट मुजिब रजीस्टर्ड करवाकर
प्रसिद्धकर्त्ताने सब हक स्वाधिन रखे हैं.)

सूचना.

नीचे माफक यह पुस्तक तीन तरहसे प्रसिद्ध
किया गया है.

- (१) मूलग्रंथ, प्रस्तावना, उपोद्घात जन्मचरित्र, छबीओं, वंशवृक्षवाला
संपूर्ण ग्रंथ. (पृष्ठ संख्या-८८०)
- (२) मात्र मूलग्रंथ और ग्रंथकर्त्ताकी तस्वीर. (पृष्ठ संख्या-७४४)
- (३) प्रस्तावना, चरित्र, छबीओं, वंशवृक्ष वगैरहका न्यारा पुस्तक.
(पृष्ठ संख्या-१३६)

ग्रंथ मिलनेका पत्ता:—अमरचंद पी. परमार, प्रसिद्धकर्त्ता, पाय-
धुणी-मुंबई. सा. भीमशी माणिक मांडवी-मुंबई; मांगरोल जैनसभा, पाय-
धुणी, मुंबई. श्री आत्मानंद जैनसभा, लाहोर; जैनधर्म प्रसारक
सभा, भावनगर; और तमाम पुस्तक बेचनेवालोंके पास, जैन पाठशाला-
ओंमें वगैरह.

अनुक्रमणिका.

	पृष्ठ.
(१) प्रथम स्तंभ—प्राकृत भाषा और वेदोंका संक्षेप वर्णन.	१-२५
मंगलाचरण	१
मतप्रतांतरोंके पुस्तकविषयक विवेचन	४
प्राकृत भाषाविषयक शंकासमाधान	५
वेदोंमें जो वर्णन है तिसका संक्षेप मात्र दिग्दर्शनरूप बीजक	१३
 (२) द्वितीय स्तंभ—देवविषयक वर्णन	 २५-८३
महादेवके स्वरूपका वर्णन	२५
वस्तुमात्र स्याद्वाद मुद्रा करके मुद्रित है	२६
स्वयंभू वर्णन	३१
शिवशंकरादि नामोंका वर्णन	३१
एकहि जिन अर्हन् ब्रह्मा विष्णु महादेव रूप व्यात्मक है, अन्य नहीं....	३८
लौकिक ब्रह्माविष्णुमहादेवमें उनकेही शास्त्रोंद्वारा ज्ञानदर्शन चारित्र नहीं है	४२
ज्ञानदर्शन चारित्ररहित मुक्तिके नास्ते नहीं होतेहैं, अर्हन् शब्दका स्वरूप.	७३
अष्ट प्रतिहार्यका वर्णन तथा भर्तृहरिके कथानुसार ब्रह्मादिका स्वरूप इत्यादि वर्णन	७७
 (३) तृतीय स्तंभ—श्री हेमचंद्राचार्यकृत श्रीवीरद्वान्त्रिशिकाका अर्थ निर्माण किया है	 ८३-११८
द्वान्त्रिशिकाके अर्थ लिखनेका प्रयोजन	८३
स्तुतिकारका मंगलाचरण आत्मरूप शब्दका और परमात्माका अर्थ	८४
महावीर और हेमचंद्राचार्यका प्रश्नोत्तर रूप काव्य	८६
स्तुतिकारकी निरभिमाननिन्ताका और पूर्वाचार्योंकी बहुमानताका काव्य	८६
भगवानमें अयोग व्यवच्छेदका काव्य	८७
असत् उपदेशकपणका व्यवच्छेदका काव्य, नवतत्त्व, वेद, बौद्ध, सांख्यादि अन्यमतवालोंका कथन तुरंगशृंग समान है	८८
भगवानमें व्यर्थ दयालुपणका व्यवच्छेदका काव्य	९२
असत्य पक्षपातियोंका स्वरूप	९३
भगवानके शासनका महत्व वर्णन	९४
भगवानके शासनका शंकाकारको उपदेश	९५

अन्य आगमोंके प्रमाण होनेमें हेतु	९७
भगवत्प्रणीत आगमके प्रमाण होनेमें हेतु	९८
भगवत्के सत्प्रोपदेशका खंडन करनेकी परवादीकी अशक्यता....	९८
ये अशक्यता होते हुवे भी अन्यमतावलंबी तिसकी उपेक्षा क्यों करते हैं उसका उत्तर	९९
तप और योगाभ्यासादिसे मोक्षप्राप्ती होवेगी तो जिनेन्द्रका मार्ग अंगीकार करनेकी क्या आवश्यकता? तिसका उत्तर	९९
परवादियोंका उपदेश भगवत्के मार्गको किंचिन्मात्र भी कोप वा आक्रोश नहीं कर सकते हैं.	१००
परवादियोंके मतमें जे उपद्रव हुऐ हैं वे भगवान्के शासनमें नहीं हुवे	१०१
परवादीयोंके अधिष्ठाताकी परस्पर विरुद्ध बातें	१०३
अयोग वस्तुओंका पुनः व्यवच्छेद	१०७
भगवान्के उपदेशकी बराबरी अन्यमत नहीं कर सकता.	१०८
परतीर्थनाथोंने जिनेन्द्रकी मुद्राभी नहीं सीखी.	१०९
अरिहंत, शिव, विष्णु और ब्रह्माकी मूर्ति.	११०
भगवंतके शासनकी स्तुति.	१११
स्तुतिकारने दो वस्तुयें अनुपम करी हैं.....	१११
अज्ञानियोंको प्रति बोध करनेकी स्तुतिकारकी असमर्थता.	११२
भगवान्की देशना भूमिकी स्तुति :....	११२
पर देवोंका साम्राज्य वृथा सिद्ध किया है	११३
असत्वादी और पंडित जनोंके और मत्सरी जनके लक्षणका वर्णन	११४
परवादीयों समक्ष अवधोषणा अपना पक्षपातरहितपणा	११५
भगवंतकी वाणीकी स्तुति	११६
पक्षपातरहित होकर गुणविशिष्ट भगवंतको समुच्चय नमस्कार स्तुतिका स्वरूप और समाप्ति....	११७
बालावबोध करनेका संवत्.	११८

(४) चतुर्थ स्तंभ—श्री हरिभद्रसूरिविरचित लोकतत्त्व निर्णयका स्वरूप	११८—१४६
मंगलकारका मंगलाचरण	११८
पर्षदाकी परीक्षाका उपदेश, उपदेशके अयोग्य पर्षदाके लक्षण	११९
अयोग्य पर्षदाको उपदेश देना निष्फल	१२०
श्रोताको बोध नहोवे उसमें वक्ताकाही अज्ञपणा है ऐसी आशंकाका दृष्टांतद्वारा उत्तर	१२१

	पृष्ठ.
तत्त्वनिर्णय करनेको ग्रंथकारका उपदेश	१२२
असत् पदार्थके अग्राह्यमें हेतु	१२३
प्रकृतिसँ विनयवाले पुरुषही विनयवंत हो सकते हैं	१२४
ग्राह्य पदार्थका लक्षण, अतत्त्वको तत्त्व मानकर ग्रहण करनेसे पश्चात्ताप होता है	१२४
तत्त्वज्ञान प्राप्तिके उपायका वर्णन	१२५
देवके स्वरूपका और उनके कृत्योंका किंचित् वर्णन	१२६
कौन देव नमस्कारके योग्य है, तिसका निर्णय प्रतिपक्षियोंसे पूछना	१२७
ब्रह्माजीका शिर कटनेका, हरीके नेत्र रोगका, महादेवका लिंग टूटनेका, सूर्यका शरीर त्राछा जानेका, अग्निका सर्व भक्षी होनेका, चंद्रमा कलंकवाला होनेका, इंद्र सहस्र भगवाला होनेका वर्णन....	१३०
अईन्कोही क्यों मानना तिसके हेतुका वर्णन	१३८
भगवतकी वाणीमें जो दूषण न होने चाहिये और जितने गुण होने चाहिये तिनका वर्णन	१३९
जिस देवको भक्तिसँ अंगीकार करना चाहिये तिसका वर्णन	१४३
भगवानको नमस्कार मात्रसेभी फलकी प्राप्ति होना	१४३
यथार्थ भगवानको जो नमस्कार नहीं करता है और कल्पितको करे उसके हेतुका वर्णन	१४४
स्तुतिकार अपने आपको पक्षपात रहित सिद्ध करते हैं	१४४
पक्षपात रहित होनेमें हेतु	१४५
सर्व मतके अधिष्ठाताओंमेंसे एक कोई तो सत्यवक्ता होना चाहिये और तिसकी गवेषणा करनी चाहिये ऐसा ग्रंथकारका उपदेश	१४५
पक्षपातरहित ग्रंथकारका नमस्कार	१४६

५) पञ्चम स्तंभ—लोकतत्त्वनिर्णयका विशेष वर्णन १४६—१७८

सृष्टिवादियोंके विवादका कारण.... ..	१४६
महेश्वर मतवालेकी सृष्टिका स्वरूप	१४७
कितनेक अईकारी ईश्वरसें, कितनेक सोम और अग्निसे, सृष्टिकी उत्पत्ति मानते हैं	१४७
वैशेषिक मतकी, कश्यपकी रची सृष्टिका वर्णन	१४७
मनुका रचा जगत्का वर्णन	१४८
ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादिका रचा कालकृत, कपिल, बौद्ध शून्यादि जगत् १५१	
पुरुषसें पुरुषमयी, देवसें, स्वभावसें, अक्षरब्रह्मके क्षरणसें, अंडेसे, स्वतोही भूतोंके विकारसें अनेक रूपमयी, उत्पन्न हुवा जगत्का वर्णन.... ..	१५२

	पृष्ठ.
वैष्णव मतवालोंकी सृष्टिका वर्णन.....	१५२
कालवादिकी सृष्टिका वर्णन.....	१५४
ईश्वरकारणिकोंकी ब्रह्मवादिकी सृष्टिका वर्णन	१५५
सांख्य मतवालोंकी सृष्टिका वर्णन.....	१५६
शाक्य (बौद्ध) मतवालोंकी सृष्टिका वर्णन	१५७
पुरुषवादियोंकी सृष्टिका वर्णन	१५८
दैववादियोंकी सृष्टिका वर्णन	१६१
स्वभाववादियोंकी सृष्टिका वर्णन	१६२
अक्षर वादियोंकी अंधवादियोंकी सृष्टिका वर्णन	१६३
परिणामवादियोंकी नियतिवादियोंकी, अहेतुवादियोंकी, सृष्टिका वर्णन	१६४
भूतवादियोंकी सृष्टिका वर्णन	१६५
अनेकवादियोंकी सृष्टिका वर्णन	१६६
पूर्वोक्त मतवादियोंका संक्षेपसे समुच्चय खंडन.....	१६७
(६) षष्ठ स्तंभ—मनुस्मृतिके अनुसार सृष्टिका विस्तारपूर्वक वर्णन.....	१७८—१९१
मनुस्मृतिकी सृष्टिकी समीक्षा	१८७
(७) सप्तम स्तंभ—ऋग्वेदादिका सृष्टिक्रम.....	१९१—२०६
ऋग्वेदके देशमें मंडलके अनुसार सृष्टिका वर्णन	१९१
यजुर्वेदके सत्तारवें अध्यायके अनुसार	२०४
(८) अष्टम स्तंभ—पूर्वोक्त सृष्टिक्रमकी समीक्षा	२०६—२२७
ऋग्वेदकी सृष्टिकी समीक्षा—जिसमें अनिर्वाच्यका अर्थ, माया और ब्रह्मका स्वरूप, तिसकी समीक्षा सृष्टि प्रलयकी समीक्षा	२०७
सृष्टिरचनामें ईश्वरकी इच्छाका खंडन.....	२१५
शेष श्रुति और यजुर्वेदके सृष्टिक्रमकी समीक्षा	२१८
ऋग्वेद अष्टक ८ अध्याय ४ की सृष्टिक्रमकी समीक्षा	२१८
(९) नवम स्तंभ—वेदके कथनकी परस्पर विरोधताका संक्षेप वर्णन	२२७—२५२
यजुर्वेद, अध्याय १७ मंत्र ३०, और तिसकी समीक्षा	२२७
गोपथ ब्राह्मण १६ का पाठ.....	२२९
यजुर्वेद अ० १३, मं० ४	२३१
ऋग्वेद, मंडल १०, सूक्त १२१	२३७
यजुर्वेद अ० २३, मं० ६३.	२३८

	पृष्ठ.
तैत्तिरीय आरण्यक, प्र० १, अ० १३, मं० १, १०	२४१
यजुर्वेद, अ० ११ मं० १२, गोपथ पूर्वभाग प्र० २, ब्रा० २५	२४२
अथर्वसंहिता कां० १०, प्र० २३, अ० ४, मं० २०	२४३
शतपथ कां० १४, अ० ५, ब्रा० ४, कं० १०	२४४
ऐतरेय ब्राह्मण पं० ५ कं० ३२ का पाठ	२४४
शतपथ कांड ११, अ० ५, ब्रा० ३, कं० १, २, ३,	२४५
गोपथ पूर्वभाग प्र० १, ब्रा० ६	२४६
पूर्वोक्त पाठोंकी समीक्षा	२४७
तैत्तिरीय ब्राह्मण अ० १, अ० १, अ० ३, पाठ और समीक्षा	२५०
वाचक वर्गको हित समीक्षा	२५१
बृहदारण्यकके कथनानुसार प्रजापति आपही पुरुष, स्त्री, गधा, गधी आदि वनगया इत्यादि वर्णन	२५४

(१०) दशम स्तंभ—वेदोंकी ऋचायोंसेही वेद ईश्वरोक्त नहीं हैं. २५५—२७९

ऋग्वेद सं० अ० ३, अ० २, वर्ग १२, १३, १४ की ऋ० १—१३ में विश्वामित्र पुरोहितने प्रारंभको नदियोंकी स्तुति की	२५६
ऋग्वेद संहिता अ० ३, अ० ३ वर्ग २३ में लिखा है—विश्वामित्रका शिष्य सुदाकी रक्षाके लिये वसिष्ठको शाप देनेकी ऋचाओ जिनको वसिष्ठके संप्रदायी नहीं सुनते हैं, तिसका वर्णन	२५९
ऋग्वेद संहिता अ० ४ अ० ४ वर्ग २० में लिखा है—सप्तवध्रि ऋ- षिको तिसका भतिजा पेटीमें घाल रखताथा, तिसने अपनी स्त्रीके धिरहके दुःखसे पेटीके निकलनेके वास्ते अश्विनीदे वकी स्तुति करी तिसका वर्णन	२६१
ऋग्वेद अ० ६ अ० ६ वर्ग १४ में अत्रिऋषिकी पुत्री अलापा सोम वल्लीका भक्षण करती थी. दांतोंका अवाज सुनकर इंद्र आया और उसके मुखका रस पीकर अशलाका दुष्ट रोग दूर किया आदि वर्णन है	२६२
ऋग्वेद सं० अ० १ अ० ७ वर्ग ७ में यम यमी भाई बहिनका संवाद, यमी यमको भोगके वास्ते प्रार्थना करती है	२६७
यजुर्वेद अ० १३ में सपोंको नमस्कारादि वर्णन	२७०
यजुर्वेद अ० १९ में सौत्रामणीयज्ञ जिसमें ब्राह्मण सुरापान करें	२७१
यजुर्वेद अ० ३२ में अग्नि आदिकी प्रार्थना, और अ० ४० में धीर पंडितोंसे उपासनाका फल हम सुनते हुए तिसका वर्णन	२७५

तैत्तिरीय ब्राह्मण अ० २, अ० ३, अ० १० में प्रजापतिने सोमरा
जाको उत्पन्न किया, तीनों वेदोंको रचे, सोमने वेदोंको मुट्ठीमें
छिपाया इत्यादि वर्णन २७७

(११) एकादश स्तंभ—जैनाचार्योंके बुद्धिका वैभव.	२८०—२९९
जैनमतानुसार गायत्री मंत्रका अर्थ	२८०
नैयायिकमतानुसार	२८४
वैशेषिकमतानुसार	२८६
सांख्यमतानुसार	२८७
वैष्णवमतानुसार	२८८
बौद्धमतानुसार	२९१
जैनमतानुसार	२९२
सामान्य करके सर्व वादियोंके संवादि स्वरूप परमेश्वरका प्रणिधानरूप गायत्रीमंत्रका अर्थ	२९५
गायत्री सर्व बीजाक्षरोंका निधान है, ऐसे ब्रह्माणोंके प्रवादको आश्रित्य होकरके कितनेक मंत्राक्षरोंके बीजोंका वर्णन	२९६

(१२) द्वादश स्तंभ—सायणाचार्य, शंकराचार्यादिकृत गायत्रीअर्थका व्याख्यान	२९९—३१९
सायणाचार्यकृत भाष्यका व्याख्यान	२९९
महीधरकृत यजुर्वेदभाष्यके तीसरे अध्यायमें लिखे हुये अर्थका और शंकरभाष्यका व्याख्यान	३००
स्वामी दयानंद सरस्वतीका व्याख्यान	३०२
पूर्वोक्त व्याख्यानकी समीक्षा (वेद ईश्वरोक्त नहीं है)	३०४
मनुस्मृतिमें लिखा है कि जो वेदका निंदक है सो नास्तिक है इत्यादि आशंकाका समाधान	३०६
महाभारतके १०९ और १७५ अध्यायमें वेदकी और हिंसक यज्ञकी निंदा लिखी है. तिसका वर्णन	३०७
मत्स्यपुराणके अध्याय १४२ में हिंसक यज्ञकी उत्पत्ति और व- सुराजाकी कथा	३०८
महाभारतमें लिखा है पुराण, मनुस्मृति, वेदादि शास्त्र आज्ञासिद्ध होनेसे खंडन नहीं करना इसका उत्तर	३१६

पृष्ठ-

जैनशास्त्रोंमें गृहस्थीके संस्कारोंका वर्णन नहीं है. इसवास्ते माननीय
नहीं है ऐसी आशंकाका उत्तर ३१७

(१३) त्रयोदश स्तंभ—जैनके १६ संस्कारोंमेंसे गर्भाधानसंस्कारवर्णन—	३१९—३२९
आचार वर्णनका प्रयोजन	३१९
दो प्रकारके आचारका वर्णन	३२०
साधुके और गृहस्थीके धर्मका अंतर, गृहस्थीका प्रथम व्यवहार	
धर्म इत्यादि	३२१
सोलां संस्कारके नाम	३२२
संस्कार कराने योग्य गृहस्थ गुरुका स्वरूप, तथा मास दिनवार नक्षत्र-	
शुद्धीका वर्णन	३२३
गर्भाधान संस्कारका विधि	३२४
शांति देवीका मंत्र, ग्रंथि योजन मंत्र, आर्यवेदमंत्र, आशीर्वाद देनेका	
काव्य, ग्रंथिवियोजन मंत्र	३२४
आर्यवेदोत्पत्ति, महान, ब्राह्मण उत्पत्ति, अनार्य वेदोत्पत्ति, इत्यादि	३२८
प्रथम संस्कारमें जो वस्तु चाहिये तिनका संग्रह	३२९

(१४) चतुर्दश स्तंभ—पुंसवन संस्कारका वर्णन	३२९—३३१
मासदिनादि शुद्धिका वर्णन पुंसवनका विधि, वेदमंत्र	३३०
वस्तुका संग्रह	३३१

(१५) पंचदश स्तंभ—तीसरा जन्मसंस्कारवर्णन	३३१—३३४
जन्मसमय गृहस्थ गुरु और ज्योतिषी एकांत स्थानमें	
स्थिति रहे इत्यादि वर्णन	३३१
जन्मक्षण जानना, गुरु ज्योतिषको वस्त्राभूषण देना, आशीर्वाद इत्यादि	३३२
बालकको स्नान करानेका जलमंत्र, रक्षाभिर्मंत्र....	३३३
वस्तुसंग्रह, कष्टनिवारणका विधि	३३४

(१६) षोडश स्तंभ—चोथा, सूर्यचंद्रदर्शन संस्कार	३३४—३३६
सूर्यवेद मंत्र पूर्वक सूर्यदर्शन वर्णन	३३५
चंद्रवेदमंत्र	३३६
वस्तुसंग्रह	३३६

- (१७) सप्तदश स्तंभ—पांचत्रा क्षीणशन संस्कार ३३७
गुरु वेदमंत्रद्वारा आशीर्वाद देवे, अमृतमंत्र ३३७
-
- (१८) अष्टादश स्तंभ—छठा, षष्ठीसंस्कार ३३८-३४१
अष्टमाताका पूजन, अंबारूप षष्ठीकी स्थापना, पूजन, विसर्जन, ३३८
आशीर्वाद, वस्तुसंग्रह ३४१
-
- (१९) एकोनविंश स्तंभ—सातवा, शुचिकर्मसंस्कारका वर्णन ३४२-३४३
-
- (२०) विंशति स्तंभ—आठमा नामकरण संस्कार ३४३-३४५
दिन नक्षत्र वार शुद्धि, गुरु, ज्योतिषिको नमस्कार, नाम रखनेकी
विज्ञप्ति, ज्योतिषि लग्न लिखे, पुत्रके पितादि लग्नकी पूजा करे, जैन
मंदिर पौष्य शाला जाना, विधि इत्यादि वर्णन ३४४
वस्तुसंग्रह ३४५
-
- (२१) एकविंशति स्तंभ—नवमा, अन्नप्राशन संस्कारका वर्णन... ३४५-३४७
नक्षत्र वारादि शुद्धि ३४५
अन्नप्राशनका विधि ३४६
वेदमंत्र, वस्तुसंग्रह.... ३४७
-
- (२२) द्वाविंशति स्तंभ—दसमा, कर्णवेध संस्कारका वर्णन.... ३४७-३४९
नक्षत्र वारादि शुद्धि ३४७
कर्णवेधका विधि, वेदमंत्र ३४८
-
- (२३) त्रयोविंशति स्तंभ—अगिआरमा, चूडाकर्ण संस्कारका वर्णन ३४८—३५०
नक्षत्र वारादि शुद्धि ... ३४८
संस्कारविधि वेदमंत्र ३५०
-
- (२४) चतुर्विंशति स्तंभ—बारमा उपनयन संस्कारका वर्णन ३५१—३८३
उपनयनका स्वरूप, वेषकी आवश्यकता, जीनोपवित धारणादि विचार
तथा प्रमाण ३५१
लग्नशुद्धि ३५४
उपनयन विधि ३५५
मौजीबंधन विधि.... ३५८

	पृष्ठ.
कौपिनविधि जिमोपवीताविधि	३५९
नमस्कारमंत्रका प्रमाणवर्णन	३५९
व्रतादेशविधि	३६२
ब्राह्मणव्रतादेशवर्णन (....	३६४
क्षत्रियव्रतादेशवर्णन	३६३
वैश्यव्रत.देशवर्णन	३६८
चारों वर्णोंका समानव्रतादेशवर्णन	३६९
उपनयने व्रतादेश समाप्ति, व्रताविसर्गविधि	३७२
मोदानविधि वर्णन	३७४
शूद्रको उत्तरीय कहा तिसका विधि	३७७
बटूकरण विधि	३७९

(२५) पञ्चविंश स्तंभ—तेरवा अध्ययनारंभसंस्कारका वर्णन ३८३-३८५

(२६) षट्त्रिंश स्तंभ—चौदवा विवाहसंस्कारका वर्णन	३८५-४०६
योग्य अयोग्य कुल जातिका वर्णन	३८५
विवाहितकी उमरका प्रमाण	३८६
ब्राह्म, आर्ष, दैव, गंधर्व, आसुर, राक्षस, पैशाच विवाह विधि वर्णन	३८७
वर्तमान प्राजापत्यविवाह विधि, जिसमें लग्नशुद्धि वर्णन	३८८
कन्यादान विधि	३८९
विवाहारंभ विधि, कुलकरस्थापनाविधि	३९०
तैलाभिषेकवर्णन	३९२
गमनयात्रा (जान-बरात) चढनेका विधि	३९३
स्वसुरगृहमें आए बाद करनेका विधि	३९४
वैदिकमतका मधुपर्कभक्षण और तिसका अनादर संबंधी वर्णन	
(फुटनोट)	३९५-३९७
वेदीरचनाका विधि	३९६
वेदीमें अग्नि स्थापन विधि	३९७
अग्निमें नानावस्तुका हवन, विवाहक्रियादि वर्णन	३९८
लाजाकर्मविधि (चार मंगल)	४०१
मातृघरमें बहुवरगमन, करमोचनविधि	४०४
कंकणबंधन, मोचन, शूतक्रीडा, वेणीग्रंथनादि	४०५
कुलकर विसर्जन विधि	४०६

	पृष्ठ.
(२७) सप्तविंश स्तंभ—पंद्रहमा व्रतारोपसंस्कारका वर्णन	४०७-४३४
व्रतसंस्कारकी आवश्यकता	४०७
व्रतसंस्कार कराने योग्य गुरुका वर्णन	४०८
व्रतसंस्कार धारण करने योग्य गृहस्थका वर्णन	४०९
शास्त्र प्रायः प्राकृतमें हैं जिसका कारण	४१२
सम्यक्त्व सामायिकारोपणविधि	४१३
आठ थूईसैं देववंदन करनेका विधि	४१५
अरिहणादि स्तोत्र	४१७
सम्यक्त्वारोपणविधि दंडकपाठसहित ..	४२०
बावीस अभक्ष्यादि नियमवर्णन	४२३
सम्यक्त्वकी देशना, स्वरूप	४२४
मिथ्यात्वका स्वरूप	४२७
देवस्वरूप	४२८
अदेवस्वरूप	४२९
गुरुस्वरूप, कुगुरुस्वरूप	४३१
सम्यक्त्वके पांच लक्षण, पांच भूषण, पांच वूषण	४३३

(२८) अष्टाविंश स्तंभ—व्रतारोपसंस्कारमें देशविरतीव्रतका वर्णन	४३४-४४८
सामायिक आरोपण करनेका विधि	४३४
दंडक पाठ	४३५
परिग्रहप्रमाणटिप्पण-बारा व्रतोंका स्वरूपवर्णन	४३७
छमहीने पर्यंत सामायिकव्रतका विधि	४४५
एकादश (११) प्रतिमोद्धहनविधि	४४६

(२९) एकौनत्रिंशस्तंभ—व्रतारोपसंस्कारमें श्रुत सामायिक आरोपण	
विधिका वर्णन	४४९-४६९
नमस्कारस्वरूप, तिसके उपधानका विधि ..	४४९
ईर्यापथिकीका उपधान	४५२
शक्रस्तव (नमुत्थुणं) का उपधान	४५३
चैत्यस्तवका, चतुर्विंशति स्तवका उपधान	४५४
श्रुतस्तवका उपधान	४५५
सिद्धस्तव वाचना....	४५६

श्रीमन् देवसूक्तित उपधानप्रकरण	४९७
उपधान तपके उद्यापनरूप मालारोपणका विधि	४९८

(३०) त्रिंश स्तंभ—श्रावककी दिनचर्याका वर्णन	४९९-४९२
शयनसे उठनेका विधि	४९९
अहंस्कल्प कथनानुसार पूजाविधि	४९९
लघुस्नानविधि	४७८

(३१) एकात्रिंश स्तंभ—सोलवा अंत्य संस्कारका वर्णन	४९२-५०३
आराधनाविधि	४९२
क्षामणाविधि	४९३
सागार अनशनका विधि, इसमें अनशन किसने, किसको, कब करवाना सो विधि है	४९८
संस्कारसमामि अन्तर विज्ञापन	५०२

(३२) द्वात्रिंश स्तंभ—जैनमतकी प्राचीनता और वेदके पाठों और अर्थोंमें गड़बड़ हुई है, तिसको सिद्धि	५०३-५३४
जैनमत वेदव्यासजीसे प्रथम विद्यमान था, ऐसा वेदव्यासके प्रमाण सेंदी सिद्ध किया है	५११
महाभारतके प्रमाणसे जैनमतकी प्राचीनता	५१३
मत्स्यपुराणके लेखसे जैनमतकी प्राचीनता	५१४
वेदसंहितादिकोंमें जैनका नाम है वा नहीं इत्यादि वर्णन	५१५
भावयज्ञका स्वरूप	५१७
वेदोंमें नेमि और अरिष्टनेमि शब्द आता है सो जैनके तीर्थंकर है, इत्यादि वर्णन	५१९
तैत्तरीय आरण्यकमें प्रकटपणे अर्हन्की स्तुति करी है तिसका वर्णन	५२१
जैनी लोक कितनेक वैदिक वचनोंका अनादर करते हैं, जिसका मनुस्मृतिद्वारा कारण	५२५
योगजीवानंद सरस्वति स्वामिका पत्रकी नकल, जिसमें जैनमत-को सर्वोत्तम सिद्ध किया है	५२६
(आत्मारामजीकी स्तुतिका) पूर्वोक्त महाशयका बनाया मालाबंध श्लोक	५२८
जैनमतमें प्राचीन व्याकरण. तर्कशास्त्र नहीं है, ऐसी आशंकाका समाधान	५२९

पाणिनिकी उत्पत्तिका वर्णन	पृष्ठ.
जैन शब्द ' जि जय ' धातुसे बना है, वो धातु नूतन है, ऐसी					५३१
आशंकाका उत्तर	५३२
जैनमत वेदमतकी बातें लेकर रचा गया है, ऐसी आशंकाका					
उत्तर, जैनकी प्राचीनताके दूसरे प्रमाण	५३३

(३३) अथर्विंश स्तंभ--जैनमत बौद्धमतसे भिन्न और प्राचीन सिद्ध					
किया है, दिगंबरीमत संबंधी वर्णन	५३५-६२३
प्रो० हरमन जेकोबीकृत आचारंगका अनुवाद (तरजुमा)की प्रस्ता-					
बनामें जैनमत बौद्धमतसे प्राचीन और भिन्न सिद्ध किया है,					
तिसका वर्णन	५३५
सूयगडांगका तरजुमा-सेक्रेड बुक ऑफ धी इस्ट भाग ४५ में,					
बौद्धमतके शास्त्रोंसेही जैनमतकी प्राचीनता सिद्ध की है.				५३७
पाश्चिमात्य विद्वानोंको हितशिक्षा	५३९
दिगंबरीप्रतिद्वितीयशिक्षा	५४१
दिगंबरीयोंका श्वेतांबर ऊपर आक्षेप	५४१
पूर्वोक्त आक्षेपका उत्तर	५४२
दर्शनसारका कथन मूलसंघकी पट्टावलीसे विरोधि है				५४५
दर्शनसारमें काष्ठसंघकी निंदा लिखी है, तिसका वर्णन				५४७
दिगंबर पट्टावलिके लेखोंकी परस्पर विरुद्धता			५४८
प्रश्नचर्चा समाधानका लेख और तिसकी विक्रमप्रबंध और मूल-					
संघकी पट्टावलीसे विरुद्धता	५५०
सर्वार्थसिद्धि नामा तत्त्वार्थसूत्रकी भाषाटीकाका लेख और					
तिसका उत्तर	५५२
दिगंबरमतके ज्ञानार्णवसे वस्त्रादि परिग्रह नहीं, ऐसा सिद्ध किया है					५५५
दिगंबरमत और उनके शास्त्र नवीन है.	५६१
प्रश्नचर्चासमाधानादि ग्रंथानुसार भरतखंडमें सम्यक् दृष्टि जीवकी					
संख्या, तिसकी समालोचना	५६३
साधुसाध्वीरूप दो संध नहीं होनेसे दिगंबरोंका दो संघीये होना				५६४
केवलीको कवलाहार सिद्ध है, अभुक्ति केवलीका खंडन				५६६
स्त्रीको मुक्तिसिद्धि	५७१
भगवानको तिलक करना, विलेपन करना, आभरण पहिराना,					
दिगंबरके हरिवंश पुराणके पाठसे सिद्ध किया है	५८१

कटक, कुंडलादि चढानेसें जिनमुद्रा बिगडती है, ऐसी आशंकाका उत्तर	५८३
प्रतिमाको अन्य कुच्छ भी वस्तु नहीं जडनी चाहिये इसका द्रव्य- संग्रहकी वृत्तिसे उत्तर	५८४
चंदनादिका लेपन नहीं करना इसका उत्तर, भावसंग्रह, त्रैलो- क्यसार, राजवास्तिक इत्यादि दिगंबरिय शास्त्रोंसे	५८४
जिनप्रतिमाको लिंगका आकार करना चाहिये ऐसे दिगंबरोंके दुराग्रहका उत्तर	५८६
स्नान, विलेपन, पुष्प, वास, दीप इत्यादि इक्कीस प्रकारसें भग- वानका पूजन, नाटक, करना चाहिये, चंदन बिना पूजा नहीं होती इत्यादि, दिगंबरमतके जो शास्त्रोंसे हैं उनके नामादि वर्णन	५८८
वसुपाल राजाने श्री पार्श्वनाथजीकी प्रतिमाको लेप करवाया इत्यादि आराधनाकथाकोषका पाठ	५८९
प्रतिष्ठापाठ, नंदीश्वरपूजा, पूजासार जिनसंहिता, त्रिवर्णाचार, श्रीपालचरित्र, निर्वाणकांड, षट्कर्मोपदेशरत्नमाला, आराधना- कथाकोष, जिनयज्ञकल्पप्रतिष्ठाशास्त्र, व्रतकथाकोष, ब्रह्मवि- लास, श्रावकाचार, षड्विधपूजाप्रकरण आदिशास्त्रोंका पाठ, जिसमें कर्पूरसे, केसरसे अष्टद्रव्यसे पूजा, विलेपन, पुष्पकी वृष्टि, स्नान, पुष्पमाला, दीपक आदि करनेका अधिकार है.....	५९०
तेरापंथी दिगंबरियोंको उत्तर	६०२
जिनप्रतिमा, जिनभवन बनवानेका फल, पूजाका न्यारा २ फल, षड्विधपूजाप्रकरणसें	६०४
गंगाजल, मोती, कलमवृक्षके पुष्पादिसें पूजा करना लिखा है, अन्यसें नहीं, ऐसी तेरापंथीयोंकी आशंकाका उत्तर	६०६
प्रतिष्ठादिनको वर्जके और दिनमें पूजा नहीं करनी चाहिये, ऐसी आशंकाका उत्तर	६०७
तत्त्वार्थसूत्रावचूरिमें शीतकालादिमें कंबलादि मुनि ग्रहण करे लिखा है प्रवचनसारवृत्तिमें उपधिके भेदका वर्णन	६०९
भावसंग्रहसें उपकरण विचार, मूलाचारमें साधुकी उपधिका प्रकट कथन, बोधपाहुडकी वृत्तिका पाठ	६१०
परमात्मप्रकाशकी टीकामें घासकी चादर आदि उपकरणका वर्णन	६११
राजवास्तिकका उपकरण विषयक पाठ	६१२
कंबलीको कंबलाहार, चलना, धर्मोपदेश देना इत्यादि दिगंबरिय शास्त्रोंसे सिद्ध किया तिसका वर्णन	६१४

	पृष्ठ.
स्त्रीको सर्वचारित्र और मोक्ष नहीं इसका उत्तर	६१७
मथुराके लेखोंसे सिद्ध होता है कि दिगंबरियोंका भेतांबरोप्रति जो आक्षेप है सो असत्य और कल्पित है, इत्यादि वर्णन	६१८
(३४) चतुर्विंश स्तंभ—जैनमतकी कितनीक बातेंपर शंका—उत्तर ६२३-६३९	
जैनमतमें लंबी अवगाहना और बड़ी आयु मानी है तिसका उत्तर	६२३
जैनमतमें पृथिवीको स्थिर मानी है, परंतु जो घूमती मानते हैं, तिसका उत्तर	६२९
जैनमतके माने भरतखंडके प्रमाणकी आशंकाका उत्तर	६३१
नवप्रकारके आर्योंका स्वरूप वर्णन	६३४
(३५) पंचत्रिंश स्तंभ—शंकरस्वामीका जीवचरित्र, तिसकी समीक्षा इत्यादि वर्णन....	
(३६) षट्त्रिंश स्तंभ—सप्तभंगीका वर्णन, खंडन, मंडन, सप्तन- यादिकोंका वर्णन....	
जैनमतानुसार सप्तभंगीका वर्णन	६५९
सकलादेश विकलादेशका स्वरूप	६६५
वेदव्यासजीका किया सप्तभंगीका वर्णन	६६८
व्यासजी और शंकरके कथनका खंडन और सप्तभंगीका मंडन....	६७०
आत्मा देहव्यापी है परंतु सर्वव्यापी नहीं, तिसकी सिद्धि, अद्वैतमतखंडन	६७५
जैनमतका संक्षेपसे स्वरूपवर्णन, आत्माका स्वरूप	६९४
द्रव्य गुणोंका स्वरूप	७०१
नयका स्वरूप (संक्षेपसे)	७१३
ग्रंथकर्त्ताके ग्रंथ पूर्णताके श्लोक	७३९
प्रसिद्ध कर्त्ता (अमरचंद पी. वरगार) का निवेदन	७४०
प्रसिद्धकर्त्ताकी प्रस्तावना	१
उपोद्घात (मुनि श्री बल्लभ विजयजी) का	२५
श्रीमद्विजयानंदमूरि (आत्मारामजी) का संपूर्ण जन्मचरित्र	३३
अनुक्रमणिका (आदिमें)	१
शुद्धिपत्रक (ग्रंथ संपूर्ण हुए बाद)	१
आश्रयदाताओंका दूक जन्महृत्तांत और तस्वीर (")	११
प्रथमके सहायक ग्राहक और दूसरे ग्राहकोंके नाम (")	१९

प्रसिद्धकर्त्ताकी प्रस्तावना.

इस सृष्टिमें प्राणीमात्रको धर्मका शरण है. जैसे सृष्टिमें हरेक प्रकारकी क्रियाका बंधन स्वभाव है, वैसे जन्मसे मरण पर्यंत धर्म प्राणीमात्रका संबंधी है. परंतु धर्मके दर्शन, धर्मकी शाखायें इतनी सारी हो गई हैं, कि सत्य धर्मसे दूसरेको पिछानना एक कठिन सवाल है. सब अपने २ धर्मकी तारीफ कर रहे हैं. कोई पुनर्जन्मको मानता है, कोई नहीं मानता, कोई पाप पुण्य कबूल करता है, कोई प्रकृतिके शिवाय सब बातोंका निषेध करता है. ऐसे अनेक प्रकारके धर्मको देखके जिज्ञासुको विभ्रमता होती है, कि किसको सच्चा और किसको जूठा माने.

सर्व दर्शनके स्वरूपको विस्तारपूर्वक देखा जाय तो जिसका तत्त्वज्ञान, निष्कलंक शंका रहित और सर्वथा मानने योग्य है, वैसा दर्शन केवल एक जिनदर्शन है. जैनमतके लिये कितनेक ईंग्रेजी शिक्षण पाथे हुये (नई चमकवाले) आदमीने बहोत गोता खाया है. प्रायः अंग्रेजी ऐतिहासीकोने और आधुनिक पंडिताभासोंने कई कल्पना करके जैनधर्मको बौद्धकी शाखा बताई है, और एक नयाही धर्म बताया है. और अजितनाथ धर्मनाथ आदि तीर्थंकरोंके नाम भर्तृहरिके समयके मच्छंदरनाथ, गोरखनाथ जैसे नाथकुलके बतलाकर भर्तृहरिके समयसे जैनधर्म चला भी कह देते हैं. परंतु कितनेक बड़े पाश्चात्य विद्वानोंने परिश्रम करके ऐतिहासिक पुरावे इकट्ठे करके जैनधर्मको बहुत पुराना धर्म सबूत किया है. (देखो इस ग्रंथका पृष्ठ ५३५-५४०).

डा० मैक्स मुलर इस जमानेमें आर्यविद्याके एक बड़े पंडित गिने जाते हैं. उन्होंने कहा है कि सारी दुनियाके पुस्तकोंमें सात पुस्तक श्रेष्ठ हैं. उसमें दूसरे नंबरमें जैनोका कल्पसूत्र पुस्तक रखा है, और पहले नंबरमें बार्दबलको रखा है. धर्माधिपणाके वश होकर बार्दबलको प्रथम पंक्तिमें रखा होगा. धर्मकी परीक्षा, न्यायदृष्टीसे होनी चाहिये; अगर इस दृष्टिसे भट्ट मैक्स मुलर देखते तो कल्पसूत्रको अवश्य प्रथम पंक्तिमें रखते. यह कल्पसूत्र जैनोका एक पुराना ग्रंथ है. पहिले यह रीवाज था कि सूत्रमुखपाठ रखते थे. श्री महावीर स्वामिके पाठधारी श्री भद्रबाहुस्वामी चतुर्दशपूर्वके पाठी बगैरहने नियमोंका अनुक्रम किया. बाद देवद्वीगणिलक्षमाश्रमणने पुस्तकके आकारमें लिखे. परंतु जैनधर्मका इतिहास नहीं जाननेवाले जैनपुस्तकको श्रीभद्रबाहुस्वामी वा देवद्वीगणिलक्षमाश्रमणका बनाया हुआ लिखकर जैनधर्म थोड़े कालसे चला है, ऐसी विभ्रमता करे उसमें क्या आश्चर्य है? धर्मके नियम अनादि हैं; सूत्रोंकी रचना तीर्थंकरोंके वखतमें हुई है.

आधुनिक समयके कितनेक पाश्चात्य विद्वानोंने यह जाहिर किया है कि वेदधर्म प्राचीन याने ई. स. पूर्वी ३००० से लेके ७००० वर्षतकका है. बाद कहते हैं कि बौद्धधर्म ई. स.

पूर्वी ५०० से १००० वर्षतकका पुराना है. बाद जैन धर्मकी उत्पत्ति इ. स. पूर्वी २०० से ४०० वर्षकी मानते हैं. अभी प्रायः धर्मशिक्षणके अभावसे झट ऐसा मान देते हैं कि किसी यूरोपियनने लिखा मानु परमेश्वरने कहा.

जैनधर्मके प्राचीनपणेके असंख्य पुरावे पुस्तकोंद्वारा मिल सकते हैं. इतनाही नहीं परंतु इस धर्मके अर्वाचीनपणेके विरुद्धमें बहुत बातें प्रसिद्धीमें आने लगी है. इस ग्रंथके स्तंभ ३२ में ग्रंथकर्त्ताने बहुतसी सवूतें जैनधर्म प्राचीन होनेकी दि है. इ० स० १८९३ में मद्रास प्रेसिडेन्सी कालेजके संस्कृत और कंपरेटीव फाईलोलोजी (भाषाशास्त्र) के प्रोफेसर मि० गुस्ताव ओपर्ट पी. एच. डी. ने शाकटायन व्याकरण प्रसिद्ध किया है. जिसपरसे जैनधर्मकी प्राचीनताकी सिद्धिमें बहुतसी ऐसी बातें जाहिरमें आई हैं कि, जैनधर्मको अर्वाचीन बतानेवाले बहुतसे पंडित चकित हो गये हैं. क्योंकि यह शाकटायन व्याकरणके कर्त्ता जैनधर्मानुयायी भये हैं. और उसका अनिवार्य कारण प्रो० मि० ओपर्टकी नीचे लिखी प्रीफेस * (उपोद्घात) देखनेसे मालुम पड़ेगा.

१. शाकटायन व्याकरणका प्रथम मंगलाचरण यह है.

नमः श्रीवर्धमानाय प्रबुद्धाशेषवस्तवे ॥

येन शब्दार्थसंबंधास्सार्वेण सुनिरूपिताः ॥ १ ॥

अर्थः—जिस सर्वज्ञ प्रभुने शब्द और अर्थका संबंध निरूपण किया है, जो सब वस्तुके स्वरूपके जानकार है, ऐसे श्री वर्धमान प्रभु (जैनोके चौबीसमे तीर्थंकर श्री महा-वीरस्वामी) को नमस्कार हो.

२. शाकटायनाचार्य अपने व्याकरणके प्रत्येक पदांतमें,

“॥ महाश्रमणसंघाधिपतेः श्रुतकेवलिदेशीयाचार्यस्य शाकटायनस्य ॥”

ऐसा लिखते हैं. उसमें श्रमणसंघाधिपति और श्रुतकेवली शब्द ऐसे हैं, जो केवल जैनधर्मके सांकेतिक शब्द हैं; यह शब्द दूसरे धर्मपुस्तकमें नहीं मिलते हैं.

* PROFESSOR GUSTAV OPPERT, PH. D., WRITES :—

Panini refers to Śākatayana as a previous Grammarian and this supplies a reason why the latter makes no mention of the former. Śākatayana's name occurs also in the Pratisākhya of the Rīgveda and Sukla-Yajurveda, and in Yāskā's Nirukta.

The Colophon at the end of each Pāda of the Śābdanūśāsana names this Grammar as the work of Śāktayana Śrutakevalidesīyacharya, the president of the great Jain assembly. महाश्रमणसंघाधिपतेः श्रुतकेवलिदेशीयाचार्यस्य शाकटायनस्य.

Panini repeatedly mentions Śāktayana and the places thus alluded to, are also found in the Śābdanūśāsana. Panini III. 4, 111; VIII. 3, 18; and VIII. 450, correspond respectively to Śākatayana's आद द्विषो द्वेर्जुस्वा (pp. 35, 9 & 220, 290.) वानुज्यात् (pp. 8, 12 and 14, 65), and न संयोगे (pp. 6, 18 and 9, 31).

३. इस व्याकरणकी बहोतसी टीकायें हाथ लगी हैं, उन टीकाकारोंने भी शाकटायनाचार्यको परम जैनी कहा है. उसका मात्र एक दृष्टांत यह है कि टीकाकार यक्षवर्मन कहते हैं कि:—

स्वस्तिश्रीसकलज्ञानसाम्राज्यपदमाप्तवान् ॥

महाश्रमणसंघाधिपतिर्यशशाकटायनः ॥

अर्थ:—सब ज्ञान प्राप्त करके जिनोंने विद्वानोंमें चक्रवर्ती पद प्राप्त किया है, ऐसे महान साधुओंके संघका अधिपति (जैनाचार्य) शाकटायनाचार्य भये हैं.

४. शाकटायनाचार्य जैनी सिद्धाहुये, अब मूल बातपर आके जैनधर्मका प्राचीन-पणा मुजको प्रसिद्ध करना चाहिये.

प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनी ऋषिके पहिले शाकटायनाचार्य हुवे हैं, यह बात सिद्ध है, क्योंकि—

**त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य ॥ लङः शाकटायनस्यैव ॥ व्योर्लोघु-
प्रयत्नतरः शाकटायनस्य ॥**

इत्यादि सूत्र पाणिनी ऋषिने अपने व्याकरणमें दाखल किया है, परंतु शाकटायन व्याकरणमें पाणिनिका नाम भी नजर नहीं आता, इससे सिद्ध है कि शाकटायनाचार्य पाणिनि ऋषिके पहिले हुए हैं.

पाणिनि ऋषिने शाकटायनके कितनेही सूत्र कुछ भी फेरफार किये बिना अपने व्याकरणमें दाखल किये हैं. जैसेकि—

त्वाहौ सौ ॥ यूयवयौ जसि ॥ तुभ्यमह्यौ डयि ॥ इत्यादि.

पाणिनिव्याकरणके महाभाष्यका कर्त्ता पतंजली ऋषि भी शाकटायनको याद करते हैं कि—

नामचधातुजमाह व्याकरणे शकटस्यचतोकम् ।

वैयाकरणानां च शाकटायन आह धातुजं नामेति ॥

Patanjali in his Mahabhashya refers also to Śākatayana when he comments on Panini III. 4, 111 and III. 3, 1 (उणादयो बहुलम्) In the latter place he remarks:—

नामचधातुजमाह व्याकरणे शकटस्यचतोकम् । वैयाकरणानां च शाकटायन आह धातुजं नामेति ॥

In fact the Unadisutras of Śākatayana have found general admission among Grammarians and have been annotated by various commentators such as Ujjvaladatta, Mādhava and others.

कवि कल्पद्रुमका कर्त्ता बोपदेव भी शाकटायनको प्राचीन वैयाकरण गीनते हैं.

इन्द्रश्चंद्रकाशकृत्स्नापिशली शाकटायनः ।

पाणिन्यमरजैनैन्द्रा जयंत्यष्टादिशाब्दिकाः ॥

अर्थ:-इंद्र, चंद्र, काशकृत्स्न, आपिशली, शाकटायन, पाणिनि, अमर और जैनैन्द्र यह आठही वैयाकरण प्राचीन हैं.

उक्त प्राचीनाचार्य शाकटायनका नाम ऋग्वेद और शुक्ल यजुर्वेदकी प्रतिशाखा और यस्कराकी निरुक्तिमें भी आता है, इत्यादि लिखना प्रो० आपटेका है. विस्तारपूर्वक देखना होवे तो उक्त व्याकरणमें देख लें.

यह जैनधर्म कि जिसकी प्राचीनता महान विद्वानोंने पुरा खोज करनेके बाद कबूल किई है, उसका रहस्य क्या है? जैनी ईश्वरको कर्त्ता नहीं मानते हैं, जिस बातका खुलासा इस पुस्तकमें आवेगा. यह जैनधर्म कितना बड़ा दिलवाला है कि केवल एक धर्म, एक जाती, एक प्रजा गिनता है. देशाटनके लिये कितनी छूट! जैनी अनादि सदा मुक्त जगत्का कर्त्ता हर्त्ता ऐसा एक ईश्वर नहीं मानते हैं. परंतु प्रजासत्ताक राज्य (समानकार्य करनेवाले एक सरिखे हकके भागी) के माफिक, तीर्थंकर जिनको जैनी ईश्वर मानते हैं, वे मनुष्य थे. आत्माको पिछानके उर्नोने कर्मका त्याग किया. राग द्वेषरूप दुष्मनोंका क्षमारूप शस्त्रसे पराजय किया. केवलज्ञान पाकर सिद्धगतिको प्राप्त भये. इसी रस्ते जानेका मार्ग उन्होंने दूसरोंको दिखाया. और ऐसा मार्ग दिखाया कि दूसरोंको

Sāktayana is mentioned as one of the eight principal Grammarians in the well-known Sloka found in the Kavikalpadruma of Bopadeva and elsewhere. These eight Grammarians thus named are:—

Indra, Chandra, Kasakrtsana, Apisāli, Sāktayana, Panini, Amara, and Jainendra. The Sloka runs as follows:—

इन्द्रश्चंद्रकाशकृत्स्नापिशली शकटायनः । पाणिन्यमरजैनैन्द्रा जयंत्यष्टादिशाब्दिकाः ॥

Sāktayana mentions in his Sūtras only Indra, pp. 11, 14 and 34, 92, Siddhanandin, pp. 47, 15 and 87, 34, and Aryavajra pp. 10, 11 and 12, 13 as previous Grammarians.

× × × × × × × × × ×

A striking feature of the Sābdanūśāsana is that it does not treat of the Svarvaidika while Panini pays particular attention to it. Vedic words, however, are otherwise much noticed by Sāktayana, and in this respect his work is not deficient to Panini.

The omission of the Svarvaidika accounts perhaps for the neglect Sāktayana has suffered at the hands of the Brahmans, while it explains the favour with which he is regarded by the Jainas. If Sāktayana was Jaina this omission must be regarded as intentional. &c. &c. &c. &c. &c. &c.

सरल रस्ता मिल सके. यदि दूसरों भी इसी तरह वर्त्ते तो तीर्थंकर होना शक्य है. गत, वर्त्तमान और अनागत चोवीसीके सब तीर्थंकर चरित्र नीति और गुणमें श्रेष्ठ हैं. उन गुणोंके प्रकाश करनेवाले सूत्रोंको देखनेसे कोई विरुद्ध बात पाई नहीं जाती है. चक्रवर्तीकी याचना करनेसे वो दूसरेको समान नहीं कर सकता है; श्रीजिनदेवकी भक्ति वो जिनराजही कर देती है.

जैन धर्मका रहस्य यह है कि सब जिवोंका रक्षण करना (दया पालनी). सबको समान समजना, भ्रातृभाव रखना, विद्याशाला, औषधालय, पशुशाला स्थापना, साथ मिलकर भक्ति करना, पापका पश्चात्ताप करना, पापकर्मसे छुटनेको धर्मका ज्ञान संपादन करना, पाप नहीं करनेको दृढ निश्चय करना, किसीसे राग द्वेष नहीं करना, अगर भूलसे वा प्रमादके वशसे होगया होवे तो मनमें पश्चात्ताप करके क्षमाका चाहना, सद्धर्मको फैलाना, प्रवृत्तिमार्गको त्यागके निवृत्तिमार्ग लेना, आत्मज्ञान प्राप्त करना, पापरहित उद्यममें प्रवर्त्तना, मन, वचन, काया, (कर्म) से पवित्र होना, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य पालना, क्रोध, मान, माया, लोभ, आदिका त्याग करना, संयम, मनोनिग्रह और तप करना. धर्ममार्गको पुष्टी देनेवाले येह तमाम कार्य है. इनको साध्य करनेको और आत्माके कल्याण करनेको निर्लोभी, निर्विकारी, शांत, दांत, संयमी विद्वान सद्गुरुके सदुपदेशकी अतीव आवश्यकता है.

जैनलोक दयाको मुख्यताकरके मानते हैं. उसका सबब यह है कि “ दया ” का अर्थ अंतरंग वृत्तिसे दूसरोंके हितके विषे द्रवित होना. “ दया ” शब्दके वाच्यार्थका अंगिकार आर्यप्रजाके सब दर्शनानुयायिको मान्य है. “ दया ” शब्दका लक्ष्यार्थ समजनेका दावा सब करते हैं, परंतु दयाका श्रेष्ठोत्तम लक्ष्य तो जिस दर्शनशास्त्रमें सर्व आत्माको समान गिनकर स्थावर और जंगम जिवात्माओंका अनेकानेक भेद सूक्ष्मोत्तम प्रकारसे वर्णन किया हो, उस दर्शनके शिवाय कुशाग्रबुद्धिद्वारा अवलोकन करनेवालेको भी प्रायः नजर आता नहीं है.

नैयायिको अपनी शास्त्रीय परिभाषामें दयाका पालना सप्रेम स्वीकारता है. परंतु कौनसे कौनसे द्रव्य सचित्त है, किस प्रकारके वर्त्तनसे उनको संक्लिष्टता होगी, ऐसे भेदांतर-सह भिन्न भिन्न प्रकारका विवेचन नैयायिकदर्शनमें दृष्टिगोचर होता नहीं है; तो उस दर्शनके संप्रदायिको तो कहाँसे समज सके ? सांख्यदर्शनवेत्ता सूक्ष्म पर्यालोचनापूर्वक दयाका रहस्य दिखा सकते हैं, ऐसा कहना उनके शास्त्रशैलिके अनुभव करते हुए, निष्पक्षपाति शास्त्राभ्यासिको मान्य नहि है. पूर्वमीमांसको यज्ञादिक कर्मोंकरके पंचेंद्रियार्थिक प्राणिका भोग देके धर्म मानते हैं और दयाको अभिरुचिवाले अपनेको बताते हैं. मीमांसको दया शब्दका पारंपारिक रहस्य समजते नहि है, इतना नहि परंतु दया शब्द शुक्रवत् वाणी मात्र कह जानते हैं. वेदान्तवेत्ताओ पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति ये सबमें चेतनसत्ता स्विकारके इन २ तत्त्वोंके जीवात्मा सुषुप्ति अवस्थावाले हैं, ऐसा समजके उनके प्राण, व्यतिपात करते हुए, पापोद्भव मान्य करते नहि है. याहुदी, जरतोस्ती, महम्मदीय प्रजा स्थावर जंगमात्मक सब द्रव्योंमें ईश्वरी सत्ता स्विकारके, जंगम जीवोंमें आत्मतत्त्व शास्त्रशैलिसे मान्य रखकर दयाशब्दकी प्रियता बताते हैं, तो भी भक्ष्याभक्ष्यका लक्ष रखते नहि हैं. क्रिश्चियन धर्मवेत्ताओ मनुष्यके शिवाय अन्य प्राणीओंमें आत्माका अस्तित्व स्विकारते नहि है. अन्य

प्राणीओंमें प्रत्यक्ष प्रमाणसे चेतनाका अनुभव होता है, तो भी कौनसे विशेष प्रबल प्रमाणसे ऐसा कहते हैं, यह समझना पक्षपातसे तटस्थ रहकर अवलोकन करनेवालेको कष्टसाध्य है। मनुष्यमें आत्मतत्त्व अंगीकार करके दया करनेका प्रेमपूर्वक स्विकारते हैं। इसी तरह जनसमुदायके अनेकानेक संप्रदायिकों दयाका लक्ष्य आपनीभिन्न २ लक्षिके अनुसार स्वीकारके वर्त्तन करते हैं। दयाका वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थका भिन्न भिन्न स्वरूप सर्व दर्शनाभ्यासियोंको द्रष्टव्य होगा।

यदि निरीक्षक उच्चतम बुद्धिबाल निष्पक्षपाती और विचारविवेकसंपन्न होवेगा तो स्वाभाविक रीतिसे दयाका सर्वांगी लक्ष्यका ग्रहण करनेवाले दर्शनका विजय सिद्ध करके सर्वोपरि दयाके तत्त्वानुवादकी उत्तमोत्तम दिव्य प्रसादिका सुशील आत्मश्रेणीकी भाषिके उत्सुक मुमुक्षुवर्गको रसास्वाद प्राप्त करावेगा यह बात निःसंदेह है। सर्वांगसे दयाका लक्ष्यार्थ प्रतिपादक दर्शन, विनय, क्षमा, ज्ञान, ध्यान, चारित्र्य, तप, स्वाध्याय, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, सौजन्यता, सुशीलतादिके शुद्ध स्वरूपका तादात्म्य दिखा सके यह स्वाभाविक है। क्योंकि दया यह धर्मरूप वृक्षका बीज है; सर्वांगपूर्णबीज बोया जावे और शास्त्रविचाररूप जल योग्य रीतिसे शुद्ध मतिज्ञानरूप भूमिमें सेचन किया होवे तो विनयादि अन्यधर्म लक्षण अनायाससे प्राप्त होवे जिसमें आश्चर्य क्या? जैनदर्शनमें दयाका मार्गसे वर्त्तन करनेके अनेक द्वार हैं। प्रथम शास्त्राधिकारीको भी आकर्षणकारी मनोहर दयामार्ग जैनदर्शनकी मन्व्यतामें पूज्यता उत्पन्न कराके निरीक्षकको दया मार्गमें रसलुब्ध करनेमें सदाकाल विजयी होगा, ऐसा उत्तम शास्त्राभ्यासियोंका मानना है।

जैनदर्शनमें स्थावर प्राणियोंका पृथ्वी, पाणी, आग्नि, वायु, और वनस्पति ऐसे पांच भेद हैं। जंगमके द्वीन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, ऐसे चार प्रकार परम विशुद्ध भावनासे प्रतिपादन करके उन २ प्राणियोंके लक्षण दिखाकर स्वआत्माकी तरह सर्व प्राणीके आत्माको समझके उनके तरफ समानबुद्धिसे उनके आत्माको किसी प्रकारसे भी क्लेश न हो, ऐसा वर्त्तन करनेको उग्रशब्दज्वालाकी कांति श्रोताके हृदयमंदिरको प्रकाशित करके बोधश्रोणि सुस्थापित करी है। कीतनेक धर्मावलंबी किसी प्राणीको रोगादिसं पीडित देखकर उनकी अंतावस्था करनेमें दया मानते हैं, परंतु जैनदर्शन अनेक प्रमाणोंसे इस बातको असत्य ठहराकर कहता है कि सब प्राणिको चाहे जैसी दुःखी अवस्थामें भी जीवनकी इच्छा तीव्र होती है। जीवन कष्टके असंख्य प्रवाहोंमें भी प्राणियोंको प्रीयतम होता है। अनेक तीव्र वेदनासे पीडित अंतःकरणका लक्ष तो जीवन संधि रखनेमेंही परम दृष्टीस्थान अनुभवता है, यह बात सब विचारशील मनुष्यको प्रत्यक्ष अनुभवसे ज्ञेय है। यही सिद्धांत प्रबल प्रमाण पूर्वकसर्वज्ञ श्री महावीरने प्रतिपादन किया है। स्थावर जीवात्माओंके सूक्ष्म प्रदेशमें असंख्य जीवोंका अस्तित्व स्वीकारते हैं। वनस्पतिकायके प्रत्येक और साधारण सूक्ष्म भागमें असंख्य और अनंत जीवात्माओंका अस्तित्व अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध करके दिखाया है।

सब जीव चेतना लक्षणवंत हैं। चेतना होवे वहां सुख दुःखका जानपणा नित्य होवे यह निर्विवाद है। जंगम जीवोंका सुख दुःखका जानपणा स्थूल दृष्टिसे देखनेसे भी लक्षित होता है। परंतु स्थावर जीवोंका ज्ञान सूक्ष्म दृष्टि सिवाय समझना दुर्लभ है। चेतना

सिवाय वस्तुका बढ़ना, कमी होना हो नहि सकता है. पृथ्वी आदिकी वृद्धि क्षयकी अनेक क्रियाओं अनेक नियमोंसे निरंतर होती है. इस बातका सबको प्रत्यक्ष अनुभव है. यह बात देखते हैं तो चेतना सर्व द्रव्यमें व्याप्त हो रही है. यह स्वीकार करके भी चेतनको अंगसुख दुःखका वेदकपणा होना चाहिये यह समझना सामान्य बुद्धिसे मुश्किल है. स्थावर प्राणियोंमें चेतनको अंगसुखदुःखका जानपणा विद्यमान है. तीर्थंकरोंने स्थावर प्राणियोंमें चार संज्ञाका आहार, शरीर, इंद्रिय, और आसोआस ये चार पर्याप्ति अस्तित्व फरमाया है. जिनके नाम आहार, भय, मैथुन, और परिग्रह. वनस्पतिमें आहार संज्ञा है, जिससे वृद्धि होती है, भय संज्ञा है, जिससे पाषाणादि द्रव्य बीचमें आनेसे दूसरे मार्गसे वृद्धि होती है, मैथुन संज्ञा होनेसे नर जातिको फरशी हुई घूली नारी जातिके वृक्षोंको स्पर्श करनेसे नारी जातिके वृक्ष नवपल्लव होकर फलते हैं. *

परिग्रह संज्ञासे नये २ परमाणुको ग्रहणकरके वृद्धि होती है. वैसेही पृथ्वी आदिमें आहारादि संज्ञाका अस्तित्व पदार्थ विज्ञानादि शास्त्रोंके अवलोकनसे अनुभवगम्य हो सकता है. स्थावर द्रव्योंमें संज्ञाका अस्तित्व स्वीकारनेसे चेतना स्वीकारी जाती है. और चेतना स्वीकारनेसे ज्ञानका अस्तित्व स्वीकारना पड़ता है. इस संकलनासे मालूम होता है कि ज्ञातापणाकी प्रेरणासेही संज्ञाका उद्भव होता है. ज्ञातापणा सुखदुःखका वेदकस्वरूप होता है. स्थावरमें सुखदुःखका भोक्तापणा इस प्रकारसे संभवित होता है. जिसको सुखदुःखका ज्ञातापणा है, उसके ज्ञातापणेको क्लेश न हो, इस तरहसे बत्तीब रखना यही दयाका लक्षण है. ऐसी अनुपमेय वर्णन शैलिसंयुक्त जैनदर्शनके सिद्धांत स्थावर जंगम प्राणियोंकी दया पालनेको अनेक रीतिसे स्पष्ट करके दिखाते हैं. दयामार्गके प्रतिपादक भिन्न २ लेख वैष्णवी, रामानुजी, चैतन्यमार्गी, कबीरपंथी, निमानंदी, दादुपंथी, नानकपंथी आदिके ग्रंथोंमें मीलते हैं. वे लेख अनेक प्रमाणोंसे पुष्ट किये हुवे हैं. तथापि स्थावर जीवात्माओंकी अनेक जिवायोनीके सूक्ष्म विवेचनयुक्त लेख सत्यनिष्ठ अंतःकरणवाले बुद्धिकौशलय शीलपुरुषको जैन तत्त्व दर्शनिक शास्त्रोंके सिवाय दृष्टिगोचर कदापि नहि होगा. तीर्थंकरप्रणीत जैन तत्त्वशास्त्रोंमें दया यही धर्मका रहस्य गिनकर ज्ञान, दर्शन, तप, संयम, वृत्तादिक निरूपण करके अरूपी आत्माका अवर्णनीय स्वरूप लक्षणोंद्वारा आत्मा अनात्मा (जीव अजीव) पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा बंध और मोक्ष. इन नव तत्त्वोंका अति स्फुट वर्णन दृष्टिगोचर करके गुरुद्वारा, शास्त्राध्ययन करनेवालेको सम्यकबोधसे आत्मविचारश्रेणिकी अलौकिकतामें आनंदमय कर देता है. सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यक्चारित्र्यरूप रत्नत्रयि जैन

* युरोपियन तत्त्वज्ञानियोंने ईंधी माफक शोध की है कि नर वृक्षके फूलविकी रज उबकर नारि जातिके पुष्पमें प्रवेश करे, अब इस मैथुनसे नारि वृक्ष फलता है. वैष्णवाः दाडिमादि वृक्षके फलानेको इस इलाजको काममें लगाते हैं, यह शोध पांच पचास वर्षकी घटाते हैं, परंतु जैनसिद्धांतमें अनादि कालसे यह बात मान्य है. सर्वज्ञप्रणीत धर्ममें किस बातकी न्यूनता होवे ! देखो कि मखनमें बहुत बारिक जीव है ऐसा एक युरोपियन विद्वानने मोटा समझ हुवा शोध करके निकाला है. और इस शोधके लिये छसका दुनीयाके विद्वानवर्गमें बहुमान हो रहा है. परंतु जैनीका एक लहका भी जानता और मानता है के मखनमें एक अंतर्भुहूर्त्तमें (४८ मीनीट) असंख्य जीव पैदा होते हैं. वासी रोटीमें, पाणीके एक बिंदूमें असंख्य जीव आजके विद्वान सुधमदर्शकयंत्र (खूदेबीन) द्वारा देखते हैं. परंतु यह सिद्धांत जैनी अनादि कालसे मानते आये हैं.

तत्त्वज्ञानसागरकी रत्नराशि है। उस रत्नराशिकी कान्ति मात्र दया शब्दके रहस्यमें अंतर्भूत होती है। दयाका मनमंदिरमें प्रादुर्भाव (उत्पत्ति) होतेही बुद्धि साम्यपणेको प्राप्त होती है। सर्व प्राणीप्रति समान भावसें देखनेवाले जीवात्माको अंतरंगमें अपना और अन्यका ऐसा विरोधी विकारका क्षय होके सर्व प्राणीप्रति आत्मभावका अनुभव होता है। सर्व प्राणीप्रति आत्मभावना होनेसें आप संसारसागरमें एक बिंदु समान है; ऐसी बुद्धिवाला सर्व प्राणीप्रति समानता अनुभवनेवाला आत्मा अपने आपको विश्व रहस्य-रूप देखकर अंतमें परम आत्मलक्षकी दृष्टि प्राप्त करके परमानंद संपत्ति संपन्न हो सकता है। जैनतत्त्वज्ञानकी ग्रंथी अपूर्व उद्देशसें रचके अपूर्व गांभीर्यता उसके निरीक्षकको बताकर परम विशुद्ध मुक्तिमार्गका प्रतिपादन करता है। जैनतत्त्वविचारके अनुयायी अनेक पुरुष पूर्वकालमें प्रगट हुए थे; उन्होंने अनेक भगवद्वचनानुसार स्वरचित ग्रंथोंसें जैनतत्त्वामृतकी प्रसादी अपनी बुद्धिबलकी प्रबलतासें उनके समयानुसारीको दीथी। वैसे वर्त्तमान समयमें उन्हेके बोध हुए सद्ग्रंथोंके वचन सत्त्वशील शास्त्राभ्यासीको वचनामृतरूपकरके दिव्यता द्रष्टव्य करते हैं। ऐसा एक महान दर्शनके अनुयायियोंने अपने तत्त्वमार्गकी जनसमुदायके अन्य धर्म सिद्धांतके सामने महत्वता प्रगट करके बतानी यह उनकी बड़ी भारी फरज है। परंतु कालबलके प्रबल प्रतापसें इस मार्गके अनुयायी स्वधर्मकी महत्वता जिस किसी अंशसें जानते हैं उतनीका भी उदय करनेमें अपनी उत्साहवृत्तिका उपयोग नहीं कर सकते हैं। इस पुस्तकका बनना इसी उपयोगकाही फल है। ऐसा उत्साह रहित होना कालमहात्म्यकी अपूर्व कलाका दिग्दर्शन नजर आता है। जिस दर्शनके प्रवर्तक पुरुष सर्वज्ञ थे, जिस दर्शनके मुनि (साधु) उत्तम चारित्र संपत्तिमान थे, जिस दर्शनके अनुयायी गृहस्थ त्यागयुक्त दृष्टिवाले होकर अवाधि ज्ञानादि संपत्ति प्राप्त करते थे, उस दर्शनके वर्त्तमान समयानुयायी शास्त्र परिभाषाके पंडित होनेकी एवजमें शास्त्रशब्दके रहस्य समजनेमें भी प्रायः शक्तिवान नहीं है। ऐसा है तो कालके महात्म्य सिवाय और क्या कल्पना करी जावे ! अर्थात् कालकी कलाही ज्ञान दृष्टिके मार्गमें ले जानेके बदले पंचेंद्रियके रसानंदमें मग्न कर देती है। प्रो० मेक्स मुलर आदि पाश्चात्य तत्त्ववेत्ता जो कि आर्य दर्शन शास्त्रके प्रायः निष्पक्षपाती निरीक्षक हैं, सो भी जैनदर्शनकी महत्त्वता सर्वथा कबूल करते हैं; तो जैनधर्मावलंबी जैन तत्त्वशास्त्रकी महत्वता जनमंडलमें प्रगट करनेके स्थानमें आपही शास्त्राध्ययन करके रहस्य समजनेमें प्रवृत्ति नहीं करते हैं; ऐसा है तो कालरूप जादुगरकी रची हुई व्यावहारिक वैभवकी जालमें जकड़े हुए हैं, ऐसीही कहना पड़ता है।

जैनतत्त्वज्ञान संबंधी विचार व्यवहार और परमार्थकी उन्नति योजनेमें साधनभूत है। तत्त्वज्ञानानुसार वर्त्तन करनेवालेको परमसुख करता है। रत्नत्रयिके अनुभवसें आत्मज्ञान प्राप्तकरके मुक्तिमार्गकी परासीमा स्वीकारी है। रत्नत्रयिका अनुभव, सत्देव, सत्गुरु, और सत्धर्मकी समज शिवाय प्राप्त हो नहि सकता है। आत्मस्वरूपका पूर्ण ज्ञाता आत्मस्वरूप अनुभवी सर्वज्ञ वोही सत्देव, क्रोधादि कषायोंका लय करके अंतर सत्त्वनिष्ठावान वैराग्य संपन्न शास्त्राभ्यासी वोही सत्गुरु, कर्ममलसें निर्मल होनेका सदुपदेश बोधक मार्ग वोही सत्धर्म; इस त्रिपुटीको स्वरूपके अनुभवी शास्त्राध्ययन करनेवाला रत्नत्रयि संपन्न हो

सकता है. रत्नत्रयि संपादित हुआ और सर्वज्ञादि विभूति शीघ्र प्राप्त होती है. सर्वज्ञादि विभूतिकी प्राप्ति ज्ञानमार्गके उदयसे परिणाममें प्राप्त होती है. और ज्ञानमार्गका उदय अलौकिक भावनासे भीजे हुए जैनमार्गकी शैलिकी महत्त्वता जैनदर्शनशास्त्रके अभ्यासकी वृद्धि होनेसेही हो सकता है. उसका उमदा रस्ता यह है कि हिंदुस्थानमें मुंबई जैसे एक मध्यस्थानमें एक बड़ी जैन पाठशाला स्थापित होनी चाहिये कि जिसमें अंग्रेजी-देशी सांसारिक केलवणीके साथ धार्मिक केलवणी बालपणसेही दीजावे. बड़े बड़े शहरोंमें शाखा-पाठशालाएँ स्थापित करनी चाहिये. सद्बोध प्राप्त हुए विना कार्यकी सिद्धी नहीं होती है. ख्रिश्चनलोक कि जिस धर्मको वे ठीक समजते हैं, उसकी वृद्धि करनेके वास्ते करोड़ों रुपयोंकी कान्तिका मोह उतारके व्यय करते हैं. धर्मके पुस्तकोंकी लाखों नकलों छपाके लागतसे भी कमदामसे बेचते हैं. मुसलमान, याहुदी, पारसी, आदि प्रथम धर्मकी केलवणी अपने बच्चोंको देकर फिर उद्धर पोषणकी सांसारिक विद्या पढाते हैं. धर्माभ्यासके लिये इन लोकोंने जब सैंकड़ों शालाएँ बनाई हैं, तो सत्यके अपूर्व कीर्तिस्तंभकरके सुवर्णलताकी कान्तिरूप जैनदर्शनके अनुयायी उदरनिर्वाहकी व्यवहारग्रंथीमें लिपटके परमार्थ मार्गकी स्वप्नावस्थामें कालरात्री गुजार रहे हैं. धनसंपन्नवर्ग विषयास्वादमें मग्न है; मध्यमवर्ग व्यवहारपटुतामें लुब्ध है. अधमवर्ग उदरनिर्वाहकी चिंतामें है. पंडित भावनासे शास्त्राभ्यासका कोई भी सुशील अवलोकन करनेवालेको अपूर्व जैनदर्शनकी यह स्थिति देख करके दया धर्मके प्रतिपादक जैनदर्शनपर दया करनेकाही समय आया है. विवेकी धनसंपन्न जैनधर्मीयोंको चाहिये कि अब अपने हृदयचक्षुसे धर्मकी स्थितिको देखकर जैनतत्त्वशास्त्ररूपरत्नको पहिल पढाके उसकी शुद्ध कांति प्रगट करनेको उद्युक्त होकर अपनी फरज यहि अपना कर्तव्य समझे, यही जीवनका तात्पर्य समझे, शिशुवयका बोध ज्ञानतंतुमें स्थायी रह सकता है, उसके संस्कार जीवनपर्यंत जीदगीको मधुरी निर्दाप करनेको सामर्थ्यवान् है. धर्मानुरागीको चाहिये कि ऐसी जैन पाठशाला स्थापन करानेमें उद्यमवंत हो. ये अपूर्व ज्ञानामृतकी प्रसादीका लाभ अपने बालकोंको दें, इसमें अपना, अपने महान् धर्मका, अपने कुल, जाति औ. देशका उदय है. ऐसी एक पाठशाला स्थापन करनेको स्वर्गवासी बाबुसाहेब पन्नालालजीने अपने धनका सदुपयोग चार लाख रुपये ज्ञानमार्गमें देकर किया है. इस पाठशालाके लिये कई विद्वानोंकी सम्मति लेकर “बाबु पन्नालाल आत्म जैन पाठशालाकी योजना” ऐसे नामसे मेरी तरफसे एक योजना पत्र तयार किया है.

जैनधर्म अनादि होनेकी पुष्टिमें यह सिद्ध है कि मूल आर्य वेदोंके छत्तीस उपनिषद् जो जैनशैली अनुसार जैनोंमें मौजूद है, जिसपरसे और दूसरे संजोगोंसे यह बात सबूत होती है कि आधुनिक वेद कोई नयेही वेद हैं. जैन इतिहास कहता है कि पहले तीर्थंकर श्रीऋषभनाथके पुत्र भरत चक्रवर्तीने अपने पीताके उपदेशसे गृहस्थ अर्थात् श्रावक धर्मके निरूपक चार वेद श्रावक ब्राह्मणोंके पढनेके वास्ते रचे. ये वेदोंके नाम

१ “आत्म” शब्दसे यह भावार्थ है कि स्वर्गवासी बाबुजीका यह निश्चय था कि महाराज श्री आत्माराम जीके नामसे एक पाठशाला (जैन-कॉलेज) स्थापन करके यह परम उपकारी सद्गुरुका नाम अमर रखना.

(१) संसारादर्शन वेद (२) संस्थापन परामर्शन वेद (३) तत्त्वावबोध वेद (४) विद्या-प्रबोध वेद. ब्रह्मचर्य पालनेवालोंका नाम ब्राह्मण था. यह आर्यवेद और सम्यग्दृष्टि ब्राह्मण ये दोनों वस्तु श्रीसुविधिनाथ पुष्पदंत नवमे तीर्थंकर तक यथार्थ चली. दक्षिणमें कितनेक ऐसे वैदिक ब्राह्मण अब भी विद्यमान हैं, जो आधुनिक वेदोंसे कोई अन्य रीतीका वेद मंत्र पढ़ते हैं. ये आर्यवेद कि जिसको तमाम जैन मानते थे विच्छेद होगये, परंतु उनके ३६ उपनिषद् मौजूद हैं. यह प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथसे कला, दंडनीति, कृषी, अग्नि इत्यादिका आरंभ हुआ है. (मनुजी भी मनुस्मृतिमें ऐसाही लिखते हैं. आगे श्लोक देखो.) श्रीसुविधि नाथके पीछे, जब आर्यवेद विच्छेद हो गये, तब उस वखतके ब्राह्मणाभासोंने अनेक तरहकी श्रुतीआं रचीं. उनमें इंद्र, वरुण, पूषा, नक्त, अग्नि, वायु, अश्विनौ, उषा इत्यादि देवताओंकी उपासना करनी लोकोंको उपदेश किया; अनेक तरहके यजन याजन करवाए, और कहने लगे कि हमने इसीतरांह अपने वृद्धोंसे सुना है. इस हेतुसे तिन श्लोकोंका नाम श्रुति रखवा. अपने आपको गौ, भूमी, आदि दानके पात्र ठहराये, और जगद्गुरु कहलाने लगे. इन हिंसक श्रुतिओंको वेदके नामसे प्रचलित की. वेदव्यासजीने श्रुतिएं एकठी कीं, और जुदे जुदे कारणोंसे उनके चार नाम रखे जो सांप्रत कालके ब्राह्मणोंके ऋग, यजुस् साम और अथर्ववेद हैं. व्यासजीने ब्रह्मसूत्र रचा सो वेदांतमतके ये मुख्य आचार्य कहे जाते हैं. यह वेदव्यासजीने ब्रह्मसूत्रके तीसरे अध्यायके दूसरा पादके तेतीसमे सूत्रमें जैनोंकी सप्तभंगीका खंडन किया है, जिसका प्राबल्य होता है, उसका खंडन लिखा जाता है, तो वेदव्यासजीके वखतमें जैन धर्म विद्यमान था. वेदव्यासजीके शिष्य जैमिनीने मीमांसा बनाया. व्यासजीके शिष्य वैशंपायनके शिष्य याज्ञवल्क्यको गुरु और दूसरे ऋषीओंके साथ लड़ाई होनेसे उनोंने यजुर्वेद छोड़के शुक्ल यजुर्वेद ” बनाया. इत्यादि कहांतक विस्तार किया जाय. पुराणादि ग्रंथोंने एक दूसरेको और वेदोंका वहीत खंडन किया है. यहांतकके पढ़नेवालोंको भी नागवार मालूम होता है. इस ग्रंथमें जैन धर्मकी प्राचीनता वेदोंसे पहेलेकी अच्छे प्रमाणोंसे सिद्ध की है. फिर इन्ही वेदोंमें, स्मृतिमें, महाभारत, भागवत पुराणादि ग्रंथोंमें लीखे हुए जैन धर्मकी प्राचीनताका अन्य प्रमाण भी नीचे लीखा जाता है. उनको पाठकगण निष्पक्षपाती होकर पढ़े और सत्यासत्यका विचार करे. कितनेक लोक कपोलकल्पित शंका करते हैं कि जैनधर्म बौद्धकी शाखा है. उनको कहा जाय कि जैनमत बौद्धकी शाखा नहीं, परंतु एक अनादि धर्म है, जो इस पुस्तकके स्तंभ ३३में ऐतिहासिक और शीला लेखोंके प्रमाण द्वारा और प्रो० जेकोवीका प्रमाण देकर अच्छीतरह सिद्ध किया है. फिर भी बौद्धोंके ग्रंथ “ महाविनयसूत्र ” और “ समानफला सूत्र ” में जैनोंके चौबीसमे तीर्थंकर श्री महावीर स्वामिको “ ज्ञातपुत्र ” लिखकर वहीत संबंध लिखा है; बौद्धोंका “ विनयत्रीपीठीका ” ग्रंथका तरजुमा “ लाईफ ऑफ धी बुद्ध ” नामा पुस्तकमें प्रो० जे. डबल्यु. उडवील राखीलने किया है, जिसका पृष्ठ ६५, ६६, १०३, १०४ पर जैनोंके निर्ग्रंथके संबंधमें और पृष्ठ ७९, ९६, १०४, २५९ पर महावीर स्वामीके लिये जो लेख है वो पढ़नेसे पाठक वर्ग संतोषित होंगे कि प्रथम बुद्धके वखतमें जैनधर्म विद्यमान था. कितनेक लोक राजा शिवप्रसाद सी. आई. ई. का बनाया हुआ “ इति-

हास तिमिरनाशक ” ग्रंथका प्रमाण देकर कहते हैं कि जैनधर्म बौद्धकी शाखा है; परंतु सन १८७३ में उन्होंने एक पत्र बनारससे पंजाबका गुजरावाला शहरके जैन समुदायपर लिखा था उसमें लिखा है, कि “ जैन, बौद्ध मत एक नहीं है, सनातनसें भिन्न भिन्न चले आये हैं, जर्मनी देशके एक बड़े विद्वानने इसके प्रमाणमें एक ग्रंथ छापा है. ” वगैरेह वहीत प्रमाण हैं, कहांतक लिखा जाय ?

उपर लिखे जैनकी प्राचीनताके कितनेक वेदादि प्रमाण मोक्षमार्ग प्रकाश आदि ग्रंथानुसार लिखे जाते हैं.

॥ श्री भागवत ॥

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः श्रेयस्यतद्रचनयाचिरसुसबुद्धेः ।

लोकस्ययोरुणयोभयमात्मलोकमाख्यान्नमोभगवतेऋषभायतस्मै ॥

अर्थः—उस ऋषभदेव (जैनोंकेप्रथम तथिंकर) को हमारा नमस्कार हो. सदा प्राप्त होनेवाले आत्मलाभसें जिसकी तृष्णा दूर होगई है, और जिन्होंने कल्याणके मार्गमें झूठी रचनाकरके सोते हुए जगतकी दया करके दोनों लोकके अर्थ उपदेश किया है ॥

॥ श्री ब्रह्माण्डपुराण ॥

नाभिस्तु जनयेत्पुत्रं मरुदेव्यां मनोहरम् ।

ऋषभं क्षत्रियश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वकम् ॥

ऋषभाद्भारतोजज्ञे वीरपुत्रशताग्रजः ।

राज्येऽभिषिच्य भरतं महाप्राव्रज्यमाश्रितः ॥

अर्थः—नाभिराजाके यहां मरुदेवीसे ऋषभ उत्पन्न हुए जिनका बड़ा सुंदर रूप है, जो क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ और सब क्षत्रियोंके आदि हैं ॥ और ऋषभके पुत्र भरत पैदा हुआ जो वीर है और अपने सौ (१००) भाईयोंमें बड़ा है ॥ ऋषभदेव भरतको राज देकर महा दीक्षाको प्राप्त हुए अर्थात् तपस्वी होगये ॥

भावार्थः—जैन शास्त्रोंमें भी यह सब वर्णन इसही प्रकार है ॥ इससे यह भी सिद्ध हुआ कि जिस ऋषभदेवकी महिमा वेदान्तिओंके ग्रन्थोंमें वर्णन की है, जैनी भी उसही ऋषभदेवको पूजते हैं, दूसरे नहीं.

॥ श्री महाभारत ॥

युगेयुगे महापुण्यं दृश्यते द्वारिका पुरी ।

अवतीर्णो हरिर्यत्र प्रभासशशिभूषणः ॥

रेवताद्रौजिनोनेमिर्युगादिर्विमलाचले ।

ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥

अर्थः—युग २ में द्वारिकापुरी महा क्षेत्र है, जिसमें हरिका अवतार हुआ है जो प्रभास क्षेत्रमें चन्द्रमाकी तरह शोभित है ॥ और गिरनार पर्वतपर नेमिनाथ और कैलाश (अष्टापद) पर्वतपर आदिनाथ अर्थात् ऋषभदेव हुए हैं ॥ यह क्षेत्र ऋषियोंके आश्रम होनेसे मुक्ति मार्गके कारण है ॥

भावार्थ—श्री नेमिनाथस्वामी भी जैनियोंके तीर्थकर है और श्रीऋषभनाथको आदिनाथ भी कहते हैं, क्योंकि वह इस युगके आदि तीर्थकर है ॥

॥ श्री नागपुराण ॥

दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुरनमस्कृतः ।

नीतित्रयस्य कर्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः ॥

सर्वज्ञः सर्वदर्शी च सर्वदेवनमस्कृतः ।

छत्रत्रयीभिरापूज्यो मुक्तिमार्गमसौ वदन् ॥

आदित्यप्रमुखाः सर्वे बद्धांजलिभिरीशितुः ।

ध्यायन्ति भावतो नित्यं यदंघ्रियुगनीरजम् ॥

कैलासविमले रम्ये ऋषभोयं जिनेश्वरः ।

चकार स्वावतारं यो सर्वः सर्वगतः शिवः ॥

अर्थः—वीर पुरुषोंको मार्ग दिखाते हुये सुर असुर जिनको नमस्कार करते हैं जो तीन प्रकारकी नीतिके बनानेवाले हैं, वह युगके आदिमें प्रथम जिन अर्थात् आदिनाथ भगवान् हुए, सर्वज्ञ (सबको जाननेवाले), सबको देखनेवाले, सर्व देवोंकरके पूजनीय, छत्र-त्रयकरके पूज्य, मोक्षमार्गका व्याख्यान कहते हुए, सूर्यको आदि लेकर सब देवता सदा हाथ जोड़कर भाव सहित जिसके चरणकमलका ध्यान करते हुए ऐसे ऋषभ जिनेश्वर निर्मल कैलास पर्वतपर अवतार धारण करते भये जो सर्वव्यापी हैं और कल्याणरूप हैं ॥

भावार्थः—जिन अर्थात् जिनेश्वर भगवानको कहते हैं जिनभाषित अर्थात् भगवानका कहा हुआ मत होनेके कारण जैनमत कहलाता है । उपरोक्त श्लोकोंमें श्रीऋषभनाथ अर्थात् आदिनाथ भगवानको जिनेश्वर कहकर महिमा की है ॥

॥ शिदपुराण ॥

अष्टषष्टिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत् ।

आदिनाथस्य देवस्य स्मरणेनापि तद्भवेत् ॥

अर्थः—अड़सठ (६८) तीर्थोंकी यात्रा करनेका जो फल है, उतना फल श्री आदिनाथके स्मरण करनेहीसे होता है ।

॥ ऋग्वेद ॥

ॐ त्रैलोक्यप्रतिष्ठितानां चतुर्विंशतितीर्थकराणां ।

ऋषभादिवर्द्धमानान्तानां सिद्धानां शरणं प्रपद्ये ॥

अर्थः—तीनलोकमें प्रतिष्ठित श्री ऋषभदेवसे आदि लेकर श्री वर्द्धमानस्वामी तक चौबीस तीर्थकरों (तीर्थोंकी स्थापन करनेवाले) है, उन सिद्धोंकी शरण प्राप्त होता हूँ ।

॥ यजुर्वेद ॥

॥ ॐ नमोऽर्हन्तो ऋषभो ॥

अर्थः—अर्हन्त नाम वाले (वा) पूज्य ऋषभदेवको प्रणाम हो.

फिर ऐसा कहा है:-

ॐ ऋषभंपवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु नम्रं परमं माहसंस्तुतं वारं शत्रुंजयंतं पुशुरिंद्रमाहुरिति स्वाहा । उत्रातारमिंद्रं ऋषभंवदंति अमृतारमिन्द्रहवे सुगतं सुपार्श्वमिन्द्रहवे शक्रमजितं तदूर्ध्वमान पुरुहूतमिंद्रमाहुरिति स्वाहा । ॐ स्वस्तिनः इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्ताक्षो अरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु । दीर्घायुस्त्वायवलायुर्वाशुभजातायु ॐ रक्षरक्ष अरिष्टनेमि स्वाहा वामदेव सांत्यर्थं मनुविधीयते सोऽस्माक अरिष्टनेमि स्वाहा ॥

अर्थः—ऋषभदेव पवित्रको और इन्द्ररूपी अध्वरको यज्ञोंमें नम्रको पशु वैरीकी जीतनेवाले इन्द्रको आहुती देता हूँ । रक्षा करनेवाले परम ऐश्वर्ययुक्त और अमृत और सुगत सुपार्श्व भगवान जिस ऐसे पुरुहुत (इन्द्र) को ऋषभदेव तथा वर्द्धमान कहते हैं उसे हवि देता हूँ । वृद्धश्रवा (बहुत धनवाला) इन्द्र कल्याण करे, और विश्ववेदा सूर्य हमें कल्याण करे, तथा अरिष्टनेमि हमें कल्याण करे और बृहस्पति हमारा कल्याण करे । (यजुर्वेद अध्याय २५ मं० १९) दीर्घायुको और बलको और शुभ मंगलको दे । और हे अरिष्टनेमि महाराज हमारी रक्षा कर (२) ॥ वामदेव शान्तिके लिये जिसे हम विधान करते हैं वह हमारा अरिष्टनेमि है. उसे हवि देते हैं.

भावार्थः—श्री ऋषभदेव श्री सुपार्श्व भगवान और अजितनाथ भगवान और अरिष्टनेमि आदि भगवान यह सब जैनियोंके तीर्थकर हैं जिनकी मूर्ति जैनी लोग बनाते हैं और भक्ति करते हैं. ।

॥ भागवत ग्रंथ ॥

एवमनुशास्यात्मजान्स्वयमनुशिष्टान्नपिलोकानुशासनार्थमहानुभावः परमसुहृद् भगवान् ऋषभापदेशः उपशमशीलानामुपरतकर्मणां महामुनीना भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्मनुपशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागतं भगवज्जनपरायणं भरतं धराणिपालनायाभिषिच्य स्वयं

**भवनएवोर्वरितशरीरमात्रपरिग्रहः उन्मत्तइवगगनपरिधानः प्रकीर्णकेशः
आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज ॥**

अर्थः—वह ऋषभदेव भगवान् इस प्रकार अपने बेटोंको समझाकर उनक बेटे यद्यपि आपही ज्ञानवान् हैं तौ भी लोकरीतिके अर्थ समझाकर महात्मा परम मित्र भगवान् ऋषभदेव शांति परिणामी नाश किया है कर्म जिन्होंने, भक्तिवान् ज्ञानवान् वैरागी महा मुनीश्वरोंको परमहंस धर्मका उपदेश देते हुवे और सौ (१००) बेटोंमें बड़े मनुष्योंमें तत्पर ऐसे भरतको पृथ्वीके पालनेके वास्ते राज्य देकर और आप केवल शरीरमात्र परिग्रह रखकर केश लेंचकर नग्न आत्मामें स्थापन किया है ब्रह्मस्वरूप जिन्होंने, उन्मत्तकी तुल्य पृथ्वीपर भ्रमण करते संते हमारी रक्षा करो ॥

॥ भर्तृहरिशतक, वैराग्य प्रकरण ॥

एको रागिषु राजते प्रियतमादेहार्द्धधारी हरो ।

नीरागेषु जिनो विमुक्तललनासंगो न यस्मात्परः ॥

दुर्वारस्मरबाणपन्नगविषव्यासक्तमुग्धो जनः ।

शेषः कामविडम्बितो हि विषयान् भोक्तुं न भोक्तुं क्षमः ॥ *

अर्थः—बड़ी प्यारी गौरीके आधे देहको धारण किये हुवे रागी पुरुषोंमें एक शिवही शोभता है और बीतरागियोंमें ऐसे जिनदेवसे बढकर और कोई नहीं है, जिन्होंने स्त्रियोंके संगकोही छोडदिया है; इन दोनोंसे जो भिन्न पुरुष है, जो दुर्वार कामदेवके बाणरूपी सर्पोंका विषके चढनेसे पागल हुए कामसे ठगे है, वे पुरुष न विषयोंके छोडनेको समर्थ है और न भोगनेको समर्थ है ।

भावार्थः—इसमें शिवको परम रागी और जिन भगवान् अर्थात् जैनियोंके देवताको परम बीतरागी कहकर प्रशंसा की है और राग अर्थात् विषयभोगकी निन्दा की है ।

॥ योगवासिष्ठ प्रथम वैराग्य प्रकरण ॥

राम उवाच । नाहं रामो न मे वाञ्छा भावेषु च न मे मनः ।

शान्तिमास्थातुमिच्छामि चात्मन्येव जिनो यथा ॥

अर्थः—रामजी बोले कि न मैं राम हूं, न मेरी कुछ इच्छा है, और न मेरा मन पदार्थोंमें है; केवल यह चाहता हूं जिन देवकी तरह मेरी आत्मामें शान्ति हो.

भावार्थः—रामजीने जिन समान होनेकी वांछा करी, इससे विदित है कि जिनदेव रामजीसे पहले और उत्तमोत्तम हैं.

*यदि पुराने छपे भर्तृहरिके ग्रंथोंमें यह श्लोक विद्यमान है, परंतु इसमें जिन देवकी स्तुति होनेसे नये छपे ग्रंथोंमेंसे ज्ञानके निकाला गया है.

॥ दक्षिणा मूर्ति सहस्रनाम ग्रन्थ ॥

शिवउवाच । जैनमार्गरतो जैनो जितक्रोधो जितामयः ॥

अर्थ:—शिवजी बोले, जैनमार्गमें रति करनेवाला जैनी, क्रोधके जीतनेवाला, और रोगोंके जीतनेवाला.

भावार्थ:—शिव अपने हजार नामोंमें एक नाम जैनी बताकर क्रोधको जितनेवाले कहते हैं.

॥ वैशंपायनसहस्रनाम ग्रन्थ ॥

कालनेमिनिहा वीरः शूरः शौरिर्जिनेश्वरः ।

अर्थ:—भगवानके नाम इस प्रकार वर्णन किये हैं ॥ कालनेमिके मारनेवाला, वीर, बलवान्, कृष्ण और जितेश्वर ।

॥ दुर्वासा ऋषिकृत महिम्नस्तोत्र ॥

तत्र दर्शने मुख्यशक्तिरिति च त्वं ब्रह्म कर्मेश्वरी ।

कर्त्ताऽर्हन्पुरुषोहरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वं गुरुः ॥

अर्थ:—वहां दर्शनमें मुख्य शक्ति आदि कारण तू है, और ब्रह्म भी तू है. माया भी तू है, कर्त्ता भी तू है और अर्हन् भी तू है, और पुरुष (जीव), हरि सूर्य, बुद्ध और महादेव गुरु वेस भी तूही है, ॥

भावार्थ:—यहां अर्हन् तू है ऐसा कहकर भगवानकी स्तुति करी.

॥ हनुमन्नाटक ॥

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो ।

बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः ॥

अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मैति मीमांसकाः ।

सोयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथः प्रभुः ॥

अर्थ:—जिसको शैवलोग महादेव कहकर उपासना करते हैं, और जिसको वेदान्ति लोग ब्रह्म कहकर और बौद्ध लोग बुद्धदेव कहकर और युक्ति शास्त्रमें चतुर नैयायिक लोग जिसको कर्त्ता कहकर और जैनमतवाले जिसको अर्हन् कहकर मानते हैं और मीमांसक जिसको कर्मरूप वर्णन करते हैं वह तीन लोकका स्वामी तुम्हारे वाञ्छित फलको देवै ॥

भावार्थ:—हनुमानने समुद्र सेतू बांधते वखत छ मतोंमें जिन देवकी भी स्तुति करी है. अर्थात् रामचंद्रजीके समयमें जैनमत विद्यमान था.

॥ भवानीसहस्रनाम ग्रंथ ॥

कुण्डसना जगद्धात्री बुद्धमाता जिनेश्वरी ।

जिनमाता जिनेद्रा च शारदा हंसवाहिनी ॥

अर्थ:—भवानीके नाम ऐसे वर्णन किये हैं ॥ कुंडासना, जगतकी माता, बुद्ध देवकी माता, जिनेश्वरी, जिनदेवकी माता, जिनेद्रा, सरस्वती हंस, जिसकी सवारी है ॥

॥ नगरपुराण भवावतार रहस्यमें ॥

अकारादि हकारान्तं मूर्द्धाधोरेफसंयुतं । नादविन्दुकलाक्रान्तं चन्द्रमण्डलसन्निभं ॥ एतदेवि परंतत्त्वं यो विजानाति तन्त्वः । संसारबन्धनं छित्त्वा समच्छेत्परमां गतिम्

अर्थ:—आदिमें अकार और अंतमें हकार और ऊपर और नीचे रकारसे युक्त नाद और विन्दु सहित चन्द्रमाके मंडलके तुल्य ऐसा अर्हन् (जिनदेव) जो शब्द है यह परम तत्त्व है, इसको जो कोई यथार्थ रूपसे जानता है वह संसारके बंधनसे मुक्त होकर परम गतिको पाता है.

॥ नगरपुराण ॥

दशभिर्भोजितैर्विप्रैः यत्फलं जायते कृते ।

मुनिमर्हन्तभक्तस्य तत्फलं जायते कलौ ॥

अर्थ:—सत्ययुगमें दश ब्राह्मणोंको भोजन देनेसे जो फल होता है वहही फल कलियुगमें अर्हन्तभक्त मुनिको भोजन देनेसे होता है.

॥ मनुस्मृतिग्रंथ ॥

कुलादिबीजं सर्वेषां प्रथमो विमलवाहनः ।

चक्षुष्मांश्च यशस्वी वाभिचन्द्रोथ प्रसेनजित् ॥

मरुदेवी च नाभिश्च भरतेः कुलसत्तमः ।

अष्टमो मरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ॥

दर्शयन् वर्त्मवीराणां सुरासुरनमस्कृतः ।

नीतित्रितयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः ॥

अर्थ:—सर्व कुलोंका आदि कारण पहिला विमलवाहन नामा और चक्षुष्मान ऐसे नामवाला यशस्वी अभिचन्द्र और प्रसेनजित् मरुदेवी और नाभि नामवाला और कुलमें श्रेष्ठ भरत और आठवां नाभिका मरुदेवीसे उरुक्रम नामवाला पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ यह उरुक्रम वीरोंके मार्गको दिखलाता हुआ देवता और दैत्योंसे नमस्कारको पानेवाला और युगके आदिमें तीन प्रकारकी नीतिको रखनेवाला पहिला जिन भगवान् हुआ ॥

भावार्थ:—यहां विमलवाहन आदि मनु कहे हैं, जैनमतमें इनको कुलकर कहा है और यहां युगके आदिमें जो अवतार हुआ है उसको जिन अर्थात् जैन देवता लिखा है इससे विदित है कि जैनधर्म युगकी आदि विषे विद्यमान होनेसे सबसे पहिलेका है.

मनुजीको होनेको अन्यमतवाले लाखों वर्ष (सत्ययुगमें) मानते हैं. तो मनुजी पहिले जैनधर्म विद्यमान था.

॥ प्रभासपुराण ॥

भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तपः कृतम् ।

तेनैव तपसाकृष्टः शिवः प्रत्यक्षतां गतः ॥

पद्मासनसमासीनः श्याममूर्तिर्दिगम्बरः ।

नेमिनाथः शिवोऽथैवं नाम चक्रेऽस्य वामनः ॥

कलिकाले महाघोरे सर्वपापप्रणाशनम् ।

दर्शनात् स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रदम् ॥

अर्थ—शिवजीके पश्चिमभागमें वामनने तप किया था उस तपके कारण शिवजी वामनको प्रत्यक्ष हुए. किस रूपमें प्रत्यक्ष हुवे? पद्मासन लगाये हुवे, श्यामवरण और नम्र. तब वामनने इनका नाम नेमिनाथ रक्खा । यह नाम इस भयंकर कलियुगमें सर्व पापोंको नाश करनेवाला है और इनके दर्शन वा स्पर्शनसे करोड़ यज्ञका फल होता है.

भावार्थः—श्रीनेमिनाथ भगवान् जैनियोंके २३ में तीर्थंकर हैं, और जैनधर्मके ग्रंथोंमें भी उनका वर्ण श्याम लिखा है । इसप्रभास पुराणमें उनको शिवजीका अवतार वर्णन करके प्रशंसा की है.

॥ ऋग्वेद ॥

ॐपवित्रं नम्रमुपवि (ई) प्रसामहे येषां नम्रा (नम्रये) जातिर्येषां वीरा ॥

अर्थः—हमलोग पवित्र पापसें बचानेवाले नम्र देवताओंको प्रसन्न करते हैं जो नम्र रहते हैं और बलवान् हैं ।

ॐनम्रं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं

पुरुषमर्हंतमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात्स्वाहा ॥

अर्थः—नम्र धीर वीर दिगम्बर ब्रह्मरूप सनातन अर्हंत आदित्यवर्ण पुरुषकी सरण प्राप्त होता हूँ ॥

॥ महाभारत ग्रन्थ ॥

आरोहस्व रथं पार्थ गांडीवंच करे कुरु ।

निर्जिता मेदिनी मन्ये निर्ग्रथा यदि सन्मुखे ॥

अर्थः—हे युधिष्ठिर ! रथमें सवार हो और गांडीव धनुष हाथमें ले । मैं मानता हूँ कि जिसके सन्मुख जैन मुनि आये उसने पृथ्वी जीतली.

मृगेंद्रपुराण ।

श्रवणोनरगोराजा मयूरःकुंजरोवृषः। प्रस्थानेचप्रवेशे वा सर्वसिद्धिकरामताः।

पद्मिनीराजहंसश्च निर्ग्रथाश्च तपोधनाः। यंदेशमपाश्रयंति तत्रदेशे सखंभवेन ।

अर्थः—मुनीश्वर, गौ, राजा, मोर, हाथी, बैल, यह चलनेके समय तथा प्रवेशके समय सामने आवें तौ शुभ हैं और कमलनी, राजहंस, जिनकल्पीमुनि जिस देशमें हों उस देशमें सुख हो ।

वाराहसंहिता, गणेशपुराणादि ग्रंथोंमें जैनके विषयमें बहोत लेख हैं कहांतक लिखा जाय.

अन्यमतवाले हंसते हैं कि जैनीलोक कंदमूल नहीं खाते और रात्रीभोजन नहीं करते हैं, परंतु उनके ग्रंथोंमें भी इनही बातोंका निषेध है.

॥ महाभारत ग्रन्थ ॥

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कन्दभक्षणं ।

ये कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थयात्राजपस्तपः ॥

अर्थः—जो कोई मदिरा पीता है मांस खाता है या रात्रीको भोजन करता है या कन्द [धरतीके नीचे जो वस्तु पैदा हुई आलू अद्रक मूली गाजरआदिक] खाता है उस पुरुषका तीर्थयात्रा जप तप सब वृथा है.

॥ मार्कण्डेयपुराण ॥

अस्तं गते दिवानाथे अपोरुधिरमुच्यते ।

अन्नं मांससमं प्रोक्तं मार्कण्डेयमहर्षिणा ॥

अर्थः—सूरजके अस्त होनेके पीछे जल रुधिर समान और अन्न मांस समान कहा है.

॥ भारत ग्रन्थ ॥

चत्वारोनरकद्वारं प्रथमं रात्रिभोजनं ।

परस्त्रीगमनं चैव संधानानंतकायकं ॥

ये रात्रौ सर्वदाहारं वर्जयन्ते सुमेधसः ।

तेषां पक्षोपवासस्य मासमेकेन जायते ।

नोदकमपि पातव्यं रात्रावत्र युधिष्ठिर ।

तपस्विनोविशेषेण गृहिणांचविलोकिनां ॥

अर्थ—नरकके चार द्वार हैं, प्रथम रात्रिभोजन करना, दूसरा परस्त्रीगमन, तीसरा संधाना खाना, चौथा अनंत काय अर्थात् कंद मूल आदिक ऐसी वस्तु खाना जिसमें अनंत जीव हों । जो पुरुष एक महिनेतक रात्रिभोजन न करे उसको एक पक्षके उपवासका फल होता है. हे युधिष्ठिर ! गृहस्थीको और विशेषकर तपस्वीको रातको पानी भी नहीं पीना चाहिये ।

मृते स्वजनमात्रेपि सूतकं जायते किल ।

अस्तंगते दिवानाथे भोजनं क्रियते कथं ।

रक्ताभवन्ति तोयानि अन्नानि पिशितानि च ।

रात्रौ भोजनसक्तस्य ग्रासेन मांसभक्षणं ॥
 नैवाहुतीर्न च स्नानं न श्राद्धं देवतार्चनं ।
 दानं च विहितं रात्रौ भोजनं तु विशेषतः ॥
 उदुंबरं भवेन्मांसं मांसं तोयमवस्त्रकं ।
 चर्मबारो भवेन्मांसं मांसं च निशि भोजनं ॥
 उलूककाकमार्जारगृध्रशंबरशूकराः ।
 अहिवृश्चिकगोधाद्या जायन्ते निशि भोजनात् ॥

अर्थ—जैसे स्वजनके मरण मात्रसे सूतक होता है, ऐसाही सूर्य अस्त होनेके पीछे रात्रिको सूतक होता है इस कारण रात्रिको कैसे भोजन करना उचित है ? रात्रिको जल रुधिर समान होजाता है, और अब मांसके भावको प्राप्त होता है, इस कारण रात्रि विषे भोजन लंपटीको एक ग्रासभी मांसभक्षण समान हो जाता है। रात्रिभोजन करनेवाले पुरुषको आहुति देना, स्नान करना, श्राद्ध करना, देवार्चन करना, दान देना, व्यर्थ है। उदुंबर फल अर्थात् बडका फल, पीपलका फल, पीलूका फल, गूजरका फल आदिक मांस समानही हैं।

और रात्रिको भोजन करना भी मांस है। रात्रिको भोजन करनेसे उल्लू, कब्बा, बिल्ली, गिद, सूवर, सर्प, वीलू, गोहरा, गोह आदिकमें जन्म होता है।

॥ भारत ॥

मयमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणं ।
 भक्षणान्नरकं याति वर्जनात्स्वर्गमाप्नुयात् ॥
 अज्ञानेन मया देव कृतं मूलकभक्षणं ।
 तत्पापं यातु गोविंदं गोविंदं तव कीर्तिनात् ॥
 रसोनं गुंजनं चैव पलांडुपिंडमूलकं ।
 मत्स्या मांसं सुरा चैव मूलकं च विशेषतः ॥

अर्थ—शराब पीने, मांस खाने, रातको भोजन करने और कंद भक्षण करनेसे जीव नरकमें जाता है और त्यागनेसे स्वर्गमें जाता है ॥ हे गोविन्द ! मैंने अज्ञानता करके मूल (अर्थात् मूली रतालू आदिक) खाया है वह पाप तुम्हारी कीर्तिसे दूर हों। लहसन, गाजर, प्याज, पिंडालू, मच्छी, मांस, मदिरा और विशेषकर मूलका भक्षण नहीं करना ॥

मयमांसाशनं रात्रौ भोजनं कन्दभक्षणं ।

ये कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥ १ ॥

वृथा एकादशी प्रोक्ता वृथा जागरणं हरेः ।

वृथा च पौष्करी यात्रा कृत्स्नं चांद्रायणं वृथा ॥ २ ॥

चातुर्मास्ये तु संप्राप्ते रात्रिभोज्यं करोति यः

तस्य शुद्धिर्न विद्येत चांद्रायणशतैरपि ॥ ३ ॥

अर्थ—मदिरा और मांस इनको खाना और रातको भोजन तथा कन्दोंको भक्षण करना इनको जो करते हैं, तिनको तीर्थयात्रा, और ये सभी व्यर्थ है और उनका एकादशी व्रत और हरि निमित्त जागरण (रातको जागना, और पुष्करराजको यात्रा और सभी चान्द्रायण व्रतविशेष) ये वृथा होते हैं- चौमासेके आने पर जो रात्रिको भोजन करता है, उसको सैकड़ों चान्द्रायण व्रतोंसे भी शुद्धि नहीं होती ।

शिवपुराण ।

यस्मिन्गृहे सदा नित्यं मूलकं पाच्यते जनैः

स्मशानतुल्यं तद्वेश्म पितृभिः परिवर्जितम् ॥

मूलकेन समं चान्नं यस्तु भुङ्क्ते नरोधमः ।

तस्य शुद्धिर्न विद्येत चांद्रायणशतैरपि ॥

भुक्तं हालाहलं तेन कृतं चाभक्ष्यभक्षणं ।

वृन्ताकभक्षणं चापि नरो याति च रौरवं ॥

अर्थ—जिसके घर नित्य मूल पकाया जाता है उसका घर बिना प्रेत स्मशानतुल्य है ॥ जो मनुष्य मूलके साथ भोजन खाता है उसका एकसौ चांद्रायण व्रत करनेसे भी पाप दूर नहीं होता है ॥ मांसतुल्य जिसने अभक्ष्य भक्षण किया उसने हालाहल जहर भक्षण किया और जिसने बैंगन खाया वह नर रौरव नरकमें जाता है ॥ वगैरह बहोत प्रमाण है, अफसोस है ! इनके शास्त्रोंमें ऐसे स्पष्ट प्रमाण होते हुए भी, इसी कंदमूलको एकादशी आदि व्रतोंमें अन्धमति उमंगसे खाते हैं ॥

जैन धर्मकी अनादिसिद्ध करनेको ऐसे बहोत प्रमाण हैं- कहां तक लिखा जाय ?

इस समयमें जैन श्वेतांबरमतमें मुनि श्रीमद् विजयानंदसूरीश्वरजी (आत्मारामजी) महाराज एक बड़े विद्वान हुए हैं, उन्होंने अपनी अपूर्व विद्वत्तासे धर्मकी योग्य सेवा बजाके वर्तमान समयमें जैनीयोंमें अग्रेसर पद प्राप्त किया है- इतनाही नहीं परंतु अन्य मतावलंबीओंमें, युरोप अमेरिकाके पंडितोंमें भी इन्होंने बड़ा नाम और मान पाया है- धर्ममें धूरीसमान, क्रियामें अचलायमान, अतिशय श्रद्धावान, परोपकारमें तत्पर, स्वभावसे शांत, कर्म-अरि जीतनेमें सामर्थ्यवान, ज्ञानमें प्रबल, इत्यादि गुणसंपन्न महात्माके अपने अंत समयमें बनाये हुए इस तत्त्वनिर्णयप्रासाद ग्रंथको पढ़नेको, मनन करनेको, उनका चरित्र, और चित्रद्वारा उनकी मुखमुद्रा निहारनेको कौन माग्यवान् उत्सुक नहीं होगा ? सर्व होंगे,

यह महात्मामें कइ गुण ऐसे थे जो बड़े पुरुषोंमें भी एकही साथ बहु कठिनतासे पाये जाते हैं. प्रायः आंतरीय गुणोंके अनुसार बाहिरकी आकृति होती है. दृढ विचारवाले पुरुषकी दृढता इत्यादि उनके चेहरेपर जाहिर होती है. कामी पुरुषका काम उसकी आंख और गालके उपर दृष्टिगोचर होता है. हठपणा जडबासें जाहिर होता है. आकृति देखकर गुणअवगुण कहना यह प्राचीन अष्टांगगोचर होता है.

आधुनीक समयमें भी अमेरिकादि देशोंमें यत्किंचित् यह विद्या जाननेवाले हैं. इन महात्माका जिसने दर्शन नहि किया है वह उनकी तस्वीर देखकर उनकी भव्यता देख सकता है, परंतु पुण्योदयके प्रभावसें जिनोंने उनकी चरणसेवा की है वे तो पांच महाव्रत पालनेकी निशानी महाराज श्रीके शरीरपर देख सकते थे. पांच महाव्रत हरेक मुनी पाले ऐसा ख्याल करें, परंतु इन महामुनिराजके ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी छाप उनकी चालमें, वाणीमें, वर्तावमें, व्याख्यानमें, साधारण वार्तालापमें, ठुकमें हरेक प्रसंगपर जाहिर होतीथी, हजारों साधुओंके बीचमेंसें उक्त मुनिराज एकदम अनजान आदमीको भी नजर आ जाते थे ऐसी उनकी भव्य आकृति थी.

आज काल हम देखते हैं के किसी खास धर्मगुरुकेपास व्याख्यान श्रवण करनेको अन्य धर्मवाले प्रायः करके नहि जाते हैं. विशेष करके वेदमतानुयायी ब्राह्मणोंने जैनोंकी तरफ अपना द्वेष जगे जगे जाहिर किया है. जैन यानि नास्तिक-पाखंडी. फिर उस धर्मके साधु और उपदेशक तो दूरसेही नमस्कार करने योग्य माने उसमें क्या आश्चर्य ? परंतु मुनि श्रीआत्मारामजीके संबंधमें अन्य मतवालोंका वर्तन बहुतही प्रशंसनीय था. पंजाबमें महाराजश्रीने बहुत काल व्यतीत किया था, और उनके व्याख्यानमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब वर्णके लोग आते थे. आते थे इतनाही नहीं परंतु उनको पूज्य गुरु समझते थे. उनमें अन्यमतावलंबीयोंको सत्य मार्ग बतानेकी शक्ति भी अद्भुत थी. किसीको तुरा नहीं मनाकर जीज्ञासुके संशयको दूर करते थे. एक समय अंबाला शहरमें एक वेदमतानुयायी गृहस्थ महाराजश्रीका नाम सुनकर आकर नम्रतासें नमस्कार करके बैठा. थोड़ी देरके बाद उसने पूछा “ महाराज ! हमने सुना है कि आप जैनी लोग ईस जगत्का कोई कर्त्ता नहीं है ऐसा मानते हैं यह बात सच्च है क्या ? ” महाराजजीने कहा “ जगत्कर्त्ता ईस शब्दका अर्थ समझनेमें लोगोंकी भूल होती है. जिससे जैनधर्म संबंधी खोटा अपवाद प्रचलित हुआ है. मैं तुमको पूछता हूं कि तुम खुद जगत्कर्त्ता ईश्वरको मानते हो तो कहो यह ईश्वर कौनसी जगा रहता है ? उस गृहस्थने कहा “ महाराज ! ईश्वर सबही जगापर है; सब जीवोंमें ईश्वर हैं. कोई जगा बिनाईश्वरके नहीं है. ” महाराजजीने कहा, “ ठीक है. हम इसको आत्मतत्त्व कहते हैं, वह हरेक जीववाली वस्तुमें है यह आत्मतत्त्व कर्मानुसार शरीर रचता है, तो इस आत्मतत्त्वको अमुक अपेक्षासें जगत्कर्त्ता कहनेमें आवे तो हमको कुछ उजर नहि है. परंतु एक बात जाननी जरूर है के यदि ईश्वरको सामान्य लोकोके सामने मुजिब जगत्कर्त्ता माना जायतो कामी पुरुष व्यभिचार करता है तो उनको भेरेनेवाला

ईश्वर होना चाहिये. कभी ईश्वर जीवोंको कर्मानुसार फल देता है ऐसा माना जाय तो भी जब कार्मी पुरुषके व्यभिचारसे स्त्रीके पूर्वकर्मानुसार फल मिला तब वो फल ईश्वरने उसको दिया और उस कार्मी पुरुषको व्यभिचार द्वारा वह फल मिला इसलिये यह व्यभिचारकी इच्छा ईश्वरने पैदा की। जवाय इसके उस स्त्रीको या उस पुरुषको पूर्वोक्त फल कैसे मिल सकता?" उस गृहस्थने कहा "महाराज ! ईश्वर तो साक्षी मात्र है. " महाराजजीने कहा " हम भी निश्चयनयकी अपेक्षासे कहते हैं कि, आत्मा (ईश्वर) साक्षी मात्र है. उस गृहस्थने कहा " महाराज ! ऐसा है तब आपके और हमारे मतमें क्या तफावत है ? " महाराजजीने कहा " तुम वस्तुका एक धर्म ग्रहण करके एकांतवादमें दूसरे धर्मोंको स्वीकारते नहीं हो, हम वस्तुके सबही धर्म अंगीकार करते हैं. परंतु कथनमें सर्व धर्म युगपत् कथन करने अशक्य होनेसे और सबधर्म एक दूसरेके साथ ऐसे मिले हुए हैं कि एक दुसरेमें सर्वथा छुटे नहीं पड सकते हैं. इस सबवसे जब हमको एक या ज्यादा धर्मके संबंधमें व्याख्यान करना पडताहै तब कहते हैं कि "स्यात् अस्ति इत्यादि " अर्थात् कथंचित् (अमुक अपेक्षासे वस्तु है, कथंचित् नहीं है,) इत्यादि. "

इस संभाषणसे वह गृहस्थ बहुतही संतुष्ट होकर महाराजजीके गुणानुवाद करता करता स्वस्थानमें गया. जैसे साधारण बातचितमें ऐसे व्याख्यानमें भी स्याद्वाद मार्गकी शैली महाराजजीके शब्द शब्दमें व्यापीहुई मालूम पडतीथी. "षड्दर्शन जिन अंग भणीजे" यह आनंदधनजी महाराजका वाक्य सत्य है. यह बात उनके साथ मात्र पांच मिनीट बात करनेमें मालूम होतीथी.

कोई अनजान गृहस्थ महाराजजी पास शंकाके पूछनेको आते तो उनकी शंकाका समाधान प्रश्न पूछनेके पहिलेही प्रायः बातचितमें होजाताथा. जैन समुदायके उपर महाराजजीश्रीने जो जो उपकार किये हैं, वे सर्व अवर्णनीय हैं. धर्म संबंधी ज्ञान जैनोंमें बहुत कचा होगयाहै यह तो जाहिर बात है. कोई युवान धर्मज्ञान प्राप्त करनेको चाहताथा तो उसको साधन मिलते नहिं थे. साधन प्राप्त होते तो समझनेमें मुस्कली पडतीथी. यह बड़ा अंतराय जो ज्ञानपुरुषके मार्गमें था सो इन्होंने दूर किया. जैन तत्त्वादशी जैसा अमूल्य ग्रंथ हिंदी सरल भाषामें लिखकर जैनोंके तत्वसमझनेमें आवे इमतरह लोक समक्ष रजु किया यह कुछ कम उपकारका काम नहीं है. कितनेक अनसमझ लोकोंका मत है कि ज्ञानको भंडारमें रखना. ज्ञान पंचमी जैसे दिनोंमें पुजामें रखना, परंतु जिनेश्वर भगवानने पुकारके उपदेश किया है कि आत्माका ज्ञान गुण बहार आवेगा तबही सिद्धिपदकी प्राप्ति होगी. ज्ञान अभ्यासके लीये है, नहिंके संग्रहके लिये, ज्ञानको गुप्त रखनेसे, लोगोंको ज्ञानके साधन शक्तिके होये भी नहीं देनेसे ज्ञानावर्णीय कर्म बंधाता है, यह जैन सिद्धांत है और यह सिद्धांतके अनुसार महाराजजीश्रीने जगा जगा पुस्तकालय बन्वाके पुस्तकद्वारा और उपदेशद्वारा ज्ञानका फैलाव किया है और यह पुस्तक भी उसी ज्ञानका फल है, हम सब इस भाग्यवान महा पुरुषके उपकारनीचे दबेहुए

हैं. हमारे ज्ञान पर्याय इस मुनीराजके सदुपदेश और भाषानुसार वर्तनसे किंचित् बढ़ाए जाये हैं. इनके उपकाररूप ऋणको हम कीसी तरह भी अदा नहीं कर सकते हैं. इस प्रकारका मत उनके तमाम अनुयायीयोंका है. हां एक बात है की इन महात्माके नामसे प्रतिग्राम और प्रतिनगर जैन विद्याशाळा स्थापन करी जावे और जिसमें सांसारिक विद्याके साथ धार्मिक विद्याका ज्ञान दिया जावे तो पूर्वोक्त महात्माके किये उपकारका यत्किंचित् बढ़ला उतर सकता है. ऐसे २ कई उपकार यह महात्मा कर रहे थे. परंतु आः हा ! दैवकी गति न्यायी है, भारतवर्षभूषण, विद्यापरंगत, सुधारणास्थापक, धर्मविजयके आनंद, आत्मामें रमण करनहार, सुरि देवलोक प्राप्त हुए. वह भव्यमूर्ति, निडर घंटजादसम वाणी हृदय, पारंगत दृष्टि, वज्रसमान मर्मयुक्त खंडनकला, सदा सर्वथा मन वचन कर्मवाणीसे प्रकाशित केवल निःस्वार्थी धर्माभिमान यह एक क्षणमें भारतभूमिको दुर्भागि करनेको अदृश्य हो गये. मातृभूमिको भी दुष्काल महापारिरूप दुःखका वैभव्य स्वाभिवियोगसें हुवा नहो !

पूज्यमहाराजजीने यह ग्रंथ अपनी अंत अवस्थाके थोड़ेही काल पहीले बनायाथा. अन्य मतके उपर उजाला डालनेवाली बहोतसी बातें इसमें है. मेरेपर उनका पुरा अनुग्रह होनेसे यह ग्रंथ मुझको दिया गया था. प्रसिद्ध करनेको छपवाना सुरू किया. बाद महापारी, छापखानेकी अव्यवस्था, बाद छापखानेका बंदजाना, मेरेपर स्त्रीमरणदि आफतोंका आना, तस्वीरें मिलनेमें देरी, और जाहिर करने योग्य नहि ऐसे वित्रोंसे और कुछ प्रमादसें भी ग्रंथका प्रसिद्ध होना ढीलमें रहा. अब यह ग्रंथ वाचक मार्गके आगे रजु कर सका हूं ; जिसका पुरा धन्यवाद मैं आचार्यजी महाराज श्रीकमलविजयजी और मुनिराज श्रीवल्लभविजयजी आदिको देताहूं कि उन्होंने औषधीरूप कटुलेख आदिसें मुझको जाग्रत करके प्रसिद्ध करवाया.

जिस जिस महाशयोंने इस ग्रंथको खास सहाय दी है, उनका पुरा धन्यवाद मानताहूं; उनकी सविस्तर हकीकत आगे आवेगी. *

आगेसें ग्राहक होकर पूरी मदद देनेवाले महाशयोंके नाम भी आगे दाखिल किये हैं.

यह पुस्तक धर्मकार्यमें उपयोग करनेवालेको, पुस्तकालय भंडारमें भेट करनेवालेको, इनामके लिये लेनेवालेको, साधारण पाठकवर्ग वगैरे सबके सुभिताके लिये सहायदाताओंकी मददसें कम मूल्यमें दिया जायगा. योग्य मुनिराजोंको यह पुस्तक भेट भेजा जायगा.

इन ज्ञानी आचार्यका अद्भुत वंशवृक्ष रंगीन वृक्षके माफिक बनाकर इस पुस्तकमें प्रसिद्ध किया है. इस ग्रंथकी तमाम तस्वीरें अमेरिका और इंग्लंडसे बहोत खर्चा देकर खास कारीगरके हाथसें बनवाकर मंगाई हैं. कागज भोटे और सफाईदार पसंद किये हैं. अक्षर बड़े हैं जो देखने और पढ़नेसें पाठकवर्ग खुश होंगे. ज्ञानका अनुमोदन करेंगे तो प्रसिद्ध कर्त्ताका परिश्रमका बदला मिला समझा जायगा.

* सहायदाता महाशयोंकी उमदा लुब्धी और अल्प वृत्तान्त उन महाशयोंकी इच्छा नहीं होते हुवे भी सहायताके केवल उपकारार्थ छोड़े गये हैं.

मुद्रालयके और दृष्टि दोषके कारणसे जो भूल रह गई है उसका सूक्ष्म शुद्धिपत्रक ग्रंथमें दाखल किया है। फिर भी कोई भूल रह गई होतो मुझ पाठक वर्गसे प्रार्थना है कि सुधारके बाचे।

सस्ती किंमतमें ग्रंथको प्रसिद्ध करानेके वास्ते जिन महाशयोंने मदद दी है उनकी तस्वीर वगैरेह इस ग्रंथमें प्रसिद्ध कर्ताने उन महाशयोंकी केवल कदर बुजनेको प्रसिद्ध साधु, अग्रेचारी धर्मके जानकर जैन बंधुओंकी संमति लेकर दाखल किये हैं। मेरेपास ऐसी सम्मति मौजूद होते हुए भी चंद जैनबंधुओंने गृहस्थोंकी तस्वीर वगैरेह दाखल करनेमें विरुद्ध उठायाथा। अगर यह बात ग्रंथ प्रसिद्धकर्ताकी मरजीकी थी, परंतु किसीको पुस्तकका अंतराय न होवे इस लिये मैं तीन तरहके पुस्तक बंधवाये हैं। (१) मूल ग्रंथ, प्रस्तावना, जन्म चरित्र, और तस्वीर दाखल किया हुआ, संपूर्ण ग्रंथ; (२) और ग्रंथकर्ताकी तस्वीर और मूल ग्रंथ; (३) और प्रस्तावना, ग्रंथकर्ताका जन्म चरित्र, साधुकी तस्वीरें, गृहस्थोंकी तस्वीरें और टुक टुक वृत्तांतका अलग ग्रंथ। किंमत सबकी एकही पड़ेगी, जोनको जैसा चाहे वैसा मंगवा लेवे। कितनेक ग्राहकोंका यह आग्रह है कि हमको तो संपूर्ण ग्रंथ साथही चाहिये इस लिये किसीका दील दुःखी न होवे, ऐसा रस्ता नीकालके उपर मुजिब मैंने व्यवस्था की है। पुस्तक प्रसिद्ध होनेमें दील होनेसे जो ज्ञानांतराय हुआ है उसकी मैं क्षमा चाहकर आखिर कहता हूँ कि इस पुस्तककी शोधनमें, इसकी उमदा हस्ताक्षरसे नकल करनेमें, प्रस्तावना लीखनेमें, और प्रूफ वगैरेह सुधारनेमें जो किमती सहायता देके श्रीमद विजयानंदसूरिस्वरके जेष्ठ शिष्य श्रीमान् पंडित श्री लक्ष्मीविजयजीके शिष्य श्रीमान् श्रीहर्षविजयजीके शिष्य मुनि श्रीवल्लभविजयजीने जो परिश्रम उठाया है उनको और पंडीतजी अमीचंदजीको मैं धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने गुरु भक्ति और धर्मसेवा निमित्त जैनधर्म और उसके अनुयायी उपर अमूल्य उपकार किये हैं।

श्रीमद् विजयानंदसूरि (आत्मारामजी) महाराजके पाठपर श्रीमद् कमलविजय सूरि महाराज विराजमान हुवे, उनकी और इस ग्रंथको उपर लिखी मदद देनेवाले मुनिश्री वल्लभ विजयजीकी तस्वीरें दाखल करानेको भी बहुत महाशयोंने जोर दिया, वे तस्वीरें भी उन्हींकी आज्ञा नहीं होते हुवे भी केवल धर्मसेवा और ग्राहकोंकी तीव्र जीज्ञासाको तृप्त करनेको दाखल की है जिसकी मैं क्षमा चाहता हूँ।

यह ग्रंथ कायदे माफक रजिस्टर करवाया है, और सर्व हक प्रसिद्ध कर्ताने अपने स्वाधिन रखा है।

सर्वको आनंद सुख प्राप्त हो. तथास्तु !!!

दासानुदास,

अमरचंद पी० परमार.



आचार्य श्री १००८ श्रीमद् कमल विजयसूरि.

श्रीमद्विजयानंद सूरेश्वर (आत्मारामजी) के पाठधारी.

मूल-पंजाबी-ब्राह्मण.-सिरसामें यति किशोरचंदजीके पास रहतेथे.

ढुंढक दीक्षा, सं० १९३० में श्री विश्वचंदजीके पास ली. नाम—रामलालजी.

संवेगी दीक्षा-अहमदाबादमें—सं० १९३२.

और श्रीमन् आत्मारामजीके बड़े शिष्य श्री लक्ष्मीविजयजी (विश्वचंदजी)के शिष्य हुए.

पाटण-गुजरातमें पट्टपर विराजे - सं० १९५७.

वचनामृतकी वृष्टी जगह २ कर रहे हैं.

॥ ॐ ॥

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

उपोद्घात

विदित होवेकि, इस संसारसमुद्रमें सतत पर्यटन करनेवाले प्राणियोंको, जन्ममरणादिक अस्थिर दुःखोंमेंसे मुक्त करनेवाला, केवल एक धर्मही है- अन्यमतावलंबीयोंके शास्त्रोंमें भी, ऐसीही कहा हुआ है। ऐसा जो धर्म, उसका मूल तो सर्वाशयुक्त दयाही है; दयाकरके धर्मकी प्राप्ति होती है, और परिपूर्ण धर्मकी प्राप्ति हुए, जीव, मोक्षको प्राप्त होता है। इसवास्ते दया सर्वात्कुष्ठपदार्थ है। सर्वमतोंवाले दयाका उपयोग करते हैं, परंतु सर्वाश दयाका उपयोग करते नहीं है; इसीवास्ते उनको धर्मपदार्थका जैसा चाहिये, वैसा लाभ नहीं प्राप्त होता है। दयाका सर्वाश उपयोग तो, केवल जैनदर्शनमेंही स्वीकार किया है; तिससेही जैनदर्शन, धर्मधुरीसर कहा जाता है। इसवास्ते दयाका सर्वाश उपयोग करना आवश्यक है। क्योंकि, जब दया पदार्थ सर्वाशयुक्त पालनेमें आवे, तबही तिससे धर्मोपलब्धि होवे; अन्यथा कदापि नहीं। सर्वमतावलंबीयोंकी दया मान्य है, तथापि उनके समझनेमें फरक होनेसे, वे, श्रेष्ठतापूर्वक दयाका सर्वाश-उपयोग, नहीं करसकते हैं। यह बात, इस ग्रंथके अग्रतनव्याख्यानमें सिद्ध हो जायगी; तथा श्रीसूत्रकृतांगदिशास्त्रोंमें भी वर्णन किया है कि,—कितनेक (अन्यधर्मी) कहते हैं, प्राणी जबतक शरीरमें सुखी होवे, तबतक उसके ऊपर दया करनी, परंतु जब वह, व्याधिग्रस्तस्थितिमें पीडित होवे, तबतो, उस प्राणीका बंध करके, पीडासे मुक्त करना, सोही दया है। कितनेक कहते हैं कि, सूक्ष्म, अथवा स्थूल जे प्राणी, मनुष्योंको दुःख देते हैं, उनको मारदेना, यही दया है। कितनेक यज्ञयागादिमें प्राणियोंका नाश करनेमेंही धर्मधुरंधरता, और दया मानते हैं।

या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे ॥

अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥ इत्यादि वचनात्.

भावार्थः—इस चराचर जगत्में जो वेदोक्त हिंसा नियत की गई है उसको अहिंसाही जानना चाहिये; क्योंकि, वेदसेही धर्मकी उत्पत्ति हुई है, इत्यादि.

और कितनेक अतिसूक्ष्मादि प्राणी, जिसका स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं, उसकी किंचित्-मात्र भी चिन्ता नहीं करते हैं; किंतु केवल स्थूलप्राणियोंके ऊपरही दया करनेमें दया मानते हैं। ऐसे अनेक प्रकारसे मनःकल्पित दयाका उपयोग, प्रायः अन्यमतावलंबी करते हैं; तथापि, वे, स्वदया १, परदया २, द्रव्यदया ३, भावदया ४, निश्चयदया ५, व्यवहारदया ६, स्वरूपदया ७, अनुबंधदया ८, इत्यादि दयाके जो अनेक भेद जैनग्रंथोंमें सविस्तर वर्णन किये हैं, तदनुसार प्रवृत्त होके, दयाका स्वरूप, नयशैलीपूर्वक समझते नहीं हैं; यही उनकी मतिमें बिभ्रम है; और ऐसी भ्रमितमतिवाले दर्शनियोंका मत, कदापि शुद्ध नहीं। किंतु,

जिस दर्शनमें अपने आत्माका आत्मपणा जानके, पूर्णदयाको अंगीकार करी होवे, सो तो, एक, श्रीजैनदर्शनही है, जो सर्व लोकको विदित है, और इससे यह धर्म, जगत्में सर्वोत्कृष्ट कहा जाता है।

इस धर्मके अपेक्षावशसे आचारधर्म, दयाधर्म, क्रियाधर्म, और वस्तुधर्म, ये चार भेद होते हैं। और दान, शील, तप, और भाव, येही चार तिसके कारण हैं। धनके बलसे दान होता है, मनोबलसे शील पलता है, शरीरबलसे तप होता है, और सम्यग्ज्ञानबलसे भावधर्मकी वृद्धि होती है।

भावधर्म, दान शील तपसे अधिक है। क्योंकि, भावधर्मका कारण ज्ञानबल है, जिसकरके वस्तुका स्वरूप जाना जाय सो ज्ञान है। ज्ञानसे जितना आत्मधर्मकी वृद्धि, और संरक्षण होता है, उतना प्रथमके तीन दान, शील, तप, इनसे नहीं होता है। इसका कारण यह है कि, नय, निक्षेप, प्रमाण, चार अनुयोगविचार, सप्तभंगी, षट्द्रव्यादिकका विचार, इत्यादि सर्व, ज्ञानबलकरकेही जीवको परिपूर्ण प्राप्त होता है। श्री इशवैकालिक सूत्रमें भी प्रथम ज्ञान, और पीछे क्रिया कही है। “पढमं नाणं तओ दया” इति वचनात्। ज्ञान विनाकी जो क्रिया करनी है, सो भी, क्लेशरूप प्रायः है; क्रिया ज्ञानकी दासी तुल्य है; ज्ञानी पुरुषकी अल्पक्रिया भी, अत्यंत श्रेष्ठ है। “जं अच्चाणी कम्मं खवेइ बहुहिं वासकोडिहिं । तं नाणी तिहिं गुत्तो खवेइ ऊसासमित्तेण ” इति वचनात्। श्री उत्तराध्ययन सूत्रमें कहा है कि, ज्ञानगुणसंयुक्त जो होवे, उसको मुनि कहना; इससे भी ज्ञानका माहात्म्य कथंचित् अत्युत्कृष्ट मालूम होता है। श्री महानिशीथ सूत्रमें ज्ञानको अप्रतिपाति कहा है। श्री उपदेशमालामें कहा है, ज्ञानरूप नेत्रकरके उद्यमवान, ऐसे मुनिको वंदन करना योग्य है।

श्री देवाचार्य, श्री मल्लवादी प्रभृति आचार्योंने, दिगंबर बौद्धादिकोंका पराजय किया, और यशोवाद प्राप्त किया; तथा श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायजीने, काशीमें सर्व गादीयोंका पराजय करके ‘न्यायविशारद’ की पदवी पाई, सो भी, ज्ञानकाही प्रभाव जानना।

ज्ञानविना सम्यक्त्व नहीं रह सकता है, ज्ञानविना अहिंसा मार्ग नहीं जाना जाता है, सिद्धांतोक्त सकल क्रियाका मूल जो श्रद्धा, उसका भी कारण ज्ञान है। क्योंकि, ज्ञानविना प्रायः श्रद्धा प्राप्त होती नहीं है, ऐसा जो ज्ञान, उसके पांच भेद हैं। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव, और केवल। इन पांचोंमें भी, श्रुतज्ञान सर्वसे अधिकोपयोगि है। श्रुतज्ञान पदार्थ मात्रका प्रकाशक है, स्वपरमतका परिपूर्ण प्रकाश करनेवाला भी श्रुतज्ञानही है, अज्ञानरूप अंधकार पटलको दूर करनेवास्ते सूर्य समान है, और दुस्समकालरूप रात्रिमें तो दीपक समान है। तथा स्वपरस्वरूपका बोध करानेको श्रुतज्ञानही समर्थ है, अन्य चारों ज्ञानसे जाने हुए पदार्थका स्वरूप भी श्रुतज्ञानसेही कहा जाता है, इसवास्ते मत्यादि चारों ज्ञान स्थापने योग्य है, “चत्तारि नाणां ठप्पां ठवाणि-ज्जां” इति श्रीअनुयोगद्वारसूत्रादिवचनात्। इसवास्ते श्रुतज्ञानही, उपकारक है। क्योंकि, अज्ञानसेही उपदेष्ट होता है, श्रुतज्ञानसेही शुद्धात्मिक परमपदकी प्राप्ति होती है, इस

वास्ते श्रुतज्ञान बड़ा निमित्त कारण है; श्रुतज्ञानके सुननेसे जीवको शुद्ध स्वरूप विशुद्ध ज्ञानकी प्राप्ति होती है, और उससे शुद्धात्माका आचरण आसेवन अनुभव उत्पन्न होता है, सोही परमपद प्राप्ति जाननी. श्रुतज्ञानके श्रवण करनेसे जीव, धर्मको विशेषकरके जानता है, विवेकी होता है, दुर्मतिका त्यागी होता है, यावत् मोक्षको प्राप्त होता है. इसवास्ते श्रुतज्ञानका आदर, अवश्य करना चाहिये. श्रुतज्ञानका संयोग होना जीवको अतीव दुर्लभ है.

श्रुतज्ञानके संयोगसे श्री गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी, जंबूस्वामी प्रभृति बहुत जीव, संसार समुद्रको तर गये. और वर्त्तमानकालमें महाविदेहक्षेत्रमें श्री सीमंधरादिक तीर्थकरोंकी बाणी सुनके, बहुत जीव, तर रहे हैं. और आगामिकालमें पद्मनाभादि तीर्थकरोंकी बाणी सुनके, अनेक जीव, तरेंगे. तैसेही इस भरतादि क्षेत्रमें अद्यतनकालमें भी, जो जीव, श्रुतज्ञानको सुनेगा, पढ़ेगा, औरोंको पढ़ावेगा, अंतरंग रुचिसे श्रद्धा प्रतीत करेगा, करावेगा, सो, मूलमबोधि होवेगा, यावत्कर्मकरके मुक्तिको प्राप्त होवेगा. ऐसे श्रुतज्ञानका मूल, द्वादशांगी है. तिस श्रुतज्ञानकी वाचना (१) पृच्छना (२) परावर्त्तना (३) अनुप्रेक्षा (४) और धर्मकथा (५) होती है. सो धर्मकथा, श्री ज्ववाइसूत्रमें चार प्रकारकी कही है आक्षेपिणी (१) विक्षेपिणी (२) निर्वेदिनी (३) और संवेदिनी (४). जिससे एक तत्त्व, मार्गमें प्रवृत्ति होवे, तिस कथाका नाम आक्षेपिणी कथा है. १ । जिसमें मिथ्यात्वकी निवृत्ति होवे, तिसका नाम विक्षेपिणी है. २ । जिससे मोक्षकी अभिलाषा उत्पन्न होवे, तिसका नाम निर्वेदिनी है. ३ । जिससे वैराग्यभावकी उत्पत्ति होवे, तिसका नाम संवेदिनी है. ४ । ऐसी श्रुतज्ञानरूप कथा, श्री अरिहंत, देवाधिदेव, परमेश्वर, तीर्थकर, सर्वज्ञ, जीवनमोक्ष, समवसरणमें बैठके “ उपन्नेइवा विगमेइवा धुवेइवा ” इस त्रिपदी उच्चारणपूर्वक, द्वादश वर्षदाके मध्यमें करते हैं. और तिससे (त्रिपदीसे) श्रीगणधर, द्वादशांगीकी रचना करते हैं, तिनको सूत्र कहते हैं. तथा तीर्थकरके शासनमें हुए प्रत्येक बुद्ध, चतुर्दशपूर्वधर, दशपूर्वधर प्रभृति महान् पुरुष जिन जिन निबंधोंकी रचना करते हैं, तिनका भी सूत्र संज्ञा होनेसे द्वादशांगीमेंही समावेष्ट होता है. क्योंकि, वे सूत्र भी, द्वादशांगीका आश्रय लेकेही, स्थविर, रचते हैं.

बहुक्तं श्रीनंदीवृत्तौ ॥

यत्पुनः शेषैः श्रुतस्थविरैस्तदेकदेशमुपजीव्य ॥

विरचितं तदनंगप्रविष्टमित्यादि ॥

परंतु गणधरकृत सूत्रको, ‘नियतसूत्र’ कहते हैं, और स्थविरकृत सूत्रको, ‘अनियत’ कहते हैं. ।

उक्तं च ॥ गणहरकयमंगकयं जंकय थेरेहिं बाहिरं तं तु ॥

नियतं चंगपविष्टं अणिययं सुयबाहिरं भणियं ॥ १ ॥

गणधरकृतको अंगप्रविष्ट कहते हैं, और स्थविरकृतको अनंगप्रविष्ट, अर्थात् अंग बाहिर कहते हैं; तथा जो, अंग प्रविष्ट है, सो नियत है. क्योंकि, सर्व क्षेत्रोंमें सर्व काल अर्थ वा क्रमको अधिकारकरके ऐसेही व्यवस्थित होनेसे. और शेष जो, अंगबाहिर

श्रुत है, सो अनियत है । तथा उपनेइवा इत्यादि मातृकापदत्रयप्रभव, गणधरकृत, आचार-
रादि, जो श्रुतज्ञान है, तिसको ध्रुवश्रुत कहते हैं; और जो, स्थविरकृत, मातृकापदत्रय-
व्यतिरिक्त, प्रकरणनिबद्ध उत्तराध्ययनादि, अंगवाह्य है, उनको अध्रुवश्रुत कहते हैं ।

तदुक्तं श्रीस्थानांगवृत्तौ ॥

गणहरथेराइकयं आपसा सुत्तपगरणओ वा ।

ध्रुवचलविसेसणाओ अंगाणंगेसु गाणत्तंति ॥

इस श्रुतज्ञानके उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा, और अनुयोग, ये चार भेद होते हैं। सामान्य प्रकारसे कथन करना, सो उद्देश; यथा अमुक शास्त्र, वा अध्ययन, तू पढ़, विशेष कथन करना, सो, समुद्देश; यथा इस शास्त्र, वा अध्ययनको अच्छी तरेसे याद रख, आज्ञा देनी, सो अनुज्ञा; यथा अन्यको पढ़ाव, और सूत्रार्थ कथनरूप व्याख्यान सो अनुयोग। इनका विस्तार श्री अनुयोगद्वार, व्यवहारभाष्य कल्पभाष्यादि सूत्रोंमें है। इत्यादि कारणोंसे व्याख्यान करनेमें श्रुतज्ञानही उपयोगि है, अन्य नहीं; अन्य ज्ञानोंको मूक होनेसे। इसवास्ते इस समयमें श्रुतज्ञानहीकी रक्षा, और वृद्धि करनी चाहिये। क्योंकि, इस समयमें श्रुतज्ञानही, हम तुमको आधारभूत है। यदि श्रुतज्ञान शास्त्र न होवे तो, देवगुरुधर्मका बोध होना इस कालमें कदापि न होवे। इसवास्ते श्रुतज्ञानकी वृद्धि, तथा रक्षा करनी है, सो धर्मकी वृद्धि और रक्षा करनी है। क्योंकि, इससे अधिक, और कोई भी धर्मवृद्धि करनेका अत्युत्तम साधन, नहीं है। इसवास्ते श्रुतज्ञानकी वृद्धि और रक्षा करनेके उपाय, तथा तत्संबंधी उद्योगमें, सुज्ञजनोंको कटिबद्ध होके, तन मन और धनसे, कदापि, पीछे नहीं हटना चाहिये। ज्ञानकी जो वृद्धि है, सो ज्ञानीके ऊपर आधार रखती है; और ज्ञानीकी वृद्धि, ज्ञानकी अपेक्षा रखती है। ज्ञान और ज्ञानीका परस्पर कार्य-कारणभाव संबंध है। हरएक गाममें, शहरमें, जिलेमें, अथवा देशमें, एक ज्ञानी होवे तो, उसके उपदेशसे अन्य कितनेही जनोंको ज्ञान होता है; और जिनको ज्ञान होता है, वे सर्व, ज्ञानी कहाते हैं। जब ज्ञानीसे ज्ञानका प्रचार होता है, तब ज्ञानी, ज्ञानका कारण, और ज्ञान, ज्ञानीका कार्य होता है। और जब ज्ञानके प्रचारसे ज्ञानीकी वृद्धि होती है, तब ज्ञान, ज्ञानीका कारण, और ज्ञानी, ज्ञानका कार्य होता है। यद्यपि ज्ञान और ज्ञानीका, गुण-गुणीभाव संबंध, असंभवी है; क्योंकि, ज्ञान और ज्ञानी, अभेद है; तिससे कार्यकारणता संभवे नहीं है। तथापि, कर्म सहित जीवको ज्ञानरूप गुण उत्पत्तिवाला है, तिससे कार्यता संभवे है; और ज्ञानीको कारणता संभवती है। और ज्ञानसे ज्ञानीपणा होता है, तिससे ज्ञानी कार्य है, और ज्ञान कारण है।

हरएक वस्तुकी सिद्धिमें उसके साधनोंकी अवश्यमेव अपेक्षा होती है; जब ज्ञानरूप वस्तु सिद्ध करनी होवे, तब तिसके साधन व्याकरण, कोष, काव्य, छंदोल्ंकार, ज्योतिष, न्याय, धर्म, और अन्य दर्शन विषयक नाना प्रकारके शास्त्र, तथा उन उन शास्त्रोंके अध्ययनका विधि, तथा श्रवणमननादिककी आवश्यकता है। प्राचीन कालमें विद्वानोंकी (पूर्वाचार्योंकी) स्मरणशक्ति अत्युत्कृष्ट होनेसे, वे, हरएक प्रकारकी प्रक्रिया, वृत्तकावद्ध, कंठाग्र रखते थे।

अर्थात् बड़े बड़े सूत्र प्रमुख द्वादशांगीपर्यंत कंठाग्र रखते थे, तिस समयमें भी यथापि केव
नागरी आदि लिपियें विद्यमान थी, तो भी ग्रंथोंको लिखके रखनेकी बहुत जरूरत नहीं
पड़ती थी. क्योंकि, वो कालमानही तैसा था. पीछे, कालके प्रभावसे जैसे जैसे मनुष्योंकी
स्मरणशक्ति घटती गई, तैसें तैसें ज्ञानकी न्यूनता होने लगी जिससे किसी समयमें कितनेक
विद्वानोंने इकट्ठे होके, ग्रंथ लिखने लिखवाने प्रारंभ किये.

इस रीतिके प्रचलित होनेके बाद उसउस समयके श्रेष्ठ पुरुषोंने, लिखारियोंके पाससे
अनेक ग्रंथ लिखवायके, उनके बड़ेबड़े ज्ञानभंडार (पुस्तकालय) कराये; जो, अद्यापि
प्रायः पाटनादि शहरोंमें देखनेमें आते हैं. यद्यपि पूर्वज पुरुषोंने, ऐसे अनेक भंडार करके भूत-
ज्ञानके मुख्य साधन पुस्तकोंकी रक्षा करी है, तथापि, कितनेही अपूर्व अपूर्वता पुस्तक, पढ़ने पढ़ाने-
वाले, और समझने समझानेवालेके अभावसे, नष्ट होगये, और कितनेक पुस्तक तो, जिन-
की प्रमादसे नष्ट होगये, अब जो विद्यमान है, उनमें भी न्यूनता होनेका संभव हो रहा है;
क्योंकि, न तो, कोई जैनीयोंमें पठन पाठनका ' कालेज ' (बृहज्जैनशाला) प्रमुख साधन
है, और न मातापिता ध्यान देकर पढ़ाते हैं. केवल सांसारिक विद्याके ऊपरही जोर देते हैं,
परंतु यह उनकी बड़ी भारी भूल है. यदि सांसारिक विद्याके साथही, धार्मिक विद्या भी पढ़ाई
जावे तो, थोड़ेही प्रयाससे ज्ञानवृद्धि होवे, और धर्मकी भी वृद्धि होवे, तथा अपने सन्तानोंका
परलोक भी सुधर जावे. परंतु, मोढ़क खाने छोड़के ऐसा काम कौन करे? अफसोस !!!
जैनीयोंका उदय, कैसे होवेगा ?

हां ! आजकाल कई लोग नवीन पुस्तक लिखाके भंडार कराते हैं, परंतु वो भी, मसिका-
स्थाने मसिकावत् जैसा लिखारियोंने लिख दिया, वैसाही लेके स्थापन करदिया; बुद्ध
कौन करे ? हाय ! जैनीयोंमें प्रमादने कैसा घर करदिया ! जो, ज्ञान पढ़नेकेतरफ ख्यालही
नहीं होने देता है ! ! !

ऐसे ज्ञानके अभ्यासके न होनेसे लोगोंमें संस्कृत प्राकृतका बोध घट गया; तो अब
इस समयमें संस्कृत प्राकृतके बोधरहित लोगोंको बोध करानेकेवास्ते देशीयभाषामें ग्रंथ
रचना करके, अपनी शक्तिके अनुसार प्रत्येक ज्ञाता पुरुषको अपना ज्ञान प्रसिद्ध करना
उचित है.

इसीवास्ते पूज्यपाद श्री श्री श्री १००८ श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वर (आत्मारामजी)
महाराजजीने भव्यजीवोंके उपकारकेवास्ते, अतिश्रय परिश्रम करके, लोक (देश) भाषामें
ग्रंथोंकी रचना करनी प्रारंभ करी. जिनमें जैनतत्त्वाददर्श, अज्ञाननिमिरभास्कर,
जैनप्रश्नोत्तरावलि, सम्यक्त्वशाल्योद्धारादि कितनेही ग्रंथ, छपकरके प्रसिद्ध होगये
हैं; कितनेक प्रसिद्ध करनेकेवास्ते तैयार हैं, परंतु, प्रथम इस, ' तत्त्वनिर्णयप्रासाद '
नामक ग्रंथको प्रसिद्धिमें रखते हैं.

इस ग्रंथका नाम यथार्थही गुणनिष्पन्न है. क्योंकि, जो कोई निष्पन्नवादी, इस ग्रंथरूप
प्रासाद(मंदिर)में प्रवेश करेगा, अवश्यमेव वस्तुस्वरूपनिर्णय प्राप्त करेगा. इस ग्रंथके बनानेके

ग्रंथकारने, कितेना परिश्रम उठाया है, सो वांचनेवाले सुझ जन आपही विचार लेवेंगे; इस-वास्ते इस ग्रंथकी महिमा लिखनी योग्य नहीं है। क्योंकि, इस ग्रंथमें ज्ञानगुण है तो, वाचक-वर्ग आपही स्तुति-महिमा करेंगे। क्या फूल किसीको कहता है कि, मेरे बीच सुगंध है ?

जैसे राज्यमाहिल आदिके नाना प्रकारकी जड़तसे जड़े हुए स्तंभ होते हैं, तैसे इस ग्रंथरूप प्रासादके अनेक प्रकारके ज्ञानगुणादि रत्नोंसे जड़े हुए छतीस (३६) स्तंभ हैं। जिनमें—

१. प्रथम स्तंभमें पुस्तकसमालोचना, प्राकृतभाषानिर्णय, और वेदबीजक प्रमुखका वर्णन है।

२. दूसरे स्तंभमें श्रीमद्धेमचंद्राचार्यकृत महादेवस्तोत्रद्वारा ब्रह्मा विष्णु महादेवके लक्षण, और उनका स्वरूप, तथा लौकिक ब्रह्मादिदेवोंमें यथार्थ देवपणा सिद्ध नहीं होता है, तिसका पुराणादि लौकिक शास्त्रद्वारा स्वरूप वर्णन किया है।

३. तीसरे स्तंभमें यथार्थ ब्रह्मा विष्णु महादेवादिरूप देवमें जो जो अयोग्य बातें हैं, इनका व्यवच्छेदरूप वर्णन श्री हेमचंद्रसूरिकृत द्वात्रिंशिकाद्वारा किया है।

४, ५. चौथे और पांचवें स्तंभमें श्रीमद्धरिभद्रसूरिविरचित लोकतत्त्वनिर्णयका भाषासहित अपूर्व स्वरूप लिखा है, जिसमें पक्षपात रहित होकर देवादिकी परीक्षा करनेका उपाय, और अनेक प्रकारकी सृष्टि जे जगद्वासों जीवोंने कल्पन करी है, उसका वर्णन है।

६. छठे स्तंभमें मनुस्मृतिका कथन किया हुआ सृष्टिक्रम, और उसकी समीक्षा है।

७, ८. सातमे आठमे स्तंभमें ऋगादि वेदोंमें जैसे सृष्टिका वर्णन है, तैसे प्रतिपादन करके तिसकी समीक्षा करी है।

९. नवमे स्तंभमें वेदके कथनकी परस्पर विरुद्धताका दिग्दर्शन है।

१०. दशमे स्तंभमें वेदोक्त वर्णनसेही वेद ईश्वरोक्त नहीं है, ऐसा सिद्ध किया है।

११. इग्यारहमें स्तंभमें “ॐ भूर्भुवः स्वस्तत्” इत्यादि गायत्री मंत्रके अनेक प्रकारके अर्थ करके, श्रीजैनाचार्योंकी बुद्धिका वैभव दिखाया है।

१२. बारमे स्तंभमें सायणाचार्य शंकराचार्यादिकोंके बनाये गायत्री मंत्रके अर्थोंका समीक्षापूर्वक वर्णन है, तथा वेदका निंदक नास्तिक नहीं, किंतु वेदका स्थापक नास्तिक है, ऐसा महाभारतादिकोंद्वारा सिद्ध किया है।

१३ से ३१. तेरमे स्तंभसे लेके इकतीसमे स्तंभपर्यंत गृहस्थके षोडश (१६) संस्कारोंका वर्णन, श्रीवर्द्धमानसूरिकृत आचारदिनकर नामा शास्त्रसे करा है।

३२. बत्तीसमे स्तंभमें जैनमतकी प्राचीनताका, वेदके पाठोंमें गड़बड़ होगई है तिसका निष्पक्षपाती होनेका, और व्याकरणादिकी सिद्धिका, तथा पाणिनीकी उत्पत्ति प्रभृतिका वर्णन है।

३३. तेतीसमे स्तंभमें जैनमतकी बौद्धमतसे भिन्नताका, पाश्चात्यविद्वानोंप्रति हितबिज्ञाका, और दिग्भंवरप्रति हितबिज्ञाका वर्णन है।

३४. चौतीसमे स्तंभमें जैनमतकी कितनीक बातेंपर कितनेही लोक अनेक प्रकारके वितर्क ऊठाते हैं, उनके उत्तर दिये हैं.

३५. पैंतीसमे स्तंभमें शंकरदिग्विजयानुसार, शंकरस्वामीका जीवनचरित्र है.

३६. छत्तीसमें स्तंभमें वेदव्यास, और शंकरस्वामीने, जो जैनमतकी सप्तभंगीका खंडन किया है, उसका वेदव्यास और शंकरस्वामीकी जैनमतानभिज्ञताका दर्शक, उत्तर दिया है. तथा जैनमतवाले सप्तभंगी जैसे मानते हैं, तैसे उसका स्वरूप, और सप्तनयादिकोंके स्वरूपका संक्षेपसे वर्णन करा है.

ऐसे विचित्र वर्णनके साथ यह ग्रंथ भरहुआ है; इसवास्ते निष्पक्षपाती सज्जन पुरुषोंको, अथसें लेके इतिपर्यंत बराबर एकाग्रध्यान रखके इस ग्रंथको वाचना, और सत्या-सत्यका निर्णय करना उचित है. क्योंकि, पक्षपात करना यह बुद्धिका फल नहीं है, परंतु तत्त्वका विचार करना, यह बुद्धिका फल है. "बुद्धेःफलं तत्त्वविचारणंचेतिवचनात्."

और तत्त्वका विचार करके भी पक्षपातको छोड़कर जो यथार्थ तत्त्वका भान होवे, उसको अंगीकार करना चाहिये; किंतु पक्षपात करके अतत्त्वकाही आग्रह नहीं करना चाहिये.

यतः ॥ आगमेन च युक्त्या च योर्थः समभिगम्यते ।

परीक्ष्य हेमवद् ग्राह्यः पक्षपाताग्रहेण किम् ॥

इत्यलम्बहु पल्लवितेन विद्वद्वर्येषु ॥

भावार्थः—आगम (शास्त्र) और युक्तिकेद्वारा जो अर्थ प्राप्त होवे उसको सोनेके समान परीक्षा करके ग्रहण करना चाहिये; पक्षपातके आग्रह (इठ) से क्या है. ॥

अब सर्व सज्जन पुरुषोंको, मैं, विज्ञप्ति करताहूँ कि, इस ग्रंथको समाप्त करके, गुरुजी महाराज श्री श्री श्री १००८ श्रीमद्विजयानंदमूरीश्वरजी [आत्मारामजी] महाराज-जीने नकल करनेवास्ते मुजको दीया. विहारादि कितनेहो कार्यके विक्षेपमें, नकल पूर्ण होनेमें विलंब हुआ; तथापि, जोर देनेसें सनखतरा ग्राममें नकल पूर्ण हो गई. तदनंतर सनखतरेसें प्रतिष्ठादिसंबंधि कार्यके व्यतीत होए, श्री गुरुजीमहाराजजी इस क्षेत्रमें [गुजरा-वालेमें] सं. १९५३ प्रथम ज्येष्ठ सुदि द्वितीयाको पधारे. बाद थोडेही समयमें, अर्थात् संवत् १९५३ प्रथम ज्येष्ठ सुदि अष्टमीको स्वर्गवास होगए !!! इसवास्ते सम्पूर्ण इस ग्रंथको, वे, आप शुद्ध नहीं कर सके हैं !! किंतु, मैने, स्वबुद्धनुसार देखके, शुद्ध करा है. इसवास्ते, इस ग्रंथमें जो कोई अशुद्धतादि दोष रह गया होवे, सो, सर्व सज्जन पुरुष सुधारके बांचे, और क्षमा करें " ॥ विस्मृति स्वभावोहि छद्मस्थानामतो मिथ्यादुष्कृतं मोस्तिवति ॥ "

श्री वीर संवत् २४२३ ॥ }
विक्रम संवत् १९५४ ॥ }

मुनि बल्लभविजय.



मुनि श्री वल्लभ विजयजी. जन्म सं० १९२७.

जन्म,—वडौदा; ज्ञाति—श्रीमाली; पिता—दीपचंद; माता—इच्छाबाई.

दीक्षा, सं० १९४४ में राधणपुर.

श्रीमन्महोपाध्याय श्री लक्ष्मीविजयजीके शिष्य — श्री हर्षविजयजीके शिष्य.

पंजाबमें इनके उपदेशसे पुस्तक भंडार, आत्मानंद जैन पत्रिका, आत्मानंद जैन पाठशाला,
पाई फंड आदिकी स्थापना हुई.

पंजाबदेश तीर्थस्तवनावली आदिके कर्त्ता.

इस ग्रंथके संशोधन कर्त्ता.

। श्रीः ।

॥ ॐ नमः श्रीपरमात्मने ॥

श्रीश्रीश्री १००८ श्रीतपगच्छाचार्यश्रीमद्विजयानन्द- सूरीश्वरजी प्रसिद्धनाम आत्मारामजी महा- राजजी जैनीसाधुका जन्मचरित्र ॥

अगले पृष्ठके ऊपर जो फोटो (छवि-चित्र) विराजमान है: वह किनकी प्रतिमूर्ति है ? वह प्रशस्त ललाट, वह अलौकिक तेजभरे शांतरूप दीर्घ नयन, किनके हैं ? शरीरमें देवभावका प्रकाश, मुखमंडलमें सर्व जीवोंको अभय करनेवाली अपूर्व शोभा—क्या यह सब स्वर्गीय संपत्, रोगशोकसे भरे हुए मनुष्योंमें पाई जासकती है ? पाठको ! यह छवि, ऐसे महात्माकी है, जो जैनीयोंके इस कठोर कुदिनमें डूबते हुये हिंदुधर्ममें अग्रगामी, जैनधर्मको डूबने नहीं देते थे; जो मनुष्य शरीर धरकरके भी, ऐसे ऊंचे आसनपर आरूढ थे कि, जिसपर साधारण मनुष्योंके चढ़ने-की सामर्थ नहीं है. जो संपूर्ण भारत यावत् विलायत तकमें इस दुषम कालमें सत्य यथार्थ धर्मके एकही उपदेष्टा थे. जिनकी कृपाके बिना षड्दर्शनकी व्याख्या इस समयमें बहुत कठिन थी, जिनके दर्शनसे राजा प्रजा धनी निर्धन ज्ञानी अज्ञानी सब अपनेको कृतार्थ मानते थे; यह प्रति-मूर्ति, उनही सर्व पंडितोंके शिरोमणि, सर्वशास्त्रोंके वेत्ता, परम मुनियोंके मुखी, परम ऋषियोंके अग्रेश्वरी, भारतवर्षके अलंकार, जैनधर्माधार, न्यायाभोनिधिश्रीश्रीश्री १००८ श्रीमद्विजयानन्द-सूरीश्वरजी (आत्मारामजी) महाराजजीकी है. धर्मात्मन् ! जगत्में कौन ऐसा होगा, जिसका हृदय विद्वानमंडलके आदर्शस्थल, धार्मिकोंके प्रधान, दयादि गुणोंके पारावार, जैनीयोंके शिरो-भूषण, यथार्थ सत्यवक्ता महामुनि श्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वर (आत्मारामजी) महाराजजीका वि-शुद्ध चरित पढ़ने सुननेको उत्साहित न होगा ?

मूलक पंजाबके हाबा “सिंधसागर” में दरया “जेहलम” के किनारेपर “पींडदादनखान” नामक एक शहर बसता है, तिसके पूर्वओर अनुमानसे दो मिलके फासलेपर एक “कलश” नामक गाम है. तहां पूर्व कालमें कलशजातिके सरदारोंका दिवान “बीवाराम” नामक काश्यपगोत्रीय “चउधरा कपूर ब्रह्म क्षत्रिय” था. तिसका पुत्र “रोचिराम” नामसे हुआ. तिसका बड़ापुत्र “दीवानचंद” था. तिसकी स्त्री “महादेवी” रूपमें देवीके समान थी. तिसकी कूखसे “लखुमल्ल”-“गणेशचंद”-दोपुत्र, और “हुक-मदेवी” नामक एक पुत्री पैदा हुए. दीवानचंदका छोटाभाई “श्यामलाल” था. जिसके “देवीदत्ता” करके पुत्र और “राधा” नामकी पुत्री हुए. और दीवानचंदके दूसरे भाइयोंके बेटे “महेशदास” “प्रभदयाल” “मंगलसेन” हुये. जिनकी सन्तान आत्मारामजीके पितृव्य भाई (चाचेके पुत्र) “रामनारायण,” “हरिनारायण,” “गुरुनारायण” आदि अब विद्यमान हैं. तात्पर्य आत्मारामजीके

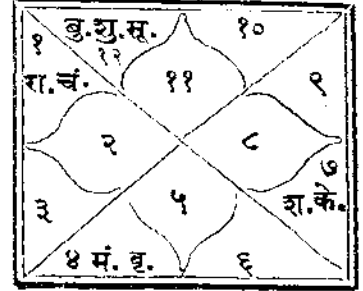
परिवारके आठ घर कलशगाममें पूर्वोक्त परंपराके अब विद्यमान हैं और “पत्याल” गाम जो खुशाबके पास बसता है, वहां भी “आत्मारामजी” के नजदीकके साकसंबंधी कपूरक्षत्रियोंके चालीश घर बसते हैं। (वंशवृक्ष देखो) “दीवानचंद” और उसकी भार्या “महादेवी” अपने दोनों पुत्रों और लड़कीको छोटी उमरमें छोड़कर गुजर गयेथे। इस वास्ते दोनों पुत्र (लखमुल गणेशचंद) और पुत्री (हुकमदेवी) तीनों जने अपने पिताके भाई (चाचे) श्यामलालके घर रहतेथे परंतु “श्यामलालकी” भार्याकी तबियत सख्त होनेसे, “गणेशचंद” दुःखी होकर कितनेक दिन पीछे बिना कहे, वहांसे चलनिकला; और रामनगरके पास कसबा फालीयेमें आकर थानेदार (पोलीस ओफिसर) हुआ। और वहांही “कवरसेन” नामके पूरी क्षत्रिय कुंजाहीकी बेटी “रूपदेवी” के साथ विवाह होगया। “गणेशचंद” शूरवीर होनेसे बहोत सीपाइयोंके साथ भाइबट्ट आदि नगरोंकी लडाइयोंमें शामिल रहतेथे। कितनेक काल पीछे महाराज “रणजीतसिंह” के राज्यमें हरिकापत्तनपर एक हजार घोडेस्वारोंको जानेका हुक्म हुआ। उनके साथ गणेशचंदकी भी बदली हुई। वहां (हरिकापत्तनपर) “गणेशचंदजी” बहुत मुदत तक रहे। इसीवास्ते वहांके “नंदलाल” ब्राह्मण, और कितनेक ओसवालोंके साथ बहुत प्रीति होगईथी। जिससे जब रिसालेकी बदली हुई, तब गणेशचंदजी नोकरी छोड़कर वहांही रहगये।

“नंदलाल” ब्राह्मण बड़ा शूरवीर और डाकू (धाडवी) था। तिसकी संगतसे “गणेशचंदजी” भी डाके डालने लगगये। उनके साथ, और भी आसपासके जौनेकी, लेहरा, गंडीवांड, रूडीवाला, सरहाली इत्यादि गामोंके डाकू मिलजानेसे, सब मिलके डाके डालने लगे। उस समयमें सरहाली गाममें “मूला-मिश्र” उसका पितामह (बाबा) रहता था। उसके तीन बेटे थे। उनमेंसे “वशाखीराम” तो पंडित था, और अमृतसरमें रहता था, और “देवीदत्ता” मूलामिश्रका बाप, सरहालीमेंही रहता था। और तीसरा “आज्ञाराम” जौनेकी गाममें दुकान करता था, और गणेशचंदजीका मित्र, और मेहरबान था, और डाके डालनेमें भी शामिल था। इसी तरह गाम रूडीवालामें “विशनसिंध” का बाप “कहानसिंध” गणेशचंदजीका मित्र रहता था। गणेशचंदजी प्रायः करके अपने मित्र कहानसिंधकी मुलाकातके वास्ते रूडीवालामें आते जाते थे। वहां (रूडीवालामें) लेहरा गामकी एक लड़की “कर्मा” व्याही थी, और विशनसिंधके घरकेपास रहती थी। इसवास्ते कर्मा भी गणेशचंदजीको अच्छी तराह जानती थी, और इसी सबबसे गणेशचंदजीका “लेहरा” गाममें रहना हुआ। क्योंकि “राजकुंवर” नामका क्षत्रिय, टुंकावाली जिल्ला गुजरांवालेका, जीरामें महाराज रणजीतसिंहजीके तरफसे ठेकेदार हुआ करता था। अपने दतनकी मोहबतसे गणेशचंदजी उससे मिलनेके लिये जीरेकेपास लेहरा गाममें रहने लगे। कर्माकी जान पिछान होनेसे लेहरामें रहना उनको मुश्किल नहीं हुआ, अर्थात् थोडेही कालमें बहुत लोगोंसे मोहबत होगई। गणेशचंदजी लेहरा गामसे प्रायः निरंतर राजकुंवरसे मिलनेकेलिये जीरेगाममें आते थे, इस सबबसे जीरेका रहनेवाला “जोधामल्ल” ओसवाल, जोकि खानदानी, लायक, और बुजूर्ग था, उसकेसाथ गणेशचंदजीकी मुलाकात हुई। जोधामल्लका राजकुंवर ठेकेदारके साथ बहुत स्नेह था। राजकुंवरका बेटा “जमीतराय” जीरेमें रहता था, जिसके बेटे “केदारनाथ” और “बद्रीनाथ” बड़े नामी आदमी अब शहर गुज-

रांवालेमें विद्यमान हैं इस सबबसे कितनेही वर्षोंतक जमीतराय, और जोधामल्लकी संतानका* आपसमें मोहबतका बरताव रहा।

भवितव्यताके बशसे “राजकुंवर” और “जमीतराय” तो अपने वतन चलेगये और “गणेशचंदजी” लेहरा गाममेंही रहने लगे, और वहांही विक्रम संवत् १८९३ चैत्रशुदि प्रतिपदा गुरुवारके रोज “श्रीआत्मारामजीका” “रूपादेवी” माताकी कूखसे जन्म हुआ।

श्रीआत्मारामजीकी
जन्म कुंडली नष्टोद्दिष्टसे ॥



इस समय (लेहरागाम) “अतरसिंघ” नामा “सोढी” (शिखलोकोंके गुरु) के तावेमें था। इस सबबसे सोढी अतरसिंघ, और “गणेशचंदजीकी” आपसमें बहोत प्रीति थी। एक दिन सोढी अतरसिंघने श्रीआत्मारामजीको माता रूपादेवीकी गोदमें देखा, और बुद्धिके प्रभावसे ऐसा निश्चय किया कि, यह बालक बड़ा तेजप्रतापवाला होवेगा। पिछे अतरसिंघ सोढीने कहा कि “इस बालकके ऐसे सुंदर लक्षण हैं कि, जिससे यह लडका बड़ा भारी राजा होवेगा ! अथवा ऐसा साधु होवेगा कि, जिसके चरणोंके राजा महाराजा भी सेवक होवेंगे ! और यह लडका किसी तरह भी तुमारे पास नहीं रहेगा। इस लिये यह लडका तुम मुझे दे दो; और मैं इसको अपनी कुल मिलकतका मालिक करूंगा।” परंतु माता पिताने यह बातको स्वीकार नहीं किया। तथापि सोढी अतरसिंघके दिलसे यह बात दूर नही हुई, बल्कि निरंतर इसही बातका ख्याल रखता रहा, और श्रीआत्मारामजीसे बहुत प्यार करता रहा। ठेकेदार राजकुंवरके वतन पहुंचनेसे गणेशचंदजीके भाई लकरखुमल्ल और चाचेके पुत्र देवीदत्तामल्लको गणेशचंदजीका पता बहोत कालके पीछे मालूम होनेसे दिल खुश होगया। और उसी बखत अपने भाई “गणेशचंदजी” को अपने वतन ले जानेकेलिये आये। अपने भाई गणेशचंदजीको देखतेही बहुत खुश होगये।

दोहा—पाया अतिहि वियोगसे जसतन दुःख भरपूर ॥

फिर मिलनेसे वोही तन, पावे सुख भरपूर ॥ १ ॥

गणेशचंदजीकी गोदमें छोटी उमरवाले बड़े तेजवाले अपने भाईके पुत्र श्रीआत्मारामजीको देखके बहुतही प्रसन्न हुये। और दोनों भाइयोंने अपने भाई गणेशचंदजीको अपने वतन लेजानेके वास्ते बहुत मेहनत की; परंतु इस देशकी मोहबत, और दाना पानीने गणेशचंदजीको किसी तरह भी जाने न दिया। इस वास्ते लाचार होके कितनेके दिन वहां रहके अपने वतनको चलेगये। और चलनेके समय अपने भाईके पुत्र श्रीआत्मारामजीका नाम, “दत्ता” रखगये। और कहते गये कि, “इस बालकका अच्छी तरह ख्याल रखना।” “रत्नं यत्नेन रक्षयेत्” भावार्थ—रत्नकी यत्न

* विक्रम संवत् १९३७ में जब श्रीआत्मारामजी महाराजजीका चौमासा शहर गुजरांवालेमें था, तब जोधामल्लकी संतानके राधामल्ल और हरदयालमल्ल श्रीमहाराजजीके दर्शनकेवास्ते गये थे, तब पिछली मुलकतके सबबसे जमीतराय, उनसे बहोत मोहबतसे मिला था। बल्कि देशाचारके अनुसार राधामल्लके बेटे ईश्वरदास और बशाखीमल्लके पुत्र हरदयालमल्ल को कपड़े और मिठाई वगैरह दी थी।

पूर्वक रक्षा करना चाहिये. तब मातापिताने भी “दिता” नाम स्वीकार कर लिया. और उस दिनसे “श्रीआत्मारामजी” “दिता” के नामसे प्रसिद्ध हुवे.

कितनेक कालपीछे लेहरा गाममें व्यवहाराभावसे गणेशचंदजी अपनी भार्या रूपदेवीको और दिताको लेकर आनंदपुर माखोवाल कीर्त्तिपुरमें, जहां सोढी अतरसिंघ रहता था जा रहे; और सोढी अतरसिंघने बड़ी खुशीसे गणेशचंदजीको अपने सीपाइयोंमें नौकर रखे. और पशुओंके घास चारेकी जमीन (चरागा-बीड) के रक्षक ठहराये. और अतरसिंघ सोढी निरंतर दिता (श्री-आत्मारामजी) को लेनेके ख्यालमेंही रहा. इसी सबबसे कितनेक दिनोंपिछे सोढी अतरसिंघने, गणेशचंदजीको अपनी जमीनमें ब्राह्मणोंकी गौयां चरने देनेके तोहमतसे तकसीरवार ठहराकर, पैरोंमें बेडी पहनाकर कहा कि, “जो तू अपने पुत्र आत्माराम (दिता) को मुझे देवेगा तो, मैं तुजे छोड़ूंगा; अन्यथा किसी प्रकारसे भी तेरा छूटकारा न होवेगा.” परंतु गणेशचंदजी जोरावर होनेके सबबसे अवसर देखके बेडीको तोड़के अपनी भार्या रूपदेवी और पुत्र दिता (आत्माराम)-को लेके रातके बख्त भागगये, और रुडीवाला गाममें आ रहे. यहां, गणेशचंदजीकी भार्या रूपा-देवीसे दूसरा पुत्र पैदाहुआ. अनुमान चार वर्ष वहां रहके कितनेही आदमियोंके और सावण ब्राह्मण तथा जोधामल्ल बगैरहके कहनेसे फिर लेहरा गाममें चलेआये. और लेहरा गाममें खेतीका काम करके अपना गुजारा करते रहे, और जोधामल्लकी मोहबतसे अमन चैन उड़ाते रहे.

अब इस बख्त पिछला जमाना (शिखेसाई जमाना) फिरगया था, और सरकार महाराणी विक्टोरीयाका अमल होगया था, जिससे हस्तरहका आराम हुआ; और देशकी ठीक ठीक सारवार होती रही. न्यायके सबबसे मानो बकरी और सिंह एक घाटपर पानी पीने लगे, अर्थात् छोटे बड़े सबको अदल इनसाफ मिलता रहा, मुसाफर निडर होके रस्तेपर चलने लगे थे; कोई नहीं पूछसकता था कि तेरे मुखमें कितने दांत हैं. सोना उछालता चलाजावे, न चोरका डर, न डाकूका डर रहा था. क्योंकि, सबके सिरपर अंग्रेजी राज्य प्रतापका ऐसाही डर घूम रहा था. परंतु:—

दोहा—होणहार हिरदे वसे, विसर जाय सुद्ध बुद्ध ॥

जो होणी सो होत है, वैसी उपजे बुद्ध ॥ १ ॥

इस कहावत मुजब ऐसे नाजुक बख्तमें गणेशचंदजी आठ आदमीयोंके साथ मिलकर फिर डाका डालना शुरु किया. परन्तु आखर उसको इस पापका फल मिला सो यह कि, पकड़े गये. कहावत भी है कि “सौ दिन चौरके और, एक दिन साधका.” इस अपराधमें अदालतसे दश वर्षकी कैदकी सजा पाई और कैदियोंको आग्रेके किल्लेमें भेजनेका हुकम हुआ. चलते बख्त गणेशचंदजीने अपने पुत्र दिता (आत्माराम) को जोधामल्ल ओसवालको सोपकर कहा कि, “इसकी सार संभाल रखना क्योंकि यह तुझाराही पुत्र है, इसवास्ते इसको सांसारिक विद्या पढ़ाना, जिससे यह व्यापारादि करके अपना गुजारा करता रहे, बहुत क्या कहूं मैं इसको तुमकोही सौंपताहूं, इसका नफा मुकसान तुमारेही अखतीयार है.” जोधामल्लने रुदन करके कहा कि,

छुदाई तेरी किसको मंजूर है; जमीन सख्त और आसमान दूर है.

परंतु कर्मोंके आगे किसीका भी जोर नहीं चलता है:—

हरो वरो ब्रह्म विवाह कर्ता, वैश्वानरो आहुतिदायकश्च ॥

तथापि वंध्या गिरिराजपुत्री, न कर्मणः कोपि बली समर्थः ॥ १ ॥

भावार्थ इसका यह है—महादेव जिसका पति, साक्षात् ब्रह्माजीने जिसका विवाह किया, जिसके विवाहमें साक्षात् अग्नि देवताने आहुति दी, ऐसी पार्वती भी बांझ रही. इसवास्ते कर्मोंसे कोई भी अधिक बलवान् समर्थ नहीं है—इसवास्ते इस बातमें हमारा कोई भी जोर नहीं चलता है और इस लडकेकी बाबत जो तुम कहते हो, सो तो परमेश्वर जानते हैं, मुझको यह अपने दोनों लडकोंसे अधिक प्यारा है.” इत्यादि कितनीक बातें करके गणेशचंदजी तो चलेगये और आग्नेके किल्लेमें—ही अंग्रेजोंके साथ लड़ाई करते हुए, आपसमें गोली लगनेसे गणेशचंदजी स्वधामको पहुंचगये !!!

अब आत्मारामजी जोधामल्लके घरमें उनके पुत्रोंकी तरह पलने लगे, और जोधामल्लने भी अपने आपको सच्चा धर्मपिता प्रमाणित किया; और अपने बचनको पूरा कर दिखलाया. और अपने छोटे पुत्र “ रत्नाराम ” के साथ हिंदी इलम सिखलाया. इसवास्ते “ आत्मारामजी ” भी, जोधामल्लको अपने पिता मानते थे. और जोधामल्लका बड़ा पुत्र “ वधावामल्ल ” आत्मारामजीसे बहुत भाईओंसे भी अधिक प्यार रखता था. इसवास्ते घरकी स्त्रियां भी, अपने लडकोंबालोंसे भी ज्यादा प्यार रखती थी; परंतु जोधामल्लके छोटे भाईका नाम, दित्तामल्ल होनेसे आत्मारामजीका दूसरा नाम दित्त बदलके, “ देवीदास ” रखदिया था.

जिनदिनोंमें देवीदास (आत्मारामजी) जोधामल्लके घरमें पलतेथे, उस वखत जोधामल्ल, और तिसका परिवार, और जीरेके रहीस सब ओसवाल, टूंडक मत* (स्थानकवासी) को मानतेथे.

*टूंडकमतकी उत्पत्ति इस प्रकारसे है.—गुजरात देशके अहमदाबाद नगरमें एक लौंका नामका लिखारी यतिके उपाश्रयमें पुस्तक लिखके आजीविका चलाताथा. एक दिन उसके मनमें ऐसी बेइमानी आई जो एक पुस्तकके सात पाने बिचमेंसे लिखने छोड़ दिये. जब पुस्तकके मालिकने पुस्तक अधूरा देखा, तब लौंके लिखारीकी बहुत निंदा की और उपाश्रयसे निकाल दिया, और सबको कह दियाकि, इस बेइमानके पास कोई भी पुस्तक न लिखावे. तब लौंका आजीविका भंग होनेसे बहुत दुःखी हो गया. और जैनमतका बहुत द्वेषी बनगया. परंतु अहमदाबादमें तो लौंकेका जोर चला नहीं. तब वहांसे (४५) कोशपर लौंबडी गाम है, वहां गया. वहां लौंकेका संबंधी लखमसी बनिआ राज्यका कारभारी था, उसे जाके कहाकि, “ भगवान्का धर्म लुप्त हो गयाहै, मैंने अहमदाबादमें सच्चा उपदेश किया था. परंतु लौंकेने मुझको मारपीट के निकाल दिया; यदि तुम मुझे सहायता दो तो, मैं सच्चे धर्मकी प्ररूपणा करूँ.” तब लखमसीने कहा, “ तू लौंबडीके राज्यमें बेधडक तेरे सच्चे धर्मकी प्ररूपणा कर, तेरे खानपानकी खबर मैं रखूंगा. ” तब लौंकेने संवत् १५०८ में जैनमार्गकी निंदा करनी शुरू करी. परंतु २६ वर्ष तक किसने भी इसका उपदेश नहीं माना. संवत् १५३४ में भूणा नामा बनिआ लौंकेको मिला, उसने लौंकेका उपदेश माना, लौंकेके कहनेसे बिना गुरुके दिये अपने आप बेष धारण कर लिया; और मुग्ध लोगोंको जैनमार्गसे अष्ट करना शुरू किया. लौंकेने ३१ शास्त्र सच्चे माने. व्यवहार सूत्रको मान्य नहीं किया. जिसका सबब यह है कि व्यवहार सूत्रमें लिखाहै कि, “ तीन वर्ष दीक्षापर्यायवाले साधुको आचारप्रकल्प नामा अध्ययन पढाना कल्पता है, एवं चार वर्ष पर्यायवाले साधुको सूर्यगडांग पांच वर्ष पर्यायवालेको दशाश्रुतस्कंध—कल्पसूत्र (बृहत्कल्प) व्यवहारसूत्र, विष्णु वर्ष पर्यायवालेको अर्थात् छ वर्षसे लेके नव वर्ष पर्यंत पर्यायवालेको ठाणांग—समवायांग, दश वर्ष पर्यायवालेको भगवतीसूत्र, एकादश वर्ष पर्यायवालेको खुडियाविमाण पविभक्ति—महल्लिया विमाण पविभक्ति—अंगचूलिया—वेगचूलिया—विवाह चूलिया, द्वादश वर्ष पर्यायवालेको अरुणोववाए—गुरुलोववाए—धरणो

इसवास्ते आत्मारामजी भी जोधामल्ल आदिके साथ ढूँढक साधुओंके पास जाने लगे और ढूँढक-मतको मानने लगे. “जवारमल्ल” नामक ओसवालके पाससे ढूँढकमतका सामायिक पडिक्रमणा सीखा और नवतत्त्व छवीसद्वार आदि बोल विचारोंको भी याद किये. विक्रम संवत् १९१० में “गंगाराम-जीवणराम” ढूँढकमतके दो साधुओंने जीरामें चौमासा किया. तब जवारमल्ल दु-ग्गडके, और पूर्वोक्त साधुओंके उपदेशसे “श्रीआत्मारामजी” इस असार संसारसे विरक्त हुए; और साधु होनेका निश्चय किया. इस बातकी खबर इनकी माता “रूपादेवी” जो कि लेहरा गाममें रहती थी उसको हुई; तब वो अपने पुत्रके पास आके बहुत रुदन करके पुत्रको साधु होनेके वास्ते मना करने लगी, परंतु श्रीआत्मारामजीने माताजीको शांत करके मीठे बचनोंसे कहा कि, “हे माताजी ! आप मुजे खुशीसे रजा दीजिये, जिससे मेरा साधुपणा आपके आशीर्वादसे पूर्ण होवे.” तब माताजीने गद्गद् स्वरसे कहा कि, “हे पुत्र ! तेरे पिताजी तुजको जोधामल्लजीकी सोंप गयेहैं, इसवास्ते अपने धर्मपिता जोधामल्लजीकी आज्ञा तुजको लेनी चाहिये, और जो कुछ वे फरमावे, वो तुजको करना चाहिये. मेरे तरफसे वे मालिक है.” माताजीका ऐसा कथन सुनके श्रीआत्मारामजीने बड़ी खुशीसे अपने धर्मपिता जोधामल्लसे आज्ञा मांगी. तब जोधामल्लने कहा कि, “तू मेरा धर्मपुत्रहै, मैंने तुजको बाल्यावस्थासे पाला है, इसवास्ते मैं अपने सारे धनका तीसरा हिस्सा तेरे नामका सरकारमें लिखादेता हूँ, और तेरा विवाह भी बड़ी धामधूमसे मैं आप करूंगा.

“किसीके बहकानेसे मत भूल.” यह कहकर जोधामल्ल श्रीआत्मारामजीको प्यारसे छातीके साथ लगाकर बहुत रोया, तब श्रीआत्मारामजी अपने धर्मपिता जोधामल्लके सामने कुछ भी जवाब न दे सके; क्योंकि श्रीआत्मारामजी बहुत नरम दिलके, और विनयवान् थे.

ववाए—बेसमणोववाए—बेलंधरोववाए, त्रयोदश वर्ष पर्यायवालेको उट्ठाणसुए—समुट्ठाणसुए—देविंदोववाए—नागपरियावणियाए, चउदह वर्ष पर्यायवालेको सुभिणभावणा, पंदरह वर्ष पर्यायवालेको चारणभावणा, सो-ल्लं वर्ष पर्यायवालेको तेअनिसग्ग, सत्तदश वर्ष पर्यायवालेको आसीविसभावणा, अठारह वर्ष पर्यायवालेको दिट्ठीविशभावणा, ऐकोनवीस वर्ष पर्यायवालेको दिट्ठिववाए, बीस वर्ष पर्यायवालेको सर्वश्रुत, पढाना कल्पताहै. ” यदि जो लौंका व्यवहार सूत्रको मान्य करता तो, स्ववचन व्याघातरूप दूषणसे वज्रोपहत तुल्य होजाता. क्योंकि, वो आप बिना साधु हुयेही शास्त्र पढतारहा, और भूणा वगैरहको भी पढाया. इसी सबबसे अद्यतनकालमें भी कितनेक जैनाभास गृहस्थियोंको पूर्वोक्त शास्त्र पढाते हैं. परंतु यह आश्चर्य है कि, लौंकेने तो प्रथमसेही व्यवहार सूत्रको जलांजलि देदी थी. इस वास्ते वो तो पृथग्ही रहे ! परंतु जो लौंका व्यवहारसूत्रको मानते हैं, और फिर गृहस्थियोंको पूर्वोक्त पाठ लोपके शास्त्र पढाते हैं, उनकी कितनी भारी बेसमझ है ! इस बातकी परीक्षा करनी हम उनकोही सपुर्व करते हैं. अफसोश !! लौंकेने जो (३१) शास्त्र मान्य रखे उनमें भी, जहां जहां जिन प्रतिमाका अधिकार है, तहां तहां मनःकल्पित अर्थ कहने लग गया. इसी तरह कितनेही लोगोंको जैनमार्गसे भ्रष्ट किया. विक्रम संवत् १७६८ में रूपजी नामा भूणेका शिष्य हुआ, उसका शिष्य संवत् १६०६ में वरसिंह हुआ, तिसका शिष्य संवत् १६४९ में माघ सुदि त्रयोदशी गुरुवारके रोज पहर दिन चढे जसवंत हुआ, उसके पीछे बजरंगजी हुआ (जो संवत् १७०९ में लुणकाचार्य कहाया.) बजरंगजी की दीक्षा पीछे सुरतका वासी वोहरा वीरजीकी बेटी फूलाबाईके गोदपुत्र लदजीने दीक्षा ली. दीक्षा लेनेके पीछे जब दो वर्ष हुए, तब दशवैकालिक शास्त्रका ट्वा (भाषारूप अर्थ) पढा तब अपने गुरुको कहने लगा कि, “तुम साधुके आचारसे भ्रष्ट हो; ” इत्यादि कहनेसे गुरुके साथ लडाई हुई. तब लुणकमत, और लौंकेमतके अपने गुरुको त्याग दिया. और थोभणरिष—सखीयोजीको बहकाके अपने साथ लेके, अनुमान संवत् १७०९ में स्वयमेव कल्पित वेष धारण करके साधु बनगया, और मुखपर कपडा

पूर्वोक्त हकीमत गंगारामजी और जीवणमल्लजी साधुओंने सुनकर जोधामल्लके छोटे भाई दितामल्लको जिसका धर्ममें बड़ाही राग था, कहा कि, “ आप अपने बड़े भाईको समझाकर आत्मारामजीको साधु होनेकी आज्ञा दिलवा देंगे.” दितामल्लके आग्रहसे, और श्रीआत्मारामजीकी वृत्ति सर्वथा संसारमें पराङ्मुख देखनेसे, अंतमें जोधामल्लने भी लाचार होकर आज्ञा दे दी. और कहा कि, “ हे पुत्र ! चिरंजीव रहीयो ! और “ श्रीजैनमत ” का खूब उद्योत करीयो ! ” वृद्धोंके वचन कैसे फलप्रदाता है !! कि जोधामल्लके इस आशिर्वादाने थोड़ेही कालमें क्या असर दिखलाया ! जोकि इस बखत स्वप्नमें भी खयाल नहीं था.

चौमासे बाद मगसर वदि एकमके दिन “ मनसूरदेवा ” गाममें साधुओंके साथ श्रीआत्मारामजी जा रहे. वहां जीराकी बाईयोंके साथ श्रीआत्मारामजीकी माता भी रुदन करती हुई आई. तब साधुओंने तिसको बहुत अच्छी तराह समझाई. और पूछा कि, “ माई! तेरे पुत्रका नाम “दिता” है ? वा “ देवीदास ” है ? वा “आत्माराम” है ? क्योंकि, लोक इसको कितनेही नामोंसे बुलाते हैं. हम इसका कौनसा नाम रखे ? ” माताजीने कहा कि, “ महाराजजी ! इसका असली नाम तो “ आत्माराम ” ही है, और शेष पीछेसे कल्पना करे हुये हैं.” तब साधुओंने कहा कि, “ हम तो पहिलाही नाम अर्थात् “ आत्माराम ” ही रखेंगे, ” तबसे श्रीआत्मारामजीका यही (आत्माराम) नाम प्रसिद्ध हुआ और क्रम करके “ मालेर कोटला ” में पहुंचे. जहां मगसर सुदि पंचमीके रोज बड़ी धामधूमसे “ जीवणरामजी ” गुरुके पास ढूंढक मतकी दीक्षा ली.

श्रीआत्मारामजीकी बुद्धि बहुत तीव्र, और निर्मल थी, परंतु उनके गुरु अधिक पढ़े हुये न होनेसे

बाधलिया. और लौकिके विलक्षणही मत निकाला. लवजीके चेले सोमजी तथा कहानजी हुये. तथा लुपकमति कुंवरजीके चेले धर्मसी—श्रीपाल—अमीपालने भी गुरुको छोड़के, स्वयमेव पूर्वोक्त आचरण किया. तिनमें धर्मसीने आठकोटी पद्मखणवका पंथ चलाया, जो गुजरात देश प्रांत काठियावाडमें प्रसिद्ध है.

लवजीके चेले कहानजीके पास एक धर्मदास नामका धीपा दीक्षा लेनेको आया, परंतु कहानजीका आचार उसने भ्रष्ट जाना, इस वास्ते वह भी मुढको पट्टी बांधके, स्वयमेवही साधु बनगया. इन सबका रहनेका मकान ढूँढा अर्थात् फूटा हुआ था, इस वास्ते लोकोंने ढूँढक नाम दिया. कई ढूँढक लोक कहतेहैं कि—

ढूँढत ढूँढत ढूँढ फिरे सब वेद पुरान कुरानमें जोई ॥

ज्युं दधिसेती मख्खण ढूँढत त्युं हम ढूँढियाका मत होई ॥

परंतु यह बात लोकोंको भरमानेके वास्ते खड़ी की है, क्योंकि इन ढूँढकोंकी पड़ावलीयोंमें पूर्वोक्त लेख है नहीं. अस्तु तुष्यंतु दुर्जना: तथापि इस पूर्वोक्त ढूँढकोंके कथनसे भी यही सिद्ध होता है कि यह ढूँढकमत जैनशास्त्रानुसार है नहीं तथा एक यह भी आश्चर्य है कि जो जो अनिष्टाचरण ढूँढकोंमें प्रचलित है सो न तो वेदमें है, न पुरानमें है, और न कुरानमें है तो इन महाशयोंने अपना माना अनिष्टाचरण किस पातालसे निकाला होवेगा ! तथा वेद पुरान कुरानके माननेवालोंने जरूर इन ढूँढकोंसे पूछना चाहिये कि “ महाशयों ! वेद पुरान कुरानका नाम लेके अपने मतकी सिद्धि करनी चाहते हो परंतु अपना अनिष्टाचरण वेद पुरान कुरानमेंसे निकाल देवोगे ? ” कदापि न निकलेगा. धर्मदास छीपेका चेला यन्नाजी हुआ, उसका चेला भूदरजी हुआ, उसके चेले रघुनाथ—जयमल्लजी—गुमानजी हुये; इनका परिवार प्रायः मारवाडदेशमें है. रघुनाथके चेले भीषमने तेरापंथी मुहबबेका पंथ चलाया.

लवजीका चेला सोमजी, तिसका चेला हरिदास, उसका चेला बृंदावन, उसका भवानीदास, उसका मल्लकचंद उसका महासिंह उसका खुशालराय उसका छजमल उसका रामलाल उसका चेला अमरसिंह, इनके परिवारके साधु प्रायः पंजाब देशमें है.

“काशीराम” नामक एक ढूँढक श्रावकके पास “श्रीआत्मारामजी” ने “उत्तराध्ययन ” सूत्रके कितनेक अध्ययनोंका पठन किया। और दीक्षा लिये बाद पंदरह दिनोंमेंही व्याख्यान करने लग गये, कितनेही दिनोंबाद गुरुके साथ विचरते हुये “सरसा-राणीया” गाममें गये और संवत् १९११ का चौमासा वहांही किया, वहां मालेरकोटला निवासी “खरायतीमल्ल” नामक बनिया, दीक्षा लेकर श्रीआत्मारामजीका गुरुभाई बना, जो कि इस बख्त मुलक गुजरात, जिल्ला काठीयावाडमें प्रायः विचरते हैं। जिनका नाम ढूँढकमत परित्याग करके संवेगीपणा अंगीकार किया, तब सद्गुरुने “श्रीखांतिविजयजी ” दिया है, इन महात्माने कितनेही वर्ष हुए षष्ठ षष्ठ (बेले बेले-दो उपवास) पारणा करना शुरु किया है, जो अबतक वृद्धावस्था है, तो भी कियेही जाते हैं, (छवी देखो) राणीयामें श्रीआत्मारामजीने वृद्ध पोसालीय तपगच्छके “रूपकाविजी” के पास “उत्तराध्ययन ” सूत्र पठन किया वहांसे यमुना नदीपार “रुडमल्ल ” साधुकेपास पढ़नेके लिये गये, और उनके पास “उववाई ” सूत्र पढा, वहांसे दिल्ली होके “सरगथल ” गाममें गये, और संवत् १९१२ का चौमासा किया, वहां “श्रीआत्मारामजी ” के दादा गुरु “गंगारामजी ” काल धर्मको प्राप्त हुये चौमासेबाद गुरु और गुरुभाईके साथ विचरते हुये “जयपुरमें गये, वहां “अमीचंद ” नाम ढूँढक, जो कि उस बख्त ढूँढकोंमें श्रुतकेवली कहाता था, तिसकेपास “श्रीआत्मारामजी ” ने “आचारांग ” सूत्र पढना प्रारंभ किया, जयपुरके ढूँढकलोकोने श्री आत्मारामजीको कहा कि “तुम व्याकरण मत पढना, यदि पढोगे तो तुमारी बुद्धि बिगड जायगी。” (अब भी ढूँढक मतवालेका यह प्रथम प्रायः मंतव्यहै।) सत्यहै—

दोहा—रत्न परीक्षक जानीये, जहौरी नाहिं चमार ।

पंडित तत्त्व पिछानीये, नाहिं जट्ट गमार ॥

श्रीआत्मारामजीको पूर्वोक्त शिक्षा देनेवाले ऐसे मिले कि, जिनोंने विद्या कल्पवृक्षकी जड काटडाली ! विद्यालभरूप अमृत मेघवर्षण समान जो अवस्था थी उसमें आगकी वर्षा भई ! ! क्योंकि उस समय “श्रीआत्मारामजी ” की ऐसी शक्ति थी कि, जिससे निरंतर तीनसौ श्लोक कंठाग्र कर सकते थे, परंतु यह उत्तम समय, पूर्वोक्त आभास हितकारीयोंके उपदेशसे निष्फल गया। अफसोस ! ! ऐसे हितकारीयोंसे तो पंडित शत्रुही श्रेष्ठ है।

यतः ॥ पंडितोपि वरं शत्रु, न मूर्खो हितकारकः ॥

वानरेण हतो राजा, विप्र चौरैण रक्षितः ॥ १ ॥

पंडित शत्रु तो श्रेय है, परंतु हितकारी मूर्ख अच्छा नहीं है; वानरने राजाको मारा, और ब्राह्मण चौरने उसको बचा लिया.*

* भावार्थ इसका यह है कि—किसी एक नगरमें कीसी राजाके पास कोई मदारी वानर नचाने लगा। उस वानरकी चपलता देखके राजा खुश होकर मदारीसे कहने लगा, “जो तेरी मरजीमें आवे, सो तू मेरेपास मांग ले; परंतु यह वानर तू मुझे दे दे。” मदारीने बहुत ना कही, परंतु राजहठ जोरावर है राजाके पास किसीका जोर नहीं चलताहै। लाचार होकर मदारिने वानर दे दिया। राजाने उस वानरको अपना पेहरेगीर बनाया, और हाथमें तलवार देके, उसको अपने पल्यंक(पलंग)के पांवेके साथ बांध दिया एकदिन ऐसा हुआ कि राजा सोताहै, वानर पहरा देताहै, इतनेमें एक सर्प राजाके पल्यंकपर छत्के साथ जाता है, उसकी छाया राजाके शरीर पर पडी, उस छायाको देखके मूर्खशि-

श्री आत्मारामजी जयपुरसें अजमेर गये. वहां “लक्ष्मणजी” “देवकरणजी” और “जितमल्लजी” वगेरह डूढक साधुओंके पास कितनेक शास्त्र पढे. वहांसे फिर अमीचंदके पास पढनेके लिये “जयपुरमें” आये और संवत् १९१३ का चौमासा वहांही किया. वहांसे विहार करके “नागोर” (मारवाड) शहरमें गये, और “हंसराज” नामा श्रावकके पास “अनुयोगद्वार” शास्त्र पढे. वहांसे “जोधपुर” जाके “वैद्यनाथ” पढवा ओसवालके पास विद्याध्ययन किया. “वैद्यनाथ” व्याकरण पढना अच्छा मानतेथे, और भाष्यकार टीकाकार आदिकोंके कथनको बहुत प्रमाणिक, और सत्य गिनतेथे. इस वास्ते उन्होंने “श्रीआत्मारामजी” को कहा कि “आप व्याकरणादि पढनेके पीछे, शास्त्रोंकी भाष्य टीका वगेरह पढो तो आपकी बुद्धि सफल होवे.” परंतु पूर्वोक्त असत्योपदेशके अजीर्णसें, और स्वोपार्जित ज्ञानावरण कर्मके प्रबलसें, “श्रीआत्मारामजी” को “वैद्यनाथ” के वचनामृतकी रुचि हुई नहीं. वहांसे विहार करके शहर “पाली” (मारवाड) वगेरहमें होके “नागोर” गये, और संवत् १९१४ का चौमासा वहां किया. इस चौमासेमें श्रीआत्मारामजीने डूढकोंके श्रीपूज्य “कचोरीमल्ल” के पास, और “नन्दराम” “फकीरचंदजी” वगेरह साधुओंके पास “सूयगडांग” “प्रश्नव्याकरण” “पन्नवणा” “जीवाभिगम” आदि शास्त्रोंका अभ्यास किया. उस समय फकीरचंदजीके पास “हर्षचंद” नामा एक शिष्य “सिध्दहैम कौमुदी” (चंद्रप्रभा नामका जैन व्याकरण) पढताथा. जिससें फकीरचंदजीने श्रीआत्मारामजीको कहा कि, “तुमारी बुद्धि बहुत निर्मल है, इस वास्ते तुम मेरे पास चन्द्रप्रभा पढो, तुमको जलदी आज्ञावेगी.” परंतु उस वखत श्रीआत्मारामजीको पूर्वोक्त कर्म रोगसें, फकीरचंदजीका पूर्वोक्त वचनामृत भी रुचा नहीं. चौमासे बाद श्री आत्मारामजीने विहार करके “मेडता” “अजमेर” “किसनगढ” “सरवाड” वगेरह शहरोंमें थोडा थोडा काल व्यतीत किया, जिनमें “उत्तराध्ययन” “दशवैकालिक” “सूयगडांग” “अनुयोगद्वार” “नंदी” डूढकोंका “कल्पित आवश्यक” और “बृहत्कल्प” वगेरह शास्त्र कंठाग्र किये. अनुमान दश हजार श्लोक श्रीआत्मारामजीने कंठाग्र किये. संवत् १९१५ का चौमासा

रोमणि वानर, तलवार लेके सर्पकी भ्रांतिसें राजाके शरीर पर घाव करने लगा. उस अवसरमें उसी नगरका रहनेवाला कोइक विद्वान्, जन्मका दरिद्री, अन्य व्यवहारामावसें अपनी स्त्रीकी प्रेरणासें चोरी करनेके वास्ते गया. वह प्रथम किसी वेश्याके घरमें गया. वहां देखता है कि, वेश्या किसी कुछ्ठीके साथ विषय सेवन कर रही है. देखके विचार करने लगा कि, “हा ! जिस पैसे वास्ते ऐसे कोछ्ठीके साथ भी यह रमण होती है ! इस वास्ते इसका पैसा मुझको लेने योग्य नहीं है” — पीछे वहांसे निकलके एक लक्षाधीशके वहां गया. वहां देखता है कि, पितापुत्र हिसाब मिला रहे हैं; परंतु हिसाब बहुत मेहनत करनेसे भी नहि मिला. अनुमान आठ आनेका फरक रहा. तब पिताने पुत्रको ऐसा मारा, कि पुत्र मूर्छित होगया, देखके पंडितने विचार किया कि जो आठ आने पीछे अपने एकके एक सकुमार पुत्रके ऊपर ऐसा जुलम गुजारता है, यदि मैं इसका धन चुरा कर ले जाऊंगा तो, जरूर यह छाती फटकर मर जायगा ! इसवास्ते ऐसे कृपणका धन भी लेना मुझको उचित नहीं है. इत्यादि विचारकर फिरता २ राजाके मेहलपर जा चढा. वहां पूर्वोक्त कार्य करते वानरको देखके, एकदम पंडितने वानरके दोनों हाथ खूब जोरसें पकड लिये. तब वानरने किलकिलायारी करके शोर मचाया. जिससें राजाकी निंद खूब गई. राजाने पंडितको पूछा, “तू कौन है ? और किसवास्ते इसको तूने पकडा है ?” पंडितने ऊपर जाते हुए सर्पको दिखाके, अपना सारा वृत्तांत सत्य सत्य सुना दिया. राजाने खुश होकर पंडितकी आज्ञाधिका कर दी. और वानरको निकलवा दिया. यहां यद्यपि पंडित चोरी करनेको आया था, और राजाका शत्रुभूत हुआ था, तो भी विद्वान् होनेसें नफा तुकसान विचार लिया. इसवास्ते हित करनेवाले मूर्खसें, शत्रु पंडितही अच्छा है कि, जो अवसर तो विचार लेता है !

“जयपुर” में किया। चौमासे बाद “बक्षीराम” साधुके साथ “माधोपुर” “रणथंभोर” होके, “हुंदी” “कोटा” शहरमें गये। वहां हुंदक साधुओंमें श्रेष्ठ “मगनजी स्वामी” थे, तिनको मिलनेकी श्रीआत्मारामजीकी उत्कंठा हुई, परन्तु उस समय मगनजी स्वामी भानपुरमें थे। इस वास्ते श्रीआत्मारामजी भी भानपुर जाके तिनको मिले। वहां दोनोंही आपसमें चर्चा वार्त्ता होनेसे अत्यानन्दको प्राप्त हुए। श्रीआत्मारामजी भानपुरसे विहार करके “सीताम” “उजावरा” होके “सलाना” गाममें अपने गुरुको मिलके, “रतलाम” गये। तहां हुंदकमतका जानकार “सूर्यमल्ल” कोठारी था, जो जैनमतके ११ शास्त्र सच्चे हैं और शेष यतियोंकी कल्पनासे बने हुवे हैं, ऐसा मानताथा तिसको श्रीआत्मारामजीने हेतुयुक्ति देकर निरुत्तर किया, बाद तहांसे चलके “खोचरोद” “बंदावर” “वडनगर” “इंदोर” और “धारानगरीमें” होके “रतलाम” फिर आये और संवत् १९१६ का चौमासा वहां किया। मगनजी स्वामीने भी तहांही चौमासा किया, जिससे श्रीआत्मारामजीकी उनके पास विद्याभ्यास करनेकी उत्कंठा, आनायासही सफल हुई। श्रीआत्मारामजीने उनके पाससे हुंदकमतकी जितनी पुंजीयी—हुंदक मतवाले ३२ शास्त्र मानतेहैं—सर्व लेली। अर्थात् ३२ ही शास्त्र पढ़ लिये और कितनेक कंठाग्र भी कर लिये।

अब श्रीआत्मारामजीके मनमें पूर्वोक्त कर्मरोगके प्रायः जीर्ण होनेसे ऐसी आशंका होने लगी कि, मैंने हुंदकमतके सर्व शास्त्र देखे और इस मतके प्रायः सर्व प्रसिद्ध पंडितोंको मैं मिला, तिन सर्वका कहना एक दूसरेसे विरुद्ध है। किसी एक वादतमें कोई कीसी तरहका अर्थ करताहै, और दूसरा दूसरी तरहका अर्थ करताहै, और जहां कोई अर्थ ठीक ठीक भान नहीं होताहै तो चार पांच जने एकत्र होकर सलाह करके मनः कल्पितअर्थ कर लेतेहैं, जिसको पंचायती अर्थ कहतेहैं। पंजाब देशके हुंदकमें प्रायः पंचायतीही अर्थ चलताहै। तो अब मुझे कौनसा मत सत्य मानना, और कौनसा असत्य मानना चाहिये ? और कितनेक लोक ४५ आगम मानतेहैं, कितनेक ३२, कितनेक ३१, और कितनेक ११ शास्त्र मानतेहैं। तो इनमें सच्चे कौन और झूठे कौन ? मुझे कितने शास्त्र सच्चे मानने चाहिये ? क्योंकि “हुंदीकोटा” वाले हुंदक शास्त्रोंके अर्थ, अपने मुखसे मतोघटित करतेहैं। मारवाड़ी हुंदक भाषारूप जो त्वार्थ लिखाहै उसमेंसे अपने मतके अनुयायी, अर्थको मानतेहैं, और शेष छोड़ देतेहैं, या तिस पाठ पर हड़ताल लगाके ऊपर अपनी मति कल्पनाका अर्थ लिख देतेहैं, तथा “तपगच्छ” “स्वतरगच्छ” वाले कहतेहैं, कि हुंदक लोग शास्त्रोंका यथार्थ अर्थ नहीं जानतेहैं, इत्यादि अनेक संकल्प विकल्प करके अंतमें श्रीआत्मारामजीने यह निश्चय किया कि, संस्कृत प्राकृत व्याकरण पढ़नेके पीछे शास्त्रोंके यथार्थ जे अर्थ होते होवेंगे, वे, मैं मानुंगा। इस वखत श्रीआत्मारामजीको वैद्यनाथ पटवेका और फकीरचंदजीका कहना सत्य सत्य भान हुआ।*

दोहा—तबलग धोवन दूध है, जबलग मिले न दूध ॥

तबलो तत्त्व अतत्त्व है, जबलो शुद्ध न बुद्ध ॥ १ ॥

* जैनमतके शास्त्रोंसे भी सिद्ध होताहै कि, व्याकरण अवश्यमेव पढ़ना चाहिये। क्योंकि, श्री प्रश्नव्याकरण सूत्रमें लिखा है कि—नाम, आख्यात, निपात, उपसर्ग, तद्धित, समास, संधिपद, हेतु, यौगिक, उणादि, क्रियाविधान, धातु, स्वर, विभक्ति, वर्ण, इनां करके युक्त—तथा जनपद सत्य, सम्मत सत्य, स्थापना सत्य,

इस तरह महाराजजीश्रीने देखा कि जैन शास्त्रोंसे सिद्ध होता है कि, बिना व्याकरणके पढ़े ठीक ठीक यथार्थ अर्थ नहीं भान होसकता. इस वास्ते मैं जरूर अब व्याकरण पढ़ुंगा. हाय-अफशोस ! कैसे कुगुरोंके वश होकर जपनी अमूल्य विद्याप्राप्त्यवस्था निष्फल करी !

पूर्वोक्त कारणोंसे, तथा बहुत देशोंमें फिरनेसे, बहुत जैनमंदिर तथा बड़े बड़े पुस्तकोंके भंडार देखनेसे, श्रीआत्मारामजीके मनमें यह निश्चय हुआ कि “जैनमत” तो कोई अन्यही वस्तु है, और यह ढुंढकमत अन्यही वस्तु है.”

जैनमतके शास्त्रोंसे ढुंढकमतके विपरीत अनिष्टाचरण देखनेसे, श्रीआत्मारामजीके मनसे ढुंढकमतकी आस्था कम होगई और गुजरातदेशमें जाके पंडित साधुओंके साथ वातचित करके निर्णय करनेका इरादा श्रीआत्मारामजीने किया. तथा जैनमतके प्रसिद्ध तीर्थ “शत्रुंजय” “उज्जयंत” (गिरनार) आदिकी बहुत प्रशंसा तिनके सुननेमें आई, जिससे उनको देखनेकी उत्कंठा भी श्रीआत्मारामजीको हुई. इस वास्ते श्री आत्मारामजीने “गुजरात” देशमें जानेकी इच्छा की. परंतु जीवणरामजीने गुजरातदेशमें जानेके वास्ते कितनेक प्रकारकी दहशत दिखाई, और आज्ञा नहीं दी; जिससे श्रीआत्मारामजी चौमासे बाद “जावरा” “मंदसोर” “नीमच” “जावद” वगैरह शहरोंमें होके “चितोड” गये. तहां पुराने किल्लेमें जाके बहुत उज्जडे हुए थेह, (खंडेर) जैनमंदिर, फतेहके महेल, कीर्त्तिस्तंभ, जलके कुंड, कीर्त्तिधर सुकोशल मुनिकी तप करनेकी गुफा, पवित्री राणीकी सुरंग, सूर्यकुंड वगैरह प्राचीन वस्तुयें देखके संसारकी अनित्यता और तुच्छता इंद्रजालकी तरह क्षणमात्रका तमासा याद आया !

इत्यादि श्रीठाणांग सूत्रोक्त दश प्रकारका त्रिकाल विषयक सत्य—तथा प्राकृत, संस्कृत, मागधी, पेशाची, सौरसेनी, अपभ्रंश, एवं षट् भाषा गद्य-पद्य करके बार प्रकारकी भाषा तथा—

“वयण तियं ३ लिंग तियं ३ कालतियं ३ तह परोक्ख १० पच्चक्खं ११

उवणीयाइ चउक्कं १५ अब्भत्थंचेव १६ सोलसमं”

एवं सोलह प्रकारके वचनको जाननेवालेको अर्हदनुज्ञात बुद्धिद्वारा पर्यालोचन करके साधुको अवसरमें बोलना चाहिये, नान्यथा. तथा श्रीअनुयोगद्वार सूत्रमें सकया पागयाचेव इत्यादि संस्कृत, और प्राकृत दो प्रकारकी भाषा स्वरमंडलमें ग्रहण करके बोलनेवाले साधुकी भाषा प्रसस्थ है. तथा पूर्वोक्त शास्त्रमेंही प्रमाणाधिकारमें भावप्रमाण चार प्रकारका है—सामासिक (१) तद्धितज (२) धातुज (३) निरुक्तिज (४). सामासिकके सात भेद हैं. द्वंद्व (१) बहुव्रीहि (२) कर्मधारय (३) द्विगु (४) तत्पुरुष (५) अव्ययीभाव (६) और एकशेष (७). तद्धितजके आठ भेद हैं, कर्म (१) शिल्प (२) श्लाघा (३) संयोग (४) समीप (५) ग्रंथरचना (६) ऐश्वर्यता (७) और अपत्य (८). धातुज—भू सतायां परस्मै भाषा—एध वृद्धौ—स्पद्धं संहर्षे—निरुक्तिज—मह्यां शेते महिषः। भ्रमति रैति च भ्रमरः मुहुर्मुहुर्लसतीति मुसलं इत्यादि—और भी श्रीठाणांगसूत्र—द-शाश्रुत स्कंधसूत्र वगैरहसे भी व्याकरणका पढ़ना सिद्ध होता है.

* प्रायः इनका आचरण, जैनमतके शास्त्रोंसे विपरीत है. जैनशास्त्रोंमें ठिकाने ठिकाने जिनप्रतिमाका पाठ आता है, तिनका ढुंढकलोको निषेध करते हैं; और जिन प्रतिमाकी शास्त्रोक्त रीतिसे पूजन करनेवालेको हिंसाधर्मी कहते हैं. तपगच्छ, स्वरतरगच्छ आदिके साधु मुहपत्ति हाथमें रखते हैं, और ढुंढक साधु रातदिन मुख बंधी रखते हैं; जो कि जैनमतके शास्त्रसे विरुद्ध है. तपगच्छादिके साधु दंडा रखते हैं, ढुंढक रखते नहीं हैं; और शास्त्रोंमें दंडेका वर्णन आता है. कितनेक ढुंढकमतके श्रावक, कितनेही मदीनौतकका स्नान करनेका नियम करते हैं, इतनाही नहीं, परंतु कितनेक जंगल (दिशा) फिरके हाथ, पाणीसे धोनेका भी नियम करते हैं. जिस नियमका नाम “अणकी व्रत” बहुत ढुंढकोंमें प्रसिद्ध है तथा लघुनीतिका नाम “नयापाणी” धर रखा है, इत्यादि.

चितोडसें “उदयपुर” “नाथद्वारा” “कांकरोली” “गंगापुर” “भीलाडा” “स-
खाड” “जयपुर” “भरतपुर” “मथुरा” “विंदावन” होके “कोशी” के रस्ते “दि-
ल्ली” शहरमें गये वहां चौमासा करनेकी श्रीआत्मारामजीकी इच्छा थी, परंतु जीवनरामजीके
कहनेसे संवत् १९१७ का चौमासा, श्रीआत्मारामजीने “सरगथल” गाममें किया। चौमासे
बाद विहार करके दिल्ली गये। दिल्लीसें जमनापार “खट्टा” “लुहारा” “बिनौली” “बडौत”
“सुनपत” वगैरह स्थानोंमें फिरके संवत् १९१८ का चौमासा, दिल्लीमें जा किया। तिस चौमासेमें
“पंजाबी हुंडकोंके पूज्य” “अमरसिंहजी” के चेले मुस्ताकराय और हीरालालको आठ शास्त्र
श्रीआत्मारामजीने पढाये। चौमासे बाद सुनपत पानपित होके श्रीआत्मारामजी “करनाल”
गाममें आये। वहां अमरसिंहजीके चेले “रामबक्ष” “सुखदेव” “विश्वचंद” “चंपालाल”
वगैरह मिले। तब श्रीआत्मारामजीने रामबक्ष, और विश्वचंदको अनुयोगद्वारसूत्र पढाया। वहांसें
विहार करके श्रीआत्मारामजी “अंबाला” शहरमें आये और रामबक्षादि भी बडसटके रस्ते होकर
अंबाला शहरमें आये। वहांसें विहार करके श्रीआत्मारामजी “खरड” “रोपड” होके “माछीवाडा”
गाममें गये। यहांतक तो रामबक्ष वगैरह साधु, श्रीआत्मारामजीके साथही रहे, और पढते भी रहे।
जिसमें इतने समयमें श्रीआत्मारामजीने पूर्वोक्त रामबक्ष और विश्वचंदको आचारांग, जीवाभिगम,
नंदीसूत्र, वगैरह शास्त्र पढाये।

रोपड गाममें श्रीआत्मारामजीने पंडित “सदानंदजी” से “सारस्वत” व्याकरण पढना शुरू
किया, और थोडेही समयमें अपनी अपूर्व बुद्धिसें षट्छलिंगतकका अभ्यास कर लिया। माछीवाडेसें
विहार करके श्रीआत्मारामजी मालेर कोटलामें जाके अपने गुरु जीवनरामजीसें मिले। वहांसें
जीवनरामजी तो “रणीया” गाममें जा चौमासा रहे, और श्रीआत्मारामजी “सुनाम” गये, जहां
श्रीआत्मारामजीका एक चेला हुआ। सुनामसें “समाणा” “पटियाला” “नाभा” “मालेर कोटला”
“रायका कोट” और “जीगरांवह” वगैरह होके श्रीआत्मारामजी “जीरा” गाममें गये, और
संवत् १९१९ का चौमासा जीरामें किया।

रामबक्ष वगैरह साधु, देश “मारवाड” के तरफ विहार कर गये। क्योंकि, इनके गुरु अमरसिंहजी
मारवाडको गये हुयेथे। इतने दिनोंतक केवल पढनेके वास्तेही श्रीआत्मारामजीके पास रहेथे।
परंतु चलते समय रामबक्षने श्रीआत्मारामजीसें आधीनताके साथ प्रार्थना की कि, “आप इस
मुलक पंजाबमें आगयेहैं, और मेरे गुरु मारवाडको चलेगयेहैं, इस वास्ते आपने इस पंजाबदे-
शसें जोर लगाकर “अजीवमतकी” * जड काटते रहेना, इससें मेरे गुरु अमरसिंहजीको परम आनंद
होगा और आपका बडा उपकार होगा।” संवत् १९१९ के चौमासेमें जीराही गाममें श्रीआत्मा-
रामजीको व्याकरणके बोधसें ज्यादाही शक पैदा हुआ कि “जो अर्थ हुंडक लोग शास्त्रोंका कर-
तेहैं, वह व्याकरणकी रीतिसें ठीक मालुम नहीं होताहै; इसका निश्चय करना चाहिये। क्योंकि
मैंने थोडाही व्याकरण अबतक पढाहै, तो भी मुजे कितनेही ठीक अर्थ मालुम होने लगेहैं तो, यदि जि-
सको पूरा पूरा व्याकरणका बोध होवे, उसका तो क्याही कहना है? इससें यही सिद्ध होताहै कि,

* पंजाब देशके हुंडकोंमें दो फिरके (मत) हैं, एकतो अनाजमें जीव मानते हैं और, एक नहीं मानते हैं। जो नहीं
मानते हैं उनको अजीवमती कहते हैं।

हुंढक लोग इसही डरके मारे व्याकरण पढने नहीं देतेहैं और यह भी सिद्ध होताहै कि इनके सब अर्थ प्रायः मनः कल्पित है, और जानबुझके अज्ञान रूप अंधे कूपमें गिरते हैं। ” यह समझके श्रीआत्मारामजीने निश्चय किया कि, जो कुछ पूर्वाचार्योंने निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका वगैरह द्वारा अर्थ कियेहैं, वेही अर्थ यथार्थ हैं, और जो कोई मनःकल्पित अर्थ शास्त्रोंके करतेहैं, वो बडाही अनर्थ करतेहैं।

चौमासे बाद श्रीआत्मारामजी जीरासैं विहार करके “मनोहरदास”के टोलेके हुंढक साधु-ओंमें वृद्ध पंडित साधु “रत्नचंदजीके” पास विद्याभ्यास करनेके वास्ते “आग्रा”शहरमें गये, और संवत् १९२० का चौमासा वहांही किया. रत्नचंदजीने बडी खुशीसैं श्रीआत्मारामजीको “स्था-नांग ” “समवायांग ” “भगवती ” “पन्नवणा ” “वृहत्कल्प ” “व्यवहार ” “निशीथ ” “दशाशुत स्कंध ” “संग्रहणी ” “क्षेत्रसमास ” “सिद्ध पंचाशिका ” “सिद्धपाहुड ” “निगोद छत्रीसी ” “पुद्गल छत्रीसी ” “लोकनाडीद्वात्रिंशिका ” “षट्कर्म ग्रंथ ” चार जातके “नयचक्र, ” इत्यादि कितनेही शास्त्र पढाये, जिनमें कितनेक प्रथम श्रीआत्मारामजी पढे हुएथे, तो भी अर्थ निश्चय करनेके वास्ते फिरसैं पढे. श्रीआत्मारामजीको विभक्तिज्ञान होनेसैं जे अर्थ मालुम होतेथे, वे अर्थ हुंढकोंके पढाये अर्थके साथ नहीं मिलतेथे, जिससैं श्री-आत्मारामजीको निश्चय होगया कि पूर्वाचार्योंके किये हुये अर्थही सत्य है, तथापि परीक्षा करने लगे तो पूर्ण करनी चाहिये. रत्नचंदजीके पढाये अर्थ प्रायः अन्य हुंढकोंसैं विपरीत, और टीका वगैरहके साथ मिलते हुये श्रीआत्मारामजीको भान हुए, इस वास्ते अधिक आनंदसैं उनके पास पढे. इस चौमासेमें श्रीआत्मारामजीने रत्नचंदजीके पाससैं कितनाक अपूर्व ज्ञान भी प्राप्त किया. रत्नचंदजीके पास चिरकालतक श्रीआत्मारामजीकी पढनेकी मरजीथी परंतु जीवणरामजीके बुलानेसैं चौमासे बाद विहार करनेकी तैयारी करके श्रीआत्मारामजी रत्नचंदजीके पास आज्ञा लेनेके वास्ते गये. तब रत्नचंदजी नाराज होके कहने लगे कि “ तुमारा वियोग मैं चाहता नहीं हूं. परंतु क्या करूं ? तुमारे गुरूका हुकम आयाहै, सो तुमको भी मान्य करनाही चाहिये, परंतु अंतकी मेरी शिक्षा तुम अंगिकार करो. मैंने सुनाहै कि, आत्माराम श्री जिन प्रतिमाकी बहुत निंदा करताहै, परंतु यह काम करना तुजको अच्छा नहीं है. हमारे कहनेसैं इस तरह अमल करना. एक तो श्री जिन प्रतिमाकी कबी भी निंदा नहीं करनी (१) दूसरा पेशाब करके बिना धोया हाथ कबी भी शास्त्रको नहीं लगाना (२) और तीसरा अपने पास सदा दंडा रखना (३). मैंने यह तुजको श्री जैनमतका असल सार बताया है. कितनेक दिनों बाद जब तूं व्याकरण पढेगा, और शास्त्रका यथार्थ बोध होगा, सब कुछ तुजको मालुम हो जायगा. आगे भी इसी तरह ज्ञानाभ्यास करनेमें निरंतर उद्यम रखना और व्याकरण जरूर पढना. ” तब श्री आत्मारामजीने कहा कि, “ महाराजजी ! एक बात और भी बतावें कि, मुखपर कानोंमें डोरा डालकर मुहपत्तीका बांधना सूत्रानुसार है कि नहीं ? ” श्रीरत्नचंदजीने जवाब दिया कि, “ सूत्रानुसार तो नहीं. क्योंकि, शास्त्रानुसार तो मुहपत्ती हाथमें रखनी कही है. परंतु अनुमान (१५०) देहसैं वर्षसैं हमारे बड़ोंने मुखपर मुहपत्ती बांधी है, और तेरे बड़ोंने अनुमान दोसौ (२००) वर्षसैं बांधनी सुरू की है. यह हुंढकमत अनुमान सवादोसौ (२२५) वर्षसैं बिना गुरु अपने

आप मनःकल्पित वेष धारण करके निकाला गया है।” श्रीआत्मारामजीको तो, प्रथमसे ही कितनी क बातोंका शक था। अब तो सर्वथा निश्चय हो गया कि, निश्चय ही यह ढुंढकमत बनावटी है, और सनातन जैनधर्मसे उलटा है। और भगवतीजी, अनुयोगद्वार, समवायांग, नयचक्र वगैरह शास्त्रोंमें “ आवश्यक ” “ विशेषावश्यक ” की साक्षी दी है और लिखा भी है कि, आवश्यकका इतना मूलपाठ है, इतनी निर्युक्ति है, इतना भाष्य है, इतनी चूर्णि है, इतनी टीका है। और ढुंढकके माने आवश्यकमें कितनी क बातें जे शास्त्रोंमें हैं, वे नहीं हैं, और ढुंढक आवश्यक गुजराती भाषामें है, और दूसरे शास्त्र प्राकृतमें है। इसवास्ते आवश्यक सूत्र भी प्राकृत भाषामें होना चाहिये। इसतरह श्री आत्मारामजीकी ढुंढकमतसे अनास्था होनी शुरू हुई। तो भी अधिकतर निश्चय करनेके वास्ते श्रीआत्मारामजीने बहुत शास्त्रोंकी पुनरावृत्ति की। तथापि अंतमें ऊंटके प्रेगणकी तरह ढुंढकमतकी पोल निकली। इसवास्ते श्रीआत्मारामजीने निश्चय किया कि, “ मैं अपनी शक्तिके अनुसार भव्य जीवोंके आगे सत्य सत्य बात प्रगट करूंगा, जिसको रुचेगा, वो ग्रहण कर लेवेगा। ” ऐसा निश्चय करके श्रीआत्मारामजी आग्रेसे विहार करके दिल्ली आये, वहां श्री विश्वचंदजी मिले। और श्रीआत्मारामजीसे शास्त्र पढने लगे और साथही साथ विहार करते हुए मालेर कोटलामें आये। एक दिन श्रीविश्वचंदजी, पेशाब करके हाथ विनाही धोये शास्त्र पढने लग गये। इससे श्रीआत्मारामजीने गुस्से होकर विश्वचंदजीको कहा कि, “ खबरदार ! आज पिछे कबी भी ऐसा काम नहीं करना। अर्थात् विना धोये हाथ पेशाब करके शास्त्रको नहीं लगाना। ” प्रत्यक्षमें तो श्रीविश्वचंदजी, पूर्वोक्त श्रीआत्मारामजीका कहना मंजूर करके मौन हो रहे; परंतु दिलमें विचार करने लगे कि, “ रत्नचंदजीकी संगतसे इनकी श्रद्धामें फरक पड गया है, इसी वास्ते यह ऐसे कहते हैं। क्योंकि, मेरे गुरु रामबक्षजी, और उनके गुरु अमरसिंहजी पूज्यजी महाराज वगैरह सब ढुंढक साधु, पेशाबसे शुद्धि करना, आदरके पात्रोंमें लेकर वस्त्रादि धोना आदि करते हैं। परंतु मुजे तो इनके पास पढना है इसवास्ते कितने क दिन जिस तरह यह कहते हैं, इसी तरह करना चाहिये। ” कोटलामें श्रीआत्मारामजीने, पंडित “ अनंतरामजी ” से शेष व्याकरण पढना शुरू किया; और एक महीनेके बाद विहार करके रायका कोट होकर जगरांवां गाममें आये। वहां “ चौथमल्ल ” के पत्रसे अपने उपकारी विद्यागुरु, श्रीरत्नचंदजीका संवत् १९२१ का जेठ मासमें स्वर्गवास होना सुनकर, बहुत अफसोस किया। अंतमें अपने ज्ञानबलसे अफसोस दूर करके, श्रीआत्मारामजी जगरांवांसे विहार करके शहर “ लुधीआना ” में आये। वहां श्रावक “ सेठमल्ल ” “ गोपीमल्ल ” वगैरहसे अजीवमतकी श्रद्धा लुडवाई। और मासकल्पके बाद लुधीआनासे विहार करके कोटलामें गये। और संवत् १९२१ का चौमासा वहां किया। इस चौमासेमें श्रीआत्मारामजीने चंद्रिका, कोष, काव्य, अलंकार, तर्कशास्त्र वगैरहका अभ्यास किया, तथा श्री “ विश्वचंदजी ” को भी, शास्त्रानुसार चर्चा करके यथार्थ सत्य मार्गका बोध कराया।

चौमासे बाद श्रीआत्मारामजी, लुधीआना होके “ देश ” नामा गाममें गये। वहां एक यतिके पुस्तकोंमेंसे “ श्रीशिलाकाचार्य विरचित श्रीआचारांग सूत्र वृत्ति ” (टीका) की प्रति श्रीआत्मारामजीको मिली। इस प्रतिके मिलनेसे श्रीआत्मारामजीको ऐसा आनंद प्राप्त हुआ कि, जैसे मरु-देशमें प्यासेको अमृत मिलनेसे शांति होवे ! तहांसे विहार करके राणीया, रोडी, होकर “ सरसा ”

गाममें गये; और संवत् १९२२ का चौमासा वहां किया। वहां “किशोरचंदजी” यतिके पास श्री-आत्मारामजीने दो तीन ज्योतिषके ग्रंथ पढ़े। तथा वडगच्छके यति “रामसुख” और खरतर गच्छके यति “मोतीचंद” के पाससें साधु श्रावकके प्रतिक्रमण और तिसके विधिके पुस्तक लाकर देखें तो, मालुम हुआ कि, ढुंढकमतका प्रतिक्रमण, और तिसका विधि, यथार्थ नहीं है। और भी कितनेक पुस्तक लाकर देखा, और आचारांग सूत्र वृत्तिका भी स्वाध्याय किया। जिससें श्रीआत्मारामजीको अधिकतर निश्चय हुआ कि, ढुंढकमत असल जैनमत नहीं है। परंतु जैनमतके नामसें जैनमतका आभास रूप, एक नया पंथ मनःकल्पित निकाला है। तथापि श्रीआत्मारामजीने विचार किया कि, “इस समय कुल पंजाब देशमें प्रायः ढुंढकमतका जोर है; और मैं अकेला शुद्ध श्रद्धान प्रकट करूंगा तो, कोई भी नहीं मानेगा। इस वास्ते अंदर शुद्ध श्रद्धान रखके बाह्य व्यवहार ढुंढकोंकाही रखके कार्यसिद्धि करनी ठीक है। अवसर पर सब अच्छा होजावेगा。” ऐसा निश्चय करके श्रीआत्मारामजी चौमासे बाद सरसेसें सुनाममें आये; वहां “कनीराम” रोहतक वाला ढुंढक साधु मिला। तिसके साथ ढुंढक साधुके भेष, और पंडिक्रमणका विधि, और ढुंढकाचारकी बाबत वार्त्तालाप हुआ। परंतु कनीरामने कुछ भी शास्त्रानुसार ठीकठीक जवाब न दिया, और कहा कि, “तुमारी श्रद्धा भ्रष्ट होगई है। जो तुम अपने गुरु, दादगुरुओंके कथनमें शंका करते हो ? ” तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, “मैं कोई गुरु, दादगुरुओंका बंधा हुआ नहीं हूं, मुझे तो श्रीमहावीर स्वामीके शासनके शास्त्रोंका मानना ठीक है। यदि किसीके पिता, पितामह कूपमें गिरे होवे तो, क्या उसके पुत्रको भी कूपमेंही गिरना चाहिये ? ” तब कनीराम क्रोध करके चला गया। और श्रीआत्मारामजी भी सुनामसें विहार करके मालेर कोटलामें आये, वहां लाला “कवरसेन” और “मंगतराय” के आगे अपने अंतरंग जो सनातन जैनधर्मका श्रद्धान बैठा था, सुनाया। उन्होंने भी अच्छी तरहसें समझके श्रीआत्मारामजीका कथन, जैनशास्त्रानुसार यथार्थ होनेसें अंगिकार किया। और श्रीआत्मारामजीकोही सद्गुरु सत्योपदेष्टा मानने लगे। पंजाबमें इस वखत पूर्वोक्त दोही श्रावक, प्रथम शुद्ध श्रद्धान वालोंकी गिनतीमें हुए। वहांसें विहार करके शहर लुधीयानामें आये। वहां लाला “गोपीमल्ल” पाटणी को शास्त्रानुसार समझायके श्रीआत्मारामजीने अपना तीसरा श्रावक बनाया। यहां इस समय श्रीविश्वचंदजी, और तिनके चेले चंपालालजी वगैरह भी आये हुएथे। चंपालालजीके मनमें कितनेक संशय ढुंढकमत संबंधी पड़े हुएथे। इसवास्ते अपने गुरु विश्वचंदजीको अवसर पाकर पूछतेही रहतेथे। परंतु श्रीविश्वचंदजी अवसरके जानकारी होनेसें, यद्यपि अपने अंदर श्रीआत्मारामजीकी सोबतसें शुद्ध श्रद्धान हुआथा, और श्री सनातन जैनधर्मका शुद्ध स्वरूप जानते थे, तोभी खुलकर कथन करनेका अवसर अबतक न होनेसें पूरा पूरा जवाब नहीं देतेथे। किंतु गोलमोल जिससें पूछने वालेको ज्यादा शंका पड़े, वैसे जवाब देतेथे। इसवास्ते एक दिन श्रीचंपालालजीने श्रीविश्वचंदजीको जोर देकर कहा कि, “महाराजजी साहिब ! हमने जो घर, हाट, पुत्र, परिवार आदि छोडके साधुपणा लियाहै, और आपका शरणा अंगिकार कियाहै, सो कुछ डूबनेके वास्ते नही, किंतु तिरनेके वास्ते है। इसवास्ते आप हमको शुद्ध अंतःकरणसें यथार्थ जैनमत, जो कि महावीर स्वामीके शासन पर्यंत सनातन चला आया, सो बताओ; हम आपका बड़ाही उपकार मानेंगे। जैसे आपने उपदेश देकर हमको संसारसें बचा-

या, ऐसेही इस संशयसे भी बचाइये. आपके बिना और किसके आगे हम अपने दिलकी बातें करें ? तब श्रीविश्वचंदजीने श्रीआत्मारामजीके पास अपने चेले चंपालालजीके प्रत्यक्ष सवाल जवाब करके चंपालालजीको ठीकठीक निश्चय करा दिया. उस दिनसे चंपालालजीने भी शुद्ध श्रद्धा धारण की. बाद श्रीविश्वचंदजीने तो, लुधीयानासे विहार कर दिया, और रस्तेमें गुरु-के झंडीआलाके श्रावक “ मोहरसींघ ” “ वशाखीमल्ल मालकौंस ” और जमृतसरवाले लाला “ बूटेराय ” ज्वहरीको प्रतिबोध किया. तथा साधु “ हुकमचंदजी—हाकमरायजी ” को भी श्रीविश्वचंदजीने प्रतिबोध किया, इसतरह श्रीविश्वचंदजी, और चंपालालजीकी मददसे श्रीआत्मारामजीकी श्रद्धाके आदिमियोंकी गिनती बढ़ने लगी; और हुंढक श्रद्धान रूप अजीर्ण दूर होता चला. अनुक्रमे श्रीविश्वचंदजी वगैरह पट्टी गाममें गये. वहां लाला “ घसीटामल्ल ” जो पूज्य अमरसींहका मुख्य श्रावक था, तिसके साथ बातचीत हुई. जिससे लाला घसीटामल्लके दिलमें भी कितनेही शक पैदा होगये. तब घसीटामल्लने पूर्वोक्त संशयको दूर करके निर्णय करनेके वास्ते, श्रीविश्वचंदजीके कहनेसे अपने पुत्र “ अमीचंदजी ” को व्याकरण पढ़ाना शुरू कराया. जब वो पढ़कर तैयार होगया, तब घसीटामल्लने कहा कि, “ पुत्र ! किसीका भी पक्षपात न करना. जो शास्त्रमें यथार्थ वर्णन होवे, सो तू मुझे सुनाना. ” तब अमीचंदने कहा कि, “ पिताजी ! जो कुछ, श्रीमहाराज आत्मारामजी, तथा विश्वचंदजी वगैरह कहते हैं, सो सर्व ठीक ठीक है. और पूज्य अमरसींहजी, तथा उनके पक्षके हुंढक साधुओंका जो कुछ कथन है, सो सर्व असत्य, और जैनमतसे विपरीत है. ” यह सुनकर लाला घसीटामल्ल भी हुंढकमतको छोड़के शुद्ध श्रद्धानवाले होगये. पूर्वोक्त अमीचंद इस समय गुजरात—मारवाड—पंजाब वगैरह देशोंमें “ पंडित अमीचंदजी ” के नामसे प्रसिद्ध है, और प्रायः श्रीआत्मारामजीके संवेगमत अंगीकार किया पीछे, जितने नूतन शिष्य हुये, सर्वने थोड़ा बहोत जरूरही पंडितजी अमीचंदजीके पास विद्याभ्यास किया, बल्कि अबतक कियेही जाते हैं.

पट्टीसे विहार करके श्रीविश्वचंदजी, हुकमचंदजी, हाकमरायजी, चंपालालजी वगैरह श्रीआत्मारामजीके पास, जो लुधीयानासे विहार करके शहर “ जलंधर ” में आये हुये थे, पहुंचे. क्योंकि, वहां श्रीआत्मारामजीकी, और अजीवपंथी “ रामरतन ” और “ वसंतराय ” की अजीवपंथ संबंधी चर्चा होनेके वास्ते निश्चय होगया था. इस अवसर पर २७ शहरोंके श्रावक आये हुये थे, और पादरी तथा ब्राह्मण पंडितोंको मध्यस्थ नियत किया था. जिसमें रामरतन और वसंतराय हार गये, और श्रीआत्मारामजीकी जीत हुई. तथापि रामरतन वगैरहने अपना हठ छोड़ा नहीं. सत्य है कि, जि-
सका जो स्वभाव पड़जावे, मरणपर्यंत भी वो स्वभाव प्रायः तिसका दूर नहीं होता है.

यतः ॥ यो हि यस्य स्वभावोस्ति । स तस्य दुरतिक्रमः ॥

श्वा यदि क्रियते राजा । किं न अत्ति उपानहम् ॥ १ ॥

भावार्थः—जो जिसका स्वभाव है, वो तिसका दूर होना मुश्किल है. क्या यदि कुत्तेको राजा बनाइये, तो वो जुतीको भक्षण नहीं करता है ? अपितु करताही है.

जालंधरसे जयपताका लेकर विहार करके श्रीआत्मारामजी, तथा विश्वचंदजी वगैरह अमृतसरमें आये. और श्रीआत्मारामजीने, लाला “ उत्तमचंदजीकी ” बैठकमें उतारा किया, और

व्याख्यानमें “श्रीभगवती सूत्र” सटीक वांचना प्रारंभ किया। जो सुननेके वास्ते पूज्य अमरसींघजी भी, अपने सब चेलोंके साथ आया करते थे। श्रोताका जमाव इतना होता रहा कि, मकानमें बैठनेकी जगह भी मिलनी मुश्किल होगई। तब सबने सलाह करके व्याख्यानके वास्ते दूसरा बड़ा भारी मकान मंजूर किया, और वहां व्याख्यान होने लगा। श्रीआत्मारामजीका व्याख्यान-मृत सुन करके भी, श्रोताजनोंको तृप्ति नहीं होतीथी; अर्थात् श्रवण करनेकी तृष्णा, बढ़तीही जातीथी। उस समय पूज्य अमरसींघजी तो ऐसे मोहित होगये कि, एक दिन श्रीआत्मारामजीको कहने लगे कि, किसीतरह मेरे चेलोंको भी, यह ज्ञान, सिखाना चाहिये। जिससे जैनमतका बड़ा भारी उद्योत होवे। तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, “पूज्यजी साहिब ! व्याकरणका अभ्यास बिना किये, यह ज्ञान पाना बड़ाही मुश्किल है; इस लिये प्रथम इनको व्याकरण पढ़ाना चाहिये।” इससे पूज्य अमरसींघजीके प्रायः सब साधु उसवस्वत पंचसंधि पढ़ने लग गये।

एक दिन श्रीआत्मारामजीने व्याख्यानमें अवसर देखकर कहा कि, “पूर्वाचार्योंके कथन करे अर्थको छोड़कर, मनःकल्पित अर्थ करनेवालोंका परलोकमें स्वर नहीं क्या हाल होवेगा ?” यह सुनकर, पूज्य अमरसींघजीको गुस्सा आया; और सोदागरमल्ल ओसवाल, श्यालकोटका वासी, हुंढक श्रावकोंमें सुखी और जानकार किसी कारणसे अमृतसरमें आयाथा, तिसको कहने लगे कि, “आज काल आत्मारामको बड़ाही अभिमान आगया है, परंतु मैं इसका अभिमान दूर करूंगा, मेरे आगे यह क्या चीज है ?” सत्य है अपने चित्तका माना हुआ गर्व किसको सुखदाई नहीं होता है ?

यतः—टिट्ठिभः पादमुक्षिप्य, शेते भंगमयाहुवः ॥

स्वचित्तनिर्मितो गर्वः, कस्य न स्यात् सुखप्रदः ॥ १ ॥

भावार्थः—टिट्ठिभ (टटीरी) जानवर, मेरे पैर रखनेसे पृथिवीका भंग न होजावे ! इस भयसे अपने पैरोंको ऊंचे करके सोवे हैं। इसवास्ते अपने चित्तसे बनाया हुआ गर्व (अहंकार) किसको सुख देनेवाला नहीं है ?

अमरसींघको पूर्वोक्त अहंकारमें आये हुये जानके, सोदागरमल्लने समझाये कि, “पूज्यजी साहिब ! आप आत्मारामजीके साथ मत संबंधी चर्चा कदापि मत करो, यदि करोगे तो, याद रखना ! तुमारे मतकी जड़ काटी जायगी। मैंने अच्छी तरह समझ लिया है कि, इनके (आत्मारामजीके) सामने कोई भी जवाब देनेको समर्थ नहीं है।” सोदागरमल्लका पूर्वोक्त कहना सुनकर, पूज्य अमरसींघजी हैरान होगये और सुनकर चूपके हो रहे; और श्रीआत्मारामजीकी बराबरी करनेमें असमर्थ होकर, खुशामत करने लग गये। सत्य है “डरती हर हर करती।” श्रीआत्मारामजीको एकदिन एकांतमें ले जाकर ऐसे कहने लगे कि, “बेटा आत्मारामजी ! तू हमारे मतमें लाल (रत्न) पैदा हुआ है। इस वास्ते तुजको ऐसा काम करना चाहिये कि, जिससे हमारा तुमारा आपसमें मतभेद न पड़े।” तब श्रीआत्मारामजीने कहा, “पूज्यजी साहिब ! जो पिछले आचार्योंका लेख शास्त्रोंमें चला आयाहै, मैं उससे उलटी प्ररूपणा कदापि न करूंगा। और आपको भी यही उचित है कि, आप जरूर सत्यासत्यका निर्णय कर लेवें। क्योंकि, यह मन-

व्यका जन्म, वारंवार मिलना मुश्किल है. इस जूटे हठको छोड़दे. ” इत्यादि अनेक प्रकारकी हित शिक्षा, श्रीआत्मारामजीने अमरसिंघजीको दी. परंतु अमरसिंघजीको इस हित शिक्षाने कुछ भी फायदा नहीं किया. क्योंकि-

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ॥

ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति ॥ १ ॥

भावार्थः—अनजानको समझाना सुखाला है, इससे भी जो सखस अच्छे बुरेको समझता है, और हठी कदाग्रही नहीं है, ऐसे पंडितको समझाना अतीव सुकर (सुखाला) है. परंतु जो प्राणी, ज्ञानके दो अक्षर आनेसे दुर्विदग्ध होगया, (अर्थात् थोडासा पढ़के अपने आपको बृहस्पति तुल्य मानने लग गया, हठ कदाग्रहसे प्रीति करने लग गया) ऐसे सखसको तो ब्रह्मा भी रंजित नहीं कर सकता है. अर्थात् पूर्वोक्त लक्षणोंवाले पंडितायते (पंडिताभिमानी) को तो ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता है तो औरका तो क्याही कहना ?—गुस्ता करके अमरसिंघजी पराङ्-मुख हो गये. तब श्रीआत्मारामजीने भी विचारा कि—

उपदेशो हि मूर्खाणां, प्रकोपाय न शांतये ॥

पयःपानं भुजंगानां, केवलं विषवर्द्धनम् ॥ १ ॥

भावार्थः—मूर्खोंको उपदेश देना क्रोध बढ़ानेके वास्ते है, परंतु शांतिके वास्ते नहीं है, जैसे कि, सापको दूध पिलाना, केवल विषका बढ़ाना है. इस वास्ते इनको ज्यादा कहना, तुकशान कर्षा है, ऐसा विचारके श्रीआत्मारामजी भी अपने स्थानपर चले गये. कितनेक दिन पीछे अमरसिंघजी तो पट्टीको विहार कर गये; और श्रीआत्मारामजी विश्वचंदजी आदि अमृतसरसे विहार करके जालंधर शहरमें आये. और “खरायतीमल्ल” (श्रीआत्मारामजीका गुरुभाई) और “गणेशीलाल” (शिष्य) येह दो साधु, कितनेक दिन पहिलेही हुशीआरपुर चले गये थे. वहां इन दोनोंका आपसमें कलह हुआ, इससे गणेशीलाल मुहपत्तीका डोरा तोड़कर, श्रीआत्मारामजीको विना मालुम किये, हुशीआरपुरसे विहार करके शहर गुजरांवालामें “श्रीबुद्धिविजयजी” (बूटे-रायजी)* संवेगी तपगच्छके साधूके पास चला गया.

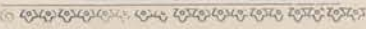
* तसबीर देखो. इन महात्माका जन्म, देशपंजाबमें लुधीआना शहरके तरफ बलोलपुरसे सात आठ कोश दक्षिणके तरफ दूल्वां गाममें टेकसिंघ नामा कुटुंबिक (कुणबी-पटेल) की कर्मों नामा खीकी कूखसे विक्रम संवत् १८६३ में हुआथा. माताकी आज्ञा लेके विक्रम संवत् १८८८ में इन्होंने संसार छोड़के, मलुकचंदके टोलेके नागरमल नामा ढुंढक साधूकेपास साधुपणा लियाथा. परंतु शास्त्रोंके देखनेसे, और देशदेशा-वर्षोंमें फिरनेसे, ठिकाने ठिकाने श्रीजिनमंदिरोंको देखनेसे, ढुंढकमत मनःकल्पित मालुम होनेसे, देश गुजरात शहर अहमदावादमें आके “गणिं श्री मणिबिजयजी” महाराजजीके पास अनुमान विक्रम संवत् १९११-१२में तपगच्छका वासक्षेप लेके, पूर्वोक्त महात्माको गुरु धारण करके, ढुंढकमतका त्याग करा. यद्यपि ढुंढकमतका श्रद्धान तो इन महात्माके मनसे विक्रम संवत् १८९३ में निकल गयाथा, परंतु पूर्वोक्त संवत् तक यथार्थ गुरु नहीं धारण करनेसे ऐसा लिखा है. इन महात्माका विशेष वर्णन जिसको देखनेकी इच्छा होवेतो, इनकी बनाई “मुहपत्ती चर्चा” नाम पोथीसे देखलेवें. इन महात्माके पांच शिष्य प्रायः अधिक



श्रीमन्
मुक्तिविजयजी गणि
(मूलचंदजी.)
आदिके सद्गुरु.



मुनिराज श्री वृद्धिचंदजी.
मूल नाम-कूपाराम, ज्ञाति-ओसवाल.
जन्म-सं० १८९०.
दीक्षा, सं० १९०८.
बालब्रह्मचारी.
श्रीमन् बूटेरायजीके शिष्य.
स्वर्गवास, सं० १९४९.



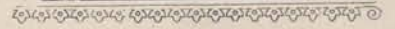
मुनिराज श्री खांतिविजयजी.
(तपस्वीजी.)

मूल नाम-खरायतिमल्ल.
दुंदक दीक्षा, सं० १९११.
संवर्गी दीक्षा, सं० १९३०.
श्रीमन् बूटेरायजीके शिष्य,
काठिआवाडमें विचरें हैं.
स्वर्गवास, सं० १९५९.
(जन्म चरित्र-पृष्ठ ४०.)



मुनिराज श्री नीतिविजयजी.

मूल सूरतके.
नाम-नगीनदास.
दीक्षा, सं० १९१३.
बहुधा खंभातमें रहे.
श्रीमन् बूटेरायजीके शिष्य.
स्वर्गवास, सं० १९४७.



मुनि श्रीमन्महोपाध्याय
श्री लक्ष्मीविजयजी
(विश्वचंदजी)

मूल-पुष्करणा ब्राह्मण.
दुंदक दीक्षा, सं० १९१४.
श्री आत्मारामजी के ये
बड़े और विद्वान शिष्य थे.
स्वर्गवास, सं० १९४०.
(ज. च. पृष्ठ ४४, ६०.)



मुनि महाराज
श्री १००८
श्री बुद्धिविजयजी
(बूटेरायजी).

जन्म-सं० १८६३.
दुंदक दीक्षा,
सं० १८८८.
स्वयंमेव संवर्गी दीक्षा,
सं० १९०३.
बाल ब्रह्मचारी.
तपगच्छ दीक्षा,
सं० १९११.
स्वर्गवास, सं० १९३८



ये गणेशीलाल श्री “बूटेरायजी” से संवेगी दीक्षा लेकर “विवेक विजय” नामसे विचरने लगा. और ठिकाने ठिकाने कहने लगा कि, “श्रीआत्मारामजीके अंदर शुद्ध सनातन जैनमतका श्रद्धा होगई है; और प्रत्यक्षमें ढुंढक भेष, और व्यवहार रक्खा है. परंतु ढुंढकमतकी आस्था, बिल्कुल नहीं है.” इसके ऐसे अनुचित समयमें इसतरहके कथनसे, और पूर्वोक्त काररवाई अंगीकार करनेसे कितनेही शहरोंके लोगोंको सनातन जैनमतकी शुद्ध श्रद्धा प्राप्त होनी बंध होगई. क्योंकि, बहुत अनजान लोकोंने विनाही समझे हठ कदाग्रह करके श्रीआत्मारामजी वगैरहके पास जाना आना बंध करदिया.*

जालंधरसे विहार करके श्रीआत्मारामजी, “हुशीआरपुर” गये. और संवत् १९२३ का चौमासा वहांही किया; जिस चौमासेमें “भक्त नथुमल्ल, विल्लामल्ल, मानामल्ल” वगैरह बहुत लोकोंने शुद्ध सनातन जैनमतका श्रद्धान अंगीकार किया. और लाला “गुज्जरमल्ल” वगैरह कितनेक अंतरंग शुद्ध श्रद्धानवाले थे, उनका श्रद्धान परिपक्व होगया. चौमासे बाद हुशीआरपुरसे विहार करके दिल्लीशहर तरफ गये, और संवत् १९२४का चौमासा, दिल्लीसे विहार करके जमना नदीके पार, “विनौली” गाममें जा किया; जहां भी कितनेही लोकोंने सनातन जैनधर्मका श्रद्धान अंगीकार किया. इस चौमासेमें श्रीआत्मारामजीने “नवतत्त्व” ग्रंथ बनाना शुरु किया; चौमासे बाद विचरते विचरते “डोगर” नाम गाममें गये, जहां एक “रणजीतमल्ल” ओसवाल जो मारवाडसे पंजाब देशको रामबक्षके साथ आयाथा, श्रीआत्मारामजीको मिला; तब श्रीआत्मारामजीने तिसको पुराणा मिलापी समझके, यथार्थ तत्त्वका स्वरूप सुनाया; क्योंकि, प्रथम भी जयपुर दिल्ली वगैरहके चौमासेमें श्रीआत्मारामजी “रणजीतमल्ल” को कई प्रकारका ज्ञान पढाते रहेथे. इस बातसे रणजीतमल्लके मनमें शक पैदा होनेसे ढुंढक “चंदनलालजी” साधुको, (जो जोगराजीये ढुंढक रुडमल्लजीके चेले थे—“श्रीआत्मारामजी” भी जोगराजियेही कहातेथे) श्रीआत्मारामजीके पास ले आया. चंदनलालजीने “श्री आत्मारामजी” से साधुके उपगरण, और प्रतिक्रमण संबंधी बातचित करी, तब “श्रीआत्मारामजी” ने शास्त्रके पाठ, चंदनलालजीको दिखलाया. देखतेही “श्रीचंदनलालजी” ने “श्रीआत्मारामजी” का कहना, सत्य सत्य अंगीकार कर लिया; परंतु रणजीतमल्लने हठ नहीं छोडा, और कहने लगा कि, मेरे साथ तो ऐसा हुआ, “लेनेगई पुत, खो आई खसम” “मैं तो श्रीआत्मारामजीको समझानेके वास्ते, श्रीचंदनलाल-

प्रसिद्ध हुये. जिनमें भी श्रीमद्विजयानंदसूरि (आत्मारामजी) अधिकतर प्रसिद्ध हुए हैं. तिन पांच शिष्योंके नाम—(१) श्रीमुक्तिविजयजी गणि (मूलचंदजी) (२) श्रीवृद्धिविजयजी (वृद्धिचंदजी) (३) श्री नीति विजयजी (४) श्रीखातिविजयजी (५) श्रीमद्विजयानंदसूरि (आत्मारामजी) जिनमेंसे श्रीमुक्तिविजयजीकी छबी मिली नहीं, दूसरे महात्माओंकी छबी आगे देखलेवें.

* इस समयमें भी ऐसेही होरहाहै. संवेगी साधुके पास कोई जाना न पावे, इसवास्ते ढुंढक साधु हरएक अपने श्रावक जो कि कोरे रहगयेहैं, तिनको प्रतिज्ञा प्रायः कराते हैं कि संवेगी साधुके पास जाना नहीं, तिनका उपदेश सुनना नहीं, तिनको वंदना करनी नहीं, अहार पानी देना नहीं; जैसे कि पिछले दिनोंमें श्रीआत्मारामजी पशरूरमें गयेथे, जहां पानीके न मिलनेसे उसही दिन पीछली पहरको विहार करना पडा; होय, ! अफसोस ! कैसी समझ ! ढुंढकश्रावकोंमें भी कितनेक हठग्राही अनजानोंने ऐसा बंदोबस्त प्रायः कियाहै कि “संवेगी साधु आवे, उसके पास जावे, पचास दंड पावे, नहीं तो जातबहारथावे.” ऐसा सुननेगं आता है.

जीको लेआया था; परंतु यहां तो, उलटे श्रीचंदनलालजी भी, फस गये ! ” श्रीआत्मारामजीने भी अयोग्य समझके उपेक्षा करली. श्रीचंदनलालजीने जाकर अपने गुरु “रुडमल्ल” जीको श्री-आत्मारामजीका कहना सुनाया. तब रुडमल्लजीने कहा, “श्रीआत्मारामजीका कथन सत्य है, हम भी ऐसेही मानेंगे, प्रथम भी हमारे मनमें कितनेही संदेह थे, सो अब निकल गये. ” ऐसे श्री-रुडमल्लजीने भी शुद्ध श्रद्धान अंगीकार करलिया. बाद शेषकाल और और ठिकाने विचरके सं-वत् १९२५ का चौमासा श्रीआत्मारामजीने “ बडौत ” गाममें किया; जहां “ नवतत्त्व ” ग्रंथ समाप्त किया. जिस ग्रंथको देखनेसेही, ग्रंथकर्त्ताकी बुद्धिवैभव मालूम होताहै.

इधर पंजाब देशमें, “श्रीआत्मारामजी” की श्रद्धावालोंकी कुच्छ वृद्धि होती देखके, ढुंढकोंके पूज्य अमरसिंघजीने, एक लेख (मेजरनामा) तैयार कराया; जिसमें लिखवाया कि, “ जो कोई जिन प्रतिमाके माननेका, वा पूजनेका उपदेश करे, डोरेके साथ मुखपर बंधीहुई मुहपत्तीको निंदे, (अर्थात् न माने,) और बावीस अभक्ष्य (नहीं खाने योग्य वस्तुओं) का नियम करावे, उसको, अपने समुदायसे बाहर निकाल देना. ” ऐसा लेख लिखवाके, सब साधुओंके प्रायः हस्ताक्षर करालिये, जिसमें श्रीआत्मारामजीके गुरु, “जीवणमल्लजी ” के भी छल करके दसखत करालिये. और “ जीवणमल्ल, ” “ पन्नालाल ” वगैरह चार साधुओंका लेख देकर “ श्रीआत्मारामजी” के पास, दसखत करानेके वास्ते भेजे, और दिल्लीके तरफ ऐसे पत्र लिखवा भेजे कि, “आत्माराम” की श्रद्धा जिन प्रतिमा पूजनेसे मुक्ति माननेकी, बावीस अभक्ष्य वस्तु नहीं खानेकी और मुखोपरि डोरेसे मुहपत्ती नहीं बांधनेकी होगई है. इसवास्ते हमने उसको इस देशसे निकाल दिया है, तुम भी अपने देशमें आत्मारामको रहनेमत दो तथा आत्मारामकी संगत मत करो. पंजाब देशमें भी गामोगाम और शहर शहर, पत्र भेजवाये कि, “ आत्मारामकी श्रद्धा अष्ट होगई है, इसवास्ते तुम आत्मारामकी संगत मत करो. ” परंतु जो लोग जानते थे कि, श्रीआत्मारामजी जैनमतके शास्त्रानुसारही, कथन करते हैं, और ढुंढक लोग अपनी मनःकल्पित बातें बताते हैं वे लोग तो, पत्रको देखके पत्र भेजने भेजवानेवालोंकी हांसी करने लगे, और कहने लगे कि, “ ढुंढक लोक फक्त दूर दूरसेही तडाके मारते हैं. परंतु श्रीआत्मारामजीके सामने, कोई भी नहीं हो सकता है, जिसका मूलकारण यह है कि, ढुंढकलोक “ व्याकरण ” को “ व्याधिकरण ” मानके तिसका अभ्यास नहीं करते हैं. और श्रीआत्मारामजीके परिवारमें तो, प्रायः व्याकरणका प्रचार मुख्य है. यह तो प्रगटही है कि, “ विद्वानके साथ मूर्खकी बात होही नहीं सकती है. ”

जीवणमल्ल, पन्नालाल वगैरह साधु, अमरसिंघजीका दिया हुआ लेख लेकर, विहार करके “कांधला” गाममें आये कि जहां “श्रीआत्मारामजी” बडौतसे विहार करके आये हुए थे और “श्रीआत्मारामजी” से मिले तब जीवणमल्लजी तो चूपही रहे, और पन्नालालने “श्रीआत्मारामजी” से कहा कि, “तुम भी, इस लेखपर अपने दसखत कर दो; अन्यथा समुदायसे बहार होना पड़ेगा.” तब श्री आत्मारामजीने कहा कि, “मेरे गुरुजी तो कुच्छ भी नहीं कहते हैं, तो तू दसखत करानेवाला कौन है ? ” सुनकर पन्नालाल तो, कांपने लग गया. और जीवणमल्लजीने कहा कि, “मैं क्या करूं ? मेरेपास, जोरावरी दसखत छल करके करा लिये हैं.” तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, “ महाराजजी ! आप कुच्छ चिन्ता न करें; मैं आपही संभाल लेऊंगा. ”

ऐसा कहकर अपने गुरुको धीरज देके गुरुके साथही विहार करके “श्रीआत्मारामजी” शहर दिल्लीमें गये. दिल्लीके ढुंढक श्रावकोंने, अमरसिंघजीके पत्र पहुंचनेसे इरादा किया कि, “आत्मारामजी”को चरचामें निरुत्तर करके निकाल दें. परंतु वहांपर “श्रीआत्मारामजी”ने श्री “उत्तराध्ययन” सूत्र सटीक अध्ययन २८ मा व्याख्यानमें वांचना शुरु किया. जिसके सुननेसे दिल्लीके श्रावक बहुत खुश हुए कि, “हमने आजतक किसी भी ढुंढिये साधुका इसतरहका व्याख्यान नहीं सुना.” व्याख्यानके सुननेसेही लोगोंको निश्चय होगया कि, “हम यदि इनसे चरचा करेंगे तो जरूर हम हार जावेंगे. क्योंकि, यह बड़े पढ़े हुए हैं, हमारी शक्ति इनको जवाब देनेकी नहीं है. और चरचाके होनेसे, यातो समग्र, नहीं तो आधे तो, जरूरही इनके पक्षमें होजावेंगे. इस वास्ते चरचा चुरचाको छोडके, जिसतरह भाव भक्तिके साथ विहार करजावे वैसा करना चाहिये.” ऐसा निश्चय करके सब चूपके होरहे. सत्य है—

तावद्गर्जति खद्योत, स्तावद्गर्जति चंद्रमाः ॥

उदिते तु सहस्रांशौ, न खद्योतो न चंद्रमाः ॥ १ ॥

भावार्थः—तबतकही खद्योत (जगनु-सज्जुआ-टटाणा-आगीआ) गर्जताहै, (अर्थात् अपना चांदना दिखाताहै) और तबतकही चंद्रमा भी गर्जताहै कि, जबतक सूर्यका उदय नहीं होता है, जब सूर्योदय होताहै तो, फिर न तो खद्योत, और न चंद्रमा, दोनोंमेंसे कोई भी नहीं गर्जताहै.

दिल्लीसे विहार करके, “श्रीआत्मारामजी,” “लुहारा” गाममें आये, जहां रातके समय फिर जीवनमल्लजी रोकर कहने लगे कि, “आत्मारामजी! तैने कब भी मेरे हुकुमका अपमान नहीं किया है. मैं अच्छी तरांह जानताहूं कि, तूं बडाही विनयवान है, परंतु मैं क्या करूं? अमरसिंघके बहकानेसे तेरे जैसे लायक शिष्यके साथ अणबनाव (नाइतफाकी) का काम, मैंने किया, जोकि, बिना विचारे लेखपर मैंने अपने दसखत करदिये. अब मैं इस बातका बडा पश्चात्ताप कर रहा हूं.” तब फिर भी “श्रीआत्मारामजीने” धीरज देकर कहाकि, “स्वामीजी! आप इसबातका बिलकुल फिकर न करें, अपना पुण्यतेज होवे तो, दुश्मन क्या करसकता है? यदि अमरसिंघने दसखत करालिये हैं तो, क्या हुआ? और अमरसिंघ मेरा क्या कर सकताहै?” यह सुनकर, जीवनमल्लजी चूप होगये. बाद लुहारा गामसे विहार करके “श्रीआत्मारामजी,” बडौत गाममें आये, जहां श्री आत्मारामजीको मालुम हुआ कि, दिल्लीके कितनेही ढुंढक श्रावकोंने, अमरसिंघजीके पत्रकी प्रेरणासे, बहुत शहरोंमें पत्र भेजेहैं, जिनमें लिखाहै कि, “आत्मारामजीकी श्रद्धा, ढुंढकमतसे बदल गई है, और पूज्यजी साहिब अमरसिंघजीने, इनको पंजाब देशसे निकाल दिया है, इत्यादि”—इस वर्णनके सुननेसे, “श्रीआत्मारामजीने” अपने दिलमें पूर्ण धर्मश्रद्धा होजानेसे विचार किया कि, “जहां मैं जाऊंगा, वहांही इस तरहके पत्र प्रथमही पहुंच गये होंगे. इस तरह तो किसी जगह भी रहना नहीं होसकेगा, इसवास्ते पीछे पंजाबदेशमेंही जाना ठीक है. जैसा होवेगा, देखा जायगा. यद्यपि इसबखत पंजाबमें, निःशंक होके, मुजे मदद देनेवाले कोई नहीं है, तथापि सच्चे धर्मके प्रतापसे, कोई न कोई, पुण्यवान्, साहायक, होजावेगा.” ऐसा निश्चय करके, “श्रीआत्मारामजी” बडौतसे विहार करके शहर अंबालामें आय, और

निडर होकर, यथार्थ सत्य सनातन जैनधर्मका उपदेश, जो कि इतने समयतक प्रच्छन्नपणे किसी किसीको सुनाते थे पर्यदाके बिच सुनाने लगगये, जिससे “जमनादास” “सरस्वतीमल” “नानकचंद” “गोंदामल्ल”, “गंगाराम,” “लालचंद,” आदि बहुत श्रावकोंने जैनमतका सच्चा श्रद्धान, अंगिकार किया, जिससे “श्रीआत्मारामजी”को भी, उत्साह अधिक हुआ. सत्यहै, ‘साचको आंच कभी नहीं.’

अंबालासे विहार करके “पटियाला, नाभा” होकर “मालेरकोटला”में आये. और सत्यधर्मकी प्ररूपणा करी, जिसको बहुत श्रावकोंने अंगिकार की, और चौमासा करनेके लिये विनती की. चौमासेको देर होनेसे कोटलेसे विहार करके “श्रीआत्मारामजी” शहर “लुधियाना” में आये, और खुब सन्मार्गका प्रकाश किया. यहां “घोलुमल्ल, सेढमल्ल, वधावामल्ल, निहालचंद, प्रभदयाल नाजर” वगैरह श्रावकोंके दिलसे हुंढक तिमिरका नाश किया, और एक महीने बाद विहार करके, संवत् १९२६ का चौमासा, “मालेरकोटला” में जा किया, और भव्य जीवोंको प्रतिबोध दिया. चौमासे बाद कोटलासे विहार करके एक शिष्यकी लालचसे, “श्रीआत्मारामजी” बिनौलीके तरफ गये. और संवत् १९२७ का चौमासा, बिनौलीमें किया. और अध्यात्ममय “आत्म बावनी” नाम छोटासा ग्रंथ तैयार किया. इधर पंजाब देशमें “श्रीविश्वचंदजी, हुकमचंदजी” वगैरह, बड़े बड़े शहरोंमें फिरकर प्रच्छन्नपणे श्रावकोंको प्रतिबोध करने लगे, जिससे “श्रीआत्मारामजी” के श्रावकोंकी वृद्धि होती रही.

चौमासे बाद बिनौलीसे विहार करके “श्रीआत्मारामजी”, अंबाला पटियाला, नाभा, कोटला, रायदाकोट होते हुए “जगरांवा” गाममें आये; और जगरांवासे विहार, “जिरा”को किया. रस्तेमें “किशनपुरा” गामके पास, दैवयोगसे अनायासही, कितनेही चेलोंके साथ “पूज्य अमरसिंघजी” जोकि जिरासे विहार करके जगरांवाको आते थे, “श्रीआत्मारामजी”को मिले. “श्रीआत्मारामजी” को देखके, लाल आंसे करके, रस्ता छोडके, किनारे होके, जाने लगे. तब श्रीआत्मारामजीने, जोरावरी हाथ पकडके, अमरसिंघजीको बेठा लिया. वंदना करके, सुखसाता पूछके, हाथ जोडके, नम्रता करके, पूछाकि, “पूज्यजी महाराज. मैंने आपका क्या गुनाह किया है? आपने मेरे ऊपर इतना गुस्सा क्या किया?” तब पूज्य अमरसिंघने लाल आंसे करके कांपते कांपते कहा कि, “तू लोगोंके आगे कहता फिरता है कि, अमरसिंघ मेरी रोटी, वंदना वगैरह बंध कराता है. सो तू इस बातको सत्य करदे, नहीं तो अट्टाइ (आठ व्रत) का दंड ले.” तब “श्रीआत्मारामजी” ने कहाकि “महाराजजी!” “मोहनलाल,” और “छज्जुमल्ल” तुमारे श्रावकोंने, यह समाचार कहाहै. यदि यह बात सत्य है तो, इसका दंड आपको लेना चाहिये. और यदि जूठ है तो, “मोहनलाल, छज्जुमल्ल” तुमारे श्रावकोंको यह दंड लेना चाहिये. परंतु मुजे किसीतरह भी, दंड नहीं चाहिये. यह सुनकर, अमरसिंघजी निरुत्तर होगये, और क्रोध करके परामुख होकर, अपने रस्ते चलते होगये. सत्य है “जूठको क्रोधकाही शरण है.” श्रीआत्मारामजी वहांसे चलकर, जिरामें गये. यहांके ओसवालोंको अमरसिंघजी धीरज देकर, बड़े पक्के करके कहगयेये कि, “तुम आत्मारामका कहना, नहीं मानना.” परंतु जिराके लोग बड़े अकलमंद, और इलमवाले होनेसे, “श्रीआत्मा-

रामजी ” के पास आकर प्रश्नोत्तर करने लगे. प्रश्नोंका जवाब पूरा पूरा मिलनेसे कितनेही श्रावक तो, उसी वखत शुद्ध मार्गमें आगये, और कितनेकने यह दावा किया कि, “ हम ढुंढक साधु-ओंको पूछके, निर्णय कर लेवेंगे, पीछे जो हमको सत्य सत्य मालुम होवेगा, अंगिकार करलेवेंगे.” ऐसे कहकर, पंजुराम वगैरह चार पांच श्रावक, “पटियाला” शहरमें, “ रामबक्षजी ” के पास गये, और कितनेही प्रश्न किये; परंतु एक बातका भी ठीक ठीक उत्तर न मिला. अंतमें रामबक्षजी-ने गुस्सेमें आकर कहा कि, “ तुमारे अंदर अज्ञान बढगया है. यदि तुमको हमारे ऊपर निश्चय है तो, जैसे हम कहते, और करते हैं, वैसही करे जाओ, नही तो तुमारी मरजी. आवश्यक जो हमारे पास है, सोही है, तुमारे वास्ते हम कोई नया अवश्यक बनावे क्या ? ” तब उन श्रावकोंने कहा कि, “ महाराजजी साहिब! आप गुस्सा न करें. क्योंकि, “ श्रीआचारांग ” वगैरह सूत्र प्राकृत वाणीमें है तो आवश्यक भी, प्राकृतवाणीमेंही होना चाहिये; और आपके पास जो है, सो गुजराती वगैरह भाषाओंसे मिश्रित खीचडी हुआ हुआ है. इसको सच्चा किसतरह माना जावे ? ” तब रामबक्षजीने कहा, “ तुम बहोत झगडा मत करो. तुमारी श्रद्धा तुमारे पास, और हमारी श्रद्धा हमारे पास. ”

यह सुनकर उनको निश्चय होगया कि, जो कुछ श्रीआत्मारामजी बताते हैं, सब सत्य है. और ढुंढक साधुओंका कहना, असत्य है. तब रामबक्षजीके पासही ढुंढकमतको त्यागन करके जिरे चले गये; और सब वृत्तांत, जिरेके लोगोंको कह सुनाया. सुनकर सबनेही श्रीआत्मारामजीका कहना सत्य मानकर, शुद्ध श्रद्धान अंगिकार करलिया. इसवखत जीवणमल्लजी श्रीआत्मारामजीके ढुंढक अवस्थाके गुरु भी, जिरामें आपहुंचे, उनको भी सत्य धर्मका कुछ असर होगयाथा. परंतु “ फिरोजीपुर ” जानेंसे वहांके ढुंढीयोंके बहकानेंसे बहक गये.

जिरेमें श्रीआत्मारामजीने कल्याणजी साधुको समझाया, और सन्मार्ग अंगिकार कराया. यह बात सुनकर पूज्य अमरसिंघने हुकुमचंदको, कल्याणजीके साथ पत्र भेजकर “ भदौड ” गाममें बुलाया. और गुस्से होकर कहा कि “ तूं मेराही घर पुटने लगा है ? तूं कल्याणजीको लेकर क्यों जिरेंको गयाथा ? ” तब हुकुमचंदजीने शांति करके कहा कि, “ स्वामीजी ? मैं भूलगया. मेरा गुन्हा माफ करें. आगेको ऐसा नकरूंगा. ” यह नम्रता करनेका सबब यह था कि हुकुमचंदजी अच्छी तरह जान गयेथे कि, ढुंढकमत मनःकल्पित है. परंतु अबतक हमको इस घरमें रहकर बहोत कुछ कार्य करनेके हैं, इसवास्ते धीरजसे जो बने सो अच्छा है--सत्य है--सहज पके सो मीठा हो. इसबखत विश्वचंदजी भी, वहां आये हुयेथे. उनोंने भी पूज्यजीको समझायके शांत करे और श्रीविश्वचंदजी वगैरह विहारकी तैयारी करने लगे. तब अमरसिंघजीने कहा, “ रस्तेमें जिरेंसे विहार करके जगरावामें आकर आत्माराम बैठा है, उसको मिलनेका नियम करो. ” तब श्रीविश्वचंदजीने कहा, “ हम नही मिलेंगे. ” ऐसा कहकर विहार करके जगरावामें आये, और श्रीआत्मारामजीको मालुम न होवे ऐसे पृथक् मकानमें जा उतरे. परंतु क्या चांद निकला ली-पा रहता है ? एक ओसवालने जाके श्रीआत्मारामजीको मालुम किया. कि, “ श्रीविश्वचंदजी आये हैं, और फलाने मकानमें उतरे हैं. ” यह सुनतेही श्रीआत्मारामजी बडे खुश हुवे, और विश्वचंदजी जिस मकानमें उतरे थे, वहां जाकर कहने लगे कि, “ मिलनेका नियम तु-

मको पूज्यजीने कराया है, परंतु मुझे तो नहीं कराया है? मैं तुमको मिला, तुम मुझे नहीं मिले, इसवास्ते तुमारा नियम भंग नहीं है।” तब श्रीविश्वचंदजीने कहा कि “महाराजजी! मनसें तो हम सदाही आपके साथ मिले हुये हैं। क्योंकि, आपने शुद्ध सनातन जैनमतका यथार्थ स्वरूप दिखलाके हमारे ऊपर जो उपकार किया है, हम इसका बदला भव-भवमें भी नहीं दे सकते हैं। परंतु क्या करें? अपनी मतलब सिद्ध करनेके वास्ते, ऊपर ऊपरसे जुदाई रखते हैं। यदि इतनी भी जुदाई न रखे तो, पूज्यजी नाराज हो जाते हैं; और उनके नाराज होनेसे अपना कार्य, सिद्ध होना मुश्किल है।” तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि “खबरदार? पूज्यजीसें अलग होनेका इरादा, कदापि न करना; जबतक यह वियमान् है, इनको दुःख न होना चाहिये, पीछे जो तुमारी मरजी होवे, तुम करना, क्योंकि तुमारे अलग होनेसे पूज्यजीको ज्यादा दुःख होवेगा। और तुम जो कार्य करना चाहते हो, वह भी पूर्ण न होवेगा।” इत्यादि हित शिक्षा देकर श्रीआत्मारामजी श्रीविश्वचंदजीको हाथ पकड़के अपने मकानमें जहां आप उतरेथे, लेगये, और बड़े आनंदपूर्वक ज्ञानालाप किया। दूसरे दिन श्रीविश्वचंदजी जगरांवासें विहार करके “लुधीआना” तरफ गये, और श्रीआत्मारामजीने भी लुधीआने जानेकेवास्ते श्रीविश्वचंदजीसें एक दिन पीछे विहार जगरांवासें किया। परंतु रस्तेमें वर्षाके सबबसें दैवयोगसें अनायासही सात कोशपर “बोपारामा” गाममें, दोनोंका मिलाप होगया। वहां कोई भी ओसवाल टुंडकका उपद्रव न होनेसें, दोनोंही अपने साथके साधुओं सहित एकही मकानमें उतरे, और खूब आनंदसें ज्ञानगोष्ठी करते रहें। संध्याका प्रतिक्रमण भी, एकत्रही किया। तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, “तो आज मैं तुमको श्रीमहावीर स्वामीके शासनका प्रतिक्रमण विधि सहित कराऊं।” प्रतिक्रमणका विधि देखके, सब साधु चकित हो गये, और कहने लगे कि, “महाराज हमारे नसीबमें भी कभी ऐसी विधि कहनेका दिन आवेगा और यह जैनाभास टुंडक मनःकल्पित फासी हमारे गलेसें फाटी जायगी?” तब श्रीआत्मारामजीने कहा, “धैर्य रखो, हिम्मत मत हारो, सब अच्छा होजायगा।” दूसरे दिन विश्वचंदजी वगैरह, पमाल होकर लुधीआने पहुंचगये। और श्रीआत्मारामजी, एक दिन पीछे लुधीआना शहरमें पहुंचे। यहां भी जूदे जूदे मकानमें उतरे। परंतु श्रीआत्मारामजीका व्याख्यान सुननेको, निरंतर श्रीविश्वचंदजी वगैरह आतेथे। जिनमेंसें एक साधु “धनैयालाल” नामा जिसको ऐसी उंधी पाटी पढा रखीथी कि, आत्माराम जहेरके बूटे लगाता है। साधुओंके बहुत कहनेसें एक दिन कथा सुनने गये। सुनकर कहने लगे कि, “यह तो सत्य सत्य कथन करते हैं। इनको क्यों असत्प्रलार्थी कहते हैं? ऐसा अपने मनसें विचारके “गणेशजी” नामा अपने गुरु भाईसें पूछा कि, “तुम जो मेरे दूसरे साधुओंके पास अनिष्ठाचरण कराते हो और तुम खुद भी करते हो, सो ऐसा काम करना, किस जैनमतके शास्त्रमें लिखाहै? वो पाठ मुझे दिखलादो, अन्यथा आज पीछे ऐसा काम मैं कभी भी न करूंगा।” तब गणेशजी साधुने कहा कि, “भाई! साधुओका काम ऐसेही चलता है।” तब धनैयालालने कहा कि “पहेले चलगया सो चलगया अब आगे तो जबतक शास्त्रका पाठ नहीं दिखावोगे तबतक नहीं चलेगा।” ऐसा कहकर धनैयालालने भी श्रीआत्मारामजीका कथन सत्य सत्य अंगिकार कर लिया। यह बात अमर-

सिंहजीको पत्रद्वारा भदौडमें मालुम हुई. तब चिंताके सबबसे अमरसिंहजीको ताप चढने लगा, और तापके बिच बकवाद करने लगे, और “तुलशीराम ” नामक अपने चेलेसे कहने लगा कि, “सुठ ! लुधीआने चलके आत्मारामको सरकारमें कैद करादेवें ! क्योंकि, इसने मेरे सब चेले बहका दिये हैं. ” तब तुलशीरामने बहुत धीरज देके शांत किया. क्योंकि, तुलशीरामकी भी श्री आत्मारामजीकीही श्रद्धा थी, इसवास्ते जानतेथे कि, यह जूठे ढोंग करते हैं.

कितनेक दिनों पीछे अमरसिंहजीकी तरफसे पत्र ऊपर पत्र आनेसे, लाचार होकर श्री विश्वचंदजी लुधीआनेसे विहार करके, अंबाला शहरमें जा चौमासा रहे; और श्री आत्मारामजीने संवत् १९२८ का चौमासा, “लुधीआने” मेंही किया.

चौमासे बाद श्रीआत्मारामजी, लुधीआनासे विहार करके “हुशीआरपुर ” में आये. वहां श्री विश्वचंदजी वगैरह बारा (१२) साधुओंने अमरसिंहके कितनेक साधुओंका भ्रष्टाचार मालुम होनेसे अमरसिंहजीको कहा कि, “इन चौथे व्रतके भ्रष्टाचारियोंको रखना आपकी योग्य नहीं ” तब अमरसिंहने, उनका कहा नहीं माना; और कहा कि, “ तुमारी श्रद्धा भ्रष्ट होगई है; तुमारा हमारा रस्ता पृथक् पृथक् है. ” तब श्रीविश्वचंदजीने बहुत नम्रतासे कहा कि, “पूज्यजी साहिब! आप विचार करें ! अन्यथा पीछे आपको बड़ा पश्चात्ताप करना पडेगा. ” परंतु अमरसिंहजीने बिलकुल शोचा नहीं. तब श्रीविश्वचंदजी वगैरह अमरसिंहजीसे अलग होकर श्री-आत्मारामजीको आन मिले, जब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, “ तुमने अच्छा काम नहीं किया. बिना अवसर अलग होगये ! अभी अलग होनेका समय नहीं था. ” तब श्री-विश्वचंदजी वगैरहने कहा कि, “ हम क्या करें ? हमतो बहोतही समझाते रहें, परंतु पूज्यजी साहिब बिलकुल नहीं समझे. क्या हम भी उन भ्रष्टाचारियोंके साथ मिलकर, अपना जन्म निष्फल करें ? ” तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, “ अच्छा जो होवे सो हो. परंतु यदि तुमको इस देशमें विचरना होवे तो, जोर लगाकर शहरोंशहर, और गांधोंगाममें फिरके शुद्ध श्रद्धानका उपदेश करके श्रावकसमुदाय बनाओ. क्योंकि, बिना श्रावकसमुदायके इस पंचम कालमें, संजमका पालना कठिनहै. और यदि इस देशमें विचरना न होवे तो, चलो गुजरात देशमें चलके शुद्ध सनातन जैनधर्मके अव्यवच्छिन्न परंपरायके गुरु धारण करें; और उसी देशमें फिरें. ” तब कितनेक साधुओंने कहा कि, “ महाराजजी साहिब ! यह काम हमसे नहीं बनेगा. इस देशको तो हम कदापि न छोडेंगे. इसवास्ते आपकी आज्ञानुसार हम, दो दो तीन तीन साधु, अलग अलग विचरके क्षेत्रोंमें श्रावक समुदाय बनावेंगे. यह कोई बड़ी बात नहीं है. क्योंकि, प्रायः सबही क्षेत्रोंमें पैर रखने जितना ठिकाना तो, आपने, और आपकी मददसे हमने भी कर रखा है. ” ऐसा कहकर श्रीविश्वचंदजी वगैरह बारासाधु अमरसिंहजीको छोडके आये थे वे, और आठ साधु जोगराजके, श्रीआत्मारामजी वगैरह, कुल बीस साधु; चारों तरफ जूदे जूदे शहरोंमें अपने पक्षके श्रावक समुदाय बनानेके वास्ते, विचरने लगे. वे सर्वक्षेत्रोंमें प्रायः सत्योपदेशद्वारा अपना बिलौना बिछाते चले, और ढुंढकोंका बिलौना उठाते चले. ऐसे करते करते श्रीआत्मारामजी, तथा श्रीविश्वचंदजी वगैरह साधुओंने “हुशीआरपुर, ” “ जालंधर, ” “ नीकोदर, ” “ झंडी-आला, ” “ अमृतसर, ” “ पट्टी, ” “ वेरोवाल, ” “ कसूर, ” “ नारोवाल, ” “ सनखतरा, ” “ जीरा, ” “ कोटला, ” “ अंबाला, ” “ लुधीआना, ” “ लाहोर, ” “ रोपड, ” “ जेजो, ”

“सरहिंद, ” “ कुजरांवाला, ” (गुजरांवाला) “ रामनगर, ” “ पसररु, ” “ जंबु, ”
वगैरह बहुत स्थानोंमें अपने पक्षके श्रावक बनाये. इधर यह कारवाई देखकर, पूज्य अमरसिंह-
जीको घभराट होगया; और रुदन करके अपने श्रावकोंको कहने लगे कि, “ मेरे अच्छे
अच्छे पढ़ेहुये बारा चले आत्मारामके पास चलेगये, और आत्मारामके साथ मिलकर पंजाबके
सब शहरोंको बिगाड रहे हैं. इससे मेरे बाकी शेष रहेहुये चेलोंके वास्ते बड़ी मुश्किल होगी, और
आहार पानी भी मिलना मुश्किल हो जावेगा. इसवास्ते इस बातका बंदोबस्त करना चाहिये.
यदि तुम इस बातका बंदोबस्त न करोगे तो, मैं इस पंजाब देशको छोडके मारवाड वगैरह देशमें
जाकर, अपनी जींदगी गुजारंगा ! ! ”

तब “ पटियाला ” वगैरह दो तीन शहरोंके ढुंढक श्रावकोंने, पूज्य अमरसिंहजीके लिखाये
मुजब, पत्र लिखकर ब्राह्मणको देकर प्रायः पंजाबके सब शहरमें भेजे, जिसमें लिखाथा कि, आ-
त्मारामजी वगैरह जितने साधु, ढुंढकमतसे उलटी श्रद्धावाले होवे, उनको किसी भी श्रावक वंदना
नहीं करे; उतरनेको जगा नहीं दे; दस्त्रपात्र नहीं दे; आहार पानी भी नहीं देना; इनका उपदेश
भी नहीं सुनना; इनकेपास जाना भी नहीं; सामायिक भी नहीं करना, वगैरह यह खबर हुशीआर-
पुरके श्रावकोंने भी सुनी, तब “ नथुमल्ल ” भक्त, लाला “ प्रभुदयालमल्ल ” आदि बहुत श्राव-
क कहने लगे कि, “ जिसने यह पत्र भेजवायें हैं, इनकेवास्तेही यह बंदोबस्त है. ” और
शहरोंवालोंनेभी यही जबाब दिया. संवत् १९२९ का चौमासा, श्रीआत्मारामजीने जिरामें
किया. और श्रीविश्रचंदजी वगैरह साधुओंने भी, जूदे जूदे क्षेत्रोंमें चौमासा किया. चौमासे
बाद सर्व साधु पूर्वोक्त रीतिसें फिरते रहे. और लांकोंको सत्योपदेश सुनाते रहे. जिससे अनु-
मान सात हजार (७०००) श्रावकोंने ढुंढकमत छोडके, शुद्ध सनातन जैनधर्म, अंगिकार
किया. संवत् १९३० का चौमासा, श्रीआत्मारामजीने अंबाला शहरमें किया, वहां श्रीहुक-
मचंदजीकी प्रार्थनासे चौबीस भगवान्के चौबीस स्तवन, बडे गंभीर अर्थ, और वैराग्य रससे
भरे हुए बनाये. संवत् १९३१ का चौमासा, श्रीआत्मारामजीने शहर हुशीआरपुरमें किया.
इस चौमासेके बाद सब साधु, लुधीआना शहरमें एकत्र हुये. तब श्रीविश्रचंदजी वगैरह साधु-
ओंने श्रीआत्मारामजीको कहा कि, “ कृपानाथ! जैन शास्त्रमें विरुद्ध इस ढुंढकमतके वेषमें
हमको कहांतक फिरावोगे? अब तो जैन शास्त्रके मुजब जो गुरु होवे उनके पास फिरसें शिक्षा
लेके, शास्त्रोक्त वेष धारण करके, “ यथार्थ गुरु, ” धारण करना चाहिये. तथा “ श्रीशत्रुंजय,
उज्जयंत ” (गिरनार) वगैरह जैन तीर्थोंकी यात्रा करायके, हमारा जन्म सफल कराना चाहिये. ”
यह बात श्रीआत्मारामजीको भी पसंद आनेसे सब साधु शहर लुधीआनासे विहार करके, “ कोट-
ला, ” “ सुनाम, ” “ हांसी, ” “ भियाणी, ” वगैरह शहरोंमें होकर शहर पालीमें (देश मारवाड)
गये. वहां “ नवलखा ” “ पार्श्वनाथ ” की यात्रा करके, “ वरकाणा ” गाममें श्री “ वरकाणा-
पार्श्वनाथ, ” “ नाडौलमें ” “ पद्मप्रभु, ” “ नारलाईमें ” “ श्री ऋषभदेव ” वगैरह (११) जिनालय,
“ घांणेरव ” में “ श्रीमहावीर स्वामी, ” “ सादडी ” में तथा “ राणकपुर ” में “ श्री ऋषभ-

१ कुजरांवाला, रामनगरमें श्री “ बूटेरायजीके उपदेशसे संवेगमत प्रचलित हुआथा. परंतु पूर्वोक्त साधु-
ओंके विचरनेसे, वे श्रावक परिपक्व होगये.

२ पसररु और जंबुके ओसवाल प्रायः सब श्रीविश्रचंदजीके उपदेशसे श्रीआत्मारामजीकी श्रद्धावाले
होगये थे. परंतु पछिसे अशुभ कर्मके उदयसे फिर गये.

देवजी," "सीरोहीमें" (१४) जिनालय जो एकही नींव (थडा-चौतरा-पाया) ऊपर है, व-गैरहही यात्रा करते करते, श्री " आबुगज " पधारे, जिनकी यात्रा करके दिलसे खुश खुश हो गये. श्रीआबुजीकी श्लाघा करनेको, जुबानमें ताकत नहीं है. जो आंखोंसे देखता है, च-कित हो जाता है. जिसके देखनेके वास्ते कई अंग्रेज विलायतसे आते हैं, और लिखते हैं कि आबुजीके मंदिर सरिखी इमारत दुनीयाभरमें भी होनी मुश्किल है. कई युरोपियन इसका फोटो (आकस) भी उतार कर लेगये हैं, जिसकी नकल चिकागो धर्मसमाजके तरफसे छपे-हुए पुस्तक वगैरह बहोत जगे पाई जाती है. " टैंडके राजस्पीन " ग्रंथमें इनका बहुत वर्णन है आबुजी देलवाडेके मंदिरोंकी यात्रा करके, श्रीआत्मारामजी, विश्वचंदजी वगैरह(१६) साधु श्री "अचलगढ" की यात्रा करनेको गये. जहां बडे भारी मंदिरमें चौदांसौ चवालीस(१४४४) मण सोनेकी चौदां (१४) मूर्तियोंके दर्शन करके आबुजीके पहाडसे उतरके श्रीआत्मारामजी "पा-लनपुर" पधारे. कितनेक दिन वहां ठहरके विचरते विचरते "भोयणी" गाममें श्री "मल्लीनाथ-स्वामी " की यात्रा करके, ग्रामो ग्राम जिन मंदिरके दर्शन करते हुए, और श्रावकोंको दर्शन देते हुए, शहर " अहमदाबादमें " पधारे, श्रीआत्मारामजीका आगमन सुनकर नगरशेठ " प्रेमाभाई हिमाभाई " तथा शेठ "दलपतभाई भगुभाई " वगैरह अनुमान तीन हजार (३०००) श्रावक श्राविका तीन कोसपर सामने लेनेको गये. क्या आश्चर्य है? जहां अनुमान सात हजार घर श्राव-कोंके, औ पांचसे जिन मंदिरहै, तहां तीन हजारका सामने जाना कुछ बड़ीबात नहीं है. सबने श्रीआत्मारामजीको देखतेही सार विधिपूर्वक वंदना करके बड़ी धामधूमसे नगरमें ले जाकर,शेठ दलपत भाईके बंगलेमें उतारे. जहां आदमीयोंके एकत्र होनेमें कुछ कसर न रही.

व्याख्यान सुनकर श्रावकवर्ग लोट पोट होतेथे, केइ सखसोंके हृदयको कुलगुरुओंके उत्सूत्र वचनांधकारने वासा करके स्याम कर दियाथा, तिनको इन महात्माके वचन भास्करने दूर करके उज्ज्वल कर दिये. उत्सूत्र प्ररूपक शिरोमणि शांतिसागर जिसने शहर अहमदाबादमें जैनमतसे विरुद्ध वर्णन करके एक उपद्रव खडा कर रखाथा, वह श्रीआत्मारामजीके साथ चरचा करने को तैयार होगया. श्रीआत्मारामजीने भी, शास्त्रानुसार जवाब देकर उसको निरुचर कर दिया. तिस दिनसे शांति सागरका जोर नरम होगया. तब शहर अहमदाबादके जैनसमुदायने श्रीआ-त्मारामजीका अपूर्व ज्ञान, और बुद्धिवैभव देखके बहुत प्रशंसा करी, और कहा कि महाराजजी साहिब! आपका इस वखत इस शहरमें आना ऐसा हुआहै कि, जैसे दावानलके लगे वर्षाका आगमन होवे!" अहमदाबाद थोडेही दिन रह कर श्रीआत्मारामजी वगैरह साधुओंने श्रीशत्रुंजय तीर्थकी यात्रा करनेके वास्ते " पालीताणा " शहर तरफ विहार किया, और क्रम करके शहर पालीताणामें पधारे. और दूसरे दिन सूर्योदयके लगभग " श्रीशत्रुंजय " पर्वत पर चढे. एक तरफ तो सूर्य उदय होकर चढता जाता था, और दूसरी तरफ श्रीमहाराजजी सूर्य समान दिदार लोकोंको देते हुये क्रम उठाते चढते जाते थे; इस तीर्थका वर्णन करनेको इंद्र भी समर्थ नहीं है तो, औरोंका तो क्याही कहना है? इस तीर्थ ऊपर नव वसी(टूक)याने हिस्से हैं; जिनमें अनुमान (२७००) जिन मंदिर है. प्रायः संपूर्ण दिन ऐसे दर्शनामृतसे तृप्त हुये कि, न टूषा लगी, न

चंदनलालजीके गुरु रुडमलजी, वृद्ध होनेसे दोनों (शिष्य-गुरु) उस वखत गुजरात देशमें नहीं गयेथे. तथा एक दो जने, साधुपणेको छोड गये थे, इसवास्ते कल सोला साधु लिखे हैं।

भूख. ऊपरसे नीचे आनेको दिल बिलकुल कबूल नहीं करता था, परन्तु कोई भी यात्री प्रायः ऊपर न रहनेका रिवाज होनेसे, लाचार होकर “ श्रीऋषभदेवजीकी ” यात्रा करके नीचे उतर आये. सार्यकालका प्रतिक्रमण करके, तीर्थराजके गुण गाते हुये फिर दर्शन करनेको सूर्योदयकी आकांक्षा करते हुये सो गये. प्रातःकाल होतेही प्रतिक्रमण, प्रतिलेषणादि साधुकी क्रिया करके फिर ऊपर चढ़े. इसी तराह निरंतर करते रहे. तीर्थयात्रा करके पालीताणासे विहार करके, “ गोघा बंदर, ” “ भावनगर, ” “ वला ” “ पछी, ” “ लाखेणी, ” “ लाठीधर, “ बो-टाद, ” “ राणपुर, ” “ चुडा, ” “ लींबडी, ” वगैरह गामोंमें विचरते हुये, सैकड़ोंही जिन मंदिरोंकी यात्रा करते हुये, हजारोंही श्रावकांको दर्शन व उपदेश देते हुये, फिर शहर अहमदाबादमें आये. जहां “ गणि श्री मणिविजयजी ” महाराजजीके शिष्य “ गणि श्री बुद्धिविजयजी ” (वूटेरायजी) महाराजजीके पास, श्री “ तपगच्छ ” का वासक्षेप लिया. और इनही महात्माको श्रीआत्मारामजीने, गुरु धारण किये. और शेष साधुओंने श्रीआत्मारामजीको अपने सद्गुरु धारण किये. इसवख्त श्रीबुद्धिविजयजी महाराजजीने सब साधुओंके पिछले नाम, बदल दिये. जैसेकी ।

(१)	श्री आत्मारामजी—	श्री आनंदविजयजी.
(२)	श्री विश्वचंदजी—	श्री लक्ष्मीविजयजी. +
(३)	श्री चंपालालजी—	श्री कुमुदविजयजी.
(४)	श्री हुकमचंदजी—	श्री रंगविजयजी.
(५)	श्री सलामत रायजी—	श्री चारित्रविजयजी.
(६)	श्री हाकम रायजी—	श्री रत्नविजयजी.
(७)	श्री सूबचंदजी—	श्री संतोषविजयजी.
(८)	श्री घनैयालालजी—	श्री कुशलविजयजी.
(९)	श्री तुलशीरामजी—	श्री प्रमोदविजयजी.
(१०)	श्री कल्याणचंदजी—	श्री कल्याणविजयजी.
(११)	श्री नीहालचंदजी—	श्री हर्षविजयजी.
(१२)	श्री निधानमल्लजी—	श्री हीरविजयजी.
(१३)	श्री रामलालजी—	श्री कमलविजयजी.
(१४)	श्री धर्मचंदजी—	श्री अमृतविजयजी.
(१५)	श्री प्रभुदयालजी—	श्री चंद्रविजयजी.
(१६)	श्री रामजीलाल—	श्री रामविजयजी.

संवत् १९३२ का चौमासा, श्री “ आनंदविजयजी ” (आत्मारामजी) वगैरह साधुओंने शहर अहमदाबादमें ही किया. चौमासे बाद शत्रुंजय गिरनार वगैरह तीर्थोंकी यात्रा करके श्री आनंदविजयजीने संवत् १९३३ का चौमासा, शहर भावनगरमें किया; चौमासे बाद “ वहोरा अमरचंद, जसराज, शंवरचंद ” के संधके साथ, “ शत्रुंजय, तलाजा, डाठा, महुवा, दीव, प्रभासपाटण, बेरावल, मांगरील, ” होकर ताथयात्रा करते हुए शहर जुनागढ तीर्थ “ गिरनार ” की यात्रा करके शहर जामनगरमें पधारे. यहांसे सघने फिर भावनगर चलनेके

+ तसबीर देखो.

वास्ते बहुत प्रार्थना करी. परंतु देश पंजाबमें, जो सत्यधर्मका बीज लगायाथा, तिनको प्रफुल्लित करनेका इरादा करके, संघसें जुड़े होकर, “मोरबी, घांगवा, झोंझुवाडा, ” होकर “शंखेश्वर” गाममें, श्री “शंखेश्वर पार्श्वनाथ ” की मूर्ति, जो शंखपति, “कृष्णवासुदेव ” को “धर्मेन्द्र ” की आराधनासें मिलीथी, और जिसके सान्नाजलके छिटकनेसें, “जरासिंह ” नामा प्रातिवासुदेवकी जरा विद्या, कृष्ण वासुदेवके लश्करसें दूर हुई थी. ऐसे प्रभाववाली श्री पार्श्वनाथकी मूर्तिके दर्शन करनेसें सब साधु, बहोतही आनंदित हुए. यहांसें विहार करके श्री “आनंदविजय जी, ” “पाटण ” शहरमें पधारे. तहां प्राचीन जैन पुस्तकोंके भंडार देखे, तिनमेंसें कितनेक ग्रंथोंकी नकलें भी करवाई. पाटणसें विहार करके “तारंगाजी ” तीर्थपर, “राजाकुमारपाल” के उद्धार किये बड़े भारी मंदिरमें बिराजमान, श्री “अजितनाथ स्वामी ” की यात्रा करी और विहार करके “पालणपुर, आबु, शिरोही, पंचतीर्थी, ” वगैरहकी यात्रा करते हुए शहर “पाली ” में आये. तहां शहर “जोधपुर ” के श्रावकोंका पत्र, श्रीआत्मारामजीको मिला. जिसमें लिखाथा कि, “यहां (जोधपुरमें) इसवखत (३५) ढुंढक साधु, आपके साथ चरचा करनेके वास्ते एकत्र हुए हैं. जिसमें दिवान् “विजयासिंह ” मेहता, पंडित मंडल सहित, मध्यस्थ नियमित किये गये हैं. इसवास्ते आप कृपा करके जलदी शहर जोधपुरमें पधारके, हम सेवकोंकी अभिलाषा पूर्ण करें” इसवास्ते श्री आनंदविजयजीने, थोडेही दिन पालीमें रहकर, शहर जोधपुरके तरफ विहार किया; और क्रम करके शहर जोधपुरमें पहुंचे. इनके यहां पहुंचनेसेंही अगले रोज (३४) ढुंढक साधु तो, सभा होनेके एकदिन पहिलेही, विना चरचा किये, चूपचाप इस तरांह चले गये, जैसें सूर्योदयसें अंधेरा दूर होजाता है. परंतु “हर्षचंद ” नामा एक ढुंढक साधु, रहगयाथा. सो श्रीआनंदविजयजीसें बातचित करके, शुद्ध श्रद्धानमें आगया. श्रीविश्वचंदजी गुरु नाम धराया, और “हर्षविजयजी ” निज नाम पाया. इस वखत ढुंढकोंके अनिष्टाचरणसें राज्यके भयसें कितनेही ओसवाल, जैनमतको छोडके वैष्णवादि मतका आश्रय लेने लग गयेथे. इसवास्ते इन लोकोंपर कृपादृष्टि करके, श्री आनंदविजयजी महाराजने संवत् १९३४ का चौमासा, शहर जोधपुरमेंही किया. जिससें प्रथम पचास घर अनुमान ठीक ठीक श्रद्धानवाले रहेथे, सो वधके अनुमान पांचसौ होगये. क्यों न होवे? सूर्यके उदय होनेसें अंधकार दूर होतही है. यदि ऐसे महात्माके आनेसें भी हृदयगत अज्ञानांधकार दूर न होता तो, कब होता? चौमासे बाद जोधपुरसें विहार करके, दुकालके सबबसें रस्तेमें भूख प्यासको सहन करते हुए, श्रीआनंदविजयजी, “जयपूर, दिल्ली ” होकर देश पंजाबमें शहर अंबालामें आये. इसवखत सूर्योदयसें बूक जानवरको जैसें चिंता होती है, तैसें पंजाबी ढुंढकोंको हुई. परंतु सूर्यविकाशी कमलकी तरांह अन्य श्रावकोंके मुखारविंद खिड गये.

अंबालासें विहार करके शहर लुधीआनामें आये; वहां “श्री उत्तमन्नाथि ” लौकामतके यति, (पूज) अंबालावालेने सब डेरा छोडके, श्रीआनंदविजयजीके पास पांच महाव्रत अंगीकार किये, और गुरुजीका दिया, श्री “उद्योतविजयजी” नाम धारण किया.

कितनेक दिनों बाद शहर लुधीआनामेंही, जील्ला फिरोजपुर गाम मुदकीका रहनेवाला दुनीचंद ओसवाल, हुशीआरपुरका रहनेवाला, उत्तमचंद ओसवाल, शहर पाली देश मारवाडका रहनेवाला हर्षचंद ओसवाल, जेजोका रहनेवाला मोतीचंद ओसवाल, इन चार जैनों-

की बड़ी भूम धामसें दीक्षा हुई; जिसमें अनुक्रम करके श्रीआनंद विजयजी महाराजजीने उन्हींके यह नाम रखे(१) “विनय विजयजी (२) कल्याण विजयजी (३) सुमति विजयजी(४) मो-ती विजयजी.” बाद चौमासेके दिन नजदीक आजानेसें संवत् १९३५ का चौमासा, श्रीआनंद विजयजीने शहर लुधीआनामें किया. इस सालमें देश पंजाबमें कितनेही शहरोंमें बिमारीका बहुत जोर था. जीसमें भी लुधीआनामें अधिकतर बिमारीका जोरथा. जिस बिमारीमें मगसर महिनेमें श्रीआनंद विजयजी महाराजजीके शिष्य “रत्नविजयजी” (हाकमरायजी) स्वर्गवास हुये. और श्रीआनंद विजयजीको भी, कितनेक दिनोंतक ताप आया. जिस तापका ऐसा जोर बढ-गया कि, श्रीआनंद विजयजी बेहोश होगये. यह हाल देखकर सकल श्रीसंघको अतीव खेद पैदा हुआ. अब इस वखत क्या करना चाहिये ? ऐसे विचारमेंही सकल श्री संघ दिग्मूढ होगया, परंतु मालेर कोटला निवासी लाला “कवरसेन” जो कि जैनमतके रहस्य उत्सर्ग अपवाददि षड्भंगीका अच्छा ज्ञान धारण करताथा, तिसने आके लाला “गोपीमल्ल,” और “प्रभदयाल नाजर” वगैरहको समझाया कि, “ विचार करने करनेमेंही तुम काम बिगाड देवोगे ! यह समय विचारनेका नहीं है, जलदी श्रीमहाराजजी साहिबको, शहर अंबालामें लेचलो. क्यों कि, वहांकी आब हवा इस वखत बहोत अच्छी है.” यह सुनकर कितनेकके मनमें तो यह बात रुचि नहीं; परंतु कवरसेन बडा लायक होनेसें उसका कथन, कोई भी अन्यथा नहीं कर सकता था. वहांसें शहर अंबालामें लगये. वहांगये बाद दो दिन पीछे, जब श्रीआनंद विजयजीको तपका जोर कुछ नरम हुआ, और कुछ होश आया, तब देखते हैं तो, अपने आपको शहर अंबालाके उपाश्रयमें देखें. आश्चर्य प्राप्त होकर कहने लगे कि, “ यह क्या हुआ ? मुझे कोई स्वप्न आया है ? अथवा यह कोई इंद्रजाल हो रहा है ? या मुझे कोई मतिभ्रम होगया है ? क्योंकि, मैं तो लुधीआ-नेमें था; और इस वखत मुझे अन्यहीं अन्य भान हो रहा है. ” ऐसे अनेक प्रकारके संशयां दोलारूढ हुये विचार कर रहेथे, इतनेमें लाला कवरसेन वगैरह श्रावक समुदाय, हाथ जोडकर कहने लगे कि, “ महाराजजी साहिब ! आप शोच मत करें. आपको लुधीआनासें हम यहां (अंबालामें) ले आये हैं.” इत्यादि सब वृत्तांत सुनाया. अनुमान दो महिने बाद जब श्री-आनंद विजयजीको आराम होगया, तब पूर्वोक्त सब हाल लिखकर शहर अहमदाबादमें गणिजी “ मुक्ति विजयजी ” (मूलचंदजी) महाराजजीके पास भेजा. उन्होंने श्री जैनशास्त्रानुसार, जो कुछ प्रायश्चित्त देना ठीक समझा, दिया. जिसको श्रीआनंदविजयजी महाराजजीने भी, बड़ी खुशीसें स्वीकार किया. इस वखत शहर अंबालामें “श्रीवीरविजयजी,” “ श्रीकांतिविजयजी,” “ श्रीहंसविजयजी”की दीक्षा हुई. बाद अंबालासें विहार करके लुधीआना, जालंधर होते हुये गुरुके “ झंडीआले ” आये. और संवत् १९३६ का चौमासा, श्रीआनंदविजयजीने झंडीआला-में किया. “ नारोवाल, ” “ सनखतरा ” चौमासे बाद विहार करके “ जीरा, ” “ पट्टी, ” “ अमृतसर, ” होते हुये शहर “गुजरांबाला”में पधारे. और संवत् १९३७ का चौमासा, वहां ही किया. चौमासे पहिले इस जगा, श्रीमाणिक्य “ विजयजी, ” और “ श्रीमोहनविजयजी” की दीक्षा हुई. और चौमासेमें श्रीआनंदविजयजी महाराजजीने, बहुत लोकोंके कहनेसें, संस्कृत, प्राकृत नहीं जाणनेवालोंको बोध होनेके लिये, “ जैनतत्त्वादशी ” (जैनधर्मके तत्त्वोंका सीसा दर्पण) इस नामका ग्रंथ, बनाना सुरु किया. चौमासे बाद विहार करके “पीडदादनखां” में गये,

और “ मोतीचंद ” ओसवाल शहर अमृतसरके रहनेवालेको दीक्षा देकर “ श्रीसुंदर-विजयजी ” नाम रखा. यहांसे विहार करके श्रीआनंदविजयजी, अपने परिवारसहित गाम “ कलश ” (महाराजजीकी जन्मभूमि) में पधारे. जिनको देखके श्रीआत्मारामजीके सांसारिक परिवारके “ मंगलसेन ” “ प्रभदयाल ” वगैरह पितृव्य भाई, बड़े आनंदको प्राप्त हुये. उनकी बहुत प्रार्थनासे एक रात वहां रहे. वहांसे विहार करके “ रामनगर, ” “ पपना-खा, ” “ किला दिदारसिंघ, ” “ गुजरांवाला, ” “ लाहोर ” “ अमृतसर, ” “ जालंधर, ” होकर शहर हुशीआरपुरमें पधारे; और संवत् १९३८ का चौमासा, वहांही किया. इस चौमा-सेमें “ जैनतत्त्वादर्श ” ग्रंथ समाप्त किया. चौमासे बाद विहार करके “ जालंधर, ” “ नीकोदर, ” “ जीरा, ” “ कोटला ” होके “ लुधीआना ” शहरमें पधारे. और “ श्रीजयविजयजी, ” “ श्री-अमृतविजयजी, ” “ श्री अमरविजयजी, ” तीन शिष्य नये किये. बाद लुधीआनासे विहार करके श्री आनंदविजयजी महाराजजी, शहर अंबालामें पधारे. और संवत् १९३९ का चौमासा वहांही किया. इस चौमासामें जैनतत्त्वादर्श नामा ग्रंथ, जो प्रथम बनाया था, सो छपवानेके वास्ते, रायबहादुर धनपतिसिंघ, जो शहर अंबालामें श्री महाराजजी साहिबके दर्शन करनेको आयेथे, उनको दिया. जो छपवाके प्रसिद्ध किया गया है, और “ अज्ञानतिमिरभास्कर ” नामा दूसरा ग्रंथ, बनाना प्रारंभ किया. परन्तु कितनेक वेदादि पुस्तक, जिनकी बहुत जरूरत थी और जे उस वखत पासमें नहीं थे, इस वास्ते थोडासा लिखके, बंध कियाथा. इस चौमासेमें, पंजाब-के श्रावकसमुदायकी प्रार्थनासे, श्रीआनंदविजयजी महाराजजीने “ सत्तरभेदीपूजा ” बनाई. इतने वर्षोंमें श्रीआनंद विजयजी महाराजजीके परिवारमें “ हर्षविजयजी ” “ उद्योतविजयजी ” वगैरह (१९) शिष्य नये हुये, जिनमें जिस जिसकी दीक्षा, श्री महाराजजी साहिबके हाथसे हुई, तिस तिसके नाम, यहां लिखेहैं, और भी नाम, वंश वृक्षसे मालुम होगा. यह पांच चौमासेमें देश पंजाबमें श्री आनंदविजयजी महाराजजीने, श्री जैनधर्मका बड़ा भारी उद्योत किया; और कितनेक लोकोंके दिलमें, ढुंढकोंका अनिष्टाचरण देखनेसे, जैनधर्मके ऊपर द्वेष हो रहाथा दूर किया. क्योंकि, लोकोंको मालुम होगया कि, जो मुखबंदे हैं, वे मलीन हैं. और यह पीतांबर धारण करनेवाले, उज्ज्वल धर्म प्ररूपक हैं, अब इस वखत भी, किसी क्षत्रीय ब्राह्मणके साथ बातचीत होने लगती है तो, उसी वखत वे कहने लग जाते हैं कि, “ पंजाब देशके ओसवाल (भावडे) तथा खंडेरवालको तो, श्री आनंदविज-यजी (आत्मारामजी) महाराजजीने सुधार दिये. ” क्योंकि, प्रथम तो येह भावडे लोक, मुहबंदे गंदे गुरुओंकी सोबतसे, बड़ेही मलीन होगये थे; और इसी वास्ते पंजाब देशमें प्रायः सब जगा, येह लंकाके चुडेके नामसे प्रसिद्ध थे. अब भी जो शेष ढुंढक रह गये हैं, उनको लोक बुरे समझते हैं, और उनसे परेहज भी रखते हैं. धर्मको लगा हुआ यह कलंक, दूर किया; येह कोई श्रीआनंद विजयजी महाराजजीने थोडा पुण्य पैदा नहीं किया! सब जगा जहां जहां जावे, वहां वहां अनेक प्रकारके मत मतान्तरोंवालेके साथ चर्चावार्ता होनेसे लोकोंमें जैनधर्मकी “ फिलोसोफी ” (तत्त्वज्ञान) मालुम होगई; इत्यादि बहुत उपकार कर रहेथे. परन्तु नूतन शि-ष्योंको जैनशास्त्रानुसार, “ छेदोपस्थापनी ” नामा चारित्रका संस्कार कराना था. सो उसवखत गणिजी महाराज श्री, “ मुक्तिविजयजी ” (मूलचंदजी) सिवाय, औरको “ श्री बुद्धिविजयजी

(बूढेरायजी) महाराजजीके परिवारमें अधिकार नहीं होनेसे देश गुजरात, शहर अहमदाबादके तरफ विहार करनेका इरादा करके, शहर अंबालासे विहार करके दिल्लीमें पधारे. वहां तिनको ढुंढकोंका छपवाया 'सम्यक्त्वसार' नामा पुस्तक, भावनगरकी "श्री जैनधर्म प्रसारक सभा" तरफसे मिला. तिसका उत्तर, सभाकी प्रेरणासे श्रीआनंदविजयजीने लिखना सुरु किया. शहर दिल्लीसे "हस्तिनापुर" की यात्रा करके "जयपुर" "अजमेर" "नागौर" आदि शहरोंमें विचरते हुये, "बीकानेर" पधारे. और संवत् १९४० का चौमासा, वहां किया. और चौमासेमें "वीशस्थानकपूजा" बनाई. इस चौमासेमें श्रीआनंदविजयजीके बड़े शिष्य, "श्रीलक्ष्मीविजयजी (विश्वचंदजी)" बहुत बिमार होगये. बीकानेरसे शनैः शनैः विहार करके श्री आनंदविजयजी, श्रीलक्ष्मीविजयजी आदि शिष्यों सहित, शहर पालीमें पधारे. यहां श्रीलक्ष्मीविजयजी स्वर्गवास हुये ! अफसोस !! महाराजजीकी बड़ी बांह टूट गई ! ऐसे लायक विनयवान् पंडित शिष्यके स्वर्गवास होनेसे सब श्री संघको बड़ा खेद हुआ. परंतु श्रीआनंदविजयजीको देखके होंसला किया कि, फिकर नहीं. एक न एक दिन तो मरनाही था. अस्तु ! अब परमेश्वरसे यही प्रार्थना है कि, हमारे शिरपर, श्रीआनंदविजयजी महाराजजी के छत्र छाया, चिरकाल बनी रहे !

श्रीआनंदविजयजी पाली शहरसे विहार करके पंचतीर्थी, आनुजी आदिकी यात्रा करते हुए शहर अहमदाबाद पधारे. और बडौदाके राज्यमें गाम डभोईके रहनेवाले मोतीचंदको दीक्षा देके "श्री हेमविजयजी" नाम रखा. तथा "उद्योतविजयजी" आदिको, श्री गणिजी महाराजजीके पास बड़ी दीक्षा दिलवाई. और संवत् १९४१ का चौमासा, वहांही किया. चौमासेमें "आवश्यकसूत्र" बाईस हजार, जो प्रथम संवत् १९३२ के चौमासेमें वांचना प्रारंभ किया था, अधूरा रहनेसे, अब भी व्याख्यान उसहीका करते रहे; और भावनाधिकारमें "श्रीधर्मरत्न प्रकरण" सटीक वांचते रहे. जिसको सुननेके वास्ते अनुमान (७०००) श्रावक श्राविका आतेथे. इस चौमासेमें श्री जैनधर्मका बड़ाही उद्योत हुआ, सैंकडोही अट्ठाई महोत्सव हुये, पूजा प्रभावना भी बहुत हुई, अनेक प्रकारकी तपस्या भी हुई, स्वधर्मीवात्सल्य भी बहुत हुये. एक दिन श्रीसंघने सलाह करके, श्रीमहाराजजी साहिब श्रीआनंदविजयजीसे प्रार्थना करिकि, "आपने देशपंजाबमें जो नये श्रावक बनाये हैं, तिनको हम मदद देनी चाहते हैं," तब श्री महाराजजीने कहा कि, "तुमारी मरजी. तुमारा धर्मही है के, अपने स्वधर्मियोंको मदद देनी." बाद श्रीसंघने बहुत जिन प्रतिमा धातुकी, और पाषाणकी, देशपंजाबके शहर "अंबाला," "लुधीआना," "कोटला," "जिरा," "जालंधर," "नीकोदर," "हुशीआरपुर," "गुरुका झंडियाला," "पट्टी," "अमृतसर," "नारोवाल," "सन-खतरा," "गुजरांवाला," वगैरह बहुत शहरोंमें श्रावकोंके पूजने वास्ते भेजी. तथा इस चौमासेमें, श्रीआनंदविजयजीने, सम्यक्त्वसार पुस्तकका उत्तर लिखके पूर्ण किया. जो "सम्यक्त्वशाल्योद्धार" के नामसे भावनगरकी सभाके तरफसे छप गया है. जिसमें भावनगरकी सभाने भी, अपने तरफसे कितनाक हिस्सा बढ़ाया है. इस ग्रंथके वांचनेसे ढुंढकमत, और सनातन जैन धर्ममें, कितना फरक है, मालुम होजाताहै. परंतु कितनेक शब्द सभाके तरफसे कठिन पडनेसे बहुत ढुंढक लोक वांचते नहीं है, तथा गुजरात देशकी बोलीमें होनेसे, कितनेकको ठीक ठीक

समझ भी नहीं आती है; इस वास्ते कितनेक लोगोंका इरादा है कि, इसको जिस ढबपर श्रीआनंदविजयजी महाराजजीने अपनी कलमसे प्रथम लिखा है, उसही ढबपर हिंदीभाषामें छपवाना चाहिये. जिससे, बहुत फायदा होनेका संभव है; सो प्रायः थोड़ेही कालमें यकीन है, छप जायगा. चौमासे बाद श्रीआनंदविजयजी वगैरह साधु अहमदाबादसे बिहार करके, श्री शत्रुंजय तीर्थकी यात्रा करनेको पधारे. एक महीना “पालीताणा” शहरमें रहे, और निरंतर यात्रा करके अपना मनुष्यदेह, पावन करते रहे. इस श्री शत्रुंजय तीर्थ ऊपरसे “शेठ प्रेमाभाई,” “शेठ नरशी केशवजी,” “शेठ वीरचंद दीपचंद” वगैरह देश गुजरातके संघकी मददसे बड़े अद्भुत सुन्दर, और देखनेसे चित्त शांत होवे, ऐसे (३५) जिनबिंब देश पंजाबमें भेजे गये. इन जिन प्रतिमाके आनेसे देश पंजाबमें जैनधर्मका बड़ा उद्योत हुआ, और इन प्रतिमाके रखनेके वास्ते पंजाबके श्रावकोंको अपने २ शहरमें जैनमंदिर बनवानेका ख्याल आया, और जिन मंदिर बनने शुरू हुये. पालीताणासे विहार करके “शिहोर, वरतेज, भावनगर” होकर “गोधा बंदर” में श्रीआनंदविजयजी पधारे. तहां “श्री नवखंडा पार्श्वनाथ” की यात्रा करके “वला, बोटाद” होकर “लिंबडी” शहर पधारे, जहां पांचसो घर श्रावकोंके, और तीन जिन मंदिर है, श्री महाराजजीके पधारनेकी खुशीमें श्रावकोंने समवसरणकी रचना वगैरह महोच्छव किये. यहांके राजा साहिबने भी, श्रीआनंदविजयजी (आत्मारामजी) महाराजजीके दर्शन पाये, और बातचीत करके बड़ेही आनंदको प्राप्त हुये. एक महीनेबाद लींबडीसे विहार करके बढवाण धंधूका, धोलेरा होकर शहर खंभात बंदर पधारे, जहां अनुमान एक हजार घर श्रावकोंके और दोसौ जिन मंदिर है. यहां बहुत पुराने ताडपत्रोंपर लिखे पुस्तक भंडोर देखे. कईएक शास्त्रोंका उतारा भी, करवा लिया. तथा पुस्तकादिककी मदद ठीक ठीक मिलनेसे “अज्ञान तिमिर भास्कर” नामा ग्रंथ जो शहर अंबालामें बनाना सुरु किया था, यहां समाप्त किया, जो भावनगरकी “जैन ज्ञान हितेच्छु” सभाके तरफसे छपवाकर प्रसिद्ध किया गयाहै. जिसके पहिले हिस्सेमें, वेदादि शास्त्रोंमें यज्ञादि धर्मका जैसा विचार है, तैसा सप्रमाण दिखलाया है, और दूसरे हिस्सेमें, जैनमतका संक्षेपसे वर्णन कियाहै. और इस जगा “श्रीस्तिंभन पार्श्वनाथजी” की, जो कि बड़ी प्राचीन प्रतिमा है, यात्रा करके बहुत खुश हुए. खंभातसे विहार करके “जंबूसर” होकर “भरुच बंदर” पधारे; यहां अनुमान अठ्ठाईसें घर श्रावकोंके, और छ मंदिर बड़े खुबसुरत है, और वीसमें तीर्थकर “श्रीमुनिसुव्रत स्वामी” की, बहुत प्राचीन मूर्तिके दर्शन करके अत्यनंद प्राप्त हुये. भरुचसे विहार करके श्रीआनंदविजयजी, “सुरत बंदर” पधारे. श्रावक लोकोंने बड़े महोत्सवसे शहरमें प्रवेश कराया. ऐसा प्रवेश महोत्सव हुवा कि, उसको देखके सुरतके वासी बड़े बड़े दुर्जग जैन और अन्यमति भी, कहने लगे कि, “ऐसा आदर पूर्वक प्रवेश महोत्सव आजतक हमने किसीका भी नहीं देखाहै.” श्रावकोंकी अतीव प्रार्थना होनेसे, संवत् १९४२ का चौमासा, सुरत शहरमें किया. चौमासेमें श्रावकोंकी अभिलाषापूर्वक, “श्रीआचारांग सूत्र” सटीक, और “धर्मरत्न प्रकरण” सटीक, पर्वदामें सुनाते रहे. हजारों श्रावक श्राविका तिस वचनामृतको पीकर, मिथ्यात्व विषको दूर करते रहे; और अनेक प्रकारके उद्यापन, समवसरण रचना, अठ्ठाई महोच्छव वगैरह महोत्सव करके, श्रीजैनधर्मका उद्योत किया. इस चौमासामें श्रीआनंदविजयजीके धर्मोपदेशसे श्रावक लो-

कोंको ऐसा रंग चढा था के, जिससे अनुमान (७५०००) रूपये धर्ममें खर्च किये, यहां रहकर श्रीआनंदविजयजीने “जैनमत वृक्ष” बनाया. तथा इस बखत सुरत शहरमें “हुकममुनि” नामा एक “जैनाभास” साधु रहते थे; तिसने “अध्यात्मसार” नामा एक ग्रंथ बनाकर प्रसिद्ध किया था. परंतु वह ग्रंथ जैनागमकी शैलीसे तदन विरुद्ध होनेसे, बहुत श्रावकोंके मनमें विपरीत श्रद्धान प्रवेश कर गया था. इसवास्ते श्रीआनंदविजयजी (आत्मारामजी) ने, अध्यात्मसारमेंसे (१४) प्रश्न निकाले; और हुकम मुनिको श्रावक मारफत खबर दिलवाई कि, “तुझारा बनाया अध्यात्मसार ग्रंथ जो जैनमतसे विरुद्ध है उसमेंसे निकाले यह (१४) प्रश्नका उत्तर देवो”. तिसके उत्तरमें हुकममुनिके तरफसे संतोषकारक जवाब नहीं मिलनेसे, सुरतके श्रीसंघने वे (१४) प्रश्न और श्रीआनंदविजयजीके और हुकममुनिके दिये उत्तर “धी जैन एसोसिएशन आफ इन्डिया” (भारतवर्षीय जैनसमाज) ऊपर भेजेगये. वे सर्व प्रश्न, वहांसे हिंदुस्थानके जैनमतके ज्ञाता साक्षर पंडित जैन साधु यतियोंके पास निर्णय करनेके वास्ते जगेर भेजे गये, तिन सर्वने पक्षपात रहित होकर, जैन शैलीके अनुसार अपना मतव्य जाहिर किया कि, “हुकम मुनिके बनाये ग्रंथ अध्यात्मसारमेंसे जो (१४) प्रश्न श्रीआनंदविजयजी (आत्मारामजी) ने निकाले हैं, वे धर्मसे विरुद्ध, और संशयसे भरे हुए हैं; तथा श्रीआनंदविजयजीके दिये उत्तर जैन शास्त्रानुसार हैं, और हुकममुनिके दिये उत्तर जैन शास्त्रसे विरुद्ध हैं.” देशावरोंसे जैन पंडितोंके पूर्वोक्त अभिप्रायोंको, जैन एसोसिएशन आफ इंडियाने, अपनी सुरत ब्रेंच सभामें, सर्व श्रीसंघको एकत्र करके, संवत् १९४२ का मगसर सुदि १४ के दिन, बांचकर सुना दिये, और सभामें आये हुये हुकममुनिके सेवकोंको खबर दी कि, “सर्व जैन पंडितोंके अभिप्राय मुजिब, हुकममुनिका बनाया अध्यात्मसार ग्रंथ, अप्रमाणिक सिद्ध हुआ है, जिससे हम भी तिस ग्रंथको, जैन शैलीसे विरुद्ध मानके, हुकममुनिको खबर देते हैं के उनको अपने ग्रंथमेंसे असत्य लिखानका सुधारा करना चाहिये; अथवा तिस लिखानको निकाल देना चाहिये. जबतक इन दोनों बातोंमेंसे एक भी बात वे करेंगे नहीं, तबतक हम तिस पूर्वोक्त ग्रंथको प्रमाणिक नहीं मानेंगे.” ऐसा निर्णय करके सभा विसर्जन हुई थी. चौमासेबाद भी कितनाक समयतक पूर्वोक्त कारणसे श्रीआनंदविजयजीका रहना सुरत शहरमेंही हुआ. इस समयमें एक ढुंढक साधु जिसका नाम “रायचंद” था, और जिसने संवत् १९३९ में पौरबंदर शहरमें फागण वदि १३ को देवजीरिख नामा ढुंढक साधुके पास दीक्षा ली थी, परंतु सम्यक्त्व शल्योद्धार ग्रंथके देखनेसे, ढुंढकमतसे अनास्था होनेसे संवत् १९४२ आश्विन वदि १२ के दिन ढुंढकमतको छोड़के श्रीआनंदविजयजी (आत्मारामजी) के पास आकर, संवत् १९४२ मगसर वदि ५ के दिन, शुद्ध सनातन जैनधर्मको अंगीकार किया, और दीक्षा लेकर जैनमतका साधु हुआ, जिसका नाम श्रीआनंदविजयजीने “श्रीराजविजयजी” रखा.

सुरत शहरसे विहार करके श्रीआनंदविजयजी “भरुच” “मियागाम” “डभोई” होकर शहर “बडौदा” में पधारे. और “कस्तूरचंद” मारवाडी सुरत निवासीको दीक्षा देकर “कुंवर-विजय” नाम रखा. शहर बडौदामें “श्रीशङ्खजय” तीर्थ संबंधी बहुत मुदतकी तकरारका फैसला होनेकी खुश खबर मिलनेसे, और कितनेक श्रावकोंकी प्रेरणासे, इस पवित्र तीर्थकी छायामें (पालिताणामें) चौमासा करनेकी श्रीआनंदविजयजीकी इच्छा हुई. इसवास्ते

बडौदेसे विहार किया. और “छाणी” “उमेटा” “बोरसद” “पेटलाद” वगैरह शहेरो विचरते हुये, “मातर” गाममें आये. यहां पांचवें तीर्थकर “श्रीसुमतिनाथ” जो “साचे देव” के नामसे गुजरात देशमें प्रसिद्ध है, तिनके अपूर्व दर्शन पाये. और इन देवके समक्षही, “पाटने” शहेरके रहनेवाले, “लेहराभाई” जिसकी उमर अनुमान अठारह वर्षकी थी तिसको दीक्षा देकर “श्रीसंपत्विजयजी” नाम दिया. बाद विहार करके “खेडा” “अहमदावाद” “कोठ” “लीबडी” “बोटाद” “वला” वगैरह शहेरोमें विचरते हुये, “पालीताणा” में पधारे. यहां श्रीतीर्थधिराजकी यात्रा करके, सुरत निवासी “माणिकचंद” ओसवालके लडकेको दीक्षा देकर “श्रीमाणिक्यविजयजी” नाम रखा. और संवत् १९४३ का चौमासा, चौबीस साधुओंके साथ, श्रीआनंदविजयजीने पालीताणामें किया. इन महात्माका चौमासा सुनकर सुरत निवासी शेट “कल्याणभाई शंकरदास” वगैरह, भरुच निवासी शेट “अनूपचंद मलुकचंद” वगैरह, बडोदा निवासी झवेरी “गोकलभाई दुल्लभदास” वगैरह, जील्ला खानदेश-पालेगांव धूलीया निवासी शेट “सखाराम दुल्लभदास” वगैरह, खंभायतके रहनेवाले शेट “पोपटभाई अमरचंद” वगैरह, बहुत शहेरोके अनुमान पांचसौ श्रावक श्राविका, अपना सांसारिक कार्य सब छोडके, जंगम और स्थावर दोनोंही तीर्थोंकी युगपत् सेवा करनेका इरादा करके, पालि-ताणामेंही आके चौमासा रहे. इस चौमासेमें श्रीआनंदविजयजीने श्रावकोंके उत्साहानुसार, “श्रीभगवतीसूत्र सटीक” तथा “उपदेशपद सटीक” व्याख्यानमें सुनाया.

चौमासेकी समाप्ति समयमें, अर्थात् कार्तिकी पूर्णमासी ऊपर, यात्रा करनेके वास्ते बहुत लो-कोंका मेला हुआथा. जिसमें कलकत्तावाले बाबु राय बहादुर “बद्रीदासजी” भी आये हुये थे. तथा “गुजरात” “काठियावाड” “कच्छ” “मारवाड” “पंजाब” “पूर्व” वगैरह देशोंके मुख्य शहेरोमेंसे बहुत संभावित गृहस्थ भी आये हुयेथे. अनुमान (३५०००) आदमी यात्राके वास्ते आये हुयेथे. ऐसे शुभ प्रसंगमें, महाराज श्रीआनंदविजयजी (आत्मा-रामजी) की अपूर्व विद्वत्ता, और बुद्धि चातुर्यतासे प्रसन्न होकर, सर्व श्रीसंघने मिलके, उनको “सूरि” पद देनेका निश्चय किया. और संवत् १९४३ मगसर वदि (गुजराती कार्तिक वदि) पंचमी पूर्णा तीथिको, पालीताणामें शेट नरशी केशवजीकी धर्मशालामें, श्रीचतुर्विध संघ समु-दायने मिलके, पंडित मुनि श्रीआत्मारामजी (आनंदविजयजी) को “सूरि पद” प्रदान करके, “श्रीमद्विजयानंदसूरि” नाम स्थापन करके, अपने आपको पूर्ण किया. इस दिनसे लेकर सर्व साधु, और श्रावक वगैरह, कागल पत्रमें “पूज्यपाद् श्रीश्रीश्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरि” यह नाम लिखने लगे, और इस पूर्वोक्त नामसेही मानने लगे. शासन नायक श्रीमन्म-हावीर स्वामिसे श्रीमद्विजयानंद सूरि ७२ मे पट्टपर हुये, सो इस माफक है.

शासन नायक श्रीमन्महावीर स्वामी—

- | | |
|---------------------------|--|
| (१) श्री सुधर्मा स्वामी | (२) श्री जंबू स्वामी |
| (३) श्री प्रभवा स्वामी | (४) श्री शर्यभव सूरि |
| (५) श्री यशोभद्र सूरि | (६) { श्री संभूतविजयजी तथा
श्री भद्रबाहु स्वामी |

(७) श्री स्थूलभद्र स्वामी	(८) श्री आर्यसुहस्ति सूरि
(९) { श्री सुस्थित सूरि तथा	(१०) श्री इंद्रदिन्न सूरि
श्री सुप्रतिबुद्ध सूरि	
(११) श्री दिन्न सूरि	(१२) श्री सिंहगिरि सूरि
(१३) श्री वज्र स्वामी	(१४) श्री वज्रसेन सूरि
(१५) * श्री चंद्र सूरि	(१६) † श्री सामंतभद्र सूरि
(१७) श्री वृद्धदेव सूरि	(१८) श्री प्रद्योतन सूरि
(१९) श्री मानदेव सूरि	(२०) श्री मानतुंग सूरि
(२१) श्री वीर सूरि	(२२) श्री जयदेव सूरि
(२३) श्री देवानंद सूरि	(२४) श्री विक्रम सूरि
(२५) श्री नरसिंह सूरि	(२६) श्री समुद्र सूरि
(२७) श्री मानदेव सूरि	(२८) श्री विबुधप्रभ सूरि
(२९) श्री जयानंद सूरि	(३०) श्री रविप्रभ सूरि
(३१) श्री यशोदेव सूरि	(३२) श्री प्रद्युम्न सूरि
(३३) श्री मानदेव सूरि	(३४) श्री विमलचंद्र सूरि
(३५) श्री उद्योतन सूरि	(३६) † श्री सर्वदेव सूरि
(३७) श्री देव सूरि	(३८) श्री सर्वदेव सूरि
(३९) { श्री यशोभद्र सूरि तथा	(४०) श्री मुनिचंद्र सूरि
श्री नेमिचंद्र सूरि	
(४१) श्री अजितदेव सूरि	(४२) श्री विजयसिंह सूरि
(४३) { श्री सोमप्रभ सूरि तथा	(४४) × श्री जगच्चंद्र सूरि
श्री मणिरत्न सूरि	
(४५) श्री देवेंद्र सूरि	(४६) श्री धर्मघोष सूरि
(४७) श्री सोमप्रभ सूरि	(४८) श्री सोमतिलक सूरि
(४९) श्री देवसुंदर सूरि	(५०) श्री सोमसुंदर सूरि
(५१) श्री मुनिसुंदर सूरि	(५२) श्री रत्नशेखर सूरि
(५३) श्री लक्ष्मीसागर सूरि	(५४) श्री सुमतिसाधु सूरि
(५५) श्री हेमविमल सूरि	(५६) श्री आनंदविमल सूरि
(५७) श्री विजयदान सूरि	(५८) श्री हीरविजय सूरि

† इन्होंने सूरि मंत्रका कोटि जाप किया, इस वास्ते निर्ग्रथ गच्छका “कौटिक गच्छ” नाम प्रसिद्ध हुआ.

* इन्होंने कौटिक गच्छका नाम “चंद्र गच्छ” पडा.

† इन्होंने “वनवासी गच्छ” प्रसिद्ध हुआ.

† इन्होंने निर्ग्रथ गच्छका पांचमा नाम “वडगच्छ” पडा.

× इन्होंने वडगच्छका नाम तपगच्छ प्रसिद्ध हुआ.

- | | |
|----------------------------|--------------------------------------|
| (५९) श्री विजयसेन सूरि | (६०) श्री विजयदेव सूरि |
| (६१) श्री विजयसिंह सूरि | (६२) श्री सत्यविजय गणि |
| (६३) श्री कपूरविजय गणि | (६४) श्री क्षमाविजय गणि |
| (६५) श्री जिनविजय गणि | (३६) श्री उत्तमविजय गणि |
| (६७) श्री पद्मविजय गणि | (६८) श्री रूपविजय गणि |
| (६९) श्री कीर्त्तिविजय गणि | (७०) श्री कस्तूरविजय गणि |
| (७१) श्री मणिविजय गणि | (७२) श्री बुद्धिविजय गणि (बूटेरायजी) |
- (७३) § श्री विजयानंद सूरि (श्री आत्मारामजी)—

पालीताणाके चौमासेमें श्रीआनंद विजयजी महाराजने श्रीतीर्थाधिराजको भाव पूजारूप पुष्प भेट करनेके वास्ते, “अष्टप्रकारी पूजा” बनाई.

चौमासे बाद कितनेक दिन यात्राके निमित्त रहकर, विहार करके “सीहोर, वला, बोटाद, लींबडी, वडवाण ” होकर “लखतर” आये. इस राज्यका दिवान “फूलचंद कमलसी” श्रावक होनेसे, श्रीमद्विजयानंद सूरिका आगमन राजासाहिबको भी मालुम हुआ, और वे भी श्रीमहाराजजी साहिबके पास आकर धर्मकी चर्चा करते रहे. राजा साहिबने अपना दिल धर्मके तरफ लगा हुआ होनेसे, श्रीमहाराजजी साहिबको रहनेके वास्ते प्रार्थना करी. परंतु श्रावक समुदायके घर थोड़े होनेसे, वहां ज्यादा रहना, श्रीमहाराजजी साहिबने ठीक न समझा. लखतरसे विहार करके “वीरमगाम, रामपुरा” होकर “भोयणी” गाममें आये; और श्रीमल्लीनाथ स्वामीके दर्शन पाये. बाद विहार करके “मांडल, दशाडा, पंचासर,” होकर “शंखेश्वर” गाममें “श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथजी” की यात्रा करके, चंडावल, समनी, गोचीनार होकर शहर “राधनपुर” जहां अनुमान पंद्रासौ घर श्रावकोंके और (२५) मंदिर है, पधारे. यहां बडौदे शहरके रहनेवाले “छगनलाल” नामा लडकेको, श्रावकोंका अत्याग्रह होनेसेही संवत् १९४४ वैशाख सुदि तेरस बुधवारके दिन, दीक्षा दी; और “श्रीवल्लभ विजयजी” नाम रखा. बाद श्रीमद्विजयानंद सूरि, यहांसे विहार करके “उण, जामपुर, उंदरा,” वगैरह गामोंमें होकर शहर “पाटण”में जहां अनुमान अढ़ाई हजार श्रावकोंके घर, और (५००) जिन मंदिर है, पधारे; और “श्री पंचासरा पार्श्वनाथ” की यात्रा की. यह मूर्त्ति “वनराज चावडा” ने, श्री शीलगुण सूरिके पास प्रतिष्ठा करायके, स्थापन करीथी; इस मंदिरमें वनराज चावडेकी भी मूर्त्ति है. इस शहरमें पुराणे जैन पुस्तकोंके भंडार देखके, कई पुस्तकोंके उतारे कराय लिये. अनुमान एक महिना रहकर शहर राधनपुरके श्रावकोंके आग्रहसे पाटण शहरसे विहार करके, पीछे राधनपुरमें पधारे; और संवत् १९४४ अषाढ सुदि दशमी बृहस्पति वारको एक लडकेको दीक्षा दी, जिसका नाम श्री “भक्ति विजयजी” रखा—जो अब गुण विजयके नामसे कहाताहै. संवत् १९४४ का चौमासा, यहांही किया; इस चौमासेमें श्रीमद्विजयानंद सूरिने व्याख्यान नहीं किया;

§ श्री मुक्तिविजयजी गणि प्रसिद्ध नाम मूलचंदजी महाराजजी भी श्री बुद्धिविजयजी गणि महाराजजीके पाट ऊपर हुए हैं. अर्थात् श्री मूलचंदजी और श्री आत्मारामजी दोनोंही श्री बूटेरायजी महाराजजीके पाट ऊपर हुये, तथा किसी पट्टावल्लिमें श्री विजयदेव सूरि और श्री विजयसिंह सूरि दोनों एकही पट्ट ऊपर गिने है, तो उस मुजब श्रीमद्विजयानंद सूरि बहत्तर (७२) मे पट्ट ऊपर जानने.

क्योंकि, आंखमें मोतीया उतर रहाथा. तथापि श्रावक लोकोके आग्रहसे “चतुर्थ स्तुति निर्णय ” नामा पुस्तक बनाया, जो छपकर प्रसिद्ध होगयाहै. पूर्वोक्त कारणसे चौमासेमें व्याख्यान, “श्री हर्ष-विजयजी” महाराज करते रहे, और श्री सूर्यगडांग सूत्र, तथा धर्मरत्न प्रकरण सटीक सुनाते रहे.

चौमासे बाद श्रीमद्विजयानंद सूरि, राधनपुरसे विहार करके शंखेश्वर पार्श्वनाथजीकी, तथा भोयणीमें श्री मल्लिनाथजीकी यात्रा करके, कडी शहर होकर शहर अहमदाबादमें पधारे. यहां जुनागढवाले प्रसिद्ध डाक्टर “त्रिभोवनदास मोतीचंद शाह” जो श्रीमहाराजजी साहिबके परम भक्त श्रावक हैं, और जिनोंने श्री महाराज आत्मारामजीकेही उपदेशसे, दुंदुभकमतको त्याग करके, सनातन जैनधर्म अंगीकार कियाहै; तिनोंने महाराज श्री आत्मारामजीकी आंखमेंसे मोतीया निकाला. बाद श्री आत्मारामजी, अहमदाबादमें गोपाल नामा श्रावकको, दीक्षा देकर “श्रीज्ञानविजयजी” नाम स्थापन करके, तदनंतर विहार करके “मेहसाणा” जहां पांचसौ घर श्रावकोंके, और दस जैनमंदिर हैं, पधारे. और संवत् १९४५ का चौमासा, वहां किया. यहां भी डाक्टरकी मनाई होनेसे श्रीमहाराज आत्मारामजीने व्याख्यान नहीं किया; किंतु “ श्री हर्ष विजयजी महाराज ” “ श्री भगवती सूत्र ” सटीक, तथा “ धर्मरत्नप्रकरण ” सटीक सुनाते रहे. चौमासेमें महोत्सवादि बहुत धर्म कार्य समयानुसार हुवे. परंतु एक कार्य बहुतही अद्भुत यह हुआ कि, दो हजार रुपये, पुराने पुस्तकोंके उद्धारमें लगाये, और आगेके वास्ते भी श्रावकोंने ज्ञान संबंधी बंदोबस्त कर रखा .

इस चौमासेमें कलकत्ताकी “ रॉयल ऐशियाटिक सोसाईटी ” के ऑनररी सेक्रेटरी डाक्टर (भट्ट-पंडित) “ ए. एफ. रुडॉल्फ् होरनल ” साहिबने, पत्रद्वारा शा० मगनलाल दलपतराम मारफत, महाराजजी श्रीमद्विजयानंद सूरि (आत्मारामजी) को धर्म संबंधी कितनेक प्रश्न लिख भेजे थे, तिनके जवाब श्री महाराज आत्मारामजीने, शास्त्रानुसार, ऐसी चतुराईसे लिख भेजे, जिनको वांचके पूर्वोक्त साहिब, बहुत खुश हुए, और महाराज श्रीका बहुत उपकार मानने लगे. पूर्वोक्त अंग्रेज विद्वान साथ, प्रायः बहुत प्रशोचर हुए; जे बहुतसे भावनगरके “ जैन धर्म प्रकाश ” चौपान्यामें छपगये हैं. तथा पूर्वोक्त साहिबने, “ उपाशक दशांग ” नामा जैन पुस्तक अंग्रेजी तरजुमाके साथ छपवाया है; जिसमें श्री महाराजजीका उपकार मानके, बडी भक्तिके सूचक, चार श्लोकोंमें श्रीमहाराजजीका गुणानुवाद करके, तथा अंग्रेजी लेखमें भी बहुत स्तुति लिखकर वह पुस्तक महाराजजीश्रीको अर्पण कियाहै.† श्री महाराज आत्मारामजीने अहमदाबाद निवासी

† अर्पण पत्रिकाके वे चार श्लोक येह हैं.

उपजाती छंद—दुराग्रहध्वान्तविभेदभानो । हितोपदेशामृतसिंधुचित ॥

संदेहसंदेहनिरासकारिन् । जिनोक्तधर्मस्य धुरंधरोसि ॥ १ ॥

आर्या—अज्ञानतिमिरभास्करमज्ञाननिवृत्तये सहृदयानाम् ॥

आर्हततत्त्वादशग्रंथमपरमपि भवानकृत ॥ २ ॥

अनुष्टुप् छंद—आनंद विजय श्रीमन्नात्माराम महामुने ॥

मदीयनिखिलप्रश्नव्याख्यातः शास्त्रपारग ॥ ३ ॥

कृतज्ञताचिन्हमिदं ग्रंथसंस्करणं कृतिन् ॥

यत्नसंपादितं तुभ्यं श्रद्धयोत्सृज्यते मया ॥ ४ ॥

शेठ “ गीरधरलाल हीराभाई, ” जो उस वखत राज्य पालनपुरके न्यायाधीश थे, तिनकी प्रेरणासे छोटी उमरके बालकोंको भी प्रायः धर्मका स्वरूप मालुम होवे, उस ढबपर, “ श्रीजैन प्रश्नोत्तरावली ” नामा ग्रंथ प्रारंभ किया. ऐसे आनंदसे चतुर्मास पूर्ण करके श्रीमहाराजजी साहिब विहार करके तारंगाजी वगैरह तीर्थकी यात्रा करते हुये, शहर “पालनपुर” में पधारे. और “ जैन प्रश्नोत्तरावलि ” ग्रंथ पूर्ण करके पूर्वोक्त महाशयको दिया जो उन्होंने छपवाकर प्रसिद्ध किया. “ वर्धमान ” दशाडा निवासी, “ वाडीलाल ” शहर पाटन निवासी वगैरह सात जनोंको दीक्षा देकर यह नाम रखे. (१) श्रीशुभविजयजी (२) श्रीलब्धिविजयजी (३) श्रीमानविजयजी (४) श्रीजशविजयजी (५) श्रीमोतिविजयजी (६) श्रीचंद्रविजयजी (जिसका नाम इस समय “ श्रीदानविजयजी ” कहा जाताहै.) (७) श्रीरामविजयजी. ऐसे पांच वर्षमें गुजरात देशमें श्रीजैनधर्मका बहुत उद्योत किया. कई भव्य जीवोंको प्रव्रज्यारूप नावमें बिठाकर, संसार समुद्रसे पार लंघाये. हजारोंही श्रावकोंने व्रत, नियम, प्रत्याख्यान, अंगीकार किये. तथा शब्दाभोनिधि, गंधहस्तिमहाभाष्यवृत्ति, (विशेषावश्यक) वादार्णव सम्मतितर्क, प्रमाण-प्रमेयमार्तंड, खंडखाद्य वीरस्तव, गुरुतत्त्व निर्णय, नयोपदेश अमृत, तरंगिणी वृत्ति, पंचाशक सूत्रवृत्ति, अलंकार चूडामणि, काव्यप्रकाश, धर्मसंग्रहणी मूलशुद्धि, दर्शनशुद्धि, जीवानुशासन वृत्ति, नवपद प्रकरण, शास्त्रवार्त्ता समुच्चय, ज्योतिर्विदाभरण, अंगविद्या, वगैरह सैकड़ों शास्त्र लिखवाके, अभ्यास किया. ऐसे ऐसे अपूर्व ग्रंथोंको लिखवायके उद्धार कराया, जो हर एक ठिकाने मिलने मुश्किल होवे.

पालनपुरसे विहार करके पंजाब देशके श्रावकोंको धर्मोपदेश द्वारा दृढ करनेके वास्ते, “ आ-बुजी, सीरोही, पंचतीर्थी ” होकर शहर “ पाली ” में पधारे. यहां मुनि वल्लभविजयजी आदि नवीन साधुओंको योगोद्बहन करायके पुनःसंस्काररूप छेदोपस्थापनीय चारित्र प्रदान किया. बाद पालीसे विहार करके श्रीमहाराजजी साहिब, शहर “ जोधपुर ” में पधारे, और संवत् १९४६ का चौमासा वहां किया. श्रावकोंकी अभिलाषा पूर्वक व्याख्यानमें श्रीमान् श्री “ हेमचंद्र सूरि ” विरचित, श्री “ योगशास्त्र ” बांचते रहे. इस चौमासेमें श्रीमहाराजजी साहिबको युरोपमें छपा हुआ “ ऋग्वेद ” का पुस्तक, “ डॉक्टर ए. एफ. रुडॉल्फ हॉरनल ” साहिबके जरियेसे ब्रिटीश सरकारकी तरफसे, आबुके “ एजेंट टु धी गवरनर जनरल ” साहिबकी मारफत भेंट आया.

चौमासे बाद महाराजजी श्री जोधपुरसे विहार करके “ अजमेर ” पधारे, जहां समवसरणकी रचना हुई, धर्मका अच्छा उद्योत हुआ. बाद “ जयपुर, अलवर ” होकर शहर दिल्लीमें पधारे. यहां इनको, अपने रत्न समान शिष्य शिष्य, “ श्री हर्ष विजयजी ” का वियोग हुआ, अर्थात् श्री हर्ष

भावार्थ-दुराग्रह रूपी ध्वान्त अर्थात् अधिकारको नाश करनेमें सूर्य समान और हितकारी उपदेश रूप अमृत समुद्र समान चित्तवाले, संदेहका समूहसे छुड़ानेवाले, जैन धर्मके धुरके धारण करनेवाले आप हो. १.

सज्जन पुरुषोंकी अज्ञानकी निवृत्तिके अर्थ आपने “ अज्ञान तिमिर भास्कर ” और “ जैन तत्वादर्श ” नाम ग्रंथ रचे, हैं. २.

महामुनि श्रीमान् आनंदविजयजी (आत्मारामजी) ने मेरे संपूर्ण प्रश्नोंकी व्याख्या की; इस लिये हे मुनि ! आप शास्त्रमें पूर्ण हो. ३.

यत्नसे संपादित और संस्कार किया हुआ कृतज्ञताका चिन्ह रूप यह ग्रंथ श्रद्धा पूर्वक आपको अर्पण करताहूं. ४.

विजयजी स्वर्गवास हुए. दिल्लीसे विहार करके बिनौली, बडौत वगैरह होकर शहर अंबालामें पधारे. यहां “गोविंद” और “गणेशी,” नामा दो ढुंढक साधु, दूसरे साधुओंसे लडके, संवेगमत अंगीकार करनेके वास्ते, श्रीमहाराजजी साहिबके पास आकर, प्रार्थना करने लगे. तब श्री महाराजजी साहिबने कहा कि, “हाल तुम कमसे कम छ महीने तक हमारे साथ इसही (ढुंढक) वेषमें रहो, और संवेगमतकी क्रियाका अभ्यास करो; पीछे तुमको रुचे तो अंगीकार करना, अन्यथा तुमारी मरजी.” यह सुनकर कितनेक श्रावकोंकी, और साधुओंकी अरजसें श्रीमहाराजजीकी मरजी नहीं भी थी तो भी, संवेगमतकी दीक्षा देनी पड़ी. परंतु अंतमें दोनोंही, भ्रष्ट होगये. इस वखत सब श्रावक, और साधुओंको, श्री महाराजजी साहिबका कहना याद आया. सत्य है.—“बूढ़ोंका कहना, और आमलेका खाना, पीछेसे फायदा देता है.” अंबालासें विहार करके शहर लुधीयानामें पधारे, वहां कितनेही आर्यसमाजी वगैरह मतोंवाले लोक, निरंतर आते रहे; अच्छी तरह वात्सीलाप होतारहा, निरुत्तर होकर जाते रहे. जिसमेंसे एक ब्राह्मणका लडका “कृश्चंद्र ” नामा जो आर्य समाजकी सभामें भाषण दिया करताथा, महाराजजी साहिबके न्याय सहित उत्तर सुनकर, बहुत खुश हुआ, और यथार्थ धर्मका निर्णय करके गुरुमंत्र धारण करके, श्री महाराजजी साहिबका उपाशक होगया. एक महीने बाद विहार करके “मालेर कोटले” पधारे, और संवत् १९४७ का चौमासा, वहां किया. चौमासेमें “श्री आवश्यक सूत्र,” और “धर्मरत्न” सटीक वांचते रहे. “गौदामल्ल क्षत्रीय, जीवाभक्त,” वगैरह कितनेही भव्यजीवोंको सत्य धर्ममें लगाये. चौमासे बाद विहार करके “रायका कोट, जीगरांवा, जीरा ” होकर “पट्टी ” पधारे. इस वखत पट्टीका स्वरूप बदल गया, अर्थात् प्रथम, आठ दशही घर श्रावकके थे, परंतु श्रीमहाराजजी साहिबके पधारनेसे, यथार्थ निर्णय करके अनुमान अस्सी (८०) घर सनातन धर्मके तरफ ख्याल करनेवाले होगये. श्रावकोंने चौमासा करनेकी विनती करी. परंतु चौमासा दूर होनेसे जवाब दिया गया कि, “चौमासेके वखत यदि क्षेत्र फरसना होवेगी तो यहांही करेंगे. भाव तो है, परंतु अबतक निश्चयसें नहीं कह सकतेहैं. क्योंकि, न जाने कल क्या होवेगा?” बाद पट्टीसें विहार करके कसूर होकर शहर अमृतसर पधारे. यहांके श्रावकोंने नवीन श्रीजिन मंदिर, बनाया था, जिसमें “श्रीअरनाथ स्वामी” की प्रतिष्ठा संवत् १९४८ का वैशाख सुदि छठ बृहस्पति वारके दिन करी. इस प्रतिष्ठाकी क्रिया करानेके वास्ते, शहर बडोदेसे झवेरी गोकलभाई दुल्लभदास और शेट नहानाभाई हरजीवनदास गांधीको बुलाये थे. निर्विघ्नपणे प्रतिष्ठा महोत्सव पूर्ण होने बाद, श्रीमहाराजजी साहिब, विहार करके झंडीयाले पधारे. यहां सुरतके चौमासेमें श्री महाराजजी साहिबने जो “जैनमतवृक्ष ” बनायाथा. और भीमसिंह माणेकने छपवाया था, सो बहुत अशुद्ध छपनेसे, पुनः परिश्रम करके शुद्ध तैयार करके, वांचनेवालोंको सुगमता होनेके वास्ते, पुस्तकके आकारमें तैयार किया, जो इस वखत छपगयाहै. यहां पट्टीके श्रावकोंकी विनतीसे झंडियालेसें विहार करके, पट्टी पधारे. और संवत् १९४८ का चौमासा पट्टीमें किया. चौमासे पहिले कितनेक साधुओंकी प्रार्थनासे “चतुर्थ स्तुतिनिर्णय ” भाग दूसरा बनाया और चौमासामें “नवपदपूजा” बनाई. श्रीउत्तराध्ययनसूत्रवृत्ति कवलसंयमी, और श्री रत्नशेखर सूरि विरचित श्राद्ध प्रतिक्रमणवृत्ति अर्थदीपिका, वांचते रहे, सुनकर लोक बहुत दृढतर होगये. सत्य है—

“ गुरुविना ज्ञान नहीं. ”

यतः ॥ विनागुरुभ्यो गुण नीरधिभ्यो, जानाति धर्मं न विचक्षणोपि ॥

आकर्ण्ण दीर्घोज्ज्वल लोचनोपि, दीपं विना पश्यति नांधकारे ॥ १ ॥

भावार्थः—गुण समुद्र गुरुओंके विना, विचक्षण पुरुष भी, यथार्थ धर्मको नहीं जानता है, जैसे कानपर्यंत लंबे निर्मल नेत्रवाला भी पुरुष, अंधकारमें विना दीपकके, नहीं देखता है।

चौमासे बाद, यहां संवत् १९४८ मगसर वदि पंचमीके दिन, गुजरात देशमें शहर अहमदाबाद-के पास वलाद नामा गामके रहेनेवाले डाह्याभाईको दीक्षा दीनी; और “श्री विवेक विजयजी” नाम स्थापन करके, उसही दिन जीरेके श्रावकोंकी नूतन जिन मंदिरकी प्रतिष्ठा करानेकी विनती मंजूर करके, पट्टीसे विहार किया, और जीरा गाममें पधारे. ‡

बडौदेसे पूर्वोक्त श्रावक आये, तथा भरुच निवासी शेट “अनूपचंद मल्लूकचंद” सपरिवार, नूतन स्फाटिक रत्नके जिनबिंबकी अंजनशिलाका (मंत्रपूर्वक संस्कार) करानेके वास्ते, आये. और भी देश देशावरोंके बहुत लोक आये. संवत् १९४८ मार्गशीर्ष सुदि एकादशी (मौन एकादशी पर्व) के दिन, विधि पूर्वक नूतन बिंबको अंजन करके, “श्री चिंतामणि पार्श्वनाथजी”-को नवीन जिन मंदिरमें गद्दी ऊपर पधराये. निर्विघ्नतासे महोत्सव पूर्ण होनेके बाद, जीरासे विहार करके नीकोदर, जालंधर, होकर शहर हुशीआरपुरमें पधारे. क्योंकि, यहांके रहनेवाले परम उपकारी शेट लाला गुज्जरमल्लजीने नवीन जिन मंदिर, बनायाथा. तिसकी प्रतिष्ठा करानेका सुहूर्त, साधना था. यहां भी पूर्वोक्त बडौदेवाले गृहस्थही आये थे. संवत् १९४८ माघ सुदि पंचमी (वसंत पंचमी) के दिन, निर्विघ्नतापूर्वक “श्री वासुपूज्य स्वामी”-को गद्दी ऊपर स्थापन करे बाद, आसपासके गामोंमें कितनाक समय व्यतीत करके

‡ जीराके श्रावकोंका आनंद यह स्तुतिसे जाहिर होताहै.

(पंजाबी-हिंदी भाषामें)

चलो जी महाराज आए प्यारे, मात रूपदेवी जाए ॥ अंचली ॥

भाग्य उनोदे तेज भए जब, सूर पदवी पाइ ॥

नगर पट्टीमें किया चौमासा, लोक सबी तर जाइ ॥ च० ॥ १ ॥

मुनी इग्यारह (११) संग उनोदे, एकसे एक सवाए ॥

महेरबान जब होए सबीजी, जीरे नगर उठ धाए ॥ च० ॥ २ ॥

मुनी बात जब सब सेवकने, मनमें खुशी मनाई ॥

लगे शहरमें बाजे बजन, ध्वजा निशान सजाए ॥ च० ॥ ३ ॥

धूमधामसे जलै लैनको, महिमा कही न जाए ॥

एक दूसरा चले अगाडी, आगेही कदम उठाए ॥ च० ॥ ४ ॥

तीन कौशपर मिले सबी जा, चरणी सीस नमाए ॥

सीस उठाके दर्शन पाए, धन्य रूपदेवी जाए ॥ च० ॥ ५ ॥

सबी संघ होकर आनंदी, तरफ शहरदी जाए ॥

नगर बिच परवेशही कीना, आन बैठक उतराए ॥ च० ॥ ६ ॥

चौकी ऊपर आनही बैठे, मंगलिक आख सुनाए ॥

भरी सभामें दीनानाथ और, खुशीराम गुण गाए ॥ च० ॥ ७ ॥

संवत् १९४९ का चौमासा, शहर “हुशीआरपुर” में जा किया। चौमासामें श्री मानविजयो-पाध्याय विरचित “धर्म संग्रह,” तथा श्री संवतिलकसूरि विरचित “तत्त्व कौमुदी” नामा सम्यक्त्व सप्ततिका वृत्ति, वांछते रहे। चौमासे बाद जंबू शहरके नजदीकमें रहनेवाले ब्राह्मणके पुत्र “कर्मचंद” और बडौदेके रहनेवाले श्रावक “ललुभाई” को दीक्षा दीनी, जिनके नाम, अनुक्रमसे “कपूरविजयजी” और “लामविजयजी” रखे। बाद हुशीआरपुरसे विहार करके श्रीमहिजायनंद-सूरि (आत्मारामजी) महाराज, जालंधर होकर “बेरोवाल” पधारे। यहां श्री महाराजजी साहिबको मुंबाईकी “वी जैन एसोसीएशन ओफ इन्डिया” की मारफत, चीकागो (अमेरिका) का पत्र मिला। तिसमें चीकागोमें होनेवाले विश्व प्रदर्शनके वखत देश परदेशके धर्मगुरुओंका जो बड़ा मेला (समाज—The World's Parliament of Religions) होनेवाला था। तिसमें पधारनेका आमंत्रण करनेमें आयाथा, और सबसीडियरी कमीटिके मेम्बर मुकरर किए गएथे। परंतु अपनी साधुवृत्तिको खलल होवे इसवास्ते वहां नहीं जा सकनेसे, श्री महाराजजी साहिबने, चीकागोके पत्रकी नकल और चीकागोवालेकी मांगणी मुजब अपना संक्षेपसे जीवन वृत्तान्त, तथा फोटो (छवि) वगैरह, मुंबई श्रीसंघको भेजवा दिये। जिससे मुंबईके श्रीसंघने एक सभा करके “मि० वीरचंद राघवजी गांधी, बी. ए.” (फोटो देखो) को जैन धर्मका प्रतिनिधि करके, चीकागो भेजनेका ठराव किया। इस वखत महाराज श्रीका मुकाम, बेरो-वालसे झंडीआले होकर शहर “अमृतसर” में हुआ था। वहां मि० वीरचंद राघवजीने आकर, श्रीमहाराजजी साहिबको प्रार्थना करी कि, “मुजको चीकागो जानेके वास्ते श्रीसंघने फरमाया है, इसवास्ते मैं श्रीसंघकी आज्ञाको मस्तकोपरि धारण करके, आपकी सहायतासे चीकागो जाने-को तैयार हुआहूं, आप कृपा करके मुजको मदद तरीके थोडासा जैनधर्मसंबंधी ब्यान, लिखदेवें।” इस प्रार्थनाको स्वीकार करके, श्रीमहाराजजी साहिबने, एक महिने तक परिश्रम उठाकर, एक लिखाण (निबंध) तैयार करदिया। §

अमृतसरसे विहार करके श्रीमहाराजजी साहिब, झंडीआलामें पधारे; और संवत् १९५०

§ यह निबंध चीकागो प्रश्नोत्तर के नामसे ग्रंथके आकारमें छप रहा है। धर्मसमाजकी १७ दीनकी कारर-वाई और भाषणका जो हाल पुस्तकद्वारा चीकागोमें छपा है, जिसमें महाराजजी श्रीकी तसबीर रखी गई है और उसके नीचे इस माफक लेख है।

“No man has so peculiarly identified himself with the interests of the Jain Community as “Muni Atmaramji.” He is one of the noble band sworn from the day of initiation to the end of life to work day and night for the high mission they have undertaken. He is the high priest of the Jain Community and is recognized as the highest living “Authority” on Jain religion and literature by oriental scholars.”

भावार्थ:—जैसी विशेषतासे मुनी आत्मारामजीने अपने आपको जैनधर्ममें संयुक्त वा लीन किया है ऐसे किसी माहात्माने नहीं किया है। संयम ग्रहण करनेके दिनसे जीवन पर्यंत जिन प्रशस्त महाशयोंने स्वीकृत श्रेष्ठ धर्म अहोरात्र रत वा सहोद्योग रहनेका निश्चय वा नियम किया है उनमेंसे यह मुनिराज है। जैनधर्मके आप परमाचार्य हैं, तथा प्राच्य वा पौरस्त्य विद्वान जैनमत और जैनशास्त्रोंके संबंधमें विद्यमान जनोंमें सबसे उत्तम प्रमाण इस महर्षिको मानते हैं।

का चौमासा, वहां किया। चौमासेमें “सूर्यगडांग सूत्र वृत्ति,” और “वासुपूज्य स्वामी चरित” वांचते रहे। इस चौमासेमें श्रावकोंके आग्रहसे “स्नात्रपूजा” बनाई। चौमासे बाद भी यहां जानुओंके (घूंठणोंके) दरदसे, कितनाक समय रहना पडा। तिस समयमें नूतन दीक्षित साधुओंको बृहद् योगोद्बहन कराया, और पट्टीमें जाके छेदोपस्थापनीय चारित्रिका संस्कार दिया। बाद पट्टीसे विहार करके जीरामें पधारे। और संवत् १९५१ का चौमासा, वहां किया। इसी चौमासेमें, “तत्त्वनिर्णय प्रासाद” नामा ग्रंथ पूर्ण किया, जो ग्रंथ, इस समय अस्मदादिकोंके दृष्टिगोचर हो रहा है; और जिस ग्रंथको हाथमें लेकर, ग्रंथकर्ताके जीवन चरितामृतका पान कर रहे हैं।

इस ग्रंथकी समाप्ति अनंतर श्रीमहाराजजी साहिबने, “महाभारत” का आद्योपांत स्वाध्याय करा। “ऋग्वेदादि चारों वेदों” का, तथा “ब्राह्मण भाग” जितने छपेहुए मिले तिन सर्वका स्वाध्याय तो, श्रीमहाराजजीने प्रथमसेही कराया। स्वमत (जैनमत) विना अन्य मत मतांतरोंका भी, श्रीमहाराजजी साहिबको पूर्ण ज्ञान था। जो इनके बनाये “जैनतत्त्वादर्श,” “अज्ञान तिमिर भास्कर,” और “तत्त्वनिर्णय प्रासाद” वगैरह ग्रंथोंके देखनेसे, साफ साफ मान्य होतोहै। महाभारतका स्वाध्याय किये बाद, पुराणोंका स्वाध्याय भी अनुक्रमसे करा।

जीरेके चौमासेसे पहिले जीरेमें ऐसा अद्भुत बनाव बना कि, जिससे पंजाब देशके श्रावकोंको अतीव आनंदामृतका स्नान हुआ। क्योंकि, इस पंजाब देशमें आजतक कोई भी यथार्थ सनातन जैनधर्मकी वृत्तिवाली “साध्वी” न थी। सो देश मारवाड शहर “बीकानेर” से, साध्वी श्री “चंदनश्रीजी,” और “लगनश्रीजी,” विहार करके रस्तेमें अनेक प्रकारके कष्ट सहन करके जीरामें पधारीं। और श्रीमहिजयानंदसूरीश्वरजीके दर्शनामृतके स्नानसे, मार्गका सर्व परिश्रम भूलायके, पंजाबके श्राविका संघको अतीव सहायक हुईं। इनके साथ एक बाई बीकानेरसे दीक्षा लेनेकेवास्ते आई हुई थी, तिसको दीक्षा दीनी, और “उद्योतश्रीजी” नाम रखा। चौमासेबाद जीरासे विहार करके श्रीमहाराजजी साहिब, पट्टीमें पधारे। और संवत् १९५१ माघ सुदि त्रयोदशीके दिन, गुजरात देशसे आये हुये स्फाटिक जिनबिंब, और पंजाब देशके श्रावकोंके कितनेक नूतन जिनबिंब मिलाके (५०) जिनबिंबकी, अंजनशिलाका करी। तथा नवीन जिन मंदिरमें “श्री मनमोहन पार्श्वनाथजी” को स्थापन किये। इस पूर्वोक्त क्रिया कराने वास्ते भी, वेही श्रावक आये थे। प्रतिष्ठा महोत्सव पूर्ण होनेके बाद, विहार करके लाहोर तरफ पधारनेका इरादा, श्रीमहाराजजी साहिबका था। परंतु शहर अंबालाके श्रावक नानकचंद, वसंतामल्ल, उद्दममल्ल, कपूरचंद, भानामल्ल, गंगाराम, वगैरह प्रतिष्ठा महोत्सवपर आये थे। उनोंने विनती करी कि, “महाराजजी साहिब ! हमारे शहरमें आपकी कृपासे जिन मंदिर तैयार होगया है। सो कृपानाथ ! कृपा करके आप शहर अंबालामें पधारो। और प्रतिष्ठा करके हमारे मनोरथ पूर्ण करो। हमारी यही अभिलाषा है कि, हमारे जीते जीते प्रतिष्ठा हो जावे, कालका कोई भरोसा नहीं, खबर नहीं कलको क्या होवेगा ? इस वास्ते हम अनार्योंकी प्रार्थना जरूर अंगीकार करके, हमको सनाथ करने चाहिये।” यह सुनकर श्रीमहाराजजी साहिबने पूर्वोक्त विचार बदलके, शहर अंबालाके तरफ विहार कर दिया। और अनुक्रमे शहर अंबालामें पधारे। यहां जुनागढके “डाक्टर त्रिभोवनदास-मोतीचंद शाह, एल. एम.” ने आके, श्रीमहाराजजीकी दूसरी आंसका मोतीया निकाला था। इस हेतुसे संवत् १९५२ के चौमासेमें श्री महाराजजी साहिब व्याख्यान नहीं करते थे। पर्युषण पर्वके

लंगभंग, मि० वीरचंद गांधी चीकागोसे आके, यहां श्रीमहाराजजी साहिबको मिले, और अपनी काररवाई, सुनाई. सुनके श्रीमहाराजजी साहिबको इतना हर्ष प्रकर्ष हुआ, जो लिखनेसे बाहिर है.

चौमासे बाद भी कितनाक समय शहर अंबालामेंही रहे. क्योंकि, संवत् १९५२ का मगसर सुदि पूर्णिमाको, “श्रीसुपार्श्वनाथ” सप्तम तीर्थंकरकी जिन प्रतिमाको नूतन जिन मंदिरमें स्थापन करनेका मुहूर्त था. तिस मुहूर्तपर वहांके श्रावकोंने अपूर्वही रचना करीथी. जो समग्र उमरमें भी देखनेमें नहीं आई थी. एक साक्षात् देवलोकका नमुना बना दियाथा. दूर दूरसे यावत् देश गुजरात-मेहसाणासे चांदीका रथ वगैरह असबाब, मंगवायाथा. निर्विघ्नपणेसे विधिपूर्वक पूर्वोक्त मुहूर्त साधके, श्री सूरिमहाराज, लुधीयाना शहरमें आये. इनके शुभागमनसे आनंदित होकर श्रावक समुदायने, किसी सांसारिक कार्यके सबबसे अपनी ज्ञाति (विरादरी) में कितनेही वर्षोंसे जो झगडा पडाथा, सो सलाह संप करके दूर कर दिया. और “ श्री कलिकुंडपार्श्वनाथ ” (जिसके साथकी दो मूर्ति, देश गुजरातमें भावनगरके पास वरतेज गाममें, श्रीसंभवनाथके जिन मन्दिरमें, देखनेमें आती हैं.) का जिन मन्दिर बनवाना प्रारंभ किया. इस जिन मन्दिरके प्रारंभमें अग्रता, रामदत्तामल्ल क्षत्रीय, जिसको श्रीमहाराजजी साहिबने जैनधर्मानु-रागी बनायाहै, तिसकी है. क्योंकि, इसने अपनी दो दुकानें, श्री जिन मन्दिर बनानेके वास्ते प्रथम दी. तदनन्तर लाला गोपीमल्लके पुत्र, खुशीराम वगैरहने अपनी दो दुकानें दी. बाद सकल श्रीसंघने मदद देकर, श्रीजिनमन्दिर बनाना सुरू करदिया. यहां बहुत अन्यमति लोक भी, व्याख्यानमें आतेथे. क्योंकि, इस पंजाब देशमें प्रायः इतना पक्षपात नहीं है. किंतु मत मतांतरोंका जोर होनेसे, हर एक मतवालेके पास, हर एक मतवाला प्रायः चरचा वार्त्ता करनेके वास्ते आता जाता है. इस समय जितनी मतमतान्तरोंकी प्रचलना, देश पंजाबमें है, अन्य स्थानोंमें नहीं होगी. श्री महाराजजी साहिबकी शांत मूर्तिको देख, और हर एक बातका पूरा पूरा दिलको शांति करनेवाला जवाब सुनके, और अपूर्व ज्ञानामृतका स्वाद चखके, शहर लुधीआनेके लोक बहुत मोहित होगये, और चौमासेकी प्रार्थना करने लगे. श्री महाराजजी साहिबके मनमें भी, प्रार्थना मंजूर करनेकी सलाह होगई. परंतु इस अवसरमें, जिल्ला स्यालकोट गाम सनखतरेके रहनेवाले श्रावक, गोपीनाथ, अनन्तराम, प्रेमचंद, ताराचंद स्वप्नेरवाल भावडेकी विनती आई कि, “ महाराजजी साहिब ! आपने शहर अंबालामें, भाई अनन्तरामको फरमायाथा कि, ‘यदि मन्दिरका काम तैयार होगया होवे, और प्रतिष्ठा करानेका इ-रादा होवे तो, संवत् १९५३ का वैशाख सुदि पूर्णिमाका मुहूर्त आताहै. ’ तब अनन्तरामने कहाथा कि, ‘ मैं घर जाकर सब भाइयोंसे सलाह करके आपको जवाब लिखवा देऊंगा. और मैं तो परम राजीहूं कि, धर्मका कार्य जलदी हो जाना अच्छा है, सो महाराजजी साहिब ! हम अनन्तरामका कहा सुनकर, परमानन्दको प्राप्त हुवे हैं. हमारे भाग्यमें ऐसा दिन आ जावे तो, और क्या चाहिये ? हमको आप साहिबका हुकम मंजूर है, आपका फरमाया मुहूर्त हमको मान्य है, परन्तु आप जानते हैं कि हमलोक अनजान हैं. क्या करना, और क्या नहीं हम कुछ जानते नहीं हैं. इतना तो, हमको यकिन हैही कि, आप प्रतापी महाराजके प्रभावसे, हमरा सर्व कार्य सानन्द समाप्त हो जायगा. तथापि हम, पामर सेवक, आपके चरणोंमें सीस रखके, प्रार्थना

करते हैं कि, आप दया करके प्रतिष्ठाके दिनोंसे महिना दो महिने पहिलेही, यहां (सनखतरामें) पधारोगे, जिससे हमको शांति हो जावेगी. ”

इस विनतीको हृदयमें धारण करके श्री महाराजजी साहिब लुधी आनेसे विहार करके फगवाडा, जालंधर, झंडी आला, अमृतसर, होकर नारोवालमें पधारे. यहां अनुमान पंद्रा दिन रहकर प्रतिष्ठाके सबबसे श्री सूरिमहाराज, “सनखतरे” पधारे; जहां अलौकिक जैन मंदिर, देखके अत्यानंद हुआ. मंदिरके सोपान(पडडी) चढते हुये, श्री महाराजजी साहिब अपने शिष्य “वल्लभ विजय” से कहने लगे कि, “अरे वल्लभ ! क्या शत्रुंजय ऊपर चढते हैं ?” इस वखत शत्रुंजयके याद आनेका हेतु यही है कि, वो मंदिर शत्रुंजय तीर्थ ऊपर मूल नायक श्री ऋषभदेव भगवान्की टुकका जैसा नकशा है, वैसीही ढब पर बना हुआ है. अहा ! वृद्धोंके, और फिर महात्माओंके, जिसमें भी ऐसे गुण-समुद्र महात्मा कि, जिसके गुणोंका वर्णन करना मुश्किल है, ऐसे महात्माके सुखार्विंदसे पूर्वोक्त वचन वासना अनायासही, ऐसी निकली के, जिसने सनखतरेके मंदिरको वासित करदिया. अर्थात् उस समय वो मंदिर, साक्षात् शत्रुंजयकाही अनुभव देने लगा. क्योंकि, श्री महाराजजी साहिबके पधारनेसे, सनखतराके श्रावक समुदायने, देश परदेश प्रतिष्ठा महोत्सव संबंधी आमंत्रण पत्र भेजे. जिसको वांचके कपडवंजका श्रावक शाह शंकरलाल वीरचंद और अहमदावादका श्रावक ठकोरदास, नवीन जिनबिंबको अंजनशिलाका करानेके वास्ते लेके सनखतरे पहुंचे, इनको उतारा दे रहे थे, इतनेमेंही, मुंबईसे “ शेट तलकचंद माणेकचंद जे. पी. ” के भेजे मणिलाल, और छगनलाल नवीन जिनबिंबको अंजनशिलाका कराने वास्ते लेकर आये. जिनके साथ शत्रुंजय तीर्थ ऊपरसे शेट मोतीशाहके कारखानेसे नवीन जिनबिंबको अंजन-शिलाका वास्ते लेकर, माली, मंदिरका पूजारी, आयाथा. तथा बडौदेवाले, “गोकलभाई दुल्लभदास ” और छाणीवाले “नगीनदास गरबडदास,” प्रतिष्ठाकी क्रिया कराने वास्ते आये थे; वे भी, “बडौदा,” “अहमदावाद,” “मेहसाणा,” “छाणी,” “यस्तेज,” “जयपुर” “दील्ली,” वगैरह शहरोंके श्रावकोंके बनवाए रत्नमय, और पाषाणमय, जिनबिंब, ले आये थे. एवं पौने-दोसौं (१७५) जिनबिंब अंजनशिलाकाके वास्ते, सनखतरेके मंदिरमें तीन वेदिका ऊपर स्थापन किये गये. जिसमें मूलनायकजी, श्री ऋषभदेवजी, स्थापन किये गये थे. इस वखत शत्रुंजय तीर्थके सिद्धघराका अनुभव, देखनेवालेको होरहा था. श्रीसूरि महाराजजीकी निगा नीचे, श्रीवर्द्धमान सूरि विराचित आचार दिनकर ग्रंथके अनुसार पूर्वोक्त श्रावक सकल क्रिया करते रहे. लग्नका समय प्राप्त हुए, श्रीसूरि महाराजने, “ श्री धर्मनाथ स्वामी ” को, नूतन मंदिरमें गद्दी ऊपर स्थापन करके, मूलनायक श्री “ऋषभदेवजी” वगैरह नूतन जिनबिंबको, विधि पूर्वक अंजन किया. इन अंजन किये नवीन जिनबिंबमेंसे कितनेक तो, श्रीशत्रुंजय तीर्थ ऊपर, कपडवंजवाली शेटाणी माणेकबाईका बनवाए नवीन जिन मंदिरमें स्थापन किये गये. भी० तलकचंद माणेकचंदने, सुरतमें जिन मंदिर बनायके स्थापन किये. एवं अपने अपने शहरमें, जिनबिंब बनवानेवालों-ने, श्री जिन मंदिरमें स्थापन किये. मोतीशाह शेटवाले जिनबिंब, शत्रुंजय तीर्थ ऊपर, मोतीशाहकी टुकमें स्थापन किये गये. एक मूर्ति लाजवर्द रत्नकी, श्री नेमनाथ स्वामीकी, अंजनशिलाका, और प्रतिष्ठा महोत्सवके याद करनेके वास्ते, सनखतरेके मंदिरमें स्थापन की गई.

ऐसे वैशाख सुदि पूर्णिमा, सोमवार, स्वाति नक्षत्र, रवियोग, तथा सिद्धयोगादि, शुभ दिनमें

अंजनशिलाका और श्रीधर्मनाथ स्वामीकी प्रतिष्ठा करके बड़े आनंदको प्राप्त हुए. और जेठ वदि छठको, सनखतरासे गुजरांवालेके श्रावकोंकी विनती मान्य करके, विहार करके, “किलाशोभा सींधका ” होकर, शहर “ पशरूर ” में पधारे. वहां, प्रथम पांच सात दिन रहनेका इरादा था; परंतु सनातन जैनधर्मानुरागीके अभावसे, उश्र जलके न मिलनेसे जिस दिन गये, उसही दिन अनुमान चार बजे विहार करदिया. इस वखत नगरके क्षत्रीय ब्राह्मण वगैरह लोकोंने, वहांके रहीस हुंढकमतानुसारी भावडोंका, बहुत तिरस्कार किया. जिससे कई भावडे लाचार होकर, और कितनेके अंतरंग श्रद्धावाले, अपने बापदादाके डरसे प्रकटपणे काररवाई नहीं करनेवाले, आकर बहुत विनती करके कहने लगे कि, “महाराजजी साहिब ! हमारा मुन्हा माफ कीजिये; आगेको ऐसा काम नहीं होगा.” परंतु कालके जोरसे, उस वखत, इन महात्माके मनमें, बिलकुल करुणा नहीं आई. हाय ! काल कैसा निष्करुण है कि, जो अपने आनेके समयमें, करुणासागरको भी निष्करुण, करदेताहै !

पशरूरसे विहार करके छछरांवाली, सतराह, सेरांवाली, होकर बडाला गाममें पधारे. तहां रात्रिके पिछले प्रहरमें, दम (श्वास) चढना सुरू होगया. इस श्वास रोगने इतना जोर एकदम कर दियाके, कदम भरना भी, मुश्कल होगया. तथापि इस रोगको, श्रीमहाराजजी साहिबने, कुच्छ नहीं गिना; मनोबलसे चलते रहे. परंतु शरीरने, जवाब दे दिया. इसवास्ते बडालेसे गुजरांवालेका एक दिनका रस्ता भी, तीन दिनमें समाप्त किया, और जेठ सुदि वृजके रोज बडी धूमधामसे श्रावक लोकोंने नगरमें प्रवेश करायके श्रीमहाराजजी साहिबको उपाश्रयमें उतारे.

सोला (१६) वर्ष पीछे श्रीमहाराजजी साहिबका आगमन, इस शहरमें होनेसे लोकोंको बडाही उत्साह प्राप्त हुआ था. कितनेही जिज्ञासु, चरचा वार्त्ता करते रहे. पूर्वाक्त रोगकी चिकित्सा करानेके वास्ते, अन्य साधुओंने कहा. परंतु कालकी प्रबलतासे, चिकित्सा करानेको मान्य नहीं किया. इतनाही नहीं, बलकि साधुओंसे कहने लगे कि, “ ऐसे थोडे थोडे रोग पीछे क्या दवाई करानी ? ” साधुओंने भी “ विनाशकाले विपरीत बुद्धि: ” इस कहावत मुजब, श्रीमहाराजजीका कहा, जो इस वखत मान्य नहीं करने योग्य था वो भी मान्य करलिया, जिसका फल थोडेही दिनोंमें, साधु और श्रावकोंको मिलगया. अर्थात् संवत् १९५३ जेठ सुदि सप्तमी मंगलवारकी रात्रि को, प्रतिक्रमण करके, अपना नित्य नियम संथारा पौरुशी वगैरह कृत्य करके सो गये. अनुमान रात्रिको बारा बजे नींद खुल गई, और दम उलट गया. दिशाकी हाजत होनेसे दिशा फिरके शुचि करके, आसन ऊपर बैठे हुए, “ अर्हन् ! अर्हन् ! अर्हन् ! ” ऐसे तीन बेरी मुखसे उच्चारण करके, “लो भाई, अब हम चलते हैं, और सबको खमाते हैं. ऐसा कहके, पुन: “अर्हन्” शब्द उच्चारण करते हुए, अंतर्ध्यान होगये.† इस वखत साधु श्रावकोंको जो दु:ख पैदा हुआ, वाणीके अगोचर है. इस दु:खको सहन न करके, चंद्रमा भी, मानु अपनी चांदनीको संकोचके, अदृश्य होगया होवे ऐसे अस्त होगया ! और अज्ञान रूप भाव अंधारा, अब ज्ञान सूर्यके अस्त होनेसे प्रकट होगया, ऐसा मालुम करनेको, द्रव्य अंधारा, होगया. दुर्जनके हृदयवत् काली रात्रिको

† जिस वखत महाराजका स्वर्गवास हुआथा, उसवखत अष्टमी पहिलेसेही लग चूकीथी, ईस लिये काल-तिथि जेठ सुदि अष्टमी गीनीगई.

देसके, सब सेवकोंके मुखका तेज, उडगया। किसीका जोर नहीं चला। कई सेवक जन, स्नेह विव्धल होके, कहने लगे, “महाराज ! आपने इतनी शीघ्रता क्यों करी ?” कोई कहता है, “रे ! दुष्ट ! काल ! ऐसे उपकारी पुरुषका नाश करते हुये, तेरा नाश क्यों नहीं हुआ ?” कोई कहता है, “महाराज साहिबने, अपना वचन सत्य कर लिया। क्योंकि, जब कभी किसी जगेपर, गुजरांवालेके श्रावक विनती करते थे तो, उनको यही जवाब देते थे कि, ‘भाई क्यों चिंता करते हो ? अंतमें हमने बाबाजीके क्षेत्र गुजरांवालेमें बैठना है’।”

यथा—हे जी तुम सुनीयोजी आतम राम, सेवक सार लीजोजी ॥ अंचली ॥

आतमराम आनंदके दाता, तुम विन कौन भवोदधि त्राता ॥

हुं अनाथ शराणि तुम आयो, अब मोहे हाथ दीजोजी ॥ हे० ॥ १ ॥

तुम विन साधु सभा नवि सोहे, रयणीकर विन रयणी खोहे ॥

जैसे तराणि विना दिन दिपे, निश्चय धार लीजोजी ॥ हे० ॥ २ ॥

दिन दिन कहते ज्ञान पढाऊं, चूप रहे तुज लड्डु देऊं ॥

जैसे माय बालक पतयावे, तिम तुमे काहे कीजोजी ॥ हे० ॥ ३ ॥

दिन अनाथ हुं चेरो तेरो, ध्यान धरूं हुं निश दिन तेरो ॥

अबतो काज करो गुरु मेरो, मोहे दीदार दीजोजी ॥ हे० ॥ ४ ॥

करो सहाज भवोदधि तारो, सेवक जनको पार उतारो ॥

बारबार विनती यह मोरी, बलभ तार दीजोजी ॥ हे० ॥ ५ ॥

इत्यादि अनेक संकल्प विकल्प करते हुए, आधि रात्रि आधे जुग समान होगई। प्रातःकाल होनेसे, शहरमें हाहाकार हो रहा। हिंदुसें लेके मुसलमान पर्यंत कोईकही निर्भाग्य शहरमें रहगया होगा कि, जिसने उस अंत अवस्थाका दर्शन, नहीं पाया होगा! जो देखता रहा, मुखसें यही शब्द निकालता रहा कि, “इन महात्माने तो समाधि धारण करी है, इनको काल करगये, कौन कहता है ?” यह वखतही ऐसा था; ऐसा तेज शरीर ऊपर छायाथा, देखनेवालेको एक दफा तो भ्रमही पडजाता था। स्कूलके मास्तर छुटी होनेके सबबसे पिछली मुलाकातसे मिलनेको, और बातचित करनेको आते थे, रस्तेमें सुनके हैरान होकर कहने लगे कि, “क्या किसी दुश्मनने यह बात उ-डाई है ? क्योंकि, कल शामके वखत, हम महात्माके दर्शन करके, और मतमतांतरों संबंधी बातचित करके, आज आनेका करार करगये थे। रात रातमें क्या पत्थर पडगया ?” आजके देखे तो सत्यही था। दर्शन करके कहने लगे, “महात्माजी आप हमसें दगा करगये ! हमतो आपसे, बहुत कुच्छ पूछके धर्म संबंधी निर्णय करना चाहते थे। आपने यह क्या काम किया ? क्या हमारे-ही मंद भाग्यने जोर दिया, जो आप हमको भूला गये ?” वगैरह जितने मुख, उतनीही बातें होती रही। परंतु सब, उजाड़में रुदन करने तुल्य था। क्योंकि, कितनाही विरलाप करें, कुच्छ भी बनता नहीं है। काल महा बली है। बड़े तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती, वासुदेव, किसीको भी कालने छोडे नहीं है।

रातों रात देशावरोंमें तारद्वारा पूर्वोक्त वज्रघातके समाचार, पहुंच गये. परंतु यह अविचारित समाचार, सेवकजनोंको सत्य भान नहीं हुआ. यही मनमें आया कि, “किसी द्वेषीने हमारे हृदयको दुःखानेके वास्ते, यह खोटी वार्ता, फैलाई है. क्योंकि, प्रथम भी दो वखत द्वेषी लोकोंने ऐसी खोटी वार्ता फैलाई थी.” पुनः गुजरांवाले तार भेजके खबर मंगवाई कि “ यह क्या बात है ?” बदलेका जवाब पहुंचगया कि, “ क्या बात पूछते हो ? अंधकार हो गया. ज्ञान सूर्य अस्त हो गया.” प्रातःकाल होतेही लाहोर, अमृतसर, जालंधर, झंडीयाला, हुशीआरपुर, लुधीआना, अंबाला, जीरा, कोटला, वगैरह शहरोंके श्रावक समुदाय निस्तेज होकर, आने लग गये. निरानंद होकर, अश्रुजलकी वर्षासे बाह्यतापको शांत करते हुये, और अंतरंग तापको तेज करते हुये, चंदनकी चितामें स्थापन करके महात्माके शरीरका अग्नि संस्कार, बहुत धूम-धामसे किया. उस वखतके चितारका स्वरूप यह गायनसे मालुम होगा.

सतगुरुजी मेरे दे गये आज दिदार स्वामीजी मेरे,

दे गये आज दिदार श्री श्री आतमराम सूरेश्वर,

विजया नंद सुखकार स्वामीजी ॥ अंचलि ॥

गुरु होए निर्वान, संघ हो गया हैरान,

टूट गया मन मान, ज्ञान ध्यान कैसे आवेगा;

अब उपजीया शोक अपार, स्वामीजी० ॥ १ ॥

ये गंभीर धुनि वानी, जिनराजकी वखानी,

गुरुराजकी सुनानी, ऐसे कौन सुनावेगा;

अब किसका मुझे आधार ॥ स्वामीजी० ॥ २ ॥

धन्य धन्य सूरिराज, होये जैनके जहाज,

बहु सुधारे धर्म काज, अब कौन डंका लावेगा;

श्री गुण ज्ञान अपार ॥ स्वामीजी० ॥ ३ ॥

मुनि सार्धवाह प्यारे, जीव लाखोही सुधारे,

चंद दर्शनी दिदारे, नहीं सोही पछतावेगा;

अब होगइ हाहाकार ॥ स्वामीजी० ॥ ४ ॥

जैसे सूरज उजारे, मतमिथ्यात निवारे,

अंधकार मिटे सारे, कौन चांदना दिखावेगा;

दास खुशी कैसे धार ॥ स्वामीजी० ॥ ५ ॥

॥ ॐ ॥

॥ नमः श्री परमात्मने ॥

अथ तत्त्वनिर्णयप्रासादप्रारम्भः ॥

अथ श्रीमत्तपगच्छाचार्य श्री श्री श्री १००८ श्रीम-
द्विजयानंदसूरीश्वर “आत्माराम” कृत श्री
तत्त्वनिर्णयप्रासादनामग्रंथप्रारंभः ।

तत्रादौ मंगलाचरणम् ॥

प्राकारैस्त्रिभिरुत्तमा सुरगणैस्संसेविता सुन्दरा
सर्वाद्वैर्मणिकिङ्किणीरणरणज्झाङ्काररावैर्वरा ॥
यस्यानन्यतमा सुभूमिरभवद् व्याख्यानकाले ध्रुवं
स श्रीदेवजिनेश्वरोभिमतदो भूयात्सदा प्राणिनाम् ॥ १ ॥

जीन प्रभुकी सभा (सुभूमि) निश्चय करके व्याख्यान समयमें (रज-
त, कनक, रत्नके बने) तीन कोट करके उत्तम, देव समुदायसें संसेवित,
सर्वांगोंसें मनोहर, मणिमय घुंघरूओंके रणरणत् झणकार करके श्रेष्ठ,
ओर अनुपम होती हुई,—ऐसे श्री जिनेश्वर देव प्राणिओंको सदा
वांछित फलके देनेवाले हो ॥ १ ॥

(१. यह श्लोकमें समुच्चय राग द्वेपादि अंतरंग शत्रुओंको जितने-
वाले श्री जिनेश्वर देवकी स्तुति है.)

नमितनम्रसुरासुरकिन्नरचरणपङ्कजबोधिदपारग ॥

प्रथमतीर्थकरप्रविशारद प्रभव भव्यजनाय सुसौख्यदः ॥ २ ॥

नम्रीभूत देव, असुर, और किन्नर करके नमस्कार किये गये हैं
चरणकमल जिनके, बोधबीज (समकित-रत्नत्रय) की प्राप्तिके कराने-

वाले, संसारसमुद्रके पारंगामी, और अति कुशल (प्रविशारद=केवल ज्ञान, केवल दर्शन करके संयुक्त) ऐसे, हे, प्रथम तीर्थके करनेवाले (श्री आदीश्वर-ऋषभदेव भगवान्) भव्य जिवोंको भला सुख देनेवाले हो॥२॥

(२. यह श्लोकमें इस अवसर्पिणीके चौबीस तीर्थकरोमें प्रथम तीर्थ-कर श्री युगादि देवकी स्तुति है.)

ये पूजितास्सुरगिरौ विविधैः प्रकारैः

क्षीरोदसागरजलैरमरासुरेशैः ॥

जन्माभिषेकसमये वरभक्तियुक्तै-

स्ते श्रीजिनाधिपतयो भविकान् पुनन्तु ॥ ३ ॥

जन्माभिषेक समयमें, सुमेरु पर्वतपर उत्कृष्ट भक्तिवान चार जातिके (भुवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषि, वैमानिक) देवेंद्रोंने, क्षीर समुद्रके जलसें नाना प्रकारका पूजन किया, ऐसे श्री जिनाधिपति भव्य जी-वोंको पवित्र करो ॥ ३ ॥

(३. यह श्लोकमें बाबीस तीर्थकरकी समुच्चय स्तुति है.)

गतौ रागद्वेषौ विविधगतिसंचारजनकौ

महामल्लौ दुष्टावतिशयबलौ यस्य बलिनः ॥

प्रभोर्देवार्यस्य प्रचुरतरकर्मारिविकलं

नमामो देवं तं विबुधजनपूजाभिकलितम् ॥ ४ ॥

जीन बलवान, देव प्रधान (चौबीसमे तीर्थकर श्री महावीर) प्रभुके, नाना प्रकारकी गतिओंमें (चार गति, चौरासी लक्ष जीवाजून) भ्रमण करानेवाले दुष्ट महामल्ल समान अतिशय बलवाले राग द्वेष नाशको प्राप्त हुए, उन बड़े भारी कर्म शत्रु करके रहित, और देवसमूह करके पूजित, श्री जिनेश्वरदेवको (श्री महावीर-वर्द्धमान स्वामिको) हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

(४. यह काव्यमें निकटोपकारी शासननायक श्री महावीर, चौबीसमे तीर्थकरकी स्तुति व नमस्कार है.)

ये नो पण्डितमानिनः शमदमस्वाध्यायचिन्ताचिताः
 रागादिग्रहवञ्चिता न मुनिभिः संसेविता नित्यशः ॥
 नाकृष्टा विषयैर्मदैर्न मुदिता ध्याने सदा तत्परा-
 स्ते श्रीमन्मुनिपुङ्गवा गणिवराः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥ ५ ॥

जे पांडित्यमद रहित, क्रोधादिको शांत करनेमें, इंद्रियोंका दमन करनेमें, स्वाध्याय ध्यान करनेमें लीन, रागादि ग्रह करके अवंचित, (नहीं ठगाये हुवे,) मुनियों करके नित्य संसेवित, विषयों करके अलिप्त, (पांच इंद्रियोंके तेवीस विषयोंसे पराङ्मुख) अष्टमद (जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, तपमद, ज्ञानमद, लाभमद, ऐश्वर्यमद,) रहित, और ध्यानमें सदा तत्पर हैं, वे श्रीमान मुनियोंमें प्रधान गणधर और पूर्वाचार्य हमारे मंगल करो ॥ ५ ॥

(५. यह काव्यमें जिनके किये शास्त्रोंसे शास्त्रकारको बोध प्राप्त हुआ तिनका बहुमान किया है.)

कलमकलितपुस्तन्यस्तहस्ताग्रमुद्रा
 दिशतु सकलसिद्धिं शारदा सारदा नः ॥
 प्रतिवदनसरोजं या कवीनां नवीनां
 वितरति मधुधारां माधुरीणां धुरीणाम् ॥ ६ ॥

जो कवियोंके मुखकमलमें नवीन (अपूर्वही) श्रेष्ठ और मधुर मधु-धारा देती है, लेखनी संयुक्त पुस्तक धारण किया है हस्ताग्र भागमें जिसने ऐसी मुद्रामूत्रिको धारण करनेवाली, और सारवस्तुको देनेवाली श्री सरस्वती देवी (श्री भगवतकी वाणीकी अधिष्ठायिका देवी) सकल सिद्धि देओ ॥ ६ ॥

(६. यह श्लोकमें श्रुत देवकी स्तुति करी है.)

श्रीवीरशासनाधिष्ठं यक्षं मातङ्गनामकम् ॥
 सिद्धायिकां त्वहं देवीं स्तुवे विघ्नोपशान्तये ॥ ७ ॥

श्री महावीर स्वामीके शासनकी रक्षा करनेवाले मातंग यक्ष देवता और सिद्धायिका देवीकी, विघ्नोंकी शांतिके लिये, स्तुति करता हूं ॥ ७ ॥

अन्यानपि सुरान् स्मृत्वा जैनधर्मेकतत्परान्
तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थोऽस्माभिः प्रतन्यते ॥ ८ ॥

जैन धर्ममें तत्पर सम्यग् दृष्टि दुसरे देवोंका स्मरण करके, तत्त्वनिर्णय प्रासाद नामा ग्रंथको हम विस्तार करते हैं ॥ ८ ॥

(७. ८. यह दो श्लोकमें सम्यग् दृष्टि देवोंका स्मरण करके शास्त्रका प्रारंभ सूचन किया है.)

अथ प्रथमस्तम्भप्रारम्भः

विदित होवे के संप्रति कालमें कितनेक लोक संसारिक विद्याका अभ्यास करके अपने आपको सर्वसे अधिक अकलवंत मानने लग जाते हैं, और ऐसे घमंडमें बूट पहने फिरते हैं कि घोड़ोंको भी मात करते हैं. और कितनेक तो नास्तिकही बन जाते हैं. कितनेक नवीन मिथ्यामतके पक्षी हो जाते हैं. परंतु पक्षपात छोड़के सत्य धर्मका निश्चय करके स्वीकार करना दुर्लभ है. हम बहुत नम्रतासें सर्व मतवालोंसें विनती करते हैं कि, हे प्रिय मित्रो ! यद्यपि अपने अपने पितामह प्रपितामहादिकी परंपरायसें अपने अपने कुलमें जो जो धर्मव्यवहार चला आता है, तिसकोही सत्यधर्म मान रहे हैं, चाहे वो असत्यही होवे; और अन्य धर्मावलंबियोंको मिथ्या मतवाले मान रहे हैं, चाहे वो सत्य मतही होवे; परं यह सुज्ञ जनोंका लक्षण नहीं है. क्योंकि, इस भरतखंडमें जैनमत, वेदमत और बौद्धमत ये तीन मत बहुत कालसें प्रचलित हैं. तिनमेसें वेदमतवाले कहते हैं, कि हमारा वेदमतही सबसें पुराना है; इसवास्ते सत्यधर्मका प्रतिपादक है. और जैनमतवाले अपने मतको सर्व मतोंसें प्राचीन मानते हैं; ऐसेही बौद्धमतवाले मानते हैं. इन तीनों मतोंमेंसे वेदकी रचनाको यूरोपियन पंडित पुरानी मानते हैं.

मोक्षमूलर भट्ट अपने रचे संस्कृत साहित्य ग्रंथमें यह भी लिखते हैं, कि वेदके छंदोमंत्र ऐसे हैं, जैसें अज्ञानीयोंके मुखसें अकस्मात् वचन निकले हों. और यह भी कहते हैं, कि जरथोस्ती धर्मपुस्तककी रचना वेदरचनासें पहिली वा वेदरचनाके समान कालकी है.

अब सोचना चाहिये कि, वेदमत और जरथोस्तीमतके पुस्तकोंसें पहिले कोई मत और कोई मतके पुस्तक भी अवश्य होने चाहिये. क्योंकि, मोक्षमूलरके लिखने मूजब वेदके छंदोभाग मंत्रभागकी रचनाको २९०० वा ३१०० वर्षके लगभग हूए हैं. फेर मोक्षमूलरजी कहते हैं, कि २२००० वर्ष पहिलें एशियाके अमुक अमुक हिस्सेमें अमुक अमुक जातिके लोक वस्ते थे तो क्या तिनके समयमें कोई भी पुस्तक, कोई भी धर्म, इस खंडमें नहीं था ? यह कैसें माना जावे ? इस हेतुसें यह कोई भी नहीं कह सकता है, कि यही पुस्तक पहिला है, अन्य नहीं. इसवास्ते वेद सर्व पुस्तकोंसें पहिला पुस्तक सिद्ध नहीं होता है. हां, संप्रति कालमें जो वेदके पुस्तक हैं, वे जैनमतके संप्रति कालके पुस्तकोंसें प्राचीन रचनाके हैं. क्योंकि, वर्तमान कालमें जे जैनमतके पुस्तक हैं वे सर्व श्री महावीर अर्हनुके समयसें लेके पीछेही रचे गए हैं. क्योंकि, श्री महावीर भगवान्के, (११) इग्यारह बडे शिष्योंने नव वाचनामें द्वादशांगकी रचना करी थी. अर्थात् नव तरेके आचारांग, नव तरेके सूत्रकृतांग, यावत् नव तरेके दृष्टिवाद. तिनमेसें पांचवे गणधर श्री सुधर्मस्वामीकी वाचना विना, आठ वाचनाका व्यवच्छेद श्री महावीर और श्री गौतमगणधरके पीछेही हो गया था. संप्रति कालमें जे पुस्तक जैनमतमें प्रचलित हैं, वे सर्व श्री सुधर्मस्वामीकी वाचनाके हैं. इस वाचनाके पुस्तकोंको भी बहुत उपद्रव हो गुजरे हैं.

प्रथम तो नंद राजाके समयमें इस खंडमें बारां वर्षका प्रथम काल पडा, तिसमें भिक्षाके न मिलनेसें एक भद्रबाहूस्वामीकों वर्जके सर्व साधुओंके कंठाग्रसें द्वादशांगके पुस्तक सर्व विस्मृत हो गये थे. जब बारां वर्षका दुर्भिक्षकाल गया, तब पाटलीपुत्र नगरमें सर्व साधु एकट्ठे हुए; जिस जिस साधुको जो जो पाठ कंठ रह गया था, सो सो सर्व सं-

धान करके एकादशांग तो पूरे करे, और बारमे अंगके पढनेवास्ते श्री संघने तीक्ष्ण बुद्धिवाले श्री स्थूलभद्रादि ५०० साधु नैपाल देशमें श्री भद्रबाहुस्वामीके पास भेजे. तिनमेसे एक श्री स्थूलभद्रजीनेही दश पूर्व सूत्रार्थसें और चार पूर्व सूत्र मात्र पढे. श्री स्थूलभद्रजीके शिष्य श्री आर्यमहागिरि और श्री आर्यसुहस्तिने दश पूर्वाहि सूत्रार्थसें पढे. तहांसे लेके वज्रस्वामी तक दश पूर्वके कंठाग्र ज्ञानवाले आचार्य रहे; परंतु अर्थांश तो क्रमसें न्यून न्यूनतर होता चला गया. और वज्रस्वामी दश पूर्वधरने सर्व शास्त्रोंका उद्धार अर्थात् किसी जगे प्राचीन नाम निकालके नवीन नाम प्रक्षेप करे; अस्तोव्यस्त हुए आलापकोंको न्यूनाधिक करके स्थापन करे; इत्यादि उद्धार करा. तिनके पीछे दशमा पूर्व पूर्ण व्यवच्छेद हुआ, अर्थात् श्री आर्यरक्षितसूरि साढे नव पूर्व कंठाग्र ज्ञानवाले हुए, संपूर्ण दशमा पूर्व नहीं पढ सके.

पीछे स्कंदिलाचार्यके समयमें बारां वर्षीय पुनः काल पडा; तिसमें भिक्षाके न मिलनेसें क्षुधादोषसें साधुयोंको अपूर्वार्थ ग्रहण १, अपूर्वार्थ स्मरण २, और श्रुतपरावर्त्तन ३, ये तीनो मूलसेंही जाते रहे. और जो अतिशायी अर्थात् चमत्कारी लोकोंमें चमत्कार दिखलानेवाले बहुत शास्त्र नष्ट हो गए. और, अंगोपांगादिमें जो ज्ञान था, सो भी पठन पाठन परावर्त्तनादिके न होनेसें भावसें नष्ट हो गया.

बारां वर्ष पीछे सुभिक्ष होनेसें मथुरा नगरीमें स्कंदिलाचार्य प्रमख श्रमण संघने एकत्र मिलके जो जिसके याद था, सो सर्व अनुपांगादि एकत्र करके, ऐसेंही कालिक, उत्कालिक, श्रुत, और पूर्वगत किंचित् संधान करके रचे. मथुरा नगरीमें पुस्तक जोडे गए, इस वास्ते इसकों जैन मतमें 'माथुरी वाचना' कहते हैं.

कितनेक आचार्य ऐसें कहते हैं, कि पीछले बारांवर्षीय दुर्भिक्षकालमें श्रुत नष्ट नहीं हुआ था, किंतु तिस समयमें तितनाहि ज्ञान रह गया था, शेष पहिलाही कंठसें भूल गया था. केवल अन्य जे युगप्रधान सूत्रार्थके धारक थे, वे सर्व दुर्भिक्षमें मृत्युधर्मकों प्राप्त हो गए थे,

एक श्री स्कंदिलाचार्यहि रह गये थे, तिनोंने मथुरा नगरीमें फेर अनुयोग प्रवर्तन करा, इस वास्ते 'माथुरी वाचना' कहते हैं.

जो सूत्रार्थ श्री स्कंदिलाचार्यने संधान करके कंठाग्र प्रचलित करा था, सोही श्री देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने, एक कोटी (१०००००००) पुस्तकोंमें आरूढ करा. सो ज्ञानमतोंके झगड़ोंसें और मुसलमानोंके राज्यके जुलमोंसें लाखों ग्रंथ जलाए गए. और लाखों ग्रंथ जैनी लोकोंकी अज्ञानतासें उद्धारके विना कराए, पाटणादि नगरोंमें भुसकी तरे ताड़पत्रके पुस्तकोंके चूरेसें कोठे कीतने भरे हैं.

इतिहासतिमरनाशकके रचनेवालेका ऐसा कथन है, कि अब भी जो पुस्तक जैसलमेर, खंभात, पाटण, अहमदावादादि स्थानोंमें विद्यमान हैं, वे पुस्तक देखने वैदिक मतवालोंके नसीबमें भी नहीं हैं.

पूर्वपक्षः—जब जैनमतके चौदह पूर्वधारी, दश पूर्वधारी, विद्यमान थे, तबसेंही जेकर ग्रंथ लिखे जाते तो जैनमतका इतना ज्ञान काहेको नष्ट होता? क्या तिस समयमें लोक लिखना नहीं जानते थे?

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर! पूर्वोक्त महात्माओंके समयमें किसीकी भी शक्ति नहीं थी, जो संपूर्ण ज्ञान लिख सक्ता. और ऐसे ऐसे चमत्कारी विद्याके पुस्तक थे, जे गुरु योग्य शिष्योंके विना कदापि किसीकों नहीं दे सक्ते थे; वे पुस्तक कैसे लिखे जाते? और बीजक मात्र किंचित् लिखे भी गए थे. यह नहीं समजना कि तिस समयमें लोक लिखना नहीं जानते थे. क्योंकि, (७२) बाहत्तर कलाओंमें प्रथम कला लिखतकी है. और वे बाहत्तर (७२) कला इस अवसर्पिणी कालमें प्रथम श्री ऋषभदेवजीने अपने पुत्र और प्रजाकों सिखलाई. जिसमें लिखत भी श्री ऋषभदेवजीने, (१८), अष्टादश प्रकारकी सिखलाई. वे अठारह भेद लिपिके आगे लिखते हैं.

ब्राह्मी लिपि १, यवन लिपि २, दोषउपरिका लिपि ३, वरोटिका लिपि ४, खरसापिका लिपि ५, प्रभारात्रिका लिपि ६, उच्चतरिका लिपि ७, अक्षरपुस्तिका लिपि ८, भोगयवत्ता लिपि ९, वेदनतिका लिपि १०, निन्हतिका लिपि ११, अंक लिपि १२, गणित लिपि १३, गांधर्व लिपि

१४, आदर्श लिपि १५, माहेश्वर लिपि १६, दामा लिपी १७, और बोलिदि लिपि १८; ये अठारह प्रकारकी लिपि श्री ऋषभदेवजीने ब्राह्मी नामा निज पुत्रीकों सिखलाई, इस वास्ते ब्राह्मी लिपि अथवा ब्राह्मी संस्कृतादि भेदवाली वाणी, भाषा, तिसकों आश्रित्य श्री ऋषभदेवजीने, या दिखलाई अक्षर लिखनेकी प्रक्रिया, सा ब्राह्मी लिपि, तिसके अठारह भेद. पीछेसँ देशांतर कालांतर पुरुषांतरके भेद पाकर ये अठारह प्रकारकी लिपि अनेक रूपसँ प्रचलित हो गई; परं मूल सर्व लिपियोंका यह अठारह भेदवाली ब्राह्मी लिपीही है. इस वास्ते जे कोई कहते हैं, कि प्राचीन आर्य लोक लिखनाही नहीं जानते थे, ये कहना प्रमाणिक नहीं है. और लिखना तो जानते थे, परंतु कल्पसूत्रकी भाष्यवृत्तिमें लिखा है, कि जो साधु सूत्र लिखे वा पास रखे तो तिसकों प्रायश्चित्त लेना पडता है; क्योंकि, पुस्तक लिखेगा तब स्याही, पट्टी, बंधन, दोरे, वगैरे रखने, रस्तेमें बोझ उठाना, पुस्तकके पत्रोंमें अनेक सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते हैं, इत्यादि अनेक दूषण होनेसँ लिखनेका निषेध है. और श्री देवर्द्धिगणिकक्षमाश्रमणजीने जो पुस्तक लिखे, सो अन्यगतिके न होनेसँ, और सर्व ज्ञान व्यवच्छेद होनेके भयसँ, और प्रवचनकी भक्तिसँ लिखे हैं. क्योंकि, जैनमतमें मैथुन वर्जी किसी वस्तुका एकांत निषेध नहीं है. इस वास्ते अपवाद पदावलंबके सूत्र सर्व लिखे. और अब भी वोही रीति प्रचलित है. और वर्तमान कालमें जे जैनमतके पुस्तक विद्यमान हैं, उनोंसँ जैनमतके आचार्य सत्यवादी और भवभीरु भी सिद्ध होते हैं. क्योंकि, अपने मतके पुस्तकोंका जेसा वृत्तांत बीता था, तैसाही लिख गए. और अपनी कल्पनासँ कोई पाठ उलट पुलट नहीं करा; सो महानिशीथादि शास्त्रोंमें प्रगट देखनेमें आता है.

१ इन अठारह प्रकारकी लिपिका स्वरूप किसी जगे भी नहीं देखा, इस वास्ते नहीं लिखा है, ऐसँ टीकाकार लिखते है.

२ जैसे वैदिक मतवालोंने वेद, उपनिषद्, महाभारत, भागवत, पुराणादिमें करा है, जो पाठ आगे लिखे जावेंगे.

इस पूर्वोक्त सर्व लेखसें यही सिद्ध हुआ, कि जैनमतके सर्व सूत्र श्री महावीरजीसेंही प्रचलित हुए हैं; परंतु यह नहीं समझना कि शेष त्रेवीस (२३) तीर्थकरोंके समयमें जैनमतके शास्त्र नहीं थे.

पूर्वपक्षः—त्रेवीस तीर्थकरोंके समयमें किस किस नामके शास्त्र जैनमतके थे ?

उत्तरपक्षः—जो नाम संप्रति कालमें आचारादि द्वादशांगोंका है, सोही नाम शेष तीर्थकरोंके समयमें था.

पूर्वपक्षः—श्री ऋषभदेवके समयकेही शास्त्र श्री महावीरजीताई तथा संप्रति कालमें भी क्यों नहीं रहे? और अजितादि त्रेवीस तीर्थकरोंको अपने अपने शासनको प्रचलित करने वास्ते नवीन नवीन द्वादशांगकी रचना करनेका क्या प्रयोजन था ?

उत्तरपक्षः—हे भव्य ! जे अनंत तीर्थकर अतीत कालमें हो गए है, और जे अनंत तीर्थकर आगामि कालमें होवेंगे, तिन सर्वके द्वादशांगी रचनाके तत्वमें किंचित्मात्रभी अंतर नहीं; किंतु पुरुष स्त्रियोंके नाम, और गद्य पद्यादि रचना इत्यादिमें अंतर है, शेष तत्वस्वरूप एकसरीखा है; इस वास्ते जो श्री महावीरजीके समयकी रचना शास्त्रोंकी है, सोही श्री ऋषभदेवजीके समयमें थी. इस वास्ते जैनमतके पुस्तक सर्व मतोंके पुस्तकोंसें पुराने सिद्ध होते हैं.

और जो तीर्थकर अपने अपने तीर्थमें नवीन उपदेश द्वादशांगीका करते हैं, वे अपना अपना तीर्थकर नाम पुण्य प्रकृति रूप कर्मके क्षय करने वास्ते. क्योंकि, विना उपदेशके तीर्थ नहीं होता है; तीर्थके करे विना तीर्थकर नाम कर्मका फल नहीं भोगा जाता है, और तीर्थकर नाम कर्मके फल भोगे विना मुक्ति नहीं होती है; इस वास्ते उपदेश करते हैं. और इसी हेतुसें नवीन शास्त्र रचे जाते हैं, परंतु हकीकतमें पुरानेही हैं.

१ आचारांग १, सूत्रकृतांग २, स्थानांग ३, समवायांग ४, विवाहप्रज्ञप्ति ५, ज्ञाताधर्म-कथा ६, उपासक दशांग ७, अंतगड ८, अनुत्तरोक्ताङ्ग ९, प्रश्न व्याकरण १०, विपाकश्रुत ११, और दृष्टिवाद १२.

पूर्व पक्षः—जैनमतके सर्व शास्त्र प्राकृत भाषामें रचे हैं, इस वास्ते प्रमाणिक नहीं हैं.

उत्तर पक्षः—यह कहना अयुक्त है. किसी भी भाषामें सच्चा पुस्तक लिखा हुआ होवे, सो सर्व मुझ जनोंकों प्रमाण है. और प्राकृत भाषाकी बाबत तो वेदांग शिक्षामें ऐसैं लिखा है.

“त्रिषष्टिः चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शंभुमते मताः ॥

प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा ॥ ३ ॥”

भावार्थ यह है कि, त्रेसठ (६३) वा चौसठ (६४) वर्ण शंभुके मतमें प्रमाण हैं. प्राकृतमें और संस्कृतमें आप स्वयंभूने कथन करे हैं. और पाणिनी वररुचि प्रमुखोंने प्राकृतके व्याकरण रचे हैं. जेकर प्राकृत भाषा प्रमाणिक न होवे तो व्याकरण क्यों रचे जाते ?

हंटर साहिब अपने रचे संक्षिप्त हिंदुस्थानके इतिहासमें लिखते हैं कि, हिंदुस्थानकी मूल भाषा पुराणी प्राकृत है.

रुद्रटप्रणीत काव्यालंकारकी टिप्पणी करनेवाले लिखते हैं कि, प्राकृत भाषा प्रथम थी. तिससेही संस्कृत बनाई गई है. और संस्कृत यह जो शब्द है, सो भी यही ज्ञापन करता है कि, असंस्कृत शब्दोंकों जब समारके रचे तिसका नाम संस्कृत है; सो पाठ लिखते हैं. ॥

प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषाश्च शूरसेनी च ।

षष्ठोत्र भूरि भेदो देशविशेषादपभ्रंशः ॥ १२ ॥

प्राकृतेति । सकल जगज्जंतूनां व्याकरणादिभिरनाहितसंस्कारः सहजो वचनव्यापारः प्रकृतिः । तत्र भवं सैव वा प्राकृतम् । ‘आरि-सवयणे सिद्धं देवाणं अद्धमागहावाणी’ इत्यादि वचनाद्वा प्राक् पूर्वं कृतं प्राकृतं बालमहिलादिमुबोधं सकलभाषानिवंधनभूतं वचनमुच्यते । मेघनिर्मुक्तजलमिवैकस्वरूपं तदेव च देशविशेषात् संस्कारकरणाच्च समासादितविशेषं सत् संस्कृताद्युत्तरभेदानाम्प्रोति । अत एव शास्त्रकृता प्राकृतमादौनिर्दिष्टं तदनुसंस्कृतादीनि । पाणिन्यादिव्याकरणोदितशब्द-लक्षणेन संस्करणात् संस्कृतमुच्यते । इत्यादि.

इस्से भी यही सिद्ध होता है कि, प्राकृत भाषा प्रथम थी. तिस भाषाको समारके रचना करनेसे वेदोंकी संस्कृत रची गई. और जब वेदोंकी संस्कृतकों पिछली व्याकरणोंसे मांजी, तब शुद्ध संस्कृत उत्पन्न भई. इससे यह सिद्ध हुआ कि, वेदोंकी संस्कृतसे पहिले प्राकृत पुस्तक होने चाहिये.

और गुर्जर देशीय मणिलाल नभुभाइ द्विवेदी अपने रचे सिद्धांत-सार ग्रंथमें लिखते हैं कि “ इस ठिकाणे भाषाशास्त्रीयोंमें बहुत भारी झगडा चलता है. जब, संस्कृत-सुधरी भाषा-ऐसा नाम पडा, तब किसमेसे सुधारी यह मालुम करना चाहिये. प्राकृतमेंसे, लोकभाषामेंसे सुधारी; ऐसैं कहो तो प्राकृत प्राचीन भाषा होगी, और संस्कृत किसी कालमें सार्वत्रिक बोलाती भाषा न थी ऐसैं मानना पड़ेगा. दूसरा मत ऐसा है, कि प्राकृत भाषा प्राचीन तो खरी, और उसके मिलाप-वाली वेद भाषामेंसे नवीन भाषा हुई सो संस्कृत; परंतु संस्कृत सार्वत्रिक उपयोगमें नहीं आती थी ऐसा नहीं. विद्वानो तथा उच्च वर्गके लोक संस्कृतही बोलते थे, और नीचलोक स्त्रीवर्ग इत्यादि प्राकृत बोलते थे. इस उभय पक्षके अनुयायी बहोत हैं; परंतु ज्यादा ख्याल दूसरे पक्ष तरफ है. स्लेगेल, बन्सन, वील्सन, मुर, गोल्डस्टकर, वेबर, बोप, मेक्समूलर वगैरे किसी भी पाश्चात्य पंडितके भाषा संबंधी लेखमें इस बातका विस्तार मिल जायगा. ”

ऊपर जो लेख लिखे हैं, सो कितनेही ग्रंथ और अनुमानद्वारा लिखे हैं. अब जैनमतके पुस्तकानुसार जो कथन है सो लिखते हैं. प्राकृत और संस्कृत ये दोनों भाषा अनादि सिद्ध है. तिनमें प्राकृत भाषा तीन तरहकी है. १ समसंस्कृत प्राकृत, २ तज्जा अर्थात् संस्कृत शब्दोंको प्राकृत शब्दोंका निर्देश करना. और ३ देशी, अर्थात् प्राकृत संस्कृत व्याकरणोंसे जिसकी सिद्धि न होवे; किंतु अनादिसिद्ध जे शब्द हैं, तिनको देशी प्राकृत कहते हैं. जैसे श्रीपादलितसूरिविरचित देशीनाम माला और तरंगलोला कथा वगैरे-तथा श्री हेमचंद्रमूरिविरचित देशीनाममाला-परंतु यह नहीं समझना कि, जो अनेक देशोंके शब्द एकत्र

करणे, तिसका नाम देशी प्राकृत है. जैनमतके चौदह (१४) पूर्व तो प्रायः संस्कृत भाषामेंही रचे जाते हैं. और अंगादि शास्त्र प्रायः प्राकृत भाषामेंही रचे जाते हैं. तिसका कारण संस्कार वर्णनमें लिखेंगे.

और प्राकृत भाषा प्रायः विद्वज्जनमानभंजिका भी है. जैसे वृद्धवादीसूरिजीने, श्री सिद्धसेनदिवाकरकों एक गाथा प्राकृतकी पूछी; तिसका अर्थ तिनकों नहीं आया. तथा जितने अर्थांशकों प्राकृत दे सकती है, तितने अर्थांश प्रायः संस्कृत नहीं दे सकती है^१. इस वास्ते प्राकृत भाषा बहुत गहनार्थवाली है. और इसी हेतुसे, जैनोंने अंगोपांगादिकी रचनामें प्राकृत भाषाही ग्रहण करी है.

और दयानंदसरस्वतिजी जो लिखते हैं कि, जैनाचार्योंने अपने तत्त्वोंको छाना रखनेके वास्ते धूर्ततासे प्राकृत भाषामें रचना करी है, इसका उत्तर, वाहजी वाह ! खूब विद्वत्ता दिखलाई ! आपको जो भाषा न आवे, उस भाषाके पुस्तक बनानेवाले वा लिखनेवाले धूर्त हैं. इस्से तो दयानंदस्वामीके लेखानुसार जिसको संस्कृत भाषा नहीं आती है उसके वास्ते तो जितने वैदिकमतके, तथा और मतके पुस्तक, जो कि संस्कृतादिमें बने हुए हैं, वे सर्व धूर्तोंके बनाए सिद्ध होवेंगे. बलके वेद तो महा धूर्तोंके बनाए सिद्ध होवेंगे. क्योंकि उनकी रचना तो सर्व संस्कृत ग्रंथोंसे प्रायः विलक्षणही है. यदि कहोगे कि, वैदिक शब्दोंको सिद्ध करनेवाला व्याकरण विद्यमान है, तिस्से वेदकी रचना सिद्ध हो सकती है; तो क्या प्राकृत शब्दोंको सिद्ध करनेवाला व्याकरण नहीं है? यदि है, तो आपही धूर्त ठहरेंगे, जो कि सत्य शास्त्रोंको असत्य और असत्यको सत्य बनानेका उद्यम कर रहे हैं, वा करते थे. यदि दयानंदसरस्वतिजीने प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पिशाची, चूलिकापिशाची इत्यादि भाषाओंके व्याकरण पढे होते वा देखे होते तो कदापि ऐसा लेख नहीं लिखत; परंतु वे तो सिवाय अष्टाध्यायीके कुछ भी नहीं जानते थे, जो कि, उन्हींके बनाए ग्रंथोंसे विद्वज्जन आपही जान

१ देखो अर्थशेपिका श्राद्धप्रतिक्रमणवृत्तिमें.

२ अन्य भी कोई अज्ञान कदाभी ऐसे ही कहते है.

सकते हैं. अब सोचना चाहिये कि, प्राकृतमें जो रचना करी है सो घूर्त्ततासें करी है. यह लिखना सिवाय निर्विवेकी, कदाग्रहीसें और किसीका हो सकता है? यदि कोई किसी अपठित जाटके आगे सुंदर संस्कृत वेद, जिनशतक काव्यादि ग्रंथ रख देवें तो, क्या वो जाट तिसकों पढ सकता है? नहीं. जेकर वो जाट कहै, इन पूर्वोक्त शास्त्रोंके रचने-वाले घूर्त्त और अपठित थे, तो क्या तिस जाटका वचन बुद्धिमान् सत्य मानेंगे? कदापि नहीं. ऐसैही दयानंदसरस्वतिजीका कहना है. जितनाचिर षड्भाषाके व्याकरण और न्यायादि न पढे, तब तक वो पूर्ण विद्वानोंकी पंक्तिमें नहीं गिना जाता है.

और दयानंदसरस्वतिजीने जो वेदों ऊपर भाष्य रचा है, सो निःकेवल स्वकपोलकल्पित है. जो कोई विद्वान् देखता है, तो मुह मचकोडता है. और दयानंदस्वामीने जो वेदोंके स्वकपोलकल्पित अर्थ लिखे हैं, वे केवल वेदोंका बिहूदापण छिपानेके वास्ते है. सज्जनोंकों ऐसा काम करना उचित नहीं है, कि वेद्योंकों सती सिद्ध करना; परंतु सतीकों झूठा कलंक लगा होवे तो सज्जन तिसको दूर करणेका यत्न करते हैं. और अपने अपने संप्रदायमें अपने अपने मतके पुस्तकोंके पूर्व पुरुषोंके करे अर्थोंसे अपना स्वकपोलकल्पित मत सिद्ध न होनेसें अक्षरोंके अनुसार जो स्वकपोलकल्पित अर्थ करते हैं, वे महा मिथ्यादृष्टियोंके लक्षण है; जैसें, जैनमतके नामसें अपठित, जैनाभास, ढुंढक साधु करते हैं. तैसेंही दयानंदस्वामी पंडित कहलाके करते थे.

क्योंकि, ऋग्वेदादि चारों वेदोंमें जीवहिंसा और इंद्र, वरुण, कुबेर, नक्त, पूषा, यम, अश्विनौ, उषा, नदी इत्यादिकी स्तुति, और प्रार्थनाके सिवाय, और कितनीक जुगुप्सनीय, उपहास्यजनक बातोंके सिवाय जीवोंके कल्याणकारी मोक्ष मार्गका किंचित् भी उपदेश नहीं है. और न कोइ संसारकी उपकारिणी विद्याका कथन है. सो वाचक वर्गको मालुम होनेके वास्ते थोडासा लिख दिखाते हैं.

प्रथम वेदोंका हिंसकपणा देखना होवे तो हमारे बनाए अज्ञानति-

मिरभास्कर ग्रंथसें देख लेना. जुगुप्सनीय, उपहास्यजनक बातों लिखनी हम अच्छा नहीं समझते हैं^१. और स्तुति प्रार्थना विषयक जो लेख है, नीचे लिखते हैं.

॥ ऋग्वेद । मंडल १, अष्टक १, अनुवाक १. ॥

प्रथम नवऋचामें—अग्नि, वा, अग्निदेवताकी स्तुति है.

तदनु तीन ऋचाचें—वायु, वा, वायु देवताका वर्णन है. और आमंत्रण स्तुति है.

तदनु तीन ऋचामें—ऐंद्रवायु देवताका आमंत्रण है.

तदनु तीन ऋचामें—ऐंद्रवायु देवताका आमंत्रण है.

तदनु तीन ऋचामें—मैत्रावरुण दो देवताका सामर्थ्य कथन है.

त० ती०—अश्विनौ देव वैद्योंके गुण कथन, और उनोंका आमंत्रण है.

त० ती०—इंद्रकों आमंत्रण, और तिसके हरित् घोड़ेका वर्णन है.

त० ती०—विश्वेदेवास इस नामके देवताका सामर्थ्य, और आमंत्रण है.

त० दो०—सरस्वती देवीका सामर्थ्य कथन है.

त० एक०—सरस्वती नदीका वर्णन, और उपकार कथन है.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० २ ॥

प्रथम तीन ऋचामें—इंद्रकों सोम रस पीनेके वास्ते आमंत्रण ; सोम-रस पीनेसें इंद्र हमकों गौआं देवेगा.

तदनु एक ऋचामें—यज्ञ करानेवाला यजमानकों कहता है, तूं जा कर

१ मणिलाल नभुभाइ अपने बनाए सिद्धांतसार पुस्तकमें लिखते हैं कि—यज्ञसंबंधी एकवात बहुत मुख्य रीतिसें विचारने जैसी है. बहुत बड़े यज्ञोंमें एक दोसें सौ सौ तक पशु मारनेका संप्रदाय नजरे आता है. बकरे घोड़े इत्यादि पशु मात्रका बलि दिया जाता था इतनाही नहीं परंतु अपनेकों आश्चर्य लगता है कि मनुष्योंका भी भोग देनेमें आता था ! पुरुषमेघ इस नामका यज्ञही वेदमें स्पष्ट कहा हुआ है ; और शुनः शेषादि वृत्तांत भी इसी बातकी साक्षी देता है. और इस रक्तस्त्रावमें आनंद मानने उपरांत, सोम पानसें, और आखीरके वखतमें तो सुरा (मदिरा) पानसें भी, आर्यलोक मत्त होते मालुम पडते हैं.

२ जिसकों देखनेकी इच्छा होवे ऋग्वेद अष्टक आठ (८) में और यजुर्वेद अध्याय तेवीस (२३) में देख लेवे.

इंद्रकों पूछ कि यज्ञ करानेवालेने इंद्रकी स्तुति ठीक करी है, कि नहीं? यह सुण कर इंद्र तेरेकों श्रेष्ठ धन पुत्रादि सर्व औरसें देवेगा.

तदनु एक ऋचामें—हमारे ऋत्विज इंद्रकों कहे, हमारे निंदक इस देशमें, तथा अन्य देशोंमें भी न रहे.

त० एक०—हे इंद्र ! तेरे अनुग्रहसें हमारे शत्रु भी मित्रभूत हुए बोलते हैं.

त० तीन०—इंद्रकों सोमवल्लीका रस देवो, जिसकों पीके इंद्र वृत्रना-मारि असुर शत्रुयांकों हननेवाला होवे, और संग्राममें, हे इंद्र ! तूं अपने भक्तकी रक्षा करनेवाला हो, हे इंद्र ! तेरेकों अन्नवाला करते हैं.

तदन एक ऋचामें—इंद्र धनकी भूमिका रक्षक है, इस वास्ते हे ऋत्विजो ! तुम इंद्रकी स्तुति करो.

त० एक०—हे ऋत्विजो ! शीघ्र इस कर्ममें आवो ! आवो ! आ कर बैठो ; बैठ कर इंद्रकी स्तुति करो.

त० एक०—हे ऋत्विजो ! तुम सर्व एकठे होकर इंद्रकों गावो.

त० एक०—पूर्व मंत्रोक्त गुणवाला इंद्र हमकों पूर्व अप्राप्त पुरुषार्थकों प्राप्त करो ! और, सोइ इंद्र धन, स्त्री, अथवा बहुत प्रकारकी बुद्धियांकों सिद्ध करो.

त० नव०—इंद्रके रथ घोड़ोंका कथन, और इंद्रकी प्रार्थना.

त० एक०—इंद्रही आग्नि, वायु, सूर्य, नक्षत्रके रूपसें रहा हुआ है.

त० एक०—इंद्रके घोड़े रथका वर्णन.

त० एक०—सूर्यका वर्णन.

त० पांच०—मरुतका वर्णन, पणि नामक असुरोंने स्वर्गसें गौआं चुरा-यके अंधकारमें छिपा रखी. पीछे इंद्र मरुतोंके साथ तिनकों जीतता हुआ, इंद्र मरुतकी स्तुति, और आमंत्रण.

त० एक०—इंद्र आकाशादिकोंसें ल्याके हमकों धन देवो.

त० नव०—इंद्रकी अनेक रूपसें स्तुति.

। ऋ० अ० १ मं० १ अ० ३ ।

प्रथम पांच ऋचामें—शत्रुकों जीतने वास्ते इंद्रकी प्रार्थना, और धनादिका मांगना.

तदनु दश ऋचामें—इंद्रकों धनके वास्ते प्रेरणा, हे इंद्र! हमकों धन, गौआं, अन्न संयुक्त कीर्ति, हजारों संख्याका धन, व्रीहि, जव, बहुत रथ सहित अन्न दे! अपने धनकी रक्षा वास्ते हम इंद्रकों बुलाते हैं; स्तुति करते हुए सर्व यजमान इंद्रके सामर्थ्यकी प्रशंसा करते हैं.

तदनु नव ऋचामें—इंद्रकी महिमा; धन, गौआं, दुग्ध दे! वर्षा प्रेरो! दुग्धवाली गौआं दे! हमारी स्तुति सुणो! इत्यादि.

त० २३ ऋ०—हे इंद्र! हम तुजकों जानते हैं, तूं संग्राममे हमारा बुलाना सुणता है, हजारोंका धन देनेवाला है. इत्यादि इंद्रकी स्तुति हमारी स्तुति तुमकों पहुंचे.

त० ३ ऋ०—हे इंद्र! तेरे अनुग्रहसे हम शत्रुयांसें भय न पावेंगे, इंद्र धनदाता है.

त० ३ ऋ०—इंद्रके गुणोंका कथन, बल नामक असुर देव संबंधिनी गौआं चुरायेके, किसी बिलमें गुप्त करी, फिर इंद्र, सैन्य सहित बिलसें निकाल लाया लिसका कथन, और यजमान इंद्रकी स्तुति कर्त्ता है.

त० २ ऋ०—इंद्रने शुष्ण असुरकों मारा, और इंद्रकी स्तुति.

। ऋ० अ० १ मं० १ अ० ४ ।

१२ ऋ०—देव दुत, अग्नि, सर्व देवताओंको बुलानेवाला है, इस यज्ञमें यजमानकी करी आहुति सर्व देवताओंको पहुंचानेवाला है, स्तुति योग्य है. हे अग्ने! तूं देवताओंको बुलाके इस यज्ञ कर्ममें आके बैठ! तूं हमारे शत्रुयांको भस्म कर! इत्यादि.

८ ऋ०—अग्नि विशेषका वर्णन.

३ ऋ०—अग्नि विशेषका वर्णन.

१ ऋ०—हे इंद्रादि देवो! तुमारे वास्ते तृप्तिकारिका, सोमा, संपादन करी है.

३ ऋ०—अग्निकों आमंत्रण, अग्निकी स्तुति, अग्निके रथके घोड़े पुष्ट-शरीरवाले हैं, अग्निसँ प्रार्थना, यज्ञ करनेवालोंको पत्नीयुक्त कर.

१ ऋ०—हे अग्ने! तेरी जिह्वा करके देवते सोमका भाग पीवो.

१ ऋ०—देवताको स्वर्गलोकसे यज्ञमें बुलाना.

३ ऋ०—हे अग्ने! तू देवताओं सहित सोमसंबंधी मधुर भाग पी. हे अग्ने! तू हमारे यज्ञको निष्पादन कर. हे देवाग्ने! तू अपने रोहित नामा घोड़ेको जोड़के इस यज्ञमें देवताओंको बुलाव.

१२ ऋ०—हे इंद्र! ऋतुदेवसहित सोम पी. हे मरुत! तू सोम पी. ऋतुके साथ हमारे यज्ञको सोध. हे अग्नादेवते! तू रत्नोंका दाता है, इस वास्ते सोम पी. हे अग्ने! तू देवताको बुलवाव. हे इंद्र! तू ऋतुसहित धनभूतपात्रसे सोम पी. हे मित्रनामक और वरुणनामक देव! तुम ऋतुके साथ हमारे यज्ञमें व्यास हुआ. अग्निदेवकी धनके अर्थी ऋत्विज स्तुति करते हैं. द्रविणोदा देवता हमको धन देवो. द्रविणोदा देव ऋतुयाके साथ नेष्टृसंबंधी पात्रसे सोम पीनेकी इच्छा करता है, इस वास्ते हे ऋत्विज! तुम होमके स्थानपर जाकर होम करो. हे द्रविणोदा देव! ऋतुया सहित तेरेको हम पूजते हैं. तू हमको धन दे. हे अश्विनो देवते! तुम ऋतु सहित यज्ञके निर्वाहक हो. हे अग्निदेव! तू गृहपतिके रूप करके ऋतु सहित यज्ञका निर्वाहक है.

९ ऋ०—हे इंद्र! सोम पीनेके वास्ते अपने घोड़ोंको बुलाव. वेदीके पास इंद्रको आहुति—हे इंद्र! तू घोड़ोंसहित आव, हम आहुति देते हैं. हे इंद्र! तू गौर मृगकी तरें तृषित (प्यासा) हुवा इस सोमको पी. हे इंद्र! तिस तिस पात्रगत तिन तिन सोमोंको बलके वास्ते तू पी. हे इंद्र! यह जो श्रेष्ठ स्तोत्र हम करते हैं, सो तेरे हृदयको सुखदायि होवे; स्तुति अनंतर तू सोम पी. इंद्रको यज्ञमें आमंत्रण—हे शतक्रतो! तू हमको वांछित फल, गौआं, घोड़े सहित पूरण कर. हम भी ध्यान करके तेरी स्तुति करते हैं.

१ ऋ०—में अनुष्ठाता समीचीनराज्यसंयुक्त, सम्यग् दीप्यमान वा ऐसें इंद्रवरुणोंसंबंधी रक्षाकी प्रार्थना करता हूं. हे इंद्रवरुणौ ! तुम अनुष्ठान करनेवालेके रक्षक हो. इत्यादि—हे इंद्रवरुणौ ! यदा यदा हम धन चाहते हैं, तदा तदा तुम देते हो. हे इंद्रवरुणौ ! तथाविध हविः ग्रहण करनेवाले तुम्हारे दोनोंके प्रसादसें हम अन्न देनेवाले पुरुषोंमें मुख्य होते हैं. यह इंद्र धन देनेवालोंमेंसें प्रभूतधन देता है, वरुण स्तुति करने योग्य है, इंद्र वरुणके रक्षक होनेसें हम धनकों प्राप्त होते हैं, निधि भी करते हैं, हे इंद्रवरुणौ ! हम तुमकों आहुति देते हैं, मणि आदि विचित्र धनके वास्ते, और शत्रुओंमें हमकों जययुक्त करो. हे इंद्रवरुणौ ! तुम हमारी बुद्धियांमें सुख दो, हे इंद्रवरुणौ ! तुम श्रेष्ठ स्तुतिकों प्राप्त हो.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ५ ॥

१ ऋ०—हे ब्रह्मणस्पते देव ! मुझे अनुष्ठानकर्त्ताकों देवोंके विषे प्रकाशवाला कर, कक्षीवान् नामक ऋषिकी तरें.

१ ऋ०—धनवान्, रोगोंकों हननेवाला, धनप्राप्तिवाला, पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला, शीघ्र फलका देनेवाला, ऐसा ब्रह्मणस्पति देव, हमकों अनुग्रह करो.

१ ऋ०—हे ब्रह्मणस्पते ! शत्रुकों दूर कर, हमकों पाल.

१ ऋ०—यह इंद्रदेव यक्ष्यमाण मनुष्यों वर्द्धमान करता है, तथा ब्रह्मणस्पति, और सोम करते हैं सो यजमान विनाशकों प्राप्त नहीं होता है.

१ ऋ०—हे ब्रह्मणस्पते ! तूं अनुष्ठान करनेवाले मनुष्यकी पापसें रक्षा कर, तथा सोम, इंद्र, दक्षिण, यह सर्व देव रक्षा करो.

सदसस्पति नाम देवता, इंद्रका प्यारा, धनका दाता, इत्यादि चतुर्दश (१४) ऋचामें अनेक प्रकारके देवताओंका सामर्थ्य और आमंत्रणादि वर्णन है.

८ ऋ०—मनुष्य तप करके देवते दूए, तिनकों ऋभु कहते हैं. तिनकों प्रीति उत्पन्न करने वास्ते ऋत्विजोंने अपने मुखकरके स्तोत्र उत्पन्न करा, तिस स्तोत्रका वर्णन.

६ ऋ०—इंद्राग्नि आदि देवताका वर्णन.

१५ ऋ०—अनेक नामके देव देवीका वर्णन, और यज्ञके वास्ते आमंत्रण.

१ ऋ०—विष्णु परमेश्वर त्रिविक्रमावतारमें पृथिवीकी रक्षा करता भया, तिसका वर्णन.

१ ऋ०—विष्णु त्रिविक्रमावतारधारी इस जगत्को उद्दिश्य विशेष करके पादक्रमण करता भया, इत्यादि—

१ ऋ०—कोइ भी जिसको हनने सामर्थ्य नहीं, ऐसा विष्णु जगत्का रक्षक है. पृथिव्यादि स्थानोंमें तीन पादक्रमण करता हुआ. धर्म जो अग्निहोत्रादि तिसका पोषण करता हुआ.

१ ऋ०—हे ऋत्विगादयः ! तुम विष्णुके कर्म पालनादि देखो, इत्यादि विष्णुवर्णन.

१ ऋ०—पंडित विष्णुसंबंधि स्वर्गस्थान उत्कृष्ट पदकों देखते हैं, जैसे चक्षु आकाशमें देखते हैं.

१ ऋ०—प्रमादरहित जो पंडित हैं, वे विष्णुके पदकों दीपाते हैं.

२ ऋ०—यज्ञके वास्ते ऐंद्रवायुदेवताका आमंत्रणादिवर्णन.

२ ऋ०—मित्रवरुणदेवताका आमंत्रणादिवर्णन.

६ ऋ०—मरुतदेवताको विनती आमंत्रणादि.

२ ऋ०—पूषन्देवताका वर्णन.

८ ऋ०—आप् (पाणी)का वर्णन, आमंत्रण और तिससें विनती आदि.

१ ऋ०—अग्निका वर्णन.

॥ ऋ० अ० १ म० १ अ० ६ ॥

१५ ऋ०—यूपके साथ यज्ञके वास्ते बंधा हुआ शुनःशेपनामा जन अपनी जिंदगीके वास्ते अनेक देवताओंको विनती करता है, और उन्हींकी स्तुति करता है; विशेषकरके वरुणदेवताकी स्तुति जीवन वास्ते करता है.

२१ ऋ०—शुनःशेपने वरुणकीही स्तुति करी तिसका वर्णन.

२२ ऋ०—वरुणके कहनेसें शुनःशेपने अग्निकी स्तुति करी.

१ ऋ०—अग्निकी प्रेरणासें शुनःशेपने विश्वेदेवताकी स्तुति करी.

८ ऋ०—उखल मूसलकी स्तुति है, क्योंकि, उखल मूसल सोमको कूटके इंद्रके पीने योग्य रस काढते हैं.

१ ऋ०—ऋत्विग्विशेष हे हरिश्चंद्र देवता! पक्षे हे हरिश्चंद्र! तूं सोमको गाडीऊपर लाद दे.

२२ ऋ०—विश्वेदेवोंकी प्रेरणासें शुनःशेपने इंद्रकी स्तुति करी. हे इंद्र! हमकों गालीयां देनेवाले हमारे शत्रुयांकों तूं मार इत्यादि.

१ ऋ०—इंद्रने तुष्टमान होके शुनःशेपकों हिरण्यरथ दिया.

३ ऋ०—इंद्रकी प्रेरणासें शुनःशेपने इंद्रके घोडोंकी स्तुति करी.

३ ऋ०—इंद्रके घोडोंकी प्रेरणासें शुनःशेपने उषःकालाभिमानिनी देवताकी स्तुति करी.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ७ ॥

१८ ऋ०—अग्निकी स्तुति, अग्निके कर्त्तव्य, हे अग्ने! नहुषनामा राजाका तूने सेनापतिपणा करा; किसी लडकी छोकरीका तूं उपदेशक था,—इत्यादि.

१५ ऋ०—इंद्रके पराक्रमोंका वर्णन, मेघकों मारा, जलकों भूमिमें गेरा, पर्वतांकों तोड़के नदीओंकों ले आया, अनेक असुरांकों मारे, वृत्रनामा असुरने मेघकों रोक रक्खा था तिसकों इंद्रने मारा—इत्यादि.

१५ ऋ०—पणिनामा असुर देवताओकी गौआंकों हरके ले गया, देवताओंने परस्पर सलाह करके इंद्रके पास पुकार करा; इंद्र गौआंकों ले आया, वृत्रके अनुचरोंकों मारा, मेघ वर्षाया, दैत्य मारे, कुत्सनामा ऋषिकी रक्षा करी, दशद्यु ऋषिकी रक्षा करी, शत्रुओंके भयसें जलमें मग्न हुआ, इंद्रके अनुग्रहसें बहार निकला, और उसकी रक्षा करी—इत्यादि.

१२ ऋ०—अश्विनीकुमारोंका सामर्थ्य, उनोंकी प्रार्थना, रथके गर्दभोंका वर्णन, और यज्ञमें आमंत्रणादि.

११ ऋ०—सूर्यका वर्णन, सूर्य बहुत देशोंसें आता है, सूर्यके रथका वर्णन, सूर्यके घोडोंका वर्णन, सोऽयावीनामा घोडा सूर्यका रथ वहता है, लोक स्वर्गोपलक्षित तीन है, दो लोक सूर्यके समीप होनेसें सूर्य उनकों

प्रकाशता है, तीसरा यमलोक है, जिसमें प्रेतपुरुष आकाशमार्गसे जाते हैं। सूर्यके किरण तीन लोककों प्रकाश करते हैं, ऐसे किरणोंवाला सूर्य रात्रिमें कहाँ है? यह रहस्य कोई नहीं जानता है। सूर्य आठों दिशा और गंगादि सात नदीयों वा सात समुद्रांकों प्रकाशता है, सो यहाँ यज्ञमें आवो, सोनेके हाथोंवाला सूर्य स्वर्ग और पृथ्वीके बीचमें चलता है। सूर्यकी स्तुति, हे सूर्य! तेरे चलनेका मार्ग निर्मल है। आज तू आ कर हमारी रक्षा कर-इत्यादि।

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ८ ॥

२० ऋ०-अग्निकी स्तुति, अग्निकों आमंत्रण,—हे अग्ने! तू हमारे शत्रुओंको मार, भस्म कर, राक्षसोंको भस्म कर-इत्यादि।

४० ऋ०-काण्व ऋत्विक्का वर्णन, मरुत् देवताका सामर्थ्यवर्णन, काण्वकों यज्ञमें आमंत्रण, पुनः मरुत् देवताका सामर्थ्यवर्णन, उनकों विनती और आमंत्रण-४९ प्रकारके मरुत् देवताओंका सामर्थ्यवर्णन, यज्ञमें आमंत्रण और उनोंसे याचना करनी-इत्यादि।

८ ऋ०-ब्रह्मणस्पति देवताका सामर्थ्यवर्णन, उनकों आमंत्रण और उनसे अनेक वस्तुओंकी याचना-इत्यादि।

९ ऋ०-वरुण, मित्र और अर्यमा, इन तीनों देवताओंका कथन, और उनोंसे प्रार्थना, धन देवो, यजमानकी रक्षा करो, शत्रुओंको मारो-इत्यादि।

१० ऋ०-पूषन् देवताका वर्णन, तिसका सामर्थ्य, तिसकों आमंत्रण और तिससे धनादिकी याचना-इत्यादि।

५ ऋ०-रुद्रनामक देवका वर्णन स्तोत्रद्वारा-

१ ऋ०-हमारे घोड़े, मेष, मेषी, पुरुष, स्त्री, गौआदिके ताँड़ देव सुख करता है।

३ ऋ०-हे सोम! हमकों धन दे। इत्यादि वर्णन।

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ९ ॥

२४ ऋ०-अग्निकी स्तुति, अग्निका विचित्र प्रकारके विशेषणां सं-

युक्त वर्णन, हे अग्ने ! तूं धूमरूप चिन्हवाला है, तूं यहां आव, हमकों धन दे-इत्यादि.

१५ ऋ०—उषो देवता तथा अश्विनौ देवता इन्होंका वर्णन, उन्होंकों आमंत्रण, आवो, सोम पीवो-इत्यादि.

१० ऋ०—हे अश्विनौ देवते ! तुम सोम पीवो यजमानकों रत्नादि धन देवो इत्यादि प्रार्थना और आमंत्रणादि.

२० ऋ०—हे द्यु देवताकी पुत्रि उषः ! अश्ववती, गोमती, तूं धनवानोंका धन हमारे वास्ते प्रेरय, सोम पीने वास्ते सर्व देवोंकों बुलवा, इत्यादि प्रार्थना, अनेक प्रकारसें उषः देवताकी स्तुति, और आमंत्रण यज्ञके वास्ते-इत्यादि.

१३ ऋ०—सूर्यकी स्तुति, सूर्यकों आमंत्रण यज्ञके वास्ते—हे सूर्य ! तूं और कोइ जानेकों समर्थ नहीं तिस रस्तेकरके जानेवाला है^१, सोइ दिखाते हैं; दो हजार दोसौ और दो (२२०२), योजन अर्द्ध निमेषमात्रमें चलता है. इस वास्ते तेरे तांड नमस्कार हो. हे सूर्य ! तूं आकाशमें चलता है, यह सूर्य मेरे उपद्रव करनेवाले रोगोंकों नाश करता हुआ उदय हुआ-इत्यादि.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० १० ॥

१ ऋ०—इंद्र आपही किसीका पुत्र हुआ, यद्वा, काण्वपुत्र, मेधातिथि यजमानका सोम, इंद्र, मेषका रूप करके पीता हुआ, वो ऋषि उसकों मेष कहता हुआ, इसी वास्ते अबभी इंद्रकों मेष कहते हैं. उस मेषरूप इंद्रका वर्णन.

१ ऋ०—वरुणकी स्तुति और तिसका वर्णन.

८ ऋ०—विचित्र कर्त्तव्यों सहित इंद्रकी स्तुति.

१ ऋ०—शर्यात नामा राजऋषिके यज्ञमें भृगुगोत्रका उत्पन्न हुआ च्यवन महाऋषि आश्विनग्रहकों ग्रहण करता हुआ, इंद्र उसकों देख

१ हे सूर्य त्वं तराणः तरिता अभ्येन गन्तुमशक्यस्य महतोऽध्वनो गन्ताऽसि तथा च स्मर्यते 'योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने ॥ एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोऽस्तु ते' इति भाष्यकारः ॥

कर क्रोधित हुआ, उसकों इंद्र पीछा ल्याया, फेर तिसके तांड सोम-दिया, इस अर्थका वर्णन है.

१ ऋ०—अंगराज किसी दिनमें अपनी राणीयाँके साथ गंगामें जल-क्रीडा करता हुआ; तिस समयमें दीर्घतमा नाम ऋषिकों अपने स्त्री, पुत्र, नौकरादिकोंने दुर्बल होनेसें कुछभी नहीं कर सका है, ऐसे द्वेषसे गंगामें वहा दिया; सो ऋषि वहता हुआ अंगराजके क्रीडाप्रदेशमें आ लगा. राजाने सर्वज्ञ जाणके तिस ऋषिकों बहार निकाला, और कहा कि, हे भगवन् ! मेरे पुत्र नहीं हैं; यह पट्टराणी है, इसके विषे किसी पुत्रकों उत्पन्न कर. ऋषिनें मान लिया. पट्टराणीने भी राजाकेपास मान लिया. पीछे यह अतिशय वृद्ध जुगुप्सित मेरे योग्य नहीं है, ऐसी अपनी बुद्धिकरके विचारके राणीने अपनी उशित् नामा दासीकों भेजी. तिस सर्वज्ञ ऋषिने मंत्रपवित्र पानी करके दासीकों सिंचन करी; सो दासी ऋषिपत्नी हुई; तिसविषे कक्षीवान् नाम ऋषि उत्पन्न हुआ, सोही राजाका पुत्र हुआ. उसने बहुविध राजसूयादि यज्ञ करे, तिसके करे यज्ञोंसें तुष्टमान होके इंद्रने वृचया नामा स्त्री तिसके तांड दीनी. तथा हे इंद्र ! तूं वृषणश्च नाम राजाकी कन्या होता भया, जिसका नाम मेना था.—इत्यादि वर्णनका संक्षेप है.

इत्यादि प्रायः सारा ऋग्वेद इसीसें परिपूर्ण है. यजुर्वेदादिमें भी सि-वाय हिंसा और प्रार्थनाके और कुछभी प्रायः नहीं है. और जो ऋग्वे-दके सातमे मंडलमें ईश्वरकी स्तुति और स्वरूप लिखा है, सो सर्व सूक्त नवीन हैं. क्योंकि, तिनकी संस्कृत अन्य अष्टक मंडल सूक्तोंसें अन्य तरेकी शुद्ध मार्जन करी हुई मालुम होती है. दयानंदस्वामीजीने इन सूक्तोंके अर्थभी प्राचीन अर्थोंसें उलटे करे हैं; परंतु इससें कुछ पंडि-ताई हांसल नहीं होती है. भवभीरु और पंडितोंका तो यही काम होता है, सत्यकों ग्रहण करना, असत्यकों त्याग करना. ओर असत्यकों जो अनःकल्पित अर्थ हेतु—युक्तिद्वारा सत्य सिद्ध करना है, सो तो कदाग्र-हीका काम है. ओर असल प्राचीन वेदमंत्रोंमें अनीश्वरी, पूर्वमीमांसा, अर्थात् जैमनीय मतका प्रतिपादन है, इस वास्तेही मीमांसक विधि-

वाक्यों वेद मानते हैं; शेष ईश्वर, ईश्वरस्तुति, ईश्वरस्वरूप और वेदांत अद्वितीय ब्रह्मकी प्रतिपादक श्रुतियां, यह सर्व ऋषियोंने पीछे प्रक्षेप करी हैं, ऐसे मानते हैं. जैन मतका शास्त्रभी पूर्वोक्त मीमांसक मतकी गवाही देता है यदुक्तं षड्दर्शनसमुच्चये श्रीहरिभद्रसूरिपादैः ॥

जैमिनीयाः पुनः प्राहुः, सर्वज्ञादिविशेषणः ॥

देवो न विद्यते कोपि, यस्य मानं वचो भवेत् ॥ १ ॥

तस्मादतीन्द्रियार्थानां, साक्षाद्द्रष्टुरभावतः ॥

नित्येभ्यो वेदवाक्येभ्यो, यथार्थत्वविनिर्णयः ॥ २ ॥

अतएव पुरा कार्यो, वेदपाठः प्रयत्नतः ॥

ततो धर्मस्य जिज्ञासा, कर्तव्या धर्मसाधनी ॥ ३ ॥

नोदनालक्षणो धर्मो, नोदना तु क्रियांप्रति ॥

प्रवर्तकं वचः प्राहुः, स्वः कामोऽग्निं यजेद्यथा ॥ ४ ॥

भाषार्थः—जैमनीय पुनः कहते हैं कि, सर्वज्ञादि विशेषणवाला ऐसा कोई देव नहीं है कि, जिसका वचन प्रमाण होवे ॥ १ ॥ तिस वास्ते अतीन्द्रिय अर्थोंके साक्षात् द्रष्टाके अभावसे नित्य ऐसे वेदवाक्योंसे यथावस्थित पदार्थत्वका विशेष निर्णय होता है ॥ २ ॥ इस वास्ते प्रथम प्रयत्नसे वेदपाठ करना, पीछे धर्मसाधन करनेवाली धर्मजिज्ञासा करनी ॥ ३ ॥ वेदवचनकृतनोदना, प्रेरणालक्षण धर्म; और नोदना क्रियाके प्रतिप्रवर्तकका वचन, जेसें स्वर्गका कामी अग्निका यजन करे ॥ ४ ॥

और जिन सूक्तोंसे ईश्वरका स्वरूप कथन करा है, सो भी प्रमाणयुक्तिसे बाधित है, सो स्वरूप थोडासा आगेकों लिख दिखावेंगे. और वेदोंकी उत्पत्ति जैनमतवाले जैसे मानते हैं, तैसें जैनतत्त्वादृश नामक (संवत् १९४० का छपा) पुस्तकके ६१० से लेके ६२२ पृष्ठतक जाननी. ब्राह्मण लोक जिसतरें वेदकी संहिता उत्पन्न भई मानते हैं, तैसें महीधरकृत यजुर्वेदभाष्य, और अज्ञानतिमिरभास्कर ग्रंथसें जान लेनी. इस वास्ते वेद सर्वज्ञ अष्टादश दूषणरहित भगवन्तके कथन करे हुए नहीं हैं; तो फेर ये

पुस्तक प्राचीन हुए वा नवीन हुए तो इनसें कुछभी सत्य मोक्षमार्गकी सिद्धि नहीं होती है। यह किञ्चित्मात्र ग्रंथसमीक्षाविषयक लिखा, इसके आगे देवविषयक स्वरूप लिखा जायगा, जोकि ध्यान देकर वाचनेके योग्य है।

इति श्रीमद्विजयानन्दसूरिछते तत्त्वनिर्णयप्रासादे ग्रंथ-
समीक्षाविषये प्रथमः स्तम्भः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयस्तम्भप्रारम्भः

अब इस द्वितीय स्तम्भमें थोडासा देवविषयक लिखते हैं। क्योंकि, कोई लोक कहते हैं कि, जैनमतवाले ब्रह्मा, महादेव और विष्णुकों नहीं मानते हैं। इस वास्ते जैनमत प्रमाणिक नहीं है; परंतु यह कहना उन मित्र लोकोंको अच्छा नहीं है। क्योंकि, असली ब्रह्मा, महादेव और विष्णु जो है, तिनकों तो जैनमतवालेही मानते हैं। और कल्पित जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु है तिनकों अन्य मतवाले मानते हैं।

पूर्वपक्षः—जैनमतवाले जैसे ब्रह्मा, महादेव और विष्णुकों मानते हैं, तिनका स्वरूप लिखो; जिससें हरेक वाचकवर्गकों मालुम हो जावे कि, जैनमतवाले ऐसे ब्रह्मा, महादेव और विष्णुकों मानते हैं।

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर ! मेरी इतनी बुद्धि वा शक्ति नहीं है, जो मैं यथार्थ ब्रह्मा, महादेव और विष्णुका पूरेपूरा स्वरूप लिख सकूं। तोभी पूर्वाचार्योंके प्रसादसे किञ्चित्मात्र लिखता हूं; जिसको ध्यान देके पढनेसे मालुम होगा कि, ब्रह्मा, महादेव और विष्णु ऐसे होते हैं।

प्रशान्तं दर्शनं यस्य सर्वभूताभयप्रदं ॥

मांगल्यं च प्रशस्तं च शिवस्तेन विभाव्यते ॥ १ ॥

भाषार्थः—जिस महादेवका अथवा तिसकी प्रतिमाका दर्शन प्रशान्त है, दर्शन करनेवालेके मनकों प्रशान्त करनेका हेतु होनेसे प्रशान्त दर्शन

और तिनकी मूर्ति निरुपाधिक प्रशान्तरूप होनेसें प्रशान्त दर्शनवाली है. क्योंकि, जो त्रिभुवनमें प्रशान्तरूप परिणामवाले परमाणु भगवान्‌के शरीरको लगे हैं, तैसें परमाणु तितनेही जगत्‌में हैं; इसवास्ते भगवान्‌के प्रशान्तरूप समान अन्यरूप किसीका भी नहीं है. तथा तिनकी मूर्ति जैसी प्रशान्ताकारवाली है, तैसी जगत्‌में किसी भी देवकी नहीं है, इस वास्ते भगवान्‌का प्रशान्त दर्शन है. और सर्वभूत प्राणियोंको अभयदान देनेवाला है, “अभय दयाणं इति वचनात्” क्योंकि, विद्यमान भगवान्‌के स्वरूप और तिनकी मूर्तिके स्वरूपमें कोईभी वस्तु भय देनेवाली नहीं है. जिसके हाथमें त्रिशूल, चक्र, परशु, तलवार आदि शस्त्र होवेंगे, वो देव अभय देनेवाला नहीं है, परंतु किसी बैरीके भयसें वा किसीके मारनेवास्ते शस्त्र धारण करे हैं. भगवान्‌में पूर्वोक्त दूषण नहीं हैं; इसवास्ते अभयदानका दाता है. और मांगल्यरूप है. “अरिहंता मंगलं इति वचनात्” और प्रशस्त भला है, प्रशस्त वस्तुरूप होनेसें. इस करके पूर्वोक्त विशेषणोंवाला होनेकरके शिव कहीये है. ॥ १ ॥

महत्वादीश्वरत्वाच्च यो महेश्वरतां गतः ॥

रागद्वेषविनिर्मुक्तं वंदेऽहं तं महेश्वरम् ॥२॥

भाषार्थः—प्रथम श्लोकमें शिवका स्वरूप कथन करा, अथ महेश्वरका स्वरूप कहते हैं. बड़ा होनेसें और ईश्वर होनेसें जो महेश्वरताको प्राप्त हुआ है, तिहां महत् शब्दका अर्थ बड़ा है, शुद्ध स्वरूप शुद्ध ज्ञानादि गुणोंसें, बड़ा होनेसें और सर्व देवताओंका ठाकुर (पूज्य) अलंघनीय आज्ञावाला और सर्वका नायक, अग्रेश्वरी होनेसें ईश्वर. क्योंकि, जो चैतन्य जड पदार्थ जगत्‌में है, वे सर्व तिसकी स्याद्वाद मुद्रारूप आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सक्ते हैं. और जो उल्लंघन करता है, सो तीन कालमें भी वस्तुस्वरूपको प्राप्त नहीं होता है. उक्तं च श्रीमद्धेमचंद्रसूरिप्रवरैः ॥

आदीपमाव्योम समस्वभावं स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु ॥

तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यदिति त्वदाज्ञाद्विषतां प्रलापाः ॥३॥

भाषार्थः—‘आदीपं’ दीपकसें लेके ‘आव्योम, व्योम मर्यादीकृत्य’ आकाशपर्यंत, सर्व वस्तु पदार्थस्वरूप जो हैं, सो समस्वभाव हैं; तुल्यरूप हैं स्वभावस्वरूप जिसका, सो समस्वभाव. क्योंकि, वस्तुका स्वरूप द्रव्यपर्यायात्मक है, ऐसा हम कहते हैं. तैसेंही वाचक मुख्य श्री उमास्वातिजी तत्त्वार्थसूत्रमें कहते हैं. “उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति” जो उत्पाद—व्यय—ध्रौव्यकरके युक्त है सोइ सत् है. और जो सत् है सोई वस्तुका लक्षण है. समस्वभाव सर्व वस्तुओं किस हेतुसें ? ऐसे पृच्छकके पूछे थके विशेषणद्वारकरके हेतु कहते हैं. ‘स्याद्वादमुद्रानतिभेदि’—‘स्यात्’ ऐसा अव्यय अनेकांतका द्योतक है. तब तो स्याद्वाद (अनेकांतवाद) नित्य—अनित्यादि अनेक धर्मोंके शबल स्वभाववाला एक वस्तुका मानना, तिसकी मुद्रा (मर्यादा) तिसको जो उल्लंघन न करे (न तोड़े) सो स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु है. जैसे न्याय एकनिष्ठ न्यायतत्पर राजाके राज्यशासन चलाते हुए, सर्व तिसकी प्रजा तिसकी मुद्रा (मर्यादा) का अतिक्रम नहीं करती हैं. जेकर अतिक्रम करे तो तिसके सर्व अर्थकी हानि होवे है. ऐसेंही विजयवंत निःकंटक स्याद्वाद महानरेंद्रके हुए, तिसकी स्याद्वादमुद्राका सर्वही पदार्थ अतिक्रम (उल्लंघन) नहीं कर सकते हैं. जेकर उल्लंघन करे तो तिनको स्वरूप व्यवस्थाकी हानिकी प्रसक्ति होनेसें अवस्तुपणेका प्रसंग होवेगा. और सर्व वस्तुओंका जो समस्वभाव कथन करा है, सो परवादियोंको जो अभीष्ट मान्य है, एक व्योमादि वस्तु नित्यही है, अन्यत् प्रदीपादि अनित्यही है, ऐसे वादके प्रतिक्षेप खंडनका बीज है. सर्वही भाव पदार्थ द्रव्यार्थिक न्यापेक्षासें नित्य है, और पर्यायार्थिक नयके मतसें अनित्य है. सहां एकांत अनित्यपणेवादीयोंने अंगीकार करे प्रदीपको प्रथम नित्या—नित्यपणेके व्यवस्थापनविषे दिङ्मात्र (संक्षेपमात्र) कथन करते हैं. तथाहि प्रदीपपर्यायको प्राप्त हुए तैजस परमाणु जे हैं, वे स्वभावे वा तैलके क्षयसें वा पवनके अभिघातसें ज्योतिःपर्यायको त्यागके तमोरूप पर्यायांतरको प्राप्त होते हुए भी एकांत अनित्य नहीं हैं. क्योंकि, पुद्गल द्रव्यरूपकरके वे सदा अवस्थितही हैं. इतने मात्रसेंही अनित्यता नहीं

है कि, पूर्व पर्यायका नाश और उत्तर पर्यायका उत्पाद होना. जैसे मटीरूप द्रव्य, स्थासक, कोश, कुशूल, शिबक, घटादि अवस्थांतरांको प्राप्त हुआ भी, एकांतविनष्ट नहीं होता है. तिन अवस्थाओंमें भी, मृत्तिकाद्रव्यके अनुगमको आबालगोपालादिकोंको प्रतीत होनेसें. और ऐसे भी न कहना कि, अंधकार, पुद्गलरूप नहीं है; नेत्रोंके विषयकी अन्यथा अनुपपत्ति होनेसें प्रदीपालोकवत् तिसको पौद्गलिकपणा सिद्ध है.

पूर्वपक्षः—जो चाक्षुष है, सो सर्व अपने प्रतिमासमें आलोककी अपेक्षा करता है. परंतु तम ऐसा नहीं है; तो फिर तमको कैसें चाक्षुषपणा होवे ?

उत्तरपक्षः—उलूकादिकोंको तिसके विनाभी अंधकारक प्रतिभास होनेसें. जिन अस्मदादिकोंने अन्यत् चाक्षुष घटादिक आलोक विना उपलंभ नहीं करीये है, तिनोही अस्मदादिकोंने तिमिरको देखीये है भावोंके विचित्र होनेसें. अन्यथा कैसें पीत श्वेतादि भी, स्वर्ण, मुक्ताफलादि पदार्थ आलोककी अपेक्षासें दीखते हैं, और प्रदीप चंद्रादि प्रकाशांतरकी अपेक्षा रहित दीख पड़ते हैं. इससें सिद्ध हुआ कि, तमः चाक्षुष द्रव्य है. नेत्रोंसें दीखनेवाला द्रव्य है, और रूपवान् होनेसें. स्पर्शवाला भी जाना जाता है, शीतस्पर्शके ज्ञानका जनक होनेसें. और जे अनिवडावयवत्व, अप्रतिघातित्व, अनुद्भूतस्पर्शविशेषवत्त्व, अप्रतीयमान खंडावयविद्वयविभागत्व, इत्यादि तमके पौद्गलिकपणेके निषेध वास्ते परवादियोंने साधन उपन्यास करे हैं, वे सर्व प्रदीप प्रभाके दृष्टांत करकेही प्रतिषेध करने योग्य हैं, तुल्ययोग क्षेम होनेसें. और ऐसे भी न कहना कि, तैजस परमाणु तमपणे कैसें परिणमते हैं ? क्योंकि, पुद्गलोंमें तिस तिस सामग्रीके सहकारी हुआ, विसदृशकार्यका उत्पादकपणा भी देखनेमें आता है. देखा है आर्द्रधनके संयोगसें, भास्वरूप भी अग्निसें, अभास्वरूप धूमकार्यका उत्पाद. इस हेतुसें सिद्ध हुआ कि, नित्यानित्यरूप प्रदीप है. जिस अवसरमें बूझनेसें पहिले देदीप्यमान दीप है, तिस अवसरमें भी नवीन नवीन पर्यायोंके उत्पाद व्ययका भागी होनेसें और प्रदीप अन्वयके होनेसें नित्यानित्यरूपही दीपक है.

ऐसे आकाश भी उत्पादव्ययप्रौव्यात्मक होनेसे नित्यानित्यरूप है, सोही दिखाते हैं. अवगाहक जीव पुद्गलांको अवगाह दानोपग्रहही तिसका लक्षण है. “अवकाशदं आकाशमिति वचनात्” यदा अवगाहक जीव पुद्गल प्रयोगसे वा स्वभावसे एक नभःप्रदेशसे प्रदेशांतरको प्राप्त होतेहैं, तदा तिस नभःकाके तिन अवगाहकोंके साथ एक प्रदेशमें विभाग और उत्तर प्रदेशमें संयोग होता है और संयोग विभाग दोनों परस्पर विरुद्ध धर्म हैं, तिनके भेदसे अवश्य धर्मीका भेद है. तथा चाहुः—“अयमेव हिभेदो भेदहेतुर्वा यद्विरुद्धधर्माध्यासः कारणभेदश्च” यहही भेद वा भेदका हेतु है, जो विरुद्ध धर्माध्यास और कारणका भेद होना. तब तो सो आकाश पूर्वसंयोगविनाशलक्षण परिणामकी आपत्तिसे विनष्ट हुआ, और उत्तरसंयोगोत्पाद परिणाम अनुभावसे उत्पन्न हुआ, और दोनों जगे अनुगत होनेसे, उत्पाद व्यय दोनोंका एकाधिकरण हुआ. तब तो अनुगत होनेसे, उत्पाद व्यय दोनोंका एकाधिकरण हुआ. तब तो “यदप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपं नित्यम्” ऐसा नित्यका लक्षण कहते हैं. सो खंडित हुआ, क्योंकि, ऐसे लक्षणवाला कोई भी पदार्थ नहीं है. “तद्भावाव्ययं नित्यं” यह नित्यका लक्षण सत्य है. उत्पाद विनाश दोनोंके हुए भी, तद्भावात् अन्वयिरूपसे जो नाश न होवे सो नित्य है. ऐसे तिसके अर्थको घटमान होनेसे. जेकर अप्रच्युतादि लक्षण माने, तब तो उत्पाद व्यय दोनोंको निराधारत्वका प्रसंग होवेगा और तिनके योगसे नित्यत्वकी हानि भी नहीं है.

द्रव्यं पर्यायवियुतं, पर्याया द्रव्यवर्जिताः ॥

क्व कदा केन किरूपा, दृष्टा मानेन केन वा ॥ १ ॥

इति वचनात्.

भाषार्थः—द्रव्य पर्यायारहित, और पर्यायां द्रव्यसे रहित किसी जगे, किसी कालमें, किसीने, किसी रूपवाले, किसी प्रमाणसे, देखे हैं? अपि तु नहीं देखे हैं. और ऐसे भी न कहना कि, आकाश द्रव्य नहीं है. क्योंकि, लौकिकोंमें भी घटाकाश है, पटाकाश है; इस व्यवहारकी प्रसिद्धिसे आकाशको नित्यानित्यत्व सिद्ध होता है. यदा घटाकाश भी घटके दूर हुए, और पटकरके आक्रांत हुए यह पटाकाश है, ऐसा व्यवहार है और यह भी न कहना कि, यह औपचारिक होनेसे प्रमाण नहीं. क्योंकि,

उपचारको भी किंचित् साधर्म्यद्वारसें मुख्यार्थका स्पर्शि होनेसें प्रमाणता है. आकाशका जो सर्वव्यापकत्व मुख्य प्रमाण है सो तिस तिस आधेय घटपटादि संबंधि नियत प्रमाणके वशसें कल्पित भेदके हुए प्रतिनियत देशव्यापि करके व्यवहार करते हुए घटाकाश पटाकाशादि तिस तिस व्यपदेशका निबंधन होता है. और तिस तिस घटादि संबंधके हुए व्यापकपणे करके अवस्थित आकाशको अवस्थांतरकी आपत्ति है, तब तो अवस्थाके भेद हुए. अवस्थावालेका भी भेद है. अवस्थाको तिससें अविष्वग्भाव होनेसें सिद्ध हुआ किं, नित्यानित्य आकाश है. स्वयंभूमतवाले भी नित्यानित्यही वस्तु मानते हैं. 'तथा चाहुस्ते' तीन प्रकारका निश्चय यह परिणाम है. धर्मिका धर्मलक्षण अवस्थारूप है. सुवर्ण धर्मि, तिसका धर्म परिणाम वर्द्धमान रुचकादि. धर्मका लक्षण परिणाम अनागतादि है. यदा यह हेमकार वर्द्धमानकको भांगके रुचककी रचना करता है, तदा वर्द्धमानक वर्त्तमानता लक्षणको छोडके अतीततालक्षणको प्राप्त होता है. और रुचक तो अनागतता लक्षणको त्यागके वर्त्तमानताको प्राप्त होता है; और वर्त्तमानताको प्राप्त हुआ भी, रुचक नव पुराणादि भावको प्राप्त होता हुआ अवस्था परिणामवान् होता है. सो यह तीन प्रकारका परिणाम धर्मिके धर्मलक्षण अवस्था जे हैं, सो धर्मिसें भिन्न भी हैं, और अभिन्न भी हैं; ते धर्मिसें अभेद होनेसें नित्य हैं. और भेद होनेसें उत्पत्तिविनाशविषयत्व है. ऐसें दोनोही उपपन्न होते हैं.

अथ इस काव्यके उत्तरार्द्धका विवरण करते हैं. तन्नित्यमैवैकम्-इत्यादि-ऐसें उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्व सर्व भावोंके सिद्ध हुआ भी, एक आकाशादिक नित्यही है; और अन्यत् प्रदीप घटादिक अनित्यही है; इस प्रकारसें दुर्नयवादापत्ति होवे है. अनंतधर्मात्मक वस्तुमें स्वाभिप्रेतनित्यत्वादिधर्मके सिद्ध करनेमें तत्पर होना, और शेष धर्मोंके तिरस्कार करनेमें प्रवर्त्त होना दुर्नयोंका लक्षण है. इस उल्लेखकरके तेरी आज्ञाके द्वेषी तेरे कथन करे शासनके विरोधियोंके प्रलापाः प्रलपितानि असंबद्धवाक्य तिनके हैं. यहां प्रथम आदीप-मिति इससें परप्रसिद्धिकरके अनित्यपक्ष उल्लेखके हुए भी जो आगे

यथासंख्य उत्तर करके पूर्वतर नित्यही एक है, सो ऐसें ज्ञापन करता है कि, जो अनित्य है सो भी कथंचित् नित्यही है. और जो नित्य है, सो भी कथंचित् अनित्यही है. प्रकांतवादीयोंने भी एकही पृथ्वीमें नित्यानित्यत्व माना है. “ तथा च प्रशस्तकारः ’ पृथिवी दो प्रकारकी है. नित्या और अनित्या, परमाणु लक्षणा नित्या है, और कार्यलक्षणा अनित्या है. और ऐसें भी न कहना कि यहां परमाणुकार्य द्रव्यलक्षणविषय दो भेदोंसें एकाधिकरण नित्यानित्य नहीं है. क्योंकि, पृथिवीत्वका दोनों जगे अव्यभिचार होनेसें. ऐसें अप् आदिकमें भी जानना. आकाशसें भी तिनों संयोगविभाग अंगीकार करनेसें अनित्यत्व युक्तिसें मानाही है. तथा च स एवाह ’ शब्दकारणत्व वचनसें संयोगविभाग है. ऐसें नित्यानित्य दोनों पक्षोंको संवलितत्व है. और यह स्वरूप लेशमात्रसें ऊपर लिख आए हैं. प्रलापप्रायत्व परवादीयोंके वचनोंका इस प्रकारसें समर्थन करना योग्य है. वस्तुका प्रथम तो अर्थक्रियाकारित्व लक्षण है, सो लक्षण एकांत नित्य अनित्य पक्षोंमें घटता नहीं है. अप्रच्युत अनुत्पन्न स्थिरैकरूप जो नित्य है, सो क्रमकरके अर्थक्रिया करता है, वा अक्रम करके. परस्पर व्यवच्छेद रूपोंको प्रकारांतरके असंभव होनेसे तहां क्रम करके अर्थक्रिया तो नहीं करता है. क्योंकि, सो कालांतरभाविनी-क्रिया प्रथम क्रिया कालमेंही जबरदस्तीसें करे, समर्थको कालक्षेप करना अयोग्य है; कालक्षेपिको असमर्थ प्राप्ति होनेसें. जेकर कहेंगे समर्थ भी तिस तिस सहकारिके समवधानके हुए तिस तिस अर्थको करता है. तब तो सो समर्थ नहीं है. अपर सहकारिकी सापेक्षवृत्ति होनेसें. सापेक्ष जो है, सो समर्थ नहीं. इस न्यायसें जेकर कहोगे वो तो सहकारिकी अपेक्षा नहीं करता है. किंतु कार्यही सहकारिके न हुष, नहीं होता है, इस वास्ते तिनकी अपेक्षा करता है. तब तो सो भाव समर्थ है वा असमर्थ है? जेकर समर्थ है तो काहेको सहकारीयोंके मुखको देखता है? जलदीही क्यों नहीं करता है?

पूर्वपक्षः—समर्थ भी बीज, पृथिवी, जल पवनादि सहकारीयोंकेसाहि-तही अंकुरको करता है, अन्यथा नहीं.

उत्तरपक्षः—सहकारियोंने तिसकों किंचित् उपकार करीये है, वा नही? जेकर नही करीये है, तब तो सहकारीयोंकी संनिधानसें पहिलेकी तरें क्यों नही अर्थक्रियामें उदास रहता है? जेकर उपकार करीये है, तब तो सो उपकार तिनोने भिन्न कयीये हैं वा अभिन्न? जेकर अभिन्न करीये हैं तब तो तिसकोही करीये हैं ऐसैं तो लाभ इच्छते हुए मूलहानिही आ गई. कृतक होनेसें, तिसको अनित्यताकी आपत्तिसें. जेकर भेद है, तो सो उपकार तिसको कैसें हुआ? सहा और विंध्याचलको क्यों न हुआ?

पूर्वपक्षः—तिसके साथ संबंध होनेसे तिसका यह उपकार है.

उत्तरपक्षः—उपकार्य उपकारका क्या संबंध है? संयोगसंबंध तो नही. क्योंकि, वो तो द्रव्योंकाही होता है. यहां तो उपकार्य द्रव्य है, और उपकार क्रिया है, इसवास्ते संयोगसंबंध तो नही है. और समवायसंबंध भी नही है. क्योंकि, तिसको एक होनेसें और व्यापक होनेसें, निकट दूरके अभावसें, सर्वत्र तुल्य होनेसें. नियतसंबंधियोंके साथ भी संबंध-युक्त नही है. क्योंकि, नियतसंबंधिसंबंधके अंगिकार करे हुए तिसका करा उपकार इस समवायका अंगिकार करना चाहिये. तैसें हुए उपकारको भेदाभेद कल्पना तैसेंही है. उपकारको समवायसें अभेद हुए समवायही करा सिद्ध हुआ. और भेद माने भी समवायको नियत-संबंधिसंबंधत्व नही है. तिस वास्ते एकांत नित्यभाव क्रमकरके अर्थक्रिया नही करता है. और युगपत् भी अर्थक्रिया नही करता है. एक भाव सकल कालमें होनेवालीयां युगपत् सर्व क्रियाओंको करता है, ऐसी प्रतीति नही होती है. जेकर करे तो दूसरे समयमें क्या करेगा? जेकर करेगा तो क्रमभावी पक्षके दूषण होवेंगे. जेकर न करेगा तो अर्थक्रियाकारित्वके अभावसें अवस्तुत्वका प्रसंग है. ऐसैं एकांत नित्यसें क्रमाक्रमकेसाथ व्याप्त अर्थक्रिया व्यापकानुपलब्धिके बलसें व्यापक निवर्तन होनेसें निवर्तमान होती हुई स्वव्याप्य अर्थक्रियाकारित्वको निवर्तन करे हैं. और अर्थक्रियाकारित्व निवर्तमान होता हुआ स्वव्याप्यसत्त्वको निवर्तन करता है. इस वास्ते, एकांत नित्य पक्ष भी युक्तिक्षम नही है. एकांत अनित्य पक्ष भी अंगीकार करने योग्य नही है. अनित्य जो है सो प्रतिक्षण-

विनाशी है सो क्रमकरके अर्थक्रिया करनेको समर्थ नहीं है, देशकृत कालकृत क्रमकेही अभावसें. क्रम जो है सो पूर्वापर है, सो क्षणिकमें संभवे नहीं है. क्योंकि, अवस्थितकोंही नाना देशकालव्याप्ति है; और देशक्रम कालक्रम भी कहिये है. और एकांत विनाशीमें सा है नहीं. 'यदाहुः'

यो यत्रैव स तत्रैव यो यदैव तदैव सः ॥

न देश कालयोर्व्याप्तिर्भावानामिह दृश्यते ॥ १ ॥

भाषा:—जो जहां है सो तहांही है. जो जिस कालमें है सो तिसही कालमें है. भावोंकी यहां देशकालोंविषे व्याप्ति नहीं दीखती है. और संतानकी अपेक्षाकरके भी पूर्वोत्तर क्षणोंको क्रम संभव नहीं है, संतानको अवस्तु होनेसें. वस्तुके हुए भी जेकर तिसको क्षणिकत्व है, तब तो क्षणोंसें कुछ भी विशेष नहीं है. जेकर अक्षणिकत्व है, तब तो क्षण-भंगवाद समाप्त हुआ. अक्रमकरके भी क्षणिकमें अर्थक्रियाका संभव नहीं है. सो क्षणिक एक बीजपूरादि रूपादिक्षण युगपत् अनेक रसादि क्षणोंको उत्पादन करता हुआ एक स्वभावकरके उत्पन्न करता है, वा नाना स्वभावोंकरके? जेकर एककरके करता है, तब तो तिन रसादि क्षणोंका एकत्वपणा होवेगा; एक स्वभावसें जन्य होनेसें. अथ नाना स्वभावोंकरके उत्पन्न करता है, किंचित् रूपादि उपादानभावकरके, किंचित् रसादि सहकारिपणेकरके, तब तो वे स्वभाव तिसके आत्मभूत है वा अनात्मभूत है? जेकर अनात्मभूत है, तब तो स्वभावत्वकी हानि है. जेकर आत्मभूत है तब तो तिसको अनेकत्वपणा है, अनेक स्वभावत्व होनेसें. अथवा अनेक स्वभावोंको एकत्वका प्रसंग है. तिससें तिनको अव्यतिरिक्त होनेसें और तिसको एक होनेसें. अथ जोहि एकत्र उपादानभाव है सोही अन्यत्र सहकारिभाव है; इस वास्ते स्वभावभेद नहीं मानते हैं, तब तो नित्य एक रूपको भी क्रमकरके नाना कार्यकारिको स्वभावभेद और कार्यसां-क्य कैसे माना है क्षणिकवादियोंने? अथ नित्य जो है सो, एकरूपवाला होनेसें अक्रम है और अक्रमसें क्रमकरके होनेवाले नाना कार्योंकी कैसे

उत्पत्ति होवें ? अहो स्वपक्षपाती देवानांप्रिय बौद्धो ! जो वस्तु स्वयं एक निरंशरूपादिक्षण लक्षणकारणसें युगपत् अनेक कारणसाध्य अनेक कार्योंको अंगीकार करता हुआ भी परपक्षे नित्य भी वस्तुमें क्रमकरके नाना कार्य करनेमें भी विरोध उद्भावन करता है. तिस वास्ते, क्षणिक भावको भी अक्रमकरके अर्थक्रिया दुर्घट है. इस वास्ते एकांत अनित्यसें भी क्रमाक्रम व्यापकोंकी निवृत्ति होनेसें व्याप्य अर्थक्रिया भी निवृत्त होवे है. और तिसकी निवृत्तिके हुए सत्त्व भी व्यापकानुपलब्धि-बलकरकेही निवर्त्तता है. इससें एकांत अनित्यवाद भी रमणीय नहीं है. और स्याद्वादमें तो पूर्वोत्तराकार परिहार स्वीकार स्थिति लक्षण परिणाम करके भावोंको अर्थक्रियाकी उपपत्ति अविरुद्ध है. ऐसें भी न कहना कि, एकत्र वस्तुमें परस्पर विरुद्ध धर्माध्यासयोगसें स्याद्वाद असत् है. क्योंकि, नित्य पक्ष अनित्य पक्षसें विलक्षण पक्षांतरके अंगीकार करनेसें. और तैसेंही सर्व जनोने अनुभव करनेसें ॥ १ ॥

तथाच पठंति ॥ भागे सिंहो नरो भागे योर्थो भागद्वयात्मकः ॥

तमभागं विभागेन नरसिंहं प्रचक्षते ॥ २ ॥

भावार्थः—तथा वैशेषिकोंने भी चित्ररूप एक अवयवीके माननेसें एकही पटादिके चलाचल रक्ताक्त आवृतानावृतत्वादि विरुद्ध धर्मोंकी उपलब्धिसें और सौगतोंने भी एकत्र चित्रपटी ज्ञानमें नील अनीलके विरोधको अनंगीकार करनेसें स्याद्वाद माना है. यहां यद्यपि अधिकृतवादी प्रदीपादिकको कालांतर अवस्थायि होनेसें क्षणिक नहीं मानते हैं. तिनके मतमें पूर्वापर तावत् छिन्नसत्ताकोंही अनित्यता लक्षणतें. तो भी बुद्धिसुखादिकको वे भी क्षणिकताकरकेही मानते हैं. तिनके अधिकारमें भी क्षणिकवाद चर्चा अनुपपन्न नहीं हैं. और जो भी कालांतरावस्थायि वस्तु है, सो भी नित्यानित्यही है. क्षण भी ऐसा कोई नहीं है. जहां वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक नहीं है. इति काव्यार्थः ॥ २ ॥

महेश्वरका स्वरूप कथन करके महादेवका स्वरूप श्लोक ११ करके कथन करते हैं.

महाज्ञानं भवेद्यस्य लोकालोकप्रकाशकम् ॥

महादया दमो ध्यानं महादेवः स उच्यते ॥ ३ ॥

भाषा—बड़ा ज्ञान, अर्थात् केवलज्ञान, लोकालोकके स्वरूपका प्रकाशक होवे, जिसको और जीवनमोक्षावस्थामें महादया, महादम और महाध्यान, शुद्धध्यान होवे जिसको सो महादेव कहा जाता है ॥ ३ ॥

महांतस्तस्करा ये तु तिष्ठन्तः स्वशरीरके ॥

निर्जिता येन देवेन महादेवः स उच्यते ॥ ४ ॥

भाषा—जे बड़े भारी तस्कर छद्मस्थावस्थामें अपने शरीरमें रहे हुए अष्टादश (१८) दूषणरूप, वे सर्व जिस देवने अपुनर्भवरूपसे जीते हैं, सो महादेव कहा जाता है ॥ ४ ॥

रागद्वेषौ महामल्लौ दुर्जयौ येन निर्जितौ ॥

महादेवं तु तं मन्ये शेषा वै नामधारकाः ॥ ५ ॥

भाषा—राग अभिष्वंगरूप, द्वेष अप्रीतिरूप, ये दोनो महामल्ल दुर्जय हैं; जीतने कठिन हैं. परं जिसने ये पूर्वोक्त दोनो मल्ल जीते हैं, तिसको तो मैं सच्चा महादेव मानता हूं. और जो रागी द्वेषीको लोक महादेव मानते हैं, सो नाममात्रसे महादेव है; नतु यथार्थ स्वरूपसे. होलिके बाद-शाहवत् ॥ ५ ॥

शब्दमात्रो महादेवो लौकिकानां मते मतः ॥

शब्दतो गुणतश्चैवार्थतोपि जिनशासने ॥ ६ ॥

भाषा—शब्दमात्र (कथनमात्र) महादेव तो लौकिक मतवालोंके मतमें मान्य है, और जैसा शब्द तैसाही अर्थ होवे, अर्थात् शब्दसे जो अर्थ निकले तिस अर्थरूप गुणसंयुक्त जो होवे, तिसको जैन मतमें महादेव मानते हैं ॥ ६ ॥

शक्तितो व्यक्तितश्चैव विज्ञानं लक्षणं तथा ॥

मोहजालं हतं येन महादेवः स उच्यते ॥ ७ ॥

भाषा—शक्ति क्षायकज्ञानलब्धिरूप और व्यक्ति ज्ञानउपयोग लक्षण,

लब्धिकी अपेक्षा ज्ञानशक्ति सादि अनंत है, और ज्ञानोपयोगलक्षणसे सादि सांत, और द्रव्यार्थक नयकी विवक्षासे अनादि, अनंत ऐसा विज्ञानरूप लक्षण है जिसका तथा मोहजाल अर्थात् अट्टाइस (२८) उत्तरप्रकृतिरूप मोहका जाल जिसने हत (नष्ट) किया है, सो महादेव कहा जाता है ॥ ७ ॥

नमोऽस्तु ते महादेव महामद विवर्जित ॥

महालोभविनिर्मुक्त महागुणसमन्वित ॥ ८ ॥

भाषा—महामद करके विवर्जित (रहित), महालोभ करके रहित, और महागुणसंयुक्त, ऐसे हे महादेव ! तेरेको नमस्कार होवे ॥ ८ ॥

महारागो महाद्वेषो महामोहस्तथैव च ॥

कषायश्च हतो येन महादेवः स उच्यते ॥ ९ ॥

भाषा—महाराग, महाद्वेष, महाअज्ञान, चशब्दसे सूक्ष्म सत्तागत जो स्वल्प भी राग, द्वेष, अज्ञान और षोडश प्रकारका कषाय ये पूर्वोक्त दूषण जिसने हने हैं, निःसत्ताकीभूत करे हैं सो महादेव कहा जाता है ॥ ९ ॥

महाकामो हतो येन महाभयविवर्जितः ॥

महाव्रतोपदेशी च महादेवः स उच्यते ॥ १० ॥

भाषा—महा काम, जो सर्व जगत्में व्यापक हो रहा है, तिसको जिसने हणया है, और जो सात प्रकारके महाभयकरके विवर्जित (रहित) है, और जो पंच महाव्रतका उपदेशक है, सो महादेव कहा जाता है ॥ १० ॥

महाक्रोधो महामानो महामाया महामदः ॥

महालोभो हतो येन महादेवः स उच्यते ॥ ११ ॥

महाक्रोध, महामान, महामाया, महामद, महालोभ, ये जिसने हनन किये हैं, सो महादेव कहा जाता है ॥ ११ ॥

महानन्दो दया यस्य महाज्ञानी महातपः ॥

महायोगी महामौनी महादेवः स उच्यते ॥ १२ ॥

भाषा—अतिशय आत्मानंद, और दया (परम करुणा) है जिसके, और जो

महाज्ञानी, महातपःस्वरूप, महायोगी सर्व योगोंका जाननहार, और धार-
नहार है; और जो महामौनी, सावद्य वचनसे रहित है, सो महादेव
कहा जाता है ॥ १२ ॥

महावीर्यं महाधैर्यं महाशीलं महागुणः ॥

महामञ्जुक्षमा यस्य महादेवः स उच्यते ॥ १३ ॥

भाषा—महावीर्य, वीर्यांतरायकर्मके क्षय होनेसे अनंतवीर्य, महाधैर्य, छद्म-
स्थावस्थामें परीसह उपसर्गोंसे कदापि ध्यानसे चलायमान नहीं होनेसे,
महाशील, अष्टादश सहस्र १८००० शीलांगवाले होनेसे, केवलज्ञानदर्श-
नादि अनंत महागुण, और महाकोमल मनोहर क्षमा है जिसके, सो
महादेव कहा जाता है ॥ १३ ॥

स्वयंभूतं यतोज्ञानं लोकालोकप्रकाशकम् ॥

अनन्तवीर्यचारित्रं स्वयंभूः सोभिधीयते ॥ १४ ॥

भाषा—स्वयमेवही आत्मस्वरूपसेही ज्ञानावरणीयादि कर्मोंके क्षय हो-
नेसे आविर्भूत हुआ है ज्ञानकेवलरूप लोकालोकका प्रकाशक जिसके,
वीर्यांतराय कर्मके क्षय होनेसे आविर्भूत हुआ है अनंतवीर्य जिसके, और
चारित्रमोहके क्षय होनेसे अनंतक्षायक चारित्र प्रगट हुआ है जिसके, तिस
भगवान्को स्वयंभू कहियेहैं. “शंभुः स्वयंभूर्भगवान्” इतिवचनात्॥१४॥

शिवो यस्माज्जिनः प्रोक्तः शंकरश्च प्रकीर्तितः ॥

कायोत्सर्गी च पर्यङ्गी स्त्रीशस्त्रादिविवर्जितः ॥ १५ ॥

भाषा—शिव निरुपद्रव, अर्थात् जिसका स्वरूप निरुपद्रव है, और सर्व
जगत्के निरुपद्रव होनेमें हेतु है; क्योंकि, जहां जहां भगवंत विचरते हैं,
तहां तहां चारों तर्फ पच्चीस योजनतांइ दुष्ट व्यंतरकृत मरीज्वरादि नहीं
होतेहैं. और स्वचक्रपरचक्रका भय नहीं होता है. और अवृष्टि, अतिवृष्टि
तथा मूषक टीडप्रमुख धान्यके उपद्रवकारी जीव नहीं होतेहैं. और जी-
वोंको शिव अर्थात् मुक्तिपथका उपदेश देनेसे जिन भगवान् तीर्थकर-
कोंही शिव कहतेहैं, चौतीस ३४ अतिशय संयुक्त होनेसे. पुनः तिसही
भगवंतको तीन भुवनके जीवोंको उपदेशद्वारा शं (सुख) करनेसे शंकर

कहते हैं. “त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्” इतिवचनात् । भगवंतके दोही आसन हैं, कायोत्सर्गासन वा पर्यंकासन. पुनः भगवंतकी मुद्रा, स्त्री और चक्र त्रिशूलादि, आदिशब्दसे जपमाला, यज्ञोपवीत, कमंडलु इत्यादिसे रहित होती है. क्योंकि, इनके रखनेसे भगवान् कामी, क्रोधी, अज्ञानी, अशुची इत्यादि दूषणोंवाला सिद्ध होता है. यदुक्तं “स्त्रीसंगः काममाचष्टे द्वेषं चायुधसंग्रहः॥ व्यामोहं चाक्षसूत्रादिरशौचं च कमण्डलुः” इति ॥ १५ ॥

साकारोऽपि ह्यनाकारो मूर्तामूर्तस्तथैव च ॥

परमात्मा च बाह्यात्मा अन्तरात्मा तथैव च ॥ १६ ॥

भाषा—देहसंयुक्त तेरमे चौदमे गुणस्थानमें जबतांड औदारिक, तैजस, कर्मण शरीरोंकेसाथ संबंधवाला है, तबतांड ईश्वर साकारस्वरूपवाला है; और जब सिद्धपदकों प्राप्त होता है, तब निराकारस्वरूप कहा जाता है. ईश्वर साकारावस्थामें मूर्तिमान् है, और सिद्धपदकी अपेक्षा अमूर्त-स्वरूप है, परमात्मा है, बाह्यात्मस्वरूपवाला है, और अन्तरात्मास्वरूपवाला भी है. कथंचित् भगवंतमें पूर्वोक्त सर्वस्वरूप घटे हैं, सोही स्याद्वाद शैलीकरके दिखाते हैं ॥ १६ ॥

दर्शनज्ञानयोगेन परमात्मायमव्ययः ॥

परा क्षान्तिरहिंसा च परमात्मा स उच्यते ॥ १७ ॥

भाषा—दर्शनज्ञानके योगकरके अर्थात् ज्ञानदर्शनस्वरूपकरके जो परमात्मास्वरूपकों प्राप्त हुआ है. । ‘नाणदंसणलक्खणं’ इतिवचनात् । और जो अव्ययरूपवाला है. “तद्भावाव्ययं नित्यम्” इतिवचनात् । और उत्कृष्ट क्षमा और अहिंसा इनकरके जो संयुक्त है, सो परमात्मा कहा जाता है ॥ १७ ॥

परमात्मासिद्धिसंप्राप्तौ बाह्यात्मा तु भवान्तरे ॥

अन्तरात्मा भवेद्देह इत्येषस्त्रिविधः शिवः ॥ १८ ॥

भाषा—जब सिद्धिमुक्तिकों प्राप्त होवे तब परमात्मा जानना, अर्थात् तेरमें चौदमें गुणस्थानसे सिद्धिपदप्राप्तितक परमात्मा कहा जाता है. और

जबतांड चौथा गुणस्थान प्राप्त नहीं होता, तबतांड बाह्यात्मा कहा जाता है, और चौथे गुणस्थानसे लेकर बारमे गुणस्थानतांड देहमें रहे, तिसको अंतरात्मा कहते हैं. यह तीनो प्रकारका शिव कहा जाता है॥१८॥

सकलो दोषसंपूर्णो निष्कलो दोषवर्जितः ॥

पञ्चदेहविनिर्मुक्तः संप्राप्तः परमं पदम् ॥ १९ ॥

भाषा—जबतांड सकल है, अर्थात् घातिकर्मचतुष्टयकी उत्तरप्रकृतियां ४७ रूप कलाकरके संयुक्त है तबतांड सदोष है, ओर जगत्में भ्रमण करता है. और जब निष्कल होता है, पूर्वोक्त उपाधियोंसे रहित होता है तब दोषविवर्जित है. और पंच देह (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कर्मण,) इन पांचप्रकारके शरीरोंसे मुक्त होता है, तब परमपदको प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

एकमूर्तिस्त्रयो भागा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥

तान्येव पुनरुक्तानि ज्ञानचारित्रदर्शनात् ॥ २० ॥

भाषा—एकमूर्ति द्रव्यार्थिकनयके मतसे, परंतु एकही मूर्तिके पर्यायार्थिक नयके मतकरके तीन भाग ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वररूपसे कहे हैं, वे ऐसे हैं, ज्ञानस्वरूपको विष्णु, चारित्रस्वरूपको ब्रह्मा और सम्यग्दर्शनस्वरूपको महेश्वर कहते हैं. पर्यायार्थिकनयके ये तीनो गुण अविरोधिपणे एक द्रव्यमें रहते हैं. जैसे अग्निमें उष्णता, पीतता, रक्तता रहती है. तैसे एक आत्माद्रव्यमें तीन गुण एकमूर्तिमें रहते हैं. इस हेतुसे तीनोंकी एक मूर्ति है ॥ २० ॥

अब लौकिक मतमें जो तीन देवोंकी एकमूर्ति मानते हैं, सो संभव नहीं होती है, सोही दिखाते हैं.

एकमूर्तिस्त्रयो भागा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥

परस्परं विभिन्नानामेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २१ ॥

भाषा—एकमूर्ति, तीन भाग, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इन तीनो परस्पर विशेष भिन्नोंकी एकमूर्ति कैसें होवे? अपि तु न होवे ॥ २१ ॥

कार्यं विष्णुः क्रिया ब्रह्मा कारणं तु महेश्वरः ॥

कार्यकारणसंपन्ना एकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २२ ॥

भाषा—विष्णु तो कार्यरूप है, ब्रह्मा क्रियारूप है, और महेश्वर कारणरूप है; तब कार्य कारण प्राप्त हुआंकी एकमूर्ति कैसें होवे? क्योंकि, कारण, कार्य, क्रिया ये तीनों एकरूप नहीं हो सक्ते हैं ॥ २२ ॥

प्रजापतिसुतो ब्रह्मा माता पद्मावती स्मृता ॥

अभिजिज्जन्मनक्षत्रमेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २३ ॥

भाषा—ब्रह्माके पिताका नाम प्रजापति, प्रजापति ऋषिका पुत्र ब्रह्मा हुआ; ब्रह्माकी माताका नाम पद्मावती, ब्रह्माका जन्म अभिजित् नक्षत्रमें हुआ था. अभिजित् नक्षत्रका अधिष्ठाता देवताका नाम ब्रह्मा है, इसवास्ते पुत्रका नाम ब्रह्मा रक्खा ॥ २३ ॥

वसुदेवसुतो विष्णुर्माता च देवकी स्मृता ॥

रोहिणी जन्मनक्षत्रमेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २४ ॥

पेढालस्य सुतो रुद्रो माता च सत्यकी स्मृता ॥

मूलं च जन्मनक्षत्रमेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २५ ॥

भाषा—वसुदेवका पुत्र विष्णु हुआ, और माता देवकी कही, और रोहिणी नक्षत्रमें जन्म हुआ, पेढालका पुत्र रुद्र हुआ, और माताका नाम सत्यकी, दूसरा नाम सुज्येष्ठा, और मूलनक्षत्रमें जन्म हुआ, इस पृथक् २ हेतुसें इन तीनोंकी एकमूर्ति कैसें होवे ॥ २४ ॥ २५ ॥

रक्तवर्णो भवेद्ब्रह्मा श्वेतवर्णो महेश्वरः ॥

कृष्णवर्णो भवेद्विष्णुरेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २६ ॥

अक्षसूत्री भवेद्ब्रह्मा द्वितीयः शूलधारकः ॥

तृतीयः शंखचक्रांक एकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २७ ॥

चतुर्मुखो भवेद्ब्रह्मा त्रिनेत्रोऽयं महेश्वरः ॥

चतुर्भुजो भवेद्विष्णुरेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २८ ॥

मथुरायां जातो ब्रह्म राजगृहे महेश्वरः ॥

द्वारावल्यामभूद्विष्णुरेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २९ ॥

हंसयानो भवेद्ब्रह्मा वृषयानो महेश्वरः ॥

गरुडयानो भवेद्विष्णुरेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ ३० ॥

पद्महस्तो भवेद्ब्रह्मा शूलपाणिर्महेश्वरः ॥

चक्रपाणिर्भवेद्विष्णुरेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ ३१ ॥

भाषा—ब्रह्माके शरीरका रंग लाल, महादेवका श्वेत, और विष्णुका कृष्ण था. ब्रह्माने जपमाला धारण करी है, महादेवने शूल, और विष्णुने शंख, चक्र धारण करे हैं. ब्रह्माके चार मुख थे, महादेवके तीन नेत्र थे, और विष्णुकी चार भुजायां थी. ब्रह्मा मथुरानगरीमें उत्पन्न भया, महादेव राजगृहमें, और विष्णु द्वारिकामें. ब्रह्माका वाहन हंस था, महादेवका बैल, और विष्णुका गरुड. ब्रह्माके हाथमें कमल था, महादेवके हाथमें शूल (त्रिशूल), और विष्णुके हाथमें चक्र था. इत्यादि विलक्षण हेतुओंसें इव तीनोंकी एकमूर्ति कैसें होवे ? ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

कृते जातो भवेद्ब्रह्मा त्रेतायां च महेश्वरः ॥

द्वापरे जनितो विष्णुरेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ ३२ ॥

भाषा—कृतयुगमें अर्थात् सतयुगमें ब्रह्मा उत्पन्न भए, त्रेतायुगमें महेश्वर उत्पन्न हुए, और द्वापरयुगमें विष्णु उत्पन्न हुए, इन हेतुओंसें इन तीनोंकी एकमूर्ति कैसें होवे ? ॥ ३२ ॥

इन पूर्वोक्त तीनों देवोंकी एकमूर्ति नहीं हो सकती है, पृथक् २ गुणोंके होनेसें. अब जिसतरें तीनोंकी एकमूर्ति होवेहै, सो दिखाते हैं.

ज्ञानं विष्णुस्सदा प्रोक्तं चारित्रं ब्रह्म उच्यते ॥

सम्यक्तं तु शिवं प्रोक्तमर्हन्मूर्तिस्त्रयात्मिका ॥ ३३ ॥

भाषा—ज्ञानकों सदा विष्णु कहते हैं, चारित्रकों ब्रह्मा कहते हैं, और सम्यक्त जो है तिसकों शिव कहते हैं. इसवास्ते 'अर्हन्' जो है, सो त्रयात्मक मूर्तिरूप है. अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन तीनों गुणमयी अर्हन्की

आत्मा है. क्योंकि, ये तीनों गुण आत्माद्रव्यसें, कथंचित् भेदाभेदरूप है. जब द्रव्यार्थिक नयके मतसें विचारिए, तब तो एक द्रव्य होनेसें एकही मूर्ति है. और जब पर्यायार्थिक नयके मतसें विचारिए, तब ज्ञान-दर्शनचारित्ररूप तीनों गुणोंके भिन्न २ होनेसें तीन रूप सिद्ध होते हैं. और स्याद्वादवादीके मतमें कथंचित् द्रव्यपर्यायके भेदाभेद होनेसें, एक-मूर्ति त्रयात्मक हैं. इस हेतुसें अर्हन्ही, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवके रूपके धारक हैं; अन्य नहीं ॥ ३३ ॥

पूर्वपक्ष:—जैसें आपने ज्ञानदर्शनचारित्रकी अपेक्षा, अर्हन्मूर्ति त्रयात्मक मानी हैं, तैसेंही, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवकी मूर्ति माननेमें क्या दोष है?

उत्तरपक्ष:—हे प्रियवर! ऐसी मानी जाय और पूर्वोक्त ज्ञानदर्शनचारित्र उनोंमें सिद्ध होवे, तब तो कोई भी दोष न आवे. अन्यथा वे-श्याका सतीके गुणोंसें वर्णन करनेसदृश है. क्योंकि, लौकिकमतवालोंने जैसें ब्रह्मा, विष्णु, महादेव माने हैं, तिनोंमें पुराणादि शास्त्रोंके लेखसें, पूर्वोक्त ज्ञान, दर्शन, चारित्रमेसें एक भी सिद्ध नहीं होता है. सोही हम लिख दिखाते हैं—यथा मत्स्यपुराणे तृतीयाध्याये ॥

सावित्रीं लोकसृष्ट्यर्थं हृदि कृत्वा समास्थितः ॥

ततः संजपतस्तस्य भित्त्वा देहमकल्मषम् ॥ ३० ॥

स्त्रीरूपमर्द्धमकरोदूर्द्धं पुरुषरूपवत् ॥

शतरूपा च साख्याता सावित्री च निगद्यते ॥ ३१ ॥

सरस्वत्यथ गायत्री ब्रह्माणी च परन्तप ॥

ततः स्वदेहसंभूतामात्मजामित्यकल्पयत् ॥ ३२ ॥

दृष्ट्वा तां व्यथितस्तावत्कामबाणार्दितो विभुः ॥

अहोरूपमहोरूपमिति चाह प्रजापतिः ॥ ३३ ॥

ततो वसिष्ठप्रमुखा भगिनीमिति चुक्रुशुः ॥

ब्रह्मा न किञ्चिद्दृष्टे तन्मुखा लोकनादते ॥ ३४ ॥

अहोरूपमहोरूपमिति प्राह पुनः पुनः ॥
 ततः प्रणामनम्रां तां पुनरेवाभ्यलोकयत् ॥ ३५ ॥
 अथ प्रदक्षिणं चक्रे सा पितुर्वरवर्णिनी ॥
 पुत्रेभ्यो लज्जितस्यास्य तद्रूपालोकेनेच्छया ॥ ३६ ॥
 आविर्भूतं ततो वक्रं दक्षिणं पाण्डु गण्डवत् ॥
 विस्मयस्फुरदोष्ठं च पाश्चात्यमुदगात्ततः ॥ ३७ ॥
 चतुर्थमभवत्पश्चाद्दामं कामशरातुरम् ॥
 ततोऽन्यदभवत्तस्य कामातुरतया तथा ॥ ३८ ॥
 उत्पतन्त्यास्तदाकारा आलोकनकुतूहलात् ॥
 सृष्ट्यर्थं यत्कृतं तेन तपः परमदारुणम् ॥ ३९ ॥
 तत्सर्वं नाशमगमत् स्वसुतोपगमेच्छया ॥
 तेनोर्ध्वं वक्रमभवत्पंचमं तस्य धीमतः
 आविर्भवजटाभिश्च तद्वक्रं चावृणोत्प्रभुः ॥ ४० ॥
 ततस्तानब्रवीद्ब्रह्मा पुत्रानात्मसमुद्भवान् ॥
 प्रजाः सृजध्वमभितः स देवासुरमानुषीः ॥ ४१ ॥
 एवमुक्तास्ततः सर्वे ससृजुर्विविधाः प्रजाः ॥
 गतेषु तेषु सृष्ट्यर्थं प्रणामावनतामिमाम् ॥ ४२ ॥
 उपयेमे स विश्वात्मा शतरूपामनिदिताम् ॥
 सम्बभूव तया सार्द्धमतिकामातुरो विभुः ॥
 सलज्जां चक्रे देवः कमलोदरमन्दिरे ॥ ४३ ॥
 यावदष्टशतं दिव्यं यथान्यः प्राकृतो जनः ॥
 ततः कालेन महता तस्याः पुत्रोऽभवन्मनुः ॥ ४४ ॥

भाषा—प्रथम ब्रह्माजी लोककी रचनाके निमित्त बड़ी सावधानीसें हृदयमें सावित्रीको धारण करके उसको जपते हुए पापरहित देहको भेदन करके

आधे शरीरको स्त्रीरूप और आधेको पुरुषरूप करते भये. इस सावित्रीको शतरूपा कहते हैं. और इसीको गायत्री और ब्रह्माणी भी कहते हैं. फिर वह ब्रह्माजी अपने देहसे उत्पन्न हुई उस स्त्रीको अपनी आत्मजा (पुत्री) मानने लगे. तदनंतर उसको देखकर कामदेवके बाणोंसे महापीडित हुए ब्रह्माजी आश्चर्यपूर्वक यह कहने लगे कि, अहो बड़ा आश्चर्य है कि, इसका कैसा सुंदर चित्तरोचक रूप है. फिर वसिष्ठादिक जो ब्रह्माके पुत्र थे, वह उसको अपनी बहन समझने और कहने लगे. और ब्रह्माजी सबको त्याग कर उसके मुखकीही ओर देखने लगे. अर्थात् उस नम्रमुखी सावित्रीके रूपको बारंवार देख कर कहने लगे कि, इसका रूप कैसा आश्चर्यकारी सुंदर है. इसके पीछे वह सुंदर रूपरंगवाली सरस्वती अपने पिताकी प्रदक्षिणा करती भई. उस समय पुत्रोंसे लजित होकर ब्रह्माजीका मुख उसके देखनेकी इच्छाकरके दाहिनी ओरसे पीला हो गया, और ओष्ठ भी फुरने लगे; तब तो आश्चर्य करनेसे अपने मुखको पीछे करलिया. इसके अनंतर कामदेवकी पीडासे युक्त होकर ब्रह्माजीका मुख महाकामातुरतासे उसके देखनेको आश्चर्यित होके शोभित हुआ. उस समयपरही सरस्वतीकेही समानरूपवाली एक दूसरी स्त्री उत्पन्न हो गई. और जो कि ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेकेलिये बड़ा दारुण तप किया था, वह ब्रह्माजीका किया हुआ तप अपनी पुत्रीके संबन्ध करनेकी इच्छा करनेसे नष्ट हो गया था, इस हेतुसे ब्रह्माजीके ऊपरकी ओर पांचवां मुख उत्पन्न होता भया. तब उस समर्थ ब्रह्माजीने उस पांचवें मुखको अपनी जटाओंसे ढककर अपने पूर्वोक्त पुत्रोंसे कहा कि, तुम देवता, राक्षस और मनुष्यादि सब प्रकारकी प्रजाको रचो. उनकी आज्ञा पातेही वह सब ब्रह्माके पुत्र अनेक प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि रचनेको चले गये. उनके चलेजानेके पीछे कामके बाणोंसे महापीडित ब्रह्माजी नम्रमुखी और अनिदित अपनी शतरूपानाम स्त्रीको ग्रहणकरके बड़ी लज्जासे युक्त होकर देवताओंके सो वर्षपर्यंत अन्य अज्ञानी मनुष्योंके समान उससे रमण करते भये—फिर बहुत कालपीछे उसको मनु नाम पुत्र हुआ—इत्यादि तथा अध्याय चौथे अध्यायमें लिखा है कि, ब्रह्माजी वेदकी

राशि है, और गायत्री उसकी अधिष्ठात्री है, इस हेतुसे गायत्रीके संग गमन करनेमें ब्रह्माजीको कुछ दोष नहीं है। ऐसा होनेपर भी पूर्वके प्रजापति ब्रह्माजी अपनी पुत्रीके साथ संगम करनेसे बड़े लज्जित हुए, और क्रोधसे कामदेवको यह शाप देते भये कि, जो तैने मेरा भी मन अपने बाणोंसे चलायमान कर दिया, इसहेतुसे शीघ्रही तेरे शरीरको—शिवजी भस्म करेंगे—इत्यादि—तथा च नवषष्टितमेऽध्याये ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः ॥
सदाचारस्य भगवन् धर्मशास्त्रविनिश्चयः ॥
पुण्यस्त्रीणां सदाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥१॥

॥ ईश्वर उवाच ॥

तस्मिन्नेव युगे ब्रह्मन् सहस्राणि तु षोडश ॥
वासुदेवस्य नारीणां भविष्यन्त्यम्बुजोद्भव ॥ २ ॥
ताभिर्वसन्तसमये कोकिलालिकुलाकुले ॥
पुष्पिते पवनोत्फुल्लकह्लारसरसस्तटे ॥ ३ ॥
निर्भरापानगोष्ठीषु प्रसक्ताभिरलंकृतः ॥
कुरंगनयनः श्रीमान् मालतीकृतशेखरः ॥ ४ ॥
गच्छन् समीपमार्गेण सांबः परपुरंजयः ॥
साक्षात्कन्दर्परूपेण सर्वाभरणभूषितः ॥ ५ ॥
अनंगशरतप्ताभिः साभिलाषमवोक्षितः ॥
प्रवृद्धो मन्मथस्तासां भविष्यति यदात्मनि ॥ ६ ॥
तदावेक्ष्य जगन्नाथः सर्वतो ध्यानचक्षुषा ॥
शापं वक्ष्यति ताः सर्वा वो हरिष्यन्ति दस्यवः ॥
मत्परोक्षं यतः कामलौल्यादीदृग्विधं कृतम् ॥७॥

ततः प्रसादितो देव इदं वक्ष्यति शार्ङ्गभृत् ॥
 ताभिः शापाभितप्ताभिर्भगवान् भूतभावनः ॥८॥
 उत्तारभूतं दासत्वं समुद्राद्ब्राह्मणप्रियः ॥
 उपदेक्ष्यत्यनन्तात्मा भाविकल्याणकारकम् ॥ ९ ॥
 भवतीनामृषिर्दाल्भ्यो यद्व्रतं कथयिष्यति ॥
 तदेवोत्तारणायालं दासत्वेऽपि भविष्यति ॥
 इत्युक्त्वा ताः परिष्वज्य गतो द्वारवतीश्वरः ॥ १० ॥
 ततः कालेन महता भारावतरणे कृते ॥
 निवृत्ते मौसले तद्वत् केशवे दिवमागते ॥ ११ ॥
 शून्ये यदुकुले सर्वैश्चौरैरपि जितेऽर्जुने ॥
 हतासु कृष्णपत्नीषु दासभोग्यासु चाम्बुधौ ॥ १२ ॥
 तिष्ठन्तीषु च दौर्गत्यसंतप्तासु चतुर्मुखः ॥
 आगमिष्यति योगात्मा दाल्भ्यो नाम महातपाः ॥ १३ ॥
 तास्तमर्घेण संपूज्य प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥
 लालप्यमाना बहुशो बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥ १४ ॥
 स्मरन्त्यो विपुलान् भोगान् दिव्यमाल्यानुलेपनम् ॥
 भर्तारं जगतामीशमनन्तमपराजितम् ॥ १५ ॥
 दिव्यभावान् तां च पुरीं नानारत्नगृहाणि च ॥
 द्वारकावासिनः सर्वान् देवरूपान् कुमारकान् ॥
 प्रश्नमेवं करिष्यन्ति मुनेरभिमुखं स्थिताः ॥ १६ ॥

॥ स्त्रिय ऊचुः ॥

दस्युभिर्भगवन् सर्वाः परिभुक्ता वयं बलात् ॥
 स्वधर्माच्च्यवतेऽस्माकमस्मिन् वः शरणं भव ॥ १७ ॥
 आदिष्टोऽसि पुरा ब्रह्मन् केशवेन च धीमता ॥

कस्मादीशेन संयोगं प्राप्य वेश्यात्वमागताः ॥ १८ ॥
 वेश्यानामपि यो धर्मस्तन्नो ब्रूहि तपोधन ॥
 कथयिष्यत्यतस्तासां स दाल्भ्यश्चैकितायनः ॥ १९ ॥

॥ दाल्भ्य उवाच ॥

जलक्रीडा विहारेषु पुरा सरसिमानसे ॥
 भवतीनां च सवासां नारदोभ्यासमागतः ॥ २० ॥
 हुताशनसुता सर्वा भवन्त्योऽप्सरसः पुरा ॥
 अप्रणम्यावलेपेन परिपृष्टः स योगवित् ॥
 कथं नारायणोऽस्माकं भर्ता स्यादित्युपादिश ॥ २१ ॥
 तस्माद्वरप्रदानं वः शापश्चायमभूत्पुरा ॥
 शय्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासयोः ॥ २२ ॥
 सुवर्णोपस्करोत्सर्गाद्द्वादश्यां शुक्लपक्षतः ॥
 भर्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि ॥ २३ ॥
 यदकृत्वा प्रणामं मे रूपसौभाग्यमत्सरात् ॥
 परिपृष्टोऽस्मि तेनाशु वियोगो वा भविष्यति ॥
 चौरैरपहताः सर्वा वेश्यात्वं समवाप्स्यथ ॥ २४ ॥
 एवं नारदशापेन केशवस्य च धीमतः ॥
 वेश्यात्वमागताः सर्वा भवन्त्यः काममोहिताः ॥
 इदानीमपि यद्वक्ष्ये तच्छृणुध्वं वरांगनाः ॥ २५ ॥

भाषा—ब्रह्माजी बोले, हे शिवजी ! मैंने पुराणोंमें वर्णआश्रमोंकी उत्प-
 त्ति और धर्मशास्त्रका निश्चय सुना है. अब उत्तम स्त्रियाओंके सदाचारको
 सुनना चाहता हूं. शिवजी बोले, हे ब्रह्माजी ! इसी द्वापरयुगमें श्री-
 कृष्णके सोलह हजार स्त्रियां होंगी तब एक समय वसंतऋतुमें कोकिला-
 भ्रमरादिकोंसे कूजित, खिलेहुए कमलोंसे शोभित सरोवरोंवाले पुष्पित-
 वनमें एकांत स्थानोंके सरोवरोंके तटोंपै विराजमान हुई वह स्त्रियां अपने

समीपमें मृगकेसों नेत्र, चमेलीके सुगंधित पुष्पोंको धारण किये उत्तम आभूषणोंसे शोभित, साक्षात् मानों कामदेवही रूपको धारण किये चले आते हुए श्रीमान् सांबको देख कर, कामदेवके बाणोंसे पीडित हो कर, भोगकी इच्छासें उसको देखेगी, तब उनके चित्तमें कामकी वृद्धि होवेगी. उस वार्त्ताको अंतर्यामी श्रीकृष्णजी जान कर उन सब स्त्रियोंको यह शाप देंगे कि, जो तुमने मेरे पीछे ऐसी कामदेवकी चंचलता करी है इस हेतुसे तुम सबको चोर हरेंगे. फिर इस शापसें दुःखित हो कर वह स्त्रियां श्रीकृष्णको प्रसन्न करेगी. उस समय श्रीकृष्णजी उनके दासपनेका शाप दूर करनेवाले, और आगे होनेवाले मनुष्योंके कल्याण करनेवाले इस व्रतको कहेंगे कि, हे स्त्रियों! तुम्हारे आगे जो दाल्भ्यऋषि व्रत कहेंगे वही व्रत तुम्हारे दासभावको दूर करेगा. ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी उन स्त्रियोंसें मेलमिलाप करके चले जायेंगे. अर्थात् बहुत काल व्यतीत हो जानेपर पृथ्वीका भार उतारनेके पीछे श्रीकृष्णचंद्रजी परमधामको चले-जायेंगे. इनके चले जानेके पीछे जब मुसलयुद्ध होकर यादव नष्ट हो-जायेंगे, उस समय अर्जुनकी रक्षित की हुई कृष्णकी स्त्रियांओंको अर्जुनके समीपसें शूद्रलोक छीन कर समुद्रपार ले जाकर भोग करेंगे. वहां उनके पास महातपस्वी योगात्मा दाल्भ्यऋषि आवेंगे. तब वह स्त्रियांओं उन ऋषिको अर्घदानसें पूजन कर प्रणाम करके अश्रुओंसे व्याकुल अनेक भोग दिव्यमाला पुष्पचंदनादिकोंको स्मरण करती हुई जगतोंके पति अपने भर्ताका, अनेक प्रकारके रत्नोंसे युक्त द्वारकापुरीका, अपने उत्तम २ स्थानोंका, देवताओंके समान रूपवाले द्वारकावासियोंका और अपने पुत्रभ्राताआदि सुहृदोंका स्मरण करती हुई दाल्भ्यमुनिके समीप सन्मुख खड़ी होके यह प्रश्न करेंगी कि, हे भगवन्! हम सबोंको चोरधाडियोंने बलकर छीन लिया, और घरोंपर ले जाकर भोग किया. अब हम अपने धर्मसें हीन हो गई हैं; सो आपके शरण हैं. हे महात्मन्! प्रथम श्रीकृष्णजीके दिये हुए शापसे हम वेद्याभावको प्राप्त हो गई हैं. हमारे उपदेशकर्त्ता आपही नियत किये गये हैं, हे तपोधन! आप कृपा करके वेद्याओंका धर्म वर्णन कीजिये—इसप्रकारसे पूछे हुए दाल्भ्यऋषि उन-स्त्रियोंसे वेद्याओंके

धर्म कहेंगे कि, हे स्त्रियो! पूर्वकालमें तुम सब किसी समय मानससरो-
वरमें क्रीडा कर रही थीं, उस समय तुम्हारे समीप नारद मुनि आगये थे,
उस कालमें तुम अग्निकी पुत्री अप्सरारूप थीं, उस समय तुमने नारद-
जीको प्रणाम नहीं किया था, और विना प्रणाम कियेही तुमने उस
योगीसे यह प्रश्न किया था कि, हे मुने! हमको जगन्नाथ श्रीकृष्ण भर्त्ता
कैसे प्राप्त होय उसको कहिये. उस समय तुमको नारद मुनिने श्रीकृ-
ष्णजीके मिलनेका वर दिया था, और प्रणाम नहीं करनेसे शाप भी दि-
या था, अर्थात् यह कहा था कि चैत्रवैशाख इन दोनों महीनोंकी शुक्ल पक्षकी
द्वादशीके दिन दो शय्यादान और सुवर्णका दान करनेसे दूसरे जन्ममें
तुम्हारा निश्चयकरके नारायण पति होगा, और जो कि, तुमने अपने
रूप और सौभाग्यके अभिमानसे मुझको प्रणाम विना कियेही प्रथम प्रश्न
किया है इस हेतुसे तुम्हारा इस प्रकारसे वियोग भी होगा कि, तुम चोरोसे
हरी जाओगीं, और वेद्याभावको प्राप्त हो जाओगीं. इसीसे तुम सब नार-
दजीके और श्रीकृष्णजीके शापसे कामसे मोहित होकर वेद्यापनेको
प्राप्त होगई हो ॥ इत्यादि—

॥ पुनरपि मत्स्यपुराणे ॥

ज्वलत्फणिफणारत्नदीपोद्योतितभित्तिके ॥
शयनं शशिसंघातशुभ्रवस्त्रोत्तरच्छदम् ॥ ५८६ ॥
नानारत्नद्युतिलसच्छक्रचापविडम्बकम् ॥
रत्नकिङ्किणिकाजालं लम्बमुक्ताकलापकम् ॥ ५८७ ॥
कमनीयचलल्लोलवितानाच्छादिताम्बरम् ॥
मन्दिरे मन्दसंचारः शनैर्गिरिसुतायुतः ॥ ५८८ ॥
तस्थौ गिरिसुताबाहुलतामीलितकन्धरः ॥
शशिमौलिसितजोत्स्नाशुचिपूरितगोचरः ॥ ५८९ ॥
गिरिजाप्यसितापाङ्गी नीलोत्पलदलच्छविः ॥

विभावयां च संपृक्ता बभूवातितमोमयी ॥

तामुवाच ततो देवः क्रीडाकेलिकलायुतम् ॥ ५९० ॥

इति श्री मत्स्यपुराणे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

भाषा—फिर प्रकाशित हुए रत्नोंकी भीतोंवाले स्थानमें चंद्रमाके समान श्वेत वस्त्रसें शोभित हुई अनेक प्रकारके रत्नोंकी किंकिणी और मोतियोंकी जालीसे जडी हुई कांतिवाली सुंदर चांदनी जिसके ऊपर तनी हुई ऐसी उत्तम शय्यापर शिवजी महाराज पार्वतीको साथ लेके शयन करते भये, जब पार्वतीकी भुजाओंमें अपनी ग्रीवा लगाकर शयन करते भये, तब शिवजीकी श्वेत कांति अत्यंत सुंदर लगती भई, और नीले कमलके समान कांतिवाली पार्वती भी रात्रिके अंधकारमें अतिकाली विदित होती भई. उस समय शिवजी पार्वतीसे हास्यके वचन बोले. ॥ इति श्रीमत्स्यपुराणभाषाटीकायां त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

॥ शर्व उवाच ॥

शरीरे मम तन्वङ्गि ! सिते भास्यसितद्युतिः ॥

भुजङ्गीवासिताऽशुद्धा संश्लिष्टा चन्दने तरौ ॥ १ ॥

चन्द्रातपेन संपृक्ता रुचिराम्बरया तथा ॥

रजनीवासिते पक्षे दृष्टिदोषं ददासि मे ॥ २ ॥

इत्युक्ता गिरिजा तेन मुक्तकण्ठा पिनाकिना ॥

उवाच कोपरक्ताक्षी भ्रुकुटीकुटिलानना ॥ ३ ॥

॥ देव्युवाच ॥

स्वकृतेन जनः सर्वो जाड्येन परिभूयते ॥

अवश्यमर्थात् प्राप्नोति खण्डनं शशिमण्डलम् ॥ ४ ॥

तपोभिर्दीर्घचरितैर्यच्च प्रार्थितवत्यहम् ॥

तस्या मे नियतस्त्वेष ह्यवमानः पदेपदे ॥ ५ ॥

नैवास्मि कुटिला शर्व ! विषमा नैव धूर्जटे ! ॥
 सविषस्त्वं गतः स्याति व्यक्तं दोषाकराश्रयात् ॥ ६ ॥
 नाहं पूष्णोपि दशना नेत्रे चास्मि भगस्य हि ॥
 आदित्यश्च विजानाति भगवान् द्वादशात्मकः ॥ ७ ॥
 मूर्ध्नि शूलं जनयसि स्वैर्दोषैर्मामधिक्षिपन् ॥
 यस्त्वं मामाह कृष्णेति महाकालेति विश्रुतः ॥ ८ ॥
 यास्याम्यहं परित्यक्ता चात्मानं तपसा गिरिम् ॥
 जीवन्त्या नास्ति मे कृत्यं धूर्तेन परिभूतया ॥ ९ ॥
 निशम्य तस्या वचनं कोपतीक्ष्णाक्षरं भवः ॥
 उवाचाधिकसंभ्रान्तः प्रणयेनेन्दुमौलिना ॥ १० ॥

॥ शर्व उवाच ॥

अगात्मजासि गिरिजे ! नाहं निन्दापरस्तव ॥
 त्वद्भक्तिबुद्ध्या कृतवांस्तवाहं नामसंश्रयम् ॥ ११ ॥
 विकल्पः स्वस्थचित्तेपि गिरिजे ! नैव कल्पना ॥
 यद्येवं कुपिता भीरु ! त्वं तवाहं न वै पुनः ॥ १२ ॥
 नर्मवादी भविष्यामि जहि कोपं शुचिस्मिते ॥
 शिरसा प्रणतश्चाहं रचितस्ते मयाऽञ्जलिः ॥ १३ ॥
 स्नेहेनाप्यवमानेन निन्दितेनैति विक्रियाम् ॥
 तस्मान्न जातु रुष्टस्य नर्मस्पृष्टो जनः किल ॥ १४ ॥
 अनेकैः स्वादुभिर्देवी देवेन प्रतिबोधिता ॥
 कोपं तीव्रं न तत्याज सती मर्मणि घटिता ॥ १५ ॥
 अवष्टब्धमथारूफाल्य वासः शंकरपाणिना ॥
 विपर्यस्तालका वेगाद्यातुमैच्छत शैलजा ॥ १६ ॥

तस्या ब्रजन्त्याः कोपेन पुनराह पुरान्तकः ॥
 सत्यं सर्वैरवयवैः सुतासि सदृशी पितुः ॥ १७ ॥
 हिमाचलस्य शृङ्गैस्तैर्मैघजालाकुलैर्नभः ॥
 तथा दुरवगाहोभ्यो हृदयेभ्यस्तवाशयः ॥ १८ ॥
 काठिन्यांकस्त्वमस्मभ्यं वनेभ्यो बहुधा गता ॥
 कुटिलत्वं च वर्त्मभ्यो दुःसेव्यत्वं हिमादपि ॥ १९ ॥
 संक्रान्तिं सर्वदेवेति तन्वाङ्कि! हिमशैलराट् ॥
 इत्युक्ता सा पुनः प्राह गिरिशं शैलजा तदा ॥ २० ॥
 कोपकम्पितमूर्द्धा च प्रस्फुरद्दशनच्छदा ॥

॥ उमोवाच ॥

मा सर्वान् दोषदानेन निन्दान्यान् गुणिनो जनान् ॥ २१ ॥
 तवापि दुष्टसंपर्कात् संक्रान्तं सर्वमेव हि ॥
 व्यालेभ्योऽधिकजिह्वात्वं भस्मना स्नेहबन्धनम् ॥ २२ ॥
 हत्कालुष्यं शशाङ्कात्तु दुर्बोधित्वं वृषादपि ॥
 तथा बहु किमुक्तेन अलं वाचा श्रमेण ते ॥ २३ ॥
 श्मशानवासान्निभीत्वं नम्रत्वान्न तव त्रपा ॥
 निर्घृणत्वं कपालित्वाद्दया ते विगता चिरम् ॥ २४ ॥
 इत्युक्त्वा मन्दिरात्तस्मान्निर्जगाम हिमाद्रिजा ॥
 तस्यां ब्रजन्त्यां देवेशगणैः किलकिलो ध्वनिः ॥ २५ ॥
 क्व मातर्गच्छसि त्यक्त्वा रुदन्तो धाविताः पुनः ॥
 विष्टभ्य चरणौ देव्या वीरको बाष्पगद्गदम् ॥ २६ ॥
 प्रोवाच मातः! किं त्वेतत् क्व यासि कुपितान्तरा ॥
 अहं त्वामनुयास्यामि ब्रजन्तीं स्नेहवर्जिताम् ॥ २७ ॥

सोहं पतिष्ये शिखरात्तपोनिष्ठे त्वयोज्झितः ॥
 उन्नाम्य वदनं देवी दक्षिणेन तु पाणिना ॥ २८ ॥
 उवाच वीरकं माता मा शोकं पुत्र! भावय ॥
 शैलाग्रात्पतितुं नैव न चागन्तुं मया सह ॥ २९ ॥
 युक्तं ते पुत्र वक्ष्यामि येन कार्येण तच्छृणु ॥
 कृष्णेत्युक्ता हरेणाहं निन्दिता चाप्यनिन्दिता ॥ ३० ॥
 साहं तपः करिष्यामि येन गौरीत्वमाप्नुयाम् ॥
 एष स्त्रीलम्पटो देवो यातायां मय्यनन्तरम् ॥ ३१ ॥
 द्वाररक्षा त्वया कार्या नित्यं रन्ध्रान्ववेक्षिणा ॥
 यथा न काचित् प्रविशेद्योषिदत्र हरान्तिकम् ॥ ३२ ॥
 दृष्ट्वा परस्त्रियश्चात्र वदेथा मम पुत्रक! ॥
 शीघ्रमेव करिष्यामि यथायुक्तमनन्तरम् ॥ ३३ ॥
 एवमस्त्विति देवीं स वीरकः प्राह सांप्रतम् ॥
 मातुराज्ञामृतहृदे ह्लाविताङ्गो गतज्वरः ॥ ३४ ॥
 जगाम कक्ष्यां संद्रष्टुं प्रणिपत्य च मातरम् ॥ ३५ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

भाषा—शिवजी कहते हैं कि, हे तन्वंगि ! मेरे शरीरमें श्वेत कांति झलक रही है, और तू ऐसे मुझसे लिपट रही है जैसे कि चंदनके वृक्षमें सर्पिणी लिपट रही हो, चंद्रमाकी किरणोंके समान सुंदर वस्त्रोंसे युक्त हुई ऐसी विदित होती हुई जैसे कि कृष्ण पक्षमें रात्रि दिखाई देती है, ऐसे कही हुई पार्वती शिवजीके कंठको छोड़कर क्रोधसे लाल नेत्र कर भुकुटी चढाकर बोली कि, अपने ही अवगुणोंसे सब लोगोंका तिरस्कार होता है, प्रयोजन होनेसे चंद्रमाका मंडल भी ग्रहणके समयमें अवश्य खंडित हो जाता है, बहुतसी तपस्याओंसे जो मैंने तुझारी प्रार्थना करी तो, उसका मुझको

यह फल प्राप्त हुआ कि, पद २ में मेरा तिरस्कार होता है. हे शिवजी! मैं, विषम और कुटिल नहीं हूं. हे धूर्जटे! दोषोंके सेवन करनेवालेके आश्रय होकर मुझमें विष उत्पन्न हो गया है. हे शिव! मैं पूषाके दांत नहीं हूं. इंद्र नहीं हूं. मुझको सूर्य भगवान् देखता है. मेरा तिरस्कार करनेवाला पुरुष अपने दोषोंकरके अपनेही मस्तकमें शूल चुभोता है. जो तुम मुझको कृष्णा और महाकाली यह जो कहते हो, इसलिये मैं अपने आत्माको त्यागकर पर्वतमें तप करने जाती हूं. धूर्तके साथ लगकर मुझ जीवती हुईका क्या प्रयोजन है ?

पार्वतीके ऐसे वचनोंको सुनकर शिवजी संभ्रमको प्राप्त होकर बड़ी विनयसे यह वचन बोले. हे पार्वती! तू मेरी प्यारी है, मैंने तेरी निंदा नहीं करी है, मैंने तो तेरी बुद्धि जानकर कृष्णा, कालिका यह तेरे नाम निकाले हैं. हे गिरिजे! स्वस्थचित्तवालोंके विकल्प नहीं होता है, हे भीरु! जो तू ऐसी कुपित होती है तो, तेरा हास्य मैं फिर अब कभी न करूंगा. अब तो कोपको दूर कर. हे सुंदरहास्यवाली! मैं तुजको शिरसे प्रणाम करता हूं, और सूर्यकी ओर हाथ जोड़ता हूं. स्नेहसे, अपमानसे, अथवा निंदा करनेसे जो रुस जाता है उसके साथ हास्य कभी न करना चाहिये. इस प्रकारके अनेक विनयके वचनोंसे शिवजीने पार्वतीको समझाया, परंतु मर्ममें भिंदी हुई पार्वती अपने महाक्रोधको नहीं त्यागती भई. शिवजीके हाथसे अपने वस्त्रको छुटाकर शीघ्रही गमन करनेकी तैयारी करती भई. तब उसके गमनहीके विचारको देखकर शिवजी क्रोधपूर्वक फिर बोले कि, सत्य है ! तू सबप्रकारसे अपने पिताकेही समान है.

हिमाचलके शिखरोंपर जैसे मेघोंसे व्याकुल हुआ आकाश दुर्लभ हो जाता है, इसीप्रकार तेरा भी हृदय कठिन है. तू ऐसी कठिण है तभी तो हमको छोड़कर वनोंमें जाती है. पर्वतमें जैसे कि भयंकर मार्ग रहते हैं उनसे भी तू कुटिल है. और तेरा सेवन करना हिमाचलसे भी कठिन है, ऐसे कही हुई पार्वती क्रोधकरके मस्तकको कंपाकर और दांतोंको चबाकर फिर बोली कि, आप अन्य गुणी लोगोंको दोष लगाकर उनकी निंदा मत करो.

आपकेभी दुष्टोंके संपर्कसे सब दोष है, तुम सर्पसे भी कठिन हो, भस्मके समान स्नेह नहीं करते, चंद्रमाके कलंकसे भी बुरा तुम्हारा हृदय है, इस वृषभसे भी कम निर्बुद्धि हो, इससे अधिक बकझक करनेसे क्या प्रयोजन है? श्मशानमें वास करनेसे तुम भय नहीं करते, नंगे रहनेसे तुमको लज्जा नहीं है, कपाल धारण करनेसे तुम्हारी दया चली गई है, ऐसा कहकर पार्वती उस स्थानसे चलती भई. तब चलनेके समय शिवके गणोंका किलकिल शब्द हुआ. वीरभद्र रोककर उसदेवीके संग भाग २ कर यह कहने लगा कि, हे माता ! तू मुझको छोड़कर कहां जाती है, ऐसे कहकर पैरोंमें लौट गया, और कहने लगा कि, मैं स्नेहको त्यागकर तुझ-जानेवालीके संग चलूंगा, और जिस पर्वतमें तू तप करेगी वहांसे तुझसे त्यागा हुआ मैं पर्वतके शिखरपर चढ़कर गिरूंगा. जब उसने ऐसी बातें कही तब पार्वती दक्षिण हाथसे उसके मुखको प्यार करके बोली हे पुत्र ! तू शोच मत कर, पर्वतसे नहीं गिरना चाहिये, और मेरेसाथ भी तुझको नहीं चलना चाहिये. हे पुत्र ! तेरे करनेके योग्य कामको मैं बताती हूं, सो तू सुन. शिवजीने मुझको कृष्णा बताकर मेरी बड़ी निंदा करी है, सो मैं ऐसा तप करूंगी जिसे कि गौरवर्ण हो जाऊं. यह शिवजी स्त्रीके लालची हैं. जब मैं चली जाऊं उस समय तू इस स्थानके द्वारपर रक्षा करियो कि, कोई अन्य स्त्री इनकेपास न आने पावे. हे पुत्र ! जो अन्य-कोई स्त्री इनके समीप आती हुई देखे तो, अवश्य मुझसे कह दीजो, मैं झीघ्रही उसका प्रबंध करदूंगी. यह बात सुनकर वीरभद्र बोला कि, ऐसाही करूंगा. यह कहकर माताकी आज्ञा रूप अमृत हृदमें स्नान करनेसे आनंदयुक्त होता भया. और अपनी माताको प्रणाम करके पर्वतकी कक्षामें चला जाता भया.

इति श्रीमत्स्यपुराणे भाषाटीकायां चतुःपंचाशदधिकशततमोऽध्यायः १५४

॥ सूत उवाच ॥

देवीं सापश्यदायान्तीं सतीं मातुर्विभूषिताम् ॥

कुसुमामोदिनीं नाम तस्य शैलस्य देवताम् ॥ १ ॥

सापि दृष्ट्वा गिरिसुतां स्नेहविह्वलमानसा ॥
 क पुत्रि ! गच्छसीत्युच्चैरालिङ्ग्योवाच देवता ॥ २ ॥
 सा चास्यै सर्वमाचख्यौ शंकरात्कोपकारणम् ॥
 पुनश्चोवाच गिरिजा देवतां मातृसम्मताम् ॥ ३ ॥

॥ उमोवाच ॥

नित्यं शैलाधिराजस्य देवता त्वमनिन्दिते ! ॥
 सर्वतः सन्निधानं ते मम चातीव वत्सला ॥ ४ ॥
 अतस्तु ते प्रवक्ष्यामि यद्विधेयं तदा धिया ॥
 अन्यस्त्रीसंप्रवेशस्तु त्वया रक्ष्यः प्रयत्नतः ॥ ५ ॥
 रहस्यत्र प्रयत्नेन चेतसा सततं गिरौ ॥
 पिनाकिनः प्रविष्टायां वक्तव्यं मे त्वयानघे ! ॥ ६ ॥
 ततोहं संविधास्यामि यत्कृत्यं तदनन्तरम् ॥
 इत्युक्ता सा तथेत्युक्त्वा जगाम स्वगिरिं शुभम् ॥ ७ ॥
 उमापि पितुरुद्यानं जगामाद्रिसुता द्रुतम् ॥
 अन्तरिक्षं समाविश्य मेघमालामिव प्रभा ॥ ८ ॥
 ततो विभूषणान्यस्य वृक्षवल्कलधारिणी ॥
 ग्रीष्मे पञ्चाग्निसंतप्ता वर्षासु च जलोपिता ॥ ९ ॥
 वन्याहारा निराहारा शुष्का स्थण्डिलशायिनी ॥
 एवं साधयती तत्र तपसा संव्यवस्थिता ॥ १० ॥
 ज्ञात्वा तु तां गिरिसुतां दैत्यस्तत्रान्तरे वशी ॥
 अन्धकस्य सुतो दृप्तः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ ११ ॥
 देवान् सर्वान् विजित्याजौ वृकत्राता रणोत्कटः ॥
 आङ्निर्मान्तरप्रेक्षी सततं चन्द्रमौलिनः ॥ १२ ॥

आजगामामररिपुः पुरं त्रिपुरघातिनः ॥
 स तत्रागत्य ददृशे वीरकं द्वार्यवस्थितम् ॥ १३ ॥
 विचिन्त्यासीद्वरं दत्तं स पुरा पद्मजन्मना ॥
 हते तदान्धके दैत्ये गिरीशेनामरद्विषि ॥ १४ ॥
 आडिश्चकार विपुलं तपः परमदारुणम् ॥
 तमागत्याब्रवीद्ब्रह्मा तपसा परितोषितः ॥ १५ ॥
 किमाडे ! दानवश्रेष्ठ ! तपसा प्राप्तुमिच्छसि ॥
 ब्रह्माणमाह दैत्यस्तु निर्मृत्युत्वमहं वृणे ॥ १६ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

न कश्चिच्च विना मृत्युं नरो दानव ! विद्यते ॥
 यतस्ततोपि दैत्येन्द्र ! मृत्युः प्राप्यः शरीरिणा ॥ १७ ॥
 इत्युक्तो दैत्यसिंहस्तु प्रोवाचाम्बुजसंभवम् ॥
 रूपस्य परिवर्तो मे यदा स्यात्पद्मसंभव ! ॥ १८ ॥
 तदा मृत्युर्मम भवेदन्यथा त्वमरो ह्यहम् ॥
 इत्युक्तस्तु तदोवाच तुष्टः कमलसंभवः ॥ १९ ॥
 यदा द्वितीयो रूपस्य विवर्तस्ते भविष्यति ॥
 तदा ते भविता मृत्युरन्यथा न भविष्यति ॥ २० ॥
 इत्युक्तोऽमरतां मेने दैत्यसूनुर्महाबलः ॥
 तस्मिन् काले त्वसंस्मृत्य तद्बधोपायमात्मनः ॥ २१ ॥
 परिहर्तुं दृष्टिपथं वीरकस्याभवत्तदा ॥
 भुजङ्गरूपी रन्ध्रेण प्रविवेश दृशः पथम् ॥ २२ ॥
 रहित्य गणेशस्य दानवोऽसौ सुदुर्जयः ॥
 लक्षितो गणेशेन प्रविष्टोऽथ पुरान्तकम् ॥ २३ ॥

भुजङ्गरूपं संत्यज्य बभूवाथ महासुरः ॥
 उमारूपी छलयितुं गिरिशं मूढचेतनः ॥ २४ ॥
 कृत्वा मायां ततो रूपमप्रतर्क्यमनोहरम् ॥
 सर्वावयवसंपूर्णं सर्वाभिज्ञानसंवृतम् ॥ २५ ॥
 कृत्वा मुखान्तरे दन्तान् दैत्यो वज्रोपमान् दृढान् ॥
 तीक्ष्णाग्रान् बुद्धिमोहेन गिरिशं हन्तुमुद्यतः ॥ २६ ॥
 कृत्वोमारूपसंस्थानं गतो दैत्यो हरान्तिकम् ॥
 पापो रम्याकृतिश्चित्रभूषणाम्बरभूषितः ॥ २७ ॥
 तं दृष्ट्वा गिरिशस्तुष्टस्तदालिङ्ग्य महासुरम् ॥
 मन्यमानो गिरिसुतां सर्वैरवयवान्तरैः ॥ २८ ॥
 अष्टच्छत् साधु ते भावो गिरिपुत्रि ! न कृत्रिमः ॥
 या त्वं मदाशयं ज्ञात्वा प्राप्तेह वरवर्णिनि ! ॥ २९ ॥
 त्वया विरहितं शून्यं मन्यमानो जगत्त्रयम् ॥
 प्राप्ता प्रसन्नवदना युक्तमेवंविधं त्वयि ॥ ३० ॥
 इत्युक्तो दानवेन्द्रस्तु तदाभाषत् स्मयञ्छनैः ॥
 न चाबुध्यदभिज्ञानं प्रायस्त्रिपुरघातिनः ॥ ३१ ॥

॥ देव्युवाच ॥

यातास्म्यहं तपश्चर्तुं वलभ्यायतवातुलम् ॥
 रतिश्च तत्र मे नाभूत्ततः प्राप्ता त्वदन्तिकम् ॥ ३२ ॥
 इत्युक्तः शंकरः शङ्कां कांचित् प्राप्यावधारयत् ॥
 हृदयेन समाधाय देवः प्रहसिताननः ॥ ३३ ॥
 कुपिता मयि तन्वङ्गी प्रकृत्या च दृढव्रता ॥
 अप्राप्तकामा संप्राप्ता किमेतत् संशयो मम ॥ ३४ ॥

इति चिन्त्य हरस्तस्य अभिज्ञानं विधारयन् ॥
 नापश्यद्दामपार्श्वे तु तदङ्गे पद्मलक्षणम् ॥ ३५ ॥
 लोमावर्तं तु रचितं ततो देवः पिनाकधृक् ॥
 अबुध्यद्दानवीं मायामाकारं गूह्यंस्ततः ॥ ३६ ॥
 मेद्रे वज्रास्त्रमादाय दानवं तमशातयत् ॥
 अबुध्यद्दीरको नैव दानवेन्द्रं निषूदितम् ॥ ३७ ॥
 हरेण सूदितं दृष्ट्वा स्त्रीरूपं दानवेश्वरम् ॥
 अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था शैलपुत्र्यै न्यवेदयत् ॥ ३८ ॥
 दूतेन मारुतेनाशुगामिना नगदेवता ॥
 श्रुत्वा वायुमुखाद्देवी क्रोधरक्तविलोचना ॥
 अशपद्दीरकं पुत्रं हृदयेन विदूयता ॥ ३९ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

भाषा—सूतजी बोले इसके अनंतर वह पार्वती कुसुमामोदिनीनाम-
 वाली उस पर्वतकी देवता सतीको सन्मुख आती हुई देखती भई, वह
 सती देवता भी पार्वतीको देखकर स्नेहपूर्वक बोली कि, हे पुत्री! तू कहां
 जाती है, तब पार्वती उस अपने शिवजीके प्रभावसे उत्पन्न हुए अपने
 क्रोधरूप कारणको कहती भई, और अपनी माताकेही समान उस सतीको
 मानकर यह वचन बोली. हे अनिन्दिते! तू इस पर्वतकी देवता है, सदैव
 यहां रहती है, और मेरी बड़ी प्यारी है, इस हेतुसे मैं तेरे आगे जो
 कहती हूं वह तुझको करना चाहिये. इस पर्वतमें जो अन्य कोई स्त्री
 आवे, अथवा शिवजी एकांतमें किसी अन्य स्त्रीसे बतरावें तो, तू मुझको
 अवश्य खबर दीजो, उसकेपीछे मैं प्रबंध करलूंगी. ऐसा कहकर पार्वती
 अपने हिमालय पर्वतमें जाती भई. पार्वती अपने पिताके बगीचेमें ऐसे
 जाती भई जैसे कि, आकाशमें मेघमाला चली जाती है, ऐसे प्रकारसे
 आकाशमार्ग होकर उसने गमन किया, और वहां जाकर वृक्षोंके वल्कल

शरीरपर धारण किये, ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्नि तपी, वर्षाऋतुमें जलमें निवास किया, कभी वनके फलोंका आहार किया, कभी निराहार रही, और पृथ्वीपर शयन किया, ऐसे प्रकारोंसे तपस्या करती भई. इसपीछे अंधक दैत्यका पुत्र उस पार्वतीको जानकर अपने पिताके बंधका स्मरण कर बदला लेनेका उपाय करता भया, वह अंधकका पुत्र आडि नाम दैत्य रणमें देवताओंको जीतकर शिवजीके समीप आता भया. वहां आकर द्वार-पर खड़े हुए वीरभद्रको देख प्रथम ब्रह्माजीके दिये हुए वरका चिंतन कर वहां बहुतसा तप करता भया. तब तपसे प्रसन्न हुए ब्रह्माजी उस आडि दैत्यके समीप आकर बोले कि, हे दानव ! इस तपकरके तू किस बातकी इच्छा करता है, यह सुनकर वह दैत्य बोला कि, मैं कभी न मरूं यह वर मांगता हूं. ब्रह्माजीने कहा, हे दानव ! मृत्युके विना तो कोई भी नहीं है, इस हेतुसे तू किसी कारणसे अपनी मृत्युको मांग ले, यह सुनकर वह दानव ब्रह्माजीसे बोला कि, जब मेरा रूप बदल जावे, तभी मेरी मृत्यु हो, अन्यथा अमर ही रहूं. यह सुन ब्रह्माजी प्रसन्न होकर बोले कि, जब तेरा दूसरा रूप बदलेगा उसी समय तेरी मृत्यु होगी. यह वर पाकर वह दैत्य अपनी आत्माको अमर मानता भया. इसके अनंतर वीरभद्रकी दृष्टि चुरानेके निमित्त सर्पका रूप धारण कर वीरभद्रके विना देखे शिवजीके पास जाता भया; फिर वह मूढचित्तवाला दैत्य शिवजीके छलनेके निमित्त पार्वतीजीका रूप बना लेता भया, मायासे मनोहर, संपूर्ण अंगोंकी शोभासे युक्त ऐसे रूपको बनाकर मुखमें बड़े २ तीक्ष्ण वज्रके समान दांतोंको लगाके अपनी बुद्धिके मोहसे शिवजीके मारनेका उद्योग करता भया. पार्वतीका रूप धारण कर सुंदर अंगोंमें आभूषण और कृत्रिम वस्त्रोंको पहार शिवजीके समीप जाता भया. तब उस महाअसुरको देखकर शिवजी प्रसन्न होकर पार्वती समझकर यह वचन बोले कि, हे पार्वती ! तेरा स्वभाव अच्छा है ? कुछ छल तो नहीं है ? क्या तू मेरा मनोरथ जानकर मेरेपास आई है ? तेरे विरहसे मैंने सब जगत् शून्य मान रक्खा है, अब तू मेरे पास आ गई यह मैंने बहुत अच्छा किया. ऐसे कहा हुआ वह दैत्य हंसकर शिवजीके प्रभावको

नहीं जानता हुआ, धीरे धीरे यह वचन बोला, अर्थात् वह पार्वतीरूप दैत्य बोला कि, मैं तप करनेकेनिमित्त गई थी, वहां तुम्हारे विना मेरा चित्त नहीं लगा, इस कारण तुम्हारे पास आई हूं। ऐसे वचन सुनकर शिवजी कुछेक शंका विचार कर हृदयमें समाधान कर हंसकर बोले हे तन्वंगि ! तू मेरे उपर क्रोधित हो गई थी, और दृढ़ विचार करके चली थी, अब विना प्रयोजन सिद्ध किये हुए कैसे चली आई ? यह मुझको संदेह है। यह कहते हुए शिवजी उसके लक्षणोंको देखते भये, तब उसकी बाई पांशूमें कमलका चिन्ह नहीं पाया, उस समय महादेवजी उस दानवी मायाको जानकर अपने लिंगपर बजास्रको रखकर उसके संग रमण करके उसको मारते भये। इस प्रकारसे उस मारे हुए दानवको वीरभद्रने नहीं जाना। और वह पर्वतकी देवता स्त्रीरूपवाले दानवको शिवजीसे मारा हुआ देख उस प्रयोजनको अच्छे प्रकारसे विना समझेही, वायुको दूत बनाकर पार्वतीकेपास भेजती भई। तब पार्वती वायुकेद्वारा उस वृत्तांतको सुन क्रोधसे लाल नेत्र कर बड़े दुःखित हुए हृदयसे वीरभद्रको शाप देती भई।
इति श्रीमत्स्यपुराणभाषाटीकायां पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५५

॥ देव्युवाच ॥

मातरं मां परित्यज्य यस्मात्त्वं स्नेहविकृवात् ॥
विहितावसरः स्त्रीणां शंकरस्य रहोविधौ ॥ १ ॥
तस्मात्ते पुरुषा रूक्षा जडा हृदयवर्जिता ॥
गणेशक्षारसदृशी शिला माता भविष्यति ॥ २ ॥
निमित्तमेतद्विख्यातं वीरकस्य शिलोदये ॥
सोभवत्प्रक्रमेणैव विचित्राख्यानसंश्रयः ॥ ३ ॥
एवमुत्सृष्टशापाया गिरिपुत्र्यास्त्वनन्तरम् ॥
निर्जंगाम मुखात् क्रोधः सिंहरूपी महाबलः ॥ ४ ॥
स तु सिंहः करालास्यो जटाजटिलकंधरः ॥

प्रोद्धूतलम्बलाङ्गुलो दंष्ट्रोत्कटमुखातटः ॥ ५ ॥
 व्यावृत्तास्यो ललज्जिह्वः क्षामकुक्षिः शिरादिषु ॥
 तस्याशुवर्तितुं देवी व्यवस्यत सती तदा ॥ ६ ॥
 ज्ञात्वा मनोगतं तस्या भगवांश्चतुराननः ॥
 आगम्योवाच देवेशो गिरिजां स्पष्टया गिरा ॥ ७ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

किं पुत्रि ! प्राप्तुकामासि किमलभ्यं ददामि ते ॥ ८ ॥
 विरम्यतामतिक्लेशात् तपसोऽस्मान्ममदाज्ञया ॥
 तल्लुप्तोवाच गिरिजा गुरुं गौरवगर्भितम् ॥ ९ ॥
 वाक्यं वाचाचिरोद्गीर्णवर्णनिर्णीतवाञ्छितम् ॥

॥ देव्युवाच ॥

तपसा दुष्करेणाप्तः पतित्वे शंकरो मया ॥ १० ॥
 स मां श्यामलवर्णेति बहुशः प्रोक्तवान् भवः ॥
 स्यामहं काञ्चनाकारा वाल्लभ्येन च संयुता ॥ ११ ॥
 भर्तुर्भूतपतेरङ्गमेकतो निर्विशेङ्कवत् ॥
 तस्यास्तद्भाषितं श्रुत्वा प्रोवाच कमलासनः ॥ १२ ॥
 एवं भव त्वं भूयश्च भर्तृदेहार्धधारिणी ॥
 ततस्तस्याजभृङ्गाङ्गं फुल्लनीलोत्पलत्वचम् ॥ १३ ॥
 त्वचा सा चाभदीप्ता घंटाहस्ता विलोचना ॥
 नानाभरणपूर्णाङ्गीपीतकौशेयधारिणी ॥ १४ ॥
 तामब्रवीत्ततो ब्रह्मा देवीं नीलाम्बुजत्विषम् ॥
 निशे भूधरजादेहसंपर्कात्वं ममाज्ञया ॥ १५ ॥

सप्राप्ता कृतकृत्यस्त्वमेकानंशा पुरा ह्यसि ॥
 य एष सिंहः प्रोद्भूतो देव्याः क्रोधाद्वरानने ! ॥ १६ ॥
 स तेऽस्तु वाहनं देवि ! केतौ चास्तु महाबलः ॥
 गच्छ विन्ध्याचलं तत्र सुरकार्यं करिष्यसि ॥ १७ ॥
 पञ्चालो नाम यक्षोऽयं यक्षलक्षपदानुगः ॥
 दत्तस्ते किंकरो देवि ! मया मायाशतैर्युतः ॥ १८ ॥
 इत्युक्ता कौशिकी देवी विन्ध्यशैलं जगाम ह ॥
 उमापि प्राप्तसंकल्पा जगाम गिरिशान्तिकम् ॥ १९ ॥
 प्रविशन्तीति तां द्वारि ह्यपकृष्य समाहितः ॥
 रुरोध वीरको देवीं हेमवेत्रलताधरः ॥ २० ॥
 तामुवाच च कोपेन रूपात्तु व्यभिचारिणीम् ॥
 प्रयोजनं न तेऽस्तीह गच्छ यावन्न भेत्स्यसि ॥ २१ ॥
 देव्या रूपधरो दैत्यो देवं वञ्चयितुं त्विह ॥
 प्रविष्टो न च दृष्टोऽसौ स वै देवेन घातितः ॥ २२ ॥
 घातिते चाहमाज्ञप्तो नीलकण्ठेन कोपिना ॥
 द्वारेषु नावधानं ते यस्मात्पश्यामि वै ततः ॥ २३ ॥
 भविष्यसि न मदद्वाःस्थो वर्षपूगान्यनेकशः ॥
 अतस्तेऽत्र न दास्यामि प्रवेशं गम्यतां द्रुतम् ॥ २४ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

भाषा—पार्वती कहती है हे वीरभद्र ! तू स्नेहरहित हो मुझ माताको त्याग कर शिवजीके ओर अन्य स्त्रियोंके एकांत समयमें सावधान नहीं रहा, इसहेतुसे तेरी माता रूखी जड़हृदयसे वर्जित काली शिलाके समान हो जायगी इस प्रकारसे यह वीरभद्रके शिलामेंसे उदय होनेका निमित्त होता भया; तब वह वीरभद्र विचित्र २ कथाओंको सुन रहा था और पार्वतीने

ऐसा शाप देदिया उस समय पार्वतीके मुखसे सिंहरूप होकर क्रोध निकलता भया. उस विकरालमुख जटाधारी लंबी पूंछयुक्त कराल डाढ़ोंसमेत मुख फाड़े जिठ्हा निकाले और पतली कटिवाले सिंहको देखकर उसकी वार्त्ताको पार्वती जब चिंतवन करने लगी तब उस पार्वतीके मनकी वार्त्ताको जानकर ब्रह्माजी आए और बड़ी स्पष्ट वाणीसे बोले कि हे पुत्रि! तू क्या चाहती है? मैं कौनसी अलभ्य वस्तु तुझको दूं? तू इस बड़े क्लेशवाले तपको समाप्त कर और मेरी आज्ञाको मान ले. यह सुनकर पार्वती बहुत दिनके विचारे हुए मनोरथके वचनको बोली कि, मैंने बड़े दुर्लभ व्रत और तपोंसे महादेवजीको प्राप्त किया था, उन्होंने मुझको बहुतवार काली २ ऐसा शब्द कहा, सो मैं चाहती हूं कि, मेरा शरीर कांचनके समान वर्णवाला हो जाय. जिस्से कि, अपने पतिकी गोदीमें सुशोभित रहूं. यह उसके वचनको सुनकर ब्रह्माजी बोले कि, तेरा शरीर ऐसाही हो जायगा, और अपने भर्त्ताके आधे शरीरके धारण करनेवाली भी हो जायगी. इसके अनंतर नीले कमलके समान पार्वतीकी त्वचा कांचनके वर्णसमान तत्काल हो गई और जो उसकी नीली त्वचा थी वह देवी रात्रिका स्वरूप पीत और कसूमे वस्त्रोंसे युक्त होकर अलग हो गया. तब ब्रह्माजी नीले कमलके सदृश वर्णवाली उस रात्रीसे बोले हे रात्री! तू मेरी आज्ञासे पार्वतीके शरीरके स्पर्श करनेसे छतकृत्य हो गई. और हे वरानने! इस पार्वतीके क्रोधसे जो सिंह निकला है वही तेरा वाहन होगा और तेरी ध्वजामें भी यही सिंह रहेगा तू विंध्याचलमें चली जा वहां जाकर तू देवताओंके कार्योंको करेगी. और हे देवि! यह पांचालनाम यक्ष तेरे निमित्त अनुचर देता हूं. इस यक्षको हजारों माया आती हैं. ऐसे कहीं हुई कौशिकी देवी विंध्याचल पर्वतमें जाती भई, और पार्वती भी अपने मनोरथको सिद्ध करके शिवजीके समीप जाती भई. तब उस भीतर जाती हुईको द्वारपर सावधान हो हाथमें बेत ले खड़ा हो कर वीरभद्र रोकता भया, और व्यभिचारिणीका रूप जानकर उससे क्रोधपूर्वक बोला कि, यहां तेरा कुछ प्रयोजन नहीं, जो तू नहीं डरती है तो चली जा, यहां पार्वतीजीका रूप धरके महादेवके छलनेके निमित्त एक दैत्य आया था,

उसको भीतर जाते हुए मैंने नहीं देखा था, वह शिवजीने मार डाला. उसको मारकर मुझसे क्रोधपूर्वक कहने लगे कि तुम द्वारपर सावधान नहीं रहते हो इस हेतुसे मैं अब सबकी चौकसी करता हूँ; सो तुझको भीतर नहीं जाने दूंगा, तू शीघ्रही उलटी चली जा.

इति श्रीमत्स्यपुराणभाषाटीकायां षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५६॥

॥ वीरक उवाच ॥

एवमुक्ता गिरिसुता माता मे स्नेहवत्सला ॥
 प्रवेशं लभते नान्या नारी कमललोचने ! ॥ १ ॥
 इत्युक्ता तु तदा देवी चिंतयामास चेतसा ॥
 न सा नारीति दैत्योसौ वायुर्मे यामभाषत ॥ २ ॥
 वृथैव वीरकः शप्तो मया क्रोधपरीतया ॥
 अकार्यं क्रियते मूढैः प्रायः क्रोधसमीरितैः ॥ ३ ॥
 क्रोधेन नश्यते कीर्तिः क्रोधो हन्ति स्थिरां श्रियम् ॥
 अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था पुत्रं शापितवत्यहम् ॥ ४ ॥
 विपरीतार्थबुद्धीनां सुलभो विपदोदयः ॥
 संचिन्त्यैवमुवाचेदं वीरकं प्रति शैलजा ॥ ५ ॥
 लज्जासज्जविकारेण वदनेनाम्बुजत्विषा ॥

॥ देव्युवाच ॥

अहं वीरक ! ते माता मा तेऽस्तु मनसो भ्रमः ॥ ६ ॥
 शंकरस्यास्मि दयिता सुता तु हिमभूभृतः ॥
 मम गात्रलविभ्रान्त्या मा शङ्कां पुत्र ! भावय ॥ ७ ॥
 तुष्टेन गौरता दत्ता ममेयं पद्मजन्मना ॥
 मया शप्तोऽस्यविदिते वृत्तान्ते दैत्यनिर्मिते ॥ ८ ॥

ज्ञात्वा नारीप्रवेशं तु शंकरे रहसि स्थिते ॥
 न निवर्तयितुं शक्यः शापः किंतु ब्रवीमि ते ॥ ९ ॥
 शीघ्रमेष्यसि मानुष्यात् स त्वं कामसमन्वितः ॥
 शिरसा तु ततो बन्ध मातरं पूर्णमानसः ॥
 उवाचार्चितपूर्णेन्दुद्युतिं च हिमशैलजाम् ॥ १० ॥

॥ वीरक उवाच ॥

नतसुरासुरमौलिमिलन्मणिप्रचयकान्तिकरालनखाङ्किते ॥
 नगसुते ! शरणागतवत्सले ! तव नतोऽस्मि नतार्त्तिविनाशिनि ११
 तपनमण्डलमण्डितकन्धरे ! पृथुसुवर्णसुवर्णनगद्युते ! ॥
 विषभुजङ्गनिषङ्गविभूषिते ! गिरिसुते ! भवतीमहमाश्रये ॥ १२ ॥
 जगति कः प्रणताभिमतं ददौ झटिति सिद्धनुते भवती यथा ॥
 जगति काञ्चनवाञ्छतिशंकरो भुवनधृतनये ! भवती यथा ॥ १३ ॥
 विमलयोगविनिर्मितदुर्जयस्वतनुतुल्यमहेश्वरमण्डले ! ॥
 विदलितान्धकबान्धवसंहतिः सुरवरैः प्रथमं त्वमभिष्टुता ॥ १४ ॥
 सितसटापटलोद्धतकंधराभरमहामृगराजरथा स्थिता ॥
 विमलशक्तिमुखानलपिङ्गलायतभुजौघविपिष्टमहासुरा ॥ १५ ॥
 निगदिता भुवनैरिति चण्डिका जननि ! शुम्भनिशुम्भनिषूदनी ॥
 प्रणतचिन्तितदानवदानवप्रमथनैकरतिस्तरसा भुवि ॥ १६ ॥
 वियति वायुपथे ज्वलनोज्ज्वलेऽवनितले तव देवि ! चयद्वपुः ॥
 तदजितेप्रतिमे प्रणमाम्यहं भुवनभाविनि ! ते भववल्लभे ॥ १७ ॥
 जलधयो ललितोद्भवतीचयो हुतवहद्युतयश्च चराचरम् ॥
 फणसहस्रभूतश्च भुजङ्गमास्त्वदभिधास्यति मय्यभयंकरा ॥ १८ ॥
 भगवति ! स्थिरभक्तजनाश्रये ! प्रतिगतो भवतीचरणाश्रयम् ॥

करणजातमिहास्तु ममाचलन्नुतिलवाप्तिकलाशयहेतुतः ॥
प्रशममेहि ममात्मजवत्सले! नमोऽस्तु ते देवि! जगत्त्रयाश्रये १९

॥ सूत उवाच ॥

प्रसन्ना तु ततो देवी वीरकस्येति संस्तुता ॥
प्रविवेश शुभं भर्तुर्भवनं भूधरात्मजा ॥ २० ॥
द्वारस्थो वीरको देवान् हरदर्शनकाङ्क्षिणः ॥
व्यसर्जयत् स्वकान्येव गृहाण्यादरपूर्वकः ॥ २१ ॥
नास्त्यत्रावसरो देवा देव्या सह वृषाकपिः ॥
निर्भृतः क्रीडतीत्युक्ता ययुस्ते च यथागतम् ॥ २२ ॥
गते वर्षसहस्रे तु देवास्त्वरितमानसः ॥
ज्वलनं चोदयामासुर्ज्ञातुं शंकरचेष्टितम् ॥ २३ ॥
प्रविश्य जालरन्ध्रेण शुकरूपी हुताशनः ॥
ददृशे शयने शर्वं रतं गिरिजया सह ॥ २४ ॥
ददृशे तं च देवेशो हुताशं शुकरूपिणम् ॥
तमुवाच महादेवः किञ्चित्कोपसमन्वितः ॥ २५ ॥
यस्मात्तु त्वत्कृतो विघ्नस्तस्मात्त्वय्युपपद्यते ॥
इत्युक्तः प्राञ्जलिर्वङ्गिरपिबद्ध्यमाहितम् ॥ २६ ॥
तेनापूर्यत तान् देवांस्तत्तत्कायविभेदतः ॥
विपाठ्य जठरं तेषां वीर्यं माहेश्वरं ततः ॥ २७ ॥
निष्क्रान्तं तप्तहेमाभं वितते शंकराश्रमे ॥
तस्मिन् सरो महज्जातं विमलं बहुयोजम् ॥ २८ ॥
प्रोत्फुल्लहेमकमलं नानाविहगनादितम् ॥
तल्लुत्वा तु ततो देवी हेमदुग्धमहाजलम् ॥ २९ ॥

तत्र कृत्वा जलक्रीडां तदब्जकृतशेखरा ॥
 उपविष्टा ततस्तस्य तीरे देवी सखीयुता ॥ ३० ॥
 पातुकामा च तत्तोयं स्वादुनिर्मलपङ्कजम् ॥
 अपश्यन् कृत्तिकाः स्नाताः षडर्कद्युतिसन्निभम् ॥ ३१ ॥
 पद्मपत्रे तु तद्वारि गृहीत्वोपस्थिता गृहम् ॥
 हर्षादुवाच पश्यामि पद्मपत्रे स्थितं पयः ॥ ३२ ॥
 ततस्ता ऊचुरखिलं कृत्तिका हिमशैलजम् ॥

॥ कृत्तिका ऊचुः ॥

दास्यामो यदि ते गर्भः संभूतो यो भविष्यति ॥ ३३ ॥
 सोऽस्माकमपि पुत्रः स्यादस्मन्नाम्ना च वर्तताम् ॥
 भवेच्छोकेषु विरूयातः सर्वेष्वपि वरानने ! ॥ ३४ ॥
 इत्युक्तोवाच गिरिजा कथं मद्भ्रात्रसंभवः ॥
 सर्वैरवयवैर्युक्तो भवतीभ्यः सुतो भवेत् ॥ ३५ ॥
 ततस्तां कृत्तिका ऊचुर्विधास्यामोऽस्य वै वयम् ॥
 उत्तमान्युत्तमाङ्गानि यद्येवं तु भविष्यति ॥ ३६ ॥
 उक्ता वै शैलजा प्राह भवत्वेवमनिन्दिताः ॥
 ततस्ता हर्षसंपूर्णाः पद्मपत्रस्थितं पयः ॥ ३७ ॥
 तस्यै ददुस्तया चापि तत्पीतं क्रमशो जलम् ॥
 पीते तु सलिले तस्मिंस्ततस्तस्मिन् सरोवरे ॥ ३८ ॥
 विपाद्य देव्याश्च ततो दक्षिणां कुक्षिमुद्गतः ॥
 निश्चक्रामाऽद्भुतो बालः सर्वलोकविभासकः ॥ ३९ ॥
 प्रभाकरप्रभाकारः प्रकाशकनकप्रभः ॥
 गृहीतनिर्मलोदग्रशक्तिशूलः षडाननः ॥ ४० ॥

दीप्तो मारयितुं दैत्यान् कुत्सितान् कनकच्छविः ॥

एतस्मात्कारणाद्देवः कुमारश्चापि सोऽभवत् ॥ ४१ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

भाषार्थः—वीरभद्रने कहा हे कमललोचने! मेरी स्नेह करनेवाली माताने भी मुझसे यही आज्ञा करी है, और कह गई है कि, किसी अन्य स्त्रीको भीतर मत जाने देना- यह सुनकर पार्वती देवी चिंतवन करने लगी कि, अहो जो वायु मुझसे कह आया था वह तो दैत्य था, स्त्री नहीं थी; मुझ क्रोधयुक्तने वीरभद्रको वृथाही शाप दिया; विशेषकरके क्रोधसे भरेहुए मूर्ख बुरा कार्य कर डालते हैं, क्रोधसे कीर्ति नष्ट हो जाती है, क्रोधसे स्थिर लक्ष्मीका नाश होजाता है, मैंने विनाही विचारेहुए पुत्रको शाप देदिया- विपरीतबुद्धिवालोंको सहजहीमें विपत्ति प्राप्त होजाती है- ऐसे चिंतवन करके वह पार्वती लज्जापूर्वक वीरभद्रसे कहनेलगी; हे वीरभद्र! मैं तेरी माता हूं, तू चित्तमें संदेह मत करे, मैं शिवजीकी प्यारी स्त्री हूं, हिमाचलकी पुत्री हूं; हे पुत्र! मेरे शरीरकी कांतिकरके तू शंका मत करे, मुझको ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर गौरवर्ण देदिया है- हे पुत्र! उस दैत्यके वृत्तांतसे मैंने तुझको विना समझे हुए शाप देदिया है वह तो दूर नहीं होसकेगा; परंतु यह कह देती हूं कि तुम मनुष्यके प्रभावसे शापसे निवृत्त होकर शीघ्रही आओगे- इसके पीछे वीरभद्र पूर्ण चंद्रमाके-समान कांतिवाली अपनी माता पार्वतीको शिरसे प्रमाण करने लगा- वीरभद्र कहता है, हे शरणागतवत्सले! देवतादैत्योंके प्रणाम करते हुए मुकुटोंकी मणियोंसे शोभित चरणारविंदवाली! मैं तुझको प्रणाम करता हूं- हे सूर्यमंडलकेसमान शोभित शिरवाली, पर्वतके समान कांतिवाली, सर्पाकार टेढी भृकुटियोंवाली! ऐसी जो आप हैं उनकेही मैं आश्रय हूं हे पार्वती! प्रणाम करते हुएको जैसे तुम शीघ्रही वर देती हो ऐसा दूसरा वर देनेवाळा तेरेसिवाय कौन है? और शिवजी भी तेरे विना जगत्में किसीकी इच्छा नहीं करते हैं- हे निर्मलयोगके द्वारा अपने शरीरको महादेवजीके शरीरमंडलके समान करनेवाली! और दैत्योंका नाश करने

वाली! तुझको सब देवता लोगभी शिरसे प्रणाम करते हैं. हे जननी! तुम श्वेतकेश और बडेमुखवाले सिंहपर सवारीकरके अपनी निर्मलशक्तिसे जब असुरोंको मारती हो तब संसार तुमको चंडिका कहता है, तुम हीं शुंभनिशुंभको मारती और भक्तजनोंके मनोरथोंको सिद्ध करती हो. हे देवि! आकाशमें वायुके मार्गमें जलती हुई अग्निमें और पृथ्वीतलमें जो तेरा रूप है उसको मैं नमस्कार करता हूं, और ललितरंगोंवाले समुद्र, अग्नि और हजारों सर्प यह सब तेरे प्रभावसे मुझको भय नहीं देसक्ते हैं, मैं आपके चरणोंके आश्रय होगया हूं, अब किसी फलकी इच्छा नहीं करता हूं. हे देवि! मुझपर शांत होकर लृपा करो, मैं आपको प्रणाम करता हूं. सूतजी कहते हैं जब वीरभद्रने इस प्रकारसे स्तुति करी तब प्रसन्न होकर पार्वतीजी अपने पति शिवजीके मंदिरमें प्रवेश करती भई. फिर द्वारपर खड़ा हुआ वीरभद्र शिवजीके दर्शन करनेके लिये आये हुए देवताओंको अपने २ घरोंको भेजता भया; यह कहने लगा, हे देवताओ! अब दर्शन करनेका अवसर नहीं है, शिवजी पार्वतीकेसंग रमण कर रहे हैं. ऐसे वचनोंको सुनकर देवता स्थानोंको चले गये. जब हजार वर्ष व्यतीत होचुके तब देवता शीघ्रताकरके शिवजीके समाचार लेनेकेनिमित्त अग्निदेवताको भेजते भये. अग्नि तोतेका रूप धारण करके स्थानके किसी छिद्रके द्वारा स्थानमें प्रवेश करके पार्वतीकेसंग रमण करते हुए महादेवजीको देखता भया. तब कुछेक क्रोध करके महादेवजी उस तोतेसे बोले कि, तेरा किया हुआ यह विघ्न है इस लिये यह विघ्न तुझीमें प्राप्त होगा. ऐसा कहा हुआ अग्नि अंजली बांधकर महादेवजीके वीर्यको पीता भया. फिर उस वीर्यसे तृप्त हुआ अग्नि देवताओंको तृप्त करता भया. उस समय वह शिवजीका वीर्य उन देवताओंके उदरको फाडकर बहार निकलता भया, और शिवजीके आश्रमके समीप प्राप्त होता भया. वहाँ एक सरोवर बनगया. बड़ा, स्वच्छ और बहुत योजन विस्तृत, सुवर्णकीसी कांति-वाला, फूले हुए कमलोंसे शोभित उस सरोवरको सुनकर पार्वतीदेवी सखियोंसे युक्त हो उसके जलमें क्रीडा करती हुई तीरपर स्थित होगए,

और उस जलके पीनेकी भी इच्छा करी. उस समय स्नान करती हुई कृत्तिकाभी छह सूर्योके समान उस जलको देखती भई. तब पार्वती कमलके पत्तेपर स्थित हुए उस जलको ग्रहण करके आनंदसे बोली कि, कमलपत्रपर स्थित हुए इस जलको मैं देखती हूं. ऐसे पार्वतीके वचनको सुन कर कृत्तिका पार्वतीसे बोली कि, हे शुभानने ! इस जलसे जो तुम्हारे गर्भ रह जावे तो वह हमारे नामसे प्रसिद्ध हमाराही पुत्र संसारमें प्रसिद्ध होवे ऐसी प्रतिज्ञा करे तो, हम इस जलको देवें. यह सुनकर पार्वतीजी बोली कि, मेरे अवयवोंसे युक्त हुआ बालक तुम्हारा पुत्र होवेगा ? जब पार्वतीने यह वचन कहा, तब कृत्तिका बोली कि, हम इसके उत्तम २ अंगोंका विधान कर देवेंगी. यह बात सुनकर पार्वतीजीने कहा कि, अच्छा इसी प्रकार होजागया. तब कृत्तिका प्रसन्न होकर उस जलको पार्वतीके निमित्त देती भई. तब पार्वतीने भी वह जल पीलिया. इसके अनंतर उस जलका गर्भ पार्वतीकी दाहिनी कोखको फाड़कर बाहर निकला. और उसमेंसे सब लोकोंको प्रकाशित करनेवाला अद्भुत बालक निकला, सूर्यके समान तेजस्वी, कंचनके समान देदीप्य, शक्ति और शूलको ग्रहण किये हुए, छ मुखवाला, वह अद्भुत बालक होता भया. सुवर्णकीसी कांतिवाला यह बालक दुष्ट दैत्योंको मारनेवाला होता भया. इस प्रकारसे स्वामी कार्तिककी उत्पत्ति हुई है.

इति श्रीमत्स्यपुराणभाषाटीकायां सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५७॥

पुनरपि मत्स्यपुराणे चतुर्नवत्यधिकशततमेऽध्याये यथा—

महादेवस्य शापेन त्यक्त्वा देहं स्वयं तथा ॥

ऋषयश्च समुद्रूताश्च्युते शुक्रे महात्मनः ॥ ६ ॥

देवानां मातरो दृष्ट्वा देवपत्न्यस्तथैव च ॥

स्कन्नं शुक्रं महाराज ! ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ ७ ॥

तज्जुहाव ततो ब्रह्मा ततो जाता हुताशनात् ॥

ततो जातो महातेजा भृगुश्च तपसां निधिः ॥ ८ ॥

भाषार्थः—प्रथम महादेवजीके शापसे सब ऋषि अपने २ शरीरको आपही त्याग कर स्वर्गलोकमें जाते भये, वहां ब्रह्माजीके वीर्यसे फिर ऋषि उत्पन्न हुए हैं. तब देवताओंकी माता, और देवताओंकी स्त्रियां, ब्रह्माजीके वीर्यको स्खलित हुआ जानकर ब्रह्माजीके समीपसे उस वीर्यको अग्निमें हवन करवा देती भई. जब ब्रह्माजीने वीर्यका हवन किया, तब अग्निमेंसे महातेजवाले भृगुऋषि उत्पन्न हुए. मत्स्यपुराण अध्याय ॥१९४॥

तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणेऽपि चतुर्थाऽध्याये ॥

रतिं दृष्ट्वा ब्रह्मणश्च रेतःपातो बभूव ह ॥

तत्र तस्थौ महायोगी वस्त्रेणाच्छाद्य लज्जया ॥१३॥

वस्त्रं दग्ध्वा समुत्तस्थौ ज्वलदग्निः सुरेश्वरः ॥

कोटितालप्रमाणश्च सशिखश्च समुज्ज्वलन् ॥ १४ ॥

कृष्णस्य कामबाणेन रेतःपातो बभूव ह ॥

जले तद्रेचनं चक्रे लज्जया सुरसंसदि ॥ २३ ॥

सहस्रवत्सरान्ते तद्धिम्भरूपं बभूव ह ॥

ततो महान् विराट् जज्ञे विश्वौघाधार एव सः ॥२४॥

भाषार्थः—रतिको देखकर ब्रह्माजीका वीर्यपात होता भया, तब वो महायोगी ब्रह्मा लज्जाकरके वस्त्रके साथ आच्छादन करके खड़ा होता भया, तब वो वीर्य वस्त्रको जालकर जाज्वल्यमान, कोटिताल प्रमाण, शिखावाला, देदीप्यमान, अग्निदेवता उत्पन्न होता भया. — कामके बाणोंकरके देवसभामें कृष्णजीका वीर्यपात होता भया, तब लज्जाकरके कृष्णजी उस वीर्यको जलमें निकालते भये, वहां वो वीर्य हजार वर्ष व्यतीत हुए तब बालकरूप होता भया, तिस्से जगत् समूहको आधार-भूत महान् विराट् उत्पन्न होता भया. ब्रह्मवैवर्त पुराण अध्याय ॥ ४ ॥

इत्यादि प्रायः सर्व पुराणादिके लेखोंसे, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, जो कि लोकोंने कल्पन किये हैं उन्होंनेमें ज्ञानदर्शन चारित्र नहीं सिद्ध होते हैं. किंतु, काम, क्रोध, ईर्ष्या, रागादि दोष सिद्ध होते हैं. और ऐसे

रागी द्वेषी देव मुक्तिकेवास्ते नहीं होते हैं. यदुक्तं ॥ “ये स्त्रीशस्त्राक्षसू-
त्रादिरागाद्यङ्कलङ्किताः ॥ निग्रहानुग्रहपरास्ते देवाः स्युर्न मुक्तये ॥ १ ॥
नाट्याट्टहाससंगीताद्युपप्लवविसंस्थुलाः ॥ लंभयेयुः पदं शान्तं प्रसन्नान् प्रा-
णिनः कथम् ॥ २ ॥” इतिकलिकालसर्वज्ञश्रीमद्धेमचंद्रसूरिकृतयोगशास्त्रे-
यद्यपि इन श्लोकोंका अर्थ जैनतत्त्वादर्थ ग्रंथमें लिखा है तथापि भव्य
जीवोंके उपकारार्थ लिखते हैं.

जिस देवकेपास स्त्री होवे, तथा तिसकी प्रतिमाकेपास स्त्री होवे, क्यों
कि, जैसा पुरुष होता है, उसकी मूर्ति भी प्रायः वैसीही होती है. आज-
काल सर्व चित्रोंमें वैसाही देखनेमें आता है. सो मूर्तिद्वारा देवकाभी
स्वरूप प्रगट हो जाता है. तथा शस्त्र, धनुष्य, चक्र, त्रिशूलादि जिस-
के पास होवे, तथा अक्षसूत्र जपमालादि आदि शब्दसे कमंडलु प्रमुख
होवे, फेर कैसा वो देव है? रागद्वेषादि दूषणोंका जिनमें चिन्ह होवे?
क्योंकि, स्त्रीकों जो पास रखेगा वो जरूर कामी और स्त्रीसे भोग
करनेवाला होगा. इस्से अधिक रागी होनेका दूसरा कौनसा चिन्ह है?
इसी कामरागके वश होकर कुदेवोंने परस्त्री, स्वस्त्री, बेटी, माता, बहिन,
और पुत्रकी वधू, प्रमुखसे अनेक कामक्रीडा कुचेष्टा करी है. और
इसीका नाम लोकोने भगवान्की लीला धारण किया है!!!

अब जो पुरुषमात्र हांकर परस्त्री गमन करता है, उसको आज का-
लके मतालंबियोंमेंसे कोईभी अच्छा नहीं कहता तो, फेर परमेश्वर
होकर जो परस्त्रीसे कामकुचेष्टा करे, उसके कुदेव होनेमें कोईभी बुद्धि-
मान् शंका कर सक्ता है? नहीं. और जो अपनी स्त्रीसे काम सेवन
करता है, और परस्त्रीका त्यागी है, उसकोभी परस्त्रीका त्यागी धर्मी
गृहस्थलोक कह सक्ते हैं, परंतु उसको मुनि वा ऋषि वा ईश्वर कभी
नहीं कहे सकेंगे. क्योंकि, जो आपही कामाग्निके कुंडमें प्रज्वलित हो
रहा है, तिसमें कभी ईश्वरता नहीं हो सकती; इस हेतुसे जो राग
रूप चिन्ह करके संयुक्त है, सो देव नहीं हो सक्ता है. पुनः जो द्वेषके
चिन्हकरके संयुक्त है, वोभी देव नहीं हो सक्ता है. द्वेषके चिन्ह
शस्त्रादिकोंका धारण करना, क्योंकि, जो शस्त्र, धनुष्य, चक्र, त्रिशूल

प्रमुख रखेगा, उसने अवश्य किसी वैरीकों मारणा है; नहीं तो, शस्त्र रखनेसे क्या प्रयोजन है? जिसकों वैर विरोध लगा हुआ है, सो परमेश्वर नहीं हो सक्ता है; जो ढाल वा खड्ग रखेगा वह अवश्यमेव भयसंयुक्त होगा, और जो आपही भयसंयुक्त है तो, उसकी सेवा करनेवाले निर्भय कैसे हो सकते हैं? इस हेतुसे द्वेषसंयुक्तको परमेश्वर कौन बुद्धिमान् कह सक्ता है? परमेश्वर जो है, सो तो वीतराग है; सिवाय वीतरागके अन्य कोइ, रागी, द्वेषी, परमेश्वर कभी नहीं हो सक्ते हैं.

तथा जिसके हाथमें जपमाला है, सो असर्वज्ञताका चिन्ह है; जेकर सर्वज्ञ होता तो मालाके मणियोंके बिनाभी जपकी संख्या कर सक्ता; और जो जपको करता है सोभी अपनेसे उच्चका करता है, तो, परमेश्वरसे उच्च कौन है? जिसका वो जप करता है.

तथा जो शरीरको भस्म लगाता है, और धूणी तापता है, नंगा होके कुचेष्टा करता है, भांग, अफीम, धतूरा, मदिरा प्रमुख पीता है, तथा मांसादि अशुद्ध आहार करता है, वा, हस्ति, ऊंट, गर्दभ, बैल प्रमुखकी जो असवारी करता है, सोभी सुदेव नहीं हो सक्ता है; क्योंकि, जो शरीरको भस्म लगाता है, और धूणी तापता है, सो किसी वस्तुकी इच्छावाला है, सो जिसका अभीतक मनोरथ पूरा नहीं हुआ, सो परमेश्वर कैसे हो सक्ता है? और जो नशे, अमलकी चीजें, खाता पीता है, सो तो नशेके अमलमें आनंद और हर्ष ढुंढता है, और परमेश्वर तो सदा आनंद और सुखरूप है; परमेश्वरमें वो कौनसा आनंद नहीं था जो नशा पीनेसे उसकों मिलता है? और जो असवारी है सो परजीवोंको पीडाका कारण है, और परमेश्वर तो दयालु है, वो परजीवोंको पीडा कैसे देवे? और जो कमंडलु रखता है सो शुचि होनेके कारण रखता है, और परमेश्वर तो सदाही, पवित्र है उनको कमंडलुसे क्या काम है?

तथा निग्रह, जो जिसके उपर क्रोध करे, तिसकों बध, बंधन, मारण, रोगी, शोकी, अतीष्टवियोगी, नरकपात, निर्धन, हीन, दीन, क्षीण करे; और अनुग्रह, जिसके ऊपर तुष्टमान होवे, तिसकों इंद्र, चक्रवर्ती, बल-

देव, वासुदेव, महामंडलिक, मंडलिकादिकोंको राज्यादि पदवीका वर देवे; तथा सुंदर देवांगनासदृश स्त्रीका संयोग, पुत्रपरिवारादिकोंका संयोग जो करे, ऐसा रागी, द्वेषी, देव मोक्षके तांड कभी नहीं हो सक्ता है। सो तो भूत प्रेत पिशाचादिकोंकी तरह क्रीडाप्रिय देवता मात्र है। ऐसा देव अपने सेवकोंको मोक्ष कैसे दे सक्ता है? आपही यदि वो रागी द्वेषी कर्मपरतंत्र है तो, सेवकोंका क्या कार्य सार सक्ता है ?

तथा जो नाद, नाटक, हास्य, संगीत, इनके रसमें मग्न है, वादित्र, (बाजा) बजाता है, नृत्य करता है, औरांको नचाता है, हसता और कूदता है, विषयी रागोंको गाता है, संगीत बोलता है, स्त्रीके विरहसे विलाप करता है, इत्यादिक अनेक प्रकारकी मोहकर्मके वश संसारकी चेष्टा करता है, और स्वभाव जिसका अस्थिर हो रहा है, सोभी परमेश्वर नहीं कहा जाता है; यदि परमेश्वर आपही ऐसा है तो फेर वो परमेश्वर सेवकोंको शांतिपद कैसे प्राप्त करा सक्ता है? यदि किसी पुरुषने एरंडवृक्षको कल्पवृक्ष मानलिया तो, क्या वो कल्पवृक्ष हो सक्ता है? वा कल्पवृक्षका सारा काम दे सक्ता है ?

अब भगवान्में अष्टगुण होते हैं सो लिखते हैं.

॥ मूलम् ॥ आर्यावृत्तम् ॥

क्षितिजलपवनहुताशनयजमानाकाशसोमसूर्याख्याः ॥

इत्येतेष्टौ भगवति वीतरागे गुणा मताः ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—क्षिति १ जल २ पवन ३ अग्नि ४ यजमान ५ आकाश ६ सोम ७ और सूर्य ८ ऐसे आठ गुण भगवान् वीतरागमें माने है. ॥३४॥

क्षितिरित्युच्यते क्षांतिर्जलं या च प्रसन्नता ॥

निःसंगता भवेद्वायुर्हुताशो योग उच्यते ॥ ३५ ॥

यजमानो भवेदात्मा तपोदानदयादिभिः ॥

अलेपकत्वादाकाशः संकाशः सोभिधीयते ॥ ३६ ॥

व्याख्या—क्षितिशब्दकरके क्षमा कहिए है, जल कहनेसे निर्मलता, और पवन कहनेसे निःसंगता—प्रतिबंधरहित, आग्नि कहनेसे योग, अर्थात्

जैसे अग्नि इंधनको भस्म करके जाज्वल्यमान रूपवाला होता है, तैसे भगवंत कर्मवनको दाहके निर्मल योगरूपको प्राप्त हुये हैं, इसवास्ते भगवान् अर्हन्को योगरूप कहते हैं. यजमान अर्थात् यज्ञ करनेवाला आत्मा है, तपदानदयादिसें यज्ञ करता है. निर्लेप लेपरहित होनेसे आकाशसमान भगवंतको कहते हैं. ॥३५-३६॥

सौम्यमूर्तिरुचिश्रद्धो वीतरागः समीक्ष्यते ॥

ज्ञानप्रकाशकत्वेन आदित्यः सोऽभिधीयते ॥ ३७ ॥

व्याख्या—सौम्यमूर्ति मनोहर होनेसे भगवंत चंद्रवत् चंद्र वीतराग होनेसे देखते है, और ज्ञानप्रकाशकरने करके सो भगवंत अर्हंतको आदित्य (सूर्य) कहिये है. ॥ ३७ ॥

पुण्यपापविनिर्मुक्तो रागद्वेषविवर्जितः ॥

श्रीअर्हद्भ्यो नमस्कारः कर्तव्यः शिवमिच्छता ॥ ३८ ॥

व्या०—पुण्यपापकरके विनिर्मुक्त (रहित) है, और रागद्वेषकरके विवर्जित है, ऐसे श्रीअर्हंतको मुक्तिइच्छक पुरुषोंने नमस्कार करणे योग्य है. ॥ ३८ ॥

अकारेण भवेद्विष्णू रेफे ब्रह्मा व्यवस्थितः ॥

हकारेण हरः प्रोक्तस्तस्यान्ते परमं पदम् ॥ ३९ ॥

व्या०—अब अर्हन् शब्दका स्वरूप कथन करते हैं. आदिमें जो अकार है, सो विष्णुका वाचक है, और रकारमें ब्रह्मा व्यवस्थित है, और हकार करके हर (महादेव) कथन करा है, और अंतमें नकार परमपदका वाचक है. ॥ ३९ ॥

अकार आदिधर्मस्य आदिमोक्षप्रदेशकः ॥

स्वरूपे परमं ज्ञानमकारस्तेन उच्यते ॥ ४० ॥

व्या०—अकार करके आदिधर्म, और मोक्षका प्रदेशक है, तथा स्वरूपविषे परम ज्ञान है, इसवास्ते अर्हन् शब्दकी आदिमें जो अकार है, तिसका यह अर्थ होनेसे अकार कहते हैं. ॥ ४० ॥

रूपि द्रव्यस्वरूपं वा दृष्ट्वा ज्ञानेन चक्षुषा ॥

दृष्टं लोकमलोकं वा रकारस्तेन उच्यते ॥ ४१ ॥

व्या०—रूपी द्रव्य, वा शब्दसे अरूपी द्रव्य, ज्ञाननेत्रकरके जिसने देखा है, तथा लोकालोक जिसने देखा है, इसवास्ते रकार कहते हैं ॥ ४१ ॥

हता रागाश्च द्वेषाश्च हता मोहपरीषहाः ॥

हतानि येन कर्माणि हकारस्तेन उच्यते ॥ ४२ ॥

व्या०—राग, द्वेष, अज्ञान, परीषह और अष्टकर्म हनन किये हैं, अर्थात् नष्ट किये हैं, इसवास्ते हकार कहते हैं ॥ ४२ ॥

संतोषेणाभिसंपूर्णः प्रातिहार्याष्टकेन च ॥

ज्ञात्वा पुण्यं च पापं च नकारस्तेन उच्यते ॥ ४३ ॥

व्या०—संतोषकरके जो सर्वतरेसे संपूर्ण है, और अष्ट प्रातिहार्य-करके संपूर्ण है, सो अष्ट प्रातिहार्य लिखते हैं—

“किंकिलि कुसुमबुट्टि देवष्भुणि चामरासणाइं च ॥

भावलय भेरि छत्तं जयति जिणपाडिहेराइं ” १ ॥

व्या०—भगवंतके सहचारि होनेसे प्रातिहार्य कहे जाते हैं, अथवा इंद्रके आदेश करनेवाले देवताओंका जो कर्म उसकों प्रातिहार्य कहते हैं, वे आठही प्रातिहार्य देवताके करे जाणने.

किंकिली०—अशोकवृक्ष—सो जहां श्रीभगवंत विचरे समवसरे, वहां महाविस्तीर्ण कुसुमसमूह लब्धभ्रमरनिकर शीतलसच्छाय मनोहर विस्तीर्ण शाखावाला भगवान्‌के देहमानसें बारां गुणा अशोकवृक्ष देवता करते हैं, तिसके नीचे बैठके भगवान्‌ देशना (धर्मोपदेश) देते हैं, ॥ १ ॥

कुसुमबुट्टि—पुष्पवृष्टिः—जलस्थलके उत्पन्न हुये, श्वेत, रक्त, पीत, नील, श्याम, ऐसे पांच वर्णोंके विकस्वर सरस सुगंधमय फूलोंकी वर्षा समवसरणकी पृथ्वीमें देवता करते हैं; जिसमें फूलोंके बीट नीचेपासे, और मुख ऊंचेपासे होते हैं, तथा वर्षा गोडेप्रमाण होती है; अर्थात् पुष्प-वृष्टिसें समवसरण भूभागमें जानुप्रमाण उंचा पुष्पसमूह होता है ॥ २ ॥

देवष्भुणि—दिव्यध्वनिः—भगवान्‌ जिस वस्त्र अत्यंत मधुर स्वरकरके

सरस अमृतरससमान समस्त लोकोंको प्रमोद देनेवाली वाणीकरके धर्म-देशना देते हैं, तिस वखत देवता तिस भगवंतके स्वरको अपनी ध्वनि-करके अखंड (पूर्ण) करते हैं, यद्यपि मधुरमें मधुर पदार्थसैंभी भगवान्की वाणीमें अधिक रस है, तथापि भव्य जीवके हितवास्ते भगवान् जो देशना देते हैं सो मालवकोश रागमें देते हैं; जिस वखत भगवान् मालवकोश रागकरके देशना आलापते हैं, तिस वखत भगवान्के दोनों तरफ रहे हुए देवता मनोहर वेणु वीणादिके शब्दकरके तिस भगवान्की वाणीको अधिकतर मनोज्ञ करते हैं, जैसें कोई सुस्वर करके गयन करता होवे, उसके पास वीणादिके शब्दकरके ध्वनि पूर्ण करें. ॥ ३ ॥

चामर-केलिस्तंभमें लगे हुए तंतु निकरके समान मनोहर दंडमें लगे हुए अनेक रत्नोंकी किरणोंकरके मानो इंद्रधनुष्यकाही विस्तार न होता होय? ऐसे रत्नोंकरके जडित सुवर्णदांडीसहित श्वेत चामर भगवान्के दोनोंपासे देवता करते हैं, तथा इंद्रभी करते हैं ॥ ४ ॥

आसणाई च-आसनानि च-अनेक रत्नचूनियांकरके विराजमान सुवर्णमय मेरुशृंगकीतरह ऊंचा और अनेक कर्मरूपवैरिके समूहकों मानो डराते न होय? ऐसें साक्षात् सिंहरूपकरके शोभायमान ऐसा सुवर्णमय सिंहासन देवता करते हैं, तिसके ऊपर बैठके भगवान् देशना देते हैं. ॥ ५ ॥

भावलय-भामंडल-भगवंतके पीछे शरद्भक्तु संबंधि सूर्यकी किरणों कीतरह दुर्दर्श अत्यंत देदीप्यमान श्री वीतरागके मस्तकके पीछले भागमें भामंडलकीतरह भामंडल होता है. “भा” नाम कांति, तिसका मंडल अर्थात् मांडला सो भामंडल. विनाभामंडलके भगवान्के मुखसन्मुख अतिशय तेजोमयि होनेसैं, कोई देख नहीं सक्ता है. इस वास्ते, देवता भामंडलकी रचना करते हैं. ॥ ६ ॥

भेरि-भेरी ढक्का दुंदुभिरिति यावत्-जिसने अपने भोंकार शब्दकरके विश्वका विवर भरा है ऐसी भेरी शब्दायमान करते हैं. मानो भेरीका शब्द तीन जगत्के लोकोंको ऐसें कहता न होय? कि “हे जनो! तुम प्रमादको छोडके श्री जिनेश्वर देवको सेवो, यह जिनेश्वर देव मुक्तिरूपी

नगरीमें पहुंचानेको सार्थवाहतुल्य है,” ऐसी दुंदुभि अर्थात् आकाशमें दिव्यानुभावकरके क्रोडोंही देववाजिंत्र बजते हैं. ॥ ७ ॥

छत्तं—तीन भवनमें परमेश्वरत्वके ज्ञापक, शरत्कालके चंद्रमा और मुचकुंदके समान उज्ज्वल मुक्ताफलकी मालाकरके विराजमान, ऐसैं तीन छत्र भगवान्‌के मस्तकोपरि छत्रातिछत्रप्रत्ये धारण करते हैं.

यह आठ प्रातिहार्य श्री जिनेश्वर भगवत्संबंधि जयवन्ते वत्तो !

इन पूर्वोक्त अष्ट प्रातिहार्यकरके संपूर्ण है, और पुण्य पाप उपलक्षणसैं नव तत्त्व जाणता है तिस हेतुसे नकार अंत्याक्षर कहते हैं. यह अर्हन् शब्दके अक्षरोंका अर्थ है. ॥ ४३ ॥

अब स्तवनकर्त्ता पक्षपातसैं रहित होके अंतका आर्यावृत्त कहते हैं.

भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य ॥

ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्वेमचंद्रसूरिविरचितं श्रीमहादेवस्तोत्रम् ॥

व्या०—संसाररूप बीजके चार गतिरूप अंकुरके उत्पन्न करनेवाले राग, द्वेष, अज्ञानादि अठारह दूषण जिसके क्षयभावको प्राप्त हुए हैं, तिसका नाम ब्रह्मा हो, वा विष्णु हो, वा हर, (महादेव) हो, वा जिन हो, तिसके तांड नमस्कार हो ॥ ४४ ॥ इति श्रीम० श्रीमहादेव स्तोत्रम् ॥

इन पूर्वोक्त विशेषणोंवाले ब्रह्मा, विष्णु, महादेवकोही जैनमतवाले अर्हन्, अरिहंत, अरुहंत, अरह, जिन, तिर्यंकर, इत्यादि नामोंसैं मानते हैं. क्योंकि, जैनमतमें अरिहंत है, सोही ब्रह्मा, विष्णु, महादेव है. “यदुक्तं श्रीमन्मानतुङ्गसूरिप्रवरैः—”

बुद्धस्त्वमेव विबुधाचिंतबुद्धिबोधा-

त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात् ॥

धातासि धीरशिवमार्गविधेर्विधाना-

द्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥ २५ ॥

टीका ॥ अर्थान्तरकरणेनान्यदेवनाम्ना जिनं स्तुवन्नाह । बुद्धस्त्वमिति ॥

हे नाथ ! त्वमेव बुद्धः असि वर्त्तसे । असीति क्रियापदं । कः कर्त्ता । त्वं ।

कथंभूतस्त्वं । बुद्धः ज्ञाततत्त्वः । कस्मात् विबुधार्चितबुद्धिबोधात् । विबुधैः गणधरैर्देवैर्वा अर्चितः पूजितो बुद्धेः केवलज्ञानस्य बोधो वस्तुस्तोमपरिच्छेदो यस्य स विबुधार्चितबुद्धिबोधस्तस्मात् विबुधार्चितबुद्धिबोधात् इति बहुव्रीहिः । पक्षे बुद्धः । सप्तानामन्यतमः सुगतः केवलज्ञानाभावेन ज्ञाततत्त्वो नास्तीति भावः । हे नाथ ! त्वमेव शंकरोऽसि । असीति क्रियापदं । कः कर्त्ता । त्वं । कथंभूतस्त्वं । शंकरः । कस्मात् । भुवनत्रयशंकरत्वात् । भुवनत्रयस्य जगद्गीतयस्य शंकरत्वात् सुखकारित्वात् । भुवनानां त्रयं भुवनत्रयं इति तत्पुरुषः । भुवनत्रयस्य शं सुखं करोतीति भुवनत्रयशंकरस्तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् भुवनत्रयशंकरत्वात् । इति तत्पुरुषः । पक्षे शंकरो महादेवः स तु कपाली नग्नो भैरवः संहारकः तेन यथार्थनामा शंकरो नास्तीति भावः । हे धीर ! धियं बुद्धिं राति ददातीति धीरस्तस्य संबोधनं हे धीर ! धाता त्वं असि । कस्मात् । निष्पादनात् । कस्य शिवमार्गविधेः । शिवस्य मोक्षस्य मार्गः पन्था । तस्य विधिः रत्नत्रयरूपयोगस्तस्येति तत्पुरुषः । एतावता मोक्षमार्गविधेर्विधानात् त्वमेव धातासीत्यर्थः संपन्नः । पक्षे धाता ब्रह्मा स तु जडो वेदोपदेशान्नरकपथमुदजीघटत्तेन शिवमार्गविधेर्विधायको नास्तीति भावः । हे भगवन् ! त्वमेव व्यक्तं स्पष्टं पुरुषोत्तमः असि । पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तम इति तत्पुरुषः । पक्षे पुरुषोत्तम कृष्णः । स तु सर्वत्र कपटप्रकटनात् यथार्था पुरुषोत्तमतां न धत्ते इति भावः ॥ २५ ॥

भावार्थः—यह है कि, हे नाथ ! विबुधों, वा गणधरों, वा देवोंकरके पूजित केवलज्ञानके बोध वस्तु स्तोमके प्रगट करनेवाला होनेसे, तूही बुद्ध है. पक्षमें सातों बुद्धोंमेंसे अन्यतम सुगत केवलज्ञानके अभावकरके ज्ञाततत्त्व नहीं है. हे नाथ ! तीन भुवनकों, शं (सुख) करनेसे तू शंकर है. पक्षमें शंकर, महादेव, सो तो, कपाली, नग्न, भैरव संहारक होनेकरके यथार्थनामा शंकर नहीं है. हे धीर ! ज्ञानदर्शनचारित्ररूप मोक्षमार्गके विधिकों करनेसे तूही धाता है. पक्षमें धाता, ब्रह्मा, सो तो, जड है. वेदोपदेश (हिंसकशास्त्रोपदेश) से नरकपथकों प्रगट करता भया, तिसकरके शिवमार्गके विधिको करनेवाला नहीं है. हे भगवन् !

तू ही व्यक्त (प्रगट) पुरुषोंमें उत्तम है, पक्षमें पुरुषोत्तम, कृष्ण, सो तो, सर्वत्र कपटवशसें यथार्थ पुरुषोत्तम नहीं है ॥ २५ ॥

और अज्ञ लोकोंने, जो ब्रह्मा, विष्णु, महादेवके नामोंको कलंकित करे है, और तिनके असम्भ्यतारूप चरित लिखे हैं, वे देव यथार्थ ब्रह्मा विष्णु, महादेव नहीं माने जाते हैं, क्योंकि उन देवोंका चरित, और स्वरूप, जो परमतवालोंने लिखा है, तिस चरित स्वरूपसेही सिद्ध होता है कि वे यथार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नहीं थे.

तथाचाह भर्तृहरिः—॥

शंभुस्वयंभुहरयो हरिणेक्षणानां
येनाक्रियंत सततं गृहकुंभदासाः ॥

वाचामगोचरचरित्रपवित्रिताय*

तस्मै नमो भगवते मकरध्वजाय+ ॥ ४८ ॥

भावार्थः—जिस कामदेवने, शंभु (महादेव), स्वयंभु (ब्रह्मा), और हरि (विष्णु), इन्होंकों, हरिणसजान, ईक्षण (नेत्र) है जिनोंके, ऐसी स्त्रियोंके निरंतर घरके कुंभदास, अर्थात् पानी भरनेवाले करे हैं [दूसरी परतमें, ‘गृहकर्मदासाः’ ऐसा पाठ है. उसका अर्थ घरके काम करनेवाले दास, अर्थात् नौकर.] वचनके अगोचर चरित्र उन्हींकरके पवित्र, ऐसा जो भगवान् मकरध्वज (कामदेव) तिसकेतांड नमस्कार हो.

तथा भोजराजाकी सभाके मुख्य पंडित धनपालजी कहते हैं.

दिग्वासा यदि तत्किमस्य धनुषा तच्चेत्कृतं भस्मना
भस्माथास्य किमङ्गना यदि च सा कामं प्रति द्वेष्टि किमै ॥
इत्यन्योन्यविरुद्धचेष्टितमहो पश्यन्निजस्वामिनो
भृङ्गी सान्द्रसिरावनद्धपरुषं धत्तेस्थिशेषं वपुः ॥ १ ॥

* प्रत्यंतरे ‘वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय’—अर्थः—वाणीयोंके अगोचर अर्थात् वचनोंसें न कहे जावें ऐसे विचित्र, अद्भुत, आश्चर्यकारी, चरित्र है जिसके, ऐसा जो कामदेव भगवान् तिसकेतांड नमस्कार हो.

+ प्रत्यंतरे ‘कुसुमायुधाय’ यह कामदेवकाही पर्यायनाम है.

भावार्थ:-एकदा अवसरमें भोजराजा शिवालयके द्वारमें अति दुर्बल भृंगीगणकी मूर्ति देखके, पंडित श्रीधनपालजीकों पूछते भए कि, “हे पंडित ! यह भृंगीगण अति दुर्बल किस कारणसें है?” तब श्रीपंडित धनपालजीने कहा, “हे राजन् ! यह भृंगीगण, अपने स्वामी शंकरका असमंजस स्वरूप देखके चिंताकरके दुर्बल हो गया है;” सोही दिखाते है. भृंगीगण यह चिंता करता है कि, यदि महादेव, दिगंबर (दिशारूप वस्त्रका धारी) है, तो फेर इनकों धनुष काहेकों रखना चाहिये? क्योंकि, दिगंबर, निः-किंचन, होके धनुष रखना यह परस्पर विरुद्ध है. ॥ १ ॥ यदि, धनुषही रखना था, तो फेर शरीरको भस्म लगानेसें क्या लाभ है? क्योंकि, धनुषधारी होना यह योद्धे और अहेडी शकारीयोंका काम है, और भस्म शरीरको लगाना यह संतोंका काम है, जिसका किसीकेभी साथ बैर विरोध नहीं है. यह दूसरा विरोध. ॥ २ ॥ अथ जेकर भस्मही शरीरके लगाये संत बने, तो फेर स्त्रीकों संग काहेकों रखनी चाहिये? ॥ ३ ॥ जेकर स्त्रीही संग रखनी थी, तो फेर कामके ऊपर द्वेष करके उसकों भस्म क्यों करना था? ॥ ४ ॥ ऐसें परस्पर अपने स्वामीके विरुद्ध लक्षण देखके भृंगीगण दुर्बल हो गया है.

॥ अकलंकदेवोप्याह ॥

ईशः किं छिन्नलिङ्गो यदि विगतभयः शूलपाणिः कथं स्या-
न्नाथः किं भैक्ष्यचारी यतिरिति च कथं सांगनः सात्मजश्च ॥
आर्द्राजः किं त्वजन्मा सकलविदिति किं वेत्ति नात्मान्तरायं
संक्षेपात्सम्यगुक्तं पशुपतिमपशुः कोत्र धीमानुपास्ते ॥ १ ॥

भावार्थ:-जे कर शंकर, आप ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता, हर्त्ता है तो, ऋषिके शापसें उसका लिंग किस वास्ते टूट गया? और ईश्वर होके ऋषिके आगे नम्र होके काहेकों नाचा? और जेकर ईश्वर भयरहित है तो, शूलपाणि क्यों है? जे कर त्रिभुवननाथ है तो, क्यों भीख मांग-के खाता है? जे कर यति है तो, किसतरें स्त्रीसहित और पुत्रसहित है? जे कर आर्द्रा नक्षत्रसें जन्म लिया तो, अजन्मा (जन्मरहित)

किसतरह हुआ ? जेकर सर्वज्ञ है तो, आत्माकी अंतराय क्यों नहीं देखता ? अर्थात् घरघरमें भीख मांगता है, तब किसी घरसें भीख मिलती है, और किसी घरसें नहीं मिलती है; जिस घरसें भीख नहीं मिलती है, तिस घरमें भीख मांगनेको क्यों जाता है ? यह संक्षेपसें सम्यक् प्रकारसें कथन करा है. ऐसे पशुपति (महादेव) की, अपशु अर्थात् बुद्धिमान् मनुष्य कौन सेवा कर सक्ता है ? ॥ १ ॥ इस हेतुसें, जो कल्पित ब्रह्मा, विष्णु, महादेव हैं, वे जैनमतवालोंके उपास्य नहीं है. और जो यथार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव है, वे जैनोंके उपास्य है.

“इति श्रीविजयानन्दसूरिकृते तत्त्वनिर्णयप्रासादे किंचिद्दे-
वस्वरूपवर्णनो नाम द्वितीयः स्तम्भः ॥ २ ॥”

अथ तृतीयस्तम्भप्रारम्भः

द्वितीयस्तम्भमें यथार्थ ब्रह्मा विष्णु, महादेवका किंचिन्मात्र स्वरूप लिखा. अथ तृतीयस्तम्भमें तिन यथार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेवमें जे जे अयोग्य बातें हैं, तिनके व्यवच्छेदरूप श्रीमन्महावीरस्वामी स्तोत्र लिखते हैं.

इहां निश्चय विषमदुःषमअरूप रात्रितिमिरके दूर करनेकों सूर्यसमानने, और पृथिवीतलमें अवतार लेके अमृतसमान धर्मदेशनाके विस्तारसें परमा-
र्हत हुआ श्री कुमारपाल भूपालसें प्रवर्तित कराई अभयदान जिसका नाम ऐसी संजीविनी औषधिकरके जीवित करे नाना जीवोंने दीनी आशीर्वादरूप महात्म्यकल्प अर्थात् पंचम अरेपर्यंततांड स्थिर रह-
नेहारा स्थिर करा है विशद (निर्मल) यशःशरीरकरके जिन्होंने, और चातुरविद्यके निर्माण करनेमें एक ब्रह्मारूप श्रीहेमचंद्रसूरिने, जगत्में प्रसिद्ध श्रीसिद्धसेनदिवाकरविरचित बत्तीस बत्तीसियोंके अनुसार श्री-
वर्द्धमानजिनकी स्तुतिरूप, अयोग्यव्यवच्छेद और अन्य योग्यव्यव-

छेद नाम कियां दो वत्तीसियां पंडितजनोंके मनके तत्त्वबोध हेतुभूत रचीयां है. तिनमेंसें, प्रथम द्वात्रिंशिका सुगमार्थरूप है, इसवास्ते इसकी व्याख्या नहीं करते हैं, ऐसैं श्रीमल्लिखेणसूरि कहते हैं. परंतु इस कालके हमारे सरीखे मंदबुद्धियोंकों तो, प्रथम द्वात्रिंशिकाका अर्थ जानना बहुतही कठिन हो रहा है; तथापि, शिष्यजनोंकी प्रार्थनासें, और श्रीहेमचंद्रसूरिजीकी भक्तिके मिससें किंचिन्मात्र अर्थ लिखते हैं.

अगम्यमध्यात्मविदामवाच्यं वचस्विनामक्षवतां परोक्षम्
श्रीवर्द्धमानाभिधमात्मरूपमहं स्तुतेर्गोचरमानयामि ॥ १॥

व्याख्या:—(अहं) मैं हेमचंद्रसूरि (श्रीवर्द्धमानाभिधम्) श्रीवर्द्धमान नाम भगवंतकों (स्तुतेः) स्तुतिका (गोचरम्) विषय (आनयामि) करता हूं. कैसा है श्रीवर्द्धमान भगवंत (अध्यात्मविदाम्) अध्यात्मवेत्तायोंके (अगम्यम्) अगम्य है, अर्थात् अध्यात्मज्ञानीभी जिसका संपूर्ण स्वरूप नहीं जान सक्ते हैं. जे आत्माका, मनका और देहका, यथार्थ स्वरूप जानते हैं, तिनकों अध्यात्मवित् कहते हैं. तिनोंकेभी ज्ञानकरके श्रीवर्द्धमान भगवंतका स्वरूप अगम्य है. तथा (वचस्विनाम्) वचस्वी पंडितकों कहते हैं, मनःपर्यायज्ञानी, अवधिज्ञानी, पूर्व-धर, गणधरादि सर्व शास्त्रोंका वेत्ता. ऐसैं सद्बुद्धिमान् सर्व पापोंसें दूर वर्त्तनेवाले ऐसैं पंडितोंके वचनों करके श्रीवर्द्धमान भगवंतका स्वरूप (अवाच्यम्) अवाच्य है, अर्थात् ऐसैं पंडितभी जिनका संपूर्ण स्वरूप नहीं कह सक्ते हैं. क्योंकि, श्रीवर्द्धमान भगवंत अनंतस्वरूप गुणवान् है; और छद्मस्थके तो ज्ञानमेंही वे सर्वगुण नहीं आ सक्ते हैं तो, तिन सर्वका स्वरूप कथन करना तो दूरही रहा. तथा (अक्षवताम्) नेत्रों-वालोंके (परोक्षम्) परोक्ष है; यद्यपि संप्रति कालके नेत्रोंवालोंके तो भगवंतका स्वरूप देखना परोक्षही है, परंतु भगवंतके जीवनमोक्षके समयमें भी नेत्रोंवालोंकेभी श्रीभगवंतका स्वरूप परोक्षही था. क्योंकि, समवसरणमेंभी विराजमान भगवंतका अनंत गुणात्मक स्वरूप, नेत्रों-वाले नहीं देख सक्ते थे. तथा कैसे है श्रीवर्द्धमानाभिध भगवंत (आत्मरूपम्) आत्मरूप है. आत्मा शब्दका अर्थ ऐसा है कि, अतति

सततं निरंतर अवगच्छति जानता है: अतः 'सात्यतगमने' इस वचनसे, अतः धातुकों गत्यर्थ होनेसे, और गत्यर्थ सर्व धातुयोंको ज्ञानार्थत्व होनेसे, तब तो, अनवरत निरंतर जो जानें ऐसे निपातसे, आत्मा, जीव, उपयोग, लक्षण होनेसे, आत्मा सिद्ध होता है. और सिद्ध मोक्षावस्था संसारी अवस्था दोनोंमेंभी, उपयोगके भाव होनेकरके निरंतर अवबोधके होनेसे, जेकर निरंतर अवबोध न होवे, तब तो अजीवत्वका प्रसंग होवेगा; और अजीवको फेर जीव होनेके अभावसे, जेकर, अजीवभी जीव हो जावे, तब तो, आकाशादिकोंकोभी जीवत्व होनेका प्रसंग होवेगा. तब तो, जीवादि व्यवस्थाकाही भंग होवेगा. इसवास्ते, निरंतर अवबोधरूप होनेसे, आत्मा कहते हैं. अथवा, अतति सततं निरंतरं गच्छति प्राप्त होता है, अपनी ज्ञानादिपर्यायांकों जो, सो आत्मा है.

पूर्वपक्षः—ऐसे तो आकाशादिकोंको भी, आत्मशब्दके व्यपदेशका प्रसंग होवेगा. क्योंकि, वेभी अपनी अपनी पर्यायांकों प्राप्त होते हैं; अन्यथा अपरिणामी होनेकरके, अवस्तुत्वका प्रसंग होवेगा.

उत्तरपक्षः—जैसे तुम कहते हो, तैसे नहीं है. क्योंकि, दो प्रकारके शब्द होते हैं. व्युत्पत्तिमात्रनिमित्तरूप, और प्रवृत्तिनिमित्तरूप; तिसमें यह तो व्युत्पत्तिमात्रही है, और प्रवृत्तिनिमित्तसे तो जीवही आत्मा है. न आकाशादि. अथवा, संसारी अपेक्षा नानागतियोंमें निरंतर गमन करनेसे, और मुक्तात्माकी अपेक्षाभूततद्भावसे आत्मा कहते हैं. यह आत्मा शब्दका अर्थ है. सो आत्मा, तीन प्रकारका है. बाह्यात्मा १, अंतरात्मा २, परमात्मा ३. तिनमें जो परमात्मा है, तिसका स्वरूप ऐसा है, जो शुद्धात्मस्वभावके प्रतिबंधक कर्म शत्रुयोंको हणके निरूपमोक्ष केवलज्ञानादि स्वसंपद पाकरके, करतलामलकवत् समस्त वस्तुके समूहको विशेष जानते और देखते हैं; और परमानंदसंपन्न होते हैं; वे तेरमें चौदमें गुणस्थानवर्ती जीव, और सिद्धात्मा, शुद्धस्वरूपमें रहनेसे, परमात्मा कहे जाते हैं. ऐसा परमात्मास्वरूप है, जिसका ॥ १ ॥

इस काव्यका भावार्थ यह है कि, सपाद लक्ष पंचांगव्याकरणादि साढ़ेतीन कोटि श्लोकोंके कर्त्ता, श्रीहेमचंद्राचार्य, अपने आपको श्रीवर्द्ध-

मान भगवंतकी संपूर्ण स्तुति करनेकी सामर्थ्य न देखते हुए, अपने आपको कहते हैं कि, जो वर्द्धमान भगवंत परमात्मरूप है, जो अध्यात्म ज्ञानियोंके अगम्य है, जो वचस्वियोंके अवाच्य है, और जो नेत्रवालोंके परोक्ष है, तिनकों मैं स्तुतिका विषय करता हूँ, यह बड़ाही मेरा साहस है. तब मानूँ श्री वर्द्धमान भगवंत साक्षात्ही श्री हेमचंद्राचार्यों कहते हैं कि, “हे हेमचंद्र! जेकर तू मेरी स्तुति करनेकों शक्तिमान् नहीं है तो, तू किसवास्ते मेरी स्तुति करनेकों उद्यम करता है?” तब श्री हेमचंद्राचार्य भगवतको मानूँ साक्षात्ही कहते हैं.

स्तुतावशक्तिस्तव योगिनां न किं गुणानुरागस्तु ममापि निश्चलः
इदं विनिश्चित्य तव स्तवं वदन्न बालिशोऽप्येष जनोऽपराध्यति२

व्याख्या—“हे भगवन्! (तब) तेरी (स्तुतौ) स्तुति करनेमें (किम्) क्या (योगिनाम्) योगियोंकों (अशक्तिः) असमर्थता (न) नहीं है ? अपितु है; अर्थात् हे भगवन्! तेरी स्तुति करनेकी योगियोंमेंभी शक्ति नहीं है, परंतु तिनोंनेभी तेरी स्तुति करि है.” तब मानूँ भगवान् फेर साक्षात् श्री हेमचंद्रजीकों कहते हैं कि, “हे हेमचंद्र! योगियोंकों मेरे गुणोंमें अनुराग है, इस वास्ते तिनोंने मेरी स्तुति करि है. जो गुण रागी करेगा सो समीची नहीं करेगा” तब श्रीहेमचंद्रजी कहते हैं (गुणानुरागस्तु ममापि निश्चलः) “गुणानुराग तो मेरा भी निश्चल है; अर्थात् हे भगवन्! तेरे गुणोंका राग तो मेरेभी अति दृढ है. (इदम्) यही वार्त्ता (विनिश्चित्य) अपने मनमें चिंतन करके अर्थात् निश्चय करके (तव स्तवं वदन्) तेरी स्तुति कहता हुआ (बालिशः अपि) मूर्ख भी (एष जनः) यह हेमचंद्र (नअपराध्यति) अपराधका भागी नहीं होता है.

अथ स्तुतिकार अपनी निरभिमानता और पूर्वाचार्योंकी बहुमानता सूचन करते हैं.

क सिद्धसेनस्तुतयो महार्था अशिक्षितालापकला क चैषा ॥

तथापि यूथाधिपतेः पथस्थः स्खलद्गतिस्तस्य शिशुर्न शोच्यः॥३॥

व्याख्या—हे भगवन् ! (क) कहां तो (महार्थाः) अति महा अर्थ संयुक्त (सिद्धसेनस्तुतयः) सिद्धसेनदिवाकरकी करी हुई स्तुतियां, और (क) कहां (एषा) यह (अशिक्षितालापकला) नहीं सीखा है अब तक पूरा पूरा बोलनाभी जिसने, तिसके कहनेकी स्तुतिरूप कला; अर्थात् कहां श्रीसिद्धसेनदिवाकरराचित महा अर्थवालिआ बत्तीस बत्ती-सियां, और कहां मेरे अशिक्षित आलापकी यह स्तुतिरूप कला; (तथापि) तोभी, (यूथाधिपतेः) हाथियोंके यूथाधिपके (पथस्थः) पथ मार्गमें रहा हुआ (स्वलद्वतिः) स्वलित गतिभी, अर्थात् पथसें इधर उधर गति स्वलायमान् भी (तस्य) तिस यूथाधिपका (शिशुः) बालक कलम (न शोच्यः) शोचनीय नहीं है. ऐसेही श्री सिद्धसेनदिवाकर गच्छाधिप है, और मैं तिनका (बालक) बच्चा हूं. जिस रस्तेपर वे चले हैं, मैंभी तिसही रस्तेमें रहा हुआ, अर्थात् तिनकी तरहही स्तुति करता हुआ, जेकर स्वलायमानभी होजावुं, तोभी शोचनीय नहीं हूं.

अथाग्रे श्रीहेमचंद्रसूरि अयोग व्यवच्छेदरूप भगवंतकी स्तुति रचते हैं.

जिनेन्द्र यानेव विबाधसे स्म दुरंतदोषान् विविधैरुपायैः ॥

त एव चित्रं त्वदसूययेव कृताः कृतार्थाः परतीर्थनाथैः ॥१॥

व्याख्या—हे जिनेन्द्र ! (यानेव) जिनही (दुरंतदोषान्) दुरंतदूषणाकों (विविधैः) विविध प्रकारके (उपायैः) उपायोंकरके (विबाधसे) तुम बाधित करते हुए हैं, अर्थात् जिन दुरंतदूषण राग, द्वेष, मोहादिकोंको नाना प्रकारके संयम, तप, ज्ञान, ध्यान, साम्यसमाधि, योग, लीनतादि उपायोंकरके दूर करे हैं; (चित्रम्) मुझकों बडाही आश्चर्य है कि, (त एव) वेही दुरंतदूषण (परतीर्थनाथैः) परतीर्थनाथोंने (त्वदसूययेव) तेरी असूया करकेही (कृतार्थाः) कृतार्थ (कृताः) करे हैं, अर्थात् अच्छे जानके स्वीकार करे हैं; सोही दिखाते हैं.

हे भगवन् ! प्रथम रागकों तैने दूर करा; तिस रागकोंही परतीर्थनाथों-ने स्वीकार करा है. क्योंकि, रागका प्रायः मूल कारण स्त्री है, सो तो, तीनोंही देवने अंगीकार करी है. ब्रह्माजीने सावित्री, शंकरने पार्वती,

और विष्णुने लक्ष्मी. और पुत्र पुत्रीयां साम्राज्य परिग्रहादिकी ममताभी सर्व देवोंके तिनके शास्त्रोंके कथनानुसारही सिद्ध है. और अप्रीतिलक्षणद्वेषभी पूर्वोक्त देवोंमें सिद्ध है. क्योंकि, जो शस्त्र रखेगा सो यातो वैरीके भयसे अपनी रक्षाकेवास्ते रखेगा, यातो अपने वैरियोंको मारने वास्ते रखेगा; शंकर धनुष, बाण, त्रिशूलादि; और विष्णु चक्र, धनुष, बाण, गदादि; और ब्रह्मादि तीनो देवोंने अनेक पुरुषोंको शाप दिये महाभारतादि ग्रंथोंमें प्रसिद्ध है; और शंकर विष्णुने अनेक जनोंके साथ युद्ध करे हैं; इत्यादी अनेक हेतुओंसे, तीनो देव, द्वेषी सिद्ध होते हैं. और मोह, अज्ञानभी, तीनो देवादिक परतीर्थनाथोंने स्विकार करा है. क्योंकि, जपमाला रखनेसे अज्ञानी सिद्ध होते हैं, जपमाला जपकी गिणती वास्ते रखते हैं, जपमालाविना जपकी गिणती (संख्या) न जाननेसे, अज्ञानिपणा सिद्ध है. और महाभारत, रामायण, शिवपुराणादि ग्रंथोंके कथनसे, तीनो देव, अस्मदादिकोंकी तरह अज्ञानी सिद्ध होते हैं. जैसे, शिवके लिंगका अंत ब्रह्मा विष्णुको न मिला, इत्यादि अनेक उदाहरण है. तिससे, तीनो देव अज्ञानी सिद्ध होते हैं. तथा हास्य, रति, अरति, भय, जुगुप्सा, शोक, काम, मिथ्यात्व, निद्रा, अविरति, पांच विघ्नादि दूषणभी, तीनो देवादिकोंमें तिनके कथन करे शास्त्रोंसेही सिद्ध होते हैं.

इस वास्ते मानूं हे जिनेंद्र ! तीनो देवोंने तेरी ईर्ष्या करकेही पूर्वोक्त दूषण अंगीकार करे हैं. यह प्रायः जगत्में प्रसिद्धही है कि, जो निर्द्वन्द्व धनाढ्यका स्पर्धी, जब धनाढ्यकी बराबरी नहीं करसक्ता है, तब धनाढ्यकी ईर्ष्यासे विपरीत चलना अंगीकार करता है. तैसेही, परतीर्थनाथोंने हे भगवन् ! तेरेको सर्व दूषणोंसे रहित देखके तेरी ईर्ष्यासेही मानूं सर्व दूषण कृतार्थ करे हैं, यह मेरेको बड़ाही आश्चर्य है. ॥ ४ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंतमें असत् उपदेशकपणे काव्य वछेद करते हैं.

यथास्थितं वस्तु दिशन्नधीश न तादृशं कौशलमाश्रितोऽसि ॥

तुरंगशृंगाण्युपपादयद्गघो नमः परेभ्यो नवपण्डितेभ्यः ॥५॥

व्याख्या—हे अधीश ! हे जिनेंद्र ! तूं (यथास्थितं) यथास्तित (वस्तु) व-

तुस्कां स्वरूप (दिशन्) कथन करता हुआ (तादृशं) तैसी (कौशलं) कौशलता-चातुर्यताकों (न) नहीं (आश्रितोसि) आश्रित-प्राप्त हुआ है, जैसी चातुर्यताकों असद्रूप पदार्थकों, सद्रूप कथन करते हुए परवादी प्राप्त हुए हैं, अर्थात् जीव १, अजीव २, पुण्य ३, पाप ४, आस्रव ५, संवर ६, निज्जरा ७, बंध ८, और मोक्ष ९, यह नव पदार्थ है। तिनमें जो जीव है, सो ज्ञानादि धर्मोंसे कथंचित् भिन्नाभिन्न रूप है, शुभाशुभ कर्मोंका कर्त्ता है, अपने करे कर्मोंका फल अपने अपने निमित्तों द्वारा भोक्ता है, नरक, तिर्यच, मनुष्य, देव रूप चार गतिमें अपने कर्मोंके उदयसे भ्रमण करता है, सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप साधनोंसे निर्वाण पदकों प्राप्त होता है, चैतन्य अर्थात् उपयोगही जिसका लक्षण है, अपने कर्मजन्य शरीर प्रमाण व्यापक है, द्रव्यार्थिक नयके मतसे नित्य है, पर्यायार्थिक नयके मतसे अनित्य हैं, द्रव्यार्थ स्वरूपसे अनादि अनंत है, पर्यायार्थ सादि सांत है, और कर्मोंके साथ प्रवाहसे अनादि संयोग संबंधवाला है, इत्यादि विशेषणोंवाला जीव है ॥ १॥

चैतन्यरहित, अज्ञानादि धर्मवाला, रूप, रस गंध, स्पर्शादिकसे भिन्नाभिन्न, नरामरादि भवांतरमें न जानेवाला, ज्ञानावरणादि कर्मोंका अकर्त्ता, तिनोंके फलका अभोक्ता, जड स्वरूप, इत्यादि विशेषणोंवाला रूपी, अरूपी, दो प्रकारका अजीव है। तिनमें परमाणुसे लेके जो वस्तु वर्ण गंध रस स्पर्श संस्थानवाला दृश्य है, वा अदृश्य है, सो सर्व रूपी अजीव है। तथा धर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, और काल, ये चारों अरूपी अजीव है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, यह तीनों द्रव्यसे एकैक द्रव्य है, क्षेत्रसे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय यह दोनों लोकमात्र व्यापक है, आकाशास्तिकाय, लोकालोक व्यापक है, कालसे तीनों ही द्रव्य अनादि अनंत है, और भावसे वर्ण गंध रस स्पर्शरहित, और गुणसे धर्मास्तिकाय चलनेमें सहायक है, और अधर्मास्तिकाय स्थितिमें सहायक है, और आकाशास्तिकाय सर्व द्रव्योंका भाजन विकाश देनेमें सहायक है। काल, द्रव्यसे एक वा अनंत है, क्षेत्रसे अडाइ द्वीप प्रमाण व्यावहारिक काल है, कालसे अनादि अनंत है, भावसे वर्ण गंध रस

स्पर्श रहित, गुणसें नव पुराणादि करनेका हेतु है. और रूपी अजीव पुद्गल रूप द्रव्यसें पुद्गल द्रव्य अनंत है, क्षेत्रसें लोकप्रमाण है, कालसें अनादि अनंत है, भावसें वर्ण गंध रस स्पर्श वाला है. मिलना और विच्छेद जाना यह इसका गुण है; इन पूर्वोक्त पांचों द्रव्योंका नाम अजीव है. २.

तथा पुण्य जो है, सो शुभ कर्मोंके पुद्गल रूप है, जिनके संबंधसें जीव सांसारिक सुख भोगता है. ३. इससें जो विपरीत है सो पाप है. ४. मिथ्यात्व (१) अविरति (२) प्रमाद (३) कषाय (४) और योग (५) यह पांच बंधके हेतु है; इस वास्ते इनकों आस्रव कहते हैं, ५. आस्रवका निरोध जो है सो संवर है, अर्थात् सम्यग्दर्शन, विरति, अप्रमाद, अकषाय, और योगनिरोध, यह संवर है. ६. कर्मका और जीवका क्षीरनीरकी तरें परस्पर मिलना तिसका नाम बंध है. ७. बंधे हुए कर्मोंका जो क्षरणा है सो निर्जरा है. ८. और देहादिकका जो जीवसें अत्यंत वियोग होना और जीवका स्वस्वरूपमें अवस्थान करना तिसका नाम मोक्ष है. ९. *

इन पूर्वोक्त नवही तत्त्वोंका स्याद्वाद शैलीसें शुद्ध श्रद्धान करना तिसका नाम सम्यग्दर्शन है; और इनका स्वरूप पूर्वोक्त रीतिसें जानना तिसका नाम सम्यग्ज्ञान है; और सत्तरें भेदे संयमका पालना तिसका नाम सम्यक्चारित्र है; इन तीनोंका एकत्र समावेश होना तिसका नाम मोक्षमार्ग है; जड, और चैतन्यका जो प्रवाहसें मिलाप है, सो संसार है; यह संसार प्रवाहसें अनादि अनंत है, और पर्यायोंकी अपेक्षा क्षण विनश्वर है. इत्यादि वस्तुका जैसा स्वरूप था, तैसाही, हे जिनाधीश ! तैने कथन करा है, ऐसे कथन करनेसें तैने कोई नवीन कुशलता-चातुर्यता नहीं प्राप्त करी है. क्योंकि, जेसें अतीतकालमें अनंत सर्वज्ञोंने वस्तुका स्वरूप यथार्थ कथन करा है, तैसाही तुमने कथन करा है, इस वास्ते, (तुरंगशृंगाण्युपपादयद्भ्यः) घोड़ेके श्रृंग उत्पन्न करनेवाले (परेभ्यः नवपंडितेभ्यः) पर नवीन पंडितोंके तांड (नमः) हमारा नमस्कार होवे, अर्थात् जिनोंने तुरंगश्रृंग समान असत् पदार्थ कथन करके

* जीवाजीवादि नव पदार्थोंका स्वरूप जैनतत्त्वादर्श ग्रंथमें विस्तारसें लिखा है, इस वास्ते यहां नहीं लिखा है.

जगत्वासी मनुष्यांको मिथ्यात्व अंधकार संसारकी वृद्धिके हेतुभूत मार्गमें प्रवृत्तन कराया है, तिनोंकेतांड हम नमस्कार करते हैं. ये तुरंगशृंग समान पदार्थ यह है. एकही ब्रह्म है, अन्य कुछभी नहीं है, १. पूर्वोक्त ब्रह्मके तीन भाग सदाही निर्मल है और एक चौथा भाग मायावान् है, २. ब्रह्म सर्वव्यापक है, ३. सक्रिय है, ४. कूटस्थ नित्य है, ५. अचल है, ६. जगत्की उत्पत्ति करता है, ७. जगत्का प्रलय करता है, ८. ऊर्णनामकीतरें सर्व जगत्का उपादान कारण है, ९. सदा निर्लेप सदा मुक्त है, १०. यह जगत् भ्रममात्र है, ११. इत्यादि तो वेद और वेदांत मतवालोंने तुरंगशृंग समान वस्तुओंका कथन करा है.

और सांख्य मतवालोंने एक पुरुष चैतन्य है, नित्य है, सर्वव्यापक है, एक प्रकृति जडरूप नित्य है, तिस प्रकृतिसें बुद्धि उत्पन्न होती है, बुद्धिसें अहंकार, अहंकारसे षोडशकागण, पांच ज्ञानेन्द्रिय, (पांच कर्मेन्द्रिय, इन्द्रिया-रमा मन, और पांच तन्मात्र, एवं षोडश) पांच तन्मात्रसे पांच भूत एवं सर्व, २५ प्रकृति जडकर्त्ता है, और पुरुष तिसका फल भोक्ता है, पुरुष निर्गुण है, अकर्त्ता है, अक्रिय है, परंतु भोक्ता है, इत्यादि सर्व कथन तुरंगशृंगकीतरें असद्रूप करा है.

नैयायिक वैशेषिक यह दोनों ईश्वरको सृष्टिका कर्त्ता मानते हैं, ईश्वर नित्य बुद्धिवाला है, सर्वव्यापक और नित्य है, ईश्वरही सर्व जीवोंका फलप्रदाता है, आत्मा अनंत है परंतु सर्वही आत्मा सर्वव्यापक है, मोक्षावस्थामें ज्ञानके साथ समवायसंबंधके तूटनेसे आत्मा चैतन्य नहीं रहता है, और तिसकों स्वपरका भान नहीं होता है, इत्यादि सर्व कथन तुरंगशृंग उपपादनवत् है.

पूर्व मीमांसावाले कहते हैं कि ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है, मोक्ष नहीं है, वेद अपौरुषेय और नित्य है, वेदका कोई कर्त्ता नहीं है, इत्यादि सर्व कथन तुरंगशृंग उपपादनवत् असत् है.

बौद्ध मतके मूल चार संप्रदाय है,—योगाचार (१), माध्यमिक (२), वैभाषिक (३), सौतांत्रिक (४); इनमें योगाचार मतवाले विज्ञानाद्वैतवादी हैं, आत्माको नहीं मानते हैं, एक विज्ञान क्षणकोही सर्व कूट

मानते हैं; कितनेक विज्ञान क्षणोंके संतानके नाशकोही निर्वाण मानते हैं; कितनेक शून्यवादी सर्व शून्यही सिद्ध करते हैं, इत्यादि सर्व कथन तुरंगशृंग उपपादनवत् है।

इन पूर्वोक्त, सर्वदादियोंका कथन जिस रीतिसे तुरंगशृंग उपपादनवत् असत् है, सो कथन अन्य योग्य व्यवच्छेदक द्वात्रिंशिकावृत्ति, (स्याद्वाद मंजरी,) षट्दर्शनसमुच्चय बृहद्वृत्ति, प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार सूत्रकी लघु वृत्ति (रत्नाकरावतारिका,) बृहद्वृत्ति (स्याद्वाद रत्नाकर,) धर्म संग्रहणी, अनेकांत जयपताका, शब्दांभोनिधि, गंधहस्ति-महाभाष्य, (विशेषावश्यक,) वादमहार्णव, (सम्मतितर्क,) इत्यादि शास्त्रों-से जानना।

इन पूर्वोक्त वादियोंने असत् वस्तुकों सत् करके कथन करनेमें जैसी कुशलता प्राप्त करी है, तैसी, हे जिनाधीश ! तैने नही पाई है इस वास्ते, तिन परपंडितोंकेतांड हमारा नमस्कार होवे. इहां जो नमस्कार करा है, सो उपहास्य गर्भित है, नतु तत्त्वसें ॥ ५ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंतमें व्यर्थ दयालुपणेका व्यवच्छेद करते हैं.

जगत्पनुध्यानबलेन शश्वत् कृतार्थयत्सु प्रसभं भवत्सु ॥

किमाश्रितोन्यैः शरणं त्वदन्यः स्वमांसदानेन वृथा कृपालुः॥६॥

व्याख्या—हे भगवंतः ! (जगति) जगत्में (शश्वत्) निरंतर (प्रसभं) यथास्यात् तैसें हठसें (भवस्तु) तुमारेकों (कृतार्थयत्सु) जगत्वासी जीवां-कों कृतार्थ करते दूआं, किस करके (अनुध्यान बलेन) अनुध्यान शब्द अनुग्रहका वाचक है, अनुग्रहके बल करके, अथात् सद्धर्मदेशनाके बल करके भव्य जीवोंके तारने वास्ते निरंतर जगत्में प्रसभसें—हठसें देशनाके बलसें जनोको कृतार्थ करते दूए, क्योंकि परोपकार निरपेक्ष अर्थात् बदलेके उपकारकी अपेक्षा रहित जो अनुग्रहके बलसें भव्य जनोको मोक्षमार्गमें प्रवर्त करना है, इसके उपरांत अन्य कोइभी ईश्वरकी दयालुता नही है, जे कर बिनाही उपदेशके दयालु ईश्वर तारने समर्थ है, तो फेर द्वादशांग, चार वेद, स्मृति, पुराण, बैबल, कुरानादि पुस्तकों द्वारा उपदेश प्रगट

करना व्यर्थ सिद्ध होवेगा; इस वास्ते ईश्वरकी यही दयालुता है, जो भव्य जनोंको उपदेश द्वारा मोक्षमार्ग प्राप्त करना सो, तो आप निरंतर जगत्में करही रहे हैं, ऐसे आप परम कृपालुको छोड़के (अन्यैः) अन्य परवादीयोंने (त्वदन्यः) तुमारेसें अन्यको (शरणं) शरणभूत (किम्) किस-वास्ते (आश्रितः) आश्रित किया है—माना है ? कैसा है वो अन्य? (स्वमांस-दानेन वृथा कृपालुः) अपना मांस देने करके जो वृथा कृपालु है; आत्मा-का घात, और परको अपना मांस देके तृप्त करना, यह वृथाही कृपालु-का लक्षण है, क्योंकि, ऐसी कृपालुतासें परजीवका कल्याण नहीं होता है, असद्धर्मोपदेशरूप होनेसें. बुद्धका यह कहना है कि, मेरे सन्मुख कोई व्याघ्र सिंहादिक भूखसें मरता होवे तो, मैं अपना मांस देके तिसकी क्षुधा निवारण करूं, मैं ऐसा दयालु हूं. और क्षेमेंद्रकविविचित बोधि सत्त्व-अवदान कल्पलतामें बोधि सत्त्वने पूर्व जन्मांतरमें अपना शरीर सिंहको भक्षण करवाया था ऐसा कथन है, इस वास्ते बुद्ध अपने आपको स्वमांसके देनेसें कृपालु मानता था, परंतु यह कृपालुता व्यर्थ है. ॥ ६ ॥

अथाग्रे आचार्य असत्पक्षपातीयोंका स्वरूप कहते हैं.

स्वयं कुमार्गं लपतां नु नाम प्रलम्भमन्यान्पि लम्भयन्ति ॥

सुमार्गं तद्विदमादिशन्तमसूयान्धा अवमन्वते च ॥ ७ ॥

व्याख्या—(असूययांधाः) ईर्ष्या करको जे पुरुष अंधे है वे (स्वयं) आपतो (कुमार्गं) कुमार्गको (लपतां) कथन करो ! प्रबल मिथ्यात्व मोह-के उदय होनेसें जैसे मद्यप पुरुष मदके नशेमें, जो चाहो सो असमं-जस वचन बोलो तैसेंही मिथ्यात्वरूप धतूरेके नशेसें ईर्षाध पुरुष कुमार्ग, अर्थात् अश्वमेध, गोमेध, नरमेध, अजामेध, अंत्येष्टि, अनुस्तरणि, मधुपर्क, मांस आदिसें श्राद्ध करना, ब्राह्मणोंके वास्ते शिकार मारके लाना, परमेश्वरको जीव वध करके बलिका देना, मोक्ष प्राप्तको फेर ज-गत्में जन्म लेना, तीर्थोंमें स्नान करनेसें सर्व पापोंसें छूटना, काशीमें मरणसें मोक्षका मानना, अरूपी, अशरीरी, सर्वव्यापक, मुखादि अव-यव रहित, ऐसे परमेश्वरको वेदादि शास्त्रोंका उपदेष्टा मानना, अग्निमें

घृतादि द्रव्योंके हवन करनेसे पवन सुधरता है, तिससें मेघ शुद्ध वर्षता है, तिससें मनुष्य निरोग्य रहते हैं, यह अग्निके हवन करनेसे महान् उपकार है ऐसा मानना, वेदोंमें ईश्वरने मांस खानेकी आज्ञा दीनी है, वेदमंत्र पवित्रित मांस खानेमें दूषण नहीं, निरंतर मांससें हवन करना, केवल क्रियासेंही मोक्ष मानना, केवल ज्ञानसेंही मोक्ष मानना, रागी, द्वेषी, अज्ञानी, कामीकों परमेश्वर कथन करना, सारंभी, सपरिग्रहीकों साधु मानना, पशुओंकों मारना चाहिये, नहीं तो यह बहुत हो गए तो, मनुष्योंकी हानि करेंगे, स्त्रीकों इग्यारह खसम करने, ऐसे नियोगकी ईश्वरकी आज्ञा है, इत्यादि कुमार्गका उपदेश करो ! कर्मके उदयकों अनिवार्य होनेसें (नु) अव्यय है, खेदार्थमें तिससें बड़ा खेद है (नाम) कोमलामंत्रणमें है वा प्रसिद्धार्थमें है तब तो ऐसा अर्थ हुवा कि, बड़ाही खेद है कि ऐसे असूया करके अंध पुरुष (अन्यानपि) अन्य जगत्वासी मनुष्योंकोंभी (प्रलम्भ) कुमार्गके लाभ-प्राप्तिकों (लम्भयन्ति) प्राप्ति कराते हैं, अर्थात् आप तो कुमार्गकी देशना करनेसें नाशकों प्राप्त हुए हैं, परं अन्य जनोंकाभी कुमार्गमें प्रवर्त्ताके नाश करते हैं. इतना करकेभी संतोषित नहीं होते हैं, बलकि वे, असूया इर्षा करके अंधे (सुमार्गगं) सुमार्ग गत पुरुषकों, (तद्विदं) सुमार्गके जानकारकों और (आदिशन्तं) सुमार्गके उपदेशकों (अवमन्वते) अपमान करते हैं. जैसें यह ईश्वरकों जगत्कर्त्ता नहीं मानते हैं, वेदोंके निन्दक हैं, वेद बाह्य हैं, नास्तिक हैं, जगत्कों प्रवाहसें अनादि मानते हैं, कर्मका फलप्रदाता निमित्तकों मानते हैं, परंतु ईश्वरको फलप्रदाता नहीं मानते हैं, आत्माकों देहमात्र व्यापक मानते हैं, षट्कायको जीव मानते हैं, इत्यादि अनेक तरेसें अपना मत चलाते हैं; इस वास्ते अहो लोको ! इनके मतका श्रवण करना तथा इनका संसर्ग करना, अच्छा नहीं है, इत्यादि अनेक वचन बोलके पूर्वोक्त तीनोंका अपमान करते हैं. ॥ ७ ॥

अथाग्रे भगवत्के शासनका महत्त्व कथन करते हैं.

प्रादेशिकेभ्यः परशासनेभ्यः पराजयो यत्तव शासनस्य

खद्योतपोतद्युतिडम्बरेभ्यो विडम्बनेयं हरिमण्डलस्य ॥ ८ ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र ! (परशासनेभ्यः) पर शासनोंसें, कैसें पर शासनोंसें? (प्रादेशिकेभ्यः) प्रमाणका एक अंश माननेसें जे मत उत्पन्न हूए है, अर्थात् एक नयको मानके जे परमत वादीयोंने उत्पन्न करे हैं, तिनका नाम प्रादेशिक मत है. आत्मा एकांत नित्यही है, वा क्षणनश्वरही है, वस्तु सामान्य रूपही है, वा विशेष रूपही है वा सामान्य विशेष स्वतंत्रही पृथक् २ है, कार्य सत्ही उत्पन्न होता है, वा असत्ही उत्पन्न होता है, गुण गुणीका एकांत भेदही है, वा एकांत अभेदही है, एकही ब्रह्म है, इत्यादि प्रादेशिक परमतोंसें (यत्) जो (तव शासनस्य) तेरे शासनका (पराजय) पराजय है, सो, ऐसा है, जैसा (खद्योतपोतद्युतिडम्बरेभ्यः) खद्योतके बच्चेकी पांखोंके प्रकाश रूप अडंबरसें (हरि मंडलस्य) सूर्यके मंडलकी (इयं) येह (विडम्बना) विटंबना अर्थात् पराभव करना है, भावार्थ यह है कि, क्या खद्योतका बच्चा अपनी पांखोंके प्रकाशसें सूर्यके प्रकाशको पराभव कर सकता है? कदापि नहीं कर सकता है. तैसेंही, हे जिनेंद्र ! एक नया भास मतके माननेवाले वादी, खद्योत पोतवत् तेरे अनंत नयात्मक स्याद्वाद मतरूप सूर्यमंडलका पराभव कदापि नहीं कर सक्ते हैं ॥ ८ ॥

भगवंतका शासन सर्व प्रमाणोंसें सिद्ध है. अथ, जो ऐसे शासनमें संशय करता है, क्या जाने यह भगवंत अर्हन्का शासन सत्य है, वा नहीं? अथवा, जो भगवंतके शासनमें विवाद करता है कि, यह शासन सत्य नहीं है, ऐसे पुरुषकों स्तुतिकार उपदेश करते हैं.

शरण्यपुण्ये तव शासनेऽपि संदेग्धि यो विप्रतिपद्यते वा ॥

स्वादौ सतथ्ये स्वहिते च पथ्ये संदेग्धि वा विप्रति पद्यते वा ॥ ९ ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र ! (शरण्यपुण्ये) शरणागतकों जो त्राण करणे योग्य होवे तिसकों शरण्य कहते हैं तथा पुण्य पवित्र ऐसे (तव) तेरे (शासनेपि) शासनके हूएभी (यो) जो पुरुष तेरे शासनमें (संदेग्धि) संदेह करता है (वा) अथवा (विप्रतिपद्यते) विवाद करता है, सो पुरुष (स्वादौअत्यंत) स्वादवाले (तथ्ये) सच्चे

(स्वहिते) स्वहितकारी (च) और (पथ्ये) निरोग्यतामें साहायक ऐसे सुंदर भोजनमें (संदेग्धि) संशय करता है, क्या जाने यह भोजन, स्वादु, तथ्य, स्वहितकारी, पथ्य है, वा नहीं ? (वा) अथवा (विप्रति-पद्यते) विवाद करता है, यह भोजन, स्वादु, तथ्य, स्वहितकारी, पथ्य, नहीं है, यह तिसकी प्रगट अज्ञानता है. अंतिमका वा, पाद पूरणार्थ है. काव्यका भावार्थ यह है कि, हे जिनेंद्र ! शरणागतकों त्राण करनेवाला ते-रा शासन शरण्य रूप है “ चत्तारि सरणमिति वचनात् ”—चारही वस्तुयें जगत्में शरण्य हैं. अरिहंत, १, सिद्ध, २, साधु, ३, और केवलज्ञानीका कथन करा हुआ धर्म, ४. तिनमें अरिहंत उसकों कहते हैं, जिनोने ज्ञानावरण, १, दर्शनावरण, २, मोहनीय, ३, और अंतराय, ४, इन चारों कर्मकी ४७ उत्तर प्रकृतियां क्षय करी है, और अष्टादश दूषणोंसे रहित हूए है, केवल ज्ञान और केवल दर्शन करके संयुक्त है, चौत्रीस अतिशय और पैत्रीस वचन अतिशय करके सहित है, जीवन मोक्षरूप है, महामाहन, १, महागोप, २, महानिर्यामक, ३, महासार्थवाह, ४, येह चारों जिनकों उपमा है, परोपकार निरपेक्ष अनुग्रहके वास्ते जिनोंका भव्य जनो-केतांड उपदेश है, अरिहंतके विना अन्य कोई यथार्थ उपदेष्टा शरणभूत नहीं है; क्योंकि, इनोंनेही आदिमें जगत्वासीयोंको उपदेशद्वारा मोक्षमार्ग प्राप्त करा है. । १ ।

दूसरा शरण सिद्धोंका है, जे अष्ट कर्मकी उपाधिसें रहित है, सदा आनंद और ज्ञान स्वरूप है, स्वस्वरूपमें जिनोंका अवस्थान है, अमर, अचर अजर, अमल, अज, अविनाशी, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सदाशिव, पारंगत, परमेश्वर, परमब्रह्म, परमात्मा, इत्यादि अनंत तिनके विशेषण हैं, ऐसे सिद्ध परमात्मा शरणभूत है; जे कर एसे सिद्ध न होवे तब तो अरिहंतके कथन, करे मार्गकों भव्य जन काहेकों अंगीकार करे ? और सिद्धांके विना आत्माका शुद्ध स्वरूप कैसे जाना जावे ? इस वास्ते सिद्ध आत्मस्वरूपके अविप्रणासके हेतु है, इस वास्ते शरणरूप है. । २ ।

तीसरा शरण साधुओंका है, साधु कहनेसे आचार्य उपाध्याय और साधु, इन तीनोंका ग्रहण है. जे कर आचार्य उपाध्याय न होते तो, अस्मदादिकां-

को अरिहंतका उपदेश कौन प्राप्त करता ? और साधु न होते तो जगत्-वासीयांको मोक्षमार्ग पालन करके कौन दिखाता ? और मोक्षमार्गमें प्रवर्त्त हुए भव्य जनोको साहाय्य कौन करता ? इस वास्ते साधु शरणभूत है । ३ ।

चौथा शरण केवल ज्ञानीका कथन करा हुआ धर्म है; क्योंकि बिना धर्मके पूर्वोक्त वस्तुओंका अस्मदादिकांको कौन बोध करता ? इस वास्ते सर्व शरणभूतोसे अधिक शरण्यभूत, हे भगवन् ! तेरा शासन है । ४ ।

तथा हे जिनेंद्र ! तेरा शासन पुण्य पवित्र है, सर्व दूषणोंसे मुक्त होनेसे, प्रमाण युक्ति शास्त्रसे, अविरोधि वचन होनेसे, तथा दृष्टसेभी अविरोधि होनेसे, ऐसे शरण्य और पवित्र तेरे शासनके हुएभी, जो कोई इसमें संशय करता है, वा विवाद करता है, सो पुरुष, अत्यंत स्वाहु, तथ्य, स्वहितकारि, पथ्य भोजनमें संशय करनेवाला है, अर्थात् वो अत्यंतही मूर्ख है, जो ऐसी वस्तुमें संशय वा विवाद करता है ॥ ५ ॥

अथ स्तुतिकार अन्य आगमोंके अप्रमाण होनेमें हेतु कहते हैं.

हिंसाद्यसत्कर्मपथोपदेशादसर्वविन्मूलतया प्रवृत्तेः

नृशंसदुर्बुद्धिपरिग्रहाच्च ब्रूमस्त्वदन्यागममप्रमाणम् ॥ १० ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र ! (त्वदन्यागमम्) तेरे कथन करे हुए आगमोंसे अन्य आगम (अप्रमाणम्) प्रमाण नहीं, अर्थात् सत्पुरुषोंको मान्य नहीं है, ऐसे (ब्रूमः) हम कहते हैं. अन्य आगमोंको प्रमाणता किस हेतुसे नहीं है ? सोइ दिखाते हैं (हिंसाद्यसत्कर्मपथोपदेशात्) वे, अन्य वेदादि आगम, हिंसादि असत् कर्मोंके पथके उपदेशक होनेसे, और (असर्वविन्मूलतयाप्रवृत्तेः) असर्ववित्, असर्वज्ञोंके मूलसे प्रवृत्त होनेसे, अर्थात् असर्वज्ञोंके कथन करे हुए होनेसे, और (नृशंसदुर्बुद्धिपरिग्रहात्) निर्दय, उपलक्षणसे मृषा, चोरी, स्त्री, परिग्रहके धारनेवाले दुर्बुद्धि, अर्थात् कदाग्रही असत्पक्षपातियोंके ग्रहण करे हुए होनेसे; भावार्थ ऐसा है कि, जे आगम, निर्दयी, मृषावादी, अदत्तग्राही स्त्रीके भोगी और परिग्रहके लोभीयोंने ग्रहण करे हैं, अर्थात् वे जिन आगमोंको जगत्में प्रवर्त्तावने

वाले हैं, और जे आगम हिंसादि, आदि शब्दसें मृषा, अदत्तादान, मैथुनादि पाप कर्म करनेके उपदेशक हैं, वे आगम प्रमाण नहीं है. ॥ १० ॥
अथ भगवंतप्रणीत आगमके प्रमाण होनेमें हेतु कहते हैं.

हितोपदेशात्सकलज्ञकृतेर्मुमुक्षुसत्साधुपरिग्रहाच्च ॥

पूर्वापरार्थेऽप्यविरोधसिद्धेस्त्वदागमा एव सतां प्रमाणम् ॥११॥

व्याख्या—हे भगवन् जिनेंद्र ! (त्वदागमाएव) तेरे कथन करे हुए द्वादशांगरूप आगमही (सतां) सत्पुरुषोंको (प्रमाणम्) प्रमाण है, किस हेतुसें (हितोपदेशात्) एकांत हितकारी उपदेशके होनेसें और (सकल ज्ञकृतेः) सर्वज्ञके कथन करे रचे हुए होनेसें, (च) और (मुमुक्षुसत्साधुपरिग्रहात्) मोक्षकी इच्छावाले सत्साधुओंके ग्रहण करनेसें, अर्थात् आचार्य उपाध्याय साधु जिनके प्रवर्तक होनेसें, (अपि) तथा (पूर्वापरार्थे) पूर्वापर कथन करे अर्थोंमें (अविरोधसिद्धेः) अविरोधकी सिद्धिसें. ॥११॥
अथ भगवत्के सत्योपदेशकों परवादी किसी प्रकारसेंभी निराकरण नहीं कर सके हैं यह कथन करते हैं.

क्षिप्येत वान्यैः सदृशी क्रियेत वां तवाङ्घ्रिपीठे लुठनं सुरेशितुः ॥

इदं यथावस्थितवस्तुदेशनं परैः कथंकारमपाकरिष्यते ॥ १२ ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र ! (तव) तेरे (अङ्घ्रिपीठे) चरण कमलोंमें, जो (सुरेशितुः) इंद्रका (लुठनं) लुठना-लोटना था, चरणमें चौसठ इंद्रादि देवते सेवा करते थे, इत्यादि जो तेरे आगममें कथन है, तिसकों (अन्यैः) परवादीबौद्धादि, (क्षिप्येत) क्षेपन करें—खंडन करें; यथा जिनेंद्रके चरण कमलोंमें इंद्रादि देवते सेवा करते थे, यह कथन सत्य नहीं है, जिनेंद्र और इंद्रादि देवताओंके परोक्ष होनेसें (वा) अथवा (सदृशी क्रियेत) सदृश करें, जैसें श्री वर्द्धमान जिनके चरणोंमें इंद्रादि लोटते थे—चरण कमलकी सेवा करते थे, ऐसेही श्री बुद्ध भगवान् शाक्यसिंह गौतमकेभी चरणोंमें इंद्रादि सेवा करते थे, ऐसें कहें; परंतु (इदं) यह जो (यथावस्थितवस्तुदेशनं) यथार्थ वस्तुके स्वरूपका कथन तेरे शासनमें है, तिसकों (परैः) परवादी (कथंकारम्) किस प्रकार करके (अपाकरिष्यते)

अपाकरण-तिरस्कार-खंडन करेंगे अपितु किसी प्रकारसेंभी खंडन नहीं कर सकेंगे. ॥ १२ ॥

अत्र कोई प्रश्न करे कि, यदि अर्हन् भगवन् श्री वर्द्धमानका, कोईभी परवादी जिसका किसी प्रकारसेंभी खंडन नहीं कर सके हैं ऐसा स-त्योपदेश है, तो फेर अन्य मतावलंबी तिसकी उपेक्षा क्यों करते हैं? इ-सका उत्तर स्तुतिकार श्रीमच्छेमचंद्राचार्य देते हैं.

तद्दुःखमाकालखलायितं वा पचेलिमं कर्मभवानुकूलम् ॥

उपेक्षते यत्तव शासनार्थमयं जनो विप्रतिपद्यते वा ॥ १३ ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र! (यत्) जो (अयं जनः) यह प्रत्यक्ष जन (तव) तेरे (शासनार्थ) शासनार्थकी (उपेक्षते) उपेक्षा करता है, (वा) अथवा (विप्रतिपद्यते) तेरे शासनार्थके साथ शत्रुपणा करता है (तत्) सो, तिस प्राणिका (दुःखमाकालखलायितं) पंचम दुःखम कालका खला-यितपणा है,—दुःखम कालही तिस जीवके साथ खलकी तरें आचरण करता है, जो सत्य जिनेंद्रके कथन करे मार्गकी प्राप्ति नहीं होने देता है, (वा) अथवा, (भवानुकूलम्) तिस जीवके भवानुकूल संसारमें भ्रमण करवाने योग्य (कर्म) अशुभ कर्म मिथ्यात्व मोहनीयादि (पचे-लिमं) पके हुए, अर्थात् अपना फल देनेके वास्ते उदयावलिमें आये हुए है, तिनके उदयसें जिनेंद्रके कथन करे हुए मार्गकों अंगीकार नहीं कर सका है, जैसें, ऊंट द्राक्षावेलडीके खानेकी इच्छा नहीं करता है, तैसें-ही दुःखम काल खलायितपणेसें और पचेलिम कर्मके उदयसें, यह जन, हे जिनेंद्र! तेरे मार्गकी उपेक्षा करता है, अर्थात् कल्याणकारी जानके अंगीकार नहीं करता है; अथवा तेरे शासनके साथ शत्रुपणा करता है॥ १३॥ कोई कहेकि, तप करना, और योगाभ्यासादि सत्कर्म करने, तिनके प्रभावसेंही मोक्षकी प्राप्ति हो जावेगी, तो फेर जिनेंद्रके कथन करे मार्गके अंगीकार करनेकी क्या आवश्यकता है? तिसका उत्तर, स्तुतिकार देते हैं.

परः सहस्राः शरदस्तपांसि युगांतरं योगमुपासतां वा ॥

तथापिते मार्गमनापतन्तो न मोक्ष्यमाणा अपि यान्ति मोक्षम् १४

व्याख्या—हे भगवन् ! (परः) पर अन्य मतावलंबी (सहस्राः) हजारों (शरदः) वर्षोंताई (तपांसि) विविध प्रकारके तप करो, (वा) अथवा (युगांतरं) अर्थात् बहुत युगांताई (योगं) योगाभ्यासकों (उपासतां) सेवो-करो, (तथापि) तोभी वे (ते) तेरे (मार्गम्) मार्गकों (अनापतंतः) न प्राप्त होते हुए, अर्थात् तेरे मार्गके अंगीकार करे विना, (मोक्ष्यमाणा अपि) चाहो वे अपने आपको मोक्ष होना मानभी रहे हैं, तोभी, (मोक्षम्) मोक्षकों (न) नहीं (यांति) प्राप्त होते हैं, क्योंकि, सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रिके अभावसे किसीकोभी मोक्ष नहीं है, और सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रिकी प्राप्ति, तेरे मार्ग विना कदापि नहीं होवे है ॥ १४ ॥

अथाग्रे स्तुतिकार, परवादीयोंके उपदेश भगवत्के मार्गकों किंचिन्मात्रभी कोप वा आक्रोश नहीं कर सकते हैं, सो दिखाते हैं.

अनाप्तजाड्यादिविनिर्मितित्वसंभावनासंभविविप्रलम्भाः ॥

परोपदेशाः परमाप्तकृतपथोपदेशे किमु संरभन्ते ॥ १५ ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र ! (परोपदेशाः) जे परमतवादीयोंके उपदेश है, वे उपदेश (परमाप्तकृतपथोपदेशे) तेरे परमाप्तके रचे कथन करे उपदेशमें (किमु) क्या, किंचिन्मात्रभी (संरभन्ते) करते हैं ? अर्थात् कोप वा आक्रोश करते हैं ? किंचिन्मात्रभी नहीं क्या ? खद्योत प्रकाश करते हुए सूर्य मंडलकों कोप वा आक्रोश कर सकता है ? कदापि नहीं, ऐसे तेरे शासनकोंभी परोपदेश संरभ नहीं कर सकते हैं, क्योंकि, परवादीयोंके मतमें जो सूक्ति संपत् है, सो तेरेही पूर्व रूपी ये समुद्रके बिंदु गए हुए हैं, तिनके विना जो परवादीयोंने स्वकपोलकल्पनासे मिथ्या जाल खड़ा करा है, सो सर्व युक्ति प्रमाणसे बाधित है, इस हेतुसे परवादीयोंके उपदेश तेरे मार्गमें कुछभी कोप वा आक्रोश नहीं कर सकते हैं. कैसे हैं वे परवादीयोंके उपदेश ? (अनाप्तजाड्यादिविनिर्मितित्वसंभावनासंभविविप्रलम्भाः) अनाप्तोंकी बुद्धिकी जो जाड्यतादि, तिससे निर्मितित्व संभावना, अर्थात् अनाप्तोंकी मंदबुद्धिकी संभावना करके विप्रलम्भरूप वे उपदेश रचे गए हैं; भावार्थ यह है कि, अनाप्तोंकी मंदबुद्धिकी संभावनासे जे विप्रल-

भरूप-विप्रतारणरूप उपदेश रचे गए हैं, वे उपदेश, तेरे परमात्मके रचे पथोपदेशमें कोष वा आक्रोश, वा तिनके खंडनमें उत्साह, वा वेग, जलदी नहीं कर सकते हैं, असमर्थ होनेसें ॥ १५ ॥

अथ स्तुतिकार परवादियोंके मतमें जे उपद्रव हुए हैं, वे उपद्रव भगवान् के शासनमें नहीं हुए हैं, ऐसा स्वरूप दिखाते हैं.

यदार्जवादुक्तमयुक्तमन्यैस्तदन्यथाकारमकारि शिष्यैः ॥

न विप्लवोयं तव शासनेभूदहो अधृष्या तव शासनश्रीः ॥ १६ ॥

व्याख्या—(अन्यैः) परमतके आदि पुरुषोंने (आर्जवात्) आर्जवसें अर्थात् भोले भाले सांढे अपने मनमाने विचारसें (यत्) जो कुछ वेदादि शास्त्रोंमें (अयुक्तम्) अयोग्य (उक्तम्) कथन करा है (तत्) सोही कथन (शिष्यैः) तिनके शिष्योंने (अन्यथाकारम्) अन्यरूपही (अकारि) कर दीया है; क्योंकि, प्रथम जे वेद थे वे अनीश्वरवादी मीमांसकोंके मतानुयायी थे, और कर्मकांड यजनयाजनादि और अनेक देवतायोंकी उपासना करके स्वर्गप्राप्ति मानते थे, और काम्य कर्मोंके वास्ते अनेक तरेंके यज्ञादि करते थे, मोक्ष होना नहीं मानते थे, सर्वज्ञकोंभी नहीं मानते थे, वेदोंकों अपौरुषेय किसीके रचे हुए नहीं हैं, किंतु अनादि हैं, ऐसे मानते थे; तिस अपने मतकी पुष्टि वास्ते पूर्वमीमांसा नामक ऐसे जैमिनि मुनिने रचे है, ऐसा इस मतका स्वरूप था. प्रथम तो वेदोंमेंही गड़बड़ कर दीनी, कितनेही प्राचीन मंत्र बीचसें निकाल दिये, ऋग्वेदमें पुरुषसूक्त, और जे जे ईश्वर विषयक ऋचा हैं, वे प्रक्षेप कर दीनी है; और यजुर्वेदादिकोंमें 'सहस्रशीर्षः सहस्रपात्' तथा 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे' इत्यादि तथा 'इशावास्य' इत्यादि; तथा चारवेद ईश्वरसें उत्पन्न हुए हैं, तथा चार वेद हिरण्यगर्भके उत्स्वास रूप है इत्यादि श्रुतियां ईश्वर विषयक वेदोंमें प्रक्षेप करके वेदोंकों ईश्वरके रचे हुए सिद्ध करे; पीछे तिन वेदोंके मूल पाठमें भेदवालीयां हजारों शाखा और शाखाके सूत्र रचे गए. तदनंतर यास्काचार्यादिकोंने निघंट निरुक्तादि रचके वेदोंके

शब्दोंके अर्थोंमें गड़बड़ करदीनी, 'यथा अग्निमीले (ले)' इत्यादिमें, 'अग्निर्वै विष्णुः' इत्यादि.

और कुमारिल मीमांसाके वार्त्तिककारनेभी, प्राचीन अर्थोंमें बहुत गड़बड़ करी है; तथा वेद रचनाके पहिलें निरीश्वरी सांख्य मत था; पीछे नवीन सांख्य मतवाले उत्पन्न हुए, तिनोंने सेश्वर सांख्यमत प्रगट करा; पीछे सांख्य मतके अनुसार ऋषियोंने वेदांत अद्वैत ब्रह्मके स्वरूपके प्रतिपादक पुस्तक रचे, तिनोंका नाम उपनिषद् रक्खा; प्रकृतिकी जगे मायाकी कल्पना करी, और तीन गुणादि २४ चौबीस तत्त्वोंके नाम वेही रक्खे, परंतु तिनकों माया करके कल्पित ठहराए; और प्रमाण भट्ट मतानुसारि मानलीए. और उपनिषद् नामक ग्रंथ तो इतने रच लिख कि, जिसने अपना नवीन मत चलाया, तिसकी सिद्धिके वास्ते नवीन उपनिषद् रचके प्रसिद्ध करी; जैसे रामतापनी, गोपालतापनी, हनुमतोपनिषद्, अल्लोपनिषद्, इत्यादि पीछे तिनके भाष्यादि रचे गए.

शंकर स्वामीने दश उपनिषदों ऊपर, गीता ऊपर, और विष्णुसहस्र नामादि ऊपर, भाष्य रचे; तिनोंने प्राचीन अर्थोंकों व्यवच्छेद करके नवीन ही तरेके अर्थ रचे; तिस भाष्यके ऊपर टीकाकारोंने शंकरकी भूलें सुधारनेकों टीका रची. पुराण, और स्मृतिनामक कितनेही पुस्तकोंमें प्राचीन पाठ निकाल कर नवीन पाठ प्रक्षेप करे, और कितनेही नवीन रचे; सांप्रति शंकर स्वामीके मतानुयायीयोंमें वेदांत मतके माननेमें सैकड़ो भेद हो रहे हैं, तथा व्याससूत्रोंपरि शंकरस्वामिने शारीरक भाष्य रचा है, और अन्योंने अन्य तरेके भाष्यार्थ रचे हैं, सायणाचार्यने चारों वेदोंऊपर नवीन भाष्य रचके मन माने अर्थ उलट पुलट विपर्यय करके लिखे हैं, परंतु प्राचीन भाष्यानुसार नहीं. और दयानंद सरस्वतीजीने तो, ऋग्वेद और यजुर्वेद के दो भाष्य ऐसे विपरीत स्वकपोलकल्पित रचे हैं कि, मृषावादकों बहुतही पुष्ट करा है, सो बांचके पंडित जन बहुतही उपहास्य करते हैं. सांप्रति दयानंद स्वामीके चलाये आर्य समाज पंथके दो दल हो रहे हैं, तिनमेंसे एक दलवाले तो मांस खानेका निषेधही करते हैं, और दूसरे दलवाले कहते हैं कि, वेदमें मांस खानेकी आज्ञा

है, इससे प्रगट मांस खानेका उपदेश करते हैं, और राजपुताना योधपुरके महाराजा सर प्रतापसिंहजीने एक नवीन पुस्तक बनवा कर, तिसमें अथर्ववेदके मंत्र लिखके, तिनके ऊपर एक पंडितने नवीन भाष्य रचा है, तिसमें बहुत प्रकारसे मांसका खाना ईश्वरकी आज्ञासे सिद्ध करा है. तथा इस विषयक मनुस्मृति और दयानंदस्वामी आदिका भी प्रमाण लिखा है. अब यह दोनों दल परस्पर विवाद कर रहे हैं.

और गौतमने सिर्फ वेद और वेदांतके खंडनवास्ते ही न्यायसूत्र रचे हैं, वेद और वेदांतसे विपर्ययही प्रक्रिया रची है, कणादने षट् पदार्थ ही रचे हैं इत्यादि अनेक विप्लव अन्य मतके शास्त्रोंमें तिनके शिष्योंने करे हैं अर्थात् पूर्वजोंने जो कुछ कथन करा था, सो, तिनके शिष्यप्रशिष्यादिकोंने अन्यथा आकारवाला कर दिया है!!! हे जिनेंद्र! (तव) तेरे (शासने) शासनमें (अयं) यह पूर्वोक्त (विप्लवः) विप्लव (न) नहीं (अभूत्) हुआ है अर्थात् शिष्य प्रशिष्योंका करा ऐसा विप्लव तेरे कथनमें नहीं हुआ है. क्योंकि, सात निहव, और अष्टमबोटिक महा निहव, इनोंने किंचिन्मात्र विप्लव करना चाहा था, तोभी, तिनका करा किंचिद् विप्लव न हुआ, शासनसे बाह्य तिनकों श्री संघने तत्काल कर दीए, इसवास्ते तेरे शासनमें पूर्वोक्त विप्लव नहीं हुआ है. इसवास्ते (अहो) बडाही आश्चर्य है कि, (तव) तेरे (शासनश्रीः) शासनकी लक्ष्मी (अधृष्या) अधृष्य है, अर्थात् कोईभी तिसकी धर्षणा नहीं कर सक्ता है ॥ १६ ॥

अथ परवादीयोंने जे जे अपने अपने मतके अधिष्ठाता स्वामीभूत देवते कथन करे हैं, तिनमें जे जे अधटित परस्पर विरुद्ध बातें हैं, वे, स्तुतिकार दिखाते हैं.

देहाद्ययोगेन सदा शिवत्वं शरीरयोगादुपदेशकर्म ॥

परस्पररुपार्धि कथं घटेत परोपकृतेष्वधिदैवतेषु ॥ १७ ॥

व्याख्या—(देहाद्ययोगेन) देहादिके अयोगसे, अर्थात् देह, आदि शब्दसे राग, द्वेष, मोहादि सर्व कर्म जन्य उपाधिके अभावसे (सदा) नि-

रंतर (शिवत्वं) शिवपणा, सत्चित्आनंदरूप परम ब्रह्म परमात्मा परम ईश्वरपणा है; और (शरीरयोगात्) शरीरके योगसे संबंधसेही (उपदेशकर्म) उपदेश कर्म है, अर्थात् देहवाला ईश्वर होवे तबही उपदेष्टा हो सक्ता है; यह दोनो बातें (परस्परस्पर्धि) परस्पर विरोधि (कथं) किसतरें (परोपकृतेषु) परवादीयोंके माने हुए (अधिदैवतेषु) अधिदेवताओंमें (घटेत) घटती हैं? अपितु किसी प्रकारसेभी नहीं घट सकती हैं क्योंकि, परवादीयोंने अनादि मुक्तरूप, निरुपाधिक, निरंजन, निराकार, ज्योतिःस्वरूप, एक ईश्वर, सर्व व्यापक माना है; ऐसा ईश्वर किसी प्रकारसेभी उपदेष्टा सिद्ध नहीं हो सक्ता है, उपदेश करनेके देहादि उपकरणोंके अभावसे. क्योंकि, धर्माधर्म, अर्थात् पुण्य पापके विना तो देह नहीं हो सक्ता है, और देह विना मुख नहीं होता है, और मुख विना वक्तापणा नहीं है, व्याकरणके कथन करे स्थान और प्रयत्नोंके विना साक्षर शब्दोच्चार कदापि नहीं हो सक्ता है, तो फेर देहरहित, सर्वव्यापक, अक्रिय परमेश्वर, किसतरें उपदेशक सिद्ध हो सक्ता है?

पूर्वपक्षः—परमेश्वर अवतार लेके, देहधारी होके, उपदेश देता है.

उत्तरपक्षः—परमेश्वरके मुख्यतीन अवतार माने जाते हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, और येही मुख्य उपदेशक माने जाते हैं, परंतु परवादीयोंके शास्त्रानुसार तो ये तीनों देव, राग, द्वेष, अज्ञान, काम, ईर्ष्यादि दूषणोंसे रहित नहीं थे; तो फेर, ईश्वर, अनादि, निरुपाधिक, सदा मुक्त, सदाशिव, कैसे सिद्ध होवेगा? और सर्वव्यापी ईश्वर, एक छोटीसी देहमें किसतरें प्रवेश करेगा?

पूर्वपक्षः—हम तो ईश्वरके एकांशका अवतार लेना मानते हैं.

उत्तरपक्षः—तब तो ईश्वर एक अंशमें उपाधिवाला सिद्ध हुआ, तब तो ईश्वरके दो विभाग हो गए, एक विभाग तो सोपाधिक उपाधिवाला, और एक विभाग निरुपाधिक उपाधिरहित.

पूर्वपक्षः—हां हमारे ऋग्वेद और यजुर्वेदमें कहा है कि, ब्रह्मके तीन हिस्से तो सदा मायाके प्रपंचसे रहित, अर्थात् सदा निरुपाधिक है, और एक चौथा हिस्सा सदाही उपाधिसंयुक्त रहता है.

उत्तरपक्षः—तब तो ईश्वर, सर्व, अनादि, मुक्त, सदा शिवरूप न रहा, परं, देश मात्र मुक्त, और देशमात्र सोपाधिक रहा. तब एकाधिकरण ईश्वरमें परस्पर विरुद्ध, मोक्ष और बंधका होना सिद्ध हुआ, सो तो दृष्टेष्टबाधित है. छायातपवत्. विशेष इसका समाधान श्रुतिसहित आगे करेंगे. तब तो, ईश्वरकों सदा मुक्त, कूटस्थ, नित्य, देहादिरहित, सदा शिवादि न कहना चाहिये.

पूर्वपक्षः—ईश्वर तो देहादिसें रहित, सर्वव्यापक और सर्व शक्तिमानु है, इसवास्ते ईश्वर अवतार नहीं लेता है, परंतु सृष्टिकी आदिमें चार ऋषियोंकों अग्नि १, वायु २, सूर्य ३ और अंगिरस ४ नामवालोंकों, वेदका बोध ईश्वर कराता है.

उत्तरपक्षः—यद्यपि यह पूर्वोक्त कहना दयानंदस्वामीका नवीन स्वकपोलकल्पित गप्परूप है, तथापि इसका उत्तर लिखते हैं. प्रथम तो, ईश्वर सर्वव्यापक होनेसे अक्रिय है, अर्थात् वो कोईभी क्रिया नहीं करसक्ता है, आकाशवत्; तो फेर ऋषियोंकों वेदका बोध कैसे करा सकता है.

पूर्वपक्षः—ईश्वर अपनी इच्छासे वेदका बोध करता है.

उत्तरपक्षः—इच्छा जो है, सो मनका धर्म है, और मन देह विना होता नहीं है, ईश्वरके देह तुमने माना नहीं है, तो फेर, इच्छाका संभव ईश्वरमें कैसे हो सकता है?

पूर्वपक्षः—हम तो इच्छानाम ईश्वरके ज्ञानकों कहते हैं, ईश्वर अपने ज्ञानसे प्रेरणा करके वेदका बोध कराता है.

उत्तरपक्षः—यहभी कहना मिथ्या है, क्योंकि, ज्ञान जो है, सो प्रकाशक है, परंतु प्रेरक नहीं है, ईश्वरमें रहा ज्ञान, कदापि प्रेरणा नहीं करसक्ता है, तो फेर किसतरें ऋषियोंकों वेदका बोध कराता है?

पूर्वपक्षः—पूर्वोक्त ऋषि, अपने ज्ञानसेही ईश्वरके ज्ञानांतर्गत वेदज्ञानकों जानके, लोकोंकों वेदोंका उपदेश करते हैं.

उत्तरपक्षः—यहभी कथन ठीक नहीं है, क्यों कि, जब ऋषि अपने ज्ञानसे ईश्वरके ज्ञानांतर्गत वेदज्ञानकों जानते हैं, तो वो वेदज्ञान ईश्वरके ज्ञानमें व्यापक है? वा किसीजगे ज्ञानमें प्रकाशका पुंजरूप हो रहा

है ? जेकर सर्वव्यापक है, तब तो ऋषियोंने ईश्वरका सर्वज्ञान देख लीना; जब ईश्वरका सर्वज्ञान देखा, तब तो ईश्वरका सर्व स्वरूप ऋषियोंने देख लीया, तब तो ऋषिही सर्वज्ञ सिद्ध हुए; सो तो तुम ईश्वरके बिना अन्य किसीभी जीवकों सर्वज्ञ मानते नहीं हैं. जेकर मानोगें, तो वे ऋषि सर्वज्ञ ईश्वरतुल्य होवेगें, और अपने ज्ञानसेही वेदोंके उपदेशक सिद्ध होवेगें, तब ईश्वरके कथन करे, वा कराये वेद क्योंकर सिद्ध होवेगें ? जेकर दूसरा पक्ष मानोगें तब तो अनाडीके रंगे वस्त्रके रंगसमान ईश्वरका ज्ञान सिद्ध होवेगा, जैसें अनाडीके रंगे वस्त्रमें एकजगे तो अधिक रंग होता है, और दूसरी जगे अल्परंग होता है; ऐसेही ईश्वरकाभी ज्ञान, एक अंशमें वेदादिज्ञानके प्रकाशपुंजरूप ज्ञानवाला है; तब तो एक अंशमें ईश्वर वेदोंके ज्ञानवाला है और अन्य सर्व अनंत अंशोंमें वेदके ज्ञानसें अज्ञानी सिद्ध होवेगा; इसवास्ते शरीररहित सर्वव्यापक ईश्वर, कदापि वेदादिशास्त्रोंका उपदेशक सिद्ध नहीं होता है.

पूर्वपक्षः—ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, इसवास्ते देहरहित सर्वव्यापक ईश्वर, अपनी शक्तिसें सर्वकुछ करसक्ता है; हे जैनो ! ऐसे तुम मान लेवो.

उत्तरपक्षः—ऐसे तुम्हारे कथनमें क्या प्रमाण है ? क्यों कि, प्रमाणविना प्रेक्षावान् कदापि किसीके कथनकों नहीं मानेगें; परंतु यह तुम्हारा कथन तो तुम्हारी प्रीय भार्या आर्यासमाजिनीही मानेगी, अप्रमाणिक होनेसें. और एक यहभी बात है कि, जब तुमने ईश्वरकों बिना प्रमाणसेही सर्वशक्तिमान् माना है तो, क्या ईश्वरमें अवतार लेनेकी शक्ति नहीं है ? क्या ईश्वर कृष्णावतार लेके, गोपियोंके साथ क्रीडा रासविलास भोगविलासादि नहीं कर सक्ता है ? क्या शंकर बन करके, पार्वतीके साथ विविधप्रकारके भोगविलास और अनेकतरेंकी शिवकी लीला नहीं कर सकता है ? क्या ब्रह्मा बनके चारों वेदोंका उपदेश, और निजपुत्रीसें सहस्र वर्षतक भोगविलास नहीं कर सकता है ? क्या मत्स्यवराहादि चौबीस अवतार धारके अपने मनधारे कृत्य नहीं कर सकता है ? क्या ईश्वर नाचना, गाना, रोना, पीटना, चोरी, यारी, निर्लज्जतादि नहीं कर सकता है ? क्या लिंगकी वृद्धि करके, तीन लोकांतोंसेंभी परे नहीं पहुंचाय सकता है ? इत्यादि

अनेक कृत्य जे अच्छे पुरुष नहीं करसक्ते हैं, वे सर्व कृत्य ईश्वर करसक्ता है ?

पूर्वपक्षः—ऐसे ऐसे पूर्वोक्त सर्वकृत्य ईश्वर नहीं कर सक्ता है, क्योंकि, ऐसी बुरी शक्तियां ईश्वरमें है तो सही, परंतु ईश्वर करता नहीं है.

उत्तरपक्षः—तुम्हारे दयानंदस्वामी तो लिखते हैं कि, ईश्वरकी सर्वशक्तियां सफल होनी चाहिये; जेकर पूर्वोक्त सर्वकृत्य ईश्वर न करेगा तो, तिसकी सर्व शक्तियां सफल कैसे होवेंगी?

पूर्वपक्षः—ईश्वरमें ऐसी २ पूर्वोक्त अयोग्य शक्तियां नहीं है.

उत्तरपक्षः—तब तो वदतोव्याघात हुआ, अर्थात् सर्वशक्तिमान् ईश्वर सिद्ध नहीं हुआ, तो फेर, देह मुखादि उपकरणरहित सर्वव्यापक ईश्वर, प्रमाणद्वारा वेदोंका उपदेशक कैसे सिद्ध होवेगा? अपितु कदापि नहीं होवेगा. क्योंकि, उपदेश जो है सो देहवालेका कर्म है, इस वास्ते एक ईश्वरमें पूर्वोक्त देहरहित होना और उपदेशकभी होना, ये परस्पर विरोधि धर्म नहीं घट सक्ते हैं, इसवास्ते परवादीयोंका कथन अज्ञानविजृम्भित है ॥ १७ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंत श्रीविद्धर्मानस्वामी फेर अयोग्यव्यवच्छेद कहते हैं—

प्रागेव देवांतरसंश्रितानि रागादिरूपाण्यवमांतराणि

न मोहजन्यां करुणामपीश समाधिमास्थाय युगाश्रितोऽसि १८

व्याख्या—हे जिनेंद्र ! हे ईश ! (रागादिरूपाणि) राग, द्वेष, मोह, मद, मदनादिरूपदूषण (प्राक्-एव) पहिलांही (देवांतरसंश्रितानि) तेरे भयसें, (देवांतर) अन्यदेवोंमें आश्रित हुए हैं कि, मानू, निर्भय हम इहां रहेंगे; जिनेंद्र तो हमारा समूलही नाश करनेवाला है, इस-वास्ते किसी बलवंतमें रहना ठीक है, जो हमारी रक्षा करे, मानू, ऐसा विचारकेही रागादि दूषण देवांतरोंमें स्थित हुए हैं. कैसे है वे रागादि-दूषण ? (अवमांतराणि) जे क्षयकों प्राप्त नहीं हुए हैं, अर्थात् अप्रतिहत शक्तिवाले हैं, जिनका क्षय वा क्षयोपशम वा उपशम किंचित् मात्रभी नहीं हुआ है, इसवास्ते हे ईश ! तूं (समाधि-आस्थाय) समाधिकों

अवलंबके, समाधिनाम शुक्रध्यानकों अवलंबके, (मोहजन्यां) मोहजन्य (करुणा-अपि) करुणाकोंभी (न) नहीं (युगाश्रितः-असि) युगमें आश्रित हुआ है, अर्थात् मोहरूप करुणा करकेभी तूं युगयुगमें अवतार नहीं लेता है. जैसे गीतामें लिखा है—

“उपकाराय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे ॥ १ ॥”

तथाबौद्धमतपि “ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य कर्तारः परमं पदम् ॥

गत्वा गच्छन्ति भूयोपि भवन्तीर्थनिकारतः ॥ १ ॥”

अर्थः—अच्छे जनोंके उपकारवास्ते, और पापी दैत्योंके नाश करने-वास्ते, और धर्मके संस्थापन करनेवास्ते, हे अर्जुन ! मैं युगयुगमें अवतार लेता हूं. । १ । हमारे धर्मतीर्थका कर्ता बुद्ध भगवान्, परमपदकों प्राप्त होकेभी, अपने प्रवर्तमान करे धर्मकी वृद्धियों देखके जगद्वासीयोंकी करी पूजाके लेनेवास्ते, और अपने शासनके अनादरसें अर्थात् अपने प्रवर्तये शासनकी पीडा दूर करनेवास्ते, इहां आता है. ऐसी मोहजन्य करुणाकों हे ईश ! तूं युगयुगमें आश्रित नहीं हुआ है. ॥ १८ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंतमें जैसा कल्याणकारी उपदेश रहा है, तैसा अन्यमत के देवोंमें नहीं है, यह कथन करते हैं—

जगन्ति भिन्दन्तु सृजन्तु वा पुनर्यथा तथा वा पतयः प्रवादिनाम् ।

त्वदेकनिष्ठे भगवन् भवक्षयक्षमोपदेशे तु परंतपस्विनः ॥ १९ ॥

व्याख्याः—(प्रवादिनाम्— पतयः) प्रवादीयोंके पति, अर्थात् परमतके प्रवर्तक देवते हरिहरादिक, (यथा तथा वा) जैसें तैसें प्रवादीयोंकी कल्पना समान वे देवते (जगन्ति) जगतांको (भिन्दन्तु) भेदन करो—प्रलय करो—सूक्ष्म रूपकरके अपनेमें लीन करो, (वा पुनः) अथवा (सृजन्तु) सृष्टियांकों सृजन (उत्पन्न) करो, यह कर्त्तव्य तिनके कहनेमूजब होवो, वे देवते करो, परंतु हे भगवन् ! (त्वदेकनिष्ठे) एक तेरेहीमें रहे हुए (भव-क्षयक्षमोपदेशे) संसारके क्षय करनेमें समर्थ ऐसे धर्मोपदेशके देनेमें तो, वे परवादीयोंके पति (स्वामी) देवते, (परं) परमउत्कृष्ट (तपस्विनः)

तपस्वी अर्थात् दीन हीन कंगाल गरीब है, अनुकंपा करनेयोग्य है; क्योंकि, वे बिचारे दूधकी जगे आटेका धोवन अपने भक्तोंको दूध कहके पितारहे हैं, इस वास्ते अनुकंपा करनेयोग्य है कि, इन बिचारांको किसीतरें सच्चा दूध मिले तो ठीक है ॥ १९ ॥

अथ स्तुतिकार परनादियोंके नाथोंने भगवान्की मुद्राभी नहीं सीखी है यह कथन करते हैं—

वपुश्च पर्यंकशयं श्लथं च दृशौ च नासानियते स्थिरे च ॥

न शिक्षितेयं परतीर्थनाथैर्जिनेन्द्रमुद्रापि तवान्यदास्ताम् ॥ २० ॥

व्याख्या—हे जिनेन्द्र ! (परतीर्थनाथैः) परतीर्थनाथोंने (इयं) येह (तव) तेरी (मुद्रा—अपि) मुद्राभी, शरीरका न्यासरूपभी (न) नहीं (शिक्षिता) सीखी है तो (अन्यत्) अन्य तेरे गुणोंका धारण करना तो (आस्ताम्) दूर रहा, कैसी है तेरी मुद्रा ? (वपुः—च) शरीर तो (पर्यंकशयं) पर्यंकसनरूप (च) और (श्लथं) शिथिल है, (च) और (दृशौ) दोनों नेत्र (नासानियते) नासिकाउपर दृष्टिकी मर्यादासंयुक्त (च) और (स्थिरे) स्थिर है.

भावार्थः—यह है कि, भगवंतकी जो पर्यंकसनादिरूप मुद्रा है, सो मुद्रा, योगीनाथ भगवंतने योगीजनोंके ज्ञापनवास्ते धारण करी है; क्यों कि, जितना चिरयोगीनाथ आप योगकी क्रिया नहीं करदिखाता है तितना चिरयोगी जनोंको योग साधनेका क्रियाकलाप नहीं आता है तथा भगवंत अष्टादश दूषणरहित होनेसे निःस्पृह और सर्वज्ञ है, तिनकी मुद्रा ऐसीही होनी चाहिये, परंतु परतीर्थनाथोंने तो भगवंतकी मुद्राभी नहीं सीखी है; अन्यभगवंतके गुणोंका धारण करना तो दूर रहा, परतीर्थ नाथोंने तो भगवंतकी मुद्रासें विपरीतही मुद्रा धारण करी है; क्यों कि, जैसी देवोंकी मुद्रा थी, वैसीही मुद्रा तिनकी प्रतिमाद्वारा सिद्ध होती है

शिवजीने तो पांच मस्तक जटाजूटसहित, और शिरमें गंगाकी मूर्ति और नागफण, गलेमें रुंड (मनुष्योंके शिर) की माला, और सर्प, हाथ दश, प्रथम दाहने हाथमें डमरु, दूसरेमें त्रिशूल, तीसरेसें ब्रह्माजीको

आशीर्वादका देना, चौथेमें पुस्तक, और पांचवेमें जपमाला; वामे प्रथम हाथमें गंध सूंघनेकों कमल, दूसरेमें शंख, तीसरे हाथसे विष्णुकों आशीर्वादका देना, चौथेमें शास्त्र, और पांचमे हाथसे दाहने पगका पकडना, ऐसी मूर्ति धारण करी है. तथा अन्यरूपमें शिवजीने पार्वतीकों अर्ध-गमें धारण करी है, और अपने हाथसे लपेट रहे है. तथा शिवजीके दाहनेपासे ब्रह्माजी हाथ जोडकरके खडे हैं, और वामेपासे विष्णु हाथ जोडके खडे हैं.

विष्णुकी और ब्रह्माजीकी मुद्रा तो प्रायः चित्रोंमें प्रसिद्धही है. शंक, चक्र, गदादिशस्त्र, और श्री (लक्ष्मी) जी सहित तो विष्णुकी; और चारमुख, कर्मडलु जपमाला वेद पुस्तकादि चारों हाथोंमें धारण करे, ऐसी मुद्रा ब्रह्माजीकी है. परंतु योगीनाथ अरिहंतकी मुद्रा तो, किसीनेभी धारण नहीं करी है. ॥ २० ॥

अरिहंतकी मूर्ति.



शिवकी मूर्ति.



विष्णुकी मूर्ति.



ब्रह्माकी मूर्ति.



अथाग्रे स्तुतिकार भगवंतके शासनकी स्तुति करते हैं—

यदीयसम्यक्त्वबलात् प्रतीमो भवादृशानां परमस्वभावम् ॥

वास न । पाशविनाशनाय नमोस्तु तस्मै तव शासनाय ॥ २१ ॥

व्याख्या—(यदीयसम्यक्त्वबलात्) जिसके सम्यक्त्वबलसे, अर्थात् जिसके सम्यग् ज्ञानके बलसे (भवादृशानां) तुम्हारेसरीखे परमाप्तजीवनमोक्षरूप महात्मायोंके (परमस्वभावम्) शुद्धस्वरूपकों (प्रतीमः) हम जानते हैं (तस्मै) तिस (तव) तेरे (शासनाय) शासनकेताँड़ हमारा (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, कैसे शासनकेताँड़ ? (कुवासनापाशविनाशनाय) कुवासनारूपपाशीके विनाश करनेवाला तिसकेताँड़.

भावार्थः—जेकर हे भगवन् ! तेरा शासन न होता तो, हमारे सरीखे पंचमकालके जीव तुम्हारे सरीखे परमाप्तपुरुषोंके परम शुद्धस्वभावकों कैसे जानते ? परंतु तेरे आगमसे ही सर्वकूँजाना; और तेरे आगमनेही पांच प्रकारके मिथ्यात्वरूप कुवासनापाशीका विनाश करा है, इसवास्ते तेरे शासनकेताँड़ हमारा नमस्कार होवे. ॥ २१ ॥

अथ स्तुतिकार दो वस्तुयों अनुपम कहते हैं—

अपक्षपातेन परीक्षमाणा द्वयं द्वयस्याप्रतिमं प्रतीमः ॥

यथास्थितार्थप्रथनं तवैतदस्थाननिर्वधरसं परेषाम् ॥ २२ ॥

व्याख्या—(अपक्षपातेन) पक्षपातरहित हो कर (परीक्षमाणाः) जब हम परीक्षा करते हैं तो, (द्वयस्य) दो जनोंकी (द्वयं) दो वस्तुयों (अप्रतिमं) अनुपम उपमा रहित (प्रतीमः) जानते हैं; हे भगवन् ! (तव) तेरा (एतत्) यह (यथास्थितार्थप्रथनं) यथास्थित पदार्थोंके स्वरूप कथन करनेका विस्तार, अर्थात् यथास्थित पदार्थोंके स्वरूप कथन करनेका विस्तार जैसा तैने करा है, ऐसा जगत्में कोईभी नहीं कर सका है, इसवास्ते तेरा कथन हम अनुपम जानते हैं. और (परेषां) अन्योँका (अस्थाननिर्वधरसं) अस्थाननिर्वधरस, अर्थात् अन्योँने असमंजसपदार्थोंके स्वरूपकथनरूप गोले गिरडाये हैं, वेभी उपमारहित हैं, तिनोंके विना ऐसा असमंजसकथन अन्य कोईभी नहीं कर सका है. ॥ २२ ॥

अथ स्तुतिकार अज्ञानियोंके प्रतिबोध करनेमें अपनी असमर्थता कहते हैं,—

अनाद्यविद्योपनिषन्निषण्णैर्विशृङ्खलैश्चापलमाचरद्भिः ॥

अमूढलक्ष्योपि पराक्रिये यत्त्वत्किंकरः किं करवाणि देव ॥२३॥

व्याख्या—अनादि अविद्या, अर्थात् मिथ्यात्व अज्ञानरूप उपनिषद्ग्रह-
स्यमें तत्पर हुयोंने, और विशृङ्खलोंने, अर्थात् विना लगाम स्वच्छंदाचारी
प्रमाणिकपणारहितोंने, और चपलता अर्थात् वाग्जालकी चपलताके
आचरण करतेहुयोंने, इन पूर्वोक्त विशेषणोंविशिष्ट महाअज्ञानिपुरुषोंने जे-
कर तेरे अमूढ लक्ष्यकोंभी—जिसके उपदेशादि सर्व कर्म निष्फल न होवें
तिसकों अमूढलक्ष्य कहते हैं, अर्थात् सर्वज्ञ ऐसे तेरे अमूढलक्ष्यकोंभी,
जेकर पूर्वोक्त पुरुष खंडन करे—तिरस्कार करे, जैसे कोई जन्मांध सूर्यके
प्रकाशकों पराकरण करे, न माने, तो तिसकों निर्मल नेत्रवाला पुरुष
क्या करे? ऐसेही अज्ञानी तेरा तिरस्कार करे, तो हे देव! स्वस्वरूपमें
क्रीडा करनेवाले सर्वज्ञ वीतराग! तेरा किंकर मैं हेमचंद्रसूरि, क्या करूं?
कुछभी तिनकेतांई नहीं कर सकता हूं, जैसे जन्मके अंधकों अंजनवैद्य
कुछ नहीं कर सकता है. ॥ २३ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंतकी देशना भूमिकी स्तुति करते हैं—

विमुक्तवैरव्यसनानुबंधःश्रयंति यां शाश्वतवैरिणोऽपि ॥

परैरगम्यां तव योगिनाथ तां देशनाभूमिमुपाश्रयेऽहम् ॥२४॥

व्याख्या—हे योगिनाथ! (यां) जिस तेरी देशनाभूमिकों (शाश्वतवै-
रिणः—अपि) शाश्वतवैरीभी, अर्थात् जिनका जातिके स्वभावसेही निरंतर
वैरानुबंध चला आता है, जैसे बिल्लि मूषकका, श्वान बिल्लिका, वृक अ-
जाका, इत्यादि; वेभी सर्व, (विमुक्तवैरव्यसनानुबंधाः) स्वजातिका शा-
श्वत वैर रूपव्यसनके अनुबंधसें विमुक्त रहित हुए थके (श्रयंति) आ-
श्रित होते हैं. यह भगवंतका अतिशय है कि, शाश्वतवैरीभी भगवान्की
देशनाभूमि समवसरणमें जब आते हैं, तब परस्पर वैर छोडके परममै-
त्रीभावसें एकत्र बैठते हैं; और जो (परैः) परवादीयोंने (अगम्यां) अ-
गम्य है, अर्थात् परवादी जिस देशनाभूमिका स्वरूप नहीं जान सकते हैं

मिथ्यात्व अज्ञानरूप पटलोंसें अंधे होनेसें; (तां) तिस (तव) तेरी (देशनाभूमिं) देशनाभूमिकों (अहम्) मैं (उपाश्रये) उपाश्रित करता हूं-आश्रित होताहूं, जिससें मेराभी सर्वजीवोंके साथ वैरानुबंधरूप व्यसन छुट जावे. ॥ २४ ॥

अथस्तुतिकार परदेवोंका साम्राज्य वृथा सिद्ध करते हैं.

मदेन मानेन मनोभवेन क्रोधेन लोभेन च संमदेन ॥

पराजितानां प्रसभं सुराणां वृथैव साम्राज्यरुजा परेषाम् ॥२५॥

व्याख्या—(परेषाम्—सुराणाम्) परदेवताओंका, ब्रह्मा, विष्णु, महा-देवादिकोंका (साम्राज्यरुजा) लोकपितामहपणा, जगत्कर्त्तापणा, हंस-वाहन, कमलासन, यज्ञोपवीत, कमंडलु, चतुर्मुख, सावित्रीपति, विशि-ष्टादि दश पुत्रोंवाला, वेदोंका कहनेवाला, चार वर्णका उत्पन्न करनेवाला, वर शाप देने समर्थ, सतोगुणरूप, इत्यादि ब्रह्माजीका साम्राज्य—चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा, शारंग, धनुष्, वनमालाका धारनेवाला, ईश्वर, लक्ष्मी, राधिका, रुक्मिणीआदिका पति, सोलां सहस्र गोपियोंके साथ क्रीडा करनी, अनेक रूपका करना, वत्रीस सहस्र राणियोंका स्वामी, त्रिखंडाधिप, वा-मन नरसिंह रामकृष्णादिका रूप धारना, कंस, वाली, रावणादिका वध करना, सहस्रों पुत्रोंका पिता, रजोगुणरूप, सृष्टिका पालनकर्त्ता, भक्त-साहायक, घटघटमें व्यापक होना, इत्यादि विष्णुका साम्राज्य. और जगत्-प्रलय करना, वृषभवाहन, पंचमुख, चंद्रमौलि, त्रिनेत्र, कैलासवासी, सर्वसें अधिक कामी, स्त्रीके अत्यंत स्नेहवाला, सदा स्त्री पार्वतीकों अर्द्धांगमें रखनेवाला, अत्यंत भोला, त्रिभुवनका ईश्वर इत्यादि शिवका साम्राज्य. इसीतरे सर्वलौकिक देवोंका साम्राज्य समज लेना. ऐसा पूर्वोक्त साम्राज्य-रूप रोग परतीर्थनाथोंका (वृथाएव) वृथाही है. कैसे परतीर्थनाथोंका? (मदेन) अष्टप्रकारके मद (मानेन) अभिमान-अहंकार (मनोभवेन) काम (क्रोधेन) क्रोध शत्रुके मारणरूप वा शापदानरूप (लोभेन) लोभ स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, शस्त्र, स्थानादिग्रहणरूप, (च) शब्दसे माया-कपटादि और (संमदेन) हर्ष खुशी इनों करके (प्रसभं) यथा स्वात्तथा अर्थात् हठ करके अपने बड़े सामर्थ्य करके (पराजितानां) जे पराजित

हैं, अर्थात् पूर्वोक्त दुषणोंकरके जे संयुक्त हैं, तिनोंका. क्योंकि, पूर्वोक्त साम्राज्यरूप रोग आत्माकों मलिन करने और दुःख देनेवाला है, इस वास्ते वृथाही है ॥ २५ ॥

अथाग्रे स्तुतिकार असत्वादी और पंडितजनोंके लक्षण कहते हैं.

स्वकण्ठपीठे कठिनं कुठारं परे किरन्तः प्रलपन्तु किञ्चित् ॥

मनीषिणां तु त्वयि वीतराग न रागमात्रेण मनोऽनुरक्तम् ॥२६॥

व्याख्या—(परे) परवादी जे हैं, वे (स्वकण्ठपीठे) अपने कंठपीठमें (कठिनं) कठिन-तीक्ष्ण (कुठारं) कुठार-कुहाडा (किरन्तः) क्षेपन करते हुए (किञ्चित्) कुछक (प्रलपन्तु) प्रलपन करो, अर्थात् परवादी अप्रमाणिक युक्तिबाधित किञ्चित् तत्वके स्वरूपकथनरूप कठिन कुठार-कुहाडा अपने कंठपीठमें क्षेपन करो-मारो, यद्वा तद्वा बोलो, सत्मार्गके अनभिज्ञ होनेसें, अपने आत्माकी हानि करो, परंतु हे वीतराग ! (मनीषिणां तु) मनीषि-पंडित-सद्बुधिमानोंका तो (मनः) मन-अंतःकरण (त्वयि) तेरे विषे (रागमात्रेण) रागमात्र करके (न) नहीं (अनुरक्तं) रक्त है, किंतु युक्तिशास्त्रके अविरोधि तेरे कथनके होनेसें तेरे विषे पंडितजनोंका मन अनुरक्त है ॥ २६ ॥

अथाग्रे जे पुरुष अपनेकों माध्यस्थ मानते हैं, परंतु वेभी निश्चय मत्सरी हैं, तिनका स्वरूप कथन करते हैं.

सुनिश्चितं मत्सारिणो जनस्य न नाथमुद्रामतिशेरते ते ॥

माध्यस्थमास्थाय परीक्षकाये मणौ च काचे च समानुबन्धाः ॥२७॥

व्याख्या—हे नाथ ! (सुनिश्चितं) हमारे निश्चित करा हुआ वर्त्ते है कि (ते) वे जन (मत्सारिणः) मत्सरी (जनस्य) पुरुषकी (मुद्रां) मुद्राकों (न) नहीं (अतिशेरते) उल्लंघन करते हैं, अर्थात् ऐसे जनभी मत्सारियोंकी पंक्तिमेंही निश्चित करे हुए हैं; कैसे हैं वे जन ? (ये) जे (परीक्षकाः) परीक्षक होके और (माध्यस्थम्—आस्थाय) माध्यस्थपणेकों धारण करके (मणौ) मणिमें (च) और (काचे) काचमें (समानुबन्धाः) सम अनुबंधवाले हैं.

भावार्थ—माध्यस्थपणकों धारण करके, जे पुरुष अपने आपको परीक्षक मानते हैं कि, हम पक्षपातरहित सच्चे परीक्षक हैं; परंतु काचके टुकड़ेकों, और चंद्रकांतादि मणियोंकों मोलमें, वा गुणोंमें समान मानते हैं, वे परीक्षक नहीं हैं, किंतु वेभी मत्सरि पुरुषकी मुद्रावालेही हैं। ऐसैही जिन्होंने माध्यस्थपणा और परीक्षक अपने आपको माने हैं, फेर काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा, मैथुनादिरहित सर्वज्ञ वीतरागकों, और पूर्वोक्त कामादिसहित अज्ञानी सरागीकों एकसमान मानते हैं, इसवास्ते वे परीक्षक नहीं, किंतु वेभी मत्सरी ही हैं ॥ २७ ॥

अथ स्तुतिकार प्रतिवादीयोंसमक्ष अवघोषणा करते हैं।

इमां समक्षं प्रतिपक्षसाक्षिणामुदारघोषामवघोषणां ब्रुवे ॥

न वीतरागात्परमस्ति दैवतं न चाप्यनेकान्तमृते नयस्थितिः ॥२८॥

व्याख्या—मैं श्री हेमचंद्रसूरी (प्रतिपक्षसाक्षिणां) प्रतिपक्षसाक्षियोंके (समक्षं) समक्ष—प्रत्यक्ष (इमां) यह जो आगे कहेंगे तिस (उदारघोषाम्) मधुर शब्दोंवाली (अवघोषणाम्) अवघोषणा, लोकोंके जनावने वास्ते उच्च शब्द करके जो बोलना तिसका नाम अवघोषणा कहते हैं, तिस अवघोषणाकों (ब्रुवे) बोलता हूं—करता हूं, सोही दिखाते हैं, (वीतरागात्) वीतरागसें (परं) परे—कोई (दैवतं) सत्यधर्मका आदि उपदेष्टा (न) नहीं (अस्ति) है, (च) और (अनेकांतं—ऋते) अनेकांत अर्थात् स्याद्वादविना कोई (नयस्थितिः—अपि) नयस्थितिभी (न) नहीं है; अर्थात् स्याद्वादके विना पदार्थके स्वरूपके कथन करनेरूप जो नयस्थिति है सोभी नहीं है। स्यात् पदके चिन्हविना किसीभी नित्यानित्यादिनयके कथनकी सिद्धि न होनेसें ॥ २८ ॥

अथ स्तुतिकार अपने आपको अपक्षपाती सिद्ध करते हैं।

न श्रद्धयैव त्वयि पक्षपातो न द्वेषमात्रादरुचिः परेषु ॥

यथावदाप्तत्वपरिक्षया तु त्वामेव वीर प्रभुमाश्रिताः स्मः ॥ २९ ॥

व्याख्या—हे वीर! (श्रद्धया—एव) श्रद्धा मात्र करकेही, अर्थात् श्री-महावीरके विना अन्य किसी परवादीके मतके देवकों अपना प्रभु ईश्वर

सत्योपदेष्टा नहीं मानना, ऐसी श्रद्धा, मनकी दृढता करकेही, (त्वयि) तेरेविषे हमारा (पक्षपातः) पक्षपात (न) नहीं है, और (द्वेषमात्रात्) द्वेषमात्रसें (परेषु) परमतके देव हरिहरब्रह्मादिकोंमें (अरुचिः) अरुचि—अप्रीति (न) नहीं है, परंतु (यथावदासत्त्वपरीक्षया—तु) यथावत् आसपणेकी परीक्षा करकेही, हे वीर ! वर्द्धमान ! हम (त्वां—एव) तुजही (प्रभुम्) प्रभुकों (आश्रिताः स्मः) आश्रित हुए हैं. आसत्त्वकी परीक्षा आसके कथनसें और आसके चरितसें सिद्ध होती है, सो हमने तेरे कथनकी परीक्षा करी है, परंतु तेरे वचन हमने प्रमाणबाधित वा पूर्वापर विरोधि नहीं देखे हैं, और तेरा चरित देखा, सोभी आसत्त्वके योग्यही देखा है, और तेरी प्रतिमाद्वारा तेरी मुद्राभी निर्दोष सिद्ध होती है इन तीनों परीक्षाओंके करनेसें तेरेमें निर्दोष आसपणा सिद्ध होता है, इस वास्ते हमने तेरेकों प्रभु माना है. और अन्यदेवोंमें ये तिनो शुद्ध निर्दोष परीक्षाओं सिद्ध नहीं होती हैं, इसवास्ते तीन देवोंकों हम अपना प्रभु नहीं मानते हैं. नतु द्वेष वा अरुचिसें. “यदवादिलोकतत्त्वनिर्णये श्री-हरभद्रसूरीपादैः । पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु । युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परीग्रहः ” इति ॥ २९ ॥

अथाग्रे स्तुतिकार भगवंतकी वाणीकी स्तुति करते हैं.

तमः स्पृशामप्रतिभासभाजं भवन्तमप्याशु विविन्दते याः ॥

महेम चन्द्रांशुदृशावदातास्तास्तर्कपुण्या जगदीशवाचः ॥ ३० ॥

व्याख्या—हे जगदीश ! भगवन् ! (याः) जे वाचाओं तेरी वाणीयों (तमस्पृशाम्) अज्ञानरूप अंधकारके स्पर्शनेवालोंके (अप्रतिभासभाजम्) अप्रतिभासभाज अर्थात् अज्ञानी जिसकों नहीं जानसक्ते हैं, ऐसे (भवन्तम्—अपि) तुजकोंभी—तेरेकोंभी (आशु) शीघ्र (विविन्दते) प्रगट करतीयां है—जनातीयां है (ताः) तिन (चन्द्रांशुदृशावदाताः) चंद्रकी किरणोंकीतरें दृशा—ज्ञान करके अवदाता—श्वेत और (तर्कपुण्याः) तर्क करके पवित्र सम्मत (वाचः) वाणीयांकों (महेम) हम पूजते हैं ॥ ३० ॥

अथ स्तुतिकार नामके पक्षपातसें रहित होकर, गुणविशिष्ट भगवंतकों नमस्कार करते हैं.

यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया तथा ॥

वीतदोषकलुषः स चेद्भवानेक एव भगवन्नमोऽस्तुते ॥ ३१ ॥

व्याख्या—(यत्र तत्र समये) जिसतिस मतके शास्त्रमें (यथातथा) जिस तिस प्रकारकरके (यया तथा अभिधया) जिस तिस नामकरके (यः) जो तूं (असि) है (सः) सोही (असि) तूं है, परं (चेत्) यदि जेकर (वी-तदोषकलुषः) दूर होगए हैं द्वेष राग मोह मलिनतादि दूषण, तो, (भ-वान्—एक—एव) सर्व शास्त्रोंमें तूं जिस नामसें प्रसिद्ध है, सो सर्व जगें तूं एकही है, इसवास्ते हे भगवन् ! (ते) तेरेतांइ (नमः) नमस्कार (अ-स्तु) होवे ॥ ३१ ॥

अथ स्तुतिकार स्तुतिकी समाप्तिमें स्तुतिका स्वरूप कहते हैं.

इदं श्रद्धामात्रं तदथ परनिन्दां मृदुधियो

विगाहन्तां हन्त प्रकृतिपरवादव्यसनिनः ॥

अरक्तद्विष्टानां जिनवरपरीक्षाक्षमधियाम्

मयंतत्त्वालोकः स्तुतिमयमुपाधिं विधृतवान् ॥ ३२ ॥

व्याख्या—(मृदुधियः) मृदु कोमल विशेषबोधरहित जिनकी कोमल बुद्धि है, वे पुरुष तो (इदम्) इस स्तोत्रकों (श्रद्धामात्रं) श्रद्धामात्र, अर्थात् जिनमतकी हमकों श्रद्धा है, इसवास्ते हम इसको सत्य करकेही मानेंगे, ऐसे जन तो इस स्तोत्रकों श्रद्धामात्र (विगाहन्तां) अवगाहन करो—मानो, (हन्त) इति कोमलामंत्रणे (तत्—अथ) अथ सोही स्तोत्र (प्रकृतिपरवादव्यसनिनः) स्वभावही जिनोंका परके कथनमें वाद करनेका है, अर्थात् अपने माने देव और तिनके कथनमें जिनकों आग्रह है कि, हमने तो यही मानना है, अन्य नहीं, ऐसे व्यसनी पुरुष इस स्तो-त्रकों (परनिन्दां) परनिंदारूप अवगाहन करो; स्तुतिकारने परदेवोंकी निं-दारूप यह स्तोत्र रचा है, ऐसैं मानो, अपने माननेका कदाग्रह होनेसें, प-रंत हे जिनवर ! (परीक्षाक्षमधियाम्) परीक्षा करनेमें समर्थ बुद्धिवाले

(अरक्तद्विष्टानां) रागद्वेषरहितोंको, अर्थात् किसी मतमें जिनोंका राग पक्ष पात नहीं है, और किसी मतमें जिनोंको द्वेषसें असुचि नहीं है, ऐसे परीक्षा-पूर्वक सत् असत् वस्तुका प्रमाणसें निर्णय करनेवालोंको (अयं) यह (तत्त्वालोकः) तत्त्वप्रकाशक स्तव-स्तोत्र (स्तुतिमय-उपाधि) स्तुतिमय उपाधिकों-स्तुतिमय धर्मचिंताकों (विधृतवान्) धारण करता है ॥ ३२ ॥ इतिश्रि-हेमचंद्रसूरिविरचितमयोगव्यवच्छेदिकाद्वात्रिंशिकाख्यं श्री महावीर स्वामि-स्तोत्रं बालावबोधसहितं समाप्तम् ॥ तत्समाप्तौ च समाप्तोऽयं तृतीयः स्तम्भः ॥ श्रीमत्तपोगणेशेन विजयानंदसूरिणा ॥ कृतो बालावबोधोऽयं परोपकृतिहेतवे ॥ १ ॥

इन्दुबाणाङ्कचन्द्राब्दे माघमासे सिते दले ॥

पञ्चम्यां च तिथौ जीवघस्त्रेपूर्तिमगात्तथा ॥ २ ॥

॥ इति श्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे अयो-
गव्यवच्छेदकवर्णनोनाम तृतीयः स्तम्भः ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थस्तम्भप्रारम्भः ॥

तृतीयस्तम्भमें प्रायः अयोगव्यवच्छेदका वर्णन किया, अब इस चतुर्थ-स्तम्भमें विशेषतः अयोगव्यवच्छेदादि वर्णन करते हैं.

॥ अहम् ॥

प्रणिपत्यैकमनेकं केवलरूपं जिनोत्तमं भक्त्या ॥

भव्यजनबोधनार्थं नृतत्त्वनिगमं प्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥

व्याख्या-मैं हरिभद्रसूरि (नृतत्त्वनिगमं) नृतत्त्व लोकतत्त्वनिर्णयरूप निगम आगम कहता हूँ; किसवास्ते? (भव्यजनबोधनार्थं) भव्यजनोंके तत्त्वज्ञानके वास्ते; क्या करके? (भक्त्या) भक्ति करके (प्रणिपत्य) नमस्कार करके; किसको? (जिनोत्तमं) जिन नाम सामान्य केवलीका है, तिनोंमें तीर्थकरनामकरके जो उत्तम होवे, तिनको जिनोत्तम, जिनवर, अरिहंत, कहते हैं, तिनको. कैसे जिनोत्तमको? (एकं) एकरूपको, और (अनेकं) अनेकरूपको, शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें एकरूप है, “एगेदव्वे एगेआया एगेसिद्धे” इति श्रीस्थानांगसूत्रवचनप्रामाण्यात्, अर्थात् सामा-

न्यरूपसें एकही केवल जिनोंत्तमरूप परमेश्वर है, और व्यक्तिरूपकरके अनंत आत्मा एक परमब्रह्म परमेश्वरपदमें विराजमान होनेसें अनेक रूप है, अथवा द्रव्यार्थें एक आत्मा होनेसें एकरूप है, और पर्यायार्थिक-नयके मतसें ज्ञानदर्शनचारित्रादि अनंत पर्यायांकरके अनंत रूप है, “उ-क्तंच ज्ञाताधर्मकथांगे स्थापत्यासुतमुनिशुकपरिव्राजकसंवादे—सुया एगे वि-अहं दुवे विअहं अणेगे विअहं—इत्यादि—हे शुक! मैं एकभी हूं, दो रू-पभी हूं, अनेक रूपभी हूं—इत्यादि—” तिन एकानेकरूपवाले जिनोत्तमकों, फेर कैसे जिनोत्तमकों? (केवलरूपं) केवल शुद्धस्वरूप सर्वकर्मकृतउपा-धिकरके विनिर्मुक्त रहितकों ॥ १ ॥

अथ ग्रंथकार परिषत्—सभाकी परीक्षा करनी कहते हैं.

भव्याभव्यविचारो न हि युक्तोऽनुग्रहप्रवृत्तानाम् ॥

कामं तथापि पूर्वं परीक्षितव्या बुधैः परिषत् ॥ २ ॥

व्याख्या—(भव्याभव्यविचारः) भव्याभव्य अच्छे और बुरे पुरुषोंका विचार (अनुग्रहप्रवृत्तानाम्) अनुग्रह बुद्धिकरके प्रवृत्त होए संत जनोंकों (न-हि-युक्तः) करना युक्त—उचित नहीं है (कामं) यह कथन यद्यपि सम्मत है (तथापि) तोभी (बुधैः) बुद्धिमानोंने (पूर्वं) प्रथम (परिषत्) श्रोताजनकी (परीक्षितव्या) परीक्षा करणी उचित है ॥ २ ॥

अथ ग्रंथकार उपदेशके अयोग्य परिषत् के लक्षण कहते हैं.

वज्रमिवाभेद्यमनाः परिकथने चालनीव यो रिक्तः ॥

कलुषयति यथा महिषः पूनकवह्निषमादत्ते ॥ ३ ॥

व्याख्या—जो पुरुष (वज्र—इव) वज्रवत् (अभेद्यमनाः) अभेद्य मन-वाला होवे, अर्थात् उपदेश श्रवणकरके जिसके मनमें किंचित्मात्रभी शुभ परिणामांतर न होवे, मुद्गशेलवत्; और (यः) जो (परिकथने) उपदेशादि-केविषे (चालनी—इव) चालनीकी तरे (रिक्तः) रिक्त हो जावे, जैसें चाल-नीमें जल डालीए तब सर्व जल निकल जाता है, तैसें जो श्रोता व्या-ख्यान श्रवण करता है, और तत्काल भूलता जाता है, सो चालनीकी तरे रिक्त जानना. २. और (यथा) जैसें (महिषः) भैंसा तलावमें पानी

पीने जाता है, तब पानीमें प्रवेश करके पानीकों विलोडन करके (कलुषयति) मलीन करता है, और जलमें मूत्र करता है, न तो आप पानी पीता है, और न भैंसांकों पानी पीने देता है, तैसेही जो श्रोता व्याख्यानमें क्लेश लडाइ विग्रह कषाय करे, न तो आप सुने, और न शेषपरिषत्कों सुनने देवे, सो श्रोता भैंसेसमान जानना. ३. और जो श्रोता (पूनकवत्) पूनक बैया विजडासुघरा नामक जीवका घर, जो वृक्षके ऊपर बड़ी चतुराइसे बनाता है, तिस घरसें अहीरलोक घृत तपाके छानते हैं, तिस पूनकमेसें घृत तो निकल जाता है, और कूडाकचरा रह जाता है, तद्वत् पूनकवत्—पूनककी तरें गुण तो नहीं ग्रहण करता है, परंतु (दोषं) दोषकों—अवगुणांकों (आदत्ते) ग्रहण करता है, सो पूनकसमान जानना. ४. येह चारों परिषदा उपदेश करणे योग्य नहीं हैं. यह कथन उपलक्षण मात्र है, क्योंकि नंदिसूत्र आवश्यकसूत्र बृहत्कल्पसूत्रादिकोंमें औरभी अयोग्य परिषत्का वर्णन है ॥ ३ ॥

पूर्वोक्त परिषत्कों उपदेश निरर्थक है, सो दृष्टांतद्वारा कहते हैं.

जलमन्थनवत्कथितं बधिरस्यैव हि निरर्थकं तस्य ॥

पुरतोन्यस्य च नृत्यं तस्माद्ग्रहणं तु भव्यस्य ॥ ४ ॥

व्याख्या—(जलमन्थनवत्) जलके विलोडनेकीतरें (बधिरस्य) बहिरेकों (कथितं—इव) कथनकीतरें (च) और (अंधस्य) आंधेके (पुरतः) आगे (नृत्यं) नाटककीतरें (तस्य) तिस पूर्वोक्त अभव्यजनकों अयोग्य परिषत्कों उपदेश करना (निरर्थकं) व्यर्थ है, अर्थात् जैसें जलका विलोडना व्यर्थ है, जैसें बहिरेकों कहना व्यर्थ है, और जैसें आंधेके आगे नाटकका करना व्यर्थ है, तैसें तिस अयोग्य पुरुषकों उपदेशका देना व्यर्थ है. (तस्मात्) तिस हेतुसें (तु) निश्चयकरके (भव्यस्य) भव्ययोग्य पुरुषका (ग्रहणं) ग्रहण करना योग्य है ॥ ४ ॥

अथ ग्रंथकार परके तरफसें आशंका करते हैं.

आचार्यस्यैव तज्जाड्यं यच्छिष्योनावबुध्यते ॥

गावोगोपालकेनैव कुतीर्थेनावतारिताः ॥ ५ ॥

व्याख्या—(आचार्यस्य—एव) आचार्य—गुरुकाही (तत्) वो (जाड्यं) मूर्खपणा है (यत्) जो (शिष्यः) शिष्य (न—अवबुध्यते) प्रतिबोध नहीं होता है, जैसे (गोपालकेन—एव) गवालीएनेही (गावः) गौयां (कुतीर्थेन) बुरे घाटकरके (अवतारिताः) अवतारण करी हैं, इसमें गौयांका कसूर नहीं, किंतु गवालीएकाही कसूर है ॥ ५ ॥

अब आचार्य पूर्वोक्त आशंकाका उत्तर देते हैं.

किंवा करोत्यनार्याणामुपेक्ष्य सुवागपि ॥

तत्र तीक्ष्णकुठारोपि दुर्दारुणि विहन्यते ॥ ६ ॥

अप्रशान्तमतौ शास्त्रसद्भावप्रतिपादनम् ॥

दोषायाभिनवोदीर्णं शमनीयमिव ज्वरे ॥ ७ ॥

उदितौ चन्द्रादित्यौ प्रज्वलिता दीपकोटिरमलापि ॥

नोपकरोति यथान्धे तथोपदेशस्तमोन्धानाम् ॥ ८ ॥

एकतडागे यद्वत् पिबति भुजङ्गः शुभं जलं गौश्च ॥

परिणमति विषं सर्पे तदेव गवि जायते क्षीरम् ॥ ९ ॥

सम्यग्ज्ञानतडागे पिबतां ज्ञानसलिलं सतामसताम् ॥

परिणमति सत्सु सम्यक् मिथ्यात्वमसत्सु च तदेव ॥ १० ॥

एकरसमंतरिक्षात् पतति जलं तच्च मेदिनीं प्राप्य ॥

नानारसतां गच्छति पृथक् पृथक् भाजनविशेषात् ॥ ११ ॥

एकरसमपि तद्वाक्यं वक्तुर्वदनाद्विनिःसृतं तद्वत् ॥

नानारसतां गच्छति पृथक् पृथक् भावमात्म्यम् ॥ १२ ॥

स्वं दोषं समवाप्य नेष्यति यथा सूर्योऽशौशिको

रात्रिं कङ्कटुको न याति च यत् तुल्येपि पाके कृते ॥

तद्वत् सर्वपदार्थभावनकरं संप्रजैर्न मतं

बोधं पापधियो न यान्ति जनास्तुल्ये कथासंभवे ॥ १३ ॥

व्याख्या-अनार्य पुरुषोंको भले वचनोंवालाभी उपदेष्टा क्या करता है? अपितु कुछभी नहीं कर सकता है, जैसे बुरे काष्ठमें तीक्ष्णभी कुठार कुंठ हो जाता है॥ अग्रशांत, मिथ्यात्व करके अति मलीन बुद्धिवाले पुरुष विषे शास्त्रका यथार्थ तत्त्व प्रतिपादन करना दोषकेतांड होता है, जैसे नवीन ज्वरके उदयमें शमन करनेयोग ओषधका करना, अथवा घृत दुग्धादि पान कराना दोषकेतांड होता है॥ चंद्रमा सूर्य उदय हुए हैं, तथा जाज्वल्यमान कोटिदीपकभी निर्मल जलते हैं, तोभी वे चंद्रादि, जैसे अंधपुरुषविषे उपकार नहीं करसक्ते हैं, तैसेही मिथ्यात्व अज्ञानरूप अंधकारकरके आच्छादित मतिवाले पुरुषोंको सद्गुरुका उपदेशभी उपकार नहीं करसक्ता है॥ एकही तलावमें जैसे सर्प और गौ शुभ जल पीते हैं, परंतु सर्पविषे वोही जल विषरूप परिणामे परिणमता है, और वोही जल गौकेविषे दुध होके परिणमता है॥ तैसेही सम्यक् अविपरीत ज्ञानरूप तलावमें जिनतीर्थकर अरिहंतका ज्ञानरूप पाणी पीनेवाले सत् और असत्पुरुषोंको परिणमता है, सत्पुरुषोंमें तो सम्यक्त्वरूप होके परिणमता है, और असत्पुरुषोंमें मिथ्यात्वरूप होके परिणमता है॥ जैसे एकरसवाला पानी, आकाशसे पडता है, और सो पानी नानाप्रकारकी पृथ्वीको प्राप्त होके न्यारे न्यारे भाजनोंके विशेषसे नानारसपणे गत होता है॥ तैसेही एकरसवाला वाक्य, तिस वक्ताके मुखसे निस्ला हुआ, नानारसपणे अर्थात् न्यारे न्यारे जीवोंके भावोंको प्राप्त होके नाना प्रकारके अभिप्रायपणे परिणमता है॥ जैसे अपनेही दोषको प्राप्त होके उल्लू-सूर्यके उदयको नहीं इच्छता है, और जैसे सर्व मृगोंकेसाथ तुल्यपाकके भी कोकडु रंधाता नहीं है, तैसेही सर्व पदार्थोंके स्वरूपका प्रकट करनेवाले जैनमत पाकरकेभी, पापबुद्धि बुरे जन, तुल्यकथाके श्रवण करनेसेभी वे को प्राप्त नहीं होते हैं॥ ६।७।८।९।१०।११।१२।१३॥ अथ ग्रंथकार तत्त्वनिर्णय करनेको कहते हैं.

हठी हठे यद्वदति पुत यान्नोर्नावि बद्धा च यथा समुद्रे ॥

तथा परप्रत्ययमात्रदक्षो प्रमादाम्भसि बम्भ्रमीति ॥१४॥

यावत्परप्रत्ययकार्यबुद्धिविवर्तते तावदुपायमध्ये ॥

मनः स्वमर्थेषु निघट्टनीयं न ह्याप्तवादा नभसः पतन्ति ॥१५॥

व्याख्या—जैसे कदाग्रही कदाग्रहमें अतिष्ठुत चलायमान होता है, अर्थात् एक पक्षमें जूठा होकर दूसरेमें आश्रित होता है, दूसरेसे तीसरेमें, एतावता अनवस्थितिवाला होता है, और जैसे मलाहकी बंधी हुई नावा समुद्रमें अतिष्ठुत होती है, तैसेही परके निश्चय किये मात्रमेंही चतुर जो लोक है, सो प्रमादरूप पाणीमें अतिशय भ्रमण करता है, अर्थात् जे लोक अपने मनमें ऐसा समझते हैं कि, हमकों निश्चय करनेकी कुछ जरूर नहीं है कि, यह सत्य है वा असत्य? किंतु जो पूर्वजोंने कहा है, सोइ मान्य है, वे लोक तत्त्वपदार्थके ज्ञानकों कबीभी प्राप्त नहीं होते हैं॥ इसवास्ते जबतक परके ज्ञानके कार्यमें बुद्धि वर्तती है, तबतक उपायमें तत्त्वपदार्थके ज्ञानमें, और पदार्थोंमें अपना मननिरंतर जोडना चाहिये, अर्थात् अपने मनकों पदार्थोंके निर्णय करनेमें प्रवर्त्तावना चाहिये. क्योंकि, आसवाद, सत्योपदेष्टाके वचन आकाशसे नहीं गिरते हैं, किंतु बुद्धिसे विचारयुक्ति द्वारा सिद्ध होते हैं कि, येह वचन आसके है, और येह अनासके है, इस वास्ते बुद्धिमान् पुरुषकों तत्त्व पदार्थका अवश्य निर्णय करना चाहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ असत् तत्त्वपदार्थके अग्राह्यपणेका हेतु कहते हैं.

यच्चिन्त्यमानं न ददाति युक्तिं प्रत्यक्षतो नाप्यनुमानतश्च ॥

तद्बुद्धिमान् कोनु भजेत लोके गोशृङ्गतः क्षीरसमुद्भवो न ॥१६॥

व्याख्या—जो कथन करा हुआ तत्त्वपदार्थ, जब विचारीए, तब प्रत्यक्ष वा अनुमानसे युक्तियों न देवे, अर्थात् जो युक्तिप्रमाण प्रत्यक्ष अनुमानसे सिद्ध न होवे, सो तत्त्वका कथन कौन बुद्धिमान् सत्यकरके मानेगा ? अपितु कोइभी नहीं मानेगा. जैसे लोकमें गौके शृंगसे प्रत्यक्ष, और अनुमानसे कदापि दूधकी उत्पत्तिका संभव सिद्ध नहीं हो सक्ताहै ॥१६॥

अथ ग्रंथकार जे प्रकृतिसेही विनयवाले नम्र हैं तिनकोही विनयवंत पुरुष विनयवंत करसक्ते हैं यह कथन दृष्टांतद्वारा सिद्ध करते हैं.

येवै नेया विनयनिपुणैस्ते क्रियन्ते विनीता
 नावैनेयो विनयनिपुणैः शक्यते संविनेतुम् ॥
 दाहादिभ्यः समलममलं स्यात् सुवर्णं सुवर्णं
 नायसिंपडो भवति कनकं छेददाहक्रमेण ॥ १७ ॥

व्याख्या—जे विनयवंत विनयमें निपुण पुरुष हैं, तिनकोंही विनय-
 निपुण पुरुषोंहीने विनयवंत करणोंको समर्थ होइए हैं, परंतु अविनीतप्रकृ-
 तिवालेकों विनयवंत करणोंमें समर्थ नहीं होइए हैं. दृष्टान्त—जैसें भले
 वर्णादिवाले सुवर्णकोंही दाह ताडन छेदादिकरके अमल (निर्मल) सुवर्ण
 सिद्धकरशकीए हैं, अर्थात् समलसुवर्णही दाहादिकों करके निर्मल सुवर्ण होता
 है, परंतु छेददाहादिक्रमकरके लोहका पिंड, कनक (सुवर्ण) नहीं होता है,
 ऐसेंही जे योग्य पुरुष हैं, वेही उपदेशकों सुणके शुभपरिणामांतरको प्राप्त
 होसक्ते हैं, अयोग्य पुरुष नहीं होसक्ते हैं. ॥ १७ ॥

अथ बाह्य पदार्थका लक्षण कहते हैं.

आगमेन च युक्त्या च योर्थः समभिगम्यते
 परीक्ष्य हेमवद्बाह्यः पक्षपाताग्रहेण किम् ॥ १८ ॥

व्याख्या—आगमकरके और युक्तिकरके जो अर्थ—पदार्थ सिद्ध होवे,
 सोही दाहताडनछेदादिक्रमकरके सुवर्णकीतरें परीक्षा करके ग्रहण करने
 योग्य है, अर्थात् परीक्षक जनोंकों परीक्षापूर्वक सोही ग्रहण करना चाहिये
 कि, जो पदार्थ परीक्षामें पक्का हो जावे, किंतु पक्षपात आग्रहकों धारण
 न करना चाहिये. क्यों कि, पक्षपात—जूठा आग्रह करणोंसें क्या लाभ है?
 कुछभी लाभ नहीं हैं ॥ १८ ॥

अब जो विना विचारे तत्त्वपदार्थ ग्रहण करता है, सो पीछेसें पश्चात्ताप
 करता है, सोइ दिखाते हैं.

मातृमोदकवद्बाला ये गृह्णन्त्य विचारितम् ॥
 ते पश्चात्परितप्यन्ते सुवर्णग्राहको यथा ॥ १९ ॥

व्याख्या—यह मोदक मेरी माताका बनाया हुआ है, ऐसा जानके जे बालक तिसके अच्छेपणेका आग्रह करते हैं, और विना विचारे तिसकों ग्रहण करते हैं, वे पीछे परिताप (पश्चात्ताप) कों प्राप्त होते हैं. जैसे विना परीक्षाके करे सुवर्णका ग्रहण करनेवाला पुरुष, पीछे पश्चात्ताप करता है, यथा धिग् है मेरेकों जो मैने विना परीक्षाकेकरे सुवर्णके बदले पीतल ग्रहण किया. ऐसेही जे पुरुष अपने २ कुलकी रूढिसें माने अधर्मकों धर्म मानके कूद रहे हैं, और सत्य धर्मका निर्णय नहीं करते हैं, वे पक्षपाती पुरुष पीछे पश्चात्ताप करेंगे, लोहवणिक्वत्. ॥ १९ ॥

अथ तत्त्वज्ञानप्राप्तिका उपाय दिखाते हैं.

श्रोतव्ये च कृतौ कर्णौ वाग् बुद्धिश्च विचारणे ॥

यःश्रुतं न विचारेत स कार्यं विन्दते कथम् ॥ २० ॥

व्याख्या—सुननेयोग्य वस्तुमें तो दोनो कान करेहैं, वचन और बुद्धि ये दोनों तत्त्वके विचारणमें प्रवृत्तमान करेहैं, सो पुरुष तत्त्वज्ञानकों प्राप्त होता है, परंतु जो सुणके विचारता नहीं है, सो पुरुष कार्यकों अर्थात् तत्त्वकों कैसें जाणे ? ॥ २० ॥

नेत्रैर्निरीक्ष्य विषकण्टकसर्पकीटान्

सम्यग् यथा व्रजति तान् परिहृत्य सर्वान् ॥

कुज्ञानकुश्रुतिकुदृष्टिकुमार्गदोषान्

सम्यग् विचारयथ कोत्र परापवादः ॥ २१ ॥

व्याख्या—जैसें विषकंटक सर्प कीडे इन सर्वकों मार्गमें चलता हुआ, नेत्रोंसें देखकरके सम्यक् प्रकारे सर्व ओरसें परिवर्जन करता है, इसमें जो कहे कि, यह पुरुष रस्तेमें विषकंटक सर्प कीडे इनकों वर्जके चलता है, इसवास्ते यह पुरुष विषकंटकादिका निंदक है, क्या वो उसके कहनेसें पूर्वोक्त वस्तुओंका अपमान करनेवाला सिद्ध होसक्ता है ? कदापि नहीं होसक्ता है. ऐसेही जो पुरुष कुज्ञान, कुश्रुति, कुदृष्टि, कुमार्ग—कुज्ञान-अज्ञान, पदार्थके स्वरूपकों विपर्यय कथन करना. जैसें आत्मा चारभूतोंसें

ही उत्पन्न होता है, अथवा आत्मा एकांत नित्यही है, अथवा आत्मानाम-
क कोई पदार्थ है नहीं, एकांतक्षणिक विज्ञानाद्वैतरूपही तत्त्व है, एकान्त
ब्रह्मा द्वैतरूपही तत्त्व है, अथवा आत्मा सर्वव्यापक है, अथवा अंगुष्ठपर्व-
मात्र, वा तंदुलमात्र, वा स्यामाकधान्यजितना आत्मा है; सृष्टि, प्रल-
य, ईश्वर करता है, जीवोंके कर्मोंका फलप्रदाता ईश्वर है, वा जीवोंका
पूर्वोत्तर जन्म नहीं है, इत्यादि चैतन्य, और जडपदार्थोंके स्वरूपका
विपरीतकथन जिस शास्त्रमें होवे, सो शास्त्र अज्ञानरूप है।

तथा कुश्रुति,—जिस शास्त्रमें जीवहिंसा करणमें धर्म कथन करा होवे,
यथा ' वेदविहिता हिंसा धर्माय ' इत्यादि, तथा जिस शास्त्रके श्रवण
करणसे श्रोताओं अधर्मबुद्धि उत्पन्न होवे, वात्स्यायनादिकामशास्त्रवत्,
सो कुश्रुति।

कुदृष्टि,—जिसकी बुद्धि, कुदेव, कुगुरु, कुधर्मकरके वासित होवे, सो
कुदृष्टि; और कुमार्ग, एकांत नित्य, एकांत अनित्य, इत्यादि दुर्नयके मत-
सें जिस शास्त्रमें कथन करा होवे, संसारके मार्गकों मोक्षका मार्ग, और
मोक्षमार्गकों संसारका मार्ग कहना, तथा सम्यग् देव गुरु धर्मका स्वरूप
जिसमें कथन नहीं करा होवे, सो कुमार्ग, इत्यादिदूषणोंको त्यागके शुद्धमार्ग-
कों कथन करे, अर्थात् सद्ज्ञान, सत्श्रुति, सद्दृष्टि, सन्मार्गका कथन करे,
और पूर्वोक्त वस्तुओंका निषेध करे तो, इसमें दूसरोंका क्या अपवाद है?
अर्थात् क्या निंदा है? सो, परीक्षको ! तुमही विचार करो ॥ २१ ॥

प्रत्यक्षतो न भगवान् ऋषभो न विष्णु

रालोक्यते न च हरो न हिरण्यगर्भः ॥

तेषां स्वरूपगुणमागमसंप्रभावा

ज्ज्ञात्वा विचारयथ कोत्र परापवादः ॥ २२ ॥

व्याख्या—प्रत्यक्ष प्रमाणसें तो, न भगवान् ऋषभदेव दिखलाइ देता
है, और न प्रत्यक्षप्रमाणसें विष्णु दिखलाइ देता है, और न हर—महादेव
दीखता है, न ब्रह्माजी दीखता है, अब इन पूर्वोक्त देवोंका स्वरूप
जाण्याविना कैसे जाना जावे कि, तिनमें कैसे कैसे गुण थे ? इसवास्ते ये

सर्व आगमसँ अर्थात् आगम-वेदस्मृतिपुराणादि जैसा तिनका जीवनचरित्र प्रतिपादन करते हैं, तिनकों सुणके वा वाचके पूर्वोक्त देवोंके चारित्र्यकों जाणकर तिन देवोंके स्वरूपगुणका निर्णय करिए तो, इसमें विचार करो कि, क्या किसी देवकी निंदा है ? ॥ २२ ॥

अब पूर्वोक्त देवोंका किंचित् स्वरूप ग्रंथकार दिखाते हैं.

विष्णुः समुद्धतगदायुधरौद्रपाणिः

शंभुर्ललन्नरशिरोस्थिकपालपाली ॥

अत्यन्तशान्तचरितातिशयस्तु वीरः

कम्पूजयामउपशान्तमशान्तरूपम् ॥ २३ ॥

व्याख्या—उगरी हुई गदारूप करके रौद्रपाणी, अर्थात् भयानक जिसका हाथ है, ऐसे स्वरूपवाला तो विष्णु है; और गलेमें मनुष्यके कपालोंकी मालावाला स्वरूप, महादेवका अर्थात् ऐसे स्वरूपवाला महादेव है; और अत्यन्त शान्तरूप चरितातिशयवाला वीर महावीर अर्हन् है, यह स्वरूप पुराणादि शास्त्रोंमें और जैनमतके शास्त्रोंमें कथन करा है, तथा प्रत्यक्षमेंभी पूर्वोक्त देवोंके स्वरूप, तिनकी मूर्तियांद्वारा सिद्ध होता है. अब हम वाचकवर्गकों पूछते कि, तुम कहो, अब हम किसकों पूजें ? शान्तरूपवालेकों कि अशान्तरूपवालेकों ? ॥ २३ ॥

अब ग्रंथकार पूर्वोक्तदेवोंके कृत्योंका किंचित् स्वरूप दिखाते हैं.

दुर्योधनादिकुलनाशकरो बभूव विष्णुर्हरस्त्रिपुरनाशकरः किलासीत् ॥
क्रौञ्चं गुहोपि दृढशक्तिहरं चकार वीरस्तु केवल जगद्धितसर्वकारी २४

व्याख्या—दुर्योधनादि अनेक राजाओंके कुलोंका नाश करनेवाला विष्णु, कृष्ण होता भया, यह कथन महाभारतादि ग्रंथोंमें प्रसिद्ध है; और हर महादेव, त्रिपुरनामक दैत्यका नाश करनेवाला निश्चयकरके होताभया, और कार्तिकेयभी, क्रौञ्चनामक राजाकी दृढशक्तिका हरन-नाश करने अर्थात् क्रौञ्चराजाकी दृढशक्तिका नाश करनेवाला हुआ है, परंतु श्रीम-वीर तो, केवल सर्वजगत्के हितके करनेवाले हुए हैं. अब कहो! किसकी हम पूजा करीए ? ॥ २४ ॥

पीडयो ममैष तु ममैष तु रक्षणीयो
मथ्यो ममैष तु न चोत्तमनीतिरेषा ॥

निःश्रेयसाभ्युदयसौख्यहितार्थबुद्धे-

वीरस्य सन्ति रिपवो न च वञ्चनीयाः ॥ २५ ॥

व्याख्या—यह मेरेको पीडनेयोग्य—दुःख देनेयोग्य है, और यह मेरेको रक्षणेयोग्य है, और यह मेरेको मथने योग्य है, और यह मथने योग्य नहीं है, इत्यादि यह पूर्वोक्त नीति—न्याय पूर्वोक्त काम करनेवाले देवोंका उत्तम कर्म नहीं है, ‘रागद्वेषपूर्वकत्वात्’—और जिससे जीवोंको मुक्ति, और पुण्यानुबंधी पुण्यके उदयसे स्वर्गप्राप्तिरूप सुख, और इसलोक-परलोकमें हित होवे, ऐसी बुद्धिवाले अर्थात् ऐसे ज्ञानसत्योपदेशवाले, श्रीमहावीर भगवन्तके रिपु वैरि तो जगत्में बहुत हैं, परंतु श्रीमहावीरजीको वंचनीय कोईभी नहीं है, अर्थात् वध्य करनेयोग्य, पीडा देने योग्य, मथनेयोग्य, कोईभी नहीं है. वीतरागत्वात्. ॥ २५ ॥

रागादिदोषजनकानि वचांसि विष्णो

रुन्मत्तचोष्टितकराणि च यानि शंभोः ॥

निःशेषरोषशमनानि मुनेस्तु सम्यग्-

बन्धत्वमर्हति तु को नु विचारयध्वम् ॥ २६ ॥

व्याख्या—पुराणादि शास्त्रोंमें विष्णुके वचनरागादिदोषोंके जनक उपलब्ध होतेहैं; और पूर्वोक्त शास्त्रोंमेंही शंभु—महादेवके वचन उन्मत्तपणकी चेष्टाके उपलब्ध होतेहैं; और जैनागममें मुनि श्रीमहावीर अर्हन्के वचन संपूर्ण रोष, उपलक्षणसे रागकामादिके शमन करनेवाले उपलब्ध होतेहैं; अब हे वाचकवर्ग ! तुमपक्षपातकों छोड़के अच्छीतरे विचार करो कि, इन पूर्वोक्त देवोंमें वंदना करनेयोग्य कौन देव है ? ॥ २६ ॥

यश्चोद्यतः परवधाय घृणां विहाय

त्राणाय यश्च जगतःशरणं प्रवृत्तः ॥

रागी च यो भवति यश्च विमुक्तरागः

पूज्यस्तयोः क इह ब्रूत चिरं विचिन्त्य ॥ २७ ॥

व्याख्या—जो एक तो दयाकों छोड़के परके बध करणेकेवास्ते उद्यत हो रहा है, और जो एक जगत्के त्राणकेतांइ अर्थात् जगद्वासि जीवोंकी रक्षाकेवास्ते शरणकों प्रवृत्त हुआ है, अर्थात् शरण्यभूत है; और जो एक रागी है, और जो वीतराग है, इन दोनोंमेंसे पूज्य—पूजनेयोग्य कौनसा देव है? सो, हे पाठकजनो! तुम चिरकालतक चिंतन करके कहो ॥ २७ ॥

शक्रं वज्रधरं बलं हलधरं विष्णुं च चक्रायुधं

स्कन्दं शक्तिधरं श्मशाननिलयं रुद्रं त्रिशूलायुधम् ॥

एतान् दोषभयार्दितान् गतघृणान् बालान् विचित्रायुधान्

नानाप्राणिषु चोद्यतप्रहरणान् कस्तान्नमस्येद्बुधः ॥ २८ ॥

व्याख्या—वज्र धारण करनेवाले इंद्रको, हलमुशलके धारनेवाले बल-देवको, और चक्र धरनेवाले विष्णुको, शक्तिके धरनेवाले कार्तिकेयको, श्म-शानमें रहनेवाले और त्रिशूलके धरनेवाले रुद्र-महादेवको, इन पूर्वोक्त दोषभयकरके पीडित, दयारहित, अज्ञानी, विचित्र प्रकारके शस्त्र रखनेवाले, और नानाप्रकार प्राणियोंकेउपर शस्त्रके उगारने वा चलानेवाले देवोंको, कौन बुध प्रेक्षावान् नमस्कार करे? अपितु कोइभी न करे ॥ २८ ॥

न यः शूलं धत्ते न च युवतिमङ्गे समदनां

न शक्तिं चक्रं वा न हलमुशलाद्यायुधधरः ॥

विनिर्मुक्तं क्लेशैः परहितविधाबुध्यतधियं

शरण्यं भूतानां तमृषिमुपयातोऽस्मि शरणम् ॥ २९ ॥

व्याख्या—जो देव, त्रिशूल धारण नहीं करता है, और कामयुक्त स्त्रीको अपने खोलेमें नहीं धारण करता है, तथा जो शक्तिको, और चक्र-को धारण नहीं करता है, तथा जो हलमुशलादि शस्त्रोंका धारनेवाला नहीं है, तिस रागद्वेष अज्ञानकामादि सर्वक्लेशोंसे रहित, परजीवोंके हित

करनेमें सावधान बुद्धिवाले, और जगद्वासि जीवोंके शरणभूत, ऋषि, सन्ने देवके शरणको मैं प्राप्त हुआ हूँ ॥ २९ ॥

रुद्रो रागवशात् खियं वहति यो हिंस्रो हिया वर्जितो

विष्णुः क्रूरतरः कृतघ्नचरितः स्कन्दः स्वयं ज्ञातिहा ॥

क्रूरार्या महिषांतकृन्नरवसामांसास्थिकामातुरा

पानेच्छुश्च विनायको जिनवरे स्वल्पोपि दोषोऽस्ति कः ॥३०॥

व्याख्या—रुद्र—महादेव रागके वशसें स्त्रीको वह रहा है, और जीव-हिंसा करनेवाला है, और लज्जाकरके वर्जित है, विष्णु अतिशयकरके क्रूर और कृतघ्नचरितवाला है, स्कंद आपही अपनी ज्ञातिका हननेवाला है; निर्दय काली भवानी भैंसोंके अंत करनेवाली मनुष्योंकी चर्बी मांस हाडोंकी इच्छावाली कामातुर है; और विनायक पीनेकी इच्छावाला है, परंतु जिन-वरमें पूर्वोक्त दूषणोंमेंसे स्वल्पमात्रभी कोई दूषण है? अपितु कोईभी नहीं ३०॥

ब्रह्मा लूनशिरा हरिर्दृशि सरुक् व्यालुप्तशिश्नो हरः

सूर्योप्युल्लिखितोनलोप्यखिलभुक् सोमः कलङ्काङ्कितः ॥

स्वर्नाथोपि विसंस्थुलः खलु वपुः संस्थैरुपस्थैः कृतः

सन्मार्गस्खलनाद्भवन्ति विपदः प्रायः प्रभूणामपि ॥ ३१ ॥

व्याख्या—ब्रह्माजीका शिर कटागया, विष्णुके नेत्रमें रोग हुआ, महा-देवका लिंग टूट गया, सूर्यका शरीर त्राछ गया, अग्नि सर्वभक्षी हुआ, चंद्रमा कलंकवाला हुआ, और इंद्रभी सहस्रभगकरके बुरे शरीरवाला हुआ; क्योंकि, सन्मार्ग (अच्छेमार्ग) सें स्वलायमान (भ्रष्ट) होनेसें, प्रायः समर्थ पुरुषोंकोभी दुःख होतेहैं. इसका भावार्थ कथानकोंसें जान-ना. तथाहि—

ब्रह्माजीका शिर क्यों कटा? सो लिखते हैं. एकदा प्रस्तावे तेतीस कोटी देवता एकत्र मिले, तहां सर्व परस्पर मातापितायोंका वर्णन करते हुए, तहां तिन्होंने कहा कि, बड़ा आश्चर्य है जो महेश्वरके माता पिता जाननेमें नहीं आते हैं, इसवास्ते महेश्वरके मातापिता नहीं हुए हैं; ऐसा

देवतायोंका वचन सुणके, ब्रह्माने पांचमे गर्दभके मुखसरीसे मुख करी ईर्षासे कहा कि, मेरे सर्व पदार्थके जाननेवालेके जीवतेहुए ऐसे क्यों कहते हों? क्योंकि, महेश्वरके मातापिताका स्वरूप मैं जानता हूं. तदपीछे ब्रह्माजीने कहनेका प्रारंभ करा, तब महेशने अप्रकाशने योग्य प्रकाश करनेसे ब्रह्माउपर क्रोधकरके कनिष्ठिका अंगुलीके नखकरके सर्वदेवतायोंके प्रत्यक्ष शीघ्र ब्रह्माजीका शिर छेदन करा.

कोइक ऐसे कहते हैं कि ब्रह्मा और वासुदेव इन दोनोंका अपने अपने बडपणविषे विवाद हुआ, ब्रह्मा कहै मैं बडा हूं, और वासुदेव कहै मैं, दोनों जने विवाद करते हुए महेश्वरके पास गए, महेशने कहा तुम जिद मत करो, परंतु तुमारे दोनोंमेंसे जो मेरे लिंगके अंतको पावेगा, सोइ बडा, अन्य नहीं; तिस पीछे विष्णु तो लिंगका अंत देखने वास्ते बडे वेगसे अधोलोकको गया; परंतु लिंगका अंत न पाया, क्यों कि पातालके बडवानलके सबबसे आगे न जा सका, तबसे ही कृष्ण, काले शरीरवाला होके पाछा आया, और महादेवको कहने लगा कि, तुमारे लिंगका अंत नहीं है.

और ब्रह्माभी, तैसेही उपरको जाता हुआ, परंतु लिंगके अंतको प्राप्त नहीं हुआ, तब खेदको प्राप्त हुआ, तिस अवसरमें महेशके लिंगके मस्तकके उपरसे पडती हुई माला प्राप्त हुई, तब ब्रह्मा मालाको पूछता हुआ कि, तूं कहांसें आई है? मालाने जवाब दिया कि, लिंगके मस्तकोपरसे आई हूं; ब्रह्मा बोला, आतीहुई तेरेको कितना काल लगा? मालाने कहा, छ मास, तब ब्रह्माने कहा, ऐसे वेगसे चलनेवाली तुझको छ मास लगे है तो, लिंगका अंत बहुत दूर है, इसवास्ते मैं थाकके पाछा जाताहूं, परंतु अंतकी पृच्छामें तैंने साक्षी देनी; मालाने ब्रह्माका कहना मान्य करा, तब तिसको साथ लेके ब्रह्मा शंभुके पास जाताहुआ, और कहता हुआकि मैंने लिंगका अंत पाया, और साक्षीकेवास्ते इस मालाको साथ ल्यायाहूं. तब शंभुने मालाको पूछा, मालाने कहा जैसे ब्रह्मा कहता है, तैसेही है, तब अनंतलिंगको सांत करनेवाले ब्रह्मा, और जूठी साक्षी देनेवाली माला, दोनोंके उपर ईश्वर कोपायमान हुआ, कनिष्ठिकाके नखसे ब्रह्माका गर्दभाकार शिर छेदन करा, और मालाको अस्पृश्यपणेका शाप दिया.

और मत्स्यपुराणके १८२ अध्यायमें ऐसे लिखा है.

[पार्वतीजी महादेवजीसँ पूछती हैं] जिस हेतुसँ आप इस स्थानकों नहीं छोड़ते उस उत्तम हेतुकोभी वर्ण कीजिये. यह सुनकर महादेवजीने कहा कि, हे देवि ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीके पांच शिर होतेभये, उनमें पांचवाँ शिर सुवर्णकेसमान कांतिवाला था, फिर एकसमय वह ब्रह्माजी मुझसँ कहने लगे कि, मैं तुम्हारे जन्मको जानता हूँ, तब मैंने क्रोधकरके अपने बायें अंगूठेके नखसँ ब्रह्माका वह पांचवाँ शिर छेदन करदिया; तब ब्रह्माजीने कहा कि, तुमने विनाही अपराधके मेरा शिर काटडाला है, इसलिये मेरे शापसे तुम कपाली होगे, अर्थात् तुम्हारे हाथमें कपाली चिपक जायगी, तब तुम ब्रह्महत्यासँ व्याकुल होकर तीर्थोंपर विचरोगे, उनके शापको सुनकर मैं हिमवान् पर्वतपर चला गया, वहाँ नारायणके पाससे मैंने भिक्षा मांगी, तब नारायणने अपने नखके अग्रभागसे वह मेरे हाथकी कपाली उतारली, उसके उतारतेही उसमेंसे बहुतसी रुधिरकी धारा निकली, और ५० योजनके विस्तारमें वह रुधिरकी धारा फैल गई, और कपालीभी फैलकर बड़े अद्भुत भयंकररूपसँ घोर दीखती भई; इसके पीछे वह रुधिरकी धारा दिव्य हजार वर्षोंतक वहती भई, तब विष्णु भगवान् मुझसे कहने लगे कि, यह ऐसा कपाल तुम्हारे हाथमें कैसे लगगया था ? इस मेरे हृदयके संदेहको आप मेरे आगे कहिये; तब मैंने कहा कि, हे देव ! आप इस कपालकी उत्पत्तिको श्रवण कीजिये. पूर्वकालमें हजारों वर्षोंतक ब्रह्माजीने दारुण तपस्याकरके अपने दिव्यशरीरको रचा, उनके तपके प्रभावसे सुवर्णके समान कांतिवाला पांचवाँ शिर होताभया, उन ब्रह्माजीके पांचवें शिरकों मैंने क्रोधकरके काटडाला, उसी शिरकी यह कपाली है—इत्यादि.

हरि-कृष्ण, नेत्रविषे रोगी ऐसे हुए—दुर्वासा महाऋषिको उर्वशीके साथ भोग करनेकी इच्छा हुई, तब उर्वशीने दुर्वासाऋषिको कहा कि, जेकर तू अपूर्व यान (असवारी) में बैठके स्वर्गमें आवेगा तो, मैं तुझकों अंगीकार करूंगी; यह सुनकर दुर्वासा ऋषि कृष्ण वासुदेवके पास गया, तिन्होंने ऋषिकी स्वागत करी, और आगमनका कारण पूछा तब ऋषिने

कहा कि, मैं स्वर्गमें जानेको ईच्छता हूं, इसवास्ते तूं भार्यासहित गोरूप होके रथमें जुड़के मुझे स्वर्गमें पहुंचता कर, परंतु तुमने रस्ते चलते हुए पीछेको नहीं देखना. तब कृष्णजीने भक्ति और भयसें तिसका वचन अंगीकार करा, और ऋषिको स्वर्गमें लेजानेको प्रवृत्त हुआ. रस्तेमें स्त्रीहोनेसें तथा विध चलनेकी शक्तिके न होनेसें, लक्ष्मीको मुनि प्राजनक दंडकरके वारंवार प्रेरता हुआ, तिस प्रेरणाको हरि स्नेहकरके असहन करता हुआ, लक्ष्मीके सन्मुख देखता हुआ, तब दुर्वासा ऋषिने अंगीकृतके न निर्वाह करनेसें कृष्णके उपर कोप करके तिसके नेत्रोंको प्राजनकसें प्रेरणा करी, ऐसे हरिके लोचनोंमें रोग उत्पन्न भया.

अन्य ऐसे कहते हैं कि—एकदा प्रस्तावे कृष्णजी तलावके कांठेऊपर तप तपतेथे, तहां कोई तापसनी स्नान करतीथी, कृष्णने तिसका नम्रपणा सकाम दृष्टिसें देखा, तापसनीने तैसा जानकर शाप देके, लोचन स्रोग करा.

महादेवका लिंग ऐसे टूटा—दारुवन नामक तपोवनमें तापस वसतेथे, तिनकी कुटियोंमें महादेव भीख मांगनेकेवास्ते अपना समस्त अलंकार और घंटोंकी टंकारसे दिगंतराल मुख करता हुआ जाताथा, तापसनीको देखके महादेवको विकार उत्पन्न हुआ, तब महेश्वरने तिसकेसाथ भोग करा. यह वृत्तांत ऋषियोंने जाना, तब ऋषियोंने अतिकोपसे शाप दिया, तब शिवका लिंग टूटगया, तदपीछे सर्वजनोंके लिंग टूट गए, और जग-तोत्पत्ति बंध होगई. तब देवतायोंने विचार करा कि, यह तो अकालमेंही संहार होनेलगा, ऐसे चिंतके तिनोंने तापसोंको प्रसन्न करा, तब तिनोंने तैसाही लिंग करदीया, परंतु यह कहदिया कि, यह लिंग, आगे तो सदाही स्तब्ध रहता था, परंतु आजपीछे जब कामार्थी होवेगा, तबही स्तब्ध, होवेगा, तदपीछे सर्वलोकोकेभी लिंग वैसेही होगए.

सूर्यका शरीर ऐसे त्राछा गया—पहिलां सूर्यकी रत्नादेवी नामा भार्या थी, तिसका यम नामा पुत्र होता भया, रत्नादेवी सूर्यका ताप नहीं सहन करती हुई, अपने स्थानमें अपनी प्रतिच्छायाको स्थापनकरके समुद्रके तटपर जाकर वडवा (घोड़ी) का रूपकरके रहती हुई; प्रति-च्छाया, शनैश्चर भद्रानामके अपत्योंको जनती हुई. एकदा प्रस्तावे बाहि-

रसें आएहुए यमनें भोजन मांगा, छायाने भोजन नहीं दिया, तदा यमने लातका प्रहार करा, तब छायाने शाप देके यमका पग रोगवाला करदिया, यमने अपने पिता सूर्यकों कहा, सोभी सुणके चिंतवन करता हुआ कि, स्वमाता ऐसे कैसे करे ? इसवास्ते यह असली यमकी माता नहीं है. ऐसे चिंतवन करतेहुए सूर्यने वडवाके रूपमें यमकी माताको देखी, तब सूर्य तिसकी इच्छाविनाहि जोरावरीसें तिसकेसाथ भोग करता हुआ, तिससे आश्विनदेवते होतेभए. तिस रत्नाने रोषारुणनयन होके सूर्यको देखा, तब सूर्य कुष्टी होगया, तब सूर्य अपने रोगके दूर करणेवास्ते धन्वंतरिकेपास गया, तब धन्वंतरिने कहा कि, तेरा शरीर विनाछीले अच्छा नहीं होवेगा, तब सूर्यने अपने शरीरको छीलावनेवास्ते देववडइको प्रार्थना करी, तब तिसने कहा कि, पीडा सहनेवाला होवे तो त्राहुं अन्यथा नहीं; सूर्यने कहा जैसे तुम कहोगे तैसे हि होवेगा, तब मस्तकसे लेके जानुतांइ त्राच्छनेमें बहुत पीडा हुई, तब सूर्यने सीत्कार करा, तब बढाइने त्राछना छोड दिया.

अन्य ऐसे कहतेहैं—वडवारूप स्वभार्याकों भोगके सूर्य तिसके पिताको उपलंभ देता हुआ कि, तेरी पुत्री मुझको छोडके अन्य जगे रहती है, सो कहता हुआ कि, तेरा ताप न सहन करनेसे वो क्या करे? इसवास्ते जेकर तिस मेरी पुत्रीके साथ तेरा प्रयोजन है तो, अपना शरीर छीलवा ले, तिससें तेज मंद होजावेगा, तब सूर्यने देववडइसे शरीर छीलवाया.

और मत्स्यपुराणके ३१ एकादश अध्यायमें ऐसेलिखा है—ऋषियोंने पूछा हे सूतजी ! आप यथार्थक्रमसे सूर्यवंश और चंद्रवंशकों वर्णन कीजिये. सूतजी बोले प्रथम अदितिस्त्रीमें कश्यपजीसे सूर्य उत्पन्न हुए, उनकी संज्ञा, राज्ञी और प्रभा, यह तीनों नामवाली तीन स्त्रियां होती भई. इनमें वह रैवतीकीपुत्री राज्ञीनाम सूर्यकी स्त्रीने रेवतनाम पुत्रको उत्पन्न किया, प्रभास्त्रीने प्रभातनाम पुत्रको उत्पन्न किया, और संज्ञानाम स्त्रीने मनुनाम पुत्रको उत्पन्न किया, और इसी स्त्रीने यम और यमुना, इन दोनों पुत्रपुत्रियोंकोभी उत्पन्न किया. फिर वह संज्ञास्त्री जब सूर्यके तेजको न सहती भई, तब उसने अपने शरीरसे छाया नाम बडी उत्तम स्त्रीको उत्पन्न किया.

वह छायानाम स्त्री संज्ञाके आगे खड़ी होकर बोली कि मैं क्या करूं? तब संज्ञाने कहा कि, हे वरानने ! तू इस मेरे पति सूर्यको ही भज, और मेरी संतानको माताके समान अपना स्नेहकरके पालन कर; फिर तथास्तु अर्थात् ऐसाही करूंगी इस प्रकारसे अंगीकार करके वह छाया सूर्यको प्राप्त हुई. तब सूर्यभी उसको संज्ञाकेही समान जानकर बड़े आदर भावसे उसकेसंग भोग करनेलगे, उसमें दूसरा मनु नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, यह मनु पूर्वके मनुका सवर्णी होकर सावर्णि नाम मनु विख्यात हुआ, फिर उसी छायामें सूर्यसे शनैश्चर, तपती और विष्टि, यह संतान उत्पन्न हुई. इसके अनंतर वह छाया अपने पुत्र सावर्णिनाम मनुमें अधिक स्नेह करनेलगी, इस बातको प्रथम मनुने तो सहलिया, परंतु यम न सहसके, और महाक्रोधित होकर यमने उस छायाके पुत्र मनुको दाहिन पैरसे ताडन किया, तब छायाने यमको यह शाप दिया कि, यह तेरा पैर पीवयुक्त कीटोंसे भरे घाववाला होकर राधसे झिरे.

फिर यम इसशापको न सहकर, अपने पिताके पास जाकर यह बोले कि, हे देव ! माताने मुझे निरपराध शापित करदिया है, मैंने बालकपणसे जरा पैरको उठादिया था, उस समय मनुने उसको निषेधभी किया था, परंतु उसने शाप देही दिया. हे विभो ! जो कि उसने हमको शापसे हत कर दिया है, इसहेतुसे वह विशेषकरके हमारी माता नहीं है, तब सूर्यने कहाकि, हे महामते ! मैं क्या करूं ? मूर्खतासे अथवा कर्मके प्रभावसे कहो, किसको दुःख नहीं होता है ? शिवजीसेभी कर्मकी रेखा दूर नहीं होती है तो, अन्यजनोंकी क्या बात है ? हे पुत्र ! मैं तुझे मुरगा दूंगा, वह तेरे कृमियोंको भक्षण करके राधरुधिरकोभी खा कर दूर करदेगा. पिताके इसवचनको सुनकर यम दारुण तपस्या करनेलगे, अर्थात् गोकर्ण तीर्थपर जाके सर्व वस्तुओंको त्याग, फल, मूल, पत्र और वायु, इनका आहार करनेलगे, वहां दश किरोड वर्षोंतक यमने महादेवजीका तप किया, तब शूलधारी शिवजी उसपर प्रसन्न होकर बोले कि, वर मांग. तब यमने संसारके कियेहुए पापपुण्योंको जान लेनाही वर मांगा, इस-

प्रकार करके वह यम, शिवजीके प्रभावसे लोकपाल होजाताभया, फिर अधमोंकाभी जाननेवाला होकर, सब पितरोंका पति होता भया.

इसकेपीछे सूर्यदेवता, प्रथम कियेहुए संज्ञाके कर्मको जानकर, उसके पिता, त्वष्टाके पास गये, और क्रोध होकर उससे बोले कि, तुम्हारी पुत्रीने मेरी विनाआज्ञा ऐसा कर्म किया. यह सुनकर हे ऋषियो ! उस त्वष्टाने सूर्यको समझाकर कहा कि, हे भगवन् ! यह मेरी पुत्री आपके तेजको न सहकर घोड़ीका रूप धारण करके मेरे समीप आईथी, सो हे सूर्यदेव ! मैंने उससे यह कहकर उसको लौटादिया कि, सूर्यकी आज्ञा लिये विना जो तू मेरे घर आई है, इसहेतुसे तू मेरे घरमें प्रवेश करनेको योग्य नहीं है. इस मेरे वचनको सुनकर वह मरुस्थल देशमें जाकर घोड़ीके रूपको धारण करके पृथ्वीमें विचरती है, इस हेतुसे आप प्रसन्न होकर मेरेऊपर दया करो. हे दिवाकरजी ! मैं आपके तेजको यंत्रमें करके पृथक् करदूंगा, और आपके रूपको मनुष्योंका आनंद करनेवालाभी कर दूंगा. तब सूर्यने कहा, ऐसाही करो. तब उस त्वष्टाने सूर्यके तेजको यंत्रमें करके सूर्यसे पृथक् कर दिया, फिर उसी पृथक् किये हुए सूर्यके तेजसे, विष्णुका चक्र, शिवजीका त्रिशूल, इंद्रका वज्र और अन्य २ देवताओंके अनेक शस्त्रोंको बनाया.

इसके अनंतर दैत्यदानवोंके नाश कर्त्ता संपूर्ण मूर्तिसे रहित सूर्यको सहस्र किरणवाले विना पैरके सुंदरमुखमात्रही रूपको त्वष्टाने ऐसा बनाया कि, फिर उससूर्यके पैरोंके रूप देखनेकोभी त्वष्टा समर्थ नहीं हुआ, तभीसे सूर्यकी प्रतिमामें कोई उनके पैरोंकी मूर्ति नही बनवाता है और कोई हठसे वा मूर्खतासे उनके पैरोंकी मूर्ति बनावता है वह पापियोंकी महानिन्दित गतिको प्राप्त होकर इस संसारके कठिण दुःखोंको भोगता हुआ कुष्ठरोगको प्राप्त होताहै, इसहेतुसे धर्मकामादिकी इच्छाका करनेवाला मनुष्य किसी मंदिर वा स्थानमें किसी स्थानपरभी सूर्यकी मूर्तिमें पैर न बनवावे.

इसके उपरांत सूर्य देवता, उसी मुखकेही रूपसे कामदेवसे पीडित होकर पृथ्वीलोकमें जाकर उस संज्ञाकी इच्छा करतेभये, और बड़े तेज-

वाले घोड़ेका रूप बनाकर उस घोडीरूप संज्ञाके पास पहुंचे; तब संज्ञा मनसे क्षोभको प्राप्त होकर भयसे विव्हल होती भई, और उस सूर्यसेही धारण किये हुए वीर्यको परपुरुषकी शंका करके अपनी नासिकाके दोनों छिद्रोंके द्वारा बाहर त्यागती भई, उसी वीर्यसे अश्विनीकुमार उत्पन्न होते भये. अश्वसे उत्पन्न होनेसे उनको दस्रौ कहते हैं, और नासिकाके द्वारा होनेसे नासत्यौ ऐसाभी कहते हैं.

अग्नि सर्वभक्षी ऐसे हुआ—पहिले कोइक ऋषि अपनी कुटीमें वैश्वानरको बड़ी भक्तिसे आहुतियोंकरी पूजता था, सो एकदा अग्निको कहनेलगा कि, तूं मेरी भार्याकी रखवाली करी, ऐसे कहकर ऋषि बाहिर गया. तब पीछे कामांध होके किसी ऋषिने अग्निके प्रत्यक्षही ऋषिपत्नीके साथ भोग करा, क्षणांतरमें सो ऋषि आया, तिसने इंगिताकारकरके अपनी भार्याको परपुरुषने भोगी जानके अग्निको पूछा कि, यहां कौन आयाथा? तब दोनोंमेंसे किसीनेभी उत्तर न दिया, परंतु तिस ऋषिने अपने ज्ञानकरके तिस उपपतिको जान लिया, तब रक्षणेयोग्यकी रक्षा न करनेसे और पूछेका उत्तर न देनेसे ऋषिने अग्निके उपर क्रोध करा, और शाप दिया कि, तूं सर्वभक्षण करनेवाला होवेगा. तब अग्नि अशुचि आदि सर्व भक्षण करने लगा, और जो कुछ गंदकी आदि अग्नि भक्षण करे सो सर्व देवताओंको प्राप्त होने लगा. “अग्निमुखा वै देवा ” इतिश्रुतिवचनप्रामाण्यात्, तब अशुचि रस खानेसे उद्विग्न हुए देवते, अपने ज्ञानसे शापका व्यतिकर जानकर तिस ऋषिकों प्रसन्न करनेलगे, परंतु ऋषिने माना नहीं. अंतमें देवताओंके अतिआग्रहसे अग्निको सप्तजिह्वावाला कर दिया, तबसे अग्निका नाम सप्तार्चि प्रसिद्ध हुआ. तिनमें दो जिह्वासे आहुति भोगने लगा, वह देवताओंको पहुंचने लगी, और शेष पांच जिह्वासे सर्व भक्षी स्थापन किया.

चंद्रमाको ऐसे कलंक लगा—चंद्रमा बृहस्पतिके पास पढताथा, तिसने बृहस्पतिकी भार्याकेसाथ भोग करा, सो वृत्तांत बृहस्पतिने जाना, तब तिसने चंद्रमाको शाप दिया कि, हे गुरुपत्नीउपभुंजक! तूं सदा कलंकवान् हो.

इंद्रभी सहस्र भगकरके बुरे शरीरवाला हुआ, सो ऐसे-पूर्वकालमें गौ-
तममुनिकी अहल्यानाम भार्या थी, तिसके रूपऊपर मोहित होके तिसकी
कुटीमें जाके इंद्र तिसकेसाथ भोग करताभया, इतनेमें गौतमजी कुटीके
बाहिर आगए, इंद्र तिसके भयसें मार्जारका रूपकरके स्वर्गमें जाता हुआ.
गौतमऋषिने विचारा कि, यह कोइ सामान्य बिडाल नहीं है, इत्यादि
विचारकरके जाना कि, यह तो इंद्र है. तब शाप देके इंद्रको सहस्र भग-
वाला कर दिया, और अपने छात्रोंको तिसकेसाथ भोग करनेवास्ते
भेजता हुआ, पीछे देवताओंने ऋषिकों प्रसन्न करा, तब गौतमने इंद्रको
सहस्रभगकी जगे सहस्रनेत्रवाला करदिया-इति ॥ ३१ ॥

बन्धुर्न नः स भगवानरयोऽपि चान्ये
साक्षान्न दृष्टतर एकतमोऽपि चैषाम् ॥

श्रुत्वा वचः सुचरितं च पृथग्विशेषं
वीरं गुणातिशयलोलतया श्रिताः स्म ॥ ३२ ॥

व्याख्या-सो भगवान् श्रीवीर, हमारा भाइ नहीं है; और अन्य ब्रह्मा,
विष्णु, महादेवादि देवते हमारे शत्रु नहीं हैं; और न इन पूर्वोक्त सर्व
देवोंमेंसे किसी एककोभी प्रत्यक्षसें अतिशयकरके हमने देखा है, परंतु
पृथग् विशेषवाले वचनको और चरितको अर्थात् जैनागमानुसार श्रीमहा-
वीरके वचन, और तिनका चरित सुणके, और अनंतर काव्यमें लिखेहुए
पुराणानुसार अन्यदेवोंके वचन, और चरित सुणके, पृथक् २ तिन चरि-
तोंका विशेष विचार करके, गुणातिशयकी चंचलता करके, हम श्रीमहावीर
कोही आश्रित हुए हैं ॥ ३२ ॥

नास्माकं सुगतः पिता न रिपवस्तीर्थ्या धनं नैव तै-
र्दत्तं नैव तथा जिनेन न हतं किंचित्कणादादिभिः ॥

किं त्वेकांतजगद्धितः स भगवान् वीरो यतश्चामलम्
वाक्यं सर्वमलोपहर्तुं च यतस्तद्भक्तिमंतो वयम् ॥ ३३ ॥

व्याख्या—कोइ सुगत बुध० हमारा पिता नहीं है, और न अन्य देवते हमारे शत्रु हैं, और न तिन देवताओंने हमको धन दिया है, तैसेही जिन अरिहंत महावीरनेभी कोइ हमको धन नहीं दिया है, और न कणाद, गौतम, पतंजलि, जैमिनि, कपिलादिकोंने हमारा किंचित् मात्रभी धन हरा है; किंतु श्रीमहावीर भगवान् एकांत जगत्के हितका करनेवाला है. क्यों कि, तिनके वचन अमल, बत्तीस दूषणोंसें रहित, और अष्टगुणोंकरी संयुक्त हैं. और श्रद्धापूर्वक सुणनेवाले, और धारनेवाले श्रोताजनोंके सर्व पापमलके हरनेवाले हैं; इसवास्ते तिस श्रीमहावीरकी भक्तिवाले हम हुए हैं.

अब पूर्वोक्त दूषण और गुण शिष्यजनोंके अनुग्रहकेवास्ते लिखते हैं.

अलियमुवघायजणयं निरच्छयमवच्छयं छलं दुहिलं
निस्सारमाधियमूणं पुणरुत्तं वाहयमजुत्तं च ॥ १ ॥
कमभिन्नं वयणाभिन्नं विभत्तिभिन्नं च लिंगाभिन्नं च
अणभिहियमपयमेव य सभावहीणं ववहियं च ॥ २ ॥
काल जति च्छविदोसो समयविरुद्धं च वयणमित्तं च
अच्छावत्ती दोसो य होइ असमास दोसो य ॥ ३ ॥
उवमारूवगदोसो निदेसपदच्छसंधिदोसो य
एए उसुत्तदोसा बत्तीसं होति नायव्वा ॥४॥ इत्यावश्यकबृहद्वृत्तौ.

[भावार्थः] अनृतम्—अणहोया, कहना, जैसें सर्वजगत्का कारण प्रधान प्रकृति है, और सद्भूतका निन्हव (निषेध) करना, जैसें आत्मा नहीं है इत्यादि—१ ।

उपघातजनकम्—जिसमें जीवहिंसाका प्रतिपादन होवे, यथा, वेदविहिता हिंसा धर्मायेत्यादि—२ ।

निरर्थकम्—वर्णक्रमनिर्देशवत्, यथा “आरादेस्” यहां आर्, आत्, एस्, यह आदेशमात्रकाही कथन है, न कि अभिधेयकरके किसी अर्थकी प्रतीति होवेहै, इसवास्ते निरर्थक; डिच्छादिवत्—३ ।

* बुधनाम अर्हन्काही है—बुद्धस्त्वमेव विबुधान्वितबुद्धिबोधादितिवचनात् ॥

अपार्थकम्-पूर्वापरसंबंधकरके रहित, जैसे दशदाडिम, छपूडे, कुंडा, अजाचर्म, पललपिंड, कीटिके ! चल, इत्यादि-४ ।

छलम्-अर्थ विकल्प उपपत्तिकरके वचनका विघात करना, यथा “नव-कंबलो देवदत्त” इत्यादि-५ ।

द्रुहिलम्-द्रोहस्वभाववाला-यथा-“यस्य बुद्धिर्न लिप्येत हत्वा सर्व-मिदं जगत् । आकाशमिव पंकेन नासौ पापेन युज्यते” ॥ जैसे पंककरके आकाश नहीं लिपता है, तैसे जिसकी बुद्धि इस सारे जगत्को मारके लिपती नहीं है, सो पापके साथ जुड़ता नहीं है, अर्थात् उसको कर्मका बंध पाप नहीं लगता है, इत्यादि-अथवा द्रुहिलं-कलुषं, जिस वचनकरके पुण्य पाप एकसदृश होजावे, यथा “एतावानेव लोकोयं यावानिन्द्रिय गोचरः”-जितना इंद्रियोंद्वारा दीखता है इतनाहीमात्र यह लोक है, परं देवलोक नरकादि कुछ नहीं है. इत्यादि-६ ।

निःसारम्-परिफल्गु, निष्फल, वेदवचनवत्-७ ।

अधिकम्-वर्णादिकोंकरके अधिक जो वचन होवे, सो अधिक-८ ।

ऊनम्-वर्णादिकोंकरके हीन-९ ।

अथवा हेतु उदाहरणोंकरके जो अधिक वा हीन होवे, सो अधिक ऊन, वचन जाणना. जैसे शब्द अनित्य है, कृतकत्व और प्रयत्नान्तरीयकत्व होनेसे, घटपटवत्. यहां एकहेतु और एकदृष्टांत अधिक है. तथा शब्द अनित्य है, घटवत्. इस वचनमें हेतुके न होनेसे; और शब्द अनित्य है, कृतकत्व होनेसे, इसमें दृष्टांतके न होनेसे ऊन है. इत्यादि-८।९।

पुनरुक्तम्-अनुवादकों वर्जके शब्द, और अर्थका जो पुनः कहना, सो पुनरुक्त. पुनरुक्त तीन प्रकारका होता है, तथा हि-शब्दपुनरुक्त, यथा इंद्रइंद्रइति १, अर्थपुनरुक्त, यथा इंद्रःशक्रइति २ अर्थसे आपन्न (प्राप्त) सिद्धकों, जो स्वशब्द करके कहना, सो अर्थापन्न पुनरुक्त, यथा इंद्रियां-करकेप्रफुल्लित बलवान् मोटा देवदत्त दिनमें नहीं खाता है, यहां अर्थो-पन्नसे सिद्ध है कि, रात्रिमें खाता है, अन्यथा पीनत्वाद्यसंभवात्. तहां जो कहेकि, दिनमें नहीं खाता है, रात्रिमें खाता है, यह पुनरुक्त जानना ३-१०।

व्याहतम्—जहां पूर्वके कथन करके परका कथन बाध्या जावे, सो व्याहत. यथा “कर्म चास्ति फलं चास्ति कर्त्ता नास्ति च कर्मणामित्यादि” —कर्मभी है और कर्मोंका फलभी है, परं कर्मोंका कर्त्ता नहीं है. इत्यादि—११।

अयुक्तम्—जो प्रमाणसे सिद्ध न होवे, यथा “तेषां कटतटभ्रष्टैर्गजानां मदविन्दुभिः॥ प्रावर्त्तत नदी घोरा हस्त्यश्वरथवाहिनीत्यादि”—तिन हस्ति-योंके गंडस्थलसे भ्रष्ट—हुए झरे हुए मदविन्दुओंकरके हस्ति अश्व रथांको बहा देनेवाली घोर नदी, प्रवर्त्तती भई—चलती भई. इत्यादि—१२।

क्रमभिन्नम्—जहां क्रमकरके कथन न होवे, जैसें स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षुः, और श्रोत्रांके, अर्थ (विषय) स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, और शब्द, ऐसे कथनमें स्पर्श, रूप, शब्द, गंध और रस, ऐसे कहना, सो क्रमभिन्न.—१३।

वचनभिन्नम्—वचनका व्यत्यय होना, यथा वृक्षावेतौ पुष्पिता इत्यादि—१४।

विभक्तिभिन्नम्—विभक्तिका व्यत्यय होना, अर्थात् प्रथमादिविभक्तिके स्थानमें द्वितीयादिका कहना, यथा एष वृक्षमित्यादि—१५।

लिङ्गभिन्नम्—लिङ्गव्यत्यय होना, स्त्रीलिङ्गादिके स्थानमें पुँलिङ्गादिका होना, यथा अयं स्त्रीइत्यादि—१६।

अनभिहितम्—अपने सिद्धांतमें जो नहीं कहा है, तिसका कथन करना, सो अनभिहित. जैसें सप्तम पदार्थ, दशम द्रव्य, वा वैशेषिकों; प्रधान और पुरुषसे अधिक सांख्यमतको; चार सत्यसे अधिक शाक्य-को. इत्यादि—१७।

अपदम्—अन्य छंदमें अन्य छंदका कहना, जैसे आर्यापदमें वैतालीय पदका कहना—१८।

स्वभावहीनम्—जो वस्तुके स्वभावसे अन्यथा कहना, यथा अग्नि शीतल, मूर्त्तिमत् आकाश. इत्यादि—१९।

व्यवहितम्—जहां प्रकृतको छोडके, अप्रकृतको विस्तार करके कथन करके, फिर प्रकृतका कथन करना.—२०।

कालदोषः—अतीतादिकालका व्यत्यय करना, जैसें रामचंद्र वनमें प्रवेश करतेभये, इसस्थानमें प्रवेश करतेहैं. इत्यादि—२१।

यतिदोषः—अस्थानमें विश्राम करना, अथवा विश्राम करनाही नहीं-२२।

छाबिदोषः—अलंकाररहित-२३।

समयविरुद्धम्—अपने सिद्धांतविरुद्ध कहना, यथा असत्कारणमें कार्यका मानना सांख्यको; और सत्कारणमें कार्यका मानना वैशेषिकको, समयविरुद्धमिति-२४।

वचनमात्रम्—निर्हेतुक, जैसे इष्टभूभागमें लोकका मध्य कहना-२५।

अर्थापत्तिदोषः—जहां अर्थसेही अनिष्टकी प्राप्ति होवे, यथा ब्राह्मण मारने योग्य नहीं है, ऐसे वचनमें अर्थसेही अब्राह्मणघातापत्ति होवे है-२६।

असमासदोषः—जहां समासव्यत्यय होवे, अथवा समासविधिमें समास न किया होवे, सो असमासदोष जानना-२७।

उपमादोषः—हीनकों अधिक उपमा देनी, और अधिककों हीनोपमा देनी, यथा सर्षप मेरुसमान, और मेरु सर्षपसमान है. इत्यादि-२८।

रूपकदोषः—स्वरूपअवयवोंका व्यत्यय करना, अर्थात् अवयवोंका अवयवीरूपकरके कहना, यथा पर्वतरूप अवयवोंको पर्वतकरके कहना-२९।

अनिर्देशदोषः—जहां कथन करनेयोग्य पदोंका एक वाक्यभावन करिए, यथा इहां देवदत्त स्थालीमें ओदन पकाता है, ऐसे कहनेमें देवदत्त स्थालीमें ओदन ऐसे कहना-३०।

पदार्थदोषः—जहां वस्तुके पर्यायवाचिपदको, पदार्थांतरकल्पनाको कहे, जैसें द्रव्यके पर्यायवाची सत्तादि, अर्थात् महासामान्य, अवांतरसामान्य, विशेष, गुणकर्मादिकांको पदार्थपरिकल्पना, उलूक अर्थात् वैशेषिकमतवालेके है-३१।

संधिदोषः—अस्थानमें संधि करना, और संधि स्थानमें न करना-३२।

जो इन पूर्वोक्त दोषोंसे रहित होवे, सो वचन अमल (निर्मल) जानना. तथा अष्टगुणोंकरके जो संयुक्त होवे, सो वचन सूत्र अमल (निर्मल) सर्वज्ञभाषित जानना. वह अष्टगुण यह है. निर्दोसं सारवत्तं च हेउजुत्तमलंकियं ॥ उवणीयं सोवयारं च मियं महुरमेव य ॥ भावार्थः ॥ निर्दोषम्—

दोषरहित, १, सारवत्-बहुपर्याय अर्थकरके संयुक्त, गोशब्दवत्, २, हेतुयुक्तम्-अन्वयव्यतिरेक लक्षण, हेतुओंकरके संयुक्त, ३, अलंकृतम्-उपमादि अलंकारोंकरके संयुक्त, ४, उपनीतम्-उपनयनिगमनसंयुक्त, ५, सोपचारम्-ग्राम्यवचनकरके रहित, ६, मितम्-वर्णादिपरिमाणसंयुक्त, ७, मधुरम्-सुणनेमें मनोहर ८॥ इति-॥ ३३ ॥

हितैषी यो नित्यं सततमुपकारी च जगतः

कृतं येन स्वस्थं बहुविधरुजार्त्तं जगदिदम् ॥

स्फुटं यस्य ज्ञेयं करतलगतं वेत्ति सकलं

प्रपद्यध्वं संतः सुगतमसमं भक्तिमनसः ॥ ३४ ॥

व्याख्या—जो देव, जगद्वासि जीवोंका नित्य सदाही हितकारी है, और निरंतर उपकारी है, जिसने बहुविध अनेक प्रकारके कर्म रोगकरी पीडित इस जगत्को उपदेशद्वारा स्वस्थ करा है, और जिसके ज्ञानमें सर्व ज्ञेय पदार्थ करतलगत आमलेकीतरें प्रकट हो रहे हैं, और जो सकलपदार्थोंको जानता है, हे संतजनो ! ऐसे असदृश अर्थात् जिसके बराबर कोई नहीं है—ऐसे—सुगत भगवान् अर्हन्को भक्तिमनसें अंगीकार करो, और तिसको परमेश्वर मानके शुद्ध मनसें पूजो—सेवो ॥ ३४ ॥

असर्वभावेन यदृच्छया वा परानुवृत्त्या विचिकित्सया वा ॥

ये त्वां नमस्यन्ति मुनीन्द्रचन्द्रास्तेप्यागरीसंपदमाप्नुवन्ति ॥ ३५ ॥

व्याख्या—यथार्थस्वरूपके विना जाण्या, अथवा संपूर्णभक्ति विना, वा यदृच्छा स्वतः प्रवृत्तीसें, वा परकी अनुवृत्ति देखादेखीसें परकी दाक्षिण्यतासें, वा विचिकित्सा फलके संशयसें, हे मुनीन्द्रोंमें चंद्रमासमान मुनीन्द्रचंद्र भगवन् अर्हन् ! जे कोई तेरेको नमस्कार करते हैं, वे पुरुषभी देवतायोंकी सुखादिसंपत्तिभूतीकों प्राप्त होते हैं, हे जिन ! तेरे यथार्थ (सत्य) शासनके माननेवालोंका तो क्याही कहना है ? ॥ ३५ ॥

* गोशब्दो हि बहुपर्यायो बह्वर्थ इति तात्पर्य—दिशि द्दिशि वाचि जले भुवि दिवि वज्जेऽसी पशौ च गोशब्दइति वचनादेवं सूत्रमपि बह्वर्थयुक्तं विधेयमिति—तथा किरणे सूर्ये चंद्रे वायौ ऋषभना-भीषधौ सीरभेभ्यां वाणे मातरीत्यादावपि गोशब्दो विज्ञेयः ॥

यदा रागद्वेषादसुरसुररत्नापहरणे
 कृतं मायावित्वं भुवनहरणाशक्तिमतिना ॥
 तदा पूज्यो वन्द्यो हरिरपरिमुक्तो ध्रुवतया
 विनिर्मुक्तं वीरं न नमति जनो मोहबहुलः ॥ ३६ ॥

व्याख्या—जिस अवसरमें रागद्वेषसें सुर असुरोंके समक्ष रत्न हर-
 णेमें तीन भवनके हरनेकी शक्तिवाले विष्णु हरिने मायाविपणा करा—
 यह कथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है कि, जिसतरे मणि चोरी गई, जैसे बल-
 भद्रजीके सिर लगाई, और जैसी माया हरिने करी, इत्यादि—तदा तिस
 अवसरमें निश्चयकरके अष्टादश दूषणोंकरके अपरिमुक्त (सहित)को पूज्य
 और वंद्य मानके जन (लोक) पूजता है, और नमस्कार करता है, परं सर्वदू-
 षणोंसें विनिर्मुक्त (रहित) श्रीवीरभगवान्को नमस्कार नहीं करता है तो,
 फेर तिसके मोह अज्ञान बहुत नहीं तो, अन्य क्या है? अर्थात् मोह-
 बहुल—बहुत मोह अज्ञानके वश होनेसें सत्यासत्य नहीं जानसक्ता है,
 इसीवास्ते दूषणरहितको छोड़के दूषणसहितको मानता है, नमन करता
 है, और पूजता है. ॥ ३६ ॥

अब आचार्य श्रीहरिभद्रसूरिजी अपने आपको पक्षपातसें रहित होना
 बतलाते हैं.

त्यक्तः स्वार्थः परहितरतः सर्वदा सर्वरूपं
 सर्वाकारं विविधमसमं यो विजानाति विश्वम् ॥
 ब्रह्मा विष्णुर्भवतु वरदः शंकरो वा हरो वा
 यस्याचिन्त्यं चरितमसमं भावतस्तं प्रपद्ये ॥ ३७ ॥

व्याख्या—जिसने स्वार्थका तो त्याग करा है; और जो परहितमें रत
 है; तथा जो सर्वदा (सर्वकाल) सर्वरूप जडचैतन्यरूप, सर्वाकार परि-
 मंडल, वृत्त, त्र्यंश, चतुरस्र, आयतनसंस्थानाकार, विविध प्रकारे उत्पाद,
 व्यय, ध्रौव्यरूप विश्व—जगत्को, असम—अनन्यसदृश जानता है, अर्थात्
 जो अन्योकेसमान नहीं जानता है. क्यों कि, अन्य तो एकांतनित्य, वा

एकांत अनित्य, इत्यादि जानते हैं, परंतु सर्वज्ञ परमेश्वर तो, सर्व पदार्थों को त्रिपदीरूपसे जानता है, अन्यथा सर्वज्ञत्वहानिप्रसंगः—तथा जिसका चरित अनन्यसदृश और अचिंत्य, अर्थात् किसीभी दूषणकरके कलंकांकित नहीं, ऐसा होवे, सो पूर्वोक्त विशेषणविशिष्ट देव, नामकरके ब्रह्मा हो, वा विष्णु हो, वा उपदेशद्वारा वर (प्रधान) ज्ञान दर्शन चारित्र्यका देनेवाला हो, वा शं (सुख) करनेवाला शंकर हो, वा हर (महादेव) हो, तिसको ही मैं सच्चे भावसे अपना देव (परमेश्वर) करके अंगीकार करता हूं ॥ ३७ ॥

अब पक्षपात न होनेमें हेतु कहते हैं.

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु ॥

युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ॥ ३८ ॥

व्याख्या—मेरा कुछ श्रीमहावीरविषे पक्षपात नहीं है कि, जो कुछ श्रीमहावीरजीने कहा है, सोइ मैंने मानना है, अन्यका कहा नहीं; और कपिलादिमताधिपोंमें द्वेष नहीं है कि, कपिलादिकोंका कहना नहीं मानना; किंतु जिसका वचन शास्त्रयुक्तिमत, अर्थात् युक्तिसे विरुद्ध नहीं है, तिसका ही वचन ग्रहण करनेका मेरा निश्चय है ॥ ३८ ॥

अब जगत्में कपिल, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, जैमिनी, गौतम, कणाद, व्यास, पंतजलि, आदि, और ऋषभादि चौबीस तीर्थंकर, और गौतमबुद्धादि अनेक धर्मतीर्थके कर्त्ता हुए हैं; इसवास्ते इनमेंसें कोईएक तो सत्यवक्ता अवश्य होना चाहिए. सोइ ग्रंथकार कहते हैं.

अवश्यमेषां कतमोपि सर्ववित् जगद्धितैकान्तविशालशासनः ॥

स एव मृग्यो मतिसूक्ष्मचक्षुषा विशेषमुक्तैः किमनर्थपाण्डितैः ॥ ३९ ॥

व्याख्या—इन पूर्वोक्त धर्मतीर्थके प्रवर्त्तकोंमेंसें कोईभी वक्ता, जगत्के एकांत हितकारी विशाल आगमवाला, अर्थात् जगत्के एकांत हितकारी प्रौढ अतिसुंदर आगमके कथन करनेवाला सर्वज्ञ होना चाहिए, जो ऐसा होवे, तिसकाही अन्वेषण बुद्धिरूप सूक्ष्मचक्षुकरके बुद्धिमानोंको

करना चाहिए, परंतु अन्यका नहीं. क्योंकि, पूर्वोक्त विशेषणोंकरके रहित अनर्थके कथन करनेवाले अज्ञानी पंडितोंके विचार करनेसें तिनोंके वचन सुननेसें और तिनकों अपने इष्टदेव माननेसें क्या प्रयोजन है ? क्या लाभ है ? अपितु कुछभी नहीं है ॥ ३९ ॥

यस्य निखिलाश्च दोषा न सन्ति सर्वे गुणाश्च विद्यन्ते ॥
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा महेश्वरो वा नमस्तस्मै ॥ ४० ॥

व्याख्या—जिसके सर्वदोष, अर्थात् राग, द्वेष, मोह, अज्ञानादि अष्टादश दूषण नहीं है, अर्थात् क्षय होगए हैं, और सर्वगुण अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतचारित्र, अनंतवीर्यादि अनंत गुण जिसके विद्यमान हैं, अर्थात् दूषणोंके नष्ट होनेसें आत्माके अनंत गुण जिसके प्रकट हुए हैं, सो ब्रह्मा होवे वा विष्णु होवे वा महेश्वर होवे तिसकेताई मेरा नमस्कार होवे ॥ ४० ॥

इति श्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे लोकतत्त्व-
निर्णयान्तर्गतदेवतत्त्ववर्णनो नाम चतुर्थःस्तंभः ॥ ४ ॥

अथपञ्चमस्तम्भारम्भः ॥

चतुर्थस्तम्भमें देवतत्त्वस्वरूपकथन किया अथ पंचमस्तम्भमें लोक क्रियात्मविषयक वर्णन लिखते हैं.

लोकक्रियात्मतत्त्वे विवदन्ते वादिनो विभिन्नार्थम् ॥
अविदितपूर्वं येषां स्याद्वादविनिश्चितं तत्त्वम् ॥ ४१ ॥

व्याख्या—जिनोंकों स्याद्वादकरके विशेष निश्चित करेहुए तत्त्वका ज्ञान नहीं हुआ है, वे वादी लोकक्रियात्मतत्त्वविषे अन्य अन्यतरेसें विवाद करते हैं, अज्ञातपूर्वकत्वात् ॥ ४१ ॥

इच्छन्ति कृत्रिमं सृष्टिवादिनः सर्वमेवमिति लोकम् ॥
कृत्स्नं लोकं महेश्वरादयः सादिपर्यन्तम् ॥ ४२ ॥

व्याख्या—सृष्टिके वाद करनेवाले सर्वलोकको (संपूर्ण जगत्को) कृ-
त्रिम (रचाहुआ) मानते हैं, तिनमेंसें महेश्वरादिसें सृष्टिकी उत्पत्ति मान-
नेवाले सृष्टिवादी जे हैं वे संपूर्ण लोकको आदि और अंतवाला मानते हैं ४२

मानीश्वरजं केचित् केचित्सोमाग्निसंभवं लोकम् ॥

द्रव्यादिषड्विकल्पं जगदेतत्केचिदिच्छन्ति ॥ ४३ ॥

व्याख्या—मानी ईश्वर (अहंकारी ईश्वर) में ईश्वर हूं ऐसे ईश्वरसें
लोक उत्पन्न हुआ है, ऐसे कितनेक मानते हैं, कितनेक सोम और अग्निसें
जगत्की उत्पत्ति मानते हैं, और कितनेक इस जगत्को द्रव्यादि षट्वि-
कल्परूप मानते हैं, सोइ दिखाते हैं ॥ ४३ ॥

द्रव्यगुणकर्मसामान्ययुक्तविशेषं कणाशिनस्तत्त्वम् ॥

वैशेषिकमेतावत् जगदप्येतावदेतावत् ॥ ४४ ॥

व्याख्या—पृथिव्यादिनवप्रकारका द्रव्य, शब्दादि चौबीस गुण उत्क्षे-
पादि पांच प्रकार कर्म, सामान्य द्विप्रकार, समवाय एक, और विशेष
अनंत, यह षट्पदार्थ कणादमुनिकां तत्त्व है, वैशेषिकमतभी इतनाही है,
और जगत्भी इतनाही है ॥ ४४ ॥

इच्छन्ति काश्यपीयं केचित्सर्वं जगन्मनुष्याद्यम् ॥

क्षप्रजापतीयं त्रैलोक्यं केचिदिच्छन्ति ॥ ४५ ॥

व्याख्या—कितनेक सर्व जगत्को कश्यपसंबंधि मानते हैं, अर्थात् यह
जगत् कश्यपने रचा है. 'तथाहि शतपथब्राह्मणे'—

सयत्कूर्मो नाम । एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा
असृजत यत्सृजताकरोत् तद्यदकरोत्तस्मात्कूर्मः कश्यपो
वै कूर्मस्तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्यइति—श-
कां—७ अ—५ ब्रा—१ कं—५

[भाषार्थः] (स यत्कूर्मो नाम) सो, जो कि, कूर्मनामसें वेदोंमें प्रसिद्ध
है, सो (एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः) एतत् अर्थात् कूर्मरूपको धारण-

करके प्रजापति-परमेश्वर (प्रजा असृजत) प्रजाको उत्पन्न करतेहुए (तद्यदकरोत्) सो प्रजापति, जिस्से संपूर्ण जगत्को उत्पन्न करते भये हैं (तस्मात्कूर्म्मः) तिसीसे कूर्म्म कहे गये हैं (कश्यपो वै कूर्म्मः) वै-निश्चय करके वही कूर्म्म कश्यपनामसे कहे गये हैं (तस्मात्) तिसीसे (आहुः) संपूर्ण ऋषिलोक कहते हैं कि (सर्वाः प्रजाः काश्यप्यइति) संपूर्ण प्रजा कश्यपकीही है.

तथा कितनेक कहते हैं कि, यह सर्व जगत् मनुका रचा है. 'तथाहि शतपथब्राह्मणे'—

मनवे ह वै प्रातः अवनेग्यमुदकमाजह्वर्यथेदं पाणिभ्यामवने-
जनायाहरन्ति एवं तस्यावनेनिजानस्यमत्स्यः पाणी आपेदे ॥ १ ॥

सहास्मैवाचमुवाच विभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा
पारयिष्यसीति । औघ इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढास्ततस्त्वा
पारयितास्मीति कथन्ते भृतिरिति ॥ २ ॥

सै होवाच । यावद्वै क्षुल्लका भवामो बह्वीवै नस्तावन्नाष्ट्रा भवन्त्युत
मत्स्य एव मत्स्यं गिलति कुंभ्यामाग्रे विभरासि । स यदा तामति-
वर्द्धो अथ कर्षूखात्वा तस्या मा विभरासि स यदा तामतिवर्द्धे अथ
मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वा अतिनाष्ट्रो भवितास्मीति ॥ ३ ॥

स शश्वत् झष आस । स हि ज्येष्ठं वर्द्धते अथ तिर्थी समां
तदौघ आगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्योपासासै स औघ
उच्छिद्रते नावमापद्यासै ततस्त्वां पारयितास्मीति ॥ ४ ॥

तमेवं भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार ॥ स यत्तिर्थी तत्समां पारि-
दिदेश ॥ तत्तिर्थी समां नावमुपकल्प्योपासांचक्रे ॥ स औघ
उच्छिद्रते नावमापेदे तं स मत्स्य उपन्या पुष्पुवे तस्य शृंगे नावः
पाशं प्रतिमुमोच ते नैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव ॥ ५ ॥

स होवाच अपीपरं वै त्वां वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व । तन्तु त्वामा-
गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्यावदुदकं समवायात्तावत्तावदन्वव-
सर्पासीति ॥ सह तावत्तावदेवान्ववससर्प तदप्येतदुत्तरस्य
गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघो हताः सर्वाः प्रजा निरुवाहाथेहम-
नुरैवैकः परिशिशिषे ॥६॥ सोर्चं श्राम्यं तपश्चचार प्रजाकामः
श-कां-१ अ-८ ब्रा-१ कं-१।२।३ ४।५।६॥

[भाषार्थः] मनुजीके प्रति प्रातःकालमें भृत्यगण (नोकर) हस्त धोनेके, और तर्पणकेलिये, जलका आहरण करतेभये, तब मनुजीने जैसे इतरलोक वैदिककर्मनिष्ठपुरुष, इस अवनेग्यजलकों तर्पण करनेकेलिये अपने दोनों हाथों करके ग्रहण करते हैं, इसीप्रकार तर्पण करतेहुए मनुजीके हाथमें मछलीका बच्चा मत्स्य अकस्मात् आगया, तब उसको देखकर मनुजी शोचने लगे, तावदेव मनुजीके प्रति मत्स्य कहने लगा कि, हे मनु ! तू मेरा पालन कर, और हे मनु ! मैं तेरा पालन करूंगा. तब उस मत्स्यकी मनुष्यवाणी सुन आश्चर्य मानकर मनुजी बोले कि, तू काहेसे मेरी पालना करेगा. क्योंकि, तू तो महा तुच्छ जीव है. तब मत्स्यने कहा कि, हे राजन् ! तू मुझे छोटासा मत समझ, यह संपूर्ण प्रजा जो कुछ तेरे देखनेमें आती है, सो यह सब बड़ेभारी जलोंके समूहमें डूब जायगी कुछभी न रहेगी, सो मैं तिस महाप्रलयकालके जलसमूहसे तेरेको पालन करूंगा अर्थात् उस प्रलयकालके जलमें मैं तुझको नहीं डूबने दूंगा. तब मनुजी बोले कि, हे मत्स्य ! तेरा पालन किस प्रकारसे होगा, सोभी कृपा करके आपही बताइये.

तब मत्स्यने कहा कि, जबतक हम लोक छोटे रहतेहैं, तबतक बहुतसी पापी प्रजा धीवरादि हमारे मारनेवाली होती हैं, और बड़े २ मत्स्य और बड़ी २ मछलियांही छोटे २ मत्स्य और छोटी २ मछलियांको निगल जावे हैं, इससे प्रथम इस समय तो मेरेको अपने कमंडलुमें रखलीजिये, तब मनुजीने उस मत्स्यको कमंडलुमें जल भरकर रखलिया, सो मत्स्य जब उस कमंडलुसेभी अधिक बढ गया, तदनंतर मनुने पूछा कि, अब आपको

मैं कैसे पालन करूं, तब मत्स्यने कहा कि, हे राजन्! एक बड़ा गत्तो वा तलाव वा नदी खुदाकर उसमें मुझको पालन कर; सो मत्स्य जब नदीसे भी अधिक बढ गया तब फिर मनुजीने पूछा कि, अब मैं तुम्हारा कैसे पालन करूं? तब मत्स्यने कहा कि, हे राजन्! अब मुझको समुद्रमें छोड़ दीजिये, तब मैं नाशरहित हो जाऊंगा. यह सुनकर मनुजीने उस नदीको खुदाकर समुद्रमें मिलादी तब वह मत्स्य समुद्रमें चला गया.

सो मत्स्य समुद्रमें जातेही शीघ्रही बड़ाभारी मत्स्य होगया, और सो फेर उससे भी बहुत बड़ा क्षण २ में बढ़ने लगा; अथ तदनंतर वो मत्स्य राजा मनुसे जिस वर्षकी जिस तिथीको वो जलोंका समूह आनेवाला था, बतलाकर कहता हुआ कि, जब यह समय आवे तब हे राजन्! तुम एक उत्तम नाव बनवाकर, और उसनावमें सवार होकर, मेरी उपासना करनी; अर्थात् मेरा स्मरण करना. जब सो जलोंका समूह आवेगा, तब मैं तेरी नौकाकेपासही आजाऊंगा, और तब फिर मैं तेरा पालन करूंगा.

मनुजी तदुक्तक्रमसे उस मत्स्यको धारणपोषणकर समुद्रमें पहुंचाते भये, सो मत्स्य जिस तिथि और जिस संवत्को जलसमूहका आगमन बता-गयेथे, मनुजीभी तिसी तिथि और संवत्में नाव बनवाकर उस मत्स्यरूप-भगवान्की उपासना करतेभये, तदनंतर सो मनु, उसजलोंके समूहको उठा देखकर नावमें आरूढ होजाते हुये, तब वह मत्स्य तिसमनुजीके समीपही आकर ऊपरको उछले, तब मनुजीने उन मत्स्यभगवान्को उछलते हुए देखा, तब मनुजी तिसमत्स्यके शृंगमें अपनी नौकाका रस्सा डालदेते भये; तिस करके वह मत्स्य नौकाको खींचते हुए उत्तरगिरि (हिमालय) नामकपर्वतकेपास शीघ्रही पहुंचा देतेभये.

पर्वतके नीचे नौकाको पहुंचाकर मत्स्यजी कहते भये कि, हे राजन्! निश्चयकरके मैं तेरेको प्रलयजलमें डूबनेसे पालन करता भया हूं, अब तुम नौकाको इस वृक्षके साथ बांध दीजिये, तुम इस पर्वतके शिखरपर जब-तक जल रहे तबतक रहना, और इसरस्सेको मत खोलना, फिर जब कि यह जल पर्वतके नीचे जैसे २ उतरता जाय तैसे तैसेही तुमभी पर्व-

तकी नीचे उतरते आना, ऐसे मनुजीके प्रति समझाकर मत्स्यजी जलमें समागये और सो मनुजीभी, मत्स्यजीके कथनानुकूल जैसे २ जल उतरता गया तैसे २ उस जलके अनुकूलही पर्वतके नीचे २ उतरते आए, सोभी यह केवल पर्वतके ऊपरसे एक मनुकाही जो नीचे अवसर्पण अर्थात् अवतारण हुआ, सो एक मनुही उस सृष्टिमेंसे बाकी बचे, और संपूर्ण प्रजा-जलसमूहमें ही लय होगई; तब फिर मनुजीने प्रजाके रचनार्थ पर्यालोचन कर तपोनुष्ठान किया, इसीसे यह प्रजा, मानवीनामसे अबतक प्रसिद्ध है. इति ॥

और कितनेक ऐसा मानते हैं कि, यह तीनो लोक दक्ष प्रजापतिने करे हैं, अर्थात् तीनों दक्ष प्रजापतिने रचे हैं ॥ ४५ ॥

केचित्प्राहुर्मूर्तिस्त्रिधा गतिका हरिः शिवो ब्रह्मा ॥

शंभुर्वीजं जगतः कर्ता विष्णुः क्रिया ब्रह्मा ॥ ४६ ॥

व्याख्या—कितनेक कहते हैंकि एकही परमेश्वरकी मूर्तिकी तीन गतियां हैं; हरि (विष्णु) १, शिव २, और ब्रह्मा ३, तिनमें शिव तो जगत्का कारणरूप है, कर्ता विष्णु है, और क्रिया ब्रह्मा है ॥ ४६ ॥

वैष्णवं केचिद्विच्छन्ति केचित् कालकृतं जगत् ॥

ईश्वरप्रेरितं केचित् केचिद्ब्रह्मविनिर्मितम् ॥ ४७ ॥

व्याख्या—कितनेक मानते हैं कि यह जगत् विष्णुमय, वा विष्णुका रचा हुआ है; और कितनेक कालकृत मानते हैं और कितनेक कहते हैं कि, जो कुछ इस जगत्में हो रहा है, सो सर्व, ईश्वरकी प्रेरणासे ही हो रहा है और कितनेक कहते हैं, यह जगत् ब्रह्माने उत्पन्न करा है ॥ ४७ ॥

अव्यक्तप्रभवं सर्वं विश्वमिच्छन्ति कापिलाः ॥

विज्ञप्तिमात्रं शून्यं च इतिशाक्यस्य निश्चयः ॥ ४८ ॥

व्याख्या—अव्यक्त (प्रधान प्रकृति) तिस अव्यक्तसे सर्व जगत् उत्पन्न होता है, ऐसे कपिलके मतके माननेवाले मानते हैं; और शाक्यमु-

निके संतानीय विज्ञानाद्वैत क्षणिकरूप जगत् मानते हैं; और कितनेक तिसके संतानीय सर्व जगत्को शून्यही मानते हैं ॥ ४८ ॥

पुरुषप्रभवं केचित् दैवात् केचित् स्वभावतः ॥

अक्षरात् क्षरितं केचित् केचिदण्डोद्भवं महत् ॥ ४९ ॥

व्याख्या—कितनेक, पुरुषसें जगत् उत्पन्न हुआ मानते हैं, अथवा पुरुषमय सर्व जगत् मानते हैं, “पुरुष एवेदं सर्वमित्यादिवचनात्” और कितनेक दैवसें, और स्वभावसें जगत् उत्पन्न हुआ मानते हैं, और कितनेक अक्षर ब्रह्मके क्षरणसें, अर्थात् मायावान् होनेसें जगत्की उत्पत्ति मानते हैं, “एको बहुस्यामितिवचनात्” और कितनेक अण्डसें जगत्की उत्पत्ति मानते हैं ॥ ४९ ॥

यादृच्छिकमिदं सर्वं केचिद्रूपविकारजम् ॥

केचिच्चेदनेकरूपं तु बहुधा संप्रधाविताः ॥ ५० ॥

व्याख्या—कितनेक कहते हैं कि यह लोक यदृच्छासें अर्थात् स्वतोही उत्पन्न हुआ है, और कितनेक कहते हैं कि यह जगत् भूतोंके विकारसें ही उत्पन्न हुआ है, और कितनेक जगत्को अनेकरूपही मानते हैं, ऐसे बहुतप्रकारके विकल्प सृष्टिविषयमें लोकोंने अज्ञानवशसें कथन करे हैं ॥ ५० ॥ अब ‘वैष्णवं केचिदिच्छन्ति’ इत्यादिविकल्पोंमें जिस विकल्पवाला, जिस रीतिसें सृष्टिकी रचना मानता है, सो पृथक् २ संक्षेपमात्रसें ग्रंथकार दिखाते हैं—

“वैष्णवास्त्वाहुः॥” जले विष्णुः स्थले विष्णुराकाशे विष्णुमालिनि ॥

विष्णुमालाकुले लोके नास्ति किंचिद्वैष्णवम् ॥ ५१ ॥

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ ५२ ॥

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ॥

छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ ५३ ॥

“पुराणे चान्यथा ॥” तस्मिन्नेकार्णवीभूते नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥
 नष्टामरनरे चैव प्रनष्टोरगराक्षसे ॥ ५४ ॥
 केवलं गह्वरीभूते महाभूतविवर्जिते ॥
 अचिन्त्यात्मा विभुस्तत्र शयानस्तप्यते तपः ॥ ५५ ॥
 तत्र तस्य शयानस्य नाभौ पद्मं विनिर्गतम् ॥
 तरुणरविमण्डलनिभं हृद्यं काञ्चनकार्णिकम् ॥ ५६ ॥
 तस्मिंश्च पद्मे भगवान् दण्डकमण्डलुयज्ञोपवीतमृगचर्म-
 वस्तुसंयुक्तो ब्रह्मा तत्रोत्पन्नस्तेन जगन्मातरः सृष्टाः ॥ ५७ ॥
 अदितिः सुरसंघानां दितिरसुराणां मनुर्मनुष्याणाम् ॥
 विनता विहङ्गानां माता विश्वप्रकाराणाम् ॥ ५८ ॥
 कद्रूः सरीसृपाणि सुलसा माता तु नागजातीनाम् ॥
 सुरभिश्चतुः पदानामिला पुनः सर्वबीजानाम् ॥ ५९ ॥
 प्रभवस्तासां विस्तरमुपागतः केचिदेवमिच्छन्ति ॥
 केचिद्वदन्त्यवर्णं सृष्टं वर्णादिभिस्तेन ॥ ६० ॥

व्याख्या—वैष्णवमतवाले कहते हैं कि—जलमेंभी विष्णु है, स्थलमें भी विष्णु है, और आकाशमेंभी जो कुछ है, सो विष्णुकीही माला—पंक्ति है, सर्वलोक विष्णुहीकी माला—पंक्तिकरके आकुल अर्थात् भराहुआ है इसवास्ते इस जगत्में ऐसी कोईभी वस्तु नहीं है, जो कि, विष्णुका रूप नहीं है.

पांच वस्तुकरके सर्वतः सर्वजगे पाणय (हाथ) हैं, और सर्वजगे पग हैं जिसके, और सर्वत्र जिसके आंखें, शिर और मुख हैं, और जो सर्वजगे श्रवणेंद्रियोंकरके युक्त है, और जो सर्वलोकविषे सर्ववस्तुओंको व्याप्य होके रहता है, अर्थात् सर्वओरसे प्राणियोंकी वृत्तियोंकरके हस्तादिउपाधियोंकरके सर्वव्यवहारका स्थान होके रहता है.

‘क्षराक्षराभ्यामुत्कृष्टः’ ऐसा पुरुषोत्तम जिसका मूल है, अधइति तिससें अर्वाचीन कार्यरूप उपाधियां हिरण्यगर्भादि ग्रहण करीए है, वे सर्व शाखा-कीतरे शाखा हैं जिसकी, ऐसा पीपलका वृक्ष प्रवाहरूपकरके आविच्छेद होनेसें अव्यय है, “ऊर्ध्वमूलोऽर्वाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातन इत्यादिश्रुति वचनात्” और, ‘छंदासि यस्य पर्णानि’ वेद जिसके पत्र हैं, धर्माधर्म प्रति-पादनद्वार करके छाया समान कर्मफलकरके संयुक्त होनेकरके संसाररूप वृक्षकों सर्वजीवोंके आश्रयभूत होनेसें पत्रोंसमान वेद है, जो ऐसे पीपलके वृक्षको जानता है, सोइ वेदोंके अर्थोंको जानता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

पूर्वोक्त वर्णन प्रायः वेदानुसार किया, अब पुराणानुसार वर्णन करते हैं. तिस संसारके एकार्णवीभूत हुआं, स्थावरजंगमके नष्ट हुए, अमर (देवतायों) के नष्ट हुए, उरगराक्षसोंके नष्ट हुए, केवल गव्हरीभूत महाभूतकरके रहित, ऐसे जलमें, अर्थात् जलके ऊपर, अचिंत्य आत्मावाला विभु, विष्णु सूताहुआ तप तपता है; तहां तिस सूतेहुए विष्णुकी नाभिसें तत्कालके उदय हुए सूर्य मंडलके समान मनोहर सुवर्णकी कर्णियाला पद्म (कमल) निकला, तिस कमलमें भगवान् ब्रह्मा, कमंडलु यज्ञोपवीत मृ-गचर्मासनादि वस्तुयोंसहित उत्पन्न हुआ, तिस ब्रह्माने जगत्की मातायें पैदा करीं; सोइ दिखाते हैं. स्वर्गवासिदेवतायोंकी माता अदिति १, असुरोंकी माता दिति २, मनुष्योंकी मनु ३, पक्षियोंकी विनता ४, सर्पोंकी कद्रू ५, नागजातियोंकी माता सुलसा ६, चौपायोंकी सुरभि ७, और सर्व-बीजांकी माता इला (पृथिवी) ८ ॥ तिनोसें-पूर्वोक्त मातायोंसें उत्पन्न हुई प्रजा विस्तारको प्राप्त हुई, कितनेक ऐसे मानते हैं और कितनेक ऐसे कहते हैं कि, प्रथम सर्वप्रजा वर्णरहित थी, पीछे तिसने-ब्रह्माने वर्णा-दिकरके सृष्टि रची ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥

“कालवादिनश्चाहुः॥” कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः॥

कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥६१॥

व्याख्या-कालवादी कहते हैं कि-कालही जीवोंको उत्पन्न करता है, और कालही प्रजाका संहार करता है, जीवोंके सूतेहुए रक्षा करणरूप

कालही जागता है, इसवास्ते कालही उल्लंघन करना दुष्कर है ॥ ६१ ॥
“ ईश्वरकारणिकाश्वाहुः ॥ ”

प्रकृतीनां यथा राजा रक्षार्थमिह चोद्यतः
तथा विश्वस्य विश्वात्मा स जागर्ति महेश्वरः ॥ ६२ ॥
अन्यो जंतुरनीशो यमात्मनः सुखदुःखयोः ॥
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव च ॥ ६३ ॥
सूक्ष्मोचिन्त्योविकरणगणः सर्ववित् सर्वकर्ता
योगाभ्यासादमलिनधियां योगिनां ध्यानगम्यः ॥
चन्द्रार्काग्निक्षितिजलमरुत्दीक्षिताकाशमूर्ति
ध्येयो नित्यं शमसुखरतैरीश्वरः सिद्धिकामैः ॥ ६४ ॥

व्याख्या—ईश्वरको कारण माननेवाले वादी कहते हैं कि—जैसे प्रजा-
की रक्षावास्ते राजा उद्यत है, तैसेही सर्वजगत्की रक्षावास्ते विश्वात्मा
ईश्वर जागता है, अर्थात् सर्वजगत्का बंदोबस्त महेश्वर करता है; क्यों-
कि, अन्यजीव सर्व अपने आपको कर्मफल सुखदुःखोंको देनेसामर्थ्य नहीं
है, किंतु, ईश्वरकी प्रेरणासेही जीव स्वर्ग वा नरकको जाताहै; इसवास्ते
शमरूप सुखोंमें रक्त सिद्धिके कामी पुरुषोंको निरंतर ईश्वरकाही ध्यान कर-
ना योग्य है. ईश्वर भगवान् कैसा है? सूक्ष्म है, अचिन्त्य जिसका कोईभी
चितवन नहीं करसक्ता है, इंद्रियोंके समूहसे रहित है, सर्वज्ञ है, सर्वका
कर्ता है, योगाभ्याससे निर्मल बुद्धिवाले योगियोंके ध्यानसे जानाजाता
है, चंद्र, सूर्य, अग्नि, पृथिवी, जल, पवन, दीक्षित आकाशवत् मूर्ति है
जिसकी, अर्थात् सर्व व्यापक है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

“ ब्रह्मवादिनश्वाहुः ॥ आसिदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ६५ ॥
ततःस्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ॥
महाभूतादिरुत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६६ ॥

लोका नांतु विवृद्धयर्थं मुखबाहूरुपादतः ॥

ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥६७॥

व्याख्या—ब्रह्मवादी कहते हैं कि—इदं यह जगत् तममें स्थित लीन था, प्रलयकालमें सूक्ष्मरूपकरके प्रकृतिमें लीन था, प्रकृतिभी ब्रह्मात्म-करके अव्याकृतथी अर्थात् अलग नहीं थी, इसवास्तेही अप्रज्ञातं प्रत्यक्ष नहीं था, अलक्षणम् अनुमानका विषयभी नहीं था, अप्रतर्क्यम् तर्कयितुमशक्यम् तर्ककरनेके योग्य नहीं था, वाचक स्थूलशब्दके अभावसे, इस-वास्तेही अविज्ञेय था, अर्थापत्तिकेभी अगोचर था, इसवास्ते सर्व ओरसे सुप्तकीतरें स्वकार्य करणमें असमर्थ था. तदनंतर क्या होता भया ? सो कहे हैं; प्रलयके अवसानानंतर स्वयंभू परमात्मा अव्यक्त बाह्यकरण अ-गोचर इदं यह महाभूत आकाशादिक आदिशब्दसें महदादिकांको प्रथम सूक्ष्मरूपकरके रहेको स्थूलरूपकरके प्रकाश करता भया, कैसा है स्वयंभू परमात्मा ? वृत्तौजाः सृष्टि रचनेका सामर्थ्य जिसका अव्याहत है, और जो तमोनुदः प्रकृतिका प्रेरक है, सो स्वयंभू परमात्मा भूलोकोंकी वृद्धि-वास्ते मुख, बाहु, ऊरु और पगोंसें ब्राह्मण १, क्षत्रिय २, वैश्य ३, और शूद्रोंको यथाक्रम निर्मित करता भया. ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

“सांख्याश्चाहुः” ॥ पञ्चविधमहाभूतं नानाविधदेहनामसंस्थानम् ॥

अव्यक्तसमुत्थानं जगदेतत् केचिदिच्छन्ति ॥६८॥

सर्वगतं सामान्यं सर्वेषामादिकारणं नित्यम् ॥

सूक्ष्ममलिङ्गमचेतनमक्रियमेकं प्रधानाख्यम् ॥ ६९ ॥

प्रकृतेर्महांस्ततोहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः ॥

तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि ॥ ७० ॥

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः पञ्च ॥

षोडशकश्च विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिःपुरुषः ॥ ७१ ॥

गुणलक्षणो न यस्मात् कार्यकारणलक्षणोपि नो यस्मात् ॥

तस्मादन्यः पुरुषःफलभोक्ता चेत्यकर्त्ता च ॥७२॥

प्रवर्तमानान् प्रकृतेरिमान् गुणान्

तमोवृतत्वाद्विपरीतचेतनः ॥

अहं करोमीत्यबुधोऽपि गम्यते

तृणस्य कुब्जीकरणेप्यनीश्वरः ॥ ७३ ॥

व्याख्या—सांख्यमतवाले कहते हैं कि—पांच प्रकारके महाभूत, नानाप्रकारका देह, नाम, संस्थान (आकार) येह सर्व अव्यक्त प्रधानसेही समुत्थान (उत्पन्न) होते हैं, अर्थात् जगदुत्पत्ति प्रधानसेही मानते हैं। अब प्रधान अपरनाम प्रकृतिका स्वरूप दिखाते हैं, जो प्रधान है, सो सर्वगत है, सामान्यरूप है, सर्व कार्योंका आदिकारण है, नित्य है, सूक्ष्म है, लिंगरहित है, अचेतन है, अक्रिय है, एक है, ऐसा प्रधाननामा तत्त्व है। तिस प्रधान (प्रकृति) से महान्, अर्थात् बुद्धि उत्पन्न होती है, तिसबुद्धिसे अहंकार उत्पन्न होता है, तिस अहंकारसे सोलांका गण उत्पन्न होता है, तिन सोलांके गणमेंसे पांच तन्मात्रसे पांच भूत उत्पन्न होते हैं; मूलप्रकृति जो है सो अविकृति है, महदादिप्रकृतिकी विकृतियां है, सोलां जो है सो विकार है, और पञ्चीसमा तत्त्व पुरुष है, सो न प्रकृति है और न विकृति है; जिसहेतुसे पुरुषमें गुणलक्षण नहीं है, और कार्यकारण लक्षणभी नहीं है, तिसहेतुसे प्रकृतिसे पुरुष अन्य है, कर्मके फलका भोक्ता है, परंतु कर्त्ता नहीं है; “अकर्त्ता निर्गुणो भोक्ता आत्मा कपिलदर्शने” इतिवचनात् ॥

प्रकृतिसे प्रवर्तमान हुए इन पूर्वोक्त गुणोंको तमोवृतरूप होनेसे, चेतन इन गुणोंसे विपरीतस्वरूप है, इसवास्ते ‘अहं करोमि’ मैं कर्त्ता हूं ऐसा तो मूर्खभी मानता है; क्यों कि, कर्त्तापणा जो है, सो तो अहंकारको है, और पुरुष तो तृणमात्रकोभी बांका करणे समर्थ नहीं है ॥ ६८॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ —५—

“शाक्याश्चाहुः ॥” विज्ञप्तिमात्रमेवैतदसमर्थाविभासनात् ॥

यथा जैन करिष्येहं कोशकीटादिदर्शनम् ॥ ७४ ॥

क्रोधशोकमदोन्मादकामदोषाद्युपद्रुताः ॥

अभूतानि च पश्यन्ति पुरतोवस्थितानि च ॥ ७५ ॥

व्याख्या—बौद्धमती कहते हैं कि—जो कुछ दीखता है, सो सर्व वि-
ज्ञानमात्र है; क्यों कि, जो दीखता है सो असमर्थ होके भासन होता है,
अर्थात् युक्तिप्रमाणसे अपने स्वरूपको धारणे समर्थ नहीं है. हे जैन !
जैसे तू कहता है कि, मैं कोशकीटकादिका दर्शन करता हूं, वा करूं
गा, परंतु यह जो तुझको दीखता है, सो उपाधिकरके भान होता है,
नतु यथार्थ स्वरूपसे सोइ दिखावे है. क्रोध, शोक, उन्माद, काम, दोषादि-
करके पीडित हुएथके पुरतः (आगे) अवस्थितपदार्थोंको देखते हैं, वे
न होतेहुएको देखते हैं, न तु सद्भूतोंको ॥ ७४ ॥ ७५ ॥-६-

“पुरुषवादिनश्चाहुः॥” पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं । उतामृत-
त्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति । यदेजति यन्ने-
जति यदूरे यदु अन्तिके यदन्तरस्य सर्वस्य यदु
सर्वस्यास्य बाह्यतो यस्मात् परं नापरमस्ति
किञ्चित् । ज्ञाणीयोइ स्वस्ति कश्चिद्दृक्ष इव स्त-
ब्धोदिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वं ॥
एक एव हि भूतात्मा तदा सर्वं प्रलीयते ॥
द्वावेव पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ॥ १ ॥
क्षरश्च सर्वभूतानि कूटस्थोक्षर एव च ॥

“अपरेष्याहुः ॥” विद्यमानेषु शास्त्रेषु ध्रियमाणेषु वक्तृषु ॥
आत्मानं ये न जानन्ति ते वै आत्महता नराः ॥ १ ॥
आत्मा वै देवता सर्वं सर्वमात्मन्यवस्थितम् ॥
आत्मा हि जनयत्येष कर्मयोगं शरीरिणाम् ॥ २ ॥
आत्मा धाता विधाता च आत्मा च सुखदुःखयोः ॥
आत्मा स्वर्गश्च नरक आत्मा सर्वमिदं जगत् ॥ ३ ॥
न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजते प्रभुः ॥
स्वकर्मफलसंयोगः स्वभावाद्भि प्रवर्तते ॥ ४ ॥

आत्मज्ञानस्वभावेन स्वयं मननसंभवात् ॥
 स्वकर्मणश्च संभूतेः स्वयंभूर्जीव उच्यते ॥ ५ ॥
 नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥
 न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ ६ ॥
 अच्छेद्योयमभेद्योयं निरुपाख्योयमुच्यते ॥
 नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः ॥ ७ ॥
 सोक्षरः स च भूतात्मा संप्रदायः स उच्यते ॥
 स प्राणः स परं ब्रह्म सो हंसः पुरुषश्च सः ॥ ८ ॥
 नान्यस्तस्मात्परो द्रष्टा श्रोता मन्तापि वा भवेत् ॥
 न कर्त्ता न च भोक्तास्ति वक्ता नैवात्र विद्यते ॥ ९ ॥
 चेतनोध्यवसायेन कर्मणा स निबध्यते
 ततोभवस्तस्य भवेत्तदभावात्परं पदम् ॥ १० ॥
 उद्धरेद्दीनमात्मानमात्मानमवसादयेत् ॥
 आत्मा चैवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ११ ॥
 संतुष्टानि च मित्राणि संक्रुद्धाश्चैव शत्रवः ॥
 नहि मे तत् करिष्यन्ति यन्न पूर्वं कृतं मया ॥ १२ ॥
 शुभाशुभानि कर्माणि स्वयं कुर्वन्ति देहिनः ॥
 स्वयमेवोपकुर्वन्ति दुःखानि च सुखानि च ॥ १३ ॥
 वने रणे शत्रुजनस्य मध्ये
 महार्णवे पर्वत मस्तके वा ॥
 सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा
 रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥ १४ ॥

व्याख्या-पुरुषवादी कहते हैं कि-पुरुष, आत्मा, एवशब्द अवधारणमें है, सो कर्म और प्रधानादिके व्यवच्छेदार्थ है, यह सर्व प्रत्यक्ष वर्त्तमान

सचेतनाचेतन वस्तु, इदं श्वाक्यालंकारमें, जो कुछ अतीत कालमें हुवा, और जो आगे होवेगा, मुक्ति और संसार सो सर्व पुरुषही है; उतशब्द अपिशब्दार्थ और अपिशब्द समुच्चयविषे है। अमृतस्य—अमरणभव (मोक्ष) का ईशानः प्रभु है। यदिति यच्चेति च शब्दके लोप होनेसें जो अन्नेन-अहारकरके अतिरोहति—अतिशयकरके वृद्धिको प्राप्त होता है, यदेजति-जो चलता है पशुआदि, जो नहीं चलता है पर्वतादि, जो दूर है मेरुआदि-जो निकट है, उशब्द अवधारणमें है, सो सर्व पुरुषही है; जो अंतर इस चेतनाचेतन पदार्थके बीचमें, और जो कुछ इसके बाह्यसें है, सो सर्व पुरुषही है; जिस पुरुषकेपरे अपर कोई किंचित् त्राणरूप कल्याणकारी अतिचतुर नहीं है. तथा जो एक, आकाश, स्वर्गमें, वा रहता है, तिसही पुरुषकरके यह सर्व पूर्ण भराहुआ है. जब एकला पुरुषही रहजाता है, तब सर्व जगत् तिसपुरुषमेंही लय होजाता है, क्यों कि दोही पुरुष जगत्में है. एक क्षर—नाश होनेवाला, और दूसरा अक्षर—अविनाशी है; जितने जगत्में भूत हैं, वे सर्व क्षर हैं, और जो कूटस्थ है, सो अक्षर है ॥ १ ॥

औरभी कहते हैं कि—शास्त्रोंके विद्यमान हुए, और वक्तायोंके धारण करतेहुएभी जे पुरुष अपने आत्माको नहीं जानते हैं, वे पुरुष निश्चयकरके आत्महत (आत्मघाती) हैं. आत्माही देवता है, आत्मामेंही सर्व वस्तु व्यवस्थित है; आत्माही सर्व शरीरवाले जीवोंके कर्मका संयोग उत्पन्न करता है. आत्माही धाता है, आत्माही विधाता है, आत्माही सुखदुःखमें है, आत्माही स्वर्ग है, आत्माही नरक है, और यह सर्व जगत् आत्माही है. ईश्वर, लोकको न कर्त्तापणा रचता है, और न कर्मोंको रचता है, किंतु अपने करे कर्मफलका संयोग स्वभावसेंही प्रवर्त्तता है. आत्मज्ञान स्वभावकरके आपही मनन होनेका संभव होनेसें अपने कर्मोंसेंही जीव जगत्में उत्पन्न होता है, इसवास्ते जीवको स्वयंभू कहते हैं. इसआत्माको शस्त्र छेदन नहीं करसक्ते हैं, अग्नि दाह नहीं करसक्ता है, पाणी गीला नही करसक्ता है, और पवन शोषण नहीं करसक्ता है. इसवास्ते यह आत्मा अच्छेद्य है, अभेद्य है, पूरापूरा स्वरूपकथन नहीं करसक्ते हैं इसवास्ते निरुपाख्य है, नित्य है, सर्वगत (सर्वव्यापक) है, स्थाणु (स्थिरस्वभाव) अर्थात् रूपांतरापत्तिकरके

शून्य है, अचल पूर्वरूपापरित्यागी है और सनातन (अनादि) है। सो आत्माही, अक्षर, भूतात्मा, संप्रदाय, प्राण, परब्रह्म, हंस और पुरुषादि कहनेमें आता है। आत्मासें अन्य कोई देखनेवाला, सुननेवाला, मनन करनेवाला, कर्त्ता, भोक्ता और वक्ता, नहीं है; किंतु, आत्माही है। आत्मा चैतन्यरूप है, सो चेतन आत्मा अध्यवसायकरके कर्मोंसें बंधाता है, तब आत्माको संसार होता है, और कर्मबंधके अभावसें परंपद मोक्ष प्राप्त होता है। आत्मा आपही अपने दीनात्माका उद्धार करता है, और आपही अपनेको दुःखोंमें गेरता है, आत्माही आत्माका बंधु है, और आत्माही आत्माका रिपु (शत्रु) है। संतुष्ट मित्र, और क्रोधायमान शत्रु, जो सुखदुःख पूर्वे मैंने नहीं करा है, सो सुख दुःख मेरेको नहीं करेंगे। क्योंकि, शुभाशुभकर्मोंको देहधारी आपही करते हैं, और आपही तिन कर्मोंको सुखदुःखरूपकरके भोगते हैं। वनमें, संग्राममें, शत्रुजनोंके बीचमें, समुद्रमें, पर्वतके शिखरऊपर, सूतेको, प्रमत्तको, विषमआपदामें पडेको, इत्यादि अवस्थावाले आत्माकी पूर्वले करेहुए पुण्यही सर्वत्र रक्षा करते हैं ॥ १।२।३।४।५।६।७।८।९।१०।११।१२।१३।१४ ॥

“दैववादिनश्चाहुः ॥”

स्वच्छन्दतो न हि धनं न गुणो न विद्या
 नाप्येव धर्मचरणं न सुखं न दुःखम् ॥
 आरुह्य सारथिवशेन कृतान्तयानं
 दैवं यतो नयति तेन पथा ब्रजामि ॥ १ ॥
 यथायथा पूर्वकृतस्य कर्मणः
 फलं निधानस्थमिवावतिष्ठते ॥
 तथातथा तत्प्रतिपादनोद्यता
 प्रदीपहस्तेव मतिः प्रवर्त्तते ॥ २ ॥
 विधिर्विधानं नियतिः स्वभावः
 कालोग्रहा ईश्वरकर्मदैवम् ॥

भाग्यानि कर्माणियमः कृतान्तः

पर्यायनामानि पुराकृतस्य ॥ ३ ॥

यत्तत्पुराकृतं कर्म न स्मरन्तीह मानवाः

तदिदं पाण्डवज्येष्ठ दैवमित्यभिधीयते ॥ ४ ॥

व्याख्या—दैववादी ऐसे कहते हैं—स्व (अपने), छंदे (अभिप्राय), सें धन, गुण, विद्या, धर्माचरण, सुख और दुःखादि नहीं होते हैं; किंतु कालरूप यान ऊपर चढ़ा दैव, तिसके वशसें जहां दैव लेजाता है, तहांही मैं जाता हूं. । जैसे २ पूर्वकृत कर्मोंका फल निधानकीतरें रहता है, पूर्वकृतनिकाचितकर्मका नामही दैव है, तैसें २ तिसके प्रतिपादनमें उद्यत हुआ, प्रदीप हस्तकीतरें मति प्रवर्त्तें है. । विधि १, विधान २, नियति ३, स्वभाव ४, काल ५, ग्रह ६, ईश्वर ७, कर्म ८, दैव ९, भाग्य १०, कर्म ११, यम १२, और कृतान्त १३, यह सर्व पूर्वकृत कर्मोंकेही पर्याय नाम है. । जिस कारणसें ते पूर्वकृत कर्म यहां मनुष्य नहीं स्मरण करते हैं, तिस कारणसें, यह, हे पाण्डवज्येष्ठ ! दैव कहा जाता है. ॥ १।२।३।४ ॥ “स्वभाववादिनश्चाहुः ॥”

कः कण्टकानां प्रकरोति तीक्ष्णं

विचित्रितां वा मृगपक्षिणां च ॥

स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं

न कामचारोस्ति कुतः प्रयत्नः ॥ १ ॥

वदर्याः कण्टकस्तीक्ष्णो ऋजुरेकश्च कुंचितः ॥

फलं च वर्तुलं तस्या वद केन विनिर्मितम् ॥२॥

व्याख्या—स्वभाववादी ऐसे कहते हैं—कौन पुरुष कंटकोंको तीक्ष्ण करता है ? और मृगपक्षीयोंका विचित्र रंग विरंगादि स्वरूप कौन करता है ? अपितु कोइभी नहीं करता है, स्वभावसेंही सर्व प्रवृत्त होते हैं, इस-वास्ते अपनी इच्छासें कुछभी नहीं होता है, इसवास्ते पुरुषका प्रयत्न ठीक नहीं है. । बेरीका एक कांटा ऋजु (सरल) और तीक्ष्ण, और एक

कुंचित (वांका) और फल वर्तुल (गोल), हे प्रियवर ! कहो स्वभावविना येह किसने बनाए (रचे) हैं ? ॥ १ । २ ॥

“अक्षरवादिनश्चाहुः ॥”

अक्षरात् क्षरितः कालस्तस्माद्व्यापक इष्यते ॥

व्यापकादिप्रकृत्यन्तः सैव सृष्टिः प्रचक्ष्यते ॥ १ ॥

“अपरेष्याहुः ॥”

अक्षरांशस्ततो वायुस्तस्मात्तेजस्ततो जलम् ॥

जलात् प्रसूता पृथिवी भूतानामेषसंभवः ॥ २ ॥

व्याख्या—अक्षरवादी कहते हैं—अक्षरसें क्षरका काल उत्पन्न हुआ, तिस हेतुसें कालको व्यापक माना है, व्यापकादि प्रकृतिपर्यंत सोही सृष्टि कहते हैं.

अपर ऐसे कहते हैं—प्रथम अक्षरांश, तिससें वायु उत्पन्न हुआ, तिस वायुसें तेज (अग्नि) उत्पन्न हुआ, अग्निसें जल उत्पन्न हुआ, और जलसें पृथिवी उत्पन्न हुई, इन भूतोंका ऐसे संभव हुआ है ॥ १ । २ ॥

“अंडवादिनश्चाहुः ॥”

नारायणः परोव्यक्तादण्डमव्यक्तसंभवम् ॥

अण्डस्यान्तस्त्वमी भेदाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ॥ १ ॥

गर्भोदकं समुद्राश्च जरायुश्चापि पर्वताः ॥

तस्मिन्नण्डेत्वमी लोकाः सप्त सप्त प्रतिष्ठिताः ॥ २ ॥

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥

स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा ॥ ३ ॥

ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे—इत्यादि—

व्याख्या—अंडवादी कहते हैं—नारायण भगवान् परमअव्यक्तसें, व्यक्त अंडा उत्पन्न हुआ, और तिस अंडेके अंदर यह भेद जो आगे कहते हैं, सातद्वीपवाली पृथिवी, गर्भोदक वर्षणवाला जल, समुद्र, जरायु मनुष्यादि, और पर्वत, तिस अंडेविषे ये लोक सात २ अर्थात् चौदह भुवन प्रति-

ष्ठित है, सो भगवान् तिस अंडेमें एक वर्ष रहकरके अपने ध्यानसें तिस अंडेके दो भाग करता हुआ, तिन दोनों टुकड़ोंमें ऊपरले टुकड़ेसें आकाश और दूसरे टुकड़ेसें भूमि निर्माण करता भया. इत्यादि। १। २॥ ३ ॥
 “अहेतुवादिनश्चाहुः॥”

हेतुरहिता भवन्ति हि भावाः प्रतिसमयभाविनश्चित्राः॥

भावादृते न द्रव्यं संभवरहितं खपुष्पमिव ॥ १॥

व्याख्या—अहेतुवादी कहते हैं—[प्रायः अहेतुवादी, परिणामवादी, और नियतिवादी, येह यहच्छावादीहीके भेद मालुम होते हैं] प्रतिसमय होने-वाले विचित्र प्रकारके जे भाव हैं, वे सर्व अहेतुसेंही उत्पन्न होते हैं, और भावसें रहित द्रव्यका संभव नहींहै, आकाशके पुष्पकीतरें. ॥ १ ॥

“परिणामवादिनश्चाहुः ॥”

प्रतिसमयं परिणामः प्रत्यात्मगतश्च सर्व भावानाम् ॥

संभवति नेच्छयापि स्वेच्छाक्रमवर्तिनी यस्मात् ॥ १ ॥

व्याख्या—परिणामवादी कहते हैं—समय २ प्रति परिणाम, प्रति-आत्मगत आत्मा २ प्रति प्राप्त हुआ, सर्वभावोंको संभव होता है, इच्छासें कुछभी नहीं होता है; क्योंकि स्वेच्छा क्रमवर्तिनी है, और परिणाम तो युगपत् सर्व पदार्थोंमें है ॥ १ ॥

“नियतिवादिनश्चाहुः ॥”

प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः

सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा ॥

भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने

नाभाव्यं भवति न भाविनोस्ति नाशः॥१॥

सत्यं पिशाचाः स्म वने वसामो भेरीं कराग्रैरपि न स्पृशामः ॥

अयं च वादः प्रथितः पृथिव्यां भेरीं पिशाचाः किल ताडयन्ति॥२॥

व्याख्या—नियतिवादी कहते हैं—नियतिबलाश्रयकरके जो अर्थ प्राप्तव्य-प्राप्तहोने योग्य है, सो शुभ वा अशुभ अर्थ पुरुषोंको अवश्यमेव होता है,

जीवोंके बहुत प्रयत्नके करनेसेंभी, जो नही होनहार है, वो कदापि नही होता है; और जो होनहार है तिसका कदापि नाश नही होता है. यथा हम साचे पिशाच हैं, और वनमें वसते हैं, भेरीको हम हस्ताग्रोंकरके भी स्पर्श नही करते हैं, तोभी यह वाद पृथिवीमें प्रसिद्ध है कि, निश्चय-करके भेरीको पिशाचही ताडना करते हैं (बजाते हैं) ॥ १ । २ ॥

“ भूतवादिनश्चाहुः ॥ ”

पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति तत्त्वानि तत्समुदायशरीरेंद्रियविषयसंज्ञा-
मदशक्तिवच्चैतन्यंजलबुद्बुदवज्जीवो चैतन्यविशिष्ट कायःपुरुष इति ॥

भौतिकानि शरीराणि विषयाः कारणानि च ॥

तथापि मन्दैरन्यस्य कर्तृत्वमुपदिश्यते ॥ १ ॥

एतावानेव लोकोयं यावानिन्द्रियगोचरः ॥

भद्रे वृकपदं ह्येतत् यद्वदन्त्यबहुश्रुताः ॥ २ ॥

तपांसि यातनाश्चित्रा संयमो भोगवंचना ॥

अग्निहोत्रादिकं कर्म बालक्रीडेव लक्ष्यते ॥ ३ ॥

व्याख्या—भूतवादी कहते हैं—पृथिवी १, पाणी २, अग्नि ३, और वायु ४, येह चार तत्त्व हैं; तिनका समुदाय सोही शरीरेंद्रिय विषय संज्ञा है, और मदशक्तिकीतरें चैतन्य उत्पन्न होता है, जलके बुद्बुदकी-तरें जीव है, अचैतन्य विशिष्ट काया है, सोही पुरुष है, इति. ॥ ऐसें पूर्वोक्त भौतिक शरीर है, वेही विषय और कारण है, तोभी मूर्ख लोक अन्य ईश्वरादिको कर्त्तापणा कहते हैं. । यह लोक इतनाही है, जितना इंद्रियोंके गोचरविषय है; हे भद्रे ! जैसा यह जूठा कल्पित करा हुआ वृक (भेडीये) का पग है, अबहुश्रुत (अज्ञानी लोक) ऐसेही नरक स्वर्ग जूठे कल्पन करके मूर्खलोकोंको डराते हैं. । तप करना है, सो निःकेवल अनेक प्रकारकी पीडामात्र है, और जो संयम है, सो भोगोंकी वंचनारूप है, अग्निहोत्रादिक जे कर्म हैं, वे बालकोंकी क्रीडाकीतरें मालुम होते हैं. ॥ १।२।३ ॥

“ अनेकवादिनश्चाहुः ॥ ”

कारणानि विभिन्नानि कार्याणि च यतः पृथक् ॥

तस्मात्त्रिष्वपि कालेषु नैव कर्मास्ति निश्चयः ॥ १ ॥

व्याख्या—अनेकवादी कहते हैं—कारणभी भिन्न है, और कार्यभी भिन्न है, तिसवास्ते तीनोही कालोंविषे कर्मोंकी अस्ति नहीं है ॥ १ ॥ इतिपूर्वपक्षः ॥

इसपूर्वपक्षमें परवादीयोंके अभिमत पक्ष लिखतेहुए श्रीहरिभद्रसूरि-जीनें, जो जो ऋग्वेद यजुर्वेदादिकोंकी श्रुतियां, तथा मनु गीताप्रमुख ग्रंथोंके अनुसार थोड़े २ व्यस्त श्लोक लिखे हैं, तिसका कारण यह है कि, पूर्वपक्षोंके श्लोक बहुत हैं सर्व लिखते तो ग्रंथ भारी हो जाता, इसवास्ते प्रतीकमात्रसें तिन सर्वमतवादीयोंके स्वपक्षस्थापनके सर्वश्लोक जान लेने.

प्रथम इस अवसर्पिणीकालमें श्रीऋषभदेवजीनेही, अनंतनयात्मक सर्वव्यापक स्याद्वादरसकूपिकाके रससमानसें सर्वजीवादितत्त्वोंका निरूपण करा था, तिसमेसें किंचिन्मात्र सार लेके सांख्यमत, और सांख्यमतका किंचित् आशय लेके वेदांत, योग, मनुस्मृति, गीताप्रमुख शास्त्र ऋषिब्राह्मणोंने रचे. जैसें आर्यवेदोंकी उत्पत्ति, और तिनका व्यवच्छेद, और अनार्यवेदोंकी उत्पत्ति हुई, तथा आर्यब्राह्मणोंकी, और अनार्यब्राह्मणोंकी उत्पत्ति, इत्यादि वर्णन हम जैनतत्त्वाददर्शनामाग्रंथमें लिख आए हैं; तहांसे जानना. और प्रायः इस ग्रंथमें जे जे मत पूर्वपक्षमें लिखे हैं, वेभी सर्व जैनतत्त्वाददर्शग्रंथमें खंडनरूपसें लिख दीए हैं; इहां तो केवल जो श्रीहरी-भद्रसूरिजीने सामान्यप्रकारे समुच्चय पूर्वपक्षोंका खंडन लिखा है, सोही लिखेंगे. वाचकवर्गको विदित होवे कि, वेदकेसाथ स्मृति नहीं मिलती है, और स्मृतियोंकेसाथ पुराण नहीं मिलते हैं, इसवास्ते यह सर्वपुस्तक सर्वज्ञके कथन करे हुए नहीं हैं, परस्परविरुद्धत्वात्. इसवास्ते पूर्वोक्त मतोंवालोंने जगद्विषयक जो जो कथन करा है, सो सर्व तिनोंका अज्ञानविजृम्भित है. क्योंकि, इस जगत्का यथार्थस्वरूप पूर्वोक्त मतवालोंमेसें किसीनेभी नहीं जाना है. “तत्तं ते नाभिजाणंति नविनासी कयाइवि इतिवचनप्रामाण्यात्” ॥

अब ग्रंथकारने जो सामान्यसें पूर्वपक्षका खंडन लिखा है, सोही लिखतेहैं.

तेषामेवाविनिर्ज्ञातमसदृशं सृष्टिवादिनामिष्टम् ॥

एतद्युक्तिविरुद्धं यथातथा संप्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥

सदसज्जगदुत्पत्तिः पूर्वस्मात्कारणात्स्वतो नास्ति ॥

असतोपि नास्ति कर्त्ता सदसद्भ्यां संभवाभावात् २ ॥

यदसत्तस्योत्पत्तिस्त्रिष्वपि कालेषु निश्चितं नास्ति ॥

खरशृंगमुदाहरणं तस्मात्स्वाभाविको लोकः ॥ ३ ॥

मूर्त्तामूर्त्तं द्रव्यं सर्वं न विनाशमेति नान्यत्वम् ॥

यद्वेत्येतत्प्रायः पर्यायविनाशो जैनानाम् ॥ ४ ॥

काश्यपदक्षादीनां यदभिप्रायेण जायते लोकः ॥

लोकाभावे तेषां अस्तित्वं संस्थितिः कुत्र ॥ ५ ॥

व्याख्या—तिन पूर्वोक्त सृष्टिवादीयोंने इस जगत्का स्वरूप यथार्थ जाना-
हुआ नहीं है, और जो उनको सृष्टिका स्वरूप इष्ट है, सोभी एकसरीषा नहीं
है, कोइ कैसे माने है, और कोइ किसीतरें माने है, सो सर्व प्रायः ऊपर पूर्वपक्षमें
लिख आए हैं; और जो इन पूर्वपक्षीयोंका मानना है, सोभी युक्तिप्रमाणसे
विरुद्ध है, जैसें युक्तिप्रमाणसे विरुद्ध है, तैसें, मैं (श्रीहरिभद्रसूरि)
सम्यक्प्रकारसें संक्षेपरूप कथन करूंगा. । जगत्की उत्पत्ति सत्कारणसें
है वा असत्कारणसें है ? सत्कारणसेंभी नहीं है, और असत्कारणसेंभी
नहीं है; और सृष्टिका कर्त्ता सत् असत् दोनों स्वरूपोंसें संभव नहीं हो सक्ता
है, प्रमाणके अभावसें, सोही दिखाते हैं. । जेकर कारण सत् रूप है, तब
तो कारण अपने स्वरूपको कदापि नहीं त्यागेगा, जब कारण अपने
स्वरूपको नहीं त्यागेगा, तब कार्यरूप जगत् कैसें उत्पन्न होवेगा ? जेकर
कारण अपने स्वरूपको त्यागके कार्य उत्पन्न करेगा, तब तो कारणका
सत्स्वरूप नहीं रहेगा, तथा जगदुत्पत्तिसें पहिलां जो जगत्का कारण था,
सो नित्यस्वरूपवाला था, वा, अनित्यस्वरूपवाला था ? जेकर नित्य माना-
जायगा, तब तो तीनोही कालमें जगत्की उत्पत्ति नहीं होवेगी, “ अ
प्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपं नित्यं ॥ ”

यह नित्यका लक्षण है. जब कारण अपने स्वरूपसे न क्षरेगा, अर्थात् नाश नहीं होवेगा, और नवीन स्वरूप धारण नहीं करेगा, तब कार्यको कैसे उत्पन्न करेगा ? क्योंकि, मृत्पिंड, स्थास, शिवक, कोश, कशूलादि पूर्वरूपोंको त्यागकेही उत्तर रूपोंको प्राप्त होता है; जेकर कहोगे कारण अनित्य है, तब तो सोभी कारण अन्यकारणसे उत्पन्न होना चाहिए, सोभी कारण अन्यकारणसे ऐसे माने अनवस्थादूषण होवे है; इसवास्ते सत् और नित्यकारणसे जगदुत्पत्ति कैसे हो सकती है ? अपितु कदापि नहीं हो सकती है.

और एक यह बड़ा दूषण जगदुत्पत्ति माननेमें है कि, जब जगत्ही नहीं था, तब जगत्की उत्पत्तिका कारण और जगत्कर्त्ता ईश्वर, ये दोनों किस स्थानमें रहते थे ? क्योंकि कोईभी स्थान रहनेवाला नहीं था. जेकर कहोगे आकाशमें रहते थे, तो, यह कहनाभी मिथ्या है; क्योंकि, सांख्य-शास्त्रमें, तथा वेदोंमें, आकाशकोभी उत्पत्तिवाला माना है, जो कि आगे लिखेंगे. जब आकाशही नहीं उत्पन्न हुआ था, तब जगत्का सत् नित्यकारण, और कर्त्ता ये दोनों कहाँ रहते थे ?

एक अन्यबात यह है कि, आकाशनाम शून्य पोलाडका है, जब शून्य पोलाडरूप आकाश नहीं था तो, क्या इहाँ कोई निगगर घनरूप था ? क्योंकि, सप्रतिपक्ष जो वस्तु है, तिनमें जहाँ एक होवेगा, तहाँ दूसरेका अवश्य अभाव होवेगा, अंधकारउद्योतवत्. जब घनरूप था, सो परमाणु आदि चारों महाभूतोंके सिवाय अन्य कोई वस्तु सिद्ध नहीं होसक्ती है, और परमाणु आदि चार महाभूत आकाशविना कदापि किसी जगे नहीं रहसक्ते हैं, इसवास्ते सत्कारणसे वा नित्यानित्यकारणोंसे जगत्की उत्पत्ति जे मानते हैं, तिनके घटमें अज्ञान विजृम्भितके-विना अन्य कोई कारण नहीं है.

तथा जगत्का जो कर्त्ता माना है, सो सत्स्वरूप है कि, असत्स्वरूप है ? जेकर सत्स्वरूप है तो, फेर नित्य है कि, अनित्य है ? इत्यादि

प्रायः कारणवालेही सर्व विकल्प जान लेने. तथा जब जगत्ही नहीं था, तब जगत्का कर्ता कहां रहताथा? जेकर कहे सर्व जगें व्यापक था, तो, हे प्यारे! जब कोई जगाही नहीं थी, तो, व्यापक किसमें था? क्योंकि, विना आकाशके कोईभी जड चैतन्य वस्तु नहीं रह सकती है, यह प्रमाण-सिद्ध है; और अप्रमाणिक कथनकों सत्य करके मानना, यह बुद्धिमानों-का काम नहीं है. जेकर असत्कारण, और असत्कर्त्ताके माननेसें जग-दुत्पत्ति होवे, तब तो खरशृंगसेंभी पुरुष उत्पन्न होना चाहिए; सोही ग्रंथ-कार दिखावे है. जिसवास्ते असत् जो है, तिसकी उत्पत्ति तीनोही का-लमें निश्चित नहीं होसक्ती है, इस कथनमें खरशृंगका दृष्टांत है, जैसें खरशृंग स्वरूपसें असत् है, तिस्सें कोईभी कार्य उत्पन्न नहीं होसक्ता है, तैसेंही असत्कारण और असत्कर्त्तासेंभी कोई कार्य उत्पन्न नहीं हो-सक्ता है; तिसकारणसें प्रवाह अपेक्षा अनादि स्वभावसिद्ध लोक है, नतु ईश्वरादिरचित. ॥

मूर्त्तामूर्त्त जो द्रव्य है, परमाणु और परमाणुजन्य जो कार्यद्रव्य है, सर्व मूर्त्तद्रव्य है; जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श होवे, तिसकों मूर्त्तद्रव्य कहते हैं; और आत्मा आकाशादि अमूर्त्त द्रव्य है. ये दोनो स्वरूप, द्रव्योंके सर्वथा कदापि विनाश नहीं होते हैं, और न अन्यत्व, अर्थात् मूर्त्तद्रव्य कदापि अमूर्त्तभावकों प्राप्त नहीं होवे है, और न अमूर्त्त कदापि मूर्त्त भावकों प्राप्त होवे है; किंतु, यह जो जगत्की उत्पत्ति विनाश है, सो पर्या-यरूपकरके जैन मानते हैं, न तु द्रव्यरूपकरके. । काश्यपदक्षादिकोंके, आदिशब्दसें समलब्रह्महिरण्यगर्भब्रह्मादिके अभिप्रायसें जेकर जगत्की उत्पत्ति होवे, तब लोकके अभावसें तिनका काश्यप, दक्ष, हिरण्यगर्भा-दिकोंका अस्तिपणा, और रहना कहां था? कहांहीभी नहीं था. ॥ १।२।३।४।५ ॥

सर्वं धराम्बराद्यं याति विनाशं यदा तदा लोकः ॥

किं भवति बुद्धिरव्यक्तमाहितं तस्य किं रूपम् ॥ ६ ॥

व्याख्या—सर्व पृथिवी आकाशादि जिस अवसरमें नष्ट हो जावेंगे, तब इस लोकका क्या स्वरूप होवेगा? अव्यक्तस्थापितबुद्धिका क्या स्वरूप होवेगा? तात्पर्य यह है कि, सांख्यमतवालोंके प्रकृतिपुरुष, और वेदांतियोंका अव्यक्त ब्रह्म, इन सर्वका रहनाभी आकाशादिके अभावसे प्रमाणसिद्ध नहीं होवेगा. ॥ ६ ॥

यदमूर्त्तं मूर्त्तं वा स्वलक्षणं विद्यते स्वलक्षणतः ॥

तद्व्यक्तं निर्दिष्टं सर्वं सर्वोत्तमादेशैः ॥ ७ ॥

व्याख्या—जिसपदार्थका मूर्त्त वा अमूर्त्त स्वलक्षण है, वो पदार्थ अपने लक्षणसे विद्यमान है, सो व्यक्त है, ऐसा सर्वोत्तमादेशोंकरके कहा है. ॥ ७ ॥

द्रव्यं रूप्यमरूपि च यदिहास्ति हि तत् स्वलक्षणं सर्वम् ॥

तलक्षणं नयस्य तु तद्वंध्यापुत्रवद्ब्राह्मम् ॥ ८ ॥

व्याख्या—इस जगत्में जो रूपि वा अरूपि द्रव्य है, सो स्व २ लक्षणकरके विद्यमान है, जिसद्रव्यमें स्वलक्षण नहीं है, वो द्रव्य बंध्यापुत्रवत् जानना, अर्थात् वो द्रव्यही नहीं है, ॥ ८ ॥

यद्युत्पत्तिर्न भवति तुरगविषाणस्य खरविषाणाग्रात् ॥

उत्पत्तिरभूतेभ्यो ध्रुवं तथा नास्ति भूतानाम् ॥ ९ ॥

व्याख्या—जैसे, खरशृंगाग्रसें घोड़ेके शृंगकी उत्पत्ति नहीं होती है, तैसेही मूलद्रव्यके स्वलक्षणयुक्तके न हुए अविद्यमानकारणोंसे निश्चय भूतोंकी उत्पत्ति नहीं है ॥ ९ ॥

तत्र व्यक्तमलिङ्गादव्यक्तादुद्भविष्यति कदाचित् ॥

सोमादीनां तु न संभवोस्ति यदि न सन्ति भूतानि ॥ १० ॥

असति महाभूतगणे तेषामेव तनुसंभवो नास्ति ॥

पशुपतिदिनपतिवत्सोमाण्डव्यपितामहहरीणाम् ॥ ११ ॥

बुद्धिमनो भेदानां देहाभावे च संभवो नास्ति ॥

ईहापोहाभावस्तदभावे संभवाभावः ॥ १२ ॥

तदभावेस्ति न चिन्ता चिन्ताभावे क्रियागुणो नाऽस्ति ॥

कर्तृत्वमनुपपन्नं क्रियागुणानामसंभवतः ॥ १३ ॥

व्याख्या—तहां अलिंगवाले अव्यक्तसें व्यक्तस्वरूपकी तो कदाचित् उत्पत्ति होसक्ती है, दधिवत्; परंतु यदि भूतही नहीं है तो, सोमादिकों-काभी संभव नहीं है. क्योंकि, जेकर शरीरके मूलकारणभूतही नहीं है तो, सोमादिकोंके शरीरका संभव कैसे होगा? । जब महाभूतोंका समूह-ही नहीं है तो, तिनके पशुपति (महादेव,) दिनपति, वत्स, मांडव्य, पिता-मह, ब्रह्मा, विष्णुके शरीरकाभी संभव नहीं होसक्ता है. । और देहके अभाव हुए बुद्धि, और मनके भेदोंका संभव नहीं है. क्योंकि, देहके विना मन और बुद्धिका संभव किसीप्रमाणसेंभी सिद्ध नहीं होसक्ता है, और बुद्धि मनके अभावसें ईहाअपोहका अभाव है, ईहानाम विचार करनेका है, और अपोहानाम निश्चय करनेके सन्मुख होनेका है, बुद्धि-मनके अभावसें इन दोनोंका संभव नहीं है.? इहाअपोहके अभावसें चिन्ता नहीं हो सक्ती है, और चिन्ताके अभावसें क्रियागुण नहीं है, क्रिया-गुणके संभव न होनेसें कर्त्तापणाकी अनुपपत्ति है; जब क्रियागुण नहीं है, तब कर्त्तापणा किसीप्रमाणसेंभी सिद्ध नहीं होता है. ॥ १०।११।१२।१३ ॥

तेन कृतं यदि च जगत् स कृतः केनाकृतोथ बुद्धिर्वः ॥

विज्ञेयः सत्येवं भवप्रपंचोऽपि तद्वदिह ॥ १४ ॥

व्याख्या—जेकर यह जगत् तिस ईश्वरने रचा है तो, वो ईश्वर किसने रचा है? अथ जेकर तुमारी ऐसी बुद्धि होवे कि, ईश्वर तो कि-सीनेभी नहीं रचा है तो, ऐसेही जगत्का प्रपंचभी जानना चाहिए, अर्थात् जगत्भी ईश्वरकीतरें किसीने नहीं रचा है, किंतु प्रवाहसें अनादि है; ऐसे क्यों नहीं मानते हैं? ॥ १४ ॥

अभ्युपगम्येदानीं जगतः सृष्टिं वदामहे नास्ति ॥

पुरुषार्थैः कृतकृत्यो न करोत्याप्तो जगत्कलुषम् ॥ १५ ॥

अपकारः प्रेताद्यैः कस्तस्य कृतः सुरादिभिः किं वा ॥
 संयोजितायदेते सुखदुःखाभ्यामहेतुभ्याम् ॥ १६ ॥
 तुल्ये सति सामर्थ्ये किं न कृतो वित्तसंयुतो लोकः ॥
 येन कृतो बहुदुःखो जन्मजरामृत्युपथि लोकः ॥ १७ ॥
 यदि तेन कृतो लोको भूयोपि किमस्य संक्षयः क्रियते ॥
 उत्पादितः किमर्थं यदि संक्षपणीय एवासौ ॥ १८ ॥
 कः संक्षिप्तेन गुणः को वा सृष्टेन तस्य लोकेन ॥
 को वा जन्मादिकृतं दुःखं संप्रापितैः सत्त्वैः ॥ १९ ॥
 भूतानुगतशरीरं कुम्भाद्यं कुम्भकृत् यथा कृत्वा ॥
 असकृद्भिन्नति तद्वत् कर्त्ता भूतानि निस्तृशः ॥ २० ॥
 भवसंभवदुःखकरं निःकारणवैरिणं सदा जगतः ॥
 कस्तं ब्रजेच्छरण्यं भूरि श्रेयर्थमतिपापम् ॥ २१ ॥
 स्वकृतं जगत् क्षपयतस्तस्य न बन्धोस्ति बुद्धिरन्येषाम् ॥
 किं न भवति पुत्रवधे बन्धः पितुरुग्रचित्तस्य ॥ २२ ॥
 जगतः प्रागुत्पत्तिर्यदि कर्तुर्विग्रहात् कथं तद्वत् ॥
 अधुना न भवति तस्यैव विग्रहात्संभवस्तस्याः ॥ २३ ॥
 विविधासु यथायोनिषु सत्त्वानां सांप्रतं समुत्पत्तिः
 नित्यं तथैव सिद्धा प्राहुर्लोकस्थितिविधिज्ञाः ॥ २४ ॥
 एवं विचार्यमाणाः सृष्टिविशेषाः परस्परविरुद्धाः ॥
 हरिहरविचारतुल्या युक्तिविहीनाः परित्याज्याः ॥ २५ ॥

व्याख्या—अब हम अपने सिद्धांतकों अंगीकारकरके कहते हैं; जगत्-की उत्पत्ति, ईश्वरने नहीं करी है; क्योंकि, सर्व पुरुषार्थकरके जो ईश्वर कृतकृत्य है, सो ईश्वर आस, मलीन जगत्को नहीं करता है. जेकर करे तो, कृतकृत्य नहीं, आस नहीं, बीतराग नहीं, तब तो, वो ईश्वरही नहीं.।

प्रेतादिकोंने तिस ईश्वरका क्या बुरा करा है? जिस्सें तिनको अधमपणे उत्पन्न करे; और देवतायोंने क्या ईश्वरऊपर उपकार करा? जिस्से तिनकों उत्तमपणे उत्पन्न करे; असुरोंकों दुःखमें और देवतायोंकों सुखमें विनाही हेतु जोड़ दिए, क्या एही ईश्वरकी न्यायशीलता है?। जेकर ईश्वर पक्षपातरहित, न्यायी, दयालु, सर्वसामर्थ्य है तो, सर्व लोकोंकों वित्त (धन,) कलत्र, पुत्रादिकरके तुल्य सुखी क्यों नहीं करे? और किसवास्ते जन्म जरा मृत्युके पथिकलोक रच दिए? जेकर तिस ईश्वरनेही लोक रचा है, तो फेर तिसका क्षय किसवास्ते करता है? जेकर क्षयही करणा था तो जगत्की उत्पत्ति करणेकी क्या आवश्यकता थी? तिस जगत्के क्षय करणेसें ईश्वरकों किसगुणकी प्राप्ति हुई? और तिसके रचनेसें क्या लाभ हुआ? और जीवोंकों जन्म देके दुःखी करनेसें तिस ईश्वरकों क्या लाभ हुआ?। जैसे कुंभकार कुंभादि करता है, और फेर तिनकों भांगता है, तैसेही ईश्वर जीवानुगतशरीर रचता है, और भांगता है, तब तो वो ईश्वर बडाही निर्दय है, ऐसा सिद्ध होवेगा. । जगत्-संभव दुःखोंका करनेवाला (देनेवाला), और जगद्वासीयोंका विनाहीकारण सदा बैरी (शत्रु,) ऐसे अतिपापरूप ईश्वरके शरणकों कौन बुद्धिमान् कल्याणार्थी अपने कल्याणकेवास्ते प्राप्त होवे? अपितु कोइ नहीं. । कितनेक लोकोंकी ऐसी बुद्धि होती है कि, अपने करे जगत्के क्षय करणेवाले तिस ईश्वरकों कर्मबंध नहीं है, यह कथन उनोंका अज्ञान विजृम्भित है; क्या निर्दयचित्तवाले पिताकों पुत्रके बंध करनेमें पापका बंध नहीं होता है? अवश्यमेव होता है; ऐसेही ईश्वरकोंभी जगत् संहार करते हुए अवश्यमेव पापका बंध होवे है. । जगत्की उत्पत्ति प्रथम जेकर शरीरवाले कर्त्ताने करी है तो, कैसें तिसकीतरें अधुना संप्रतिकालमें जगत्की उत्पत्ति देहवाले कर्त्तासें होती हुई नहीं दीख पडती है? तात्पर्य यह है कि, प्रथम जेकर सृष्टि देहधारी ईश्वरने करी है तो, संप्रतिकालमें जो नवीननवीन सृष्टि उत्पन्न हो रही है, तिसकाभी कर्त्ता देहधारी ईश्वर हमकों दीखना चाहिए, परंतु दीखता नहीं है; और सृष्टि अपने कार-

णोंसें हो रही है; और अमूर्त्त देहरहित ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता किसीप्रमाण-सेंभी सिद्ध नहीं होता है, इसवास्ते जगत् ईश्वरका रचा हुआ नहीं है ॥ १५ । १६ । १७ । १८ । १९ । २० । २१ । २२ । २३ ॥

पूर्वपक्षः—जेकर ईश्वर जगत्का रचनेवाला नहीं, तो फेर इस जग-त्की व्यवस्था कैसें माननी चाहिए ?

उत्तरपक्षः—नानाप्रकारकी योनियोंमें संप्रतिकालमें अपने २ कार-णोंसें जैसें जीवोंकी उत्पत्ति हो रही है, और काल स्वभाव नियतिकर्म उद्यम जड चैतन्यमें प्रेरणशक्तिद्वारा जैसें इस जगत्की व्यवस्था हो रही है, ऐसें-ही नित्यप्रवाहसें अनादि अनंत सिद्ध है. जे लोक स्थितिके विधिके जा-ननेवाले सर्वज्ञ है, तिनका ऐसा कथन है. और युक्तिप्रमाणसेंभी ऐसाही सिद्ध होवे है. ॥ २४ ॥

ऐसें विचार करतां थकां सृष्टिकी रचनामें विशेष कथन है, वे परस्पर-विरुद्ध है, ते सर्व ऊपर लिख दीखाए है. जैसें हरिहर विरंचि प्रमुख सरागी देवोंमें परमेश्वरपणा प्रमाणयुक्तिसें सिद्ध नहीं होता है, तैसेंही प्रमाणयुक्तिसें जगत् ईश्वरकृत सिद्ध नहीं होता है, इसवास्ते ये सृष्टिरच-नाके कथन युक्तिविहीन है; तिस्सेंही बुद्धिमानोंकों त्यागने योग्य है. ॥२५॥

मुक्तो वामुक्तो वास्ति तत्र मूर्त्तोथ वा जगत्कर्त्ता ॥

सदसद्वापि करोति हि न युज्यते सर्वथाकरणम् ॥ २६ ॥

व्याख्या—जगत्का कर्त्ता ईश्वर मुक्तरूप वा अमुक्तरूप, मूर्त्त वा अमूर्त्त, सत्तरूप वा असत्तरूप, किसीतरेंभी सिद्ध नहीं होता है. ॥ २६ ॥

मुक्तो न करोति जगन्न कर्मणा बध्यते विगतरागः ॥

रागादियुतः सतनुर्निबध्यते कर्मणावश्यम् ॥ २७ ॥

व्याख्या—जो मुक्तरूप है, सो तो जगत्कों नहीं रचेगा; प्रयोजनाभा-वात्. और जो वीतराग है, सो कर्मबंधनोसें नहीं बंधाता है; जो रागसं-युक्त शरीरसहित है, सो अवश्यमेव कर्मोंकरके बंधाता है. ॥ २७ ॥

ज्ञानचरित्रादिगुणैः संसिद्धाः शाश्वताः शिवाः सिद्धौ ॥

तनुकरणकर्मरहिता बहवस्तेषां प्रभुर्नास्ति ॥ २८ ॥

व्याख्या—ज्ञानदर्शनचारित्रादिगुणोंकरके जे संसिद्ध है, और जे मुक्तिमें शाश्वत शिवरूप है, और शरीर इंद्रियकर्मोंकरके रहित है, ऐसे अनंत आत्मा, सामान्यरूपसें एक, और विशेषरूपकरके अनंत, ऐसे तिन सिद्धोंका कोई प्रभु ईश्वर नहीं है, किंतु आपही ज्योतिःस्वरूप है. ॥ २८ ॥

कर्मजनितं प्रभुत्वं संसारे क्षेत्रतश्च तद्विन्नम् ॥

प्रभुरेकस्तनुरहितः कर्त्ता च न विद्यते लोके ॥ २९ ॥

व्याख्या—कर्मसंयुक्तकर्मजनित जो प्रभुपणा है, सो संसारमें है, राजादि; और क्षेत्रसें विचारिए तो, उर्द्ध अधो तिर्यक् लोकमें है; परंतु इस जगतसें भिन्न, कर्मरहित, शरीररहित, सर्वव्यापक, स्रष्टिका कर्त्ता, एक ईश्वर इसलोकमें नहीं है. क्योंकि, पूर्वोक्त विशेषणोंवाला ईश्वर प्रमाणसें सिद्ध नहीं होता है. ॥ २९ ॥

अवगाहाकृतिरूपैः स्थैर्यभावेन शाश्वतेलोके ॥

कृतकत्वमनित्यत्वं मेवादीनां न संवहति ॥ ३० ॥

व्याख्या—अवगाहकरके, आकृतिकरके, रूपकरके, स्थैर्यभावकरके, इस शाश्वते लोकमें कृतकत्वपणा, अनित्यपणा, मेरुआदिपदार्थोंको नहीं प्राप्त होता है. “ तेषां शाश्वतत्वान्नित्यत्वाच्च ” तिनोंको शाश्वते और प्रवाहरूपसें नित्य होनेसें. ॥ ३० ॥

गुणवृद्धिहानिचित्रात् कचिन्महान् कृतो न लोकश्च ॥

इति सर्वमिदं प्राहुः त्रिष्वपि लोकेषु सर्वविदः ॥ ३१ ॥

व्याख्या—गुणवृद्धिहानिके विचित्र होनेसें समय २ उत्पादविनाशादिके होनेसें, कोई जगेभी महान्का करा हुआ लोक नहीं है. ऐसें सर्व यह तीनों लोकमें, तीनोंही कालमें, सर्वज्ञ भगवान् कहते हैं. ॥ ३१ ॥

अद्वाचक्रमनीशं ज्योतिश्चक्रं च जीवचक्रं च ॥

नित्यं पुनन्ति लोकानुभावकर्मानुभावाभ्याम् ॥ ३२ ॥

व्याख्या—अद्वाचक्र (कालचक्र) जो लोकमें वर्तता है, सो ईश्वरकृत नहीं है, ऐसेही ज्योतिश्चक्र और जीवचक्र जानने; ये तीनों चक्र नित्य सदाही लोककी अनादि मर्यादाकरके, और जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके अनुभावसामर्थ्यकरके, प्रवर्त रहे हैं, नतु ईश्वरकी प्रेरणासें. ॥ ३२ ॥

चंद्रादित्यसमुद्रास्त्रिष्वपि लोकेषु नातिवर्त्तते ॥

प्रकृतिप्रमाणमात्मायमित्युवाचोत्तमज्ञाता ॥ ३३ ॥

व्याख्या—चंद्र, सूर्य, समुद्र, ये, तीनों लोकमें जो अपनी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करते हैं, यह भी अनादि लोकस्थिति, और जीवोंके कर्मों-हीके प्रभावसें है. और प्रकृति अर्थात् देहप्रमाणव्यापक यह आत्मा है, ऐसे उत्तमज्ञानवान् कहते भए हैं ॥ ३३ ॥

सर्वाः पृथिव्यश्च समुद्रशैलाः सस्वर्गसिद्धालयमंतरिक्षम् ॥

अश्वत्थिमः शाश्वत एष लोक अतो बहिर्यत्तदलौकिकं तु ॥ ३४ ॥

व्याख्या—सर्व पृथिवी, समुद्र, पर्वत, स्वर्ग (देवलोक) और सिद्धालय मुक्ताकाशचिदाकाशसाहित अंतरिक्ष आकाश, ये सर्व, तिनमें कितनेक तो स्वरूपसें अनादि है, और कितनेक प्रवाहसें अनादि है, इसवास्ते ईश्वरकृत नहीं है; किंतु यह लोक शाश्वत है, और इस लोकसें जो बाहिर है, सो अलोक है, निःकेवल आकाशमात्र है. ॥ ३४ ॥

प्रकृतीश्वरौ विधानं कालः सृष्टिर्विधिश्च दैवं च ॥

इति नामधनो लोकः स्वकर्मतः संसरत्यवशः ॥ ३५ ॥

व्याख्या—प्रकृति, ईश्वर, विधान, काल, सृष्टि, विधि, दैव ये सर्व लोकके नाम है; इसलोकमें संसारी जीव अपने २ कर्मोंकरके भ्रमण करता हैं, नतु स्ववशसें. ॥ ३५ ॥

कर्मानुभावनिर्मितनैकाकृतिजीवजातिगहनस्य ॥

लोकस्यास्य न पर्यवसानं नैवादिभावश्च ॥ ३६ ॥

व्याख्या—कर्मोंके अनुभावसमर्थसें जीवोंकी अनेक आकृति बन रही है, तिस अनेकाकृतीसंयुक्त जीवोंकी जाति, योनियोंकरके गहन इसलोक-का कदापि पर्यवसान (छेहडा) नहीं है, और आदिपणाभी नहीं है ॥३६॥

तस्मादनाद्यनिधनं व्यसनोरुभीमं

जन्मारदोषदृढनेम्यतिरागतुम्ब्यम् ॥

घोरंस्वकर्मपवनैरितलोकचक्रं

भ्राम्यत्यनारतभिदं हि किमीश्वरेण ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्धरिभद्रसूरिकृत लोकतत्त्वनिर्णयः ॥

व्याख्या—तिसवास्ते अनादि, अनंत और कष्टोंकरके भयजनक जन्म-रूप अरे ! दोषरूप दृढ चक्रकी नेमीधारा है, रागरूप तुंब घोर नाभी है, अपने २ कर्मरूप पवनका प्रेरण हुआ लोकचक्र निरंतर भ्रमण करता है, तो फेर ईश्वर कर्त्ताकी कल्पना करनेसें क्या लाभ है? कुछभी नहीं है-निःकेवल अज्ञानियोंके अज्ञानकी लीला है, जो कि, जगत्का कर्त्ता ईश्वर मानना ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्धरिभद्रसूरिकृतलोकतत्त्वनिर्णयस्य बालावबोधः ॥

श्रीभक्तपोगणेशेन विजयानंदसूरिणा ॥

कृतोबालावबोधोयं परोपकृतिहेतवे ॥ १ ॥

इंदुबाणांकचन्द्राब्दे मधुमासे सिते दिले ॥

त्रयोदश्यां तिथौ बुधघस्त्रे पूर्तिमगात्तथा ॥ २ ॥

सर्व श्री संघसें हम नम्रतापूर्वक विनती करते हैं कि, महादेवस्तोत्र, अयोगव्यवच्छेद, और लोकतत्त्वनिर्णय नामक ग्रंथोंकी टीका तो हमको मिली नहीं है, केवल मूलमात्र पुस्तक मिले हैं, सोभी प्रायः अशुद्धसें है, परंतु कितनेक मुनियोंकी प्रार्थनासें यह बालावबोधरूप किंचिन्मात्र भाषा लिखी है; इनमें ग्रंथकारके अभिप्रायसें जो कुछ अन्यथा लिखा होवे, वा जिनाज्ञासें विरुद्ध लिखा होवे तो, मिथ्यादुष्कृत हमको होवे;

और जो हमारी इस बालक्रीडामें भूल होवे, सो सुझ जनोंकों सुधार-लेनी चाहिए.

ऊपर हम अन्य २ मतोंवाले जिसतरें सृष्टि अर्थात् जगत्की उत्पत्ति मानते हैं, सो लिख आए हैं. अब प्रेक्षावानोंकों विचार करना चाहिए कि, इन पूर्वोक्त सृष्टिवादीयोंमेंसें सत्य कथन किसका है, और मिथ्या कथन किसका है ?

पूर्वपक्षः—जो तुमने सृष्टिविषयक मत लिखे हैं वे सर्वमतधारियोंकी कल्पना मिथ्या है, परंतु मनुस्मृति उपनिषद्वेदादिमें जो सृष्टिक्रम लिखा है, सो सर्व सत्य और माननीय है, अन्य सर्वमतावलंबियोंने अपने २ मतोंमें मिथ्या कल्पनामात्र लिखा है. विशेषतः वेदोंमें जो क्रम है, सो अधिकतर माननीय है, क्योंकि वेदोंमें जो कथन है, सो ब्रह्माजीका है.

उत्तरपक्षः—मनुस्मृत्यादिका सृष्टिक्रम यदि सत्य होवे, और युक्तिप्रमाणसे अबाधित होवे तो, ऐसा कौन प्रेक्षावान् है, जो तिसकों न माने ? परंतु हे प्यारे ! मनुस्मृत्यादिमें जो सृष्टिक्रम है, सोभी परस्परविरुद्ध है, और युक्तिप्रमाणसे बाधित है, विशेषतः वेदोंका और वेदोंमें जो कथन है तिससेही यह सिद्ध होता है कि, वेद ईश्वरकृत नहीं हैं, जो कि, आगे किंचिन्मात्र लिखेंगे. ॥

इति श्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे लोकत-
त्त्वनिर्णयांतर्गतसृष्टिवर्णनो नाम पंचमः स्तंभः ॥ ५ ॥

॥ अथ षष्ठस्तम्भारम्भः ॥

पंचमस्तंभमें लोकतत्त्वनिर्णयांतर्गत वेदस्मृत्याद्यनुसार संक्षेपरूप सृष्टिक्रम वर्णन करा, अथ षष्ठस्तंभमें कुछक विस्तारसें करते हैं. परं च इस हमारे लेखकों पक्षपात छोडके वाचक जन सूक्ष्मबुद्धिसें विचार करेंगे तो उनकों सत्यासत्य कथन यथार्थ विदित हो जावेगा; और जो अपने वंशपरंपरासें चली आई रूढीकाही पक्ष करेंगे, तब तो तिनकों

सत्य मोक्षमार्गकी प्राप्ति नहीं होवेगी.

अथ प्रथम मनुस्मृतिमें जैसे सृष्टिका क्रम लिखा है, सोही लिख दिखाते हैं.

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥

अप्रतर्क्यमिव ज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ५ ॥

ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ॥

महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६ ॥

योसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥

सर्वभूतमयोचिन्त्यः स एव स्वयमुद्भवौ ॥ ७ ॥

सोभिध्यायशरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥

अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥

तदण्डमभवद्वैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥

तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ ९ ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥

ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥

तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥

स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा ॥ १२ ॥

ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे ॥

मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् ॥ १३ ॥

उद्भवर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ॥

मनसश्चाप्यहंकारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥ १४ ॥

महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च ॥

विषयाणां ग्रहीतृणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥ १५ ॥

तेषां त्ववयवान् सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसाम् ॥
 सन्निवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥ १६ ॥
 यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट् ॥
 तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥ १७ ॥
 तदाविशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्मभिः ॥
 मनश्चावयवैः सूक्ष्मैःसर्वभूतकृदव्ययम् ॥ १८ ॥
 तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् ॥
 सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः संभवत्यव्ययाद्ययम् ॥ १९ ॥
 आद्याद्यस्य गुणं त्वेषामवाप्नोति परः परः ॥
 योयो यावतिथश्चैषां सस तावद्गुणः स्मृतः ॥ २० ॥
 सर्वेषां तु सनामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ॥
 वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ २१ ॥
 कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत् प्राणिनां प्रभुः ॥
 साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥ २२ ॥
 अभिवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मा सनातनम् ॥
 दुदोहं यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥ २३ ॥
 कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ॥
 सरितः सागरान् शैलान् समानि विषमाणि च ॥ २४ ॥
 तपो वाचं रतिं चैव कामं च क्रोधमेव च ॥
 सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः ॥ २५ ॥
 कर्मणां च विवेकार्थं धर्माधिर्मो व्यवेचयत् ॥
 द्वन्द्वैरयोजयच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥ २६ ॥
 अण्वयोमात्रा विनाशिन्यो दशार्द्धानां तु याः स्मृताः ॥
 ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं संभवत्यनुपूर्वशः ॥ २७ ॥

यं तु कर्मणि यस्मिन् स न्ययुङ्क्त प्रथम प्रभुः ॥
 स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः ॥ २८ ॥
 हिंसाहिंसे मृदुकूरे धर्माधर्मावृतानृते ॥
 यद्यस्य सोऽदधात् सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशेत् ॥ २९ ॥
 यथर्तुलिङ्गानृतवः स्वयमेवर्तुपर्यये ॥
 स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः ॥ ३० ॥
 लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ॥
 ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्तयत् ॥ ३१ ॥
 द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥
 अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः ॥ ३२ ॥
 तपस्तप्त्वाऽसृजयं तु स स्वयं पुरुषो विराट् ॥
 तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥
 अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ॥
 पतीन् प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥ ३४ ॥
 मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥
 प्रचेतसं वसिष्ठं च ऋगुं नारदमेव च ॥ ३५ ॥
 एते मनूस्तु सप्तान्यानसृजन् भूरितेजसः ॥
 देवान् देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥ ३६ ॥
 यक्षरक्षःपिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ॥
 नागान् सर्पान् सुपर्णांश्च पितॄणां च पृथग्गणान् ॥ ३७ ॥
 विद्युतोशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥
 उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च ॥ ३८ ॥
 किन्नरान् वानरान् मत्स्यान् विविधांश्च विहंगमान् ॥
 पशून् मृगान् मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः ॥ ३९ ॥

कृमिकीटपतङ्गांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम् ॥

सर्वे च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥४०॥

एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः॥

यथा कर्मतपोयोगात् सृष्टं स्थावरजंगमम्॥४१॥म०अ०१

व्याख्या—(इदं) यह जगत्, तममें (स्थित) लीन था, प्रलयकालमें सूक्ष्मरूपकरके प्रकृतिमें लीन था, प्रकृतिभी ब्रह्मात्मकरके (अव्याकृत) अलग नहीं थी, इसवास्तेही (अप्रज्ञातं) प्रत्यक्ष नहीं था, (अलक्षणं) अनुमानका विषयभी नहीं था, (अप्रतर्क्यं) तर्कयितुमशक्यं तदा वाचक स्थूल-शब्दके अभावसे इसवास्तेही अविज्ञेय था, अर्थापत्तिकेभी अगोचर था, इसवास्ते (प्रसुप्तमिव सर्वतः) सर्वओरसें सूतेकीतरें स्वकार्य करने असमर्थ था. ॥ ५ ॥ अथ क्या होता भया सो कहे हैं. तब प्रलयके अवसानानंतर स्वयंभू परमात्मा (अव्यक्त) बाह्यकरण अगोचर (इदं) यह महाभूत आकाशादिक आदिशब्दसें महदादिकोंको (व्यंजयन् अव्यक्तावस्थं) प्रथम सूक्ष्मरूपकरके रहेकों स्थूलरूपकरके प्रकाश करता हुआ, (वृत्तौजाः) सृष्टि रचनेका सामर्थ्य अव्याहत है जिसका, (तमोनुदः) प्रकृतिका प्रेरक ॥६॥ जो सो (अतीन्द्रियग्राह्य) ईश्वर सूक्ष्म बाह्येन्द्रियअगोचर (अव्यक्त) अवयवरहित (सनातन) नित्य (सर्वभूतमय) सर्वभूतात्मा इसवास्तेही (अचिंत्य) इतना है ऐसा न जाननेसें अचिंत्य है, सो परमात्माही आप महदादिकार्यरूपकरके प्रकट हुआ. ॥७॥ सो परमात्मा नानाविध प्रजा रचनेकी इच्छावाला ‘अभिध्यायापो जायंतां’ ऐसें अभिध्यानमात्रकरकेही (अप्) पाणी प्रथम उत्पन्न करता भया, तिस पाणीमें शक्तिरूपबीजकों आरोपित करता भया ॥८॥ सो बीज परमेश्वरकी इच्छासें सुवर्णसदृश अंडा होता भया, सूर्यसमान जिसकी प्रभा है, तिस अंडेमें (हिरण्यगर्भ) ब्रह्मा सर्वलोकोंका पितामह आपही उत्पन्न भया ॥ ९ ॥ पाणीका नाम नारा है, क्योंकि, पाणी जो है सो नरनाम परमात्मा ईश्वरके अपत्य—पुत्र है, सोही (नारा) पाणी इस ब्रह्मरूप परमात्माका (अयन) आश्रय है, इसवास्ते परमात्माकों नारायण

कहते हैं ॥ १० ॥ जो सो परमात्मारूप कारण (अव्यक्त) बाह्येन्द्रियोंके अ-
 गोचर (नित्य) उत्पत्तिविनाशरहित सत् असत् आत्मक तिसने जो उत्पन्न
 करा पुरुष, तिसकों लोकमें ब्रह्मा कहते हैं. ॥ ११ ॥ तिस अंडेमें ब्रह्मा
 ब्रह्ममानवाले वर्षतक रह करके अपने ध्यान करके तिस अंडेके दो भाग
 करता भया. ॥ १२ ॥ तिन दोनों खंडोंसें—भागोंसें—ऊपरले भागसें देव-
 लोक, और नीचले भागसें भूलोक, और दोनों भागोंके बीचमें आकाश
 विदिशासहित आठ दिशा और पाणीका स्थिरस्थान समुद्र इनकों रचता
 भया. ॥ १३ ॥ ब्रह्मा परमात्माके पाससें तिसरूपकरके मनका उद्धार
 करता भया, युगपत् ज्ञान अनुत्पत्तिलक्षणसें मन सत् है, और अप्रत्यक्ष
 होनेसें असत् है, मनके पहिले अहंकारतत्त्व अहं ऐसा अभिमाननामक
 कार्ययुक्त ईश्वर स्वकार्यरक्षणसमर्थकों उत्पन्न करता भया. ॥ १४ ॥
 महत्नामक जो तत्त्व है तिसकों अहंकारसें पहिले परमात्मासेंही उद्धार
 करता भया, और आत्माकों उपकार करनेवाली तीनो गुण सत्त्व रजः
 तमःयुक्त विषयोंके ग्रहणहारि पांच इंद्रियोंको क्रमकरके उत्पन्न करता भया
 और च शब्दसें पायुआदि पांच कर्मेन्द्रिय और पांच तन्मात्रको उत्पन्न करता
 भया. ॥ १५ ॥ तिन पूर्वोक्त अहंकार और पांच तन्मात्र छहोंके सूक्ष्म जे अव-
 यव है तिन अवयवोंको आत्ममात्रविषे पूर्वोक्त छहोंके अपने विकारोंमें जोड-
 करके मनुष्य तिर्यक्स्थावरादि सर्वभूतोंको परमात्मा रचता भया, तिनमें त-
 न्मात्रोंका विकार पांच महाभूत, और अहंकारका इंद्रियां, पृथिवीआदि-
 भूतोंविषे शरीररूपकरके परिणत ऐसैं भूतोंविषे तन्मात्र और अहंका-
 रकी योजना करके संपूर्ण कार्यजातका निर्माण करा, इसीवास्तेही
 पूर्वोक्त ६, (अमितौजस) अनंतकार्यके निर्माण करनेसें अतिवीर्यशाली है ॥ १६ ॥
 जिसवास्ते (मूर्ति) शरीर है, तिसके संपादक अवयव सूक्ष्म तन्मात्र अहं-
 काररूप षट् है, प्रकृतिसहित तिस ब्रह्मके यह जे आगे कहेंगे वे भूत
 और इंद्रिय पूर्व कहे हुए कार्यपणेकरके आश्रय करते हैं, तन्मात्रोंसें भू-
 तोंकी उत्पत्ति होनेसें और अहंकारसें इंद्रियोंकी उत्पत्ति होनेसें, तिस-
 वास्ते तिस ब्रह्मकी मूर्ति (स्वभाव) तिनको तैसैं परिणतोंको इंद्रियादिशा-

लिनीको लोक शरीर ऐसा कहते हैं, छहोंके आश्रयणसें शरीर ऐसे निर्वचनसें पूर्वोक्त उत्पत्तिक्रमही दृढ करा. ॥ १७ ॥ सो ब्रह्म शब्दादि-पंचतन्मात्रात्माकरके अवस्थित महाभूत जे है, आकाशादिक (आवि-शंति) तिनसें उत्पन्न होता है, कर्मोंकरकेसहित स्वकार्योंकरके तहां आकाशका अवकाशदानकर्म, वायुका व्यूहनं विन्यासरूप, तेजका पाक, पाणीका पिंडीकरणरूप, पृथिवीका धारणकरणा, अहंकारा-त्मकरके अवस्थित ब्रह्म मनअहंकारसें उत्पन्न होता है, अवयवों-करके अपने कार्योंकरके शुभाशुभ संकल्प सुखदुःखादिरूपकरके सूक्ष्म बाहिरइंद्रियोंके अगोचर होनेसें सर्वभूतोंका करा सर्वोत्पत्ति-निमित्त मनोजन्य शुभाशुभ कर्मोंसें उत्पन्न होनेसें जगत्को (अव्यय) अविनाशी है ॥ १८ ॥ तिन पूर्वोक्त प्रकृतियोंको महत् अहंकार तन्मात्राको, सप्त संख्याको, पुरुषसें अपनेको उत्पन्न होनेसें तद्वृत्तिग्राह्य होनेसें 'पुरुषाणां महौजसां' स्वकार्य संपादन करनेसें वीर्यवंतोंको सूक्ष्म जे मूर्तिमात्र शरीरसंपादक भाग है तिनसें यह जगत् नश्वर होता है, अनश्वरसें जो कार्य है, सो विनाशी है, स्वकारणमें लय होता है, और कारण तो कार्यकी अपेक्षा थिर है, परमकारण तो ब्रह्म नित्य उपासना करनेयोग्य है, यह दिखाते हुए यह अनुवाद है. ॥ १९ ॥ तिन भूतोंको आकाशादिक्रमकरके उत्पत्तिक्रम है, शब्दादिगुणवत्ता कहेंगे तहां आदिके (आकाशादिके) गुण शब्दा-दिक है वाय्वादि परस्पर प्राप्त होते हैं, यही बात स्पष्ट करते हैं, 'योयइति' इनके बीचमेसें जो जितनोंकरके पूर्ण हैं, सो यावत्तिथ कहिए हैं, 'सप्तद्वितीयादिः' दूसरा दो गुणवाला, तीसरा तीन गुणवाला, ऐसें मनुआदिकोंने कहा है. इस कथनसें यह कहा, आकाशका शब्दगुण, वायुका शब्दस्पर्श, तेजका शब्दस्पर्शरूप, अण्का शब्दस्पर्शरूपरस, भूमिका शब्दस्पर्शरूपरसगंध. ॥ २० ॥ सो परमात्मा हिरण्यगर्भरूपकरके अवस्थित हुआ सर्ववस्तुयोंके नाम, गोजा-तिका गो, अश्वजातिका अश्व, कर्म, ब्राह्मणको पठन करना, क्षत्रियको प्रजा रक्षादि, पृथक् २ जिसके पूर्वकल्पमें जे जे नाम कर्म थे, वे सृष्टिकी आदिमें वेद-शब्दोंसें जान कर निर्माण करता भया ॥ २१ ॥ सो ब्रह्मा देवतायोंके गणसमूहको

सृजन करता भया, प्राणीयोंको इंद्रादिकोंके कर्म आत्मस्वभाव है जिनका तिनकों, और पाषाणादिकोंको, और देवतायोंके साध्योंको, देवविशेषोंके समूह, यज्ञ ज्योतिष्टोमादिकोंको, कल्पांतरमेंभी अनुमीयमान होनेसे नित्य है इनकों सृजन करता भया ॥ २२ ॥ ब्रह्मा, ऋग्, यजुः, साम, नामक तीनवेदोंको आग्नि, वायु, रविसें आकर्षण करता भया; सनातन नित्य वेद अपौरुषेय है, ऐसें मनुको सम्मत है, यज्ञकी सिद्धिकेवास्ते दोहन करता भया; ॥ २३ ॥ आदित्यादिक्रिया, प्रचयरूपकाल, कालविभक्ति मास ऋतु अयनादि, नक्षत्र कृत्तिकादि ग्रह सूर्यादि नदीयां समुद्रादिकों, पर्वतोंको समविषम ऊंचनीच स्थानोंको रचता भया ॥ २४ ॥ तपः—प्राजापत्यादि, वाचं—वाणी, रति—चित्तका परितोष, काम—इच्छा, क्रोध इनकों रचता भया; येह प्रजा वक्ष्यमाण देवादिकोंकी रचना करनेकी इच्छा करता भया; ॥ २५ ॥ कर्मणांचेति—धर्मयज्ञादिक, सो कर्तव्य है; अधर्म—ब्रह्मादिवध, सो न करना; ऐसें कर्मोंके विभागतांइ धर्माधर्मका विवेचन करता भया, पृथक् करके कहता भया; धर्मका फल सुख, अधर्मका फल दुःख, धर्माधर्मके फल भूत दोनों परस्पर विरुद्धोंकरके सुखदुःखादिकोंकरके इस प्रजाकों योजन करता भया; आदिग्रहणसें काम, क्रोध, राग, द्वेष, क्षुधा, पिपासा, शोक मोहादिकरके युक्त करता भया ॥ २६ ॥ दशाद्धानां पंचमहाभूतोंके जे सूक्ष्म पंचतन्मात्ररूप विनाशी पांच महाभूतरूपपणे परिणामी जे हैं, तिनोके साथ कथन करा, और करेंगे. ऐसा यह जगत् उत्पन्न होता है. अनुक्रमकरके सूक्ष्मसें स्थूल, स्थूलसें स्थूलतर, इसकरके सर्वशक्तिसें ब्रह्मकी मानस सृष्टि कदाचित् तत्त्वनिरपेक्षाही होवेगी, ऐसी शंकाको दूर करता हुआ तत् द्वारकरकेही यह सृष्टि ऐसा मध्यमे फेर स्मरण करता भया. ॥ २७ ॥ सो प्रजापति जिसजातिविशेषकों व्याघ्रादिकोंको, जिस क्रिया हरिणादिमारणारूपमें, सृष्टिकी आदिमें जोड़ता भया, सो जातिविशेष बारंवार सृजन करता स्वकर्मोंके वश करके तैसाही आचरण करते हुए. इस कहनेकरके प्राणीयोंके कर्मानुसार प्रजापतिने उत्तमाधम जातियां रची है, नतु रागद्वेषाधीनसें. ॥ २८ ॥ इसकाही विस्तार करते हैं, (हिंस्र कर्म) सिंहादिकोंको

हाथीमारणादिक, (अहिंस) हरिणादिक, (मृदु) दयाप्रधान विप्रादि, (क्रूर) क्षत्रियादिकोंको, (धर्म) जैसे ब्रह्मचर्यादि, (अधर्म) जैसे मांसमैथुनादि सेवन करना, सत्य बोलना, असत्य बोलना, १ ऋषिकी आदिमें प्रजापति जिसमें जो कर्म स्थापन करता भया, सो का पीछेसे अदृष्टवशसे स्वयमेवही प्राप्त होता भया. ॥ २९ ॥ इस अर्थमें ऋषांत कहते हैं, जैसे वसंतादिऋतुओंमें ऋतुके चिन्ह आम्रमंजरीआदि स्वकार्यावसरमें आपही प्राप्त होते हैं, तैसेही जीवोंको हिंसादि कर्म जानने. ॥ ३० ॥ भूलोकोंके बहुतवास्ते मुख, बाहु, ऊरु, पगोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंको यथाक्रम निर्मित करता भया. ॥ ३१ ॥ सो ब्रह्मा निज देहके दो खंड करके एक खंडका पुरुष बना, और दूसरे खंडकी स्त्री बनी, तिस स्त्रीविषे मैथुन धर्म करनेसे विराट्नामा पुरुषको निर्मित करता भया. ॥ ३२ ॥ सो विराट् तपकरके जो निर्माण करता भया, तिस वस्तुको मुझको बतलाउं; हे द्विजोत्तम! इस सर्वजगत्के रचनेवालेको. ॥ ३३ ॥ मैं प्रजाको सृजन करनेकी इच्छा करता था सो सुदुश्चर तप तपके दश प्रजापतियोंको प्रथम सृजन करता भया. क्योंकि, तिनोंकरके प्रजा सृजमान होनेसे. ॥ ३४ ॥ मरीचि १, अत्रि २, अंगिरस ३, पुलस्त्य ४, पुलह ५, ऋतु ६, प्रचेतस ७, वसिष्ठ ८, भृगु ९, और नारद १०. ॥ ३५ ॥ येह मरीचिआदि दश बड़े तेजवाले अन्य सप्त परिमाणरहित मनुष्योंको देवताओंको ब्रह्मके सृजन करे हुए देवनिवास स्थानक स्वर्गादिकोंको और महाऋषियोंको सृजन करता भया, यह मनुशब्द अधिकारवाची है, इसवास्ते चौदह मन्वंतरोंमें जिसको जहां सर्गादिका अधिकार है, सो इस मन्वंतरमें स्वायंभुव स्वरोचिषानामोंकरके मनु कहा जाता है. ॥ ३६ ॥ यक्ष, वैश्रवण, राक्षस, तिसके अनुचर रावणादि, पिशाच, गंधर्व, अप्सरस, असुर, नाग, सर्प, गरुड, पित्रोंको इनको पृथक् २ रचता भया. ॥ ३७ ॥ विजली, अशनि, मेघ, इंद्रधनुः, उल्का सप्रकाशरेखा, भूमि अंतरिक्षमें, निर्घात उत्पातध्वनि, केतू तारा, अन्य ज्योतिषि ध्रुव अस्तादि नाना प्रकारके रचता भया. ॥ ३८ ॥ किन्नर, वांदर, मत्स्य, नानाप्रकारके पक्षियोंको, पशु मृग मनुष्योंको, व्याल-

सिंहादि दो है दांतकी पंक्ति हेठोपरि जिनके तिनकों रचता भया. ॥३९॥
कृमी, कीट, पतंग, यूका, माकड़, मक्षिका, दंश, मशक, स्थावर वृक्षल-
तादिभेद भिन्न विविधप्रकारके रचता भया. ॥ ४० ॥ इन मरीचि आदि-
कोंने यह सर्व स्थावर जंगम सृजन करा, (यथाकर्म) जिसजीवकेजैसे कर्म
थे तिस अनुसार देव मनुष्य तिर्यगादिमें उत्पन्न करे, मेरी आज्ञासें, तप
योगसें बड़ा तप करके सर्व ऐश्वर्य तपके अधीन है, यह दिखलाया. ॥४१॥
मनु० अ० १ ॥

[समीक्षा] वेदोंका कथन जो सृष्टिविषयक है, सो पाठकगणोंके
वाचनार्थे संक्षेपसें प्रायः श्रुतियांसहित लिखेंगे, इहां मनुस्मृतिके कथन-
का किंचित् स्वरूप लिखते हैं, क्योंकि मनुस्मृतिभी वेदतुल्य, वा वेदों-
सेंभी अधिक मानी जाती है; उपनिषद् जो वेदका सार कहनेमें आता है
तिनकी मूलश्रुतिमें मनुकी प्रशंसा लिखी है. मनुस्मृतिके प्रथम अध्याय-
के ५-६-७ श्लोकोंमें जो सृष्टिसंबंधि कथन है, सो प्रायः ऋग्वेदकी
प्रलयादिके समानही है, इसवास्ते आठमे श्लोकसें विचार करते हैं.

सो परमात्मा नानाविध प्रजा रचनेकी इच्छावंत हुआथका ध्यानसें
' आपो जायन्तां ' ऐसे ध्यानमात्रसें पहिलां पाणीही रचता भया, पाणी
सृजनेसें पहिलां ब्रह्म अव्याकृत था, अव्याकृत शब्दकरके पंचभूत ५,
पंच बुद्धीद्रिय ५, पंच कर्मेन्द्रिय ५, प्राण १, मन १, कर्म १, अविद्या १,
वासना १, ये सर्व सूक्ष्मरूपकरके शक्तिरूपकरके ब्रह्मकेसाथ रहे, तिसका
नाम अव्याकृत है. ॥ इति मनुस्मृतिटीकायां. ॥ इस पूर्वोक्त कथनसें ता,
सांख्यमतवालोंकी मानी प्रकृति सिद्ध होती है, और मनुने सृष्टिका
क्रमभी महदहंकारादिक्रमसें कहनेसें प्रायः सांख्यमतकी प्रक्रियाही अं-
गीकार करी मालुम होती है; इस्सें सांख्यशास्त्र मनुसें पहिलें सिद्ध
होता है. जब सूक्ष्मरूपसें प्रकृति, ब्रह्मसें भेदाभेदरूपसें प्रलयदशामें थी,
तब तो अद्वैतमत निर्मूल हुआ, और ब्रह्मके साथ माया, वा, प्रकृति भेदा-
भेदरूपसें माननी यह युक्तिविरुद्ध है. क्योंकि, जेकर भेद है तो कथं
अभेद? और जेकर अभेद है तो, कथं भेद? यह दोनो पक्ष एक अधि-

करणमें कैसे रह सके हैं? यह कहना तो ऐसा हुआ कि, जैसे कोई उन्मत्त कहता है, मेरी माता तो है, परं बंध्या है. इस पूर्वोक्त कथनमें मनुजीने, तथा ऋग्वेदके कर्त्ताने, छिपकरके स्याद्वादका किंचित् शरण लिया मालुम होता है. क्योंकि, स्याद्वादविना कदापि भेदाभेद पक्ष सिद्ध नहीं होता है. स्याद्वाद तो परमेश्वरकी सर्वपदार्थोंपर मोहर छाप लगी हुई है, जिसवस्तु उपर स्याद्वादरूप मोहर छाप नहीं, सो वस्तु खरगृंगवत् एकांत असत् है, 'स्याद्भेदः स्यादभेदः मलयुक्तसुवर्णवत्' जैसे सोना और मल अव्याकृत, अर्थात् विभागरहित एक पिंडीरूप है, परंतु सुवर्णकी विवक्षा करीए तब तो कथंचिद् भेद है, सर्वथा नहीं; जेकर सर्वथाही भेदविवक्षा करीए तब तो, सुवर्णकी पिंडीमें मल न होना चाहिये. और जेकर सुवर्ण और मलका एकांत अभेदही मानीए तब तो, सुवर्णकी पिंडीमें सर्वथा मल न होना चाहिये, किंतु एकांत सुवर्णही होगा. इसवास्ते कथंचित् भेदाभेद पक्ष बनता है, परंतु स्यात्पदके विना केवल भेदाभेद पक्ष नहीं सिद्ध होता है; और जहां कथंचित् भेदाभेद पक्ष माना जावेगा, तहां अवश्यमेव दो वस्तुओं माननी पड़ेगी; क्षीरनीरवत्. इसवास्ते अव्याकृत ब्रह्म कथंचित् द्वैत, कथंचित् अद्वैत मानना पड़ेगा; इसवास्ते वेदांतियोंका एकांत अद्वैतपक्ष तीनकालमेंभी सिद्ध नहीं हो सक्ता है. और जडकार्यका उपादान कारणभी जड, और चैतन्यकार्यका उपादनकारण चैतन्यही सिद्ध होवेगा; इसवास्ते एक चैतन्य ब्रह्म, जडचैतन्यरूप जगत्का कदापि उपादानकारण सिद्ध नहीं हो सक्ता है; इसवास्ते श्रुतिस्मृत्यादिकोंमें जो लिखा है कि, मैं एकही जडचैतन्य अनेकरूप हो जाऊं, यह प्रमाणबाधित है. और ब्रह्मकों जो जगत् रचनेकी इच्छा हुई, यह भी कथन मिथ्या है, क्योंकि, शरीरकेविना मन नहीं, और मनविना इच्छा नहीं, यह प्रमाणसिद्ध है; उपरभी लिख आए हैं.

अंडा रचा, यह कथन, ऋग्वेदयजुर्वेदकी श्रुतिसें, और गोपथब्राह्मणादिसें विरुद्ध है; क्योंकि, ऋग्वेदमें अंडा नहीं कहा, यजुर्वेद और गोपथब्राह्मणमें ब्रह्माकी उत्पत्ति कमलसें कही है. तिस अंडेमें परमात्मा

आपही ब्रह्मा होता भया, अन्य जगे वेदमें ब्रह्माको अज कहा है, यह परस्परविरुद्ध है. तिस अंडेमें ब्रह्माजीने ब्रह्माके एक वर्षतक वास करा, अंडेमेंही रहा, यह कथन मनुकी टीकामें है. ब्रह्माके एक वर्षके मनुष्योंके ३१,१०,४०,००,००,००० वर्ष होवे हैं. तथाहि. ॥

१ एक वर्ष देवताका, ३६० वर्ष मनुष्यके । देवताके १२००० वर्षका एक युग देवताका। जिसमें मनुष्यके चतुर्युग—वर्ष—४३,२०,०००। देवताके २००० युगका एक ब्रह्माका अहोरात्र—८,६४,००,००,००० मनुष्यवर्ष। ३६० दिन—का एक वर्ष, जिसमें मनुष्यके वर्ष—३१,१०,४०,००,००,०००। इतने वर्षतक ब्रह्माजी तिस अंडेमें रहे.

इतने वर्षतक अंडेमें रहनेका क्या कारण था? क्या ब्रह्माजी तिस अंडेसे निकलनेका रस्ता मार्ग ढूंढते रहे? किंवा बौदल गए? कुछ सूज नहीं पड़ती थी? किंवा तिस अंडेके मापनेमें इतने वर्ष लग गए? किंवा अब मैं क्या करूं ऐसी चिंतामें इतने वर्ष व्यतीत हो गए? किंवा उत्पत्तिके दुःखसे इतने वर्षतक विश्राम करा? किंवा जो वेदमें लिखा है, ब्रह्माजीने तप करा अर्थात् इतने वर्षोंतक सृष्टि रचनेकी तजवीज करते रहे? इन सर्व पक्षोंके माननेमें दूषण आते हैं. क्योंकि, सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ निराबाध परमेश्वरमें पूर्वोक्त कोई पक्षभी सिद्ध नहीं हो सकता है, इसवास्ते परमेश्वर ब्रह्माका अंडेमें रहना अज्ञोंकी कल्पनामात्र है.

फेर लिखा है, ब्रह्माजीने ध्यानसे तिस अंडेके दो भाग करे, यह भी असत्य है. क्योंकि, ध्यान तो वस्तुके स्वरूपका बोधक है, ज्ञानांश होनेसे; इसवास्ते ज्ञानसे अंडेके दो टुकड़े नहीं हो सकते हैं. तिन दो टुकड़ोंसे एक टुकड़ेका स्वर्गलोक, और हेठले दूसरे खंडसे भूमि रचता हुआ, इन दोनोंके बीचमें आकाश दिशां और दिशांके अंतराल और पाणीका स्थान समुद्र रचता हुआ, यह कथन युक्तिविरुद्ध तो हैही, परंतु ऋग्वेदसेंभी विरुद्ध है; क्योंकि, ऋग्वेदमें प्रजापतिके शिरसें स्वर्ग, पगोंसे भूमि, कानसे दिशा, और नाभिसें आकाश, उत्पन्न हुए लिखा है.

चतुर्दश(१४) श्लोकसें लेकर ३१ श्लोकपर्यंत मनुजीने जो सृष्टिक्रम लिखा

है, सो सर्व स्वकपोलकल्पित, और प्रमाणबाधित है. क्योंकि, किसीजगें चैतन्य उपादानकारणसें जडकार्यकी उत्पत्ति लिखी है, और किसीजगें जड उपादनकारणसें चैतन्य कार्यकी उत्पत्ति लिख मारी है, और किसी जगें रूपीसें अरूपीकी, और अरूपीसें रूपीकी उत्पत्ति घसीट मारी है.

और आपही जिविरूप धारण करा, हिंसा, मृषावाद, चोरी, मैथुन, मांसभक्षणादि, येह सर्व जीवोंकों जीवोंके कर्मानुसार लगा दीए; आपही अपना सत्यानाश कर लिया. सृष्टि क्या रची, एक मोटी आपदाका जं-जाल अपने आप, अपने गलेमें डाल लिया ! जेकर सृष्टि न रचता, और प्रलयदशामें सुखसें सूता रहता तो अच्छा था!!!

पूर्वपक्षः—यदि सृष्टि न रचता तो, जीवोंकों कर्मोंका फल कैसें भुक्ताता ?

उत्तरपक्षः—इसका समाधान ऋग्वेदके सृष्टिक्रमकी समीक्षामें करेंगे.

बत्तीसमें श्लोकसें लिखा है कि, तिस ब्रह्माने अपनी देहके दो भाग करे, एक भागका पुरुष बना, और दुसरे भागकी स्त्री बनी, तिस स्त्रीकेसाथ मैथुनधर्म करा, तिस्सें विराट् उत्पन्न भया, तिस विराट्ने तप करा, तप करके मनुकों अर्थात् मेरेकों उत्पन्न करा, कैसा हूं मैं मनु ? सर्व इस ज-गत्का रचनेवाला, ऐसें मुझ मनुकों हे द्विजोत्तम ! तुम जानो; पीछे मैं प्र-जाके सृजनेकी इच्छा करते हुएने, अतिशयकरके दुश्चर तप तपीने मैनें पहिलां दश प्रजापतियोंकों सृजन करे, जिनके नामऊपर लिखे हैं, इनके सिवाय सात मनुयोंकों सृजन करे इत्यादि.

वाचकवर्गों ! जरा विचार करके देखो कि, जो कथन ऋग्वेदसें और युक्तिसें विरुद्ध है, सो मिथ्या वागूजाल मनुजीने रच कर अनेक भव्यज-नोंकों फसाये हैं. देखो ! ब्रह्माजीने आपही स्त्रीपुरुष बन कर मैथुन करा, तिस्सें विराट्नामा पुरुष उत्पन्न भया, यह कथन कैसा लज्जनीय है कि, सर्वजगत्का पितामहभी मैथुन करता है ? और विना स्त्रीके विराट्नामा पुत्र न उत्पन्न कर सका, फेर तिसकों सर्वशक्तिमान् मानना, यह कैसी अ-ज्ञानता है ? तथा विराट्ने मनुकों विनास्त्रीके कैसें उत्पन्न करा ? और

फेर मनुजीनें, विनास्त्रीके दश प्रजापति प्रजा सृजनेवाले ऋषियोंको और सात मनुयोंको कैसें उत्पन्न करे ? जेकर विनास्त्रीके संतानकी उत्पत्ति हो जावे तो, ब्रह्माजीने स्त्री बन कर काहेकों तिसकेसाथ मैथुन करके विराट् उत्पन्न करा ? ऋग्वेदके भाष्यकारने तो, विराट्का अर्थ जो यह ब्रह्मांड है सो करा है, परंतु ब्रह्माजीने तो अंडेसेही ब्रह्मांड रचा लिखा है, तो फेर यह विराट्नामा बीचमें कौन उत्पन्न हो गया, जिसने मनुकों उत्पन्न करा ? अब अज्ञानियोंके कथनकी कहांतक समीक्षा करीए, जिस कथनका प्रमाणयुक्तिसे विचार करते हैं, सोही मिथ्या स्वकपोलकल्पित सिद्ध होता है; जैसा मनुका कथन प्रमाणयुक्तिसे बाधित है, ऐसाही सर्वस्मृति पुराणोंका जान लेना. इत्यलं बहुप्रयासेन ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रा-
सादग्रन्थेमनुस्मृतिसृष्टिक्रमवर्णनो नाम षष्ठः स्तम्भः ॥ ६ ॥

॥ अथसप्तमस्तम्भारंभः ॥

षष्ठस्तम्भमें मनुस्मृतिका सृष्टिक्रम लिखा, अथ सप्तमस्तम्भमें पूर्वप्रति-
ज्ञात ऋग्वेदादिका सृष्टिक्रम लिखते हैं.

नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ॥

किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥१॥

न । असत् । आसीत् । नोइति । सत् । आसीत् । तदानीम् । न । आ-
सीत् । रजः । नोइति । विऽउंम । परः । यत् । किम् । आ । अवरीवरिति ।
कुह । कस्य । शर्मन् । अम्भः । किम् । आसीत् । गहनम् । गभीरम् ॥१॥

नमृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्ना आसीत्प्रकेतः ॥

आनीदवातं स्वध्या तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं च नास ॥२॥

न । मृत्युः । आसीत् । अमृतम् । न । तर्हि । न । रात्र्याः । अहः ।
आसीत् । प्रऽकेतः । आनीत् । अवातम् । स्वधया । तत् । एकम् । तस्मात् ।
ह । अन्यत् । न । परः । किम् । चन । आसं ॥ २ ॥

तम आसीत्तमसा गूढमग्रे प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।

तुच्छयेनाभवपि हितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥ ३ ॥

तमः । आसीत् । तमसा । गूढम् । अग्रे । अग्रऽकेतम् । सलिलम् । सर्वम् ।
आः । इदम् । तुच्छयेन । आभु । अपिऽहितम् । यत् । आसीत् । तपसः ।
तत् । महिना । अजायत । एकम् ॥ ३ ॥

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ॥

सतो बंधुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

कामः । तत् । अग्रे । सम् । अवर्तत । अधि । मनसः । रेतः । प्रथमम् ।
यत् । आसीत् । सतः । बन्धुम् । असति । निः । अविन्दन् । हृदि । प्रति-
ऽङ्ग्य । कवयः । मनीषा ॥ ४ ॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीद्दुपरिस्विदासीत् ॥

रेतोधा आसन्महिमानं आसन्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥

तिरश्चीनः । विस्तृतः । रश्मिः । एषाम् । अधः । खित् । आसीत् ।
उपरि । खित् । आसीत् । रेतोधाः । आसन् । महिमानः । आसन् ।
स्वधा । अवस्तात् । प्रयतिः । परस्तात् ॥ ५ ॥

को अद्वा वेदं क इह प्रवोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः॥

अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेदं यत आबभूव ॥६॥

कः । अद्धा । वेद । कः । इह । प्र । वोचत् । कुतः । आऽजाता । कुतः । इयम् ।
विऽसृष्टिः । अर्वाक् । देवाः । अस्य । विऽसर्जनेन । अथ । कः । वेद । यतः ।
आऽब्रूव ॥६॥

इयं विसृष्टिर्यत आब्रूव यदि वा दधे यदि वा न ।

यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्गवेद यदि वा न वेद ॥७॥

इयम् । विऽसृष्टिः । यतः । आऽब्रूव । यदि । वा । दधे । यदि । वा ।
न । यः । अस्य । अधिऽअक्षः । परमे । विऽओमन् । सः । अङ्ग । वेद ।
यदि । वा । न । वेद ॥७॥ ऋ० अ० ८ अ० ७ व० १७ मं० १० अ० ११ सू० १२९

भाषार्थः—‘तपसस्तन्महिना जायतैकम् इत्यादि’ करके आगे सृष्टि प्रति-
पादन करेंगे, अब तिसकी पहिली अवस्था, (निरस्त) दूर करी है. समस्त
प्रपंचरूप, जो प्रलयअवस्था, सो निरूपण करिये है. (तदानीम्) प्रल-
यदशामें अवस्थित रहा हुआ, जो इस जगत्का मूलकारण, सो (नासदा-
सीत्) असत्, शशेके शृंगवत् निरुपाख्य नहीं था, क्योंकि तैसैं कारणसैं
इस सत् रूप जगत्की उत्पत्ति कैसे संभवे? तथा (नोसत्) सत् नहीं
(आसीत्) था, आत्मवत् सत्त्व कहनेकरके भी निर्वाच्य था; यद्यपि सत्
असत् आत्मक प्रत्येक विलक्षण है, तोभी भावाभावोंको साथ रहनेकाभी
संभव नहीं है, तो तिनका तादात्म्य कहांसैं होवे? इसवास्ते उभय विल-
क्षण निर्वाच्यही था, यह तात्पर्यार्थ है. ननु, ऐसा वितर्कमें पद है, ‘नोस-
दिति’ इसकरके पारमार्थिक सत्त्वका निषेध है तो, आत्माकों भी अनिर्वा-
च्यत्वका प्रसंग होवेगा, जेकर कहोगे ऐसैं नहीं, क्योंकि, ‘आनीदवातम्’
इसपदकरके तिसका सत्त्व आगे कहेंगे, इसवास्ते परिशेषसैं मायाकाही
सत्त्व इहां निषेध करते हैं. ऐसैं मान्याभी ‘तदानीं’ इस विशेषणकों
आनर्थक्यपणा होवेगा; क्योंकि, व्यवहारदशामें तिस मायाको पारमार्थि-
कसत्त्व होनेके अभावसैं. अथ जेकर व्यवहारिक सत्त्वकों तिस अवसरमेंभी

व्यवहारिकसत्ता पृथिवी आदिक भावोंकी तदापि विद्यमान होनेसे, कैसे नोसत् ऐसा निषेध हो सक्ता है? ऐसी शंकाका उत्तर कहते हैं (नासी-द्रजः) इत्यादि । “ लोकारजांस्युच्यन्तइतियास्कः ” । इहां सामान्य अपेक्षाकरके एकवचन है, (व्योमोवक्ष्यमाणत्वात्) व्योमकों वक्ष्यमाण होनेसे, तिस व्योमका हेठला भाग पातालादि पृथिवी अंततक (नासीत्) नहीं थे इत्यर्थः । (व्योम) अंतरिक्ष, सो भी (नो) नहीं था (परः) व्योमसें परे ऊपर देशमें द्युलोकादि सत्यलोकांततक (यत्) जो है, सो भी नहीं था; इस कहनेकरके चतुर्दशभुवनसंयुक्त ब्रह्मांड भी निषेध करा. अथ तदावरकत्वकरके पुराणोंमें जे प्रसिद्ध है आकाशादिभूत, तिनका अवस्थान-रहनेका प्रदेश, और तिसके आवरणका निमित्त आक्षेप मुखकरके क्रमकरके निषेध करते हैं. (किमावरीवरिति) क्या आवरणयोग्यतत्त्व आवरकभूतजात (आवरीवः) अत्यंत आवरण करे? आवार्यके अभावसें, तदा आवरकभी नहीं था इत्यर्थः । ‘यद्वा किम् इति प्रथमा विभक्तिः,’ क्या तत्त्व आवरक आवरण करे? आवार्यके अभावसें, आव्रियमाणकीतरें; सो भी स्वरूपकरके नहीं था इत्यर्थः । आवरण करे सो तत्त्व (कुह) किस स्थानमें रहके आवरण करे? आधारभूत तैसा देश स्थान भी नहीं था (कस्य शर्मन्) किसका भोक्ता जीवके सुखदुःखके साक्षात्कारलक्षणमें, वा निमित्तभूतके हुआ थका तिस आवरकत्वकों आवरण करे? जीवोंके उपभोगवास्तेही सृष्टि है तिस सृष्टिके हुआं थकांही ब्रह्मांडकों भूतोंकरके आवरण होवे; परंतु प्रलयदशामें भोगनेवाले जीवरूप उपाधिके प्रविलीन होनेसें, किसीका कोइ भी भोक्ता संभव नहीं था; ऐसें आवरणरूप निमित्तके अभावसें सो नहीं घटता है. इस कहनेकरके भोग्यप्रपंचकीतरें भोक्तृप्रपंच भी तिस अवसरमें नहीं था; यद्यपि सावरण ब्रह्मांडका निषेध करनेसें तिसके अंतर्गत अप्सत्त्वकाभी निराकरण करा, तो भी ‘ आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् ’ इत्यादिश्रुतिकरके कोइक पाणीके सद्भावकी आशंका करे तिसप्रति कहते हैं; (अंभः किमासीदिति) क्या (गहनम्) दुःख जिसमें प्रवेश होवे (गभीरम्) और अति अगाध ऐसा पाणी था? सो भी नहीं था. ‘ आपो वा इदमग्रे ’

इत्यादि जो श्रुति है, सो अवांतर प्रलयके स्वरूपकथनमें है; इहां तौ महा-प्रलयके स्वरूपका कथन है, इसवास्ते निरुपयोगी है. ॥ १ ॥

मृत्यु भी नहीं था, अमरणपणा भी नहीं था, 'तर्हि तस्मिन् प्रतिहारसमये' तिस प्रतिहारसमयमें रात्रीदिनका(प्रकेतः) प्रज्ञान भी नहीं था, तिनके हेतुभूत सूर्यचंद्रमाके अभावसे; (आनीदवातं) एक शुद्ध ब्रह्मही था, (स्वधया) मायाकरके विभागरहित था, तस्मात् पूर्वोक्त मायासहित ब्रह्मसे विना, अन्य कोई भी वस्तुभूत भूतकार्यरूप नहीं था. यह वर्त्तमान जगत् भी नहीं था. ॥ २ ॥

(तमसागूढमग्रे) सृष्टिसें पहिले प्रलयदशामें भूतभौतिक सर्व जगत् (तमसा गूढम्) जैसें रात्रिसंबंधि तमः सर्वपदार्थोंको आवरण करता है, तैसें आत्मतत्त्वके आवारक होनेसें माया अपरनाम भावरूप अज्ञान इहां तमः कहते हैं, तिस तमःकरके (निगूढं—संवृतं) नाम ढांपा हुआ था; कारणभूत मायाकरके यद्यपि जगत् था, तो भी (अप्रकेतम्—अप्रज्ञायमानम्) प्रतीत नहीं था, (सलिलम्) पाणीकीतरें; जैसें पाणी और दूध अविभागापन्न है, ऐसें माया और ब्रह्म अविभागापन्न थे (तुच्छेन) तुच्छ कल्पनाकरके सत् असत्सें विलक्षण होनेसें भावरूप अज्ञानकरके ढांपा हुआ था, (एकम्) एकीभूत कारणरूप तमःकरके अविभागताको प्राप्त हुआ भी, सो कार्यरूप (तपसः) स्रष्टव्यपर्यालोचनरूपके (महिना) माहात्म्यकरके उत्पन्न भया. ॥३॥

ननु उक्तरीतिसें जेकर ईश्वरका विचारणाही जगत्की उत्पत्तिविषे कारण है तो, सो विचारही किस निमित्तसें है? सोही दिखाते हैं. 'कामस्तदग्रे इत्यादि'—इस विकारवाली सृष्टिके पहिले परमेश्वरके मनमें इच्छा उत्पन्न होती भइ कि, मैं सृष्टि करूं; ईश्वरको इच्छा किस हेतुसें भइ? सो कहे हैं, 'मनसःइति' अंतःकरणसंबंधी वासना शेषकरके, सर्व प्राणियोंके अंतःकरणमें तैसा (रेतः) होनहार प्रपंचका बीजभूत पहिले अतीतकल्पमें जीवोंने जो करा था पुण्यात्मक कर्म, यतः जिसकारणसें सृष्टिके समयतक वे कर्मफल परिपक्वफल देनेके सन्मुख होते भए, तिस-हेतुसें सर्वसाक्षी फलप्रदाता ईश्वरके मनमें सृष्टि करणेकी इच्छा उत्पन्न भइ; तिस इच्छाके हुए सृजनेयोग्य विचारके तदपीछे सर्वजगतको

रचता है. सतइति तदपीछे सत्वरूपकरके अनुभूयमान इस जगत्का 'बंधु-बंधक' हेतुभूत कल्पांतरमें प्राणियोंने जो करा है कर्मसमूह, तिनको 'कवयः' तीनों कालके जाननेवाले योगी हृदयमें बुद्धिद्वारा विचारकरके तिन कर्मानुसार सृष्टि करता भया. ॥४॥

(रश्मिः) रश्मिसमान जैसें सूर्यकी किरणां उदयानंतर निमेषमात्रकालमें युगपत् सर्व जगत्में व्याप्त होती हैं, तैसें शीघ्र सर्वत्र व्याप्त होता हुआ यह कार्यवर्ग 'विततः' विस्तारवंत होता भया. सो कार्यवर्ग, प्रथमसे क्या (तिरश्चीनः) तिर्यग् मध्यमें स्थित हुआ था? किंवा, अधः नीचेको हुआ था? अथवा, उपरको हुआ था? ऐसा मालुम नहीं होता था. किंतु सर्वत्र एकसाथही सृष्टि होती भइ, (रेतोधाः) इससृष्टिमें (रेतसः) बीजभूत कर्मोंके करणेहारे, और भोगनेवाले जीव होते भए. 'महिमानः' अन्यमहान् पदार्थ आकाशादिभूत भोग्यरूप होते भए, भोक्ता और भोग्यमें स्वधा अन्नोंका यह भोग्य प्रपंच (अवस्तात्) निकृष्ट होता भया, (प्रयतिः) भोक्ता (परस्तात्) उत्कृष्ट होता भया. ॥५॥

अथ सृष्टि दुर्विज्ञान है, इसवास्ते विस्तारसें नहीं कही, सोही कहते हैं. 'को अद्वेति' कौन पुरुष परमार्थसें जानता है? और कौन (इह) इस लोकमें (प्रवोचत्) कह सकता है? 'इयं दृश्यमाना विसृष्टिः' यह दृश्यमान विविध प्रकारभूत भौतिक भोक्तृभोग्यादिरूपकरके बहुतप्रकारकी सृष्टि, (कुतः) किस उपादानकारणसें, और (कुतः) किस निमित्तकारणसें, (आजाता) समंतात् जाता-प्रादुर्भूता-उत्पन्न हुइ है? ये दोनों कथन विस्तारसें कौन जान सक्ता, और कह सक्ता है? ननु देवता सर्वज्ञ है, इसवास्ते वे जान-तेभी होवेंगे, और कह भी सक्ते होवेंगे? सोही कहते हैं. अर्वागिति। देवते इस जगत्के रचनेसेंपीछे उत्पन्न हुए हैं, इसवास्ते वे कैसें जान सक्ते और कह सक्ते हैं? अथ जब देवते भी नहीं जानते हैं तो, तिनसें व्यतिरिक्त मनुष्यादि तो कैसें जान सक्ते हैं कि, यतः जिसकारणसें संपूर्ण जगत् उत्पन्न भया, सो कारण क्या था? ॥६॥ 'इयं विसृष्टिः' यह विविधप्रकारकी गिरिनदीसमुद्रादिरूपकरके विचित्रा सृष्टि जिससें उत्पन्न भइ है, और

जो 'दधे' इसकों धारण करता है, अथवा नहीं धारण करता है, ऐसा कोई भी नहीं जानता है. 'यो अस्येति' जो इस जगत्का अध्यक्ष ईश्वर, सो सत्यभूत आकाशमें निर्मल स्वप्रकाशमें प्रतिष्ठित है, सो ईश्वरही जाने वा न जाने, अन्यकोइ नहीं जान सकता है.॥७॥

तथा—सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठदशाङ्गुलम् ॥१॥

सहस्रशीर्षा । पुरुषः । सहस्रऽअक्षः । सहस्रऽपात् । सः । भूमिम् । विश्वतः ।
वृत्वा । अति । अतिष्ठत् । दशऽअङ्गुलम् ॥ १ ॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ॥

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

पुरुषः । एव । इदम् । सर्वम् । यत् । भूतम् । यत् । च । भव्यम् । उत । अमृ-
तऽत्वस्य । ईशानः । यत् । अन्नेन । अतिऽरोहति ॥ २ ॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।

पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

एतावान् । अस्य । महिमा । अतः । ज्यायान् । च । पूरुषः । पादः । अस्य ।
विश्वा । भूतानि । त्रिऽपात् । अस्य । अमृतम् । दिवि ॥ ३ ॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।

ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ४ ॥

त्रिऽपात् । उर्ध्वः । उत । ऐत् । पूरुषः । पादः । अस्य । इह । अभवत् । पुन-
रिति । ततः । विष्वङ् । वि । अक्रामत् । साशनानशनेइति । अभि ॥ ४ ॥

तस्माद्विरलजायत विराजो अधि पूरुषः ।

सजातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥ १७ ॥

तस्मात् । वि॒ऽराद् । अ॒जा॒य॒त । वि॒ऽराजः । अ॒धि । पु॒रुषः । सः । जा॒तः । अ॒ति ।
अ॒रि॒च्य॒त । प॒श्चात् । भूमि॒म् । अथो इति । पु॒रः ॥ ५ ॥ १७ ॥

यत्पुरु॒षेण ह॒विषा दे॒वा य॒ज्ञम॒तन्व॒त ।

व॒स॒न्तो अ॒स्यासी॒दाज्यं ग्री॒ष्म इ॒ध्मः श॒रद्द॒विः ॥ ६ ॥

यत् । पु॒रु॒षेण । ह॒विषा । दे॒वाः । य॒ज्ञम् । अ॒तन्व॒त । व॒स॒न्तः । अ॒स्य ।
आ॒सीत् । आ॒ज्यम् । ग्री॒ष्मः । इ॒ध्मः । श॒रत् । ह॒विः ॥ ६ ॥

तं य॒ज्ञं ब॒र्हिषि प्रौ॒क्षन्पु॒रुषं जा॒तम॒ग्रतः ।

तेन॑ दे॒वा अ॒यज॒न्त सा॒ध्या ऋ॒षयश्च॒ ये ॥ ७ ॥

तम् । य॒ज्ञम् । ब॒र्हिषि । प्र । औ॒क्षन् । पु॒रु॒षम् । जा॒तम् । अ॒ग्रतः । तेन॑
दे॒वाः । अ॒यज॒न्त । सा॒ध्याः । ऋ॒षयः । च । ये ॥ ७ ॥

तस्माद्य॒ज्ञात्सर्व॑हु॒तः संभू॑तं पृ॒षदा॒ज्यम् ।

प॒शून्ताँश्च॑क्रे वा॒यव्या॑नार॒ण्यान्प्रा॒म्याश्च॒ ये ॥ ८ ॥

तस्मात् । य॒ज्ञात् । स॒र्व॒हु॒तः । स॒म्भू॒तम् । पृ॒षत् । आ॒ज्यम् । प॒शून् । ता॒-
नू । च॒क्रे । वा॒य॒व्यान् । आ॒र॒ण्यान् । प्रा॒म्याः । च । ये ॥ ८ ॥

तस्माद्य॒ज्ञात्सर्व॑हु॒त ऋ॒चः सा॒मानि॒ जज्ञि॑रे ।

छ॒न्दाँसि॒ जज्ञि॑रे तस्माद्य॒जुस्तस्मा॑दजाय॒त ॥ ९ ॥

तस्मात् । य॒ज्ञात् । स॒र्व॒हु॒तः । ऋ॒चः । सा॒मानि । ज॒ज्ञि॒रे । छ॒न्दाँसि । ज॒ज्ञि॒रे ।
तस्मात् । य॒जुः । तस्मात् । अ॒जा॒य॒त ॥ ९ ॥

तस्माद॒श्वा अ॒जाय॑न्त॒ ये के चो॑भयाद॒तः ।

गा॒वो ह॒ जज्ञि॑रे तस्मात्तस्मा॒ज्जा॒ता अ॒जाव॑र्यः ॥ १० ॥ १८ ॥

तस्मात् । अ॒श्वाः । अ॒जा॒य॒न्त । ये । के । च । उ॒भया॑द॒तः । गा॒वः । ह॒ । ज॒ज्ञि॒रे ।
तस्मात् । तस्मात् । जा॒ताः । अ॒जा॒व॑र्यः ॥ १० ॥ १८ ॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।

मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥ ११ ॥

यत् । पुरुषम् । वि । अदधुः । कतिधा । वि । अकल्पयन् । मुखम् । किम् ।
अस्य । कौ । बाहू इति । कौ । ऊरू इति । पादौ । उच्येते इति ॥ ११ ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहु राजन्यः कृतः ।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ १२ ॥

ब्राह्मणः । अस्य । मुखम् । आसीत् । बाहू इति । राजन्यः । कृतः
ऊरू इति । तत् । अस्य । यत् । वैश्यः । पद्भ्याम् । शूद्रः । अजायत ॥ १२ ॥

चन्द्रमामनसोजातश्चक्षुः सूर्यो अजायत ।

मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥ १३ ॥

चन्द्रमाः । मनसः । जातः । चक्षुः । सूर्यः । अजायत । मुखात् ।
इन्द्रः । च । अग्निः । च । प्राणात् । वायुः । अजायत ॥ १३ ॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथालोकौ अकल्पयन् ॥ १४ ॥

नाभ्याः । आसीत् । अन्तरिक्षम् । शीर्ष्णः । द्यौः । सम् । अवर्तत ।
पद्भ्याम् । भूमिः । दिशः । श्रोत्रात् । तथा । लोकौ ।

अकल्पयन् ॥ १४ ॥ ऋ० अष्टक ८ । अ० ४ । व० १७ । १८ । १९ । मं० १० ।

अ० ७ । सू० ९० ॥

भाषार्थः—सर्वप्राणि समष्टिरूप ब्रह्माण्डदेह है जिसके, ऐसा विराट्नाम पुरुष, सो (यह सहस्रशीर्षा) सहस्रशिर, सहस्रशब्दकों उपलक्षण होनेसे अनंत शिरोंकरके युक्त है; क्योंकि, जे सर्वप्राणियोंके शिर हैं, ते सर्व तिस्रकी देहके अंतर होनेसे तिसकेही शिर हैं, इसहेतुसे सहस्रशीर्षपणा; ऐसे (सहस्राक्षः) सहस्राक्षपणा, और (सहस्रपात्) सहस्रपादपणाभी जानना सो

पुरुष, 'भूमि' ब्रह्मांडगोलकरूपभूमिकों 'विश्वतः' सर्व ओरसें 'वृत्त्वा' परिवेष्टन करके 'दशांगुलं' दशांगुलदेशकों 'अत्यतिष्ठत्' अतिक्रमकरके व्यवस्थित है दशांगुल यह उपलक्षण है, इसवास्ते ब्रह्मांडसें बाहिर भी सर्व जगे व्याप्य होके स्थित है. ॥ १ ॥

जो 'इदं' यद वर्तमान जगत् है, सो सर्व 'पुरुष एव' पुरुषही है 'यच्च भूतं' और जो अतीत जगत्, 'यच्च भव्यम्' और जो भविष्यत् होणहार जगत्, (तदपि पुरुषएव) सोभी पुरुषही है. जैसें इस कल्पमें वर्त्तते प्राणियोंके देह है, ते सर्वही विराट्पुरुषके अवयव है, तैसेंही अतीतानागतकल्पोंमें भी जानना, इत्यभिप्रायः 'उतापि च' और 'अमृतत्वस्य' देवपणेका यह 'ईशानः' स्वामी है, यत् जिसकारणसें 'अन्नेन' प्राणियोंके अन्नरूप भोग्यकरके 'अतिरोहति' अपनीकारण अवस्थाकों अतिक्रमकरके परिदृश्यमान जगत् अवस्थाकों प्राप्त होता है, तिसकारणसें प्राणियोंके कर्मफल भोगनेतांइ जगत् अवस्था अंगीकार करनेसें यह तिसका वस्तु-तत्त्व नहीं है, इत्यर्थः ॥ २ ॥

अतीतानागतवर्त्तमानरूप जगत् जहाँतक है 'एतावान्' इतना सर्व भी 'अस्य' इस पुरुषका 'महिमा' आपना सामर्थ्य विशेष है; न कि तिसका वास्तव्य स्वरूप है. क्योंकि, वास्तव स्वरूप तो पुरुष है, अतः (महिन्नोपि) इससें महिमासेभी 'जायान्' अतिशय करके अधिक है, येह दोनों स्पष्ट करते हैं; 'अस्य' इस पुरुषके 'विश्वा भूतानि' त्रिकाल में वर्तनेवाले सर्व प्राणी 'पाद' चौथे हिस्से प्रमाण है 'अस्य' इस पुरुषके 'त्रिपात' शेष तीन हिस्से-भाग 'अमृतं' विनाशरहित हुआ थका दिवि द्योतनात्मके स्वप्रकाशरूपमें व्यवतिष्ठित है. इतिशेषः॥३॥

जो यह त्रिपात् पुरुषः संसारके स्पर्शरहित ब्रह्मस्वरूप है, और जो यह 'ऊर्ध्वः उदैत्' इस अज्ञानकार्य संसारसे बाहिरभूत है, इहाँके गुण-दोषोंकरी अस्पृष्ट है, उत्कर्षताकरके रहा हुआ है, 'तस्यास्य' तिस इस का 'सोयं पादलेशः' सो यह पादलेश 'इह' इहाँ मायामें फेर होता भ्रष्टा सृष्टिसंहार करके पुनः २ बारंवार आता है, 'ततः' तदपीछे माया-

में आया अनंतर 'विष्वङ्' देवतिर्यगादिरूपकरके विविधप्रकारका हुआ था, 'व्यक्रामत्' व्याप्तवान् हुआ क्या करके? 'साशनानशने अभिलक्ष्य' (साशनं) भोजनादिव्यवहारसंयुक्त चेतन प्राणिजात लक्ष्य हैं, (अनशनं) तिससे रहित अचेतन गिरिनदीआदिक, येह दोनोंको जैसे होवे तैसे स्वयमेव विविधरूप होके व्याप्त होता भया ॥ ४ ॥

विष्वङ् व्यक्रामदिति यदुक्तं तदेवात्र प्रपंच्यते ॥ 'तस्मात्' तिसआदि-पुरुषसें विराट्-ब्रह्मांडदेह उत्पन्न भया । विविधप्रकारकी वस्तु शोभे है इसमें इति विराट् । 'विराजोधि' विराट् देहके ऊपर तिसदेहकोंही अधिकरण करके 'पुरुषः' तिस देहका अभिमानी कोइक पुरुष उत्पन्न होता भया, सो यह सर्ववेदांतोंकरके वेद्य परमात्मा सोही अपनी मायाकरके विराट्देह ब्रह्मांडरूप रचके तिसमें जीवरूप करी प्रवेशकरके ब्रह्मांडाभिमानी देवात्मा जीव होता भया. 'सजातः' सो उत्पन्न हुआ विराट् पुरुष 'अत्यरिच्यत-अतिरिक्तोभूत्' विराट्सें व्यतिरिक्त देव-तिर्यक्मनुष्यादिरूप होता भया. 'पश्चात्' देवादिजीवभावसें पीछे 'भूमिम्' भूमिकों सृजन करता भया, 'अथो' भूमिसृष्टिके अनंतर तिनजीवोंके 'पुरः' शरीर रचता भया ॥ ५ ॥

'यत्' यदा पूर्वोक्त क्रमकरकेही शरीरोंके उत्पन्न हुए थे, 'देवाः' देवते उत्तर सृष्टिकी सिद्धिवास्ते बाह्यद्रव्यके अनुत्पन्न होनेकरके हविके अंतर असंभव होनेसें पुरुषस्वरूपही मनःकरके हविषणे संकल्पकरके 'पुरुषेण' पुरुषनामक 'हविषा' हविःकरके, 'मानसं यज्ञम्' मानस यज्ञ-कों 'अतन्वत' विस्तारते-करते हुए. 'तदानीम्' तिस अवसरमें 'अस्य' इस यज्ञका 'वसन्तः' वसंतऋतुही 'आज्यम्' घृत 'आसीत्' होता भया, तिस वसंतऋतुकोंही घृतकी कल्पना करते हुए; ऐसेही 'ग्रीष्म इध्म आसीत्' ग्रीष्मऋतु इध्म होता भया, तिसकोंही इध्मकरके कल्पना करते-हुए; तथा 'शरद्धविरासीत्' शरद्धतु हविः होता भया, तिसकोंही पुरोडा-शाभिध हविःकरके कल्पना करते हुए. ऐसे पुरुषकों हविःसामान्यरूपकरके संकल्पकरके तिसते अनंतर वसंतादिकोंकों घृतादिविशेषरूपकरके कल्पन करा, ऐसे जानना योग्य है. ॥ ६ ॥

‘यज्ञं’ यज्ञके साधनभूत ‘तम्’ तिस पुरुषकों पशुत्वभावनाकरके यूपमें बांधेहुएकों ‘बर्हिषि’ मानस यज्ञमें ‘प्रौक्षन्’ प्रोक्षण करते भये, कैसे पुरुषकों? सोही कहे हैं. ‘अग्रतः’ सर्वसृष्टिके पहिले ‘पुरुषम् जातम्’ पुरुषपणे उत्पन्न भयेकों ‘तेन’ तिस पुरुषरूप पशुकरके ‘देवाः’ देवते ‘अयजन्त’ यजन करते भये, मानस यज्ञ निष्पन्न करते भये इत्यर्थः। कौन वे देवते? सोही कहे हैं. ‘साध्याः’ सृष्टिके साधनयोग्य प्रजापतिप्रमुख ‘ऋषयश्च’ और तिनके अनुकूल ऋषि मंत्रोंके देखनेवाले जे हैं, ते सर्व यजन करते भये इत्यर्थः ॥ ७ ॥

‘सर्वहुतः’ सर्वात्मक पुरुष जिस यज्ञमें आहवन करीए, सो यह सर्वहुतः, तैसैं ‘तस्मात्’ पूर्वोक्त ‘यज्ञात्’ मानसयज्ञसैं ‘पृषदाज्यम्’ दधिमिश्रितघृतकों ‘संभृतम्’ संपादन करा, दधि और घृत यह आदिभोग्यजात सर्वसंपादन करा इत्यर्थः। तथा ‘वायव्यान्’ वायुदेवसंबंधी लोकमें प्रसिद्ध ‘आरण्यान् पशून्’ आरण्य पशुओंकों ‘चक्रे’ उत्पन्न करता भया; आरण्य-हरिणादिक। तथा ‘ये च ग्राम्याः’ गौ अश्वादि तिनकोंभी उत्पन्न करता भया ॥ ८ ॥ ‘सर्वहुतस्तस्मात्’ पूर्वोक्त ‘यज्ञात्’ यज्ञसैं ‘ऋचःसामानि जज्ञिरे’ ऋच साम उत्पन्न भए ‘तस्मात्’ तिस यज्ञसैंही ‘छंदांसि’ गायत्रीआदि ‘जज्ञिरे’ उत्पन्न भए ‘तस्मात्’ तिस यज्ञसैं ‘यजुरप्यजायत’ यजुर्बेदभी होता भया. ॥ ९ ॥

‘तस्मात्’ तिस पूर्वोक्त यज्ञसैं ‘अश्वा अजायन्त’ घोड़े उत्पन्न भए, तथा ‘ये के च’ जे केइ अश्वसैं व्यतिरिक्त गर्दभ और खच्चरां ‘उभयादतः’ उर्ध्व अधोभाग दोनों दंतयुक्त होते हैं जिनके ते भी तिसयज्ञसैंही उत्पन्न हुए हैं, तथा ‘तस्मात्’ तिस यज्ञसैं ‘गावश्च जज्ञिरे’ गौयां उत्पन्न हुई हैं, किंच ‘तस्मात्’ तिसयज्ञसैं ‘अजाः’ बकरीयां और ‘अवयः’ भेड़ें भी ‘जाताः’ उत्पन्न भई. ॥ १० ॥

प्रश्नोत्तररूपकरके ब्राह्मणादि सृष्टि कहनेकों ब्रह्मवादियोंके प्रश्न कहते हैं। प्रजापति प्राणरूप देवते ‘यत्’ यदा ‘पुरुषं’ विराड्रूप पुरुषकों ‘व्यदधुः’ रचते भए, अर्थात् संकल्पकरके उत्पन्न करते भए, तब ‘कतिधा’ कितने प्रकारोंकरके ‘व्यकल्पयन्’ विविधरूप कल्पना करते भए? ‘अस्य’

इस पुरुषका 'मुखं किम् आसीत्' मुख क्या होता भया ? 'कौ बाहू अभूताम्' क्या दोनो बाहां होती भई ? 'कौ ऊरू कौ च पादौ उच्येते' क्या साथल, और क्या दोनो पग कहीए ? प्रथम सामान्य प्रश्न है, पीछे मुखं किम् इत्यादिकरके विशेषविषयक प्रश्न है ॥ ११ ॥

अब पूर्वोक्त प्रश्नोंके उत्तर कहते हैं, 'अस्य' इस प्रजापतिकी 'ब्राह्मणः' ब्राह्मणत्वजातिविशिष्ट पुरुष 'मुखमासीत्' मुख होता भया, अर्थात् मुखसे उत्पन्न हुआ है, जो यह 'राजन्यः' क्षत्रियत्वजातिविशिष्ट है, सो 'बाहूकृतः' बाहांकरके उत्पन्न करा है, अर्थात् बाहांसे उत्पन्न हुआ है, 'तत् तदानीं' तिससमय 'अस्य' इस प्रजापतिके 'यत् यौ ऊरू' जे दो ऊरू थे, तद्वरूप 'वैश्यः' वैश्य होता भया, अर्थात् ऊरूयोंसे वैश्य उत्पन्न हुआ, तथा इस पुरुषके 'पद्भ्यां' दोनों पगोंसे 'शूद्रः' शूद्रत्वजातिमान् पुरुष 'अजायत' होता भया, यह कथन यजुर्वेदके सप्तमकांडमें स्पष्टपणे है. ॥ १२ ॥

जैसे दधिघृतादि द्रव्य, गवादि पशु, ऋगादि वेद और ब्राह्मणादि मनुष्य, तिससे उत्पन्न हुए हैं, तैसे चंद्रादि देवते भी तिससेही उत्पन्न हुए हैं, सोही दिखाते हैं. प्रजापतिके 'मनसः' मनसे 'चंद्रमा जातः' चंद्रमा उत्पन्न भया 'चक्षोः' नेत्रोंसे 'सूर्यः अजायत' सूर्य उत्पन्न भया 'मुखात् इंद्रश्च अग्निश्च' मुखसे इंद्र और अग्नि दो देवते उत्पन्न भए, और 'प्राणाद्वायुरजायत' प्राणोंसे वायु उत्पन्न भया. ॥ १३ ॥

जैसे चंद्रादिकोंको प्रजापतिके मनःप्रमुखसे कल्पना करते भए, तथा तैसेही 'लोकान्' अंतरिक्षादिलोकोंको प्रजापतिके नाभि आदिकसे देवते 'अकल्पयन्' उत्पन्न करते भए, सोही दिखाते हैं । 'नाभ्याः' प्रजापतिकी नाभिसे 'अंतरिक्षमासीत्' आकाश उत्पन्न भया 'शीर्ष्णः' शिरसे 'द्यौः समवर्तत' स्वर्ग उत्पन्न हुआ 'पद्भ्यां भूमिरुत्पन्ना' पगोंसे भूमि उत्पन्न भई, और 'श्रोत्रादिश उत्पन्ना इति' श्रोत्र-कानोंसे दिशा उत्पन्न भई. ॥ १४ ॥ इत्यादि ।

तथा—

यइमा विश्वाभुवनानि जुह्वदृष्टिर्होतान्यसीदत्पितानः ।
 सआशिषाद्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ २॥ ५आविवेश ॥ १७॥
 किंस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणंकतमत्स्वित्कथासीत् ।
 यतोभूमिंजनयन्विश्वकर्माविद्यामौर्णोन्महिनाविश्वचक्षाः ॥ १८॥
 विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतोमुखोविश्वतोबाहुरुतविश्वतस्पात् ।
 संबाहुभ्यांधमति संपतत्रैर्द्यावाभूमीजनयन्देव एकः ॥ १९ ॥
 किंस्विद्वनंकउसवृक्षआसयतोद्यावापृथिवीनिष्ठतक्षुः ।
 मनीषिणोमनसापृच्छतेदुतद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानिधारयन् ॥ २०॥

यजुर्वेद १७ अध्याये.

भावार्थः—प्रजाकों संहार सृजन करते विश्वकर्माकों देखता हुआ ऋषि कहता है । (यः) जो विश्वकर्मा (इमा) इमानि (विश्वा) विधानि—यह जो सर्व (भुवनानि) भूतजातोंकों (जुह्वत्) संहार करता हुआ (न्यसीदत्) आपही बैठता हुआ, कैसा ? (ऋषिः) अतीन्द्रियद्रष्टा सर्वज्ञ (होता) संहाररूप होमका कर्त्ता (नः) अस्माकम्—हम प्राणियोंका पिता) जनक है । प्रलयकालमें सर्व लोकोंका संहार करके जो परमेश्वर आप एकेलाही रह गया था, तथा चोपनिषदः । “ आत्मा वा इदमेक एताग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत् । सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयमित्याद्याः ॥ ” (सः) तैसा पूर्वोक्त स्वरूपवाला सो परमेश्वर (आशिषा) अभिलाषकरके “ बहुस्यां प्रजायेयेत्येवंरूपेण ” ऐसे रूपकरके पुनः फेर रचनेकी इच्छारूपकरके (द्रविणमिच्छमानः) जगत् रूपधनकी अपेक्षा करता हुआ (अवरान्) अभिव्यक्त उपाधियोंमें (आविवेश) जीवरूपकरके प्रवेश करता भया. कैसा ? (प्रथमच्छत्) प्रथम एक अद्वितीयस्वरूपकों जो छादन करे सो ‘ प्रथमच्छत् ’ उत्कृष्ट रूपकों आच्छादन करता हुआ प्रवेश करता भया, (इच्छमानः) सो वांछा करता भया, ‘ बहु स्यां ’ बहुतरूप हो जाऊं इत्यादि श्रुतियोंसें जान लेना ॥ १७ ॥

अथ ईश्वर जैसें जगत्कों सृजता है, सो प्रश्नोत्तरोंकरके कहते हैं । लोकमें घटादि करनेकी इच्छावाला कुंभकार, घरादिस्थानमें रहकरके मृत्तिकाआदि आरंभक द्रव्यरूपकरके, और चक्रादि उपकरणोंकरके घटादिक निष्पादन करता है । ईश्वरकों सो आक्षेप करते हैं । (स्विदिति) वितर्कमें है, द्यावाभूमी सृजता हुआ विश्वकर्माका (अधिष्ठानं किमासीत्) आधार क्या था ? क्योंकि विना अधिष्ठानके कुछ भी नहीं कर सक्ता है (स्विदिति वितर्क) तर्क करते हैं, (आरंभणं कतमत् आसीत्) आरंभण क्या था ? उपादान कारण क्या था ? जैसें मृत्तिका घटोंका (कथा)क्रिया च किम्प्रकारा (आसीत्) क्रिया किसप्रकार थी ? निमित्त कारण क्या था ? दंडचक्रसलिलसूत्रादिकरके घटादि करते हैं, तिनसमान क्या था ? (यतः) जिससें विश्वकर्मा जिस कालमें पृथिवी और स्वर्गकों (जनयन्) रचता हुआ (महिना) स्वसामर्थ्यकरके सृष्टि द्यावापृथिवीकों (और्णोत्) आच्छादित करता भया, कैसा विश्वकर्मा ? (विश्वचक्षाः) सर्वद्रष्टा ॥ १८ ॥

उत्तर कहते हैं ॥ (एकः) अकेला असहायी (देवः) विश्वकर्मा (द्यावाभूमी जनयन्) स्वर्ग और भूमिकों रचता हुआ (बाहुभ्यां) बाहुस्थानीय धर्माधर्मकरके (संधमति) संयोगकों प्राप्त होता है, (पतत्रैः) पतनशीलवाले अनित्यं पंचभूतोंकरके प्राप्त होता है, धर्माधर्म-निमित्तोंकरके पंचभूतरूप उपादानोंकरके साधनांतरके विनाही सर्व सृजन करता है, अथवा धर्माधर्मकरके च पुनः भूतोंकरके (संधमति) सम्यक् प्रकारकरके प्राप्त करता है जीवोंकों, कैसा है ? (विश्वतश्चक्षुः) सर्व ओरसें चक्षु हैं जिसके (विश्वतोमुखः) सर्व ओरसें मुख हैं जिसके (विश्वतोबाहुः) सर्व ओरसें बाहां हैं जिसके (विश्वतःपात्) सर्व ओरसें पग हैं जिसके, सो परमेश्वरकों सर्व प्राण्यात्मक होनेसें जिस जिस प्राणीके जे जे चक्षु आदि हैं, ते सर्व तिस उपाधिवाले परमेश्वरकेही हैं; इसवास्ते सर्व जगे चक्षुआदि प्राप्त होते हैं इति ॥ १९ ॥

पुनः फेर प्रश्न है (स्विदिति) वितर्कमें है (वनं किम् आस) सो वन कौनसा था ? (उ) अपि च (सः वृक्षः कः) और सो वृक्ष कौनसा

था? (यतः) जिस वन, और वृक्षोंसे विश्वकर्मा, (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवीकों (निष्ठतक्षुः) ब्राह्मता घडता रचता अलंकृत करता हुआ; क्योंकि, तैसैं वनवृक्षका संभव नहीं है. लोकमे तो घरादि बनानेकी इच्छावाला किसी वनमें किसी वृक्षकों छेदनकरके ब्राह्मनादिकरके स्तंभादिक करता है, इहां जगत् रचनेमें सो है नहीं। एक अन्यवात है (मनीषिणः) हे बुद्धिमानो ! (मनसा) मनकरके-विचारकरके (तत् इत् उ) सो भी (पृच्छत) तुम पूछो, सो क्या ? (भुवनानि) जगत्कों (धारयन्) धारण करता हुआ विश्वकर्मा (यदध्यतिष्ठत्) जिस जगे रहता था सो भी तुम पूछो. कुंभकारादि जैसे घरादिकमें बैठके घटादि करते हैं, सो अधिष्ठान भी पूछो। इन सर्व प्रश्नोंका यह उत्तर है कि, ऊर्णनाभिवत् यह आत्मा (ईश्वर) सर्व जगत्का आरंभ करता है, ऊर्णनाभि (मकड़ी-करोलीया) अपने अंदरसेही चेपवस्तु निकालके जाला रचता है, तैसैंही ईश्वर अपने अंदरसेही सर्व कुछ निकालके जगत् रचता है, इसवास्ते इसजगत्का उपादानकारण, और निमित्तकारण ईश्वर आपही है अन्यनहीं ॥ २० ॥

॥ इति यजुर्वेदसंहितायां सप्तदशाध्याये ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे ऋग्वेदाद्यनुसारसृष्टिक्रमवर्णनो नाम सप्तमःस्तम्भः ॥ ७ ॥

॥ अथाष्टमस्तम्भारम्भः ॥

सप्तमस्तंभमें ऋगादिवेदानुसार सृष्टिक्रम वर्णन करा, अथाष्टम स्तंभमें पूर्वोक्त सृष्टिक्रमकी यत्किंचित् समीक्षा करते हैं; तहां प्रथम हम बहुत नम्रतापूर्वक विनती करते हैं कि, पक्ष-कदाग्रहकों छोडके प्रेक्षावानोंकों यथार्थ तत्त्वका निर्णय करना चाहिये, परंतु यह नहीं समझना चाहिये कि, यह अमुक धर्म, और अमुक २ शास्त्र हमारे वृद्ध मानते आए हैं तो, अब हम इसकों त्यागके अन्यकों क्योंकर मान लेवे ? क्योंकि ऐसी समज प्रेक्षावानोंकी नहीं है, किंतु यातो अज्ञ होवे, या दृढ कदाग्रही होवे, तिसकी ऐसी समझ होती है. इसवास्ते, वेद, स्मृति, पुराण, तथा जैन

बौद्ध, सांख्य, वेदांत, न्याय, वैशेषिक, पातंजल, मीमांसादि सर्वशास्त्रोंके कहे तत्त्वोंको प्रथम श्रवण पठन मनन निर्दिध्यासनादि करके जिस शास्त्रका कथन युक्तिप्रमाणसे बाधित होवे, तिसका त्याग करना चाहिये; और जो युक्तिप्रमाणसे बाधित न होवे, तिसको स्वीकार करना चाहिये; परंतु मतोंका खंडनमंडन देखके द्वेषबुद्धि कदापि किसी भी मतउपर न करनी चाहिये. क्योंकि, सर्वमतोंवाले अपने २ माने मतोंको पूरा २ सच्चा मान रहे हैं. इन पूर्वोक्त मतोंमेंसे सांख्य, मीमांसक, जैन और बौद्ध ये जगत्का कर्त्ता ईश्वरको नहीं मानते हैं, और वैदिक, नैयायिक, वैशेषिकादिमतोंके माननेवाले जगत्का कर्त्ता ईश्वरको मानते हैं; वेदमतवाले अन्यमतोंवालोंसे विलक्षणही जगत् और जगत्कर्त्ताका स्वरूप मानते हैं, और यह भी कहते हैं कि, वेदसमान अन्य कोई भी पुस्तक प्रमाणिक नहीं है, इसवास्ते प्रथम हम वेदके कथनकोही विचारते हैं कि, प्रमाणसिद्ध है वा नहीं? जेकर प्रमाणसिद्ध है, तब तो वाचकवर्गको सत्य करके मानना चाहिये, और जेकर प्रमाणबाधित होवे तब तो, तिसका त्यागही करना चाहिये. वेदोंमें भी बड़ा, और प्रथम जो ऋग्वेद है, तिसके कथनकाही सत्य वा असत्यका विवेचन करते हैं.

ऋ० अ ८। अ७। व १७। मं १०। अनु ११। सू १२९ ॥ प्रलयदशामें जगत्उत्पत्तिका कारणभूत माया, सत्स्वरूपवाली भी नहीं थी, और असत्स्वरूपवाली भी नहीं थी, किंतु सत् असत् दोनों स्वरूपोंसे विलक्षण अनिर्वाच्यस्वरूपवाली थी.

उत्तरपक्षः—जहां असत्का निषेध करेंगे, तहां अवश्यमेव सत्का विधि मानना पड़ेगा; और जहां सत्का निषेध करेंगे, तहां अवश्यमेव असत् मानना पड़ेगा; और जहां असत् सत् दोनोंका युगपत् निषेध करेंगे, तहां सत् असत् दोनों युगपत् मानने पड़ेंगे; और जहां सत् असत् दोनों युगपत् निषेध करेंगे, तहां असत् सत् दोनों युगपत् मानने पड़ेंगे. असत् और सत् ये दोनों एक स्थानमें रह नहीं सकते हैं.

पूर्वपक्षः—हम तो सत् असत् दोनों पक्षोंसे विलक्षण तीसरा अनिर्वाच्य पक्ष मानते हैं, इसवास्ते श्रुतिका कथन सत्य है.

उत्तरपक्षः—यह जो तुम अनिर्वाच्यत्व मानते हो तो, इसके अक्षरोंका यह अर्थ होता है; निस्शब्द प्रतिषेधार्थमें है, सो प्रतिषेध, या तो भावका होना चाहिये, वा अभावका. नकारप्रतिषेध भी, या तो भावका निषेध करेगा, या अभावका. तब तो, अनिर्वाच्यत्वका अर्थ भी भाव, वा अभाव सिद्ध होवेगा; तो फेर अनिर्वाच्यत्व कहनेसें भाव, वा अभावसें अधिक कुछ भी नहीं सिद्ध होता है, इसवास्ते माया, या तो सत् माननी पड़ेगी, वा असत् माननी पड़ेगी.

पूर्वपक्षः—प्रतीतिके जो अगोचर होवे, तिसकों हम अनिर्वाच्यत्व कहते हैं.

उत्तरपक्षः—प्रलयदशामें सो प्रतीति अगोचर था, जो जीवोंके प्रतीति अगोचर था कि, ब्रह्मके प्रतीति अगोचर था? प्रथम पक्ष तो संभव होही नहीं सक्ता है; क्योंकि, प्रतीति करनेवाले जीव तो तिस प्रलय-दशामें विद्यमानही नहीं थे तो, प्रतीति गोचर वा अगोचर किसकी अपेक्षा कहनेमें आवे? जेकर ब्रह्मके प्रतीति अगोचर था, तब तो माया, वा जगत्का कारण, खरशृंगवत् एकात असत् रूप हुआ. तब तो, तिससें जगत् उत्पत्ति त्रिकालमें भी नहीं होवेगी. जेकर ब्रह्मके प्रतीति गोचर है, तब तो माया, सत्स्वरूपवाली सिद्ध होवेगी, तिसके सिद्ध होनेसें अद्वैत ब्रह्म त्रिकालमें भी सिद्ध नहीं होवेगा; इसवास्ते, 'नासदासीन्नोसदासीत्' यह कहना युक्तिसें बाधित है. तथा 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' ॥ 'सदेव सौम्येद मग्र आसीत्' ॥ इन दोनों श्रुतियोंसें यह सिद्ध होता है कि, जगत् उत्पत्तिसें पहिले आत्मा, अर्थात् ब्रह्मही एकला था, अन्य कुछ भी नहीं था. ॥ तथा हे सौम्य! सत्ही यह आगे था, अन्य कुछ भी नहीं था! प्रथम तो ऋग्वेदकी पूर्वोक्त श्रुतिसें ये दोनों श्रुतियों विरुद्ध मालुम होती हैं. क्योंकि, इन दोनों श्रुतियोंसें तो, बिना एक ब्रह्मात्मा सत्स्वरूपसें अन्य कुछ भी नहीं था, ऐसा सिद्ध होता है. तब तो माया, अपरनाम जगत् उत्पत्तिका कारण, कदापि सिद्ध नहीं होवे-

गा; तो फेर, ऋग्वेदकी श्रुतिकी कही अनिर्वाच्य माया, प्रलयदशमें क्योंकर सिद्ध होवेगी? जेकर कहोंगे, अव्याकृत, अर्थात् माया, और ब्रह्मके पृथक् रूप न होनेसे एकही आत्मा कहा है; तब तो, ब्रह्मके साथ ओतप्रोत होनेसे ब्रह्मके सत्स्वरूपकी तरें, माया भी सत्स्वरूपवाली सिद्ध होवेगी. तब तो ऋग्वेदकी श्रुतिने जो प्रलयदशमें मायाकों सत् असत् स्वरूपसे विलक्षण जो अनिर्वाच्य कथन करी है, यह कहना मिथ्या सिद्ध होवेगा.

और जब एकही ब्रह्म सत्स्वरूप था, तब तो इस जगत्का उपादान कारण भी सत्स्वरूप ब्रह्मही सिद्ध होवेगा, तब तो यह जडचैतन्य पंचरूप जगत् ब्रह्मरूपही सिद्ध हुआ. तब तो, धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप, ज्ञान, अज्ञान, सत्कर्म, असत्कर्म, स्वर्ग, नरक, धर्मी, अधर्मी, साधु, असाधु, सज्जन, दुर्जन, गुरु, शिष्य, शास्त्र, इत्यादि कुछ भी सिद्ध नहीं होवेगा. तब तो, चार्वाक, और वेदांतमतवालोंके सदृश भाषणाही सिद्ध हुआ. क्योंकि, चार्वाक तो, चार भूतोंकाही कार्यरूप यह जगत् मानते हैं, अन्यधर्मा धर्मादि ऊपर कहे हुए है नहीं. और वेदांती, सर्व इस जडचैतन्यरूप जगत्का उपादानकारण एक सत्स्वरूप ब्रह्मही मानते हैं, इसवास्ते तिनके मतमें भी ऊपर कहे धर्माधर्मादिक नहीं है. इसवास्ते चार्वाक, और वेदांतमतवाले ये दोनों नास्तिक सिद्ध होते हैं. क्योंकि, जो जीवों-कों अविनाशी नहीं मानता है, और पुण्यपापके हेतु, और पुण्यपापके फल भोगनेके स्थान नहीं मानता, आत्माकों भवांतर गमन करनेवाला नहीं मानता है, और देवगुरुधर्मकों नहीं मानता है, सो नास्तिक है; ये पूर्वोक्त सर्व लक्षण वेदांतमतमें मिलते हैं. क्योंकि, जब सर्व कुछ ब्रह्मही है, तब तो सत्स्वरूप ब्रह्ममें अन्य कुछ भी पुण्यपापादि न माने आवेंगे, इसवास्ते असली वेदांतका सिद्धांत, अंतमें नास्तिक सिद्ध हो जाता है.

पूर्वपक्षः—प्रलयदशमें एकही सत्स्वरूप ब्रह्म था, परंतु यजुर्वेदके सप्तदश (१७) अध्यायमें, और उपनिषदोंमें कहा है, और्णनाभि, अर्थात् मकड़ी कोलिकनामा जीव, जैसे अपने अंदरसेही चेप जैसी वस्तु नि-

कालके जाल बनाता है, ऐसैही सत्स्वरूप ब्रह्म, अपने आपहीमेंसे इस जगत्का उपादान कारण निकालके तिससैही यह जगत् रचना करता है.

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर ! यह जो और्णनाभि—मकडीका दृष्टांत दिया है, सो भी अयुक्त है, क्योंकि, और्णनाभि—मकडी जो है, सो केवल चैतन्य नहीं है, किंतु तिसका चैतन्यस्वरूपवाला जीव शरीररूप जड उपाधिवाला है, मनुष्यशरीरवत्; इसवास्ते, सो जंतु जो कुछ शरीरद्वारा आहार करता है, सो तिसके शरीरके अंदर चेप मलमूत्रादिपणे परिणमता है, मनुष्यके आहार करनेसैं वात पित्त कफ मल मूत्र लालादिवत् तथा और्णनाभिने जो जाला रचा है, तिसका उपादान कारण और्णनाभि नहीं है, किंतु जालेका उपादानकारण और्णनाभिके शरीरमें जो चेपादि वस्तु है, सो है; इससैं यह सिद्ध हुआ कि, ब्रह्मात्माके अन्य कुछक जडचैतन्यवस्तुयों थी, जिन उपादान कारणोंसैं जडचैतन्यकार्यरूप संसार— रचा. परंतु ब्रह्मनें स्वयमेवही जगत् रूपकों धारण स्वीकार नहीं करा, ऐसैं मानोंगे, तब तो अद्वैतकी हानी होवेगी. इसवास्ते, और्णनाभिका दृष्टांत भी असंगत है.

तथा जब प्रलयदशा होती है तब केवल एकही ब्रह्म होता है ? वा माया और ब्रह्म ये दो होते हैं ? वा मायाकरके अव्याकृत ब्रह्म, अर्थात् माया और ब्रह्म क्षीरनीरकीतरें अष्टथक्पणें मिश्रित होते हैं ? प्रथमपक्षमें तो शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानंद, अक्रिय, कूटस्थ, नित्य, सर्वव्यापक, ऐसे ब्रह्मसैं तो त्रिकालमें कदापि सृष्टि नहीं होवेगी, निरुपाधिक होनेसैं, मुक्तात्मावत्. १। जेकर दूसरा पक्ष मानोंगे, तब तो द्वैतापत्तिसैं त्रिकालमें भी अद्वैतकी सिद्धि नहीं होवेगी. २। जेकर तीसरा पक्ष मानोंगे, तब तो तीनोंही कालमें एक शुद्ध ब्रह्मकी सिद्धि न होवेगी.

और ऊपर सप्तम स्तंभमें लिखी श्रुतियोंमें लिखा है कि—ब्रह्मके चार भागोंमेंसैं तीन भाग तो सदा मायाप्रपंचसैं दहित शुद्ध सच्चिदानंदरूप अपने स्वरूपमेंही प्रकाश करता हुआ व्यवतिष्ठित रहता है, और एक चौथा भाग सो मायामें मायासंयुक्त हो कर, अथवा सदा मायासं-

युक्त हुआ था सृष्टिसंहार करके बारंवार आता है, मायामें आया अनंतर देव मनुष्य तिर्यगादिरूपकरके विविध प्रकारका हुआ था जड चैतन्यके रूपकों व्याप्त होता है इत्यादि—अब हे प्रियवाचकवर्गों ! तुम विचार करो कि, जब एक अद्वैतही शुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप माना, तो फेर तिसका एक भाग तो मायासहित, और तीन भाग मायारहित निरुपाधिक संसारके स्पर्शरहित अमृतरूप कैसे हो सके हैं ? तथा चौथा भाग जो मायावाला है, सो क्या ब्रह्मसें भिन्न है ? जेकर भिन्न है, तब तो दो ब्रह्म मानने पड़ेंगे; एक तो तीन गुणाधिक शुद्ध ब्रह्म, और एक चतुर्थांश मायावाला. जेकर तो ये दोनों ब्रह्म अनादिसें भिन्न है, तब तो तीनों कालोंमें भी अद्वैतकी सिद्धि नहीं होवेगी, जेकर एकही ब्रह्मका चतुर्थांश मायावान् है, शेष तीन भाग निर्मल है, तब तो यह प्रश्न उत्पन्न होवेगा कि, यह चौथा भाग अनादिसेंही मायावान् है, वा पीछेसें मायाका संबंध हुआ है ? जेकर कहोंगे कि, अनादिसेंही मायावान् है, तब तो ब्रह्म सावयव वस्तु सिद्ध होवेगा, जैसें देवदत्तके पगउपर कुष्ठका रोग है, शेषशरीर निरोग है; ऐसेही ब्रह्मके तीन अंश तो निर्मल हैं, और एक अंश मायासंयुक्त है. इससें ब्रह्म सावयव सिद्ध होता है. और तीन अंशोंसें तो सच्चिदानंदस्वरूपमें मग्न है, और एक अंशकरके जन्म, मरण, रोग, शोक, जरा, मृत्यु, अनिष्टसंयोग, इष्टवियोगादि अनंत दुःखोंको भोग रहा है; और सदाही जिसकी ये दो अवस्था बनी रहेगी, तो फेर मुक्तरूप कौन ठहरा ? और संसाररूप कौन ठहरा ? जिस मायाने ब्रह्मके चौथे अंशकी ऐसी दुर्दशा कर रखी है, फेर तिस मायाकों सदा न मानना यह कैसी भूल है ?

जेकर कहोंगे ब्रह्मका चतुर्थांश मायासंयुक्त आदिवाला है, जब ब्रह्ममें फुरणा होती है; तब चतुर्थांश मायावान् हो जाता है, यह भी ठीक नहीं, क्योंकि, फुरणेसें पहिलें तो माया नहीं थी, तो फेर फुरणा किस निमित्तसें हुआ ? जेकर कहोंगे ब्रह्मस्वभावसेंही फुरणावाला होता है, तब तो संपूर्ण ब्रह्मकों युगपत् फुरणा होना चाहिये, नतु चतुर्थांशकों. जेकर कहोंगे

चतुर्थांशमेंही फुरणा होता है, नतु तीन अंशोंमें, तीन अंश तो सदा अफुरही रहते हैं, तब तो ब्रह्ममें स्वभावभेद हुआ, स्वभावभेदसेही ब्रह्म अनित्य सिद्ध होवेगा, “स्वभावभेदो ह्यनित्यताया लक्षणमितिवचनात्.”

पूर्वपक्षः—प्रलयदशामें अव्याकृत ब्रह्म है, जब सर्व जीवोंके करे हुए शुभाशुभ कर्म परिपक्व हुए थके फल देनेके उन्मुख होते हैं, तब ईश्वरकों साक्षी फलप्रदाता होनेसे सृष्टिकी इच्छा होती है.

उत्तरपक्षः—इस कथनसे तो ऐसा सिद्ध होता है कि, अव्याकृत ब्रह्ममें अनंत जीव, और अनंततरेंके तिन जीवोंकरके पुण्यपाप, और पंच भूतोंका उपादान कारण, ये सर्व सामग्री ब्रह्ममें सूक्ष्मरूप होके लीन हुई होइ थी; जब ऐसे था, तब तो अद्वैतकी सिद्धि कदापि नहीं होवेगी. जेकर कहोंगे ये सर्व सामग्री ब्रह्मसे अभेदरूप होके ब्रह्मके साथ रहती थी, तब तो सर्व कुछ ब्रह्मा द्वैतरूपही हुआ; जब अद्वैत ब्रह्मही था, तब तो जीव अनंत पूर्वकल्पके करे अनंततरेंके पुण्यपाप और पुण्यपाप परिपक्व होके फल देनेके उन्मुख होते हैं, तब ईश्वरकों सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है, यह सर्व कहना महामिथ्या सिद्ध होवेगा. क्योंकि, न तो कोई ब्रह्मसे अन्य जीव है, न शुभाशुभ कर्म है, न कर्त्ता है, न फल है, और न फल देनेके उन्मुख कर्म होते हैं. क्योंकि, एक ब्रह्माद्वैतही तत्त्व है.

पूर्वपक्षः—ब्रह्मही अनंत जीव है, ब्रह्मही शुभाशुभ कर्म, ब्रह्मही कर्मका कर्त्ता, ब्रह्मही कर्मफल भोक्ता, ब्रह्मही अपने करे कर्मफल भोगनेकी इच्छा करके जगत् रचता है.

उत्तरपक्षः—जब तुम्हारे कहे प्रमाण सर्व कुछ ब्रह्मही है, तब तो तुम्हारे ब्रह्मसमान अज्ञानी, अविवेकी, आत्मघाती, अन्य कोई भी नहीं है. क्योंकि, जब नानायोनियोंमें नानाप्रकारके शीत, ताप, क्षुधा, तृषा, संयोग, वियोग, कुष्ट, जलोदर, भगंदर, अप्समार, क्षयी, ज्वर, शूल, नेत्रवेदना, मस्तकवेदना, जन्म मरणादि अनंत दुःख अपने करे कर्मोंसे भोगता है, तब तो पाप करनेके अवसरमें ब्रह्मकों यह मालुम नहीं था कि, इन

कर्मोंका मुझे महादुःखरूप फल होवेगा; इसवास्तेही पाप करे; इस हेतुसे तुझारा ब्रह्म अज्ञानी सिद्ध होता है. तथा जेकर ब्रह्म विवेकी होता तो, पुण्यफलरूप शुभकर्मही करता, नतु अशुभ; परंतु उसने तो शुभाशुभ दोनो प्रकारके कर्म करे हैं, इसवास्ते तुझारा ब्रह्म अविवेकी सिद्ध होता है. जब आपही अपने दुःख भोगनेवास्ते जगत् रचता है, तब तो अपने पगों-में आपही कुहाडा मारता है, इसवास्ते आत्मघाती भी सिद्ध होता है.

प्रलय दशामें माया, जीव, जीवोंके कर्म, सर्व सूक्ष्मरूप होके ब्रह्ममें लीन थे, जब ब्रह्मकों जीवोंके करे कर्म परिपक्व फल देनेमें सन्मुख हुए, तब परमात्माकों सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है, यह कथन ४ अंककी श्रुतिमें है, इसमें हम यह पूछते हैं कि, प्रथम तो, जे शुभाशुभ कर्म जीवोंने करे थे, ते कर्म रूपी थे कि, अरूपि थे ? जेकर रूपि थे तो, क्या जड थे, वा चेतन थे ? अत्र द्वितीयपक्ष तो स्वीकारही नहीं है, संभव न होनेसें । अथ प्रथमपक्षः—जेकर जड थे, तब तो परमाणुयोंके कार्य थे, वा अन्य कोई उनका संपादन कारण था ? जेकर परमाणुयोंके कार्यरूप थे, तब तो अद्वैतकी हानी सिद्ध होती है; जेकर अन्यकोई उपादान कारण मानोंगे, सो तो है नहीं; क्योंकि परमाणुयोंके विना अन्य कोई कारण, रूपी कार्यका नहीं है; जेकर अरूपि जड थे, तब तो सिद्ध हुआ कि, आकाशकेविना अन्य कोई वस्तु नहीं थी, और आकाश कर्मोंका उपादान कारण नहीं सिद्ध होता है; जेकर अरूपि चेतन थे, तब तो जीव, कर्मोंका उपादान कारण सिद्ध हुआ, जब कर्म चेतन हुए, तब तो जीवोंके ज्ञान विचारोंकेही नाम कर्म हुए. अथ जो वह कर्म ज्ञानरूप है, ते परिपक्व फल देनेके उन्मुख हुए थे, क्या ब्रह्मकों खाज उत्पन्न करते हैं ? जो हम फल देनेके सन्मुख हुए हैं, इसवास्ते जगत् रचो ! वा अंदर कोई कर्मकी खेती बोई हुई है ? जिसके देखनेसें ब्रह्मकों सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है ! वा वे कर्म ईश्वरकों चुहंडीयां भरते हैं ? जिसमें ईश्वर जानता है कि, येह परिपक्व होके फल देनेके सन्मुख हुए हैं ! अथवा कर्म ब्रह्मकेसाथ लडाई करते हैं ? कि, जीवोंकों वृ

हमारा फल क्यों नहीं देता है? इस हेतुसे ईश्वरकों सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न भइ ? अथवा वे कर्म ईश्वरके साथ लडके ईश्वरकी आज्ञासे बाहिर हुए चाहते हैं, तिनके राजी रखनेकों ईश्वरकों सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न होवे हैं? इत्यादि अनेक विकल्प कर्मोंमें उत्पन्न होते हैं. परंतु प्रथम तो चारों वेदोंमें, और अन्य मतोंके शास्त्रोंमें, कर्मोंका यथार्थ स्वरूप ही कथन नहीं करा है. जेकर कर्मोंका स्वरूप लिखा भी है, तो भी, जीव-हिंसा करनी, मृषा बोलना, चोरी करनी, परस्त्रीगमन करना, क्रोध, लोभ, मद, माया, छल, दंभादि करनेका नाम कर्म लिखा है; परंतु येह तो कर्मोंके उत्पन्न करनेकी क्रिया है, नतु कर्म. जैसे घट उत्पन्न करनेमें कुलालका चक्रभ्रमणादिव्यापाररूप क्रिया है, तिस क्रियासे घट उत्पन्न होता है; तैसेही, जीवहिंसादि पूर्वोक्त सर्व कर्मोंके उत्पन्न करनेकी क्रिया है, परंतु कर्म नहीं. तथा कितनेक कहते हैं, प्रारब्ध कर्म १, संचितकर्म २, और क्रियमाण कर्म ३, ये तीनप्रकारके कर्म हैं. परंतु कर्म वस्तु क्या है? जब संचित कर्म है, वो संचयिक वस्तु क्या है? जो फल देनेमें उन्मुख होवे, सो कर्म क्या वस्तु है? जे कर्म जीवकेसाथ प्रवाहसे अनादि संबंधवाले हैं, वे क्या वस्तु है? हे ! प्रियवाचकवर्गों ! किसीमतमें भी यथार्थ कर्मोंका स्वरूप नहीं लिखा है, इसवास्तेही अर्हन् भगवान्के विना सर्वमतोंवाले यथार्थ कर्मस्वरूपके न जाननेसे सर्वज्ञ हो थे.

पूर्वपक्ष:—अर्हन् भगवान्ने कर्मोंका कैसा स्वरूप कथन करा है ?

उत्तरपक्ष:—विस्तार देखना होवे तब तो, षट्कर्मग्रंथ, पंचसंग्रह, कर्म-प्रकृतिआदि शास्त्रोंकों गुरुगम्यतासे पठन करो; और संक्षेपसे देखना होवे तो, हमारी रची जैनप्रश्नोत्तरावलिसे कर्मोंका किंचिन्मात्रस्वरूप देख लेना.

अब हम ऊपर सप्तम स्तंभमें लिखी वेदकी श्रुतियोंकीही किंचित् परीक्षा करते हैं. तीसरी श्रुतिमें लिखा है कि, सृष्टिसे पहिले प्रलयदशामें भूत भौतिक सर्व जगत् अज्ञानरूप तमःकरके आच्छादित था, अर्थात् आत्मतत्त्वके आवरक होनेसे माया, अपरसंज्ञाभावरूप अज्ञान इहां तमः

ऐसा कहते हैं. ॥ परीक्षा ॥ जब प्रलयदशामें भूत भौतिक जगत् अज्ञानरूप तमःकरके आच्छादित था, तब तो भूत भौतिक जगत् विद्यमान सिद्ध होता है. क्योंकि, कोई वस्तु ढांकणेसे अभावरूप नहीं होती है, तब तो ब्रह्मने प्रलयकरके आपही अपना सत्यानाश करा. जैसें कोई पुरुष नानाप्रकारकी क्रीडारंग विनोद भोग विलासादि करता हुआ, एकदम अपना सर्व ऐश्वर्य नाशकरके आंखोंके आगे पट्टी बांधकर किसी अंधकारवाली पर्वतकी गुफामें जा पड़े तो, तिसकों अवश्यमेव मूर्ख कहना चाहिए. क्योंकि, जिसकों अपने आपके हितकी इच्छा नहीं है, तिसमें अधिक अन्य कौन पुरुष मूर्ख है ? कोई भी नहीं है. किंच पुरुष तो, किसी पर्वतकी गुफामें जा पड़ा है, परंतु सृष्टि संहारकरके ब्रह्म अज्ञानाच्छादित होके किस स्थानमें रहता था ? क्योंकि, प्रलयदशामें आकाश तो था नहीं; और विना आकाशके कोई जड चेतन वस्तु रह नहीं सकती है. और विना आकाशके वस्तुका रहना मानना यह युक्तिप्रमाणसें विरुद्ध है, प्रेक्षावान् कदापि नहीं मानेंगे. प्रलय करनेसें तो जगत् संहारी होनेसें ब्रह्मात्माकों निर्दय और आत्मघाती कहना चाहिए; और प्रलय न करे तो, ब्रह्मकी कुछ हानि नहीं है, और सृष्टि न करे तो भी कुछ हानि नहीं है, तो फेर, विनाप्रयोजन पूर्वोक्त काम करनेसें कौन बुद्धिमान् परमात्माकों सर्वज्ञ कृतकृत्य वीतराग करुणासमुद्र इत्यादि विशेषणोंवाला मान सकता है ? जेकर परमात्मा सृष्टि न रचे तो, इसमें उसकी क्या हानि है ?

पूर्वपक्षः—जेकर ईश्वर सृष्टि न रचे तो, जीवोंके करे शुभाशुभ कर्मोंका फल जीवोंके भोगनेमें क्यों कर आवे ?

उत्तरपक्षः—जेकर ईश्वर जीवोंके कर्मोंका फल न भुक्तावे तो, ईश्वरकी क्या हानि होवे ? क्योंकि तुमारे मतमूजब जीव आपतो कर्मोंका फल भोग सक्तेही नहीं, और ईश्वर सृष्टि रचे नहीं, तब तो बहुतही अच्छा काम होवे, न तो जीव पूर्वकर्मका फल भोगे, और न नवीन शुभाशुभ कर्म आगेकों करे, सदा काल प्रलयदशामेंही परमानंदकों ब्रह्मानंदमें लय होके भोगा करे. क्योंकि, उपनिषदोंमें लिखा है कि, सुषुप्तिमें आत्मा ब्र-

हममें लय होके परमानंदकों भोगता है, जब सुषुप्तिमें यह दशा है तो, प्रलयरूप महासुषुप्तिमें तो परमानंदका क्या कहना है ? इससे तो जब ईश्वर सृष्टि रचता है, तब जीवोंके परमानंदका नाश करता है, यह सिद्ध होता है. तो फेर, ईश्वर सृष्टि क्यों रचता है ?

पूर्वपक्षः—जेकर ईश्वर सृष्टि रचके जीवोंकों कर्मफल न भुक्तावे, तब तो ईश्वरका न्यायशीलता गुण रहे नहीं, जगत्में न्यायाधीश होके जो बुरेकों सजा न देवे सो न्यायाधीश नहीं है.

उत्तरपक्षः—वेदमतमें तो एक ब्रह्मके विना अन्य कोई जीवात्मा हैही नहीं तो, क्या ब्रह्म आपही न्यायाधीश बनता है ? और आपही अशुभ कर्म करके सजाका पात्र होके दंड लेता है ? यह तो ऐसा हुआ, जैसे किसीने आपही पापकर्म करे, और तिनके फल भोगनेवास्ते अपने हाथसेही अपने नाक कान हाथ पग मस्तकादि छेदन कर डाले; इससे तो, ब्रह्म प्रथम पाप न करता, तथा ईश्वर अन्य जीवोंकों नवीन पाप न करने देता, तब तो सदाकाल प्रलयदशाही रहती. न तो सृष्टि रचनी पडती, और न सृष्टिका संहार करना पडता, और न जीवोंकों कर्मका फल देना पडता, सदाही परमानंद भोगता रहता. यह तो ब्रह्मने सृष्टि क्या रची, आपही अपने पगमें कुहाडा मारा ! ऐसे अज्ञानीकों कौन बुद्धिमान् ब्रह्मेश्वर मान सक्ता है ? इसवास्ते जो प्रलयका स्वरूप श्रुतियोंने कहा है, सो केवल प्रलापमात्र है; युक्तिविकल होनेसे. ॥ इति प्रलयसमीक्षा ॥ चौथी श्रुतिमें लिखा है कि, परमात्माके मनमें सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न भइ, यह कहना भी मिथ्या है, क्योंकि, शरीरके विना कदापि मन नहीं होता है, शरीरविना मन है ऐसा सिद्ध करनेवाला प्रत्यक्ष, वा अनुमानादिप्रमाण नहीं है. परंतु शरीरविना मन नहीं, ऐसा तो प्रत्यक्ष अनुमानसे सिद्ध हो सक्ता है. और मनविना इच्छा कदापि सिद्ध नहीं इसवास्ते प्रलयदशामें भी ब्रह्मके शरीर होना चाहिए; जेकर प्रलयदशामें भी ब्रह्मके शरीर मानोंगे, तब तो यह प्रश्न उत्पन्न होवेगा कि, शरीर ब्रह्मके साथ अनादिसं संबंधवाला है कि, आदिसंबंधवाला है ? जेकर अनादि संबंधवाला है, तब

तो ' नासदासीन्नोसीत् ' इत्यादि यह श्रुति मिथ्या ठहरेगी, और ब्रह्म मुक्तरूप न ठहरेगी और तीन भाग ब्रह्मके सदा निर्लेप मुक्तरूप, और चौथा भाग मायावान् यह भी सिद्ध नहीं होवेगा क्योंकि, एक भाग शरीरवाला, और तीन भाग शरीररहित, यह युक्तिसैं विरुद्ध है; इससैं तो ब्रह्मके दो भाग हो गए, तब संपूर्ण ब्रह्म मुक्तरूप सिद्ध न हुआ. और अद्वैतमतकी तो, ऐसी जड़ कटेगी कि, फेर कदापि न उत्पन्न होवेगी. इसवास्ते अनादिशरीरसंबंधवाला ब्रह्म मानना यह प्रथम पक्ष मिथ्या है.

अथ दूसरा पक्ष सादिशरीरसंबंधवाला ब्रह्म है, ऐसा मानोंगे, तब तो शरीर भी ब्रह्मने इच्छा पूर्वकही रचा सिद्ध होवेगा, इच्छा मनका धर्म है, और मन शरीरविना नहीं होता है, इसवास्ते इस शरीरसैं पहिले अन्य-शरीर अवश्य होना चाहिए; तिससैं आगे अन्य, इसतरें माननेसैं अनवस्थादूषण होवे है, इसवास्ते दूसरा पक्ष भी मानना मिथ्या है. इस कथनसैं यह सिद्ध हुआ कि, प्रलयदशामें ब्रह्मके शरीर नहीं है, और शरीरविना मन नहीं हो सक्ता है, और मनविना इच्छा नहीं होती है और इच्छाके विना ब्रह्म कदापि सृष्टि नहीं रच सक्ता है.

पूर्वपक्षः—सृष्टि और प्रलय ये दोनों करनेका ईश्वरका स्वभावही है इसवास्ते सृष्टि रचता है और प्रलय करता है.

उत्तरपक्षः—एकवस्तुमें अन्योन्य विरुद्ध, दो स्वभाव नहीं रह सक्ते हैं.

पूर्वपक्षः—हम तो परस्पर विरुद्धस्वभाव मानते हैं.

उत्तरपक्षः—ये दोनों स्वभाव नित्य है कि, अनित्य है? ईश्वरसैं भिन्न है कि, अभिन्न है? रूपी है कि, अरूपी है? जड़ है कि, चेतन है? जेकर ये दोनों स्वभाव नित्य है, तब तो ये दोनों स्वभाव युगपत् सदा प्रवृत्त होवेंगे, तब तो ईश्वर सदाही सृष्टि रचेगा, और सदाही प्रलय करेगा; तब तो, न सृष्टि होवेगी; और न प्रलय होवेगी. जैसे एक पुरुष दीपक जलाया चाहता है, तब दुसरा पुरुष जलानेके समयमेंही बुजाया करता है, तब तो दीपक न जलेगा, और न बुजेगा. इसीतरें ईश्वरका सृष्टि रचनेका स्वभाव तो सृष्टि रचेहीगा, और ईश्वरका प्रलय करनेका

स्वभाव तिस समयमेंही प्रलय करेगा, तब तो सृष्टि, और प्रलय, ये नोंही होवेंगी; इसवास्ते प्रथम विकल्प मिथ्या है.

जेकर ये दोनों स्वभाव अनित्य है तो, क्या ब्रह्मेश्वरसें भिन्न है अभिन्न है? जेकर भिन्न है तो, ईश्वरके ये दोनों स्वभाव नहीं है; ईरसें भिन्न होनेसें. जेकर अनित्य, और अभिन्न है, तब तो जैसें स्वभाव उत्पत्तिविनाशवाले है, तैसें ईश्वर भी उत्पत्तिविनाशवाला मानना चाहिए; स्वभावोंसें अभिन्न होनेसें. परं ऐसें मानते नहीं है, इसवास्ते यह पक्ष भी मिथ्या है.

जेकर स्वभाव रूपी है, तब तो ईश्वर भी रूपीहि होना चाहिए; क्यों-कि, स्वभाव वस्तुसें भिन्न नहीं होता है. तब तो ईश्वरकों रूपी होनेसें जडताकी आपत्ति होवेगी, इसवास्ते यह भी पक्ष मिथ्या है. जेकर दोनो स्वभाव अरूपी है तब तो किसी भी वस्तुके कर्त्ता नहीं हो सके है, अरूपित्व होनेसें; आकाशवत्. इसवास्ते यह भी पक्ष मानना मिथ्या है.

जड पक्ष, रूपी पक्षकीतरें खंडन करना. और चेतन पक्ष, नित्यानित्य, और भेदाभेद पक्षमें अवतारके उपरकीतरें खंडन जान लेना. इसवास्ते स्वभाव पक्ष मानना केवल अज्ञानविजृम्भित है; और श्रुतियोंमें जो सृष्टि रचनेकी इच्छा ईश्वरमें मानी है, सो भी अज्ञानविजृम्भित प्रलापमात्रही है; परीक्षाऽक्षमत्वात्. ॥ इतिसृष्टिरचनायामीश्वरेच्छाखंडनम् ॥

छट्टी श्रुतिमें पूर्वपक्षकी तर्फसें प्रश्न करे है कि, कौन पुरुष परमार्थसें जानता है, और कौन कह सकता है कि, यह दिखलाइ देती नाना प्रकारकी सृष्टि किस उपादानकारणसें, और किस निमित्तकारणसें उत्पन्न भइ है? मनुष्य नहीं जानते, और नहीं कह सके हैं; परंतु देवते सर्वज्ञ हैं, वे तो जानते होवेंगे, और कह भी सके होवेंगे? इस शंकाके दूर करनेवास्ते कहते हैं, अर्वागिति। इस भौतिक सृष्टिके उत्पन्न करे पीछें सर्व देवते उत्पन्न हुए हैं; इसवास्ते देवते भी नहीं जान सके, और नहीं कह सके हैं. शुक्लय-जुर्वेदके १७ अध्यायकी १८।१९।२०। श्रुतियोंमें भी पूर्वपक्षकी तर्फसें प्रश्न पूछे हैं। परंतु ऋग्वेदमें तो यह उत्तर दिया है कि, परमात्माने अपनी सामर्थ्यसें

यह जगत् रचा है, और धारण भी परमात्माही करता है। और यजुर्वेदमें यह उत्तर दिया है कि, और्णनाभिकीतरें जगत् रचता है। ऋग्वेदसे यह अधिक कहा है, और्णनाभिके दृष्टांतकों तो हम ऊपर खंडन कर आए हैं, और शेष उत्तर तो, श्रुति कहनेवालेकी प्रिय स्त्रीही मानेगी परंतु प्रेक्षावान् तो कोई भी नहीं मानेगा. क्योंकि, जबतांइ परमात्मा सर्व सामर्थ्यवान् उपादानादि सामग्रीविना अपनी महिमासे जगत् रचनेवाला सिद्ध न होवेगा, तबतांइ यह जगत् विना उपादान निमित्तकारणोंसे आकाशादि अपेक्षाकारणके विनाही ईश्वरका रचा हुआ है, ऐसा सिद्ध नहीं होवेगा. और जबतांइ यह जगत् विना उपादान निमित्तकारणोंसे आकाशादि अपेक्षाकारणके विनाही ईश्वरका रचा हुआ सिद्ध नहीं होवेगा, तबतांइ परमात्मा सर्वसामर्थ्यवान् उपादानादिसामग्रीविना अपनी महिमासे जगत् रचनेवाला सिद्ध नहीं होवेगा. यह इतरेतराश्रय दूषण है; इसवास्ते ऊपर लिखी श्रुतियोंमें जो सृष्टिबाबत कथन है, सो भी प्रलापमात्रही है.

इसवास्तेही अक्षपाद, गौतममुनिने वेदोंको अप्रमाणिकपणा मानकेही न्यायसूत्रोंमें, और कणादमुनिने वैशेषिकसूत्रोंमें आकाशको नित्य, और सर्वव्यापक माना. और दिशा, आत्मा, मन, काल और पृथिवीआदि भूतोंके परमाणुओंको नित्य माने. इत्यादि जो वेद विरुद्ध प्रक्रिया रची, सो वेदकी प्रक्रियाओं अप्रमाणिक मानकेही रची सिद्ध होती है. और जैमिनीने अपने मीमांसाशास्त्रमें जगत्को अनादि माना है, ईश्वर सर्वज्ञ सृष्टिका कर्त्ता मान्याही नहीं है. वो भी तो, श्रीव्यासजीकाही शिष्य था, और मुख्य सामवेदी यही था; तिसने तो, ईश्वरविषयक मंडल, अष्टक, अध्याय, अनुवाक, सूक्त, सर्व नवीन प्रक्षेपरूप मानके प्रमाणिक नहीं माने हैं. इसवास्ते वेदोक्त सृष्टि रचना अज्ञानीयोंकी कल्पना करी हुई है, इसवास्ते वेदका कथन सत्य नहीं है.

अथ ऋग्वेद अष्टक ८ अध्याय ४ की श्रुतियोंमें जो सृष्टिक्रम लिखा है, तिसकी भी यत्किंचित् समीक्षा लिखते हैं. चौथे अंककी श्रुतिसे लिखा

हे, जो ब्रह्मका चौथा अंश है, सो मायामें आकर देवतिर्यगादिरूपकरके विविध प्रकारका हुआ था व्याप्त हुआ. क्या करके ? चेतन अचेतन रूपकरके, सोही दिखाते हैं; तिस आदि पुरुषसें विराट्, अर्थात् ब्रह्मांड उत्पन्न भया, तिसमें जीवरूपकरके प्रवेशकरके ब्रह्मांडाभिमानी देवात्मा जीव होता भया, पीछे विराट्सें व्यतिरिक्त देव तिर्यङ् मनुष्यादिरूप होता भया, पीछे देवादि जीवभावसें भूमिको सृजन करता भया, अथ भूमि-सृष्टिके अनंतर तिन जीवोंके शरीर रचता भया, शरीरोंके उत्पन्न हुए थे देवते, उत्तर सृष्टिकी सिद्धिवास्ते बाह्यद्रव्यके अनुत्पन्न होनेसें हविके अंतर असंभव होनेसें पुरुषस्वरूपही मनः करी हविषणे संकल्पकरके पुरुषनामक हविकरके मानस यज्ञका विस्तार करते भए; तिस अवसरमें तिस यज्ञका वसंत ऋतु घृत होता भया, ग्रीष्म ऋतु इध्म होता भया, शर-दुतु हवि होता भया, अर्थात् तिसकोंही पुरोडाशाभिध हविकरके कल्पन करते भए; यज्ञका साधनभूत पुरुष तिसकों पशुत्वभावनाकरके यूपमें बांधते हुए, बर्हिषि मानस यज्ञमें प्रोक्षण करता भया, कैसा पुरुष ? सर्वसृष्टिसें पहिले उत्पन्न भया, तिस पशुरूप पुरुषकरके देवते पूजते भए, मानस यज्ञ निष्पन्न करते भए. कौन ते देवते ? सृष्टिके साधन योग्य प्रजापति-प्रभृति, तिनके अनुकूल ऋषिमंत्रोंके देखनेवाले यजन करते , सर्वहुत पुरुषसें अर्थात् मानस यज्ञसें दधिमिश्रित घृत संपादन वायु देव-संबधी लोकमें प्रसिद्ध हरिणादि आरण्य पशुओंको उ त भया, ग्राम्य पशु गौआदि तिनकों उत्पन्न करता भया, तिस यज्ञे ऋच् साम उत्पन्न भए, तिससेंही गायत्र्यादि छंद उत्पन्न भए, तिस यज्ञसेंही यजुर्वेद होता भया, तिससेंही अश्व घोडे गर्दभ खच्चरां उत्पन्न भए, तिस यज्ञसें गौयां बकरीयां भेडें उत्पन्न भई; प्रजापतिके प्राणरूप देवते जब विराटरूप पुरुषकों उत्पन्न करते भए, तब तिस पुरुषका मुख क्या होता भया ? दोनों बाहु क्या होते भए ? ऊरु क्या होते भए ? पग क्या होते भए ? (उत्तर) ब्राह्मणत्व जातिविशिष्टपुरुष मुखसें उत्पन्न हुए, क्षत्रियत्वजातिविशिष्ट पुरुष नाहोंसें उत्पन्न भए, ऊरु-साथलोंसें वैश्य, और पगोंसें शूद्र उत्पन्न भए.

ऐसाही कथन यजुर्वेदमें है. प्रजापतिके मनसे चंद्रमा उत्पन्न हुआ, नेत्रोंसे सूर्य उत्पन्न भया, मुखसे इंद्र और अग्निदेवते उत्पन्न भए, प्राणोंसे वायु उत्पन्न भया, प्रजापतिकी नाभिसे आकाश उत्पन्न भया, शिरसे स्वर्ग उत्पन्न भया, पगोंसे भूमि उत्पन्न भई, और कानोंसे दिशायां उत्पन्न भई, यह ऋग्वेदके कथनानुसार सृष्टि होनेका क्रम कहा.

अब पूर्वोक्त सृष्टिक्रमकों प्रमाणयुक्तिसें समीक्षापथमें लाते हैं. । प्रथम तो एक निरवयव ब्रह्मके चार अंश कथन करने मिथ्या है, एक अंशने क्या पाप करा? जो अनादि अनंत मायाकरके संयुक्त सृष्टि और प्रलय करता है, और आपही संसारी होके नानाप्रकारके जरा मृत्यु रोग शोक क्षुधा तृषा नरक तिर्यगादिरूपोंसे महासंकट दुःख भोग रहा है; और तीन अंश सदा मुक्त ब्रह्मानंदमें मग्न हो रहे हैं, क्या एक ब्रह्ममें मुक्त और संसार एककालमें संभव हो सके है? आपही सृष्टि रचके आत्मघाती है, उपदेश किसकों करता है? और वेद किसवास्ते रचता है? क्यों-कि, तिसकी तो सदाही दुर्दशा रहती है. और व्यास शंकरस्वामीप्रमुख सर्व वेदांती जब ब्रह्मज्ञानी होके ब्रह्ममें लीन होते हैं, तब तीन अंशोंमें लीन होते हैं कि, एक चौथे अंशमें? जेकर तीन अंशमें लीन होते हैं, तब तो यह जो श्रुतिमें लिखा है कि, त्र्यंश तो सदाही संसारकी मायासे अलग रहते हैं; तब तो वेदांतीयोंके मिलनेसे तीन अंशोंमें निर्मल ब्रह्म अधिक हो जावेगा, और चौथा मायावाला अंश न्यून हो जावेगा. जब दोनों हिस्से बधे घटेंगे, तब तो ब्रह्ममें अनित्यतारूप दूषण उत्पन्न होवेगा. जेकर मायावान् चौथे हिस्सेरूप ब्रह्ममें लीन होते हैं, तब तो गर्दभके स्नानतुल्य वेदांतीयोंकी मुक्ति सिद्ध होवेगी. जैसे किसीने गर्दभकों स्नान करवाया, तदपीछे सो गर्दभ कुरडीकी राखमें जाके फेर लौटने लगा, फेर वैसाही मलीन हो गया; ऐसेही वेदांतिनोंने प्रथम तो ब्रह्मविद्यारूप जलसे स्नान करके प्रपंच धोयके निर्मलता प्राप्त करी, फेर मायावाले ब्रह्ममें लीन होनेसे फेर वैसाही मायाप्रपंचवाले बन गए.

पूर्वपक्षः—शुद्ध ब्रह्ममेंही लीन होते हैं, नतु मायावान्में

उत्तरपक्षः—तब तो एक २ अंशकी मुक्ति होनेसे संपूर्ण ब्रह्मकी कदापि मुक्ति नहीं होवेगी, इत्यादि अनेक दूषण होनेसे यह कथन भी मिथ्या है. तथा ब्रह्म जो है, सो ज्ञानस्वरूप है, तिसको जड़ विराट्का उपादानकारण मानना यह युक्तिप्रमाणसे विरुद्ध है. क्योंकि, चैतन्यवस्तु कदापि जड़का उपादन कारण नहीं हो सक्ता है ॥ विना परमाणुओंके भूमिसृजन और शरीर रचे लिखा है, सो भी मिथ्या है. क्योंकि, परमाणुओंको नित्य मानना है सो तो अद्वैतमतकी जड़को काटना है, और विनाही परमाणुओंके जड़भूमि और जीवोंके शरीरोंका उपादानकारण ज्ञानस्वरूप ब्रह्म मानना, सो तो त्रिकालमें भी युक्तिप्रमाणसे कदापि सिद्ध नहीं होवेगा. जेकर युक्तिप्रमाणके विनाही मानोंगे, तब तो प्रेक्षावानोंकी पंक्तिसे बाहिर हो जावोंगे, और चार्वाक नास्तिक मतकी प्रवृत्ति भी वेद-सेही सिद्ध होवेगी. क्योंकि, पंजाब देशमें, फुहोरनगरके वासी, पंडित श्रद्धारामजीने सत्यामृतप्रवाह नामक ग्रंथ रचा है, तिसमें इस मतलबका लेख लिखा है—वेदमें दो तरेंकी विद्या कही है, एक अपरा और दूसरी परा, तिनमेंसे संहिता ब्राह्मण उपनिषद प्रमुखमें प्रायः अपरा विद्याही कथन करी है, और परा विद्या प्रायः गुप्तही रखी है. मेरेको परा विद्याकी खबर बहुत दिनोंसे थी, परंतु जगत् व्यवहारीयोंकी शंकासे मैंने प्रकाश नहीं करी, अब मैं अंतमें परा विद्याका स्वरूप लिखता हूं. यह जो ब्रह्मांड दिखलाइ देता है, यही ब्रह्म है. और श्रुति भी यही बात कहती है—“सर्वं खल्विदं ब्रह्म इत्यादि—” इदं पदकरके यह दृश्यमान जगत्ही ग्रहण करना, यह जो पंचभौतिक जगत् है, सोही ब्रह्म है, इससे अतिरिक्त अन्य कोई ब्रह्म नहीं है, यह ब्रह्मांड अनादि अनंत पंचभूतोंका एक गोलक है, इसको न किसीने रचा है, और न कोई इसकी प्रलय करनेवाला है, इस गोलकके अंदरही अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं, और इसमेंही लय हो जाते हैं; जैसे समुद्रके जलमें अनेकतरंग चक्रबुद्बुद उत्पन्न होते हैं, और जलमेंही लय हो जाते हैं, न कोई आता है, और न कोई जाता है, पांचभौतिक देहसे अन्य जीवना-

मक कोइ पदार्थ नहीं है, वेदकी श्रुतिमें भी ऐसाही लेख है.—*“विज्ञानघन एव एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्ति—” विज्ञान आत्माही इन दृश्यमान भूतोंसे उत्पन्न हो कर तिनके विनाश होते थके अनु पश्चात् विज्ञानघन भी नाशकों प्राप्त होता है, इसवास्ते प्रेत्य संज्ञा नहीं है, अर्थात् मरके परलोकमें कोइ जाता नहीं है, इसवास्ते परलोककी संज्ञा नहीं है—तथा हम सच कहते हैं कि, न कोइ ईश्वर है, और न कोइ उसकी वाणी है, किंतु सब ग्रंथ बुद्धिमानोंने अपनी बुद्धिकी अनुसार रचे हूए हैं—पूर्वाचार्योंने ईश्वरनाम एक कल्पित शब्द मंदबुद्धोंके कानमें इस कारणसे डाला था कि उसके भय और प्रेमसे लोक शुभाचारमें प्रवृत्त और अशुभाचारसे निवृत्त हो कर परस्पर सुख लिया करें, परंतु अब इस शब्दने संसारमें बड़ा भारी अनर्थ कर छोड़ा है; इत्यादि—यदि पूर्वाचार्यों भेदवादियोंके अनर्थरूप ग्रंथ जगत्में विद्यमान न होते कि, जिनके पढ़नेसे लोक ईश्वरादिके बोझसे दबाये जाते, और सारा आयु उससे त्राण नहीं पाते तो, ऐसे (सत्यामृतप्रवाहसदृश) ग्रंथोंका लिखना आवश्यक नहीं था; इत्यादि परा विद्याका रहस्य लिखा है॥ इस समयमें निर्मले साधुआदि प्रायः जे पूरेपूरे वेदांति हैं, तिनमेंसे अत्यंत वेदांतके अभ्यास करनेवालोंने वेदांतका तत्व जानकर पंजाब देशमें रोड़े, और चक्रवुकेके नामसे पंथ निकालके उपर कही पंडित श्रद्धारामजी-वाली परा विद्याका लोकोंको उपदेश करते फिरते हैं.। इससे यह सिद्ध हुआ कि, जे कोइ वेदमतवाले इस ब्रह्मांडका उपादान कारण ब्रह्म मानते हैं, वेही असल पूर्वोक्त नास्तिकमतके वीजभूत हैं. क्योंकि उपादान कारण अपने कार्यसे भिन्न नहीं होता है, जैसे मृत्तिका घटसे. इसवास्ते परमाणुओंके विना भूमिसृजन, और जीवोंके शरीरादिकोंका उत्पन्न होना मानना है, सो मिथ्या है; अंत नास्तिक होनेसे.

देवतायोंने मानस यज्ञ करा तिस मानस यज्ञसे अनेक वस्तुओंकी कल्पना उत्पत्ति लिखी है, सो भी मिथ्या है; प्रमाणयुक्तिसे बाधित होनेसे.

* बृहदारण्यके चतुर्थाध्याये चतुर्थ ब्राह्मणे ॥ १२ ॥

ब्रह्माजीके मुखसे ब्राह्मण उत्पन्न भए, इत्यादि; यह भी महाअज्ञोंका कथन है. क्योंकि, अनादिकालसे जे जे योनियां जिन जिन जीवोंकी उत्पत्तिकेवास्ते नियत है, ते ते जीव तिन तिन योनियोंसे उत्पन्न होते हैं. । यदि ब्रह्मणादि चार वर्णोंकी मुखादि योनियां थी, तब तो ब्राह्मण सदाही ब्रह्माजीके, वा अपने पिताके मुखसेही उत्पन्न होने चाहिए; और क्षत्रिय ब्रह्माजीकी, वा अपने पिताकी बाहांसे उत्पन्न होने चाहिए; ऐसेही वैश्य, और शूद्र भी जानने. और इसतरें उत्पन्न तो नहीं होते हैं, इसवास्ते यह प्रत्यक्षविरुद्ध वेदका कथन कौन बुद्धिमान् मानेगा ? कोई भी नहीं मानेगा. तथा इस कथनमें यह भी शंका उत्पन्न होती है कि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र यह तो ब्रह्माजीके पूर्वोक्त अंगोंसे उत्पन्न भए, परंतु ब्राह्मणी, क्षत्रियाणी, बणियाणी, और शूद्रणी ये चारों कहांसे उत्पन्न हुई हैं? क्योंकि, इनकी उत्पत्ति वास्ते ऋग्वेद यजुर्वेदके मूलपाठमें और भाष्यमें उपलक्षण भी नहीं लिखा है. क्या ब्राह्मणादिकोंके मुखसे, वा गुदासे ब्राह्मणी आदिकोंकी उत्पत्ति माननी चाहिए? वा जिन स्थानोंसे ब्राह्मणादि चारोंकी उत्पत्ति हुई, वेही ब्राम्हणी आदि चारोंके उत्पत्तिस्थान मानने चाहिए? यदि ऐसे मानोंगे, तब तो प्रथम पक्षमें तो यावत् स्त्रीजातित्वावच्छिन्न सर्व पुत्रीरूप होंगी; और दुसरे पक्षमें भगिनी (बहिन) रूप होंगी; तो क्या पुत्री, वा बहिनसे पाणिग्रहणादि क्रिया करनेसे पूर्वोक्त माननेवालेकों लज्जा न आवेगी? स्यात्, ना भी आवे; क्योंकि, स्त्री, पुत्री, बहिन, माता, पति, पुत्र, भ्राता, पितादि, वास्तविकमें हैही नहीं; सर्व एक ब्रह्म होनेसे. वाह जी वाह ! क्या सुंदर श्रद्धा निकाली है, भला शोचो तो सही, इससे अधिक नास्तिकपणा क्या है ?

तथा तुमारे माननेमुजब न्यायकी बात तो यह है कि, जैसे ब्रह्माजीके चारों अंगोंसे ब्राह्मणादि चारोंकी उत्पत्ति लिखी है; ऐसेही ब्रह्माजीकी स्त्रीके मुखसे ब्राह्मणी, बाहांसे क्षत्रियाणी, इत्यादि मानना चाहिए, परंतु इसमें भी फेर टंटाही रहेगा कि, ब्रह्माजीकी स्त्री कहांसे उत्पन्न भई ?

इस कथनसें यही सिद्ध होता है कि, यह सर्व श्रुतियां अज्ञानियोंकी कथन करी हुई हैं। क्योंकि, जे जीव गर्भसें उत्पन्न होते हैं, वे सदा अनादिकालसें अपनी २ मातायोंके गर्भसेंही उत्पन्न होते चले आते हैं; और यही इस जगत्के अनादि होनेमें बड़ा दृढ प्रमाण है। नही तो, कोई भी पूर्वोक्त गर्भज जीवोंको विनागर्भके उत्पन्न करके दिखलावे। जब एक गर्भज मनुष्य विनागर्भके उत्पन्न करके दिखलावे, तब तो हम भी मनुष्यादि-कोंकी उत्पत्ति गर्भविना मान लेवे; और अनादि संसार मानना छोड़ देवे। नही तो, अज्ञानीयोंके प्रलापमात्रकों तो, अज्ञानीही मानेंगे, नतु प्रेक्षावान् । ॥

और पुराणमें तो ऐसा लिखा है “एकवर्णमिदं सर्वं पूर्वमासीद्युधिष्ठिर । क्रिया कर्मविभागेन चातुर्वर्ण्यं व्यवस्थितम् ॥१॥ ब्राह्मणो ब्रह्मचर्येण यथा शिल्पेन शिल्पिकः । अन्यथा नाममात्रं स्यादिन्द्रगोपककीटवत् ॥२॥”

भाषार्थः—हे युधिष्ठिर ! पूर्वकालमें यह सर्व एकही वर्ण था, ब्राह्मणादि भेद नही थे; क्रियाकर्मके विभाग करके चार वर्णकी व्यवस्थिति पीछेसें हुई है। ब्रह्मचर्यके पालनेकरके ब्राह्मण होता है, जैसें शिल्पकरके शिल्पिक है, अन्यथा तो नाममात्रही है, इन्द्रगोपक कीड़ेकीतरें । ॥ यह पुराणका कथन वेदके कथनसें बहुतही अच्छा मालुम देता है; क्योंकि, वेद तो सर्ववस्तुका नास्तिपणाही पुकारे है, जो कि, किसी भी प्रमाणयुक्तसें सिद्ध नही होता है; परंतु यह पुराणका कथन वैसें नास्तिपणा नही कहता है। जैनमतमें भी वर्णव्यवस्था पीछेसें हुई लिखि है। क्योंकि, श्रीऋषभदेवजीके राज्यसमयसें पहिला इस अवसर्पिणीकालमें एकही जाति थी; श्रीऋषभदेवजीके राज्यसमयमें क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और भरत-चक्रवर्तीके राज्यमें ब्राह्मण, येह चार वर्ण, जैसें उत्पन्न हुए, सो कथन जैनतत्त्वादर्श ग्रंथसें देख लेना।

प्रजापतिके मनसें चंद्रमा उत्पन्न हुआ लिखा है, यह भी मिथ्या है। क्योंकि, चंद्रमा जो है, सो पृथिवीमय-पृथिवीकायके उद्योतनामकर्मके उदयवाले जीवोंके शरीरोंका पिंडरूप चंद्रमा देवतायोंके रहनेका विमान

है. और मन जो है, सो ज्ञानरूप अरूपि चेतन है. ज्ञानांश होनेसें. तिस भावमनसें पृथिवीमय रूपी पुद्गलरूप चंद्रमा कैसें उत्पन्न होवे ? तथा नेत्रोंसें सूर्य उत्पन्न हुआ लिखा है, सो भी प्रमाण विरुद्ध है. क्योंकि सूर्य भी पृथिवीमय आतपनामकर्मके उदयवाले पृथिवीके जीवोंके शरीरोंका पिंडरूप देवतायोंके रहनेका विमान है. ये दोनो प्रवाहकी अपेक्षा अनादि अनंत है, नवीन २ जीव तैसे शरीवारले समय २ में असंख्य उत्पन्न होते हैं; और समय २ में असंख्य जीव पृथिवीके मृत्युकों प्राप्त होते हैं; परंतु चंद्रमा सूर्य वैसेके वैसेही रहते हैं, दीपशिखावत्. जैसें दीपशिखामें नवीन २ अग्निके जीव उत्पन्न होते हैं, और अगलें २ मृत्युको प्राप्त होते हैं. विशेष इतनाही है कि, चंद्रमासूर्यका प्रवाह अनादि अनंत है, और दीपकका प्रवाह सादि सांत है. ऐसे चंद्रमासूर्यको ब्रह्माजीके मन और नेत्रोंसें उत्पन्न हुए मानना, यह भी अज्ञानविजृम्भितही है.

मुखसें इंद्र और अग्नि देवते उत्पन्न हुए, यह भी प्रमाणयुक्तिबाधित है. क्योंकि, इंद्रकी उत्पत्ति तो स्वर्गमें देवशय्यासें होती है, और अग्नि इंधनसें उत्पन्न होता है. एक और भी बात है कि, यदि ब्रह्माजीके मुखसें इंद्र उत्पन्न हुआ, तब तो ब्राह्मण और इंद्र इन दोनोंकी एक योनि भइ, तब तो जैसें इंद्र अमर अजर है, ऐसे ब्राह्मण भी होने चाहिये. और जैसें ब्राह्मण याचक है, ऐसें इंद्रको भी भिक्षा मांगनी चाहिये !!!

प्रजापतिके प्राणोंसें वायु उत्पन्न हुआ, और नाभिसें आकाश उत्पन्न भया, यह भी कथन अज्ञानविजृम्भितही है. क्योंकि, जब आकाशही नहीं था, तब ब्रह्म कहां रहता था ? आकाशनाम शून्य पोलाडका है, जब पोलाड नहीं थी तो, तिसका प्रतिपक्षी घनरूप कोई वस्तु होना चाहिये; सो वस्तु भी आकाशविना नहीं रह सकता है. और युक्तिप्रमाणसें तो, आकाश अनादि अनंत सर्वव्यापक है. जो कुछ पदार्थ है, सो सर्व इसके अंदर है. और गौतम, कणाद, जैमिनी, जैन, ये सर्व आकाशको नित्य अ-

नादि अनन्त सर्वव्यापक मानते हैं, तो, क्या गौतमादिकोंने ये पूर्वोक्त वेदकी श्रुतियां पठन नहीं करी होवेंगी ? करी तो होवेंगी, परंतु युक्तिप्रमाणसे विरुद्ध मानके नवीन प्रक्रिया गौतम कणाद जैमिनीने रची मालुम होती है. प्रजापतिके कानोंसे दिशा उत्पन्न होती भई, यह भी कथन अज्ञताका है. क्योंकि, दिशा तो आकाशकाही पूर्वादि कल्पित भागविशेषका नाम है. जब नाभिसे आकाश उत्पन्न भया तो, कानोंसे दिशा क्योंकर उत्पन्न भई लिखा है ? और अरूपी दिशायोंका कोई भी उपादान-कारण नहीं है, इसवास्ते यह भी कथन मिथ्या है. इतिसमीक्षा ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे
ऋगादिसृष्ट्यनुक्रमसमीक्षावर्णनोनामाष्टमः स्तम्भः ॥ ८ ॥

॥ अथ नवमस्तम्भारम्भः ॥

अष्टमस्तंभमें ऋगादिसृष्टिक्रमकी समीक्षा करी, अथ नवमस्तंभमें वेदके कथनकी परस्पर विरुद्धता संक्षेपरूपसे दिखाते हैं.

तमिद्गर्भमप्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ॥

अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥

॥ य० वा० सं० अ० १७ मं० ३० ॥

भाषार्थः—(अ) * (तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपः) प्रथमं अर्थात् संपूर्णसृष्टिकी आदिमें (आपः-जलानि) जल जो हैं सो वह (तमित्गर्भं) तिस प्राप्त गर्भकों (दध्रे) धारण करते भये कि (यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे) जिस संपूर्ण विश्वके कारणभूत गर्भरूप ब्रह्माजीमें संपूर्ण देवता उत्पन्न हो कर व्याप्त हो रहे हैं सो (अजस्य नाभावध्येकमर्पितं) जन्मादिसें जो रहित सो कहावे अज ऐसा जो परमात्मा तिसकी नाभीमें अर्पित जो कमल तिसमें संपूर्ण विश्वका

* जहां (अ) ऐसा संकेत होवे वहां ब्रह्मकुशलोदासीकृतऋगादिभाष्यभूमिकेदु नाम पुस्तकका लिखित भाषार्थ जानना ॥

बीजरूप जो ब्रह्मा सो कैसे हैं कि (यस्मिन् विश्वानि भूवनानि तस्थुः) जिसमें (विश्व) अर्थात् संपूर्ण चतुर्दश संख्याक भुवन स्थित हो रहे हैं-

[समीक्षा] यह श्रुति ऋग्वेदसे विरुद्ध है. क्योंकि, ब्रह्माजीकी उत्पत्तिवास्ते ऋग्वेदमें कमल नहीं कहा है. १। ब्रह्माजीसें पहिले परमात्माका शरीर सिद्ध होता है, विनाशरीरके नाभिमें कमलोत्पत्तिके सिद्ध न होनेसें. और परमाणुओंके विना शरीर नाभिकमल नहीं हो सके हैं; इत्यद्वैतहानि. २। आकाशविना पाणीरूप गर्भ किस जगे धारण करा? और ब्रह्माजी, और कमल ये दोनों किस स्थानमें थे? ३। इत्यादि अनेक दूषण इस श्रुतिमें हैं. ॥ १ ॥

(ब) † हे मनुष्यो (यत्र) जिस ब्रह्ममें (आपः) कारणमात्र प्राण वा जीव (प्रथमम्) विस्तारयुक्त अनादि (गर्भम्) सब लोकोंकी उत्पत्तिका स्थान प्रकृतिको (दध्ने) धारण करते हुए वा जिसमें (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य आत्मा और अंतःकरणयुक्त योगीजन (समगच्छन्त) प्राप्त होते हैं वा जो (अजस्य) अनुत्पन्न अनादि जीव वा अव्यक्त कारणसमूहके (नाभौ) मध्यमें (अधि) अधिष्ठातृपनसें सबकेउपर विराजमान (एकम्) आपही सिद्ध (अर्पितम्) स्थित (यस्मिन्) जिसमें (विश्वानि) समस्त (भूवनानि) लोकोत्पन्न द्रव्य (तस्थुः) स्थिर होते हैं, तुमलोग (तमित्) उसीको परमात्मा जानो ॥ ३० ॥

भावार्थः—मनुष्योंको चाहिये कि जो जगत्का आधार योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य अंतर्ग्रामी आप अपना आधार सबमें व्याप्त है उसीका सेवन सब लोग करें ॥ ३० ॥

[समीक्षा] वाचकवर्गको मालुम होवे कि, स्वामी दयानंदजीका जो लेख है, सो तो स्वतोहि खंडनरूप है. क्योंकि; पदार्थमें कुछ और लिखा है, और भावार्थमें औरही लिखा है तथा संस्कृतपदार्थमें और, अन्वयमें और, और भावार्थमें औरही लिखा है, तथा संस्कृत प्राकृत दोनोंमें अन्यअन्यही लिखा है, इसवास्ते स्वामीजीका लेख परस्पर विरुद्ध है; अतएव असमीचीन है.

† जहां (ब) ऐसा संकेत होवे वहां स्वामी दयानंदसरस्वतीकृत भाषार्थ जानना ॥

(क)‡ (आपः) पाणी-जल (प्रथमं) पहिले (तमित्) तमेव-तिसही (गर्भं) गर्भकों (दध्रे) दधिरे-धारण करते भए (यत्र) जिस कारण-भूत गर्भमें (विश्वे) सर्वे (देवाः) देवते (समगच्छन्त) संगताः संभूय वर्तते-एकत्र हो कर वर्तते हैं. अब तिस गर्भका आधार कहते हैं. (अजस्य) जन्मरहित परमेश्वरके (नाभावधि) नाभिस्थानीय स्वरूप-मध्ये (एकं) विभागरहित अनन्यसदृश कुछक बीज गर्भरूपको (अर्पितं) स्थापित किया (यस्मिन्) जिस बीजमें (विश्वानि) सर्व (भुवनानि) भूतजात (तस्थु) स्थित हुए. बीज स्थापित करनेमें स्मृतिका भी प्रमाण है —“अपएव ससर्जादौ तासु बीजमथाक्षिपत् तदण्डमभवद्धैमं सूर्यकोटिसमप्रभमिति ” ॥ सोही सर्वका आश्रय है, परंतु तिसका अन्य कोई आश्रय नहीं है. ॥ ३० ॥

[समीक्षा] यह भाष्यकारका कथन भी प्रमाणबाधित, और ऋग्वेद अष्टक ८ के, तथा यजुर्वेद अध्याय ३१ के कथनसें विरुद्ध है. क्योंकि, वहां परमेश्वरकी नाभिमें पाणीनें बीजरूप गर्भ स्थापित किया, इत्यादि वर्णन नहीं है. बाकी समीक्षाप्रायः (अ) समीक्षावत् जाननी. यहां यह भी कहना योग्य है कि, वेदोंके अर्थ सर्वज्ञ कथित नहीं है; जिसको जैसें रुचे है, वैसेही अर्थ वह लिख देता है. माधव, महीधर, ब्रह्मकुशलो-दासी, दयानंदसरस्वतीवत् । यदि वेदोंके ऊपर सर्वज्ञकथित प्राचीन अर्थ नियमानुसार होते तो, ऐसें कभी न होता. परंतु प्रथम वेदही सर्वज्ञके कथनकरे सिद्ध नहीं होते हैं तो, अर्थोंका तो क्याही कहना है? परस्पर विरुद्ध होनेसें. और यही असर्वज्ञकथित वेद होनेमें बड़ा भारी दृढ प्रमाण है. इसवास्ते सज्जन पुरुषोंको तटस्थ होकर सत्यासत्यका निर्णय करना चाहिये.

ब्रह्म ह ब्राह्मणं पुष्करे ससृजे, स खलु ब्रह्मा सृष्टश्चिंतामापेदे, केना-हमेकाक्षरेण सर्वांश्च कामान्, सर्वांश्च लोकान्, सर्वांश्च देवान्, सर्वांश्च वेदान्, सर्वांश्च यज्ञान्, सर्वांश्च शब्दान्, सर्वांश्च व्युष्टीः, सर्वाणि च

(क) जहां ऐसा संकेत होवे वहां भाष्यकारका अर्थ जानना.

भूतानि, स्थावरजंगमान्यनुभवेयमिति, सब्रह्मचर्यमचरत्, स ॐमित्येतदक्षरमपश्यत्, द्विवर्णं, चतुर्मात्रं, सर्वव्यापी, सर्वविश्वयातयाम, ब्रह्म व्याहृतिं, ब्रह्मदैवतं, तथा सर्वाश्च कामान्, सर्वाश्च लोकान्, सर्वाश्च देवान्, सर्वाश्च वेदान्, सर्वाश्च यज्ञान्, सर्वाश्च शब्दान्, सर्वाश्च व्युष्टीः, सर्वाणि च भूतानि, स्थावरजंगमान्यन्वभवत् इति ॥

गोपथ० पू० भा० प्रपा० १ वा० १६ ॥

भाषार्थः—(ब्रह्म ह ब्रह्माणं पुष्करे समुद्रे) ह प्रसिद्धार्थमें अव्यय है। ब्रह्म जो है सच्चिदानंद परमात्मा उसने ब्रह्माको (पुष्करे) अर्थात् नाभिकमलमें उत्पन्न किया (स खलु ब्रह्मा सृष्टिश्चिन्तामापेदे) सो वह ब्रह्माजी उत्पन्न होकर यह शोचने लगेकि (केनाहमेकाक्षरेण) मैं किस एक अक्षरकरके (सर्वाश्च कामान्) संपूर्णकामनाओंको (सर्वाश्च लोकान्) संपूर्णपृथिवीआदि लोकोंको और (सर्वाश्च देवान्) संपूर्ण अग्निआदि देवताओंको तथा (सर्वाश्च वेदान्) संपूर्ण ऋगादिवेदोंको और (सर्वाश्च यज्ञान्) संपूर्ण अग्निष्टोमादि यज्ञोंको तथा (सर्वाश्च शब्दान्) संपूर्ण वैदिक और लौकिकादि शब्दोंको और (सर्वाश्च व्युष्टीः) संपूर्ण समुद्धियोंको तथो (सर्वाणि च भूतानि) संपूर्ण जो भूत हैं स्थावरजंगमादि तिनको कैसें (अनुभवेयम्) अनुभव अर्थात् उत्पन्न करूं? ऐसे विचार कर (सब्रह्मचर्यमचरत्) सो ब्रह्मा ब्रह्मचर्यको धारण करता भया अर्थात् ब्रह्माजीने ब्रह्मचर्य धारण किया तिस ब्रह्मचर्यके प्रभावसे (स ॐमित्येतदक्षरमपश्यत्) ब्रह्माजीने ॐम् इस अक्षरका अवलोकन किया कैसा है यह ॐम्कार कि (द्विवर्णं चतुर्मात्रं) स्वर और व्यंजन ये दो प्रकारके अक्षर हैं जिसमें और अकार उकार मकार तथा अर्द्धबिंदु यह चार मात्रा हैं जिसमें फिर कैसा है कि सर्वव्यापी और सर्वविभु तथा (अयातयाम) अर्थात् विकाररहित ऐसा ब्रह्मस्वरूप और (ब्रह्मव्याहृतिं) अर्थात् ब्रह्मका नामरूप और (ब्रह्मदैवतं) ब्रह्माही है देवता जिसका ऐसे ॐम्कारके अवलोकनमात्रसे (सर्वाश्च कामान्) संपूर्ण कामना और संपूर्णलोक तथा संपूर्ण देवता और संपूर्ण वेद तथा संपूर्ण यज्ञ और संपूर्ण शब्द

और संपूर्ण द्युष्टी अर्थात् समृद्धियें तथा (सर्वाणि च भूतानि स्थावरजंगमान्यन्वभवत्) संपूर्ण जो भूत है स्थावरजंगमादि तिनको अनुभव अर्थात् उत्पन्न करते भये इति ॥

[समीक्षा] यह कथन ऋग्वेद यजुर्वेद दोनोंसे विरुद्ध है. तथा इसमें लिखा है, ब्रह्माजी ब्रह्मचर्य धारण करते भए, ब्रह्माजीने जो ब्रह्मचर्य धारण करा तिससे पहिले क्या ब्रह्माजीके ब्रह्मचर्य नहीं था ? क्या ब्रह्माजी स्त्री-योंसे भोग विलास विषय सेवन करते थे ? वा अन्यकोइ कुचेष्टा करते थे ? जिससे ब्रह्माजी ब्रह्मचारी नहीं थे, जो पीछेसे ब्रह्मचर्य धारण करना पड़ा. तथा ब्रह्माजीने चिंता करी, पीछे उँकारको देखा, तिसके देखने-मात्रसेही जो कुछ रचना था सो सर्व कुछ रच दिया, इत्यादि कथन ऋग्वेद यजुर्वेद इन दोनोंसेही विरुद्ध है. क्योंकि, पूर्वोक्त वेदोंमें इस कथनका गंध भी नहीं है; इसवास्ते विरुद्ध है. एतावता युक्तिविरुद्ध मिथ्यारूप होनेसे त्याज्य है. ॥ २ ॥

हिरण्यगर्भःसमवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

सदाधार पृथिवीं यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

य० वा० सं० अ० १३ मं० ४ ॥

(अ)-(हिरण्यगर्भः) जो कि मनुस्मृतिमें लिखा है कि (अप एव सप्तर्जदौ तासु बीज मवास्तृजत् ॥ तदण्डमभवद्वैमं सहस्रांशुसमप्रभम् । तस्मिञ्जले स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः इति) उसीका मूलभूत यह मंत्र है सो देखिये (हिरण्यगर्भः) हिरण्य जो सुवर्ण तिसके समान वर्ण है जिसका ऐसा जो पूर्वकालमें उत्पन्न हुआ अंड तिसके गर्भमें स्थित जो ब्रह्मा सो कहा जाय हिरण्यगर्भ अर्थात् प्रजापतिः सो वह (अग्रे) अर्थात् जगदुत्पत्तिसे पहिले (समवर्तत) भलीप्रकारसे वर्तमान था. और वही (भूतस्य जातः) जातः अर्थात् उत्पन्न होकर संपूर्ण भूतप्राणियोंका (पतिरेक आसीत्) एक आपही (पतिः) अर्थात् पालक होता भया (सदाधार पृथिवीं या मुतेमां) सो वही पृथिवी अर्थात् अंतरिक्षलोकको और

(द्यां) अर्थात् स्वर्गलोकको तथा (उत इति वितर्के) इमां इस भूमिलोकको (दाधार) त्वजादित्वाद्दीर्घः । धारण करता भया और (पृथिवी) यह अंतरिक्ष (आकाश) का नाम है सो यास्कमुनिप्रणीत निघंटुके अ० १ खं० ३ में ९ नवमा नाम है (कस्मै देवाय हविषा विधेम) कः नाम प्रजापतिका है इससे (कस्मै) अर्थात् प्रजापतिके लिये हम हविको (विधेम) दद्याः—प्रदान करते हैं अथवा तिस हिरण्यगर्भको परित्याग कर हम (कस्मै) किसकेलिये हविः प्रदान करें यह इस प्रकार लौकिक अर्थ कर लेना ॥

[समीक्षा] यह यजुर्वेदका मंत्र, ऋग्वेग यजुर्वेद गोपथब्राह्मणसें विरुद्ध है. क्योंकि, इन पूर्वोक्त तीनों स्थानोंके पूर्वोक्त मंत्रमें ब्रह्माजी अंडेमें उत्पन्न हुए ऐसा नहीं कहा है, और इस श्रुतिमें ब्रह्माजी अंडेमें उत्पन्न हुए लिखा है, इसवास्ते यह तीनों सर्वज्ञ भगवान्के कथन करे हुए नहीं सिद्ध होते हैं. और जो इसमें कथन है, सो युक्तिप्रमाणसें विरुद्ध है, इसीवास्ते अपने २ मनःकल्पित अर्थ इसके लोक करते हैं, जैसे कि, पूर्वोक्त अर्थमें ब्रह्मकुशलोदासीने करे है. क्योंकि, पूर्वोक्त अर्थ भाषानुसार नहीं है. जो लौकिक अर्थरूप भावार्थ उदासीजीने निकाला है, सो भाष्यकारको न पाया. शोक !! ऐसे बिहुदे शास्त्रोंको भी लोक परमेश्वरकेही कथन किये मानते है; यदि जिसने जो अर्थ किया सोही खरा (सर्वज्ञोक्त प्राचीन अर्थोंके न होनेसें, और यदि है तो, बताने चाहिए. क्योंकि, सांप्रत कालमें जो झगड़ें हो रहे हैं, प्राचीन अर्थोंके न होनेसेंही हो रहे हैं. यदि कहोंगे, प्राचीन अर्थ थे तो सही, परंतु इस समय है नहीं. तो सिद्ध हुआ वेद भी नहीं है. किसीने वेदका नाम रखके पुस्तक जगत्में प्रसिद्ध किया है, अर्थवत्. यदि वेदके पुस्तक हैं तो, उसके अर्थ तुम नहीं जान सक्ते हो. जब अर्थही नहीं जान सक्ते हो तो, तुमको कैसे निश्चय हुआ कि यह ईश्वरोक्त है?) मानोंगे तो, यह अर्थ भी तुमको मानना पड़ेगा. कल्पनाद्वारा अर्थ सिद्ध होनेसें—प्राचीन मुनिप्रणीत अर्थोंके न होनेसें—(उत इति वितर्के) (हिरण्यगर्भः) जो अंडेसें उत्पन्न हुआ, और

जिसको प्रजापति कहते हैं, सो (अग्रे) जगदुत्पत्तिसं पहिले (समवर्तत) भलीप्रकारें वर्तमान था ? नहीं था; जगदभावे पाणीअंडादिकोंका भी अभाव होनेसें. तथा सो प्रजापति (जातः) उत्पन्न हो कर (भूतस्य) संपूर्ण भूतप्राणियोंका (एकः) एक आपही (पतिः) पालक (आसीत्) होता भया ? नहीं. जगत्के अभावसें पाणीअंडादिकोंका अभाव सिद्ध होता है, अंडेके अभावसें प्रजापतिका अंडेसें उत्पन्न होना असिद्ध है, 'मूलं नास्ति कुतः शाखेतिवचनात्.' यदि प्रजापतिका उत्पन्न होनाही संभव नहीं होता है तो, जगत्का पालनपणा कहांसं होवे ? असत्तूरूप होनेसें; शशशृंगवत्. तथा अंडजमे जगत पालनेकी शक्ति भी नहीं सिद्ध होती है, चटकवत्. ऐसैही उत्तरोत्तर वितर्क जान लेने । तथा (सः) पूर्वोक्त प्रजापति (पृथिवीं) आकाशको (द्यां) स्वर्गलोकको और (इमां) इस भूमिलोकको (दाधार) धारण करता भया ? नहीं. पालनादिके असिद्ध होनेसें (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे पूर्वोक्त प्रजापतिदेवकेलिये हम हविःप्रदान करीए ? नहीं. यथार्थ देवपणा सिद्ध न होनेसें. इत्यादि अनेक कल्पना पूर्वोक्त श्रुतियोंमें हो सकती है, और इसीवास्ते वेदके सत्यार्थका निश्चय नहीं हो सकता है. स्वामी दयानंदसरस्वतीने तो कल्पना करनेमें कसर नहीं रखी है, परंतु सांप्रतकालमें कइ सनातनधर्मी भी मनमाने उलट पालट अर्थ करके छपवा रहे हैं. इससें सिद्ध होता है कि, वेदका सत्यार्थ कोइ नहीं जानता है. और अर्थोंके निश्चयविना वेद ईश्वरोक्त सत्योपदेशक पुस्तक है, यह भी निश्चय नहीं हो सकता है.

अब पूर्वोक्त हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे इसश्रुतिका जो अर्थ स्वामीदयानंदजीने कल्पन करा है, सो लिख दिखाते हैं.

(व) हे मनुष्यो ! जैसे हमलोग जो इस (भूतस्य) उत्पन्न हुए संसारका (जातः) रचने और (पतिः) पालन करनेहारा (एकः) सहायकी अपेक्षासे रहित (हिरण्यगर्भः) सूर्यादि तेजोमय पदार्थोंका आधार (अग्रे) जगत् रचनेके पहिले (समवर्तत) वर्तमान (आसीत्) था (सः) वह (इमां) इस संसारको रचके (उत) और (पृथिवीं) प्रकाशरहित

और (द्यां) प्रकाशसहित सूर्यादिलोकोंको (दाधार) धारण करता हुआ उस (कस्मै) सुखरूप प्रजा पालनेवाले (देवाय) प्रकाशमान परमात्माकी (हविषा) आत्मादिसामग्रीसें (विधेम) सेवामें तत्पर हैं वैसे तुम लोग भी इस परमात्माका सेवन करो ॥ ४ ॥-१-

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुमको योग्य है कि इस प्रसिद्ध सृष्टिके रचनेसें प्रथम परमेश्वरही विद्यमान था, जीव गाढनिद्रा-सुषुप्तिमें लीन थे, जगत्का कारण अत्यंत सूक्ष्मावस्थामें आकाशकेसमान एक रस स्थिर था, जिसने सब जगत्को रचके धारण किया और अंत्यसमयमें प्रलय करता है, उसी परमात्माको उपासनाके योग्य मानो ॥ ४ ॥-२-

तथा सत्यार्थप्रकाशसप्तमसमुल्लासे—हे मनुष्यो ! जो सृष्टिके पूर्व सब सूर्यादि तेजवाले लोकोंका उत्पत्तिस्थान आधार और जो कुछ उत्पन्न है, हुआ, था, और होगा उसका स्वामी था, है, और होगा; वह पृथिवीसें लेके सूर्यलोकपर्यंत सृष्टिको बनाके धारण कर रहा है, उस सुखस्वरूप परमात्माहीकी भक्ति जैसें हम करें वैसें तुम लोग भी करो ॥ १ ॥-३-

तथाचाष्टमसमुल्लासेपि—हे मनुष्यो ! जो सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थोंका आधार और जो यह जगत् हुआ है, और होगा उसका एक अद्वितीय पति परमात्मा इस जगत्की उत्पत्तिके पूर्व विद्यमान था और जिसने पृथिवीसें लेके सूर्यपर्यंत जगत्को उत्पन्न किया है, उस परमात्मा देवकी प्रेमसें भक्ति किया करें ॥ ३ ॥-४-

तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायां सृष्टिविद्याविषये—हिरण्यगर्भ जो परमेश्वर है वही एक सृष्टिके पहिले वर्तमान था, जो इस सब जगत्का स्वामी है और वही पृथिवीसें लेके सूर्यपर्यंत सब जगत्को रचके धारण कर रहा है, इसलिये उसी सुखस्वरूप परमेश्वर देवकीही हम लोग उपासना करें, अन्यकी नहीं ॥ १ ॥ -५-

[समीक्षा] पूर्वोक्त पांचप्रकारके अर्थोंको यदि शोचे जावे तो, स्वामी दयानंदजीके अर्थ मनःकल्पित गण्यरूपसें और कुछ भी सिद्ध नहीं कर सके हैं. वाहजी! वाह !! अर्थ क्या ठहरें, गुड्डियोंका खेल हुआ, जो मनमें

आया सो मान लिया. अपरंच स्वामी दयानंदजीने अपने मनःकल्पित मतको दृढ़ करनेकेलिये अर्थ तो उलटे लिये, परंतु शोचा नहीं कि यह अर्थ हमारे इष्टको बाधक है कि साधक ? क्योंकि, दयानंदजीकी प्रतिज्ञा है कि, वेद ईश्वरोक्त है, तो, अब शोचना चाहिये कि, यदि वेद सत्य २ ईश्वरोक्तही है तो, जो दयानंदजीने श्रुतिका अर्थ लिखा है कि “हे मनुष्यो ! जैसें हम सेवामें तत्पर हैं, वैसें तुम लोग भी इस परमात्माका सेवन करो.” क्या दयानंदजीके ईश्वरसें भी कोई बड़ा परमात्मा है ? जिसकी सेवामें वेदवक्ता ईश्वर भी तत्पर है, और लोगोंको उपदेश करता है. तथा वेदके कथन करनेवाले ईश्वर भी बहोत सिद्ध होते हैं (विधेम) हम तत्पर हैं, ऐसें बहुवचन अंगीकार करनेसें. यदि कहो कि, वेद प्राप्त करनेवाले ऋषियोंका यह कहना है कि, जैसें हम परमात्माकी सेवामें तत्पर हैं, वैसें तुम लोग भी परमात्माका सेवन करो. तब तो सिद्ध हुआ कि, वेद ईश्वरोक्त नहीं, किंतु ऋषिप्रणित है. अपरंच ऋषियोंने पूर्वोक्त वर्णन किया कि, जो परमात्मा सृष्टिका कर्त्ता, धर्ता, और पालक है जो सृष्टिसें पहिले एक सहायकी अपेक्षारहित था इत्यादि; तो क्या ऋषियोंने यह सर्व व्यवस्था जान लीनी ? यदि जान लीनी तो, वे ऋषि सर्वज्ञ हुए; यदि वे सर्वज्ञ हुए तो, फेर दयानंदजीका जो मानना है कि, ईश्वरव्यतिरिक्त कोई भी जीव सर्वज्ञ नहीं हो सक्ता है, सो कैसें सत्य होगा ? और यदि नहीं जान लीनी तो, बिना जाने तिन ऋषियोंने पूर्वोक्त वर्णन कैसें करा ?

तथा वेदमें, सृष्टिकी उत्पत्तिका वर्णन, सृष्टिकी उत्पत्ति करनेवालेका वर्णन, जिन ऋषियोंको वेदज्ञान प्राप्त भया, लोकोंको उपदेशादि वर्णन हैं, तो, इसमें सिद्ध हुआ कि, वेद सृष्ट्यादिके अनंतरही बने हैं. क्योंकि, स्वामी दयानंदजी सत्यार्थप्रकाशके सप्तम समुल्लासमें लिखते हैं कि—“इतिहास जिसका हो उसके जन्मके पश्चात् लिखा जाता है वह ग्रंथ भी उसके जन्मे पश्चात् होता है—इत्यादि” ॥ यदि ऐसें हुआ तो, वेदोंका अनादिपणा ऐसा हुआ, जैसा कि वंध्यास्त्रीके पुत्रका विवाह होना.

तथा दयानंदजी लिखते हैं कि, “इस प्रसिद्ध सृष्टिके रचनेसें प्रथम परमेश्वरही विद्यमान था जीव गाढनिद्रा—सुषुप्तिमें लीन थे और जगत्का कारण अत्यंत सूक्ष्मावस्थामें आकाशकेसमान एकरस स्थिर था—इत्यादि”—अब हम पूछते हैं कि, यदि प्रथम आकाशही नहीं था तो, दयानंदजीका परमात्मा, सुषुप्तिमें लीन होनेवाले जीव, और जगत्का कारण, यह कहां रहते थे ? आकाशविना कोई भी पदार्थ नहीं रह सक्ता है. और आकाशकी उत्पत्ति वेदोंमें प्रकटपणे कही है. ‘नाभ्या आसीदन्तरिक्षमिति वचनात्’ ॥ * और दयानंदजीने भी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाके वेदविषय विचारके ४९ पत्रोपरि लिखा है कि “परमात्माके अनंत सामर्थ्यसें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी आदि तत्त्व उत्पन्न हुए हैं—इत्यादि ॥” तथा सृष्टिविद्याविषयके ११६-११७ पत्रोपरि ॥ “यदा कार्यं जगन्नोत्पन्नमासीत्तदाऽसत्सृष्टेः प्राक् शून्यमाकाशमपि नासीत् ॥ शून्यनाम आकाश अर्थात् जो नेत्रोंसे देखनेमें नहीं आता सो भी नहीं था” ॥ तथा सत्यार्थप्रकाशके सप्तम समुल्लासके लेखमें अतीतानागतवर्तमानकालके सर्व पदार्थोंका स्वामी परमात्माको लिखा है, अष्टम समुल्लासके लेखमें वर्तमान और अनागतकालके पदार्थोंका स्वामी लिखा है, और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाके लेखमें वर्तमान जगत्का स्वामी परमात्माको लिखा है. हम अनुमान करते हैं कि, यदि और थोडासा दिव्यज्ञान परमात्मा दयानंदजीके हृदयमें स्थापन कर देता तो, फेर परमात्माको स्वामीपणा करनेकी कुछ आवश्यकता न रहती ! इत्यलं विस्तरेण ॥

(क) हिरण्यपुरुषरूप ब्रह्मांडमें गर्भरूपकरके अवस्थित प्रजापति हिरण्यगर्भ, प्राणिजातकी उत्पत्तिसें पहिले स्वयंमव शरीरधारी होता भया, सोही उत्पन्न हुआ थाका एकेलाही उत्पन्न होनेवाले सर्व जगत्का पति होता भया, सोही आकाश स्वर्गलोक और इस भूमिको अर्थात् तीनों

* सन १८८४ के छपे सत्यार्थप्रकाशके ९८७ पत्रोपरि स्वमंतव्यामंतव्य प्रकाशमें भी दयानंदजीने आकाशको नित्य वा अनादि नहीं माना है, किंतु अनादि पदार्थ तीन हैं, एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत्का कारण. इत्यादि ॥

लोकोंको धारण करता है, इसवास्ते प्रजापति देवकेलिये हम हविःप्रदान करते हैं.

[समीक्षा] यह भाष्यकारका अर्थ पूर्वोक्त अर्थोंसे विलक्षणही है, तथा यजुर्वेद अध्याय १७ के मंत्रसे भी विरुद्ध है. तथा इसश्रुतिसे मालुम होता है कि, इसका कहनेवाला परमात्मा प्रजापतिसे भिन्न है. क्योंकि, इसमें लिखा है कि, जो हिरण्यगर्भ सृष्टिसे पहिले आप शरीरधारी हुआ, जो उत्पन्न होनेवाले सर्वजगत्का पति हुआ, और तीन लोकों जो धारण करता है, तिस प्रजापतिदेवकेलिये, हम, हविःप्रदान करते हैं, इत्यादि.

तथा इसी श्रुतिका अर्थ ऋग्वेद अष्टक ८। अ० ७। व० ३। मं० १०। अ० १०। सू० १२१ में सायणाचार्यने ऐसे लिखा है—हिरण्यमय अंडका गर्भ-भूत जो प्रजापति सो कहावे हिरण्यगर्भ, तथा च तैत्तिरीयकं—“प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः प्रजापतेरनुरूपत्वायेति।” अथवा हिरण्यमय अंड गर्भवत् है उदरमें जिसके, ऐसा जो सूत्रात्मा, सो कहावे हिरण्यगर्भ. सो हिरण्यगर्भ (अग्रे) प्रपंचोत्पत्तिके पहिले (समवर्तत) मायावशसे सृजन करनेकी इच्छावाले परमात्मासे उत्पन्न होता भया. यद्यपि परमात्माही हिरण्यगर्भ है, तो भी, तदुपाधिभूत आकाशादि सूक्ष्मभूतोंको ब्रह्मसे उत्पन्न होनेसे तदुपहित भी उत्पन्न हुआ ऐसे कहीए हैं. सो हिरण्यगर्भ (जातः) जातमात्रही, उत्पन्न हुआ थकाही (एकः) अद्वितीय एकेलाही (भूतस्य) विकारजात ब्रह्मांडादि सर्वजगत्का (पतिः) ईश्वर (आसीत्) होता भया. नही केवल पतिही हुआ, किंतु सो हिरण्यगर्भ (पृथिवीं) वीस्तीर्ण (द्यां) स्वर्गलोककों ‘उतापिच’ और (इमां) हमारे दृश्यमान पुरोवर्तिनी इस भूमिको, अथवा ‘पृथिवीं’ आकाशको स्वर्गलोकको और भूमिको (दाधार) धारयति—धारण करता है (कस्मै) यहां किं शब्द अनिर्ज्ञातस्वरूपवाला होनेसे प्रजापतिमें वर्तता है। अथवा सृष्टिकेवास्ते जो कामना करे सो कहावे कः। अथवा कं-सुखं अर्थात् सुखरूप होनेसे कः कहीए हैं। अथवा इंद्रने पूछा हुआ प्रजापति, मेरा महत्व

तुझको देके 'अहं कः' मैं कैसा होऊं? ऐसा कहता हुआ, तब इंद्रने जबाब दिया कि, जो तू यह कहता है कि, 'अहं कः स्यामिति' मैं क्या होऊं? तदेव सोही तू हो इस कारणसे 'कः इति' क शब्दसे प्रजापति कथन करीए हैं। "इंद्रो वै वृत्रं हत्वा सर्वा विजितीर्विजित्याब्रवीत्" इत्यादि ब्राह्मणका यहां अनुसंधान करना। जब सो किं शब्द तब सर्वनाम होनेसे स्मैभाव सिद्ध हैं. और जब यौगिक है, तब व्यत्यय जानना. कं-प्रजापति (देवाय) देवं-दानादिगुणयुक्त देवकों (हविषा) प्रजापतिसंबंधी पशुके वपारूपेण-कालेजारूपकरके, अथवा एककपालात्मक पुरोडाशकरके (विधेम) वयमृत्विजः—हम ऋत्विज 'परिचरेम' परिचरणकर्म करीए हैं.

[समीक्षा] पूर्वोक्त अर्थोंसे यह सायणाचार्यका अर्थ औरहीतरेंका है. अब वाचक वर्गको हम नम्रतापूर्वक कहते हैं कि, दोनों भाष्यकारोंके अर्थोंमें कितना बड़ा विसंवाद पडता है. तथा ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकाके कर्त्ताने और भाष्यभूमिकेंदुके कर्त्ताने कैसे २ अर्थ करे हैं, सो आपही विचार कीजीएं. जब वेदोंके अर्थोंकाही निश्चय नहीं होता है तो, वेद सत्योपदेशके कथन करे हुए हैं, वा अनादि है, वा ऋषियोंद्वारा जगत्में प्रवर्तन हुए हैं, इत्यादि कैसे माना जावे? अब हम ज्यादा लिखना छोडकरके श्रुतियां, और संक्षेपमात्र उनोंकी समीक्षा, और परस्पर विरुद्धता मात्र लिखके अपनी नहीं बंद होती लेखनीको, जोरावरी बंद करनी चाहते हैं. क्योंकि, वेदोंका बहोता फरोलना भस्मथन्नाग्नि उद्घाटनतुल्य है.

सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे ।

दधे ह गर्भमृत्विजं यतो जातः प्रजापतिः ॥

६३ ॥ य। वा। सं। अ० २३। मं० ६३ ॥

भाषार्थः—(सुभूः) सुंदर है भुवन जिसका सो कहावे सुभू और (स्वयंभूः) जो अपनी इच्छाहीसे शरीरको धारण कर शके सो कहावे स्वयंभू ऐसा जो परमात्मा सो (महत्यर्णवे) महान् जलसमूहमें (ऋत्वि-

यं) प्राप्तकालमें (ह) इति प्रसिद्ध (गर्भं दधे) उसने गर्भको धारण किया. कैसा है वह गर्भ कि (यतो जातः प्रजापतिः) जिसगर्भसे प्रजापति अर्थात् ब्रह्माजी उत्पन्न हुए. ॥ ६३ ॥

[सभाषा] प्रथम तो यह श्रुति पूर्वोक्त यजुर्वेद, ऋग्वेद, गोपथादिकी श्रुतियोंसे विरुद्ध है. तथा परमात्माका सुंदर भुवन रहनेका स्थान कहा, यह विरुद्ध है. क्योंकि, सर्वव्यापी परमात्माका कोई भी स्थान नहीं सिद्ध हो सक्ता है. और तिससमयमें तो आकाश भी नहीं था तो, विना आकाशके परमात्माका सुंदर भुवन कहाँ था ? तथा अपनी इच्छासे जो शरीरको धारण कर शके सो कहावे स्वयंभू, यह विशेषण प्रमाणबाधित है. क्योंकि, शरीरके विना मन और मनके विना इच्छा नहीं हो सकती है, यह प्रमाण सिद्ध है. इसवास्ते पूर्वोक्त व्युत्पत्ति स्वकपोलकल्पित है ॥ परमात्मा महाजलसमूहमें ऋतुकालमें गर्भ धारण करता भया, तिस गर्भसे प्रजापति ब्रह्माजी उत्पन्न भए इत्यादि—यह ऋग्वेद यजुर्वेद गोपथादिसे विरुद्ध है. क्योंकि, तिनमें अन्यथा कथन है, सो लिख आए हैं. । तथा परमात्माने जलसमूहमें गर्भ धारण करा, इत्यादि कहना भी महामिथ्या है. क्योंकि, उस समयमें तो न पृथिवी थी, और न आकाश था तो, जल किस वस्तुमें, और किस ऊपर ठहर रहा था ? फेर जब परमात्माको ऋतुकाल आया, तब जलके बीचमें गर्भ धारण करा—क्या परमात्माको स्त्रीधर्म हुआ था ? और जलके बीचमें गर्भ धारण करा, क्या गर्भ बहुत उष्ण था ? जिसकी गरमीसे जल न जाऊँ इस भयसे जलमें प्रवेश करके गर्भ धारण करा और सर्वव्यापी सच्चिदानंद अरूपी सर्वशक्तिमान निराकार एक परमात्मा जलमें गर्भ धारण करे, यह परस्पर विरुद्ध, और युक्तिप्रमाण बाधित नहीं है ? तथा तिस समयमें तो काल भी नहीं था तो, फेर परमात्माको ऋतुकाल किसतरें प्राप्त हुआ ? जेकर कहोंगे, यह तो अलंकार है, तो, ऐसे भ्रमजनक मिथ्या अलंकारके कहनेसे क्या सिद्धि भई ? जेकर अलंकारही कथन करना था तब तो, परमात्माको एक सुंदर यौवनवती स्त्री कथन करना था, और

तिसका एक पति कथन करना था, ऋतुकालमें तिस परमात्मारूप स्त्रीसे भोग-वीर्यनिषेक करना, पीछे गर्भ धारण करना, पीछे प्रजापति ब्रह्माजीका जन्म, इत्यादि कथन करते तो तुमारी कुछक किंचिन्मात्र अलंकारकी आकांक्षा भी पूर्ण होती. परंतु ऐसैं हैं नहीं, इसवास्ते यह अलंकार भी नहीं है. हे पाठकगणो ! तुम पक्षपातको छोड़ कर, और जरा नेत्र उन्मीलन करके विचार तो करो कि सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, त्रैलोक्यनाथ, करुणासमुद्र, कृतकृत्य अष्टादशदूषणरहित, परमात्मा, वीतरागका उपहास्य योग्य, और युक्तिप्रमाण बाधित, ऐसा कथन हो सक्ता है ? कदापि नहीं हो सक्ता है. ऐसी२ मिथ्या कल्पनाजाल खड़ी करके भव्य जीवोंको फसाय २ के अज्ञानीयोंने अपने वशप्रायः कर लिए हैं !!!

ऊपर जो समीक्षा करी है, सो ऋगादिभाष्यभूमिकेंदुनामक पुस्तकमें लिखे अर्थानुसार है. अब महीधरकृत वेददीप भाष्यमें जो अर्थ लिखा है, सो लिखते हैं.

(ह) प्रसिद्धार्थमें है (प्रथमः) सर्वका आदि आद्यंतरहित पुरुष (महति अर्णवे) कल्पांतकालसमुद्रमें (अंतः) मध्यमें (गर्भं दधे) गर्भको स्थापन करता भया. कैसा पुरुष ? (सुभूः) भली भूः-उत्पत्ति होवे जिससें सो सुभूः अर्थात् विश्व-जगत् उत्पन्न करनेवाला (स्वयंभूः) स्वयंभवतीति स्वयंभूः स्वेच्छाधृतशरीरः-अपनी इच्छासें शरीर धारण करनेवाला. कैसा है गर्भ ? (ऋत्वियं) ऋतुः प्राप्तेयस्य-ऋतु प्राप्त हुआ है जिसको अर्थात् प्राप्तकालम् (यतः) जिस गर्भसें (प्रजापतिः) ब्रह्मा (जातः) उत्पन्न भया-इति ॥ ६३ ॥ समीक्षाप्रायः पूर्ववत् ॥

अब दयानंदस्वामीका भी अर्थमात्र पूर्वोक्तश्रुतिका लिखते हैं ॥

हे जिज्ञासुजन ! (यतः) जिस जगदीश्वरसें (प्रजापतिः) विश्वका रक्षक सूर्य (जातः) उत्पन्न हुआ है और जो (सुभूः) सुंदर विद्यमान (स्वयंभू) जो अपने आप प्रसिद्ध उत्पत्ति विनाश रहित (प्रथमः) सबसें प्रथम जगदीश्वर (महति) बड़े विस्तृत (अर्णवे) जलोंसें संबद्ध हुए संसारके (अंतः) बीच (ऋत्वियम्) समयानुकूल प्राप्त (गर्भम्) बीजको (दधे) धारण करता है (ह) उसीकी सबलोग उपासना करें ॥ ६३ ॥

भावार्थः—यदि जो मनुष्यलोग सूर्यादिलोकोंके उत्तमकारण प्रकृति-
को और उस प्रकृतिमें उत्पत्तिकी शक्तिको धारण करनेहारे परमात्माको
जानें तो वे जन इसजगत्में विस्तृत सुखवाले हों ॥ ६३ ॥ इसकी समीक्षा
करनेकी हमको कुछ आवश्यकता नहीं है. क्योंकि, दयानंदजीके अर्थही
परस्पर समीक्षा कर रहे हैं. यदि कोई जिज्ञासु जन अंतर्दृष्टि लगाके विचार
करे तो, उसको स्वतोही मालुम हो जावे कि, दयानंदस्वामीका अर्थ निःके-
वल मनःकल्पित है. और केवल वेदोंका बिहुदापणा छीपानेका प्रयोजन है.
अष्टौ पुत्रासो अदितेः । ये जातास्तन्वः परि देवां उपप्रेत सप्तभिः । २ ।
परा माताण्डमास्यत् ॥ ७ ॥

तैत्तिरीयेआरण्यके १ प्रपाठके १३ अनुवाके ७ मंत्रः ॥
मित्रश्च वरुणश्च । धाता चार्यमा च । अंशश्च भगश्च । इन्द्रश्च
विवस्वाश्चेत्येते ॥ १० ॥ तै० आ० १ प्र० १३ अ० १० मंत्रः ॥

भाषार्थः—(अदितेः) अदितिदेवताके (अष्टौ पुत्रासः) अष्टसंख्याकाः पुत्रा
विद्यन्ते—आठ पुत्र हैं (ये) पुत्राः जे पुत्र (तन्वः परि) शरीरस्योपरि—शरीरके
उपर (जाताः) उत्पन्न हुए हैं और सा इत्यर्थः । तिनमेसैं (सप्तभिः) सात पुत्रों-
केसाथ (देवान्) देवताओंके (उपप्रेत) समीप प्राप्त होती भई (माता-
ण्डं) माताण्ड अर्थात् सूर्यनामा आठमे पुत्रको (परास्यत्) पराकृतवती-
त्यागती भई, अर्थात् तिस एक आठमे पुत्रको त्यागके अन्य सात पुत्रोंके
साथ अदिति देवलोकमें देवताओंके समीप गई. ॥ ७ ॥

अब तिन आठ पुत्रोंके नाम अनुक्रमकरके कहते हैं. मित्र १, वरुण २,
धाता ३, अर्यमा ४, अंशप, भग ६, इंद्र ७, और विवस्वान ८, (इत्येते)
मित्रवरुणादि ये आठ पुत्र कहें. ॥ १० ॥

[समीक्षा] इसमें अदितिके आठ पुत्र लिखे हैं, जिनमें सातमा पुत्र
इंद्र, और आठमा पुत्र सूर्य, लिखा है. । ऋग्वेदमें लिखा है कि, इंद्र प्रजा-
पतिके मुखसे उत्पन्न हुआ है, । और ऋग्वेद यजुर्वेद दोनोंहीमें लिखा है
कि, सूर्य प्रजापतिके नेत्रोंसे उत्पन्न हुआ है. । यह परस्पर विरुद्ध है. ॥

चंद्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽअजायत ।

श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥ वा० सं० अ० ३१॥

भाषार्थः—प्रजापतिके मनसैं चंद्रमा उत्पन्न भया, चक्षु (नेत्रों) सैं सूर्य उत्पन्न भया; वायु, और प्राण, ये दो, कानोंसैं उत्पन्न भए; और अग्नि मुखसैं उत्पन्न भया. ॥ १२ ॥

[समीक्षा] इस श्रुतिमें लिखा है कि, वायु और प्राण ये दोनों श्रोत्रसैं अर्थात् कर्ण (कानों) सैं उत्पन्न भए. और ऋग्वेदके आठमें अष्टकमें लिखा है कि, प्राणसैं वायु उत्पन्न भया. । तथा इस श्रुतिमें लिखा है कि, मुखसैं अग्नि भया, और ऋग्वेदमें लिखा है कि, प्रजापतिके मुखसैं इंद्र, और अग्नि, ये दोनों उत्पन्न भए. । यजुर्वेदमें इंद्रकी उत्पत्ति मुखसैं नहीं कही है, और ऋग्वेदमें कही है; यह परस्पर विरुद्धपणा है. ॥

*अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत् तत उच्छिष्टमश्नात् ।

सा गर्भमधत्त । तत आदित्या अजायन्त ॥

इतिगोपथपूर्व भागे० प्र० २ ब्रा० २५ ॥

भाषार्थः—(अदितिर्वै) वै, यह निश्चयार्थक अव्यय है, अर्थात् निश्चयार्थका बोध करता है. (अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत्) अदितिने प्रजा अर्थात् संतानकी उत्पत्तिकेलिये (ओदन) अर्थात् ब्रह्मौदन पकाया. (तत उच्छिष्टमश्नात्) तिसमेसैं उच्छिष्ट अर्थात् बचा हुआ जो यज्ञका शेषभाग उसको (अश्नात्) उसने खा लिया. (सा गर्भमधत्त) उसके खानेसैं अदिती गर्भको धारण करती भई. (तत आदित्या अजायन्त) तिस गर्भसैं द्वादश आदित्य उत्पन्न हुए. इति ॥

[समीक्षा] इस श्रुतिमें लिखा है कि, अदितिने यज्ञका रहा शेष अन्न भक्षण करनेसैं गर्भ धारण करा; यह भी प्रमाण बाधित है. क्योंकि, बिना पतिके संयोगसैं, वा योनिमें वीर्यके प्रक्षेपविना, कदापि स्त्री गर्भ

* इसही मतलबका वर्णन तैत्तिरीयब्राह्मणके १ अष्टकके १ अध्यायके ९ अनुवाकमें है ॥

धारण नहीं कर सकती है. और अदितिनें तो अन्नमात्रके भक्षण करनेसे गर्भ धारण करा, यह प्रमाणविरुद्ध नहीं तो, क्या है ? तिस अदितिके गर्भसें वारां आदित्य अर्थात् सूर्य उत्पन्न भए. ऋग्वेदयजुर्वेदमें लिखा है, प्रजापतिके नेत्रोंसें सूर्य उत्पन्न भया; यह परस्पर विरुद्ध है. ॥

यस्मादृचोअपातंक्षनयजुर्यस्मादपाकषन् । सामानि यस्य
लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम् । स्कम्मन्तम् ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥

अथर्वसं० । कां० १० । प्र० २३ । अ० ४ । मं० २० ॥

भाषार्थः—(यस्मादृचो०) जिस परमात्मासें ऋग्वेद उत्पन्न हुए हैं, और (यजुर्यस्मादपाकषन्) जिस परमात्मासें यजुर्वेद उत्पन्न हुआ है, और (सामानि यस्य लोमानि) सामवेद जिस परमात्माके रोम हैं, तथा (अथर्वाङ्गिरसो मुखम्) आंगिरस जो है अथर्ववेद सो जिसका मुख है. (स्कंभंतं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः) ऐसा जौ है स्कंभ अर्थात् सबका आश्रय भूत सो (कतमः) कौन है? (ब्रूहि) कह-कथन कर (स्वित् एव सः) वही केवल एक परब्रह्म परमात्माही है, और कोई नहीं. ॥

[समीक्षा] परमात्मासें ऋग्वेद उत्पन्न हुआ, और परमात्मासेंही यजुर्वेद उत्पन्न हुआ, सामवेद परमात्माके रोम है, और अथर्ववेद परमात्माका मुख है. । यदि ऋग्वेद यजुर्वेद परमात्मासें उत्पन्न हुए हैं, तो क्या सामवेद और अथर्ववेद परमात्मासें नहीं उत्पन्न हुए हैं? जो उनको रोम, और मुख कहा ! यदि सामवेद परमात्माके रोम, और अथर्ववेद परमात्माका मुख ऐसेंही कथन करना था तो, ऋग्वेद शिर, और यजुर्वेद बाहु, यह भी कह देना था ? वा अन्य कोई अंग कहने थे. क्योंकि, यह दोनो वेद भी तो, परमात्माके अंग होने चाहिए; सामअथर्ववेदवत्. नहीं तो, उन दोनोंको भी रोम मुख न कहना चाहिए; इन चारोंमें क्या विशेष है ? जो दो वेदोंको परमात्मासें उत्पन्न हुए कहे; तीसरेको रोम और चौथेको मुख कह दिया. अन्य तो किंचित् भी विशेष नहीं, परंतु सोमव-

ह्रीके नशेमें वा वाजपेय सौत्रामण्यादियज्ञोंमें ऋषियोंने मदिरापान करा तिसके नशेमें आ कर जो मनमें आया सो विनाविचारे उच्चारण कर दिया; यह कारण तो हो सका है, अन्य नहीं. होवे तो, बतला देना चाहिए. तथा ऋग्वेदयजुर्वेदमें, मानस यज्ञ देवताओंने करा, तिस यज्ञसे वेदोंकी उत्पत्ति हुई लिखा है, यह परस्पर विरुद्ध है.

एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यद्वेदो
यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इत्यादि ॥

शंकां०१४। अ। ब्रा ४। क १० ॥

इसश्रुतिका भावार्थ यह है कि, ऋगादिचारोंवेद परमात्माके उत्स्वासरूप है। अब देखीए !! ऋग्वेदयजुर्वेदमें तो लिखा है, चारों वेद मानस यज्ञसे उत्पन्न हुए; अथर्ववेदमें लिखा है, सामवेद परमात्माके रोम हैं, और अथर्ववेद परमात्माका मुख है; तथा इसश्रुतिमें चारोंकोही परमात्माके उत्स्वास कहे. यह परस्पर विरुद्ध नहीं तो, क्या है? तथा अन्यजगें लिखा है, अग्निसें ऋग्वेद, वायुसे यजुर्वेद, और सूर्यसे सामवेद, आकर्षण करे—खैंचके निकाले. इत्यादि वेदोंमें जो कथन हैं, सो प्रमाण बाधित है. इसवास्तेही प्रेक्षावानोंको अंगीकार करने योग्य नहीं है.

प्रजापतिरकामयत प्रजायेयभूयान्त्स्यामिती । स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा मांल्लोकानसृजत । पृथिवीमन्तरिक्षं दिवं । सतांल्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितसेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्त । अग्निरेव पृथिव्या अजायत । वायुरन्तरिक्षात् । आदित्योदिवस्तानि ज्योतींष्यभ्यतपत् तेभ्योऽभितसेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त । ऋग्वेद एवाग्नेरजायत । यजुर्वेदो वायोः । सामवेद आदित्यादित्यादि ॥ ऐ० ब्रा० पं० ५ । कं० ३२ ॥

भाषार्थः—(प्रजापतिः) प्रजापति जो ब्रह्मा सो (अकामयत) इच्छा करता हुआ कि (प्रजायेय) मैं उत्पन्न हो कर (भूयान्त्स्यामिति) बहुत प्रकारका होऊं ऐसे विचार कर (स तपोऽतप्यत्) सो तप करत हुआ (स तपस्तप्त्वा) सो तप करके (इमान् लोकान् असृजत) इन तीन लोकोंको उत्पन्न करता हुआ. सोही दिखावे हैं. (पृथिवीं) एक पृ-

पृथिवीलोकको (अंतरिक्षम्) दुसरे अंतरिक्ष (आकाश) लोकको, और तीसरे (दिवम्) स्वर्गलोकको. फिर प्रजापति (तान् लोकान् अभ्यतपत्) तिन तीनों लोकोंको तप कराता हुआ (तेभ्यः अभितप्तेभ्यः त्रीणि ज्योतींषि अजायंत) तपके करनेसे तिन पृथिव्यादिकोंसे तीन ज्योति, अर्थात् प्रकाशात्मक तीन देवते उत्पन्न हुए; सोही दिखाते हैं. (अग्निरेव पृथिव्याः) अग्निदेवता पृथिवीसे (अजायत) उत्पन्न होता भया (वायुरंतरिक्षात्) अंतरिक्ष (आकाश)से वायु, और (आदित्योदिवः) स्वर्ग लोकसे आदित्य (सूर्य) उत्पन्न हुआ. फिर प्रजापति (तानि ज्योतींषि अभ्यतपत्) तिन तीनों ज्योति अग्नि आदिको तप कराता हुआ (तेभ्यः अभितप्तेभ्यः त्रयः वेदाः अजायंत) तिन अग्न्यादिकोंसे तप करानेसे तीनों वेद उत्पन्न हुए; सोही दिखाते हैं. (ऋग्वेदः एव अग्नेः) ऋग्वेद अग्निसे (अजायत) उत्पन्न होता भया, और (यजुर्वेदः वायोः) यजुर्वेद वायुसे, और (सामवेदः आदित्यात् इति) सामवेद आदित्यसे उत्पन्न हुआ. । इति ॥

प्रजापतिर्वै इदमग्र आसीत् । एक एव । सोऽकामयत् । साम्प्रजायेयेति । सोऽश्राम्यत् । स तपोऽतप्यत् । तस्माच्छ्रान्तात्ते पानात् त्रयो लोका असृज्यन्त । पृथिव्यंतरिक्षं द्यौः ॥ १ ॥ स इमांस्त्रींलोकानभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्ताग्निर्योयं पवते सूर्यः ॥ २ ॥ तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ॥ ३ ॥

शतपथकां० ११ । अ० ५ । ब्रा० ३ । कं० १ । २ । ३ ॥

भाषार्थः—(प्रजापतिर्वै) वै यह निश्चयार्थक अव्यय है (अग्ने) जगत् उत्पत्तिसे पहिले (एकः एव) एकही केवल प्रजापति (आसीत्) था, और कोई नहीं (सः अकामयत्) सो प्रजापति कामना अर्थात् इच्छा करता हुआ (सांप्रजायेयेति) कि, मैं अनेकरूपोंसे उत्पन्न होऊं (सः अश्राम्यत् सः तपः अतप्यत्) सो प्रजापति शांतचित्त हो कर तप करता भया (तस्मात् श्रान्तात् ते पानात्) तिस चित्तकी स्थिरता और तपके करनेसे (त्रयः लोकाः

असृज्यन्त) तीनों लोक उत्पन्न किये; सोही दिखाते हैं, (पृथिवी अंतरिक्षं द्यौः) एक पृथिवीलोक, दूसरा अंतरिक्ष (आकाश) लोक, और तीसरा स्वर्गलोक ॥ १ ॥ इन तीनों लोकोंको उत्पन्न करके फिर (सः इमान् त्रीन् लोकान् अभितताप) सो प्रजापति इन तीनों लोकोंको तप करता हुआ, तब (तेभ्यः तप्तेभ्यः त्रीणि ज्योतींषि अजायन्त) तप करनेसें तिन तीनोंसें तीन ज्योति अर्थात् प्रकाशात्मक तीन देवते उत्पन्न हुए; सोही दिखाते हैं, (अग्निः यः अयं पवते सूर्यः) एक अग्नि, दूसरा जो यह संपूर्ण विश्वको पावन-पवित्र करता है सो वायु, और तीसरा सूर्य ॥ २ ॥ (तेभ्यः तप्तेभ्यः) तपके करनेसें तिन तीनों देवताओंसें (त्रयः वेदाः अजायन्त) तीनों वेद उत्पन्न होते भए; सोही दिखाते हैं. (अग्नेः ऋग्वेदः) अग्निसें ऋग्वेद, (वायोः यजुर्वेदः) वायुसें यजुर्वेद, और (सूर्यात्) सूर्यसें (सामवेदः) सामवेद.। इति ॥

स भूयोऽश्राम्यद्भूयोऽतप्यत । भूय आत्मानं समतपत् । स आत्मत एव त्रींल्लोकान्निरमिमत । पृथिवीमन्तरिक्षं दिवमिति । स खलु पादाभ्यामेव पृथिवीन्निरमिमतोदरादन्तरिक्षं मूर्ध्नो दिवं । स तांस्त्रींल्लोकानभ्यश्राम्यदभ्यतपत् । तेभ्यः श्रान्तेभ्यस्तप्तेभ्यः संतप्तेभ्यस्त्रीन् देवान्निरमिमताग्निं वायुमादित्यमिति । स खलु पृथिव्या एवाग्निं निरमिमतान्तरिक्षाद्वायुं दिव आदित्यम् । स तांस्त्रीन् देवानभ्यश्राम्यदभ्यतपत् । समतपत् । तेभ्यः श्रान्तेभ्यस्तप्तेभ्यः संतप्तेभ्यस्त्रीन् वेदान्निरमिमत । ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेदमिति ॥ गो । पू । प्र० १ । ब्रा० ६ ॥

भाषार्थः—(स भूयः अश्राम्यत्) सो प्रजापति फिर शांताचित्त होता भया (भूयः अतप्यत) फिर तप करता भया (भूयः आत्मानं समतपत्) फिर आत्माको अच्छे प्रकारसें तपाता हुआ अर्थात् तप कराता भया तप करके (सः आत्मतः एव त्रीन् लोकान् निरमिमत) सो अपने आत्माहीसें तीनों लोकोंको रचता हुआ, सोही दिखाते हैं. (पृथिवी अंतरिक्षं दिवं इति)

एक पृथिवीलोक, दुसरा अंतरिक्षलोक, और तीसरा स्वर्गलोक. अब ये तीनों लोकोंको कहाँसे रचे, सो बतावे हैं. (सः पादाभ्यां एव पृथिवीं निरमिमत्) सो प्रजापति खलु—निश्चयकरके अपने दोनों पगोंसे पृथिवी लोकको रचता भया (उदरात् अंतरिक्षम्) पेटसे अंतरिक्ष—आकाशको, और (मूर्ध्ना दिवम्) अपने मस्तकसे स्वर्गलोकको रचता भया (सः तान् त्रीन् लोकान् अभ्यश्राम्यत् अभ्यतपत्) सो प्रजापति तिन तीनों लोकोंको शांत और तप कराता भया, तप कराके (तेभ्यः श्रान्तेभ्यः तप्तेभ्यः संतप्तेभ्यः त्रीन् देवान् निरमिमत्) तिन शांत और तप्त संतप्त तीनों लोकोंसे तीन देवते रचता भया; सोही दिखावे हैं. (अग्निं वायुं आदित्यं इति) अग्नि, वायु और सूर्यको. अब इन देवताओंके उत्पत्तिस्थान बतावे हैं. (सः खलु पृथिव्याः एव अग्निं निरमिमत्) सो प्रजापति निश्चयकरके पृथिवीसेही अग्निको रचता भया, (अंतरिक्षात् वायुम्) आकाशसे वायु, और (दिवः आदित्यं इति) स्वर्गसे आदित्यको रचता भया. (सः तान् त्रीन् देवान् अभ्यश्राम्यत् अभ्यतपत् समतपत्) सो प्रजापति तिन तीनों देवोंको शांत तप और अच्छे प्रकारसे तप कराता भया तप कराके (तेभ्यः श्रान्तेभ्यः तप्तेभ्यः संतप्तेभ्यः त्रीन् वेदान् निरमिमत्) तिन शांत तप्त संतप्त तीनों देवोंसे तीनों वेदोंको रचता भया, सोही कहे हैं. (ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेदं इति) एक ऋग्वेदको, दुसरे यजुर्वेदको, और तीसरे सामवेदको उत्पन्न किया. । इति ॥

[समीक्षा] प्रजापति इच्छा करता हुआ कि, मैं उत्पन्न हो कर बहुत-प्रकारका होऊँ; इत्यादि, ऐतरेयब्राह्मणका, तथा शतपथादिकका लेख युक्तिप्रमाणबाधित है. क्योंकि, विना शरीरके मन नहीं होता है, और मनके बिना इच्छा नहीं हो सकती है, इत्यादि पीछे लिख आए हैं; इस-वास्ते यहां नहीं लिखते हैं. । तथा प्रजापति तप करता हुआ, तिस तपके करनेसे तीन लोक उत्पन्न भए; पृथिवी, आकाश, और स्वर्गलोक. इति ऐतरेयब्राह्मण शतपथादौ. और गोपधमें लिखा कि, प्रजापतिने तप करा, तिसतपके करनेसे अपने आत्माहीसे तीन लोक रचे. पगोंसे

पृथिवी १, पेटसें आकाश २, और मस्तकसें स्वर्ग ३. यह तीनों पुस्तकोंका कथन, ऋग्वेद यजुर्वेदादिकोंसे विरुद्ध है. क्योंकि, ऋग्वेद यजुर्वेदमें प्रजापतिने तप करा ऐसा कथन नहीं है. और यहां है. यह परस्पर विरुद्ध । १ । तथा ऋग्वेद यजुर्वेदमें प्रजापतिके पगोंसे भूमी, नाभिसें आकाश, और मस्तकसें स्वर्ग, ऐसा उत्पत्तिक्रम लिखा है; और यहां पेटसें आकाशकी उत्पत्ति लिखी है. यह परस्परविरुद्ध. । २ ।

फिर प्रजापतिने पूर्वोक्त पृथिवीआदि तीनों लोकोंको तप करायके उनोंसें तीन देवते उत्पन्न किये; पृथिवीसें अग्नि १, आकाशसें वायु २, और स्वर्गसें सूर्य ३; ऋग्वेद यजुर्वेदमें लिखा है कि, प्रजापतिके मुखसें अग्नि १, ऋग्वेदमें प्रजापतिके प्राणसें वायु, और यजुर्वेदमें प्रजापतिके कानोंसें वायु २, और दोनोंमेंही प्रजापतिके नेत्रोंसें सूर्य ३, ऐसे इन देवताओंकी उत्पत्ति लिखी है; यह परस्पर विरुद्ध. । ३ ।

फिर प्रजापतिने पूर्वोक्त अग्नि आदिक देवताओंको तप करायके उनोंसें तीनोंही वेद उत्पन्न करे; अग्निसें ऋग्वेद १, वायुसें यजुर्वेद २, और आदित्य (सूर्य) सें सामवेद ३. । ऋग्वेदयजुर्वेदमें चारों वेदोंकी उत्पत्ति मानसनामा यज्ञसें लिखी है; तथा अथर्ववेदमें लिखा है, ऋग्वेद और यजुर्वेद परमात्मासें उत्पन्न हुआ है, सामवेद परमात्माके रोम है, और अथर्ववेद परमात्माका मुख है. ॥ शतपथमें लिखा है, चारों वेद परमात्माके निःश्वास रूप है. । यह परस्परविरुद्ध. ॥ ४ ॥

तथा प्रजापतिने तप करा—क्या प्रजापतिने जैनीयोंकीतरें उपवास, छठ, अष्टम, दशम, द्वादशम, अर्द्धमासक्षपण, मासक्षपणादि, वा रत्नाबलि, कनकावलि, मुक्तावलि, घन, प्रतर, लघुसिंहानिक्रीडित, बृहत्सिंहानिक्रीडित, आचाम्लवर्द्धमानादि तीनसौसाठ प्रकारके तपमेसें कोई तप करा था ? वा चांद्रायणादि ?

पूर्वपक्षः—प्रजापतिने पर्यालोचनात्मक तप करा था.

उत्तरपक्षः—ब्रह्माजी प्रजापतिको तो, वेदोंमें सर्वज्ञ लिखे हैं। प्रथम तो सर्वज्ञको पर्यालोचन करना लिखा है, यह सर्वज्ञताको हानिकारक

है. क्योंकि, जो पर्यालोचन करना है, सोही असर्वज्ञका लक्षण है; इसवास्ते ब्रह्माजी सर्वज्ञ नहीं थे, ऐसा सिद्ध हुआ, जब सर्वज्ञ नहीं थे तो, यथार्थ सर्व जगतकी रचना करनेमें भी समर्थ नहीं सिद्ध होवेंगे. और यह जो लिखा है कि, प्रजापतिनें तीनों लोकोंको तप कराया— क्या तीनों लोकोंको पंचधूणीतपनरूप तप कराया ? वा ऊपर लिखे जैनमतके समान तप कराया ? वा पर्यालोचनात्मक तप करवाया ? वा चांद्रायणादि करवाया ? जिससें तीनों लोक थक गए, तप्त संतप्त हो गए. इनमेसें किसी भी प्रकारके तप करानेका संभव नहीं हो सक्ता है. क्योंकि, तीनों लोक तो पंचभूतात्मक होनेसें जडरूप हैं, तो फेर, यह क्या जानके लिख दिया कि, प्रजापति तीनों लोकोंको तप कराते भए ? प्रथम तो चेतनब्रह्मसें इन जडरूप तीनों लोकोंका उत्पन्न होनाही असंभव है तो, तप कराना तो दूरही रहा !!! जब तीनों लोक तप करके श्रान्त तप्त संतप्त हुए, तब तिन तीनोंसें अग्नि, वायु, सूर्य, उत्पन्न करे, तिन तीनोंको तप कराके तिन तीनोंसें ऋग्वेदादि तीन वेद उत्पन्न करे. इत्यादि—क्या तिन तीनोंके अंदर वेद स्थापन करे थे, अर्थात् वेदोंके पुस्तक लिखे हुए थे ? जो खैंचके निकाल लिये. तथा अग्न्यादि तीनों तो जड भौतिक लोकोंमें प्रसिद्ध हैं, इसवास्ते वे वेदका उच्चार भी नहीं कर सक्ते हैं. यदि कहोंगे, वे तीनों देवते होनेसें चैतन्य हैं, जड नहीं; यह भी ठीक नहीं है. जडरूप पृथिव्यादि उपादानसें अग्न्यादि चैतन्यकार्य कबी भी नहीं हो सक्ता है. तथा क्या तिन देवताओंके मुखसें ब्रह्माजीने वेदोंका प्रथम उच्चार कराया था ? यदि कहोंगे उच्चार नहीं करवाया, किंतु तिन देवताओंसेंही प्रथम यज्ञादि करवाए. यह कहना तो, बहुतही असंगत है. क्योंकि, जिनोंसें यज्ञादि कर्म प्रथम करवाए, वे तो यज्ञादिकर्मोंकी उत्पत्तिके अपादान हो सक्ते हैं, परंतु वेदोंके नहीं. इसवास्ते वेदश्रुतिके दूषणोंको दूर करनेवास्ते अपनी कपोल कल्पनासें अटकलपट्टुके अर्थ करने, यह विद्वानोंकी मंडलीमें उपहास्यका कारण है.—

आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् । तेन प्रजापतिरश्राम्यत् ॥ ५ ॥
 कथमिदं स्यादिति । सोऽपश्यत् पुष्करपर्णं तिष्ठत् । सोऽम-
 न्यत् । अस्ति वै तत् । यस्मिन्निदमधितिष्ठतीति । स वराहो रूपं
 कृत्वोपन्यमज्जत् । स पृथिवीमधआच्छत् । तस्या उपहत्योदम-
 ज्जात् । तत्पुष्करपर्णं प्रथयत् । यदप्रथयत् ॥ ६ ॥ तत् पृथिव्यै-
 पृथिवित्वं । अभूद्वा इदमिति तद्रूप्यै भूमित्वं । तां दिशोनु-
 वातः समवहत् । तां शर्कराभिरदहत् । शं वै नोऽभूदिति ।
 तच्छर्कराणां शर्करत्वं ॥ इत्यादि ॥

तैत्तिरीयब्रा० १ अष्ट० १। अध्या० ३। अनु० ॥

भाषार्थः—(इदम्) यह जो कुछ गिरिनदीसमुद्रादिक स्थावर, और मनुष्यगवादिक जंगम दिखलाई देता है, सो (अग्रे) सृष्टिसं पूर्व नहीं था, किंतु केवल (सलिलं आसीत्) जलमात्रही था. तब (प्रजापतिः) ब्रह्मा (तेन) जगत्सृजननिमित्तकरके (अश्राम्यत्) पर्यालोचनरूप तप करता भया, कैसें यह जगत् होवे अर्थात् रचा जाय ऐसा विचार करके तिस पाणीके मध्यमें दीर्घनालके अग्रभागमें स्थित एक पद्म—कमलके पत्रको देखता भया; तिसको देखके प्रजापति मनमें शोचता—विचारकरता भया कि, जिस आधारमें यह नालसहित पद्मपत्र आश्रित हो कर स्थित है—रहा है सो वस्तु कुछक अवश्यमेव नीचे है. ऐसें विचार कर प्रजापति वराहरूप हो कर तिस पद्मपत्रनालके समीपही जलमें गोता लगाता भया, गोता लगानेसें प्रजापति नीचे भूमिको प्राप्त हुआ. तिस भूमिमेंसें कितनीक गीली मृत्तिका अपनी दाढाके अग्रभागमें रख कर पाणीके ऊपर उछलता भया, ऊपरको आकर तिस मृत्तिकाको तिस कमलके पत्रके ऊपर फैलाता भया, जिसवास्ते यह मृत्तिका फैलाई, (प्रथिता) तिसवास्ते इसका पृथिवी नाम रखवा गया. तदपीछे संतुष्ट होके यह स्थावरजंगमका आधारभूत स्थान हुआ, ऐसा कथन करता हुआ; तिसवास्ते भवति इस-

व्युत्पत्तिकरके पृथिवीका भूमि, नाम हुआ. । तिस भूमिको गीली देखके सुकानेकेलिये चार दिशाओंको रच कर प्रजापति अपने संकल्पसे उत्पन्न हुए पवनको चलाता भया, शुष्क होती हुई तिस भूमिको प्रजापति सूक्ष्म पाषाण करके दृढ करता भया, दृढ करके 'नोऽस्माकं शं सुखमभूदित्युवाच' हमको सुख भया ऐसे उच्चार करा, तिस कारणसे 'शं सुखं कृतं आभिः' इस व्युत्पत्तिकरके शर्करा (कंकरी) यह नाम हुआ. ॥ इत्यादि ॥

[समीक्षा]—सृष्टिसे पहिले कुछ भी नहीं था, एक केवल जलमात्रही था, तब प्रजापतिने जगत् उत्पन्न करनेके निमित्त विचार करा कि, यह जगत् कैसे उत्पन्न होवे? इत्यादि—प्रथम तो इस लेखसे प्रजापति अज्ञानी असर्वज्ञ सिद्ध हुआ. क्योंकि, विचार करना यह असर्वज्ञका लक्षण है. सर्वज्ञको तो, सर्व पदार्थ हस्तस्थामलकवत् प्रत्यक्ष भासमान होता है, तो फेर सर्वज्ञ होके प्रजापतिमें विचार करना कैसे संभव होवे? तथा सृष्टिसे पहिले यदि कुछ भी नहीं था तो, तुमारा माना जल कहां रहा था? विना आकाश पृथिवी आदिके जल कबी भी नहीं ठहर सक्ता है.

पूर्वपक्षः—वो पृथिवी अन्य थी, और यह दृश्यमान अन्य है. क्योंकि, श्रुतिमें लिखा है कि, गोता लगानेसे प्रजापति नीचेकी पृथिवीको प्राप्त हुआ, यदि दूसरी पृथिवी न होती तो, किसको प्राप्त होता? और किस-मेसे मृतिका ले आता? इसवास्ते सिद्ध हुआ कि, नीचे भूमि थी, जब भूमि हुई तो जलके रहनेमें क्या बाध है?

उत्तरपक्षः—हे मित्र! हमको तो कुछ भी बाध नहीं है. क्योंकि, हम तो ऐसे असत् कथनको कबी भी मानना नहीं चाहते हैं. परंतु आप लोग मनःकल्पित कल्पना करके पूर्वोक्त कथनको सत्य करना चाहते हो, इसीवास्ते वदतोव्याघातदूषणरूप असवार आपके तर्फ दृष्टि करता है. क्योंकि, तुमने प्रथम कहा कि, जलके विना और कुछ भी नहीं था, और उसी समय पृथिवी तो तुमनेही सिद्ध करी, तो फेर ऐसे कहना चाहिये था कि, “सलिलं भूमिं चासीत्” जल और भूमि यह दो पदार्थ सृष्टिसे पहिले विद्यमान थे. ऐसा कहनेसे भी छूट नहीं सक्ते हो. क्यों-

कि, फेर वराहावतार धारणकरके मृत्तिका ले आया, यह कैसे सिद्ध होगा? यदि कहोंगे कि, यह जो दृश्यमान पृथिवी है, सो प्रथम नहीं थी, प्रजापतिने नीचेकी मृत्तिकामेंसे लायके बनाई है; तो जिस भूमिमेंसे प्रजापति वराहरूपकरके मृत्तिका ले आया, वो भूमि किसकी बनाई हुई थी? और वो जगत्में है कि, जगत्में बाहेर है? तथा यजुर्वेदमें लिखा है कि, प्रलयदशामें जल भी नहीं था, और इसश्रुतिमें जल भूमि कमलपत्र आकाशादि सिद्ध होते हैं; यह परस्पर विरुद्ध है. प्रजापति विचार करके एक नालसहित कमलपत्रको देखता भया. इति—जब केवल जलही था तो यह नालसहित कमल पत्र कहाँसे निकल आया?

कमलपत्रको देखके प्रजापतिने विचार करा कि, जिसके आधार यह नालसहित कमलपत्र स्थित है, वो कुछ वस्तु होना चाहिये? ऐसा विचार कर कमलपत्रके समीपही गोता लगाता भया, गोता लगानेमें नीचे भूमिको प्राप्त हुआ, तिस भूमिमेंसे गीली मृत्तिका अपनी दाढामें रखके पाणीके ऊपर आकर कमलपत्रके ऊपर सुकानेकेलिये मृत्तिकाको फैलाई दीनी. इत्यादि—इसमें तो प्रजापतिके असर्वज्ञ होनेमें कुछ भी संदेह नहीं है. क्योंकि, प्रजापतिने अनुमानमें विचारा कि, यह कुछ वस्तु होना चाहिये. परंतु प्रत्यक्ष नहीं देखा. यदि प्रत्यक्ष देखता तो, गोता न लगाता, विना गोतेके लगायेही वहाँसे मृत्तिका काढ लेता. क्योंकि, वो तो सर्व शक्तिमान् था. तथा यह दृश्यमान सारी पृथिवी कमलपत्रके ऊपर सुकाई तो, वो कमलपत्र कितनाक बड़ा था? पृथिवीमें तो अधिकही बड़ा होना चाहिये कि, जिसके ऊपर सारी पृथिवी फैलाई गई. भला नीचेमें तो वराहरूप करके प्रजापति मृत्तिका ले आये, परंतु सुकाये पीछे कमलपत्रके ऊपरमें किसरूप करके प्रजापतिने पृथिवी उचक लीनी? और वो कमलपत्र कहाँ गया? क्योंकि, उस कमलपत्रका तो कबी भी नाश न होना चाहिये; प्रलय दशामें भी विद्यमान होनेमें, ईश्वरवत्.

जब कमलपत्रके ऊपर फैलानेमें भी नहीं सुकी, तब प्रजापतिने दिशा और वायुका संकल्प करा जिसमें वायु प्रचलित हुआ, तब सुकती हुई

तिस पृथिवीमें कंकरी मिलाके प्रजापतिने पृथिवीको टूट करी, इत्यादि— अब विचारना चाहिये कि, जिसने संकल्पमात्रसेही वायु दिशादि प्रकट करे, वो क्या पृथिवीको स्वतोही नहीं बना सकता था ? जिसवास्ते इतना टंटा अपने गलेमें डाल लिया. तथा यह कथन ऋग्वेदयजुर्वेदसें विरुद्ध है. क्योंकि, उनमें लिखा है कि, भूमि प्रजापतिके पगोंसें उत्पन्न भई, दिशा प्रजापतिके कानोंसें, और वायु ऋग्वेदमें प्रजापतिके प्राणोंसें, और यजुर्वेदमें प्रजापतिके कानोंसें उत्पन्न भया. इति—और यहां प्रजापति मृत्तिका ले आया, उससें पृथिवी उत्पन्न भई, और प्रजापतिके संकल्पमात्रसें वायुदिशादि उत्पन्न भए, यह परस्पर विरुद्ध. ॥

और तैत्तिरीयसंहिता कां० ७। प्र० १। अनु० ५। में लिखा है ॥

आपो वा इदमग्रे सलिलम् आसीत्।

तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाऽचरत्।

स इमामपश्यत् तां वराहो भूत्वाऽऽहरत्। इति ॥

भावार्थः—(अग्रे) अर्थात् सृष्टिकी उत्पत्तिसें पहिले जलही जल था, तिस जलमें प्रजापति वायुरूप हो कर फिरता हुआ, पर्यटन अर्थात् चारोंओर घूम कर सो प्रजापति, (इमां) इस पृथिवीको देखता भया, तब (तां) तिस पृथिवीको वराहरूप हो कर प्रजापति जलके ऊपर ले आता भया—इति ॥ देखिये इसमें पर्यालोचनरूप तपका कथन नहीं है, प्रजापतिने वायुरूप हो कर और घूम कर जलमें पृथिवीको देखा, सो भी इसही पृथिवीको देखा, नतु अन्यको, तथा पुष्करपर्ण (कमलपत्र) आदिका वर्णन भी इस मूल श्रुतिमें नहीं है; यह परस्पर विरुद्ध. ॥

अब वाचकवर्गको विचारना चाहिये कि, जिन पुस्तकोंमें अपने जगत् कर्ता ईश्वररूप इष्टतत्त्वमेंही पूर्वोक्त विरोधसमूह होवे, वे पुस्तक सर्वज्ञ वीतराग अष्टादशदूषणरहित परमात्माके कथन करे सिद्ध हो सक्ते हैं ? कबी भी नहीं. क्योंकि, जैसा परमेश्वर और परमेश्वरके कृत्योंका स्वरूप वेदादि पुस्तकोंमें कथन करा है, वो कथन सर्वज्ञ परमात्माका है, वा यह कृत्य परमेश्वरके हैं, ऐसा थोड़ी बुद्धिवाला पुरुष भी नहीं कह सकता है. जैसे

कि, बृहदारण्यकके तीसरे अध्यायके चौथे ब्राह्मणमें लिखा है—आत्माही प्रथम सृष्टिके पहिले था, सो प्रजापतिरूप पुरुष हुआ, सो एकेला होनेसे डरने लगा, और अरति-दिलगिरीको प्राप्त हुआ, सो प्रजापति तिस अरतिकों दूर करनेकेवास्ते दूसरे अरति दूर करनेमें समर्थ स्त्रीवस्तुको इच्छता भया, अर्थात् शुद्धि करता भया; तिसको ऐसे स्त्रीविषे शुद्धि होनेसे स्त्रीके साथ मिलेहुएकीतरें प्रजापतिकें आत्माका भाव होता भया, अर्थात् जैसे लोकमें स्त्री पुरुष अरति दूर करनेकेवास्ते परस्पर मिले हुए, जिस परिमाणवाले होते हैं, प्रजापति भी अपने आत्माके स्त्रीपुरुषरूप दो भाग करके तिस परिमाणवाला होता भया. जिसवास्ते अपने अर्द्ध अंग शरीरकी स्त्री बनाई, इसीवास्ते जगत्में स्त्रीको अर्द्धांगना कहते हैं. सो प्रजापति शतरूपा नामा अपनी पुत्रीको स्त्रीपणे मानी हुईको प्राप्त होता भया, अर्थात् तिससे मैथुन सेवता हुआ, तिससे मनुष्य उत्पन्न हुए. पीछे शतरूपा पुत्री पिताके गमनसे पीडित हुई विचार करती भई, दुहितृ (पुत्री) का गमन करना यह अकृत्य है, और यह प्रजापति निर्घृण (घृणारहित) है इसवास्ते में जात्यंतर हो जाऊं; ऐसा विचार कर सो शतरूपा, गौ हो गई. तब प्रजापति ऋषभ (बैल) हुआ, उन्को संगमसे गौयां उत्पन्न हुई. शतरूपा बडवा (घोड़ी) हुई, प्रजापति घोडा हुआ; शतरूपा गर्दभी (गधी) हुई, प्रजापति गर्दभ (गधा) हुआ; उन्को संगमसे एक खुरवाले घोडे, खचरां, और गधे, यह तीन उत्पन्न भए. शतरूपा बकरी हुई, प्रजापति बकरा हुआ; शतरूपा अवि (भेड-घेटी) हुई, प्रजापति मेष (मींढा-घेटा,) हुआ; उन्को संगमसे अजा, अवि उत्पन्न भए. ऐसे पिपीलिका (कीडी) पर्यंत जो जो स्त्री पुरुषरूप जोडा है, सो सर्व इसी न्यायकरके जानना—इत्यादि ॥ यह हमने किंचिन्मात्र लिख दिखाया है, यदि यह पूर्वोक्त कृत्योंका कर्ता ईश्वर सिद्ध होवे तो, वेदादिकोंका वक्ता भी ईश्वर सिद्ध होवे. परंतु पूर्वोक्त कृत्य ईश्वर परमात्मामें कबी भी सिद्ध नहीं हो सके हैं. यदि पूर्वोक्त कृत्योंके करनेवालेको तुम ईश्वर, परमात्मा-

सर्वज्ञ, निर्विकारी, निरवयव, ज्योतिःसरूप, सच्चिदानंद, मानोंगे तब तो विद्वत्सभामें अवश्यमेव हास्यके पात्र होवोंगे; और तुमारा ईश्वर नालायक सिद्ध होवेगा. तब तो, वेदादिशास्त्रोंका वक्ता भी वैसाही होगा. जब कि, हम संसारी जीवोंकों तारनेवाले ईश्वर परमात्माकीही यह पूर्वोक्त विटंबना हो रही है तो, वो हमको किसतरें तार सक्ता है ? वा सत्पथको प्राप्त करा सक्ता है ? इसवास्ते वेदादिशास्त्र, सर्वज्ञप्रणीत नहीं है. किंतु अज्ञानीयोंके प्रलापमात्र है; परस्पर विरुद्ध, और युक्तिप्रमाणसें बाधित होनेसें. यह थोडासा वेदोंका परस्पर विरुद्धपणा बताया, इसीतरें और भी विरुद्धपणा अपनी बुद्धिद्वारा विचार लेना. इत्यलं बहुपल्लवितेन विद्वद्वर्येषु ॥

इतिश्वेताम्बराचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे
वेदानां परस्परविरुद्धतावर्णनो नाम नवमस्तम्भः ॥ ९ ॥

॥ अथदशमस्तम्भारम्भः ॥

नवम स्तंभमें वेदोंका परस्पर विरुद्धपणा कथन करा, अथ दशम स्तंभमें वेदकी ऋचायोंसेंही वेद ईश्वरोक्त नहीं है, ऐसा सिद्ध करेंगे.

ऋग्वेदसंहिता अष्टक ३ । अध्याय २ ॥ वर्ग १२ । १३ । १४ ॥

अतीतकालमें पैजवनके सुदासराजाका विश्वामित्र नामा पुरोहित होता भया, तिसने पुरोहित होनेसें बहुत धन पाया, सो सर्व धन लेके शतद्रु और विपाद अर्थात् सतलुज और विद्यासानदीयोंके संगमऊपर आया. अथ विश्वामित्र तिनसें पार उत्तरनेकी इच्छावंत, नदीयोंको अगाध जल. वाली देखके उत्तरनेवास्ते आदिकी तीन ऋचायोंकरके तिन नदीयोंकी स्तुति करता भया. और ४ । ६ । ८ । १० । इन चार ऋचायोंमें नदीयोंने जो कुछ विश्वामित्रकेतांड कहा, तिसका कथन है. छठी सातमीमें इंद्रकी स्तुति है. इतिभाष्यकारः । प्रपर्वतानामुशतीइत्यादि १३ ऋचा है ॥ सोही लिख दिखाते हैं. ॥

॥ अथप्रथमा ॥

प्र पर्वतानामु॒श॒ती उ॒प॒स्था॒द॒श्वे इ॒व वि॒षि॒ते हा॒स॒माने ।
गा॒वे॒व शु॒भ्रे मा॒तरां रि॒हा॒णे वि॒पाट॒च्छु॒तु॒द्री प॒य॒सा ज॒वे॒ते ॥ १ ॥

॥ अथद्वितीया ॥

इ॒न्द्रे॒षि॒ते प्र॒स॒वं भि॒क्ष॒मा॒णे अ॒च्छां स॒मु॒द्रं र॒थ्ये॒व या॒थः ।
स॒मा॒रा॒णे ऊ॒र्मि॒भिः पि॒न्व॒मा॒ने अ॒न्या वा॒म॒न्याम॒प्ये॒ति शु॒भ्रे ॥ २ ॥

॥ अथतृतीया ॥

अ॒च्छा सि॒न्धुं मा॒तृ॒त॒मा॒मया॒सं वि॒पा॒श॒मु॒र्वीं सु॒भगा॒म॒ग॒न्म ।
व॒त्स॒मि॒व मा॒तरां सं॒रि॒हा॒णे स॒मा॒नं यो॒नि॒म॒नु संच॑रन्ती ॥ ३ ॥

॥ अथचतुर्थी ॥

ए॒ना व॒यं प॒य॒सा पि॒न्व॒मा॒ना अ॒नु यो॒निं दे॒व॒कृ॒तं च॑रन्तीः ।
न व॒र्ती॒वे प्र॒स॒वः स॒र्ग॒त॒क्तः कि॒युर्वि॒प्रो न॒द्यो जो॒ह॒वी॒ति ॥ ४ ॥

॥ अथपंचमी ॥

र॒म॒ध्वं मे॒ वच॑से सो॒म्या॒य ऋ॒ता॒व॒री॒रु॒पं मु॒हूर्त॑मेवैः ।
प्र सि॒न्धु॒म॒च्छा वृ॒हती॑ म॒नी॒षा॒व॒स्यु॒र॒द्वे कु॒शि॒क॒स्य॑ स॒ूनुः ॥ ५ ॥ १२ ॥

॥ अथषष्ठी ॥

इ॒न्द्रो अ॒स्माँ अ॒र॒द॒द्व॒जं बा॒हुर॑पा॒ह॒न्वृ॒त्रं परि॑धिं न॒दी॒ना॒म् ।
दे॒वो॒न॒य॒त्स॒वि॒ता सु॒पा॒णि॒स्त॒स्य॑ व॒यं प्र॑स॒वे या॑म उ॒र्वीः ॥ ६ ॥

॥ अथसप्तमी ॥

प्र॒वा॒च्यं श॒श्व॒धा वी॒र्यं॑ तदि॒न्द्र॒स्य क॒र्म य॒दहिं॑ वि॒वृ॒श्वत् ।
वि॒ व॒ज्रेण॑ परिष॒दो ज॒घा॒ना॒य॒न्नापो॑य॒नमि॑च्छ॒मानाः ॥ ७ ॥

॥ अथाष्टमी ॥

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्टा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि ।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो निकः पुरुषत्रा नमस्ते ॥ ८ ॥

॥ अथनवमी ॥

ओ षु स्वसारः कारवेश्रृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥ ९ ॥

॥ अथदशमी ॥

आ ते कारो श्रृणवामा वचांसि ययार्थ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्याशश्वचै ते ॥ १० ॥ १३ ॥

॥ अथैकादशी ॥

यदङ्ग त्वा भरताः संतरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादहं प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं युज्ञियानाम् ॥ ११ ॥

॥ अथद्वादशी ॥

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥ १२ ॥

॥ अथत्रयोदशी ॥

उह ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसाद्यौ शूनमारताम् ॥ १३ ॥ १४ ॥

॥ १० । सं० । अ० ३ । अ० २ । व० १२ । १३ । १४ ॥

ऊपर लिखी ऋचायोंका तात्पर्य यह है कि, विश्वामित्रऋषि सोमवल्ली लेमेकेवास्ते पंजाबदेशमें आए, जहां शतद्रू और वियासा नदीयां मिलती हैं; अर्थात् जहां बैठके मैं यह ग्रंथ रचता हूं, तिस जीरे गामसे तेरा (१३) मीलके फासलेपर जो हरिकापत्तन कहाता है, तिस जगे विश्वामित्र

आए मालुम होते हैं. क्योंकि, इसी पत्तन (घाट) में शतद्रू और वियासा नदियां मिलती हैं. बहुत अगाध पाणी देखके तीन ऋचायोंसे नदीयोंकी स्तुति करी कि, मेरे उतरनेको मार्ग देओ; तब नदीयोंने कहा कि, हमको इंद्रकी आज्ञा निरंतर बहनेकी है, इसवास्ते हम चलनेसे बंध नहीं होवेंगी. इसतरे परस्पर नदीयोंका और विश्वामित्रका वार्तालाप हुआ, और विश्वामित्रने नदीयोंकी स्तुति करी, तब विश्वामित्रके रथकी धुरीसें भी हेठां पाणी होगया. तब विश्वामित्र सोमवल्लीके लेनेवास्ते पार उतरके आगे गया. शतद्रू और विपाद् इनका नाम मूलश्रुतिमें है. इति॥

अब हे पाठकगणो! तुम विचार करो कि, वेद ईश्वर वा ब्रह्मा वा परब्रह्मका रचा वा अनादि अपौरुषेय किसतरे सिद्ध हो सक्ता है? क्योंकि सर्वसूक्तोंके न्यारे २ ऋषि हैं, और जिन २ ऋचायोंके जे जे ऋषि हैं, तिन २ ऋषियोंने तप करके ऋचायें प्राप्त करी हैं; और प्रथम गायन करी हैं, तिन २ ऋचायोंके ते ते ऋषि हैं; ऐसा भाष्यमें लिखा है. और दशो मंडलोंके द्रष्टा दश ऋषियोंके नाम लिखे हैं; जितनी ऋचा जिस मंडलमें हैं तिन सर्वका स्वरूप जिसने मंडलरूपसें पहिले देखा, सो मंडलका द्रष्टा है. विश्वामित्रने, जे नदीयोंकी स्तुतिकी ऋचायों पठण करी वे ऋचायों परमेश्वरकी रची क्योंकर सिद्ध हो सक्ती हैं? ऐसेही नदीयोंने गायन करी ऋचायों—इसीतरे संपूर्ण ऋग्वेद भरा है. जेकर कहोंगे, अग्नि, सूर्य, अश्विनौ, यम, ऋभुव, उषा, षायु, वरुण, मैत्रावरुण, इंद्रादि ये सर्व ब्रह्मरूप है, इसवास्ते जो इनकी स्तुति है, सो सर्व ब्रह्मकीही स्तुति है. तब तो कुत्ते, बिल्ले, गधे, सूयर, गंदकीके कीड़े, इत्यादि सर्व जंतुयोंकी स्तुति वेदमें क्यों नहीं करी? और जगे जगे यह लिखा है कि, हे इंद्र! तूं हमारे शत्रुयोंका नाश कर, असुरोंका नाश कर, और हमको धन दे, गौयां दे, पुत्र दे, परिवार दे, राज्य दे, स्वर्ग दे, इत्यादि वस्तुयों कौन मांगता है? परमेश्वर किससें मांगता है? और कृतकृत्य परमेश्वरको पूर्वोक्त वस्तुयोंसें क्या प्रयोजन है? वीतराग और निरुपाधि मक्तरूप होनेसें. जेकर कहोंगे, परमेश्वर नहीं मांगता है, किंतु यजमान

मांगता है तो, ऋचा परमेश्वरकृत कैसे सिद्ध होवेंगी ? और ऋषि तिन ऋचायोंके कैसे सिद्ध होवेंगे ? जेकर वेद अपौरुषेय है, तब तो किसीके भी रचे सिद्ध नहीं होवेंगे; जेकर कहोंगे ब्रह्माजीने प्रथम वेदका उच्चार करा, इसवास्ते ब्रह्माजीके रचे वेद हैं, तब तो, यह जो कथन वेदोंमें है कि, मानसयज्ञसे ऋगादिवेद उत्पन्न भए, तथा आग्नि वायु सूर्यसे तीन वेद ब्रह्माजीने खँचके काढे, इत्यादि मिथ्या सिद्ध होवेगा. इसवास्ते यह सर्व वेद ब्राह्मणोंकी स्वकपोलकल्पनासे रचे गए हैं, नतु ईश्वर प्रणित; परस्पर विरुद्ध, और युक्तिप्रमाणसे बाधित होनेसे.

तथा ऋग्वेदसंहिताष्टक ३, अध्याय ३, वर्ग २३, में लिखा है—अतीत-कालमें विश्वामित्रका शिष्य सुदा नाम राजऋषि होता भया, सो किसी कारणसे वसिष्ठजीका द्वेषी होता भया, तब विश्वामित्र स्वशिष्यकी रक्षा-वास्ते इन ऋचायोंकरके शाप देता भया. यह जो शापरूप ऋचायों है, तिनको वसिष्ठके संप्रदायी नहीं सुनते हैं । इतिभाष्यकारः । वे ऋचायों यह हैं.—

तत्राद्या सूक्ते एकविंशी ॥

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥२१॥

॥ अथद्वाविंशी ॥

परशुं चिद्वि तपति शिबलं चिद्वि वृश्चति ।
उखा चि दिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥ २२ ॥

॥ अथत्रयोविंशी ॥

न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः ।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥२३॥

॥ अथचतुर्विंशी ॥

इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् ।

हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परि णयन्त्याजौ ॥२४॥

ऋ० सं० अ० ३ ॥

इन चारों ऋचायोंमें यह भावार्थ है कि, विश्वामित्रने शाप देते हुए, प्रथमार्द्ध ऋचामें तो, आत्मरक्षा करी है; आगे शाप दिया. तू पतत् होवे, तू मर जावे, इत्यादि। फिर इंद्रको संबोधन करा कि, हे इंद्र! मेरा शत्रु मेरे मंत्रकी शक्तिसें प्रहत होके पड़ो, और मुखसे फेन (झाग) वमन करो.। प्रथम मेरा तप क्षय न हो जावे इसवास्ते शाप देनेसें हट कर मौनकर बैठे विश्वामित्रको वसिष्ठके पुरुष बांध पकड़के ले चले, तब विश्वामित्र तिनको कहता है, हे लोको! नाश करनेवाले विश्वामित्रके मंत्रोंका सामर्थ्य तुम नहीं जानते हो! शाप देनेसें मेरा तप न क्षय हो जावे, ऐसें विचारके मुझे मौनवंतको पशुसमान जानके बांधके इष्टस्थानमें ले जाते हो; ऐसें स्वसामर्थ्य दिखलाके कहता है कि, क्या वसिष्ठ मेरी बराबरी कर सक्ता है? तिसके साथ स्पर्द्धा करनेसें विद्वान् लोक मेरी हांसी न करेंगे? इसवास्ते मैं वसिष्ठके साथ स्पर्द्धा नहीं करता हूं। हे इंद्र! भरतके वंशके होके, क्या विश्वामित्र इनके साथ स्पर्द्धा करेंगे? येह तो विचारे ब्राह्मणही है. ॥

अब पाठकगणो! विचारो कि, येह श्रुतियां परमेश्वरने रची हैं? क्या वसिष्ठके शाप देनेवास्ते परमेश्वरने येह श्रुतियां विश्वामित्रको दीनी थी? क्योंकि, इस सूक्तका ऋषि विश्वामित्रही है; विश्वामित्रने तप करके ईश्वरके अनुग्रहसें येह ऋचायों संपादन करी हैं!! क्या कहना है दयालु परमेश्वरका!!! जिसने विश्वामित्रके तपसें संतुष्टमान होके, अपूर्वज्ञान-रससें भरी हुई ऐसी २ ऋचायों प्रदान करी. लज्जा भी कहनेवालेको नहीं आती कि, वेद परमेश्वरके रचे हुए हैं! इसवास्ते किसी प्रमाणसें भी वेद ईश्वरका रचा सिद्ध नहीं होता है.

तथा ऋ० सं० अष्टक ४ अध्याय ४ वर्ग २० में लिखा है कि—सप्त-
वध्रिनामा ऋषि था, तिसके भतीजे तिसको पेटीमें घालके मुद्रा
करके बड़े यत्नसे अपने घरमें स्थापन करते हुए; जैसे रात्रिमें
अपनी स्त्रीसे विषय सेवन न करे, तैसे करते हुए. सवेरे २ तिस
पेटीको उघाडके तिसको मारपीटके फिर पेटीमें घालके रखते भए.
ऐसे चिरकालतक सो कृश और दुःखी तिस पेटीमें रहा, चिरकालतक
मुनिने तिस पेटीसे निकलनेका उपाय चिंतन करा, तब हृदयमें निश्चय
करके अश्विनौ देवतायोंकी स्तुति करता भया; तब अश्विनौ आए, पेटी
उघाडके तिसको निकालके शीघ्र अदृष्ट हो गए. सो ऋषि भार्यासे विषय
सेवन करके तिनके भयसे सवेरे पेटीमें प्रवेश करके पूर्वकीतरे स्थित रहा;
तिस ऋषिने पेटीके निवास समयमें येह दो ऋचायों देखी, जो आगे
कहेंगे. ॥ इतिभाष्यकारः ॥ अब श्रुतियां लिखते हैं.

॥ प्रथमा ॥

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूप्यन्त्या इव ।

श्रुतं मे अश्विना हवँ सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥ १ ॥ ५ ॥

॥ अथद्वितीया ॥

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।

मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥ २ ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे वनस्पतिके विकाररूप पेटी! तू स्त्रीकी योनिकीतरे
चौड़ी हो जा, जैसे स्त्रीकी योनि संतानके जननेके समयमें चौड़ी
हो जाती है, तैसे तू भी हो जा. हे अश्विनौ! तुम सप्तवध्रिकी
विनती सुनके मूल सप्तवध्रिको छुडावो! निकलते हुए डरतेको,
और निकलना चाहतेको, हे अश्विनौ! ऐसे मूझ सप्तवध्रिको इस पेटीसे
निकालनेको आओ. ॥

अब वाचकवर्गों! तुम देखो कि, यह परमेश्वरकी कैसी भक्तवत्सलता है
कि, पेटीमें बैठे अपने भक्त सप्तवध्रि ऋषिको कैसी ज्ञानरसकी भरी

ऋचायों प्रदान करी कि, जिनके पढ़नेसें अश्विनौने आकर तिसको पेटीसें बाहिर काढा ! और तिस ऋषिने भतीजोंके भयसें रात्रिको छाना निकसके स्वभार्यासें संपूर्ण रात्रिमें विषय भोग करके सवेरेको फिर पेटीमें प्रवेश कर जाना. । वाह !!! बलिहारि है, ऐसे ऋषि महात्मायोंकी कि जिनकी अतिदुःष्कर तपस्यासें तुष्टमान होके पेटीमें बैठेको दो ऋचायों प्रदान करी, जिससें सप्तवध्रि निहाल हो गया ! पाठकवर्गों ! परमेश्वर बिना ऐसा दयालु कौन होवे ? कोइ भी नहीं. इसवास्तेही तो पंडितलोक ऋग्वेदको प्रधान वेद कहते हैं कि, जिसमें ऐसा २ अत्यद्भुत ज्ञान भरा है!!!

तथा ऋ० सं० अष्टक ६ अध्याय ६ वर्ग १४ में लिखा है ॥ अतीतकालमें अत्रिऋषिकी पुत्री अपालानामा ब्रह्मवादिनी किसीकारणसें त्वग्रोगसंयुक्त थी, इसवास्तेही पतिने तिसको दुर्भगा जानके त्याग दीनी थी; सा अपाला अपने पिताके आश्रममें त्वग्दोषके दूर करनेवास्ते चिरकालतक इंद्रको आश्रित्य होके तप करती हुई. सा कदाचित् इंद्रको सोमवल्ली प्रियकर है, इसवास्ते मैं सोमवल्लीको इंद्रकेताई दुंगी, ऐसी बुद्धि करके नदीके कांटेउपर जाती हुई; तहां स्नान करके, और रस्तेमें मिली सोमवल्लीको लेके, अपने घरको आती हुई. रस्तेमेंही तिस सोमको अपाला खाने लगी, तिसके भक्षणकालमें दांतोंके घसनेसें शब्द उत्पन्न हुआ, तिस शब्दको पत्थरोंसें पीसते हुए सोमके समान ध्वनि जानकर तिस अवसरमेंही इंद्र तहां आता हुआ. आयके, तिस अपालाको कहता हुआ कि, क्या इहां पत्थरोंसें सोमवल्ली पीसतें हैं ? अपाला कहती है, अत्रिकी कन्या स्नानकेवास्ते आकर सोमवल्लीको देखके तिसका भक्षण करती है, तिसके भक्षण करनेकाही यह ध्वनि है; नतु पत्थरोंसें पीसते सोमका. तैसें कहा-हुआ इंद्र, पीछे जाने लगा; जातेहुए इंद्रको अपाला कहती है, किसवास्ते तूं पीछे जाता है ? तूं तो सोमके पीनेवास्ते घरघरमें जाता है, तब तो इहां भी मेरी दाढ़ोंकरके चावी हुई सोमवल्लीको तूं पी (पानकर) और धानादिको भक्षण कर. अपाला ऐसें इंद्रको अनादर करती हुई फिर कहती है, इहां आए तुझको मैं इंद्र नहीं जानती हुं; तूं मेरे घरमें आवे तो,

मैं तेरा बहुमान करुंगी. ऐसों इंद्रको कहके फिर अपाला विचार करती है कि, इहां आया यह इंद्रही है, अन्य नहीं. ऐसा निश्चय करके अपने मुखमें डाले सोमको कहती है, हे सोम ! तूं आए हुए इंद्रकेतांड पहिले हलवे २, तदपीछे जलदी २, सर्वओरसें स्रव. तदपीछे इंद्र तिसको वांछके अपालाके मुखमें रहे दाढोंसें पीसे हुए सोमको पीता हुआ. तदपीछे इंद्रके सोम पीया हुआ, त्वग्दोषके रोगसें मुझको मेरे पतिने त्याग दीनी है, अब मैं इंद्रको सम्यक् प्रकारे प्राप्त हुई हूं; ऐसों अपालाके कहे हुए इंद्र अपालाको कहता हुआ कि, तूं क्या वांछती (चाहती) है? मैं सोही करूं. इंद्रके ऐसों कहे थके अपाला वर मांगती है कि, मेरे पिताका शिर रोमरहित (टट्टरीवाला) है । १। मेरे पिताका खेत उषर (फलादिरहित) है । २। और मेरा गुह्यस्थान भी रोमरहित है । ३। यह पूर्वोक्त तीनों रोम फलादियुक्त कर दे. ऐसे अपालाके कहे हुए तिसके पिताके शिरकी टट्टरी दूर करके, और खेतको फलादियुक्त करके, अपालाके त्वग्दोषके दूर करनेकेवास्ते अपने रथके छिद्रमें गाडेके और युगके छिद्रमें अपालाको तीन बार तारकीतरें खेंचता हुआ, तिस अपालाकी जो पहिली बार चमडी उतरी तिससें शल्यक (मयना), दूसरी चमडीसें गोधा (गोह) हुई, और तीसरी बेर उतरी चमडीसें किरले (कांकडे) होते भए. तिसपीछे इंद्र तिस अपालाको सूर्यसमान चमकती हुई चमडीवाली करता हुआ. यह इतिहासिक कथा है. और यह, कथा, शाठ्यायन ब्राह्मणमें स्पष्टपणे कही है. और यही ऊपर लिखा हुआ अर्थ, कन्यावार इत्यादि सात ऋचायोंमें कथन करा है; वे ऋचायें येह हैं.

॥ प्रथमा ॥

कन्या ३ वारवायती सोममपि स्नुताविदत् ।

अस्तं भरन्त्यब्रवीदिन्द्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा ॥ १ ॥

॥ अथद्वितीया ॥

असौ य एषि वीरको गृहं गृहं विचाकशत् ।

इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिणमपूयवन्तमुक्थिनम् । २ ॥

॥ अथतृतीया ॥

आ चन त्वाचिकित्सामोधिं चन त्वा नेमसि ।
शनैरिव शनकैरिवेन्द्रायेन्दो परि' स्रव ॥ ३ ॥

॥ अथचतुर्थी ॥

कुविच्छकत्कुवित्करत्कुविन्नो वस्यसस्करत् ।
कुवित्पातिद्विषो' यतीरिन्द्रेण संगमामहै ॥ ४ ॥

॥ अथपंचमी ॥

इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय ।
शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे' ॥ ५ ॥

॥ अथषष्ठी ॥

असौ च या न उर्वरादिमां तन्वं॑ मम ।
अथो' ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि ॥ ६ ॥

॥ अथसप्तमी ॥

खे रथस्य खेनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ७ ॥

ऋ० सं० अष्टक ६ । अ० ६ ॥

अब वाचकवर्गों ! विचार करो कि, यह कथन परमेश्वर सर्वज्ञका सिद्ध हो सक्ता है ? प्रथम तो इस सूक्तका अपाला स्त्रीही ऋषि है, और परमेश्वरने तिसके तपसें तुष्टमान होके तिसको यह अपूर्व ज्ञानरससें भरा सूक्त दीना ! तिसमें पूर्वोक्त कथन होनेसें, वेद, अनादि अपौरुषेय कैसें सिद्ध हो सक्ता है ? और अपाला तो, ब्रह्मवादिनी थी, तिसको पिताके शिरकी टट्टरी, उषरक्षेत्र, गुह्यस्थानोपरि केश न होने, इनकी चिंता क्यों हुई; क्योंकि, तिसके ज्ञानमें तो ये तीनों वस्तुओं माया (भ्रांति) रूप

होनेसें त्रिकालमें हैही नहीं; एकशुद्ध ब्रह्मही था. तो फिर, इंद्रको उद्देश्यके तप काहेको करती थी ? इंद्र भी तो मायाकी भ्रांतिरूपही था; जब अपालाने नदीऊपरसें सोम लेके चर्वण करा, तिसके दांतोंका शब्द सुनके इंद्रने जाना कि, पत्थरोंसें सोमके पीसनेका यह शब्द है; इंद्रको ऐसी भ्रांति हुई—क्या इंद्र महाराज स्वर्गके सुखोंको छोडके तिस जगे भटकता फिरता था ? तथा इंद्रको तो ऋग्वेदादिमें परमेश्वरकाही स्वरूप लिखा है तो, क्या ऐसे ज्ञानवान् इंद्रको अपालाके दांतोंका शब्द पत्थरोंका शब्द मालुम हुआ ? इसमें सिद्ध होता है कि, तुमारा माना वेदादिकोंका वक्ता ईश्वर भी ऐसाही ज्ञानवान् होगा.—तथा पत्थरोंसें जगत्में लोक सोमरसही पीसते हैं ? अन्य नहीं ? जो सोमही पीसनेका शब्द है, अन्यका नहीं. तहां यज्ञशाला भी नहीं थी कि, जिससें सोम पीसनेकाही निश्चय होवे.

तथा अपाला ब्राह्मणी कोई ऊंटणी थी, वा राक्षसणी थी ? कि जिसके दांतोंका शब्द पत्थरोंके शब्दसमान इंद्रको मालुम पडा ! क्या इंद्र भिक्षाचरोंकीतरें घरघरमें सोमरस पीता फिरता था ? और अपाला बडी नालायक थी ? कि जिसने अपने मुखमें चर्वण करी अपने मुखकी लाला और श्लेष्मयुक्त जुगुप्सनीय मलीन ऐंठी चगली हुई सोमकी निमंत्रणा इंद्रको करी ? इंद्र भी क्या तिसविना मरा जाता था ? जिससें पूर्वोक्त चावी हुई लाला थूकयुक्त सोमवाले अपालाके मुखको अपने मुखसें चूसके सोमका सर्व रस पी गया !

वेदांतीसाहबः—तुम नहीं जानते, अपालाने भक्तिसें इंद्रको सोमकी आमंत्रणा करी, और इंद्रने भक्तिवश होके चगला हुआ भी सोमरस पी लीया, इसमें क्या दोष है ?

उत्तरः—तुमारा कोई भक्त, जो तुमको अत्यंत अच्छी लगती होवे ऐसी मिठाइ मुखमें चावके तुमको कहे कि, मेरे मुखसें मुख लगाके तुम यह मिठाइ चूसके पी लो, तो क्या तुम पी लोंगे ? नहीं. तो इंद्रने किसतरें चगल पी लीनी ?

वेदांती:—इसका तात्पर्य तुम नहीं जानते, इसका तात्पर्य यह है कि, इंद्र भी ब्रह्मज्ञानी था, और अपाला भी ब्रह्मज्ञानिनी थी, इसवास्ते तिनके ज्ञानमें ब्रह्मविना अन्य कुछ भी नहीं था; इसवास्तेही तिसके मुखसे मुख लगाके सोमरस इंद्रने चूसा. ब्रह्मसें ब्रह्म मिल गया, इसमें क्या दोष है ?

उत्तर:—इसकालमें कितनेक वेदांती परस्त्रीयोंसें भोग करते हैं, तिन स्त्रीयोंके मुखकी लाला चाटते (चूसते) हैं; क्या वे भी ऐसा ब्रह्म एकत्व समझकरकेही करते होंगे ?

वेदांती:—हां.

उत्तर:—तब तो माता, बहिन, बेटीके गमन करनेमें भी कुछ दोष नहीं होना चाहिए.

वेदांती:—है तो ऐसैही, परंतु जगत्व्यवहार उलंघन करना न चाहिए.

उत्तर:—जबतक ब्रह्मज्ञानी जगत्व्यवहार मानेंगे, और माता, बहिन, बेटीको अगम्य जानेंगे, तबतांइ तिनकी माया (भ्रांति) दूर नहीं होनेसें तिनको ब्रह्मज्ञान नहीं होवेगा. असल ब्रह्मज्ञानी तो ब्रह्माजी थे, जिन्होंने सर्व जगत्को ब्रह्मरूप अपनाही स्वरूप जानकर अपनी पुत्रीसेंही संभोग करा; यही प्रायः सर्ववेदांतियोंका तात्पर्य (सिद्धांत) है.

और अपालाके पिताके शिरमें टट्टरी होनेसें अपालाके बापको क्या दुःख था ? क्या उसको ज्ञान चडना था ? और अपालाके गुह्यस्थानमें रोम नहीं थे तो, तिसको क्या दुःख था ? हां, जेकर इंद्रसें यह मांगती कि, मेरे शरीरका तूं रोग दूर कर, सो तो वर मांगा नहीं. वो तो इंद्रने आपही मुखकी चगल सोमरस पीके संतुष्ट होके तिसको यंत्रमेसें खैचके छील छालके अच्छी (चंगी) कर दीनी. इस पूर्वोक्त श्रुतियोंके कथनमें सत्य कितना है, और झूठ कितना है, सो वाचकवर्ग आपही विचार लेवेंगे. क्योंकि, मनुष्यकी चमडीसें भी क्या मयना (शल्यक), गोह, और किरले, उत्पन्न हो सके हैं ? कदापि नहीं हो सके हैं. इसवास्ते वेद ईश्वरके कथन करे नहीं सिद्ध होते हैं; किंतु ब्राह्मणोंकी स्वकपोलकल्पना सिद्ध होती है. इति ॥

શારદા પૂજન વિધિ.

શુભ મુહુર્તે (સારા ચોધરીએ) પ્રથમ ચોપડો શુદ્ધ બાજોડ ઉપર પૂર્વ અક્ષર ઉત્તર દિશા તરફ સ્થાપવો, પછી સ્ત્રીના દીપક તથા ઘૂપ રાખવો, પૂજન કરનારે પોતાના અમણા હાથે નાડા છડી બાંધવી, અને પછી મનોહર લેખણ લઈ નીચે લખ્યા મુજબ નવાન ચોપડામાં લખવું.

શ્રી પરમાત્મને નમઃ, શ્રી ગુરુઓ નમઃ, શ્રી સર્વસ્વે નમઃ, શ્રી પાતમસ્વામીની લખિ હોજો, શ્રી કેસરીઆણનો બંડાર બરપૂર હોજો, શ્રી ભરતચક્રવર્તીની શુદ્ધિ હોજો, શ્રી બાહુબલીનું પાલ હોજો, શ્રી અભયકુમારની શુદ્ધિ હોજો, શ્રી કચવના શેઠનું સાંભાગ્ય હોજો, શ્રી લન્નાશાસ્ત્રીભદ્રની સંપત્તિ હોજો. આટલું લખ્યા પછી નવી સાલ, મહીના, દીવસ વગેરેથી પ્રાર્થ કરવું.

આટલું કર્યાબાદ તેની નીચે, નીચે મુજબ એકથી નવ સુધી 'શ્રી' ઓં દેરી આવકારે કરવો.

શ્રી
શ્રી શ્રી
શ્રી શ્રી શ્રી
શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી
શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી
શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી
શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી
શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી શ્રી

અને ચોપડો સાંકડો હોય તો સાત કે પાંચ 'શ્રી' કરવી. ત્યાર પછી તેની નીચે સ્તિક (સાથીઓ) કુંકુમથી કરવો અને સ્વસ્તિક ઉપર અખંડ નાગરવેલનું પાન મૂકવું ને તે પાન ઉપર સોપારી, ચલણી, લવીંગ અને રૂપાનાણું મૂકવું. પછી ચોપડાને કરતી લઘારા દઈને વાસણેપ, અક્ષત અને પુષ્પની કુસુમાંજલી હાથમાં લઈ નીચેના શ્લોક બોલી પંડા ઉપર તે કુસુમાંજલી ફાંપવી.

મંગલં ભગવાન ચીરો । મંગલં મૌલમઃ પ્રધુઃ
મંગલં સ્થૂલભદ્રાદ્યા । જૈનો ધર્મોઽસ્તુ મંગલમ્ ।

॥ અથ શ્રી મન્ત્રસ્તવનપ્રારંભઃ ॥

સ્વઃશ્રીયં શ્રિમદર્હત । સિદ્ધા સિદ્ધિપુરીપદમ્ ॥
 આચાર્યાઃ પંચધાચારં । વાચકા વાચનાં વરામ્ ॥ ૧ ॥
 સાધવઃ સિદ્ધિસાદ્ધાર્યં । વિતન્વન્તુ વિવેકિનાં ॥
 મંગલાનાં ચ સર્વેષામાર્થં ભવતિ મંગલમ્ ॥ ૨ ॥
 અર્હમિત્યક્ષરં માયા-વીજં ચ પ્રણવાક્ષરં ॥
 એનં નાનાસ્વરૂપં ચ ધ્યેયં ધ્યાયન્તિ યોગિનઃ ॥ ૩ ॥
 હ્રસ્વઘ્નોઽશ્વદલ-સ્થાપિતં ઘોઽશક્ષરં ॥
 પરમેષ્ટિસ્તુતેઘ્નોજં । ધ્યાયેદક્ષરદં મુદા ॥ ૪ ॥
 મંત્રાણામાદિયં મંત્રં । નંત્રં વિઘ્નોઽગ્નિગ્રહે ॥
 યે સ્મરંતિ સર્વદેવેનં । તે ભવંતિ જિનમખાઃ ॥ ૫ ॥

ત્યાર પછી નીચે લખેલ મંત્ર યોલતા જવું અને દરેક દ્રવ્યથી શારદાપૂજન કરતા જવું.

મંત્ર. ૐ હ્રિ શ્રી મગવત્યૈ, કેવલજ્ઞાનસ્વરૂપાયૈ, લોકાલોકપ્રકાશિકાયૈ સર
 સ્વત્યૈ જલં સમર્પયામિ સ્વાહા-ઇતિ જલપૂજાઃ

એવી રીતે મંત્ર યોલતા જવું અને જલં સમર્પયામિને બદલે જે દ્રવ્યથી પૂજા ૐ
 હ્રમે આવતી જાય તે દ્રવ્ય સમર્પયામિ એમ યોલતા જવું.

(૧) જલપૂજા પછી (૨) ચંદન (૩) પુષ્પ (૪) ધૂપ (૫) દીપ (૬) મૌક્ષત
 (૭) નૈવેદ્ય [૮] ફલ એમ આઠ દ્રવ્યથી પૂજા કર્યા પછી બે હાથ જોડી નીચેનું કૃત્રેય યોલવું
 અથવા સાંભળવું

॥ અથ શ્રી શારદાસ્તવન પ્રારંભઃ ॥

વાગ્દેવતે ભક્તિમતાં સ્વશક્તિકલાપવિત્રા સિતવિગ્રહા મે ॥
 વોયં વિશુદ્ધં ભવતી વિધત્તાં કલાપવિત્રાસિતવિગ્રહા મે
 અંકમવીણા કલહંસપત્રા કૃતસ્મરેણાનમતાં નિહંતું ॥
 અંકમવીણા કલહંસપત્રા સરસ્વતી શશ્વદપોહતાહઃ ॥
 વ્રાહ્મી વિજેષીષ્ઠ વિનિદ્રકુંદમભાવદાતા ઘનગર્જિતસ્વ
 સ્વરેણ જૈત્રી ક્રતુનાં સ્વકીયમભાવદાતા ઘનગર્જિત ॥ ૩ ॥
 મુક્તાક્ષમાલા લસદૌષધીશાઽભિશુજ્વલા ભાતિ ॥ ત્વદીયે ॥
 મુક્તાક્ષમાલા લસદૌષધીશા વાં પ્રેક્ષ્ય ભેજે મમમયિ હર્ષે ॥ ૪ ॥

૧ જલપૂજા બેઠેલે સૂર્યમ જાણવા અથવા કરતી યોજના આ ચંદન પૂજામાં ફેરવેલું
 સુખડ અથવા એકલું સુખડ નાપરવડું;

तथा ऋ० सं० अष्टक ७ अध्याय ६ वर्गमें यम और यमीका संवाद है। विवस्वतके पुत्रपुत्री युगल प्रसूत हुए, जब वे यौवनवत हुए तब यमी बहिन, अपने यमनामक भाइको देखके कामातुर होके तिसकेसाथ भोग करनेकी इच्छावत हुई; और यमको कहने लगी कि, तू मेरेसाथ मैथुन करके मुझे तृप्त कर. तब यमने कहा कि, बहिन और भाइका मैथुन (विषय) महापापका हेतु है; इसवास्ते मैं यह काम कदापि नहीं करूंगा. तब यमीने, यमको समझाने, और तिसकेसाथ संभोग (विषय) सेवनेकेवास्ते अनेक युक्तियां, और दृष्टांत दीए हैं. परंतु यमने तिसको उत्तर देके तिसका कहना स्वीकार नहीं करा. यह कथन चतुर्दश (१४) ऋचायोंमें है, और इस सूक्तके ऋषि भी यम और यमी है. यह सूक्त यमयमीऊपर संतुष्टमान होके परमेश्वरने तिनको प्रदान करा था! अब वाचकवर्गके वाचनेवास्ते नमूनेमात्र दो ऋचायों अर्थसहित लिख दिखाते हैं.

उशन्ति घा ते अमृता स एतदेकस्य चित्यजसं मत्यस्य ।

नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जंन्युः पतिस्तन्व मा विंविश्याः ॥३॥

ऋ० अ० ७। अ० ६॥

भाष्यानुसारभाषार्थः—पुनरपि फिर यमी यमप्रते कहती है। (घा) ऐसा निपात अपि अर्थमें है, हे यम! (ते) प्रसिद्ध-वे—(अमृतासः) प्रजापतिआदि देवते भी (एतत्) ईदृश—शास्त्रने जो अगम्य कही है (त्यजसं) त्यागीए हैं, परकेतांइ देइए हैं, ऐसी जो खबेटी बहिनादि स्त्रीजात तिनको (उशन्ति) कामयन्ते अर्थात् तिनकेसाथ पूर्वोक्त देवते भोग करनेकी इच्छा करते हैं। (एकस्यचित्) एकही सर्व जगत्का मुख्य प्रजापति ब्रह्मादि देवतायोंका भी अपनी बेटी भगिनीके साथ संबंध है। इसकारणसें (ते) तेरा (मनः) चित्त (अस्मे) मेरे (मनसि) चित्तमें (निधायि) स्थापन कर, अर्थात् जैसें मैं तेरेको भोगेच्छा करके बाँझती हूं, तैसें तू भी मुझको बाँझ,—मेरेसें भोग करनेकी इच्छा कर.

अपिच एक अन्य बात यह है कि, (जन्मुः) यह लुप्तोपमा है जन्म्युरिव जैसें जननेवाला पिता प्रजापति ब्रह्मा अपनी पुत्रीका भर्ता-पति होके अपनी बेटीके शरीरको संभोग करके विषय सेवन करता भया, तैसें तू भी (पतिः) मेरा पति होकर (तन्वं) मेरे शरीरको (आविविश्याः) संभोग करके 'आविश' योनिमें प्रजनन प्रक्षेप, उपगूह चुंबनादि करके मुझको अच्छीतरेसें भोग इत्यर्थः ॥ ३ ॥

यह सुन कर यम यमीको उत्तर देता है.

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम ।

गन्धर्वो अप्सवप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४॥

अ० ७। अ० ६। व० ६ ॥

भाषार्थः—(पुरा) पहिले प्रजापतिने (यत्) जो अगम्य गमन करा था, अर्थात् अपनी पुत्रीसें जो संभोग करा था, सो अपरिमित प्रमाण रहित सामर्थ्यवन्त होनेसें करा था, तैसें हम (न चकृम) नहीं कर सक्ते हैं. । हम (ऋता) सत्य बोलते हुए (अनृतं) असत्य (कद्ध) कबी (नूनं) निश्चयकरके (रपेम) बोलते हैं ? कबी भी नहीं. अर्थात् हम कबी भी अगम्य गमन नहीं करेंगे. अपिच (अप्सु) अंतरिक्षमें स्थित (गन्धर्वः) किरणोंके, वा पानीके धारण करने-वाला आदित्य, और (अप्या) अंतरिक्षस्था सा प्रसिद्धा-आदित्य (सूर्य)-की भार्या (स्त्री) सरण्यू, ये दोनों (नौ) अपने दोनोंके (नाभिः) उत्पत्तिस्थान अर्थात् मातापिता है (तत्) तिस कारणसें (नो) अपने दोनोंका उत्कृष्ट (जामि) बांधवपणेका-भाइबहिनका संबंध है, तिसकारणसें पूर्वोक्त अगम्यगमनरूप अयोग्य कार्य, मैं नहीं करुंगा. इत्यभिप्रायः ॥ ४ ॥ *

* स्वप्ता नामक देवता, अपनी सरण्यूनामा पुत्रीको सूर्यकेतांड देता भया, तिनोंके संबंधसें यम और यमी उत्पन्न भए; एकदा अपने सदृश स्त्रीके पास पुत्रपुत्रीको स्थापन करके सरण्यू, घोड़ीका रूप करके उत्तरकुरुको चली गई. अथ सूर्य तिस अन्यस्त्रीको सरण्यू जानके तिसके साथ विषय

समीक्षा:—इसमें हम यह कहना चाहते हैं कि, यमयमीने जब तप-करके यह सूक्त प्राप्त करा था, तब परमेश्वरने तुष्टमान होकर यह सूक्त दीना; और पूर्वोक्त कथन परमेश्वरने यमीके मुखसें करवाया कि, तू अपने भाइ यमसें विषयसंभोग करनेकेवास्ते प्रार्थना कर कि, हे यम! तू मेरेसाथ भोग कर. वाह !!! परमेश्वरकी लीला कि, जिसने भाइकेसाथ बहिनको मैथुनकी प्रार्थना करवाई! और यमसें ऋचाद्वाराही विषय सेवनकी नहीं करवाई; क्या वाचकवर्गों! परमेश्वर ऐसे २ ही काम करता रहता है? और ऐसे २ कथनोंकी उत्तमतासेंही वेद परमेश्वरके रचे माने जाते हैं? और यही वेदका अपौरुषेयत्व अनादित्व है? जिनमें ऐसा २ कथन है.

और यमने जो कहा कि, “ प्रजापति ब्रह्माजी अपरिमित सामर्थ्यवाले थे, इसवास्ते उनोंने अगम्य गमन करा अर्थात् अपनी पुत्रीसें विषय सेवन करा. ” क्या अपरिमित सामर्थ्यवाले, ऐसे २ अनुचित काम करते हैं? जो सर्व जगत् और तत्त्ववेत्ताओंके निंदनीय होते हैं. जेकर प्रजापति अपरिमित सामर्थ्यवाले थे तो क्या तिनसें काम न जीता गया? कि, जिसको यमसरीखे वा साधारण जन भी जीतते हैं, और जीत शक्ते हैं. यदि कहो कि, यह प्रजापतिकी लीला है तो, क्या पुत्रीकेसाथ विषय सेवन करना यही लीला रह गई थी? अन्यलीला करनेका अवसर नहीं था? जिससें पुत्रीगमनरूप लीला कर दिखलाई? क्या ऐसी लीला करे बिना प्रजापतिका सामर्थ्य, और यश जगत्में प्रगट नहीं होता था? जिससें ऐसी लीला करी? वाहजी वाह !!! जगत् सृजनहारे पितामहके कर्म !!! इन ब्राह्मणऋषियोंने बडे २ महात्माओंको भी, अपने लेखसें दूषित करे हैं; इसवास्ते यह वेदोंकी रचना सर्व ब्राह्मणोंकी स्वकपोलकल्पना है.

सेवन करता भया, तिससें मनुनामा राजऋषि उत्पन्न भया, । तदपीछे यह सरणू नहीं है, ऐसा जानके सूर्य घोड़ा बनके तिस घोड़ीकेसाथ जाके विषय सेवन करता भया, तिन दोनोंके क्रिडा करते हुए वीर्य पृथिवीउपर पडा, तिसको गर्भकी इच्छा करके घोड़ीने सूंवा तिस घोड़ीसें दोनों अभिनी-कुशर उत्पन्न हुए । इति । ऋ० सं० अष्टक ७ । अ० ६ । व० २३ ॥

तथा—

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ।
 येऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ६ ॥
 या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पती १ ॥ रनु ।
 ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ७ ॥
 ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु ।
 येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

॥ यजुर्वेदाध्याय १३ ॥

भाषार्थः—‘येकेच’ जे केइ ‘सर्पन्ति सर्पा लोका पृथिवीमनु गता प्राप्ता’ तिनसर्पोंको नमस्कार होवे, जे सर्प अंतरिक्ष लोकमें वर्तमान है, और जे सर्प ‘दिवि’ स्वर्गलोकमें वर्तमान है, तिन सर्पोंकेतांइ अर्थात् तीनों लोकोंके सर्पोंको नमस्कार होवे; सर्पशब्दकरके लोक कहते हैं । ६ । जे दुःखोंको धारण करे, ते यातुधाना—राक्षसादि, तिनोंकी जे जातियां; ‘इषवः’ वाणरूप करके वर्ते हैं, अर्थात् नागपाशबाणरूप जे सर्वोंकी जातियां है, तिनकेतांइ; जे अन्य चंदनादि वनस्पतिको वेष्टन करके स्थित रहे हैं, तिनकेतांइ; और जे अन्य बिलोंमें वास करते हैं, तिन सर्पोंकेतांइ नमस्कार होवे । ७ । देवलोकके दीप्तस्थानमें जे हमारे अदृश्यमान सर्प है, जे सर्प सूर्यकी किरणोंमें वसते हैं, और जिन सर्पोंका जलमें स्थान है, तिन सर्व सर्पोंकेतांइ नमस्कार होवे ॥ ८ ॥

समीक्षाः—छट्टीश्रुतिका भाष्यमें सर्पशब्दकरके सर्वलोक ग्रहण करे हैं, परंतु यह अर्थ अगली दोनों ऋचायोंसे विरुद्ध है। क्योंकि, अगली ऋचायोंमें सर्पशब्दकरके जे जगत्व्यवहारमें सर्प है, तिनकाही ग्रहण कीया है; नतु लोक. इसवास्ते इन तीनों ऋचायोंमें सर्पोंकोही नमस्कार करा है. अब वाचकवर्गों ! विचार करो कि, जब परमेश्वरने वेद रचे हैं तो, क्या परमेश्वर सर्पोंको नमस्कार करता है ? वा ब्रह्माजी सर्पोंको नमस्कार

है? क्योंकि, जो ऋचायोंका कर्त्ता है, सोही सपोंको नमस्कार करता है. जेकर कहो कि, यजमान सपोंको नमस्कार करता है, तब तो ऋचायोंका भी कर्त्ता यजमानही सिद्ध होवेगा, नतु परमात्मा. जेकर परमात्माही यजमानसें सपोंको नमस्कार करवाता है, तब तो परमात्माही अज्ञानका पोषक, और तिर्यचादिकोंको नमस्कार करानेसें असमंजसकारी है; इस-वास्ते वेद परमात्माके रचे हुए नहीं हैं.

तथा यजुर्वेदके १९ मे अध्यायमें सौत्रामणी यज्ञका वर्णन है, जिससें भी यही सिद्ध होता है कि, वेद अनादि, वा ईश्वरकृत नहीं है; किंतु अज्ञानीयोंका अज्ञान विजृम्भित है. सो जो कोई पक्षपातरहित होकर वांचेगा, और शोचेगा, तो उसको मालुम हो जायगा. यद्यपि इस अध्यायमें विस्तारपूर्वक वर्णन है, और कुछ भी परमार्थ सिद्ध नहीं कर सकता है, तथापि भव्य जीवोंको वेदकी लीला जाननेकेवास्ते संक्षेपमात्रसें भावार्थमात्र लिखते हैं. ॥ श्रुति १२ में भाष्यकार महीधरजी लिखते हैं—अनुपद्रुत सोमके पीनेसें भ्रष्ट हुए इंद्रका वीर्य, नमुचिनामा असुर पीता भया, तब देवताओंने इंद्रका भेषज्य करा, तिसमें अश्विनीकुमार, और सरस्वती, ये तीन भिषज अर्थात् वैद्य हुए. और सौत्रामणी औषध हुआ; इत्यादि—अब श्रुतिका अर्थ लिखते हैं—देवता सौत्रामणीनामा यज्ञ इंद्रके औषधरूप भेषजको विस्तारते हुए, तिससमयमें अश्विनीकुमार, और सरस्वती, ये तीन इंद्रकेसांड सामर्थ्यके देनेवाले वैद्य होते भए.

श्रुति ३४—नमुचिने इंद्रका वीर्य पीया, तिसको मारनेसें रुधिरमिश्र सोम उत्पन्न हुआ, तिसको देवते पीते हुए.—असुरपुत्र नमुचिके पाससें अश्विनीकुमार सोम हरते भए, और इंद्रके वीर्यकेवास्ते सरस्वती, तिस अश्विनीकुमारके लाए हुए सोमको पीसती हुई. तिस अश्विनीकुमारके हरे हुए, और सरस्वतीके पीसे हुए, इस सोमको इहां यज्ञमें मैं भक्षण करूं. कैसा है सोम? रुधिरकरकेरहित रसवाला, और परमैश्वर्य देनेवाला है.

श्रुति ३५--इंद्र सुरा लगा हुआ सोमका अंश, कर्मोंकरके शुद्ध करके पीता हुआ.-इस यज्ञमें प्रायः सुरा (मदिरा) ही की मुख्यता होती है.

३६-पिता, पितामह, प्रपितामहोंको नमस्कार, और विनती है. पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः इत्यादि-

३७-पुनन्तु मा पितरः-हे पितरो ! मैनुं (मुझको) शुद्ध करो. इत्यादि-

३८-हे अग्ने ! तूं हमारेवास्ते व्रीहिआदि धान्य, और दधिआदि दे, जीवनेका हेतु होनेसे; और हे अग्ने ! कुत्तेसदृश दुर्जनोंका नाश कर इत्यादि-

३९-हे देवानुगामीजन ! हे बुद्धे ! (बुद्धि !) हे विश्व जगत् ! हे अग्ने ! तुम मुझको पवित्र करो-

४०-४१-अग्निकी प्रार्थना-पवित्रेण पुनीहि मा इत्यादि-

४२-वायुकी प्रार्थना-पवमानःसो अद्य नः इत्यादि-

४३-सूर्यकी प्रार्थना-उभाभ्यां देवसवितरित्यादि-

४४-वैश्वदेवीकी सुराकुंभीकी उपमाद्वारा स्तुति-वैश्वदेवी पुनती इत्यादि-

४५-४६-पित्रोंको और गोत्रियोंको प्रार्थना-

४७-मरनेवाले प्राणियोंके दो मार्ग, मैं सुनता हुआ; एक देवताओंका मार्ग, और दूसरा पितृमार्ग (पितरोंका मार्ग).-द्वे सृतीऽअश्रृणवमित्यादि-

४८-हविः और अग्निकी प्रार्थना-इदं हविः प्रजननं मेऽस्तु इत्यादि-

४९-५०-५१-पितरोंको प्रार्थना-इस लोकमें स्थित पितरो ! तुम उर्द्धलोकमें जावो-परलोकमें स्थित पितरो तिस स्थानसे भी परले स्थानमें जावो-अंगिरसके बहुते अपत्य (संतान) अथर्वणमुनिके संतान, भृगुके अपत्य, ये जो हमारे पितर वे हमको सुबुद्धिवाले करो-वसिष्ठके अपत्य जो हमारे पूर्वपितर, जो कि देवताओंको सोम प्राप्त करते हुए उन पितरोंकेसाथ प्रीयमाण हुआ थाका यम, हवियोंको भक्षण करो-उदीरता-मवरे-अंगिरसो नः पितरः-ये नः पूर्वं पितरः इत्यादि-

५३—हे सोम ! हमारे धीर पूर्वज पितरहि जिस कारणसें तेरेवास्ते यज्ञादि करते भए, इस कारणसें मैं तेरी प्रार्थना करता हूं कि, जे यज्ञके उपद्रव करनेहारें हैं, उनकों तूं दूर कर. इत्यादि—

५६—मैं पितरोंको जानता हुआ.

५७—ते पितर इस यज्ञमें आओ, हमारे वचन सुनो, सुनके पुत्रोंको कहनेयोग्य जो होवे, सो कहो. तथा ते पितर, हमारी रक्षा (पालना) करो.

५८—हमारे पितर इस यज्ञमें देवयानोंकरके आओ.

५९—हे पितरः ! हम पुरुषभावकरके चलचित्तवाले होनेकरके तुम्हारा अपराध करते हैं तो भी तुम हमारी हिंसा मत करो.

६०—हे आदित्यलोकमें रहनेवाले पितरः ! हवि देनेवाले मनुष्यकेतांइ तुम धन देवो. तथा हे पितरः ! पुत्रोंकेतांइ, यजमानोंकेतांइ, अभीष्ट धन देवो. क्योंकि, पितरोंके यजमान पुत्रही होते हैं. हे पितरः ! तुम इस हमारे यज्ञमें रस स्थापन करो.

६१—जे पितर इस लोकमें हैं, जे इस लोकमें नहीं हैं, जिन पितरोंको हम जानते हैं, और जिन पितरोंको हम नहीं जानते हैं, हे जातवेदः—अग्नि ! ते पितर जितने हैं, तिन सर्वको तूं जानता है. इत्यादि.

६८—जे पितर पूर्वे स्वर्गको गए, जे पितर कृतकृत्य होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए, जे पितर अग्निमें बैठे हुए हैं, और जे पितर यजमानरूप प्र-जामें बैठे हुए हैं, तिन चारों प्रकारके पितरोंकेतांइ आजदिन यह यज्ञ-निमित्त अन्न होवे.

८१ से ९२ श्रुतिपर्यंत—अश्विनीकुमार, और सरस्वती इन तीनोंने जिन जिन वस्तुओंसें इंद्रका रूप बनाया तिनका वर्णन है—यथा—शष्प-विरूढव्रीहि (धान्यविशेष) करके इंद्रके रोम बनाए, विरूढयवोंकरके त्वक्—चमड़ी बनाई, लाजाका मांस बनाया, मासर शष्पादिचूर्ण चरुनिः-स्त्रावोंकरके हाड बनाए, मदिराका लहू बनाया, इंद्रका शरीर रंगनेवास्ते; इसीवास्ते वेदोंमें इंद्रका नाम रोहित लिखा है. दूधसें इंद्रका वीर्य बनाया,

मदिरासैं मूत्र बनाया, तथा आमाशयगत अन्न ऊवध्य, पक्काशयगत अन्न सब्ब, और नाडीगत वात, ये भी मदिरासैं बनाए. पुरोडाश देवताके हृदय-करके इंद्रका हृदय उत्पन्न करा, सविता पुरोडाशकरके इंद्रका सत्य उत्पन्न करा, वरुण इंद्रकी चिकित्सा करता हुआ, यकृत् कालखंड और गलनाडिका उत्पन्न करता हुआ, वायव्यसामिकौर्द्धपात्रोंकरके हृदयके दोनों पासोंके हाड और पित्त बनाए, मधु सिंचन करती स्थालियां (हांडीयां) इंद्रकी आंत्रे (नशां) बनी, पात्र गुदाके स्थान हुए, धेनु गुदा हुई, श्येनका पत्र स्त्रीहा हृदयके वामेपासे रहनेवाला शिथिल मांसपिंड हुआ, शचीयांकरके जननीस्थानीय (मातासदृशी) आसंदी, और नाभि तथा उदर हुए. सुराधानकुंभने (शचीयों) कर्मोंकरके स्थूल आंत्रां (नशां) उत्पन्न करी, सतपात्रविशेष इंद्रका मुख, और शिर हुआ. पवित्र जिह्वा हुई. अश्विनीकुमार और सरस्वती मुखमें हुए, चप्यं पायु (गुदा) इंद्रिय हुआ, वाल सुरा छाणनेका वस्त्र, इंद्रका वैद्य गुदा और वीर्यके वेगवाला लिंग हुआ, अश्वियांकरके इंद्रके चक्षु, ग्रह अश्विदेवत्यांकरके चक्षुओंका अनश्वरपणा, छाग (बकरा) रूप पक्क हविकरके चक्षुसंबंधि तेज, गोधूम (गेंदू) करके नेत्रके रोम, बेरांकरके चक्षुनिर्विष्ट लोम (रोम) और नेत्रगत श्वेत और कृष्णरूप अश्विनीकुमार करते भये. अवि और मेष ये दोनों वीर्यकेवास्ते इंद्रके नाकमें स्थित हुए, ग्रह सारस्वतोंकरके प्राणवायुका अनश्वर रस्ता करा, सरस्वतीने यवके अंकुरोंकरके इंद्रका व्यानवायु करा, बेरोंसैं नाशिकाके रोम करे. बलकेवास्ते ऋषभ इंद्रका रूप करता भया, ग्रह ऐंद्रोने भूत भविष्यत् वर्तमान शब्दग्राहि श्रोत्रेंद्रिय (कर्ण) स्थापित करे, यव और बर्हि श्रुवोंके रोम हुए, और बेर मुखसैं मधुतुल्य लाला श्लेष्मादि हुए, -वृकके रोमसैं शरीरके ऊपरके और गुह्यस्थानके रोम हुए, व्याघ्रके रोमसैं मुखके ऊपरके दाढीमूछके रोम हुए, तथा यशकेवास्ते शिरके ऊपर केश, शोभाकेवास्ते शिखा-चोटी, कांति, और इंद्रियां, ये सर्व सिंहके लोम (रोम) सैं बने-इत्यादि-

९३-अश्विनीकुमार आत्माके अवयवोंको जोड़ते हुए, तिनको सरस्वती अंगोंकरके धारण करती भई. इत्यादि-

१४—सरस्वती अश्विनीकुमारकी स्त्री होके, इंद्ररूप सुंदर गर्भको धारण करती है।

१५—अश्विनीकुमार और सरस्वतीने वीर्यवत्, पशुओंके संबंधि हविष्लेके, तथा मदिरा, दूध और मधुको लेके इंद्रकेवास्ते दूध स्नावित करते हुए. तथा मदिरा और दूधसें अमृतरूपवाले, और ऐश्वर्य देनेवाले सोमको दोहन करते भए. ऐसें जिन सरस्वति और अश्विनीकुमारोंने नाना द्रव्योंसें नाना रस ग्रहण करके इंद्रकेवास्ते उपकार करा, तिन सौत्रामणीके *द्रष्टाओंकेतांइ नमस्कार होवे—इति ॥

पूर्वोक्त सर्व वृत्तांत महीधरकृत वेददीपकभाष्यके अनुसार लिखा है. अब वाचकवर्गको विचार करना चाहिये कि, इसमें ईश्वरप्रणीत तत्त्वज्ञान कौनसा है? यह तो निःकेवल युक्तिप्रमाणबाधित अप्रमाणिक अज्ञानी-योंकी स्वकपोलकल्पना है. तथा इन श्रुतियोंको देखके, डा० मोक्ष मूलरका कहना—वेदोंका कथन ऐसा है, जैसा कि अज्ञानीयोंके मुखसें अकस्मात् वचन निकले होवे—सत्य २ प्रतीत होता है.

तथा—

यां मेधां देवगुणाः पितरश्चोपासते ॥

तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ १४ ॥

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः ॥

मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ १५ ॥

यजुर्वेदाध्याय ३२ ॥

इन श्रुतियोंका भावार्थ यह है कि—हे अग्ने! देवसमूह, और पितृगण (पितर) जिस बुद्धिकी उपासना (पूजा) करते हैं, तिस बुद्धिकरके आज मुझको बुद्धिवाला कर; अर्थात् देवपितृमान्य बुद्धि हमारी भी होवे.। वरुण, अग्नि, प्रजापति, इंद्र, वायु और धाता, ये मुझे बुद्धि देवे ।

* सौत्रामणी, यज्ञविशेष है, जिसमें ब्राह्मणोंको भी सुरा (मदिरा) पानकी आज्ञा लिखी है—
' सौत्रामण्यां सुरात् ' पिवेइति श्रुतिः— ॥

इत्यादि—अब वाचकवर्गको विचारना चाहिये कि, वेद ईश्वरोक्त कैसे सिद्ध हो सके हैं? क्या ईश्वर बुद्धिहीन था, और अग्निवरुणादि बुद्धि-सहित थे? जो उनसे बुद्धिकी याचना करे! इससे सिद्ध होता है कि, यह बात ईश्वरने नहीं कही, किंतु किसी मनुष्यने कही है; जो बुद्धिसे हीन था. बुद्धिकेवास्ते अग्निवरुणादिकी प्रार्थना करता है. यदि कहो ईश्वरने अपनेवास्ते नहीं कही, किंतु श्रुतिद्वारा मनुष्योंको यह शिक्षा करता है कि, तुम वरुणादिकोंकेपास बुद्धिकेवास्ते प्रार्थना करो. तो वैसा वेदकी श्रुतिका पाठ सुनाना चाहिये कि, जहां ईश्वरने कहा हो कि, हे मनुष्यो! मैं ईश्वर तुमको शिक्षा करता हूं कि, तुम वरुणादिकोंसे बुद्धि मांगो. तथा इस कथनमें एक और भी शंका उत्पन्न होवे है कि, ईश्वर सर्वज्ञ, अग्नि वायु आदि जडरूप पदार्थोंसे क्यों प्रार्थना करवावे? इसीवास्ते वेद सर्वज्ञोक्त नहीं है, किंतु अज्ञानीयोंका अज्ञानविजृम्भित है.

तथा यजुर्वेद अध्याय ४० में जो लिखा है, तिससे निःसंदेह सिद्ध होता है कि, वेद ईश्वरके रचे नहीं हैं.

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यादहुरसंभवात् ॥

इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचक्षिरे ॥ १० ॥

यजु० अ० ४० ॥

तृतीयपादभाष्यम्:—“इत्येवंविधं धीराणां विदुषां वचः शुश्रुम वयं श्रुतवन्तः ये धीराः नोऽस्माकं तत्पूर्वोक्तं सम्भूत्यसम्भूत्युपासनाफलं विचक्षिरे व्याख्यातवन्तः” ॥

भाषार्थः—ऐसे पूर्वोक्तविध धीर पंडितोंका वचन हम सुनते हुए, जे धीर पंडित हमको तत् पूर्वोक्त संभूति असंभूति उपासनाका फल कथन करते हुए.—क्या वेद रचनेवाले ईश्वर कहते हैं? कि, हमने धीर पंडितोंसे ऐसे दोप्रकार उपासनाका फल सुना है, जिनोंने हमको पूर्वोक्त उपासनायोंका स्वरूप कहा है. क्या ईश्वरोंने अन्य बहुत ईश्वरोंसे सुना है? तब तो, वेद कहनेवाले बहुत ईश्वर प्रथम अपठित सिद्ध होंगे,

ऐसे वेद रचनेवाले बहुत अपाठित ईश्वर बहुत ईश्वरोंके छात्र सिद्ध होवेंगे। ऐसाही कथन १३ मंत्रमें है; इससें यही सिद्ध होता है कि, वेदरचना ईश्वरकृत नहीं है, किंतु ब्राह्मण और ऋषियोंकी स्वकपोलकल्पना है. इति ॥

तथा तैत्तिरीयब्राह्मणमें ऐसे लिखा है.—

प्रजापतिः सोमं राजानमसृजत । तं त्रयो
वेदा अन्वसृज्यन्त । तान् हस्तेऽकुरुत ।

इत्यादि—तैत्तिरीयब्राह्मणे २ अष्टके ३ अध्याये १० अनुवाके ॥

भाषार्थः—प्रजापति—ब्रह्मा, सोमराजाको उत्पन्न करके पीछे तीन वेदोंको उत्पन्न करते भए; सो सोमराजा, तिन तीनों वेदोंको अपने हाथकी मुट्टीमें छिपा लेता भया.—इत्यादि—क्या जब ब्रह्माजीने वेद उत्पन्न करे थे, तबही किसी ताडपत्रादिउपर लिखे गये थे ? नहीं. तो ब्रह्माजीने तो वेद मुखसे उच्चारें होवेंगे; जब तो वेद जो ज्ञानरूप मानीये, तब तो वेद ब्रह्मात्माका ज्ञान होनेसें सोमराजीने अपने हाथकी मुट्टीमें वेदोंको कैसे छिपा लीया ? जेकर शब्दरूप कहो, तब भी शब्द मुट्टीमें कैसे आ गया ? जेकर लिखितपत्रमय वेद मानोंगे, तब भी इतना बड़ा पुस्तक मुट्टीमें कैसे समा सक्ता है ? इसवास्तेही वेदके सर्वरचनेवाले सर्वज्ञ नहीं सिद्ध होते हैं. विशेष वेदोंका पोल और हिंसकपणा देखना होवे तो, अस्मत्प्रणीत अज्ञानतिमिरभास्करसें देख लेना; पढ़नेकी शक्ति होवे तो, वेदभाष्य, सायणाचार्यादिका करा पढ़के देख लेना; परंतु दयानंदसरस्वतीजीका करा भाष्य कदापि सत्य नहीं मानना. क्योंकि, दयानंदसरस्वतीजीने जो वेद-भाष्यभूमिका, सत्यार्थप्रकाश, यजुर्वेदभाष्य, ऋग्वेदभाष्यादिमें जे अर्थ वेदकी श्रुतियोंके करे हैं, वे सर्व प्रायः प्राचीनवेदमत और वेदभाष्यसें विरुद्ध हैं. यद्यपि मीमांसावार्त्तिककार कुमारिलभट्टने, तथा शंकरस्वामीने, सायणाचार्यने, महिधरादिकोंने कितनीक वेदकी श्रुतियोंके अर्थ अपने मतानुसार उलट पुलट करे हैं; तो भी दयानंदसरस्वतीजीने जितने

गप्पाष्टकरूप अर्थ श्रुतियोंके करे हैं, तैसे अर्थ आजतक प्रायः किसी भी मतवालेने नहीं करे हैं.

पूर्वपक्षः—दयानंदसरस्वतीजीके अर्थ, वा प्राचीन वेदभाष्यकारोंके अर्थ, वा वेदग्रंथ, जैनी प्रमाणभूत नहीं मानते हैं. क्योंकि, जैनमतवाले तो वेदोंकोही हिंसकशास्त्र और अज्ञोंकी कल्पनारूप मानते हैं. तो दयानंद सरस्वतीजीने गप्पाष्टकरूप अर्थ लिखे हैं, इसमें आपको क्या दुःख है ? यदि गर्दभ (गधा) किसीके द्राक्षामंडपको खावें तो, रस्ते चलनेवाले माध्यस्थ पुरुषको क्या दुःख है ?

उत्तरपक्षः—दुःख तो नहीं, परंतु यह काम अयोग्य है; इसवास्ते माध्यस्थके मनमें भी किंचिन्मात्र पीडा होती है. तैसेही दयानंद सरस्वतीजीने प्राचीन चलते हुए वेदार्थोंको भ्रष्ट करे हैं, तिनको देखके माध्यस्थ पुरुषोंको भी दयानंदसरस्वतीजीकी बालक्रीडा देखके मनमें दया आती है कि, इस विचारेके कैसा मिथ्यात्वमोहनीय कर्मका दृढ उदय हुआ है कि, जिससे तिसने कैसा अज्ञानरूप नाटक रचा है !!! और तिसको देखके, कितनेही जीव मोहित होके गाढ मिथ्यात्वके वश होगये हैं. दयानंदसरस्वतीजी तो, अज्ञानरूप नाटक रचके चले गए; परंतु तिनके मतवालोंकी मट्टी खराब, सनातनधर्मादिवाले कर रहे हैं; तिसका दयानंदसरस्वतीजीको तो दुःख नहीं, परंतु पांडित भीमसेनादिके गलेमें उखर्योंकी माला पड़ी है, सारे देखिए कैसे निकालते हैं !!

तथा दयानंदीयोंको मृषा बालना उनके बुद्धवही प्रिय है, जैसे संवत् १९५१ मेंही इलाहबादका पायोनीयर पत्रमें बड़ीभारी गप्प छपवाइ है—एक दयानंदसरस्वतीजीकी विद्या पढनेवालेने छपवाया है कि, ऋग्वेदका भाष्यकार सायणाचार्य तो जैनमती था, तिसने तो वेदोंके सच्चे अर्थ, तथा वेदोंके नाश करनेवास्ते जानबूझके वेदोंके अर्थ विपर्यय लिखे हैं, इसवास्ते तिसका करा भाष्य हमको प्रमाण नहीं है—अब वाचकवर्गों! तुम विचार करो कि, दयानंदीयोंके विना ऐसी अनघड गप्प कोइ मार सकता है ? दयानंदसरस्वतीजीके रचे पुस्तकोंके, वाचनेका यही रहस्य है

कि, जो मनमें आवे सोही गप्प ठोक देनी—हां दयानंदसरस्वतीजीने मृषा बोलने और लिखनेमें किंचित् न्यूनता नहीं रखी है तो, तिनके शिष्य गप्पें मारे और लिखे, लिखावें, इसमें क्या आश्चर्य है? क्योंकि गुरुका ज्ञान जैसा होता है, तिनके शिष्योंका भी प्रायः तैसाही ज्ञान होता है. क्या जैनमती वा सनातनवेदधर्मी, हजारों पंडितोंमेंसें कोई भी कह सकता वा मान सकता है? कि, सायणमाधवाचार्य जैनमती था. क्योंकि, तिसके रचे भाष्य, शंकरविजय सर्वदर्शनसंग्रहादि ग्रंथोंके वांचनेसें स्पष्ट मालुम होता है कि, वो जैनमतसें विपरीतमतवाला था, बलदि जैनमतके खंडन करनेमें तत्पर था.

यद्यपि उनोंने वेदभाष्यमें अपने मतानुसार श्रुतियोंके अर्थ, और कितनेक अटकलपट्टुके अर्थ, और कितनेक यथार्थ अर्थ लिखे हैं, तो भी सायणमाधवकी विद्वत्ता आगे दयानंदसरस्वतीकी पंडिताइ ऐसी है, जैसा मेरुआगे सरसव. जेकर सायणाचार्यका भाष्य न होता तो, हम देखते कि, दयानंदसरस्वतीजी कैसे भाष्य रचे लेते? यह तो तिनके भाष्यकोंही देखके दयानंदसरस्वतीजीने अपनी बुद्धिका अजीर्ण दिखाया है. जेकर सायणाचार्य जैनमती होता तो, सर्ववेदोंके अर्थ जैनमतानुयायी कर दिखलाता. क्योंकि, जैनमतके आचार्योंकी ऐसी विद्वत्ता थी कि, जो वे इच्छते तो सर्ववेदोंके अर्थ उलटाके जैनमतानुयायी कर देते; परंतु तिनको क्या आवश्यकता थी, जो हिंसकपुस्तकोंके अर्थ उलटाके जैनमतानुयायी करते? जैनीयोंके सर्वज्ञोंके कथन करे हुए ऐसे २ अद्भुत पुस्तक हैं कि, जिनके आगे वेदवेदांतके पुस्तक क्या वस्तु है? थोडासा जैनमतके आचार्योंकी बुद्धिका वैभव हम वाचकवर्गके जाननेवास्ते, अगले स्तंभमें लिखेंगे. इत्यलं बहुपल्लवितेन ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे वेदा-

नामीश्वरकर्तृत्वनिषेधवर्णनो नाम दशमः स्तम्भः ॥ १० ॥

॥ अथैकादशस्तम्भारम्भः ॥

दशमस्तम्भमें वेद ईश्वरोक्त नहीं है, यह सिद्ध किया. अथ एकादश-स्तम्भमें जैनाचार्योंका यत्किंचित् बुद्धिका वैभव दिखाते हैं, जो कि दश-मस्तम्भमें प्रातिज्ञात है.

चिदात्मदर्शसंक्रान्त लोकालोकविहायसे ॥

पारेवागवृत्तिरूपाय प्रणम्य परमात्मने ॥ १ ॥

गम्भीरार्थामपि श्रुत्वा किंचिद्गुरुमुखाम्बुजात् ॥

परेषामुपयोगाय गायत्रीं विवृणोम्यहम् ॥ २ ॥

इमां ह्यनादिनिधनां ब्रह्मजीवानुवेदिनः ॥

आमनन्ति परे मन्त्रं मननत्राणयोगतः ॥ ३ ॥

गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्रीति ततः स्मृता ॥

आचारसिद्धावप्यस्या इत्यन्वर्थ उदाहृतः ॥ ४ ॥

ऋ० सं० अष्टक ३ अध्याय ४ वर्ग १० में गायत्री है, और यजुर्वेदके ३६ मे अध्यायमें भी गायत्री है, ऋग्वेदमें—“तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्”—यजुर्वेदमें—“भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यमित्यादि”—और शंकरभाष्यमें उँकारपूर्वक है—तैत्तिरीयआरण्यकके २७ अनुवाकमें भी “उँतत्सवितु” रित्यादि है. तब तो—“उँभूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्”—ऐसा गायत्री-मंत्र हुआ. अब इस पूर्वोक्त गायत्रीमंत्रका सर्वदर्शनके अभिप्रायकरके व्याख्यान करते हैं, तिनमेंसें भी प्रथम जैनमतानुयायी अर्थात् जैनमतके अभिप्रायकरके अर्थ लिखते हैं.

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गोदे वस्यधीमहि ॥

धियोयो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥

ॐ । भूर्भुवःस्वस्तत् । सवितुः । वरेण्यम् । भर्गोदे । वसि । अधीमहि । धियः । धियो । नः । प्रचः । उदयात् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ॐम्) यह ॐकार पंच परमेष्ठीको कहता है, कैसे कहता है ? सोही कहते हैं ‘अर्हन्तः’ इस पदका आद्य अक्षर अकार है, ‘अशरीराः’—सिद्धाः—इस पदका आद्य अक्षर अकार है ‘आचार्यः’ इसका आद्य अक्षर आकार है, ‘उपाध्यायाः’ इसका आद्य अक्षर उकार है, ‘मुनिः’ इसका आद्य व्यंजन स्वररहित मकार है, इन सर्वका संधि होनेसे ‘ॐ’ सिद्ध होता है. * पदके एक देशमें भी पदका उपचार होनेसे ऐसी उक्ति है. सोही ॐकार असाधारण गुणसंपदाकरके विशेषण वाला कथन करिये हैं (भूर्भुवःस्वस्तत्) ‘भूः’ यह अव्यय भूलोकका वाचक है ‘भुवः’ पाताललोकका, और ‘स्वः’ स्वर्गलोकका, तीनोंका द्वंद्व-समास होनेसे ‘भूर्भुवःस्वः’ अर्थात् अधोलोक, तिर्यग्लोक, और स्वर्ग-लोकरूप तीनों लोकोंको, ‘तत्’ ‘तनोति—ज्ञानात्मना व्याप्नोति’ ज्ञानात्मा-करके व्यापक होवे, सो ‘भूर्भुवःस्वस्तत्’ अर्हत् सिद्धोंको सर्व द्रव्यपर्याय-विषयिक केवलज्ञानात्माकरके तीनों लोकोंमें व्याप्त होना प्रसिद्धही है । ज्ञान और आत्माका ‘स्यादभेदात्’ कथंचित् अभेद होनेसे. शेष आचार्यादि तीनोंको भी, श्रद्धानविषयकरके सर्वव्यापित्व है, ‘सर्वव्ययं सम्मत्त-मिति वचनात्’ अथवा सामान्यरूप ज्ञानकरके सर्वव्यापित्व है । इसवास्ते-ही (सवितुः वरेण्यम्) सहस्ररश्मीयोंवाले सूर्यसें भी प्रधानतर है, सूर्यके उद्योतको देशविषयक होनेसे, और इन अर्हदादि पांचों संबंधि भावउद्योतको सर्वविषयक होनेसे. । आहुश्च पूज्याः । चंदाइच्चगहाणं पहा पयासेइ परिमियं खित्तं । केवलियनाणलंभो लोगालोमं पयासेइ॥१॥ +
ऐसें न कहना कि, आचार्यादि तीनोंको केवलज्ञानका लाभ नहीं है तो, तिनको व्यापित्व कैसे है ? क्योंकि तिनको भी कैवलिकज्ञानोपलब्ध पदा-

* ॥ अरिहंता असरीरा आयरिया उवब्भाया मुणिणो । पंचरकरनिप्पत्तो ॐकारो पंचपरमेष्ठी ॥१॥ इति वचनात् ॥

+ [चंद्रादित्यग्रहाणां प्रभाः प्रकाशयति परिमितं क्षेत्रम् । कैवलिकज्ञानलाभो लोकालोकं प्रकाशयति]

भावार्थः—चंद्रसूर्यग्रहोंका प्रकाश, प्रमाणसंयुक्त क्षेत्रको प्रकाश करता है; और केवलज्ञान, लोकालोकको प्रकाश करता है; इसवास्ते सूर्यके प्रकाशसें केवलज्ञानका प्रकाश प्रधानतर है. इति ॥

थोंका सामान्यप्रकारें ज्ञानका सञ्चाव होनेसे, क्षति नहीं है। (भर्गोदे)
 ‘भर्गः’ ईश्वर, ‘उः’ ब्रह्मा, ‘दः’ विष्णु [दयते-पालयति जगदिति दो विष्णुः]
 लोकमेंही, रजोगुणाश्रितब्रह्मा जगत्को उत्पन्न करता है, सत्वगुणाश्रित
 विष्णु स्थापन करता है, और तमोगुणाश्रित ईश्वर संहार करता है।
 भर्गश्च उश्च दश्चेति भर्गोदं द्वंद्वैकवद्भावात् तस्मिन् भर्गोदे अर्थात् ईश्वर
 ब्रह्मा विष्णुमध्ये । कैसें ईश्वरादिः (वसि) वसतीति वस् तस्मिन् वसि,
 (अधीमहि) अस्यापत्यं इः कामः ‘अ’ विष्णु, तिसका पुत्र ‘इ’ कामदेव
 तिसकी मह्यो-भूमयः-भूमियां कामिन्यः-स्त्रीयां तिनको अंगीकार करके
 ‘अधीमहि’ स्त्रीयोंविषे तिष्ठमान अर्थात् स्त्रीयोंके वशीभूत जिनोंका आत्मा
 है। ईश्वरब्रह्माविष्णुविषे स्त्रीयोंके परवशपणा यह तो प्रसिद्धही है।
 पार्वतीके राजी रखनेवास्ते ईश्वर तांडवाडंबर करता है। ब्रह्माजीकेवास्ते
 वेदमें भी कहा है। “प्रजापतिः स्वां दुहितरमकामयदिति” ब्रह्मा अपनी
 पुत्रीके साथ भोग करनेकी इच्छा करता हुआ। और विष्णुका तो स्त्री-
 वशपणा गोप्यादिवल्लभपणेके उपदर्शक तिस २ वचनोंके श्रवण करनेसें
 प्रतीत होता है। पठ्यते च ॥ राधा पुंनातु जगदच्युतदत्तदृष्टिर्मथानकं
 विदधती दधिरिक्तभांडे । तस्याः स्तनस्तवकलोलविलोचनालिर्देवोपि दो-
 हनधिया वृषभं निरुंधन् ॥ १ ॥ इत्यादि ॥

भावार्थः-कामके वश होके कृष्णजीमें स्थापन करी है दृष्टि जिसने,
 इसीवास्ते अर्थात् काम परवश होनेसें दधिविना खाली भांडेमें जो
 मंथानक धारण कर रही है, अर्थात् कामके वश हुई यह नहीं जानती
 है कि, मैं दधि रिडकती हूं कि खाली भांडा; ऐसें विशेषणोंवाली राधा,
 (लक्ष्मी) जगत्को पवित्र करो। अपिच तस्याः-तिस राधाके स्तनस-
 मूहऊपर चंचलनेत्रालि (नेत्रपंक्ति) स्थापन करी है जिसने, इसीवास्ते
 काम परवश होनेसें दोहनक्रियाकी बुद्धिकरके गौके बदले बैलको रोकता
 हुआ; ऐसे विशेषणोंवाला देव कृष्ण-विष्णु भी जगत्को पवित्र करो ॥१॥
 इत्यादि ॥

अथ शिष्यप्रति शिक्षा कहते हैं—(नः) हे नः नृशब्दके आमंत्रणविषे यह रूप सिद्ध है, तब हे नः हे पुरुष ! बहुमानसहित आमंत्रित शिष्य प्रारंभित अर्थके श्रवण करनेमें उत्साहवान् होता है, इसवास्ते विशेषण कहते हैं। (धियोयो) युक् मिश्रणे ऐसा धातु है, इस धातुको अन्य अमिश्रणार्थ भी कहते हैं, इसवास्ते 'यौति पृथग् भवति' जो पृथक् हो सो कहावे 'युः' छांदस होनेसे गुण नहीं हुआ, 'न युः अयुः' तिसका आमंत्रण हे अयो ! हे अपृथक् ! किससे ? 'धियः' बुद्धिसे जिसवास्ते तूं बुद्धिसे अपृथग्भूत है अर्थात् बुद्धिमान् प्रेक्षा पूर्वकारी है, इसवास्ते तेरेको शिक्षा देते हैं । प्रेक्षावान् के बिना तो, रागी द्वेषी मूढ पूर्वव्युद्वाहितादिकोंको अयोग्य होनेसे, तिनमें जो उपदेश करना है, सो अंधकारमें नृत्य करनेसमान प्रयास है । फिर वलिव्युत्पाद्यकाही विशेषणांतर कहते हैं, (प्रचः) 'प्रकृष्टं चरतीति प्रचः' प्रकृष्ट—अधिक जो चरे—प्रवर्ते सो प्रचः प्रकृष्टाचार मार्गानुसारिप्रवृत्तिरितियावत् प्रकृष्ट आचारवालेहीमें उपदेश दिया सफल होता है, और आचारपराङ्मुखोंको शास्त्रका सद्भाव प्रतिपादन (कथन) करना प्रत्युत (उलटा) प्रत्यपाय (कष्ट—पाप) का संभव होनेसे ठीक नहीं है । किं—क्या शिक्षा देते हैं ? सोही कहे हैं । (उदयात्) उदय प्राप्त उदय प्राप्त अनन्यसामान्य गुणातिशय संपदाकरके प्रतिष्ठित आराध्यत्वकरके परमेष्ठिपंचकही है, इत्यर्थः ॥

यहां यह तात्पर्यार्थ है कि, ईश्वर ब्रह्मा विष्णु उपलक्षणसे कपिलसुगतादि देवतायोंके मध्यमें भो पुरुष ! ज्ञानवन् ! प्रकृष्टाचार ! पूर्वे दिखलाए लेशमात्र गुणातिशयके योगसे आराध्यताकरके परमेष्ठिपंचकही प्रतिष्ठित है । इसवास्ते वेही आराधनेयोग्य हैं, वेही उपासना करनेयोग्य हैं, वेही शरणकरके अंगीकार करनेयोग्य हैं, तिनकी आज्ञारूप अमृतरसही आस्वादनीय है, पंचपरमेष्ठीसे अतिरिक्त अन्य कोई आराधने योग्य न होनेसे । जेकर है, तो भी वे आराधनेयोग्य नहीं है । क्योंकि, तिनके दूषण (दोष) यहांही पहिले निर्णय करनेसे । जेकर दूषणोंवालोंको भी आराध्यता होवे, तब तो अतिप्रसंगदूषण होवे । उक्तंच । “कामानुष-

क्तस्य रिपुप्रहारिणः प्रपञ्चतोनुग्रहशापकारिणः । सामान्यपुंवर्गसमानध-
र्मिणो महत्वकृतौ सकलस्य तद्भवेत् ॥ १ ॥” भावार्थः । काममें रक्त,
प्रपंचसें शत्रुओंको प्रहार करनेवाला, अनुग्रह और शाप करनेवाला, ऐसे
सामान्य पुरुषवर्गके सदृश कृत्यके करनेवालेको महत्वकी कल्पना करे हुए,
सर्वप्राणियोंमें भी महत्वकी कल्पना होवेगी। अर्थात् ब्रह्माका भी, विष्णु
छलकरके शत्रुओंको मारनेवाला, और महादेव तुष्टमान रुष्टमान होने-
वाला, यदि इत्यादिकोंमें महत्वकी कल्पना होवे तो, तादृश सर्व प्राणि-
योंमें भी होनी चाहिए ॥ १ ॥ पुनः यहां ‘अधीमहि’ और ‘वसि’ ये विशेष-
ण तिनके रागके सूचकही नहीं है, किंतु साहचर्यसें द्वेष और मोह भी
जान लेने; तिनके पास शस्त्रादिके सद्भावसें, तिनमें द्वेष सिद्ध होता है;
और पूर्वापर व्याहृत अर्थवाला आगम कहनेसें मोह अज्ञानका सद्भाव
सिद्ध होता है ॥ यदुक्तं ॥ “रागोङ्गनासंगमनानुमेयो द्वेषो द्विषदारणहे-
तिगम्यः । मोहः कुवृत्तागमदोषसाध्यः” इत्यादि ॥ भावार्थः ॥ राग तो
स्त्रीसंगमनसें अर्थात् स्त्रीसें भोगविलासममतादिसें अनुमेय है, द्वेष वैरी-
योंके मारनेवास्ते शस्त्रोंके रखनेसें अनुमेय है, और कुत्सित आचरण
और पूर्वापरव्याहृतिवाला शास्त्र कथन करनेसें मोह-अज्ञान अनुमेय है,
इत्यादि ॥ आचार्यादिकोंके तो सर्वथा रागादि क्षय नहीं है, ऐसे मत
कहना। क्योंकि, तिनको भी आप्तके उपदेशसें रागादिके क्षयवास्तेही
प्रवृत्त होनेसें, तथाविध रागादिके असद्भावसें, और तिस रागादि-
कका आगामि कालमें क्षय होनेसें। भाविनिभूतवदुपचारात्—तिनको भी
वीतरागताही है। यहां भावाचार्यादिकोंकरकेही अधिकार है, इसवास्ते
सर्व समंजस है ॥ इत्यार्हताभिप्रायेण मंत्रव्याख्या ॥ १ ॥

अथाक्षपादाभिप्रायेण व्याख्यायते तत्रादौ मन्त्रः ॥

ॐ । भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेव स्य धीमहिधियो
यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ २ ॥

ॐ । भूर्भुवःस्वस्तत् । सवितुः । वरेण्यं । भर्ग । उदे । अव । स्य ।
धीम् । अहिधियः । अयो । नः । प्रचोदया । अत् ॥ २ ॥

भाषार्थः—अथ अक्षपाद जे हैं, वे अपने महेश्वरदेवको नमस्कार करते हुए प्रार्थनापूर्वक ॐ भूर्भुव इत्यादि उच्चारण करते हैं। (ॐ) ऐसा सर्व विद्याओंका आद्य बीज है, सर्व आगमोंका उपनिषद्भूत है, संपूर्ण विघ्न-विघातका हननेवाला है, और संपूर्ण दृष्टादृष्ट फल संकल्पको कल्पद्रुम समान है, इसवास्ते इस प्रणिधानका आदिमें उपन्यास (स्थापन) करना परम मंगल है. नही इससे व्यतिरिक्त अन्य कोई वस्तु तत्त्व है. इति ॥ (भूर्भुवःस्वस्तत्) हे लोकत्रयव्यापिन् ! अक्षपादोंके मतमें शिवही सर्वगत है। तथा (सावितुर्वरेण्यं) हे सूर्यसे प्रधानतर ! सर्वज्ञ होनेसे ' वरेण्यं ' इस स्थानपर हे वरेण्य ! ऐसे जानना। अनुनासिक इतस्तु। ' अइउवर्णस्यांतेऽनुनासिकोनीदादेरिति ' लक्षणवशात् । * इति। अब विशेष्य कहते हैं। (भर्ग) हे भर्ग ईश्वर ! (उदे) उत्कृष्ट है ' इ ' काम जिसके सो कहिए ' उदिः ' तिसका आमंत्रण हे उदे अर्थात् हे उत्कृष्टकामिन् ! अर्वाचीन अवस्थाकी अपेक्षाकरके यह विशेषण है। अब प्रार्थना कहते हैं। (अव—स्य) ये दोनों क्रियापद यथासंख्य उत्तरपद दोनोंके साथ जोड़ने, सोही दिखावे हैं ' अव ' रक्ष—पालय—वर्द्धय। इतियावत्। पालन कर, रक्षाकर, वृद्धिकर, इत्यर्थः। किसकी। (धीम्) धी बुद्धि ज्ञान तत्त्वाधिगम (तत्त्वका जानना) ये सर्व एकार्थिक हैं। धियः ईःश्रीः धीः बुद्धिकी जो लक्ष्मी सो कहिए धीः तां धीम्। अर्थात् बुद्धिकी लक्ष्मीकी वृद्धि कर। ज्ञानकी प्रार्थना ईश्वरसे करनी योग्यही है। ' ईश्वरात् ज्ञानमन्विच्छेदिति वचनात् ' तथा ' स्य ' षोच् अंतकर्मणि ! इस धातुका यह रूप है नाश कर। किसका (अहिधियः) सर्पकीतरें जे बुद्धियां क्रूरतादि जे परको अपकार करनेवाली, तिनोंका नाश कर। (नो) हमारी ' धीम् ' ' अव ' बुद्धिकी वृद्धि कर, और ' अहिधियः ' ' स्य ' क्रूरतादिबुद्धियोंका विनाश कर, इत्यर्थः। फिर विशेष कहते हैं। (यो) हे यो ! मिश्रितसंबंध !। किसकेसाथ ? सो कहे हैं. (प्रचोदया) चुदण् संचोदने ततश्चोदनं चोदः शृंगारभावसूचनं प्रकृष्टश्चोदो यस्याः सा प्रचोदा अर्थात् पार्वती तया सहेति वाक्यशेषः।

* आचार्यश्रीहेमचंद्रानुसृते सिद्धहेमचंद्रनामि शब्दानुशासने प्रथमाध्याये द्वितीये पादे ॥१-२-४१.

पार्वतीकेसाथ इत्यर्थः । अर्वाचीन अवस्थामें पार्वतीके पीन (कठन) पयोधर (स्तन) के ऊपर प्रणयी स्नेहवान् इत्यभिप्रायः । और परमपद अवस्थाकी अपेक्षा तो 'प्रचोदया' पार्वतीके साथ 'यो' अमिश्रित ऐसैं व्याख्यान करना । 'षडिन्द्रियाणि षट् विषयाः षट् बुद्ध्यः सुखं दुःखं शरीरं चेत्येकविंशतिप्रभेदभिन्नस्य दुःखस्यात्यंतोच्छेदो मोक्ष इति नैयायिकवचन-प्रामाण्यात्' । इंद्रिया ६ विषय ६ बुद्धियां ६ सुख १ दुःख १ और शरीर १ ये एकवीस (२१) प्रभेद भिन्न दुःखोंका जो अत्यंत उच्छेद (नाश) सो मोक्ष, ऐसे नैयायिकोंके वचनप्रमाणसैं । तथा 'उदे' यह प्राचीनावस्थाका भी विशेषण जानना, और अर्थ ऐसैं करना । 'उत्' यह तकारांत उपसर्ग प्राबल्य अर्थमें है, तब तो उत् प्राबल्य अतिशयकरके 'एः' कामादिशुद्धि करी है जिसने सो कहिए उदेः तिसका आमंत्रण है उदे ! अर्थात् हे कामादिशुद्धिकारक ! । तथा (अत्) यह भी विशेषण है । अत्ति-भक्षय-ति जगदिति अत् । जो जगत्को भक्षण करे उसको अत् कहिए, सृष्टि-का संहार करनेवाला होनेसैं. यह विशेषण ईश्वरका सिद्ध है. । उक्तंच अक्षपादमते देवः सृष्टिसंहारकृच्छिवः । विभुर्नित्यैकसर्वज्ञो नित्यबुद्धिसमाश्रितः ॥ १ ॥ * इतिनैयायिकाभिप्रायेण मंत्रव्याख्या ॥ २ ॥

अथ वैशेषिकके अभिप्रायकरके भी इसीतरें व्याख्या जाननी, तिनको भी शिवजीकोही देवकरके अंगीकार करनेसैं. परंतु इतना विशेष है कि, वैशेषिकके मतमें परमपद अवस्थाका स्वरूप ऐसा माना है । बुद्धि १ सुख २ दुःख ३ इच्छा ४ द्वेष ५ प्रयत्न ६ धर्म ७ अधर्म ८ और संस्काररूप ९, नव विशेष गुणोंका अत्यंत उच्छेद होना मोक्ष है ।

* भावार्थः—ॐ हे तीन जगत्में व्यापिन् परमेश्वर ! हे सूर्यसैं भी प्रधान ! हे भर्ग ईश्वर ! हे उदे-अर्वाचीनावस्थाअपेक्षासैं उत्कृष्टकामिन् कामवाला ! प्राचीनावस्थाअपेक्षासैं हे अतिशयकरके कामादिकी शुद्धि करनेवाला ! हे पार्वतीकेसाथ संबंधवाला ! परम पदकी अपेक्षासैं हे पार्वतीसैं अमिश्रित ! हे सृष्टिको भक्षण करनेवाला ! पूर्वोक्त विशेषणाविशिष्ट हे भर्ग ईश्वर परमेश्वर ! तूं हमारी बुद्धिकी शुद्धि कर, और अपकार करनेवाली बुद्धियोंका विनाश कर. इति ॥

मंत्रश्चायं ॥

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य
धीमहिधियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ३ ॥

ॐ । भूर्भुवःस्वस्तत् । सवितुः । वरेण्यं । भर्ग । उदे । अव । स्य । धीम् ।
अहिधियः । यो । नः । प्रचोदया । अत् ॥ ३ ॥

व्याख्यापूर्ववत् ॥ इति वैशेषिकाभिप्रायेण मंत्रव्याख्या ॥ ३ ॥

अथ सांख्यमतवाले अपने कपिलदेवको नमस्कार करते हुए, यह कथन करते हैं ॥

मंत्रः ॥

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य
धीम हि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ४ ॥

ॐ । भूर्भुवःस्वस्तत् । सवितुः । वरेण्यं । भर् । गोदेवस्य । धीम । हि ।
धियः । यो । नः । प्रचोदय । अत् ॥ ४ ॥

व्याख्याः—(धीम) धीनाम बुद्धितत्त्वंका है, तिसको मिमीते शब्द-
यति प्ररूपयतीति—कथन करे प्ररूपे सो 'धीमः' भगवान् कपिल इत्यर्थः
तिसका आमंत्रण हे धीम ! अर्थात् हे भगवान् कपिल ! (ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्)
इसका अर्थ पूर्ववत् जान लेना । "अमर्त्तश्चेतनो भोगी नित्यः सर्वगतोक्रियः ।
अकर्त्ता निर्गुणः सूक्ष्म आत्मा कपिलदर्शने ॥ १ ॥" अमूर्त्त, चेतन, भोगी,
नित्य, सर्वव्यापक, अक्रिय, अकर्त्ता, निर्गुण, सूक्ष्म, कपिलमुनिके मतमें
ऐसैं लक्षणोंवाला आत्मा माना है । १ । इसवचनसैं तीन लोकमें व्यापित्व
सिद्ध है । (सवितुर्वरेण्यं) इसका अर्थ अक्षपादवत् जानना । अब कपिल-
कोही उपयोग संपदाकरके विशेष करते हैं । (भर्) डुभृङ्ग—क् पोषणे च
धिभर्तीति भर् पोषकः पोषणकरनेवाला । किसका सो कहे हैं, (गोदेवस्य)
गोशब्दकरके यहां खुर ककुद सास्त्रा लांगूल (पूँछ) विषाण (शृंग)
आदि अवयवसंयुक्त पशु कहिए हैं, तिसकीतरें विधेयताकरके लखिये हैं,
इसवास्ते गौकीतरें विधेयानि वश्यानि देवानि इंद्रियाणि वशीभूत हैं

इन्द्रियां जिसके, सो गोदेव तिसका अर्थात् जितेंद्रियका । नहीं गोविधेयता कवियोंके रूढि नहीं है, अपितु है. 'गोरिवेति विधेयतामित्यादि' लक्ष्यके देखनेसे 'धीम' इसका व्याख्यान प्रथम कर दिया है । (हि) । स्फुटार्थ है । (धियोयो) हे बुद्धितत्त्वसें पृथग्भूत ! प्रकृतिपुरुषका विवेक पृथक्पणा देखनेसे, प्रकृतिके निवृत्त (दूर) हुआ पुरुषका जो अपने स्वरूपमें अवस्थान (रहना) है सो मोक्ष है इसवचनसें । प्रकृतिके वियोगसें बुद्धिआदिकोंका भी विगम (नाश) होनेसें. क्योंकि, कारणके अभावसें कार्यका भी अभाव होता है. । 'धियः' इस पंचम्यंत पदको पुनरावृत्तिकरके 'प्रचोदय' इसपदके साथ संबंध करिये हैं, तब तो 'धियः' बुद्धितत्त्वसें (नः) अस्मानपि हमको भी (प्रचोदय) प्रेरय व्यपनय-दूर कर इत्यर्थः । अथवा 'धियः' षष्ठ्यंतपद जानना, और षष्ठीविभक्ति जो है, सो 'कर्मणि शेषजा' है । यथा माषाणामश्नीयात् । तथा । न केवलं यो महतां विभाषते । तब तो 'नः' हमारी भी 'धियं' प्रकृतिहेतुक बुद्धिको दूर कर । आप मुक्त हो, हमको भी मुक्त करो इत्यर्थः । (अत्) अद् ऐसा दकारांत अव्यय आश्चर्यार्थमें है, तब तो 'अद्' आश्चर्यरूप, तिसके कारणमें अनिवृत्त होनेसें. । तिसका 'अद्शब्दका' आमंत्रण हे अद् ! 'विरामे वा' इस सूत्रकरके दकारका तकार हुआ, तब हे अत् ! हे आश्चर्यरूप ! इत्यर्थः ॥ * इति सांख्याभिप्रायतो मंत्रव्याख्या ॥ ४ ॥

अथवा वैष्णव अपने देव हरिको नमस्कार करते हुए, यह कहते हैं. ॥ मंत्रः ॥

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य

धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ५ ॥

ॐ । भूर्भुवःस्वस्तत् । 'अथवा' भूः । भुवः । स्वस्तत् । सवितुः । वरेण्यं । भर्गोदेव । स्य । धीमहि । धियः । यो । अ । नः । प्रचोदयात् ॥ ५ ॥

* भावार्थः—हे तीन जगत्में व्यापिन् ! हे सूर्यसें प्रधान ! हे जितेंद्रियका पोषक ! हे बुद्धितत्त्वको कथन करनेवाला ! हे बुद्धितत्त्वसें पृथग्भूत ! हे आश्चर्यरूप कपिल भगवन् ! तू हमको बुद्धितत्त्वसें दूर कर, तू आप मुक्त हुआ है, और हमको भी मुक्त कर. इति ॥

व्याख्या:- (ॐ) इसका अर्थ प्राग्वत् जानना (भूर्भुवःस्वस्तत्) हे लोकत्रयव्यापिन् विष्णो कृष्ण ! “जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके । जीवमालाकुले विष्णुस्तस्माद्विष्णुमयं जगत् ॥ १ ॥ ” इस वचनसे । अथवा (भूः) भूनाम आश्रयका है, किसका आश्रय ? (भुवः) पृथिव्याः अर्थात् हे पृथिवीका आश्रय ! (स्वस्तत्) ‘स्वर्गे परे च लोके स्वः’ इति अमरकोशके वचनसे ‘स्वः’ परलोकको तनोति इति स्वस्तत् परलोकहेतु इत्यर्थः । गतिमिच्छेज्जनार्दनात्’ इस वचनसे । यहां ‘भव’ इस क्रियाका अध्याहार करना । तथा (नः) इस अगले पदका यहां संबंध करनेसे हे पृथिवीका आश्रय ! हे परलोकका हेतुभूत ! ‘नः’ हम आराधकोंको परलोकके सुखोंकी प्राप्तिवाला हो । इत्यर्थः । तथा (सवितुर्वरेण्यं) सवितुर्जनकात-पितासें भी, वरेण्यं-प्रधानतर ! प्रजाको आगामि सुखोंकरके पालनेसें पितासें अधिकतर प्रेमवान् ! इत्यर्थः । अनुनासिक प्राग्वत् जानना । तथा (भर्गोदेव) भर्गश्च उश्च तयोरपि देवः महादेव और ब्रह्माका भी देव ! पूज्य होनेसें । बाणाहवादिमें पार्वतीके पति महादेवका पराजय श्रवण करनेसें, और हरिके नाभिकमलकरके ब्रह्माके जन्मकी प्रसिद्धि होनेसें, विष्णु, महादेव और ब्रह्माका पूज्य है । पूज्य होनेसें, विष्णु, ईश्वर और ब्रह्माका देव सिद्ध हुआ । ‘भर्गोदेवः’ तिसका आमंत्रण हे भर्गोदेव ! तथा (स्य) त्यत् शब्दका तत्शब्दके अर्थके आमंत्रणमें यह प्रयोग है, तव तो हे स्य ! हे स ! स्मृतिप्रविष्ट होनेसें इसप्रकार विशेषणका उपन्यास है । संस्कारके प्रबोधसें उत्पन्न अनुभूत अर्थविषय तत् (सो यह) ऐसे आकारवाला जो ज्ञान सो स्मरण कहिये । ऐसा स्मृतिका लक्षण होनेसें । इसकरके प्रणिधानमें एकाग्रता कथन करिये हैं । तथा (धीमहि) मतुप्के लोप होनेसें अथवा अभेदोपचारसें ‘धियः-पंडिताः’ ‘अर्ह मह पूजायामिति धातोः क्बिन्तस्य महइतिरूपं महतीति मह पूजक-आराधक इति यावत्, धियां मह धीमह, विद्वज्जनपर्युपासकः पुरुषस्तस्मिन् आधारे ।’ अर्ह और मह धातु पूजार्थमें है, तिसमेंसें महधातुका क्प्प्रत्ययांत मह ऐसा रूप होता है, जो पूजा करे उसको मह कहिये, अर्थात् पूजक-आराधक यह तात्पर्यः ।

बुद्धियोंका (पंडितोंका) जो पूजक होवे, सो कहिये ‘धीमह’ अर्थात् विद्वज्जनोंका उपासक पुरुष तिस पुरुषरूप आधारविषे जो बुद्धि (ज्ञान) है, तिस बुद्धिसें जो अपृथग्भूत तिसका आमंत्रण ‘हे धियो-यो’ सद्गुरुकी सेवामें तत्पर जे पुरुष तिनोंकी बुद्धिके गोचर इत्यर्थः । क्योंकि जिनोंनें सद्गुरुओंकी उपासना नहीं करी है, ऐसे लोकायतिक (नास्तिक) आदिकोंके ज्ञानगोचर परमात्मा प्राप्त नहीं होता है । ‘यो-नः’ इन दोनोंके बीचमें अकारका प्रक्षेप करनेसें ‘हे अ-विष्णो’ नः। यह योजन कराही है । (प्रचोदयात्) प्रकृष्टश्चोदः (शृंगारभावसूचनं) यस्याः सा प्रचोदा । प्रचोदा चासौ या च लक्ष्मीश्च प्रचोदया, तां अतति सातत्येन गच्छति प्रचोदयात्, तस्यामंत्रणं हे प्रचोदयात् ! ’ प्रकृष्ट शृंगारभावसूचन है जिसका सो कहिये प्रचोदा; प्रचोदा सोहीं जो लक्ष्मी सो कहिये प्रचोदया तिस प्रचोदयाको (लक्ष्मीको) जो निरंतर प्राप्त होवे, सो कहिये प्रचोदयात् तिसका आमंत्रण ‘हे प्रचोदयात्’ ! । अथवा प्रथम ‘नः’ यह योजन करिये हैं । नः अस्माकं यह तो सामर्थ्यसेंही प्रतीत होनेसें । तब तो ‘आनः प्रचोद’ ऐसें जानना योग्य है । हे अ ! हे अनः प्रचोद ! अनः शकटं गाडेको प्रचोदयति प्रेरयति जो प्रेरणा करे सो ‘अनः प्रचोदः’ कहिये तिसका आमंत्रण ‘हे अनः प्रचोद’ ‘शैशवे-हि विष्णुना चरणेन शकटं पर्यस्तमिति श्रुतेः’ । बालपणमें विष्णुने चरण-करके गाडेको प्रेरा था दूर करा था इस श्रुतिसें । ततः । समानानां तेन दीर्घः । इस सूत्रसें संधिके हुए ‘आनः प्रचोद’ ऐसा सिद्ध होता है । शंका । ‘यो’ इस पदसें परे ‘आनः प्रचोद’ पदके हुआं ‘यवानः प्रचोद’ ऐसा होना चाहिये, तो यहां ‘योनः प्रचोद’ यह कैसे हुआ ?

उत्तर । जैसें तुम कहते हों, तैसें नहीं है । कातंत्रव्याकरणमें “ एदो-त्परः पदांते लोपमकारः ” इस सूत्रमें “ एदोद्भ्यां ” इतने मात्रसें सिद्ध हुआ भी, जो परग्रहण है, सो इष्टार्थ है; तिससें किसी स्थानपर आकारका भी लोप हो जाता है । तिसवास्ते यहां आकारलोपसें सिद्ध है । ‘योनः प्रचोद’ इति । ऐसें न कहना कि, इसप्रकारके प्रयोग उपलब्ध नहीं होते हैं । क्योंकि, “ बंधुप्रियं बंधुजनोऽऽजुहाव ” इत्यादि महाकवियोंके प्रयोग देखनेसें ।

अथवा 'स्वस्तत्' इति विशेषण कहते हैं। 'प्रचोद' यह क्रियापद। 'अनः' यह कर्मपद। अंतरात्मारूप सारथिकरके प्रवर्तनीय होनेसे, अनः कीतरें अनः शरीर, तिसको 'प्रचोद' चुदण् संचोदने तस्य चुरादेर्णिचोऽनित्यत्वात्तदभावे हौ रूपं। संचोदनं च नोदनमिति धातुपारायणकृता तथैव व्याख्यानात्। तब तो 'प्रचोद' प्रकर्षकरके नुद स्फोटय फोड इत्यर्थः। नही इस दग्धकाय मलीनशरीरके त्यागेविना कहिं भी परम सुखका लाभ होता है। वेदमें भी कहा है। "अशरीरं वा वसंतं प्रियाप्रिये न स्पृशतः। नहि वै सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिरस्तीति ॥" इतिवैष्णवाभिप्रायेण मंत्रव्याख्या ॥ ५ ॥

अथवा सौगत (बुद्ध) अपने देव बुद्धभट्टारकको प्रणिधान करते हुए ऐसे कहते हैं ॥

मंत्रः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ६ ॥

ॐ। भूः। भुवः। स्वस्तत्। सवितुः। वरेण्यं। भर्। गोदेवस्य। धीमहि। धियो। यो। नः। प्रचोदय। अत् ॥ ६ ॥

व्याख्या:- (ॐ) इसका अर्थ पूर्ववत् जानना (भूः) हे भूः हे आधार! किसका? (भुवः) भव्यलोकस्य-भव्यलोकका, (स्वस्तत्) स्वः-परलोकको तनोति-विस्तारयति-प्रज्ञापयति कथन करे जणावे सो 'स्वस्तत्' तिसका संबोधन 'हे स्वस्तत्' इत्यर्थः। आत्माकी नास्ति मानके परलोकको अंगीकार करनेसे। 'आत्मा नास्ति पुनर्भावोस्तीत्यादिवचनात्'। आत्माका नास्तिपणा ऐसे हैं। हे भिक्षवः! यह पांच संज्ञामात्र है, संवृतिमात्र है, व्यवहारमात्र है; कौनसे वे पांच? अतीतकाल १, अनागतकाल २, प्रतिसंख्यानिरोध ३, आकाश ४, और पुद्गल ५, इस बुद्धके वचनसे। यहां पुद्गलशब्दकरके आत्माका ग्रहण है। इति। (सवितुर्वरेण्यं) हे सूर्यसे प्रधान बुद्ध भगवन्! अर्क बांधव होनेसे, शाक्यसिंहनामा सप्तम बुद्धका यह आमंत्रण है। (भर्) बिभर्तीति भर् हे पोषक! किसका? (गोदेवस्य)

गो-यथार्थ अर्थ गर्भितवाणीकरके दीव्यति स्तौति-स्तुति करता है सो कहिये 'गोदेव' तस्य गोदेवस्य-तिस गोदेवका पोषक इत्यर्थः। यदि अनजान बालकने भी धूलकी मुट्टी भरके भगवान् बुद्धकेतांड़ कहा कि लीजीए महाराज ! यह आपका हिस्सा (भाग) है, तिससेही तिसको राज्यप्राप्तिरूप फल हुआ तो, क्या आश्चर्य है कि, जे भावसें बुद्ध भगवान्की स्तुति करनेमें तत्पर हैं, तिनके मनवांछित प्रयोजनको सिद्ध करे। तथा (धीम) धियं ज्ञानमेव मिमीयते-शब्दयति-प्ररूपयति ज्ञानकोंही जो कथन करता है, सो 'धीमः' तिसका आमंत्रण 'हे धीम' ! जे बाह्यार्थाकार घटपटादिरूप हैं तिनको अविद्यादर्शित होनेसें अवस्तु होनेकरके असत् रूप है, ज्ञानाद्वैतकोही तिसके (बौद्धके) मतमें प्रमाणता होनेसें। बुद्धके चरणोंकी सेवा करनेवालोंने ऐसा कहा है। "ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तं विज्ञानं परमार्थसत्। नान्योनुभावो बुद्ध्याऽस्ति तस्यानानुभवोपरः॥ १॥ ग्राह्यग्राहकवैधुर्यात् स्वयं सैव प्रकाश्यते। बाह्यो न विद्यते ह्यर्थो यथा बालैर्विकल्प्यते ॥ २॥ वासनालुठितं चित्तमर्थाभासे प्रवर्तते। इत्यादि"। यहां बहुत कहनेयोग्य है, सो तो ग्रंथ गौरवताके भयसें नहीं कहते हैं, गमनिकामात्र फल होनेसें, प्रयास (उद्यम) का। (हि) स्फुटं प्रकट (यो) पदके एकदेशमें पदसमुदायके उपचारसें हे योगिन्। "बुद्धे तु भगवान् योगी" इति अभिधानचिंतामणि शेषनाम-मालावचनसें योगी नाम बुद्धका है, तिसका आमंत्रण हे योगिन् ! (बुद्ध) - (नः) हमारी (धियः) बुद्धियोंको अभिप्रेत तत्त्वज्ञानप्रति प्रेर, रज्जु कर. इति (अत्) अतति सातत्येन गच्छतीति अत्। गत्यर्थधातुओंको सर्वज्ञानार्थ होनेसें 'हे अत्' हे सर्वज्ञ ! इत्यर्थः ॥ इति बौद्धाभिप्रायेण मंत्रव्याख्या ॥ ६ ॥

अथ जौमिनिमुनिके मतवाले तो, सर्वज्ञको देवताकरके मानतेही नहीं हैं; किंतु, नित्य वेदवाक्योंसेंही तिनको तत्त्वका निश्चय है। साक्षात् अतीन्द्रिय अर्थके देखनेवाले किसीका भी तिनके मतमें भाव न होनेसें। "यदुक्तं।" अतीन्द्रियाणामर्थानां साक्षाद्दृष्टा न विद्यते। वचनेन हि

नित्येन यः पश्यति स पश्यति ॥ १ ॥ इसवास्ते, वे वेदवाक्यके प्रमाणसें-
ही गुरुताकरके अग्निहीकी पर्युपासना करते हैं, तिस अग्निके प्रणिधानार्थ
वेद स्तुतिगर्भित यह पढते हैं-॥

मंत्रः ॥

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्व रेण्यं भर्गोदे वस्य
धीमहि धियोयो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ७ ॥

ॐ । भूर्भुःस्वस्तत् । सवितुः । व । रे । आण्यं । भर्गोदे । वस्य । धीमहि ।
धियः । अयः । नः । प्रचोदयात् ॥ ७ ॥

व्याख्या ॥ (धियः) बुद्धियां (नः) हमारी-भवंत्विति वाक्यशेषः-
होवें कैसी बुद्धियां होवें? (अयः) अयंति गच्छंतीति अयः अर्थात्
गमन करनेवाली । कहां? । (रे) अग्निविषे । अग्निशब्दकरके यहां
तिसकी (अग्निकी) आराधना ग्रहण करनी । तब तो अग्निआराधनादिमें
हमारी बुद्धियां प्रवर्तनेवाली होवें, यह अर्थ संपन्न हुआ- इति ।
किंविशिष्टे रे । कैसे अग्निविषे? (भर्गोदे) अवतीति ऊः दाहक इत्यर्थः,
अवतिधातुको श्री सिद्धहेमधातुपाठमें दहनार्थताकरके पठन करनेसे ।
' भर्ग ' ईश्वर, सो ' ऊ ' दाहक है जिसका, सो कहिये ' भर्गोः ' काम
इत्यर्थः । " यत्कालिदासः । " क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्भिरः स्वे
मरुतां चरन्ति । तावत्स वन्धिर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ॥१॥
तं तिस कामको, जो ददात्याराधकेभ्यः देवे आराधकोंकेताइ, सो कहि-
ए ' भर्गोदः ' तस्मिन् ' भर्गोदे ' कामको देनेवाले अग्निविषे इत्यर्थः ।
अग्नि तर्पियांके शास्त्रमें अग्निर्तर्पणसें संपत्की संप्राप्ति कथन करनेसें,
और संपदाको कामका हेतुत्व होनेसें, कामकी प्राप्ति सिद्ध है । ' तथा
च शिवधर्मोत्तरसूत्रं ' । ' पूजया विपुलं राज्यमग्निकार्येण संपदः । तपः पाप-
विशुद्ध्यर्थं ज्ञानं ध्यानं च मुक्तिदम् ' ॥ १ ॥ पुनः किंविष्टे रे-फिर कैसे अ-
ग्निविषे? (धीमहि) धियः-पंडिता महः-पूजका यस्य स तथा तत्र । पं-
डित पूजक है जिसके, ऐसे अग्निविषे । क्या स्वच्छंदेकरके हमारी बु-
द्धियां प्रवर्तती हैं? नहीं- सोही कहे हैं । (प्रचोदयात्) चोदनं-चोदया

चोदनेत्यर्थः । चोदना नाम प्रेरणा जो है, सो क्रियाप्रति प्रवर्त्तकका वचन है । यथा । ‘ अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामइति ’ । जो स्वर्गका कामी होवे सो अग्निहोत्र करे इति । सोही कथन करते हुए षट्दर्शनसमुच्चयके करनेवाले । “चोदनालक्षणो धर्मश्चोदना तु क्रियां प्रति प्रवर्त्तकं वचः प्राहुः स्वः कामोऽग्निं यथार्पयेत् । १। इति ।” प्रकर्षेण चोदया प्रचोदयाऽस्मिन्नस्तीति । अभ्रादिभ्य इति बहुवचनस्याकृतिगणज्ञापनार्थत्वात् अप्रत्यये प्रचोदयो वेदः तस्मात् ‘ प्रचोदयात् ’ वेदसें वेदोपदेशको आश्रय लेके इत्यर्थः गम्ययपः कर्माधारे पंचमी । किंविशिष्टात् वेदात् । कैसे वेदसें ? (सवितुः) ‘ व ’ शब्दको—कादंबखांडितदलानि व पंकजानि इत्यादि स्थानोंमें उपमानार्थ रूढ होनेसें ‘ सवितुः व ’ आदित्यादिव । समस्त अर्थोंकी प्रकाशकता करके भास्करतुल्य इत्यर्थः । तिस वेदसें हमारी मतियां—बुद्धियां अग्निआराधनादिविषे प्रवृत्त होवें । यत्र । जहां—जिस वेदमें (ॐ) ॐ ऐसा अक्षर विद्यमान है । ॐकारको वेदके आदिभूत होनेसें । कैसा सो ॐकार (भूर्भुवःस्वस्तत्) भुवनत्रयव्यापि । तब तो किंचित् अभिधेयसत्तासमाविष्ट वस्तु गुरुसंप्रदाययुक्तिकरके अन्वेषण करे मंत्र ॐकारशब्द प्रर्यायमेंही प्राप्त होता है । सर्वही प्रवादियोंने अनिंदितकरके इस ॐकारको संपूर्ण भुवनत्रयकमलाधिगममें बीजभूतकरके वर्णन करनेसें, यह ॐकार ऐसे विचारने योग्य है, इसवास्तेही इसका असाधारण विशेषणांतर कहते हैं । (आण्यं) आण्यते उच्चार्यते इति आण्यं प्राणिधेयं प्राणिधान करनेयोग्य । किसको (वस्य) ‘ उ ’ ब्रह्मा ‘ ऊ ’ शंकर ‘ अ ’ पुरुषोत्तम संधिके वशसें ‘ वं ’ ब्रह्मामहादेवविष्णुरूप पुरुषत्रय, तिनोंमें भी ध्येय है, अर्थात् पूर्वोक्त तीनों पुरुषोंको भी ॐकार ध्यावने योग्य है । ‘ वस्येति कर्त्तरि षष्ठी कृत्यस्य वेति लक्षणात् । अथवा वेदात् वेदसें । कैसें वेदसें ‘ सवितुः ’ उत्पादयितुः उत्पन्न करनेवालेसें । किसको उत्पन्न करनेवाला ? ‘ ॐ ’ ॐकारको शेषं पूर्ववत् ॥ इतना विशेष है ‘ व ’ शब्द वाक्यालंकारमें जानना । ‘ रे ’ आण्यं ‘ रेण्यं ’ यहां आकारका लोप पूर्वोक्तवचनयुक्तिसें जानना । तब तो यह समुदायार्थ होता है । जिस वेद-

आदिमेंही अस्खलित जगत्त्रयव्यापी तीनों देवोंके भी प्रणिधेय ऐसा उँकार है, और जो वेद उद्गीय है, और जो वेद समस्त अर्थके प्रकाशनेमें एक सूर्यसमान है, तिस वेदके उपदेशको आश्रित्य होकरके कामसंपदा करणहार पंडितजनोंके पूजनीय ऐसे अग्निआराधनविषे, हमारी बुद्धियां प्रवृत्त होवें, ॥ इतिभट्टदर्शने मंत्रव्याख्या ॥ ७ ॥

अथ सामान्यकरके सर्वप्रवादियोंके संवादिस्वरूप परमेश्वरका प्रणिधानरूप यह गायत्रीमंत्र है. ॥

मंत्रः ॥

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेव स्य
धीमहिधियो योनः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ८ ॥

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत् सवितुः वरेण्यं भर्गोदेव स्य धीम् अहिधियः।
योनः प्रचोदय अत् ॥ ८ ॥

व्याख्या (ॐ) पूर्ववत् (भूर्भुवःस्वस्तत्) हे सर्वव्यापिन् ! परमेश्वर ! वेदमें भी कहा है । ‘ पुरुषएवेदमिति ’ । (वरेण्यं) पूर्वोक्त अनुनासिकरीतिकरके हे वरेण्य ‘ सवितुः ’ सूर्यसें भी प्रधान इति । (भर्गोदेव) ‘ भर्ग ’ ईश्वर ‘ उ ’ ब्रह्मा ‘ ऊ ’ शंकर तीनोंका भी देव ‘ भर्गोदेव ’ हे भर्गोदेव ! अर्थात् हे विष्णु ! ब्रह्मामहादेवका आराध्य ! ऐसे नहीं कहना कि, तीनोंका आराध्य कोई नहीं है । क्योंकि, वे भी संख्यादि करते हैं; ऐसा सुननेसें । तथा । “ अष्टवर्गातंगं बीजं कवर्गस्य च पूर्वकं । वह्निनोपरि संयुक्तं गगनेन विभूषितम् । १ । एतदेवि परं तंत्रं योभिजानाति तत्त्वतः । संसारबंधनं छित्वा स गच्छेत् परमां गतिम् । २ । इत्यादिवचनप्रामाण्यात् ॥ ” (स्य) अंतय अंत कर । किसका सो कहे हैं, (धीम्) धीश्चित्तं धीनाम मनका है तस्या इः कामः तिस धी मनका जो इ-काम सो कहिये ‘ धी ’ तं ‘ धीम् ’ अर्थात् मनोगत कामका । मनोगत कामके नष्ट हुए तत्त्वसें वचनकायाके कामका ध्वंस होही गया । तथा । (अहिधियः) क्रूरता आदि जे हैं, तीनोंका भी ध्वंस (विनाश) कर । तथा । (योनः) योनि सचित्तादि चौरासी (८४) लक्ष संख्याका विभाग जो करे,

सो “ ण्यंतात् किपि णिलुकि ” ‘ योन् ’ संसार, तस्मात् ‘ योनः ’ संसार समुद्रसें (प्रचोदय) पार होनेवास्ते हमको प्रेरणा कर, कामक्रोधादि ध्वंसनपूर्वक हमको मुक्तिको प्राप्त कर इत्यभिप्रायः । ‘ योनः प्रचोदय ’ इसके कहनेसें कामादिका ध्वंसही अर्थापन्न मुक्तताका जानना, परंतु धनका नही; मुक्तताविषे अंतरीय ध्वंस होनेसें । ‘ धीमहि धियः ’ इसकरकेही सिद्ध था, ऐसे न कहना. क्योंकि, मुक्त्यर्थिपुरुषको प्रथम कामादिका विजय करना चाहिये, ऐसे उपायउपेयभाव जनावनेसें दोष नही है । तथा । (अत्) इसका अर्थ सौगत (बौद्ध) पक्षवत् जानना । इति सर्वदर्शनसम्मत मंत्रव्याख्या ॥ ८ ॥

अथ यह गायत्री सर्व बीजाक्षरका निधान है, ऐसे ब्राह्मणोंके प्रवादको आश्रित्य हो करे कितनेकमंत्राक्षरोंके बीजोंको दिखाते हैं । तद्यथा ॥ ॐ ॥ ऐसा बीजाक्षर अक्षपादके पक्षमें संक्षेपमात्रसें प्रभावसहित दिखाया है सो ही जान लेना । और तहां । भर्गोदे । इसकरके ध्यान करनेकी अपेक्षा वर्णका सूचन है, सोही दिखाते हैं । ‘ भर्ग ’ ईश्वर, तिसकरके श्वेतवर्ण । शांतिक पौष्टिकादिमें । ‘ उ ’ ब्रह्मा, पीतवर्ण । स्तंभनादिमें । पीत और रक्तको कवियोंकी रूढिसें एकता होनेसें रक्तका भी ग्रहण करना । वशीकरण आकर्षणादिमें । ‘ व ’ कृष्ण, तिसकरके कृष्णवर्ण । विद्वेष उच्चाटन अवसानादिमें ॥ इत्यादि और भी इस बीजाक्षरका प्राणिधानविधि यथागुरुसंप्रदायसें जानना ॥ यदि वा । ‘ ॐ ’ इसकरके । “ वह-कला अरिहंता निउणा सिद्धा य लोढकलसूरी । उवष्भाया सुद्धकला दीह-कला साहुणो सुहया । १ । ” इस गाथोक्तरहस्यकरके परमेष्ठिपंचक ही महानंदार्थि पुरुषको ध्यावने योग्य है ॥ अथवा । ‘ भूः ’ पृथिवीतत्त्व ‘ भुवः ’ वायु, और आकाश, तिनमें ‘ भु ’ वायुतत्त्व और ‘ व ’ आकाश-तत्त्व ‘ स्वरू ’ उर्ध्वलोक मुखमस्तकरूप तिसको तनोति प्राप्त होवे, सो ‘ स्वस्तत् ’ जल और अग्नि । न्याय इनका ॥ “ तत्त्वपंचकमिदं विधियो-गात् स्मर्यमाणमघजातिविधाति । कल्पवृक्ष इव भक्तिपराणां पूरयत्यभि-मतानि न कानि । १ ” भावार्थः—यह पांच तत्त्व विधियोगसें (अर्ह-

दादि पांच क्रमसें) स्मरण करते हुए कल्पवृक्षकीतरें भक्तिमें तत्पर । पुरुषोंको क्या क्या मनवांचिछत पूर्ण नहीं करता है ? अपितु सर्व करता है । कैसा है तत्त्वपंचक ? पापकी जातिका नाश करनेवाला । इति ॥ अथवा ॥ ‘ रेण्यं ’ ‘ धीमहि ’ इहां ‘ हि ’ का ‘ ह् ’ । ‘ रे ’ का ‘ र् ’ । ‘ धी ’ का दीर्घ ‘ ई ’ । और ‘ ण्यं ’ का ‘ ँ ’ बिंदु । इन सर्वके एकत्र जोड़नेसें मायाबीज होता है । अर्थात् ‘ ह्रीं ’ कार होता है । सो भी अर्चित्य शक्तियुक्त है, सर्व मंत्रोंमें राजा समान होनेसें । यही । उद्गीथादिक (सामवेदाव्यवविशेष) है ‘ महिधियोयोनः ’ नकारसे परे जो विसर्ग है तिसको मकारसें परे जोड़नेसें ‘ नमः ’ होनेसें । सन्मंत्र है । तदन्तःसन्मंत्रो वर्ण्यतेति । इत्यादि वचन प्रमाणसें । तथा । ‘ वरेण्यं ’ वकारस्थित अकार और रगत (रकारमें रहे) एकारको-अ+ए=ऐदौचसूत्रकरके ‘ ऐ ’ कारके हुए ‘ ण्यं ’ ण्यकारमें स्थित बिंदुको ऐकारके साथ जोड़नेसे वाग्बीज “ ऐं ” सिद्ध होता है । ‘ अधीमहि ’ अर्हतपक्षके व्याख्यानमें ‘ इः ’ नाम कामका कथन करा है, इसवास्ते स्मरबीज श्रीबीजादि अक्षरोंके संयोग श्री पद्मावती त्रिपुरादि देवताराधन महामंत्रसिद्धिके निबन्धन होते हैं, इसप्रकारसें विद्वानोंको अपनी बुद्धिके अनुसार कहना योग्य है । स यौगिक येह अर्थ है, जेकर ऐसें कहोगे तो कौन कहता है ? कि, सयौगिक नहीं है । क्योंकि, सर्वही महामंत्र सयौगिक ही है । तथा-चाधीयते । “ अमंत्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम् । अधना पृथिवी नास्ति संयोगाः खलु दुर्लभाः ॥ ? ” ॥ भावार्थः ॥ विना मंत्रके कोइ अक्षर नहीं है, विना औषधिके कोइ जड़ी नहीं है, विना धनके कोइ पृथिवी नहीं है, परंतु निश्चय उनोंका संयोग दुर्लभ है । ॥ ऐसें रक्षादि यंत्र भी जैसें तीन मायाबीज है । तिनके ऊपर यंत्रका न्यास करिये है, सो वशीकरणयंत्र है । तथा तैसें वश्यादि प्रयोग भी इहां जानने । जैसें भर्गोशब्दसें गोरोचन । ‘ महि ’ मनःशिल । ‘ देव ’ ‘ प्रचोदयात् ’ दकारसें दल (पत्र) इनोंकरके । ‘ सवितुः ’ विशब्दसें विशेषक विलेपन वा । ‘ यो ’ योशब्दसें विशेष योनिमती स्त्रीयोंको । ‘ नः ’ नः शब्दसें पुरुषोंको प्रीति-

कर है। तथा 'प्रचोदया' प्रदीयमान विषका असाध्य निदान है इत्यादि ॥
 'अधीमहि' अकारसें अजा मेषशृंगी (मेषके शृंगसमान फलवाला वृक्ष)
 तिसके 'प्रचोदयात्' दकारसें दल (पत्र) । भा १ । 'भर्गोदेव' गोशब्दसें
 गौशब्दके सत्तु । भा १ । 'महि' मकारसें मधुलि । भा २ । 'सवितुः' सका-
 रसें सर्पिषा सह-घृतके साथ 'भर्गो' भशब्दसें भक्षण करे 'वरेण्यं'
 वकारसें बलवीर्य करे 'प्रचोद' प्रसें प्रभञ्जन (वायु) तिसकों हरे, इ-
 त्यादि औषध विधियां भी इहां जाननीयां । ॥

आर्यावृत्तम् ॥

चक्रे श्रीशुभतिलकोपाध्यायैः स्वमतिशिल्पकल्पनया ॥
 व्याख्यानं गायत्र्याः क्रीडामात्रोपयोगमिदम् ॥ १ ॥

अनुष्टुप् ॥

तस्यायं स्तवकार्थस्तु परोपकृतिहेतवे ॥
 कृतःपरोपकारिभिर्विजयानंदसूरिभिः ॥ १ ॥

॥ इतिगायत्रीमंत्रव्याख्यास्तवकार्थः ॥

श्रीशुभतिलक उपाध्यायजी अपने करे गायत्रीव्याख्यानमें कहते हैं कि, मैने येह पूर्वोक्त गायत्रीके जे अर्थ करे हैं, ते सर्व क्रीडामात्र हैं "क्रीडामात्रोपयोगमिदमिति वचनात्" इससें यह सिद्ध होता है कि, येह पूर्वोक्त सर्व अर्थ गायत्रीके सच्चे हैं, यह नहीं समझना. किंतु सत्यार्थ तो जो है कि, जिस ऋषिने जिस अर्थके अभिप्रायसें गायत्रीमंत्र रचा है; परंतु तिस ऋषिके कथन करे अर्थकी परंपरायसे धारणा आजतक चली आइ होवे, और तैसें ही अर्थ भाष्यकारोंने लिखे होवें, यह किसीतरे भी सिद्ध नहीं होता है, सो अग्रिम स्तंभसें जान लेना. इत्यलम् ॥

इतिश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे जैनाचार्य-
 बुद्धिवैभववर्णनो नामैकादशस्तंभः ॥ ११ ॥

॥ अथ द्वादशस्तम्भारम्भः ॥

एकादशस्तम्भमें जैनाचार्यकृत गायत्रीका व्याख्यान करा, अथ द्वादशस्तम्भमें गायत्रीके माननेवालोंका करा व्याख्यान लिखते हैं। जो कि, परस्पर विरुद्ध है; तथाविध संप्रदायके अभावसें। तत्रादौ सायणाचार्यकृत भाष्यका व्याख्यान करते हैं ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १० ॥

व्याख्या—जो सवितादेव (नो) हमारे (धियः) कर्मोंको, वा धर्मादिविषयबुद्धियोंको (प्रचोदयात्) प्रेरयेत् प्रेरणा करे (तत्) तिस सर्व श्रुतियोंमें प्रसिद्ध (देवस्य) प्रकाशमान (सवितुः) सर्वान्तर्यामि होनेकरके प्रेरक जगत्स्रष्टा परमेश्वरका आत्मभूत (वरेण्यं) सर्व लोकोंको उपास्यताकरके और ज्ञेयताकरके सम्यक् प्रकारसें भजने योग्य है (भर्गः) अविद्या और तिसके कार्यको भर्जन (दग्ध) करनेसें स्वयंज्योतिः परब्रह्मात्मक तेजकों (धीमहि) तत् । जो मैं हूं सोइ वोह है और जो वोह है सोइ मैं हूं ऐसे हम ध्यावते हैं । अथवा ' तत् ' ऐसा भर्गका विशेषण है, सवितादेवके तैसें भर्गको हम ध्यावे हैं ' यः ' लिंगव्यत्यय होनेसे ' यत् ' जो भर्गः हमारे ' धियः ' कर्मादिकोंको ' प्रचोदयात् ' प्रेरणा करे ' तत् ' तिस भर्गको हम ध्यावे हैं इति समन्वयः । अथवा । (यः) जो सविता सूर्य (धियः) कर्मोंको (प्रचोदयात्) प्रेरयति प्रेरणा करता है (तस्य) (सवितुः) तिस सर्वकी उत्पत्ति करनेवाले (देवस्य) प्रकाशमान सूर्यके (तत्) सर्वको दृश्यमान होनेसें प्रसिद्ध (वरेण्यं) सर्वको संभजनीय (भर्गः) पापोंको तपानेवाले तेजोमंडलको (धीमहि) ध्येयताकरके मनसें हम धारण करते हैं ॥ अथवा । भर्गशब्दकरके अन्न कहिये है । (यः) जो सवितादेव (धियः) कर्मोंको (प्रचोदयात्) प्रेरणा करता है, तिसके प्रसादसें (भर्गः) अन्नादिलक्षण फलको (धीमहि) धारण करते हैं, तिसके आधारभूत हम होते हैं । इत्यर्थः । भर्गशब्दको

अन्नपरत्व और धीशब्दको कर्मपरत्व अथर्वण कहता है । तथा च श्रुतिः ।
 “वेदांश्छंदासि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोन्नमाहुः । कर्माणि धियस्त-
 दुते प्रव्रवीमि प्रचोदयन्त्सविता याभिरेतीति ” ॥ ये तीनतरोंके अर्थ गाय-
 त्रीके सायणाचार्यने ऋग्वेदभाष्यमें करे हैं ॥

तथा तैत्तिरीये आरण्यके १० प्रपाठके २७ अनुवाके । गायत्रीमंत्रका
 ऐसा अर्थ सायणाचार्यनेही करा है ॥ (सवितुः) प्रेरक अंतर्यामी (दे-
 वस्य) देवके (वरेण्यं) वर्णीय श्रेष्ठ (तत्) (भर्गः) तिस भर्गको-तेजको
 (धीमहि) हम ध्यावे हैं । (यः) जो सविता परमेश्वर (नः) हमारी
 (धियः) बुद्धिवृत्तियोंको (प्रचोदयात्) प्रकर्षकरके तत्त्वबोधमें प्रेरणा करे,
 तिसके तेजको हम ध्यावे हैं । इत्यर्थः ॥

तथा महीधरकृत यजुर्वेदभाष्यमें तीसरे अध्यायमें ऐसे लिखा है ॥

(तत्) तस्य-तिस (देवस्य) प्रकाशक (सवितुः) प्रेरक अंतर्यामि
 विज्ञानानंदस्वभाव हिरण्यगर्भ उपाधिकरके अवच्छिन्न वा आदित्यांतरपुरुष
 वा ब्रह्मके (वरेण्यं) सर्वको प्रार्थनीय (भर्गः) सर्व पापोंको और संसा-
 रको दग्ध करनेमें समर्थ तेज सत्य ज्ञानादि जो वेदांतकरके प्रतिपाद्य है
 तिसको (धीमहि) हम ध्यावते हैं । अथवा मंडल, पुरुष, और किरणां,
 ये तीन भर्ग शब्दके वाच्य जानने अथवा भर्गनाम वीर्यका जानना ।
 “वरुणाद्ध वा अभिषिषिचानाद्भर्गोऽपचक्राम वीर्यं वै भर्ग इति श्रुतेः ” ॥
 तस्य कस्य-तिसका किसका ? । (यः) जो सविता (नः) हमारी (धियः)
 बुद्धियोंको, वा हमारे कर्मोंको (प्रचोदयात्) सत्कर्मानुष्ठानकेवास्ते प्रक-
 र्षकरके प्रेरता है । अथवा वाक्यभेदकरके योजना करते हैं, सवितु देवके
 तिस वरणीय भर्गः-तेजकों हम ध्यावते हैं, और जो हमारी बुद्धियोंको
 प्रेरता है, तिसको भी हम ध्यावते हैं, और सो सविताही है । इत्यादि ॥

अथ शंकरभाष्यव्याख्यान लिखते हैं । अथ सर्वदेवात्मक, सर्वशक्ति-
 रूप, सर्वावभासक, प्रकाशक, तेजोमय, परमात्माको सर्वात्मकपणे प्रका-
 शनेके अर्थ सर्वात्मकत्व प्रतिपादक गायत्रीमहामंत्रका उपासनप्रकार
 (सिद्धि) प्रकट करते हैं । तहां गायत्रीकों प्रणवादि सात व्याहृतीयां

(ॐ भूरित्यादिमंत्रविशेष) और शिरः (ॐ आप इत्यादिमंत्रविशेष) करके संयुक्तको सर्व वेदोंका सार कहते हैं, ऐसी गायत्री प्राणायाम करके उपासना करने योग्य है, प्रणव (ॐ) सहित तीन व्याहृतीयां संयुक्त प्रणवांतक गायत्रीजपादिकों करके उपासना करने योग्य है; तहां शुद्धगायत्री प्रत्यक् ब्रह्मैक्यताकी बोधिका है, 'धियो यो नः प्रचोदयादिति' हमारी बुद्धियोंको जो प्रेरता है, ऐसा सर्वबुद्धिसंज्ञा अंतःकरणप्रकाशक सर्वसाक्षी प्रत्यक् आत्मा कहीये है, तिस प्रचोदयात् शब्दकरके कहे आत्माका स्वरूपभूत परं ब्रह्म तिसको 'तत्सवितुः' इत्यादिपदोंकरके कथन करिये है, तहां "ॐ तत्सदितिनिर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः" इति ॐ । तत् । सत् । ये तीन प्रकारका ब्रह्मका निर्देश कहा है, 'सवास्ते 'तत्' शब्दकरके प्रत्यग्भूत स्वतः सिद्ध परंब्रह्म कहिये है 'सवितुः' इस शब्दसें सृष्टिस्थितिलयलक्षणरूप सर्व प्रपंचका समस्त द्वैतरूप विभ्रमका अधिष्ठान आधार लखिये है । 'वरेण्यं' सर्ववरणीय निरतिशय आनंदरूप । 'भर्गः' अविद्यादिदोषोंका भर्जनात्मक ज्ञानैकविषयत्व । 'देवस्य' सर्वद्योतनात्मक अखंड चिदेकरस 'सवितुः देवस्य' इहां षष्ठीविभक्तिका अर्थ राहुके शिरवत् औपचारिक जानना, बुद्धिआदि सर्व दृश्य पदार्थोंका साक्षीलक्षण जो मेरा स्वरूप है, सो सर्व अधिष्ठानभूत परमानंदरूप निरस्तदूर करे है समस्त अनर्थ जिसने, तद्रूप प्रकाश चिदात्मक ब्रह्मही है, ऐसैं (धीमहि) हम ध्यावते हैं, ऐसे हुआ ब्रह्मके साथ अपने विवर्त जड प्रपंचकरके रज्जुसर्पन्यायकरके अपवाद सामानाधिकरण्यरूप एकत्व है, सो यह है, इस न्यायकरके सर्वसाक्षी प्रत्यग् आत्माका ब्रह्मके साथ तादात्म्यरूप एकत्व होता है, इसवास्ते सर्वात्मक ब्रह्मका बोधक यह गायत्रीमंत्र है ऐसैं सिद्ध होता है ॥

सात व्याहृतियोंका यह अर्थ है ॥ 'भूः' इससें सन्मात्र कहिये है ॥ १ ॥ 'भुवः' इससें सर्व भावयति प्रकाशयति इस व्युत्पत्तिसें चिद्रूप कहिये है ॥ २ ॥ सुत्रियते इस व्युत्पत्तिसें 'स्वर्' इति । सुष्ठु भलीप्रकारे सर्वकरके त्रियमाण सुखस्वरूप कहिये है ॥ ३ ॥ 'महः' महीयते पूज्यते

इस व्युत्पत्तिसें सर्वातिशयत्व कहिये है ॥ ४ ॥ 'जनः' जनयतीति जनः सकलवस्तुयोंका कारण कहिये है ॥ ५ ॥ 'तपः' सर्व तेजोरूपत्व ॥ ६ ॥ 'सत्यम्' सर्वबाधारहित ॥ ७ ॥ यह तात्पर्य है कि—जो इस लोकमें सद्रूप है सो सर्व उँकारका वाच्यार्थ ब्रह्मही है, इस आत्माको सत्चिद्रूप होनेसें । अथ भूआदिक सर्वलोक उँकारके वाच्य सर्व ब्रह्मात्मक है, तिससें व्यतिरिक्त कुछ भी नहीं है । व्याहृतियां भी सर्वात्मक ब्रह्मकी ही बोधिका हैं । गायत्रीके शिरका भी यही अर्थ है । 'आपः' व्याप्नोति इस व्युत्पत्तिसें व्यापित्व कहिये है । 'ज्योतिः' प्रकाशरूपत्व । 'रसः' सर्वातिशयत्व । 'अमृतं' मरणादिसंसारनिर्मुक्तत्व, सर्वव्यापि, सर्वप्रकाशक, सर्वोत्कृष्ट, नित्यमुक्त, आत्मरूप, सच्चिदानंदात्मक, जो उँकारवाच्य ब्रह्म है, सो मैं हूं ॥ इतिगायत्रीमंत्रस्यार्थः ॥

अथ स्वामी दयानंदसरस्वतीजीकृत गायत्रीव्याख्यान लिखते हैं ।
यथा यजुर्वेदभाष्ये तृतीयाध्याये ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हम लोग । (सवितुः) सब जगतके उत्पन्न करने वा । (देव-स्य) प्रकाशमय शुद्ध, वा सुख देनेवाले परमेश्वरका जो । (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ (भर्गः) पापरूप दुखोंके मूलको नष्ट करनेवाला (तेजः) स्वरूप है । (तत्) उसको । (धीमहि) धारण करें, और । (यः) जो अंतर्यामी सब सुखोंका देनेवाला है, वह अपनी करुणाकरके । (नः) हम लोगोंकी । (धियः) बुद्धियोंको उत्तम २ गुणकर्मस्वभावोंमें । (प्रचोदयात्) प्रेरणा करें ॥ ३५ ॥

भावार्थः—मनुष्योंको अत्यंत उचित है कि, इस सब जगतके उत्पन्न करने वा सबसे उत्तम सब दोषोंके नाश करनेवाले तथा अत्यंत शुद्ध परमेश्वरहीकी स्तुति प्रार्थना और उपासना करें । किस प्रयोजनकेलिये ? जिससे यह धारण वा प्रार्थना किया हुआ, हम लोगोंको खोटे २ गुण

और कर्मोंसे अलग करके अच्छे २ गुण कर्म और स्वभावोंमें प्रवृत्त करे, इसलिये । और प्रार्थनाका मुख्य सिद्धांत यही है कि, जैसी प्रार्थना करनी, वैसाही पुरुषार्थसे कर्मका आचरण भी करना चाहिये ॥३५॥

तथा सन १८७५ ई० छापेके सत्यार्थप्रकाशके तृतीय समुल्लासमें येले लिखा है ॥ गायत्रीमंत्रमें जो प्रथम ॐकार है उसका अर्थ प्रथम समुल्लासमें लिखा है, वैसाही जान लेना ॥ 'भूरिति वै प्राणः। भुवरित्यपानः। स्वरिति व्यानः यह तैत्तिरीयोपनिषद्का वचन है ॥ प्राणयति चराचरं जगत् स प्राणः । जो सब जगत्के प्राणोंका जीवन कराता है, और प्राणसे भी जो प्रिय है, इस्से परमेश्वरका नाम प्राण है; सो भूः शब्द प्राणका वाचक है. और भुवः शब्दसे अपान अर्थ लिया जाता है. अपानयति सर्वं दुःखं सोऽपानः । जो मुमुक्षुओंको और मुक्तोंको सब दुःखसे छोड़के. आनंदस्वरूप रखे, इस्से परमेश्वरका नाम अपान है. सो अपान भुवः शब्दका अर्थ है. व्यानयति स व्यानः। जो सब जगत्के विविध सुखका हेतु, और विविध चेष्टाका भी आधार, इस्से परमेश्वरका नाम व्यान है. सो व्यान अर्थ स्वः शब्दका जानना । तत् यह द्वितीयाका एकवचन है. सवितुः षष्ठीका एकवचन है । वरेण्यं द्वितीयाका एकवचन है । भर्गः द्वितीयाका एकवचन है । देवस्य षष्ठीका एकवचन है । धीमहि क्रियापद है । धियः द्वितीयाका बहुवचन है । यः प्रथमाका एकवचन है । नः षष्ठीका बहुवचन है । प्रचोदयात् क्रियापद है ॥ सविताशब्दका और देवशब्दका अर्थ प्रथम समुल्लासमें कह दिया है, वहीं देख लेना ॥ वर्तुमहं वरेण्यं । नाम अतिश्रेष्ठम् । भर्गो नाम तेजः, तेजोनाम प्रकाशः, प्रकाशोनाम विज्ञानम्, वर्तु नाम स्वीकार करनेको जो अत्यंत योग्य उसका नाम वरेण्य है, और अत्यंत श्रेष्ठ भी वह है, धीनाम बुद्धिका है, नः नाम हम लोगोंकी, प्रचोदयात् नाम प्रेरयेत्. हे परमेश्वर ! हे सच्चिदानंदानंतस्वरूप ! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव ! हे कृपानिधे ! हे न्यायकारिन् ! हे अज ! हे निर्विकार ! हे निरंजन ! हे सर्वांतरयामिन् ! हे सर्वाधार ! हे सर्वजगत्पितः ! हे सर्वजगदुत्पादक ! हे अनादे ! हे विश्वंभर ! सवितुर्देवस्य तव यद-

रेण्यं भर्गः तद्वयं धीमहि तस्य धारणं वयं कुर्वीमहि । हे भगवन् ! यः सविता देवः परमेश्वरः स भवान् अस्माकं धियः प्रचोदयादित्यन्वयः ॥ हे परमेश्वर ! आपका जो शुद्धस्वरूप ग्रहण करनेके योग्य जो विज्ञानस्वरूप उसको हम लोग सब धारण करें, उसका धारणज्ञान उसके ऊपर विश्वास और दृढ निश्चय हम लोग करें, ऐसी कृपा आप हम लोगोंपर करें, जिस्से कि, आपके ध्यानमें और आपकी उपासनामें हम लोग समर्थ होंय; और अत्यंत श्रद्धालु भी होंय. जो आप सविता और देवादिक अनेक नामोंके वाच्य अर्थात् अनंत नामोंके अद्वितीय जो आप अर्थ हैं नाम सर्वशक्तिमान् सो आप हम लोगोंकी बुद्धियोंको धर्म विद्या मुक्ति और आपकी प्राप्तिमें आपही प्रेरणा करें कि, बुद्धिसहित हम लोग उसी उक्त अर्थमें तत्पर और अत्यंत पुरुषार्थ करनेवाले होंय. इस प्रकारकी हम लोगोंकी प्रार्थना आपसें है, सो आप इस प्रार्थनाको अंगीकार करें; यह संक्षेपसें गायत्री मंत्रका अर्थ लिख दिया, परंतु उस गायत्रीमंत्रका वेदमें इसप्रकारका पाठ है ॥ “ॐ भूर्भुवःस्वः ॥ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥ धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ इति ॥ तथा सन १८८९ ई० के छापेके सत्यार्थ-प्रकाश, और संस्कारविध्यादिग्रंथोंमें भी, प्रायः इसीतरेंका अर्थ लिखा है; परंतु किसी २ स्थानमें फरक भी मालुम होता है ॥

इन पूर्वोक्त अर्थोंसें सिद्ध होता है कि, वेदपुस्तक, और वेदोंके अर्थ ईश्वरोक्त नहीं है; किंतु, ब्राह्मण ऋषियोंकी स्वकपोलकल्पना है; परस्पर विरुद्ध होनेसें.

तथा ऋग्वेदका भाष्य सायणाचार्यके भाष्यविना कोई भी प्राचीन भाष्य इस देशमें सुननेमें नहीं आता है । और जो ऋग्वेदादिका रावण-भाष्य सुननेमें आता है, और तिसका करनेवाला वो रावण था कि, जिसको श्रीरामचंद्र लक्ष्मणजीने मारा था. यह कथन तो, महा मिथ्या है. क्यों कि, श्रीरामचंद्रजी तो श्रीकृष्णजीसें लाखों वर्ष पहिलां होगए है, और वेदोंकी संहिता तो श्रीकृष्णजीके समयमें व्यासजीने ऋषियों-पाससें सर्वभूतिपां लेके एकत्र करके बांधी, तिसका नाम वेदसंहिता

कहते हैं. और ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, ये नाम भी व्यासजीनेही रक्खे हैं; ऐसा कथन महीधरकृत यजुर्वेदभाष्यमें लिखा है.

जब वेदका एक पुस्तकही रावणके समयमें नहीं था तो, तिसऊपर रावणने भाष्य रचा किसतरे माना जावे? जेकर किसी ब्राह्मणका नाम रावण होवे, और तिसने वेदोंपर भाष्य रचा होवे, यह तो मान भी सकते हैं. परंतु वो भाष्य कब रचा गया? और कहाँ गया? क्यों कि, सायणाचार्यने ऋग्वेदके भाष्य रचते हुएने, यह नहीं लिखा है कि, मैं अमुक भाष्यके अनुसार नवीन भाष्य रचता हूँ; जैसें महीधरने वेददीपमें लिखा है कि मैं माधव उव्हटादिके भाष्यानुसार रचना करता हूँ. या तो सायणाचार्यों प्राचीन कोइ भाष्य नहीं मिला होवेगा। और जे कर मिला होवेगा तो तिसके अर्थ सायणाचार्यको सम्मत नहीं होवेंगे, इसवास्ते अपने मतानुसार नवीन भाष्य रचके प्राचीन भाष्य लोप कर-दिया होवेगा; इसवास्ते ही वेदवेदांतके पुस्तकोंके भाष्यमें बहुत गड़बड़ है. कोइ किसीतरेंके अर्थ करता है, और कोइ उससें अन्यतरेंके, कोइ उससें भी अन्यतरेंके; जैसें व्याससूत्रोपरि आठ आचार्योंने आठ तरेंके भाष्योंमें अन्य २ प्रकारके अर्थ लिखे हैं.। शंकर १, आनंदतीर्थ २, निंबार्क ३, भास्कर ४, रामानुज ५, शैवमतप्रवर्तक ६, बल्लभ ७, भिक्षु ८.। इनके रचे भाष्यके मत यथाक्रमसें जान लेने.। केवलाद्वैत १, द्वैत २, द्वैताद्वैत ३, द्वैताद्वैत ४, विशिष्टाद्वैत ५, विशिष्टाद्वैत ६, शुद्धाद्वैत ७, अविभागाद्वैत ८.॥ इसवास्ते वेदवेदांतके पुस्तकोंके प्राचीन भाष्य, और टीका नहीं मालुम होते हैं;। इसवास्ते सर्व भाष्यकारादिकोंने अपने २ मतानुसार अपनी २ अटकलपच्चीसें अर्थ लिखे हैं. मीमांसाके वार्तिककार कुमारिलभट्टवत्. आधुनिक भाष्यकर्त्ता स्वामिदयानंदसरस्वतीवच्च.। इसवास्ते इन सर्व ग्रंथोंसें प्रमाणिक अर्थ नहीं सिद्ध होता है.

और माधवाचार्य अपने रचे शंकरादिगूविजयमें लिखते हैं कि, शंकराचार्यों व्यासजी साक्षात् मिले, तब उनोंने व्यासजीसें कहा कि, मेरे रचे अर्थ कैसे हैं? तब व्यासजीने कहा कि, तेरे अर्थ सर्व प्रमाणिक

है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि, शंकरस्वामीने भी अपने मतानुसार अटकलपच्चूसें अर्थ लिखे हैं, नतु प्राचीनग्रंथानुसार. इसवास्ते यह सर्व ग्रंथ अप्रमाणिक है, भिन्न २ रचना होनेसें। और जो शंकरभाष्यकी सम्मति आप व्यासजीने शंकरस्वामीको दीनी लिखी है, सो शंकरभाष्यकी उत्तमता प्रसिद्ध करनेवास्ते है, सो तो स्वमतानुरागी विना अन्य कोइ भी प्रेक्षवान् नही मानेंगे. क्यों कि, सांप्रतिकालमें अनेक जन वेदोंके अर्थोंका सत्यानाश कर रहे हैं तो, क्या व्यासजी सूते पडे हैं ? जो सांप्रतिकालमें आयेके किसीको भी वेदोंके सच्चे अर्थ नही बतलाते हैं !!! हमने जो वेदोंकी वाचत समीक्षा लिखी है, सो अपने मतके अनुराग, और वेदोंके ऊपर द्वेषकरके नही लिखी है. किंतु, यथार्थ सर्वज्ञके रचे हुए वेदपुस्तक है कि, नही ? इस वातके निर्णयवास्ते हमने इतना परिश्रम उठाया है.

पूर्वपक्षः—मनुजी तो मनुस्मृतिके दुसरे अध्यायमें लिखते हैं कि। “योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः । स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ११ ” ॥ अर्थः ॥ जो ब्राह्मण, हेतुशास्त्र (तर्कशास्त्र) आश्रयसें श्रुतिस्मृतिको न माने, अनादर करे, तिसको साधु पुरुषोंने बहिर निकाल देना. क्यों कि, वेदका जो निंदक है, सो नास्तिक है. इसवास्ते तुम भी नास्तिकही हो; वेदोंके निंदक होनेसें.

उत्तरपक्षः—इस कथनसें तो जैन, बौद्ध, ईसाइ, मुसलमान, यहूदी, पारसी, आदिमतोंवाले सर्व नास्तिक ठहरेंगे. क्यों कि, येह सर्व वेदोंको नही मानते हैं. तथा कितनेक वेदांती, और कितनेक सनातन धर्मीआदि भी नास्तिक ठहरेंगे; वेदोक्त यजन याजनादिके न माननेसें. तथा ऋग्वेद तो, अग्नि, इंद्र, वरुण, सोम, यम, उषा, सूर्य, मैत्रावरुण, अश्विनौ, वायु, नदीयां, समुद्र, इत्यादिककी स्तुति प्रार्थना और घोडेका यज्ञ इत्यादिसें प्रायः भरा है. और यजुर्वेद प्रायः हिंसक यज्ञोंके विधिसेंही भरा है. साम और अथर्व भी वैसे ही है. और उपनिषदोंमें प्रायः एक ब्रह्महीकी सिद्धिकेवास्ते सर्व प्रयत्न करा है; एक ऋग्वेदके पुरुषसूक्तमें, वा

यजुर्वेदके ४० मे अध्यायमें सृष्टिकर्ता ईश्वरादिका कथन है. इसकेविना अन्य कौनसा अतिउत्तम, जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्षादितत्त्वोंका, वा देव गुरु धर्मादि तत्त्वोंका कथन वेदोंमें है ? जिसके निंदने, और न माननेसे नास्तिक कहे गए ? दूसरे मत-वाले भी अपने पुस्तकोंमें ऐसा लिख सकते हैं । यथा । “ योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः ॥ स साधुभिः सदा श्लाघ्यो नास्तिको वेदस्थापकः ” ॥ अर्थः ॥ जो ब्राह्मण, ‘ उपलक्षणसें अन्यका भी ग्रहण जानना ’ तर्कशास्त्रके आश्रयसें वेदस्मृतिका अनादर करे, सो साधु पुरुषोंकरके सदा श्लाघनीय होता है. क्यों कि, जो वेदका स्थापक है, सो नास्तिक है. क्यों कि, वेद महाहिंसक पुस्तक है. । उक्तं च । “ पसुबहाय सव्वे वेया ” अर्थात् पशु-योंके बध करनेकेवास्तेही सर्व वेदोंके पुस्तक हैं, सो कथन अज्ञानतिमिर-भास्करसें देख लेना. । तथा महाभारतके शांतिपर्वके १०९ अध्यायमें लिखा है । “ अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतं । यः स्यादहिंसासंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥ १२ ॥ श्रुतिधर्मइति ह्येके नेत्याहुरपरे जनाः ” । इत्यादि । अर्थः ॥ भूतजीवोंकी अहिंसा दयाक्रेवास्ते धर्मप्रवचन करा है, इसवास्ते जो अहिंसासंयुक्त धर्म होवे, सोइ धर्म है, ऐसा निश्चय है. ॥ [श्रुतीति श्रुत्युक्तोर्थः सर्वो धर्म इत्यपि न श्येनादेर्धर्मत्वाभावात् । ‘ फलतोपि च यत्कर्म नानर्थेनानुबध्यते । केवलं प्रीतिहेतुत्वात्तद्धर्म इति कथ्यते ’ इतिवचनात्, श्येनादिफलस्य शत्रुवधादेरनर्थत्वादुक्तलक्षण एव धर्म इत्यर्थः । इति-टीकायाम् ॥] श्रुतिमें जो अर्थ कथन करा सोइ धर्म है, ऐसे कितनेक कहते हैं; परंतु, अपर कितनेक जन कहते हैं कि, श्रुत्युक्त जो अर्थ है, सो धर्म नहीं है; श्येनादि यज्ञोंको धर्मके अभाव होनेसें. फलसें भी, जो कर्म अनर्थके साथ संबंधवाला न होवे, किंतु केवल प्रीतिहेतु होवे, सो धर्म कहिए. इस वचनसें, श्येनादिके फलकों शत्रुवधादि अनर्थरूप होनेसें, उक्तलक्षण अर्थात् अहिंसालक्षणरूप धर्मही है. । इत्यादि ।

तथा महाभारतके शांतिपर्वमें १७५ अध्यायमें पितापुत्रके संवादमें ऐसा लिखा है. यथा । “ पशुयज्ञैः कथं हिंसैर्मादृशो यष्टुमर्हति । इत्यादि । ” भावार्थ इसका यह है कि, युधिष्ठिर भीष्मजीसें पृच्छा करते हैं कि, इस

सर्वभूतोंके क्षय करनेवाले जरारोगादिकरके पुरुषोंको दुःख देनेवाले कालमें श्रेय (कल्याण) कारी क्या पदार्थ है ? तिसको हे पितामह ! आप कहो, जिससे हम उसकों अंगीकार करे. तब भीष्म पितामह, पुरातन इतिहास कथन करते हुए; जिसमें मेधावीनामा पुत्रके धर्ममार्गके पूछा हूँ, पिताने कहा अग्निहोत्रादि यज्ञ कर, तब तिसके उत्तरमें पुत्र जबाब देता है. । पशुयज्ञैरित्यादि । मादृशः मेरेसरिखा मोक्षार्थका जानकार हिंसक पशुयज्ञोंकरके यज्ञ करनेको कैसे योग्य है ? अपि तु कदापि नहीं. अर्थात् मेरेसरिखे जानकारकों ऐसे हिंसक पशुयज्ञ करने योग्य नहीं है. । इत्यादि ॥

इसवास्ते वेदोंके पुस्तक अप्रमाणिक है, युक्तिप्रमाणसें बाधित होनेसें. सो कथन संक्षेपसें ऊपर लिख आए हैं. इसवास्ते यह कथन युक्तियुक्त है कि, जो वेदोंका स्थापक है, सोइ नास्तिक है. अन्य नहीं. और यदि वेदोंके निंदकहीको नास्तिक मानोंगे, तब तो, वेदव्यास, युधिष्ठिर, भीष्म पितामह, मेधावी आदि भी नास्तिक ठहरेंगे; वेदोक्त यज्ञकों न माननेसें. तथा मत्स्यपुराण, जो कि वेदव्यासका रचा कहा जाता है, और जिसका नाम महाभारतमें संक्षेपरूप वर्णनसहित लिखा है, उसमें ऐसे लिखा है. ॥

(ऋषयउचुः)

कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत् प्रवर्त्तनम् ॥

पूर्वे स्वायंभुवे सर्गे यथावत् प्रब्रवीहि नः ॥ १ ॥

अंतर्हितायां संध्यायां सार्द्धं कृतयुगेन हि ॥

कालाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तथा ॥ २ ॥

औषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ॥

प्रतिष्ठितायां वार्त्तायां ग्रामेषु च पुरेषु च ॥ ३ ॥

वर्णाश्रमप्रतिष्ठानं कृत्वा मंत्रैश्च तैः पुनः ॥

संहितास्तु सुसंहृत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः ॥

एतच्छ्रुत्वाब्रवीत् सूतः श्रूयतां तत् प्रचोदितम् ॥ ४ ॥

(सूतउवाच)

मंत्रान् वै योजयित्वा तु इहामुत्र च कर्मसु ॥
 तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत् प्रभुः ॥ ५ ॥
 दैवतैः सह संल्लुत्य सर्वसाधनसंवृतः ॥
 तस्याश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः ॥ ६ ॥
 यज्ञकर्मण्यवर्तत कर्मण्यग्रे तथैर्विजः ॥
 दूयमाने देवहोत्रे अग्नौ बहुविधं हविः ॥ ७ ॥
 संप्रतीतेषु देवेषु सामगेषु च सुस्वरम् ॥
 परिक्रांतेषु लघुषु अध्वर्युपुरुषेषु च ॥ ८ ॥
 आलब्धेषु च मध्ये तु तथा पशुगणेषु वै ॥
 आहूतेषु च देवेषु यज्ञभुक्षु ततस्तदा ॥ ९ ॥
 यइन्द्रियात्मका देवा यज्ञभागभुजस्तु ते ॥
 तान् यजन्ति तदा देवाः कल्पादिषु भवंति ये ॥ १० ॥
 अध्वर्युप्रैषकाले तु व्युत्थिता ऋषयस्तथा ॥
 महर्षयश्च तान् दृष्ट्वा दीनान् पशुगणांस्तदा ॥
 विश्वभुजं ते त्वपृच्छन् कथं यज्ञविधिस्तव ॥ ११ ॥
 अधर्मो बलवानेष हिंसाधर्मोऽसया तव ॥
 नवः पशुविधिस्त्विष्टस्तव यज्ञे सुरोत्तम ॥ १२ ॥
 अधर्मो धर्मघाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया ॥
 नायं धर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसाधर्म उच्यते ॥
 आगमेन भवान् धर्मं प्रकरोतु यदाच्छति ॥ १३ ॥

विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मेणाव्यसनेन तु ॥
 यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ त्रिवर्गपरिमोषितैः ॥ १४ ॥
 एष यज्ञो महानिद्रः स्वयंभुविहितः पुरा ॥
 एवं विश्वभुगिन्द्रस्तु ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
 उक्तो न प्रतिजग्राह मानमोहसमन्वितः ॥ १५ ॥
 तेषां विवादः सुमहान् जज्ञे इन्द्रमहर्षिणाम् ॥
 जंगमैः स्थावरैः केन यष्टव्यमिति चोच्यते ॥ १६ ॥
 ते तु खिन्ना विवादेन शक्त्या युक्ता महर्षयः ॥
 संधाय सममिन्द्रेण पप्रच्छुः खचरं वसुम् ॥ १७ ॥

(ऋषयञ्जुः)

महाप्राज्ञ त्वया दृष्टः कथं यज्ञविधिर्नृप ॥
 औत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं नस्तुद प्रभो ॥ १८ ॥

(सूतउवाच)

श्रुत्वा वाक्यं वसुस्तेषामविचार्य बलाबलम् ॥
 वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह ॥ १९ ॥
 यथोपनीतैर्यष्टव्यमिति होवाच पार्थिवः ॥
 यष्टव्यं पशुभिर्मैर्धैरथ मूलफलैरपि ॥ २० ॥
 हिंसास्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शनागमः ॥
 तथैते भाविता मंत्रा हिंसालिंगा महर्षिभिः ॥ २१ ॥
 दीर्घेण तपसा युक्तैस्तारकादिनिदर्शिभिः ॥
 तत्प्रमाणं मया चोक्तं तस्माच्छमितुमर्हथ ॥ २२ ॥
 यदि प्रमाणं स्वान्येव मंत्रवाक्यानि वो द्विजाः ॥
 तथा प्रवर्त्ततां यज्ञो ह्यन्यथा मानृतं वचः ॥ २३ ॥

एवंकृतोत्तरास्ते तु युंज्यात्मानं तपोधिया ॥
 अवश्यंभाविनं दृष्ट्वा तमधोह्यशपंस्तदा ॥ २४ ॥
 इत्युक्तमात्रो नृपतिः प्रविवेश रसातलम् ॥
 ऊर्ध्वचारी नृपो भूत्वा रसातलचरोभवत् ॥ २५ ॥
 वसुधातलचारी तु तेन वाक्येन सोभवत् ॥
 धर्माणां संशयच्छेत्ता राजा वसुरधोगतः ॥ २६ ॥
 तस्मान्न वाच्यो ह्येकेन बहुज्ञेनापि संशयः ॥
 बहुधारस्य धर्मस्य सूक्ष्मादुरनुगागतिः ॥ २७ ॥
 तस्मान्न निश्चयाद्वक्तुं धर्मः शक्यो हि केनचित् ॥
 देवानृषीनुपादाय स्वायंभुवमृते मनुम् ॥ २८ ॥
 तस्मान्न हिंसा यज्ञे स्याद्यदुक्तमृषिभिः पुरा ॥
 ऋषिकोटिसहस्राणि स्वैस्तपोभिर्दिवं गताः ॥ २९ ॥
 तस्मान्न हिंसा यज्ञं च प्रशंसन्ति महर्षयः ॥
 उच्छ्रो मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः ॥ ३० ॥
 एतद्वत्त्वा विभवतः स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः ॥
 अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमोभूतदयाशमः ॥ ३१ ॥
 ब्रह्मचर्यं तपः शौचमनुक्रोशं क्षमा धृतिः ॥
 सनातनस्य धर्मस्य मूलमेव दुरासदम् ॥ ३२ ॥
 द्रव्यमंत्रात्मको यज्ञस्तपश्च समतात्मकम् ॥
 यज्ञैश्च देवानाप्नोति वैराजं तपसा पुनः ॥ ३३ ॥
 ब्रह्मणः कर्मसंन्यासाद्वैराग्यात्प्रकृतेर्लयम् ॥
 ज्ञानात्प्राप्नोति कैवल्यं पंचैता गतयः स्मृताः ॥ ३४ ॥
 एवं विवादः सुमहान् यज्ञस्यासीत्प्रवर्तने ॥
 ऋषीणां देवतानां च पूर्वं स्वायंभुवेन्तरे ॥ ३५ ॥

ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वा हतं धर्मं बलेन ते ॥
 वसोर्वाक्यः।नादृत्य जग्मुस्ते वै यथागतम् ॥ ३६ ॥
 गतेषु ऋषिसंघेषु देवा यज्ञमवाप्नुयुः ॥
 श्रूयन्ते हि तपःसिद्धा ब्रह्मक्षत्रादयो नृपाः ॥ ३७ ॥
 प्रियव्रतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसुः ॥
 सुधामा विरजाश्चैव शंखपाद्राजसस्तथा ॥ ३८ ॥
 प्राचीनबर्हिः पर्जन्यो हविर्धानादयो नृपाः ॥
 एते चान्ये च बहवस्ते तपोभिर्दिवं गताः ॥ ३९ ॥
 राजर्षयो महात्मानो येषां कीर्तिः प्रतिष्ठिता ॥
 तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तपः सर्वैस्तु कारणैः ॥ ४० ॥
 ब्रह्मणा तमसा स्पृष्टं जगद्विश्वमिदं पुरा ॥
 तस्मान्नाप्नोति तद्यज्ञात्तपोमूलमिदं स्मृतम् ॥ ४१ ॥
 यज्ञप्रवर्तनं ह्येवमासीत्स्वायंभुवेन्तरे ॥
 तदाप्रभृति यज्ञोऽयं युगैः सार्द्धं प्रवर्तितः ॥ ४२ ॥

अध्यायः ॥ ४२ ॥

भाषार्थः ॥ ऋषियोंने पूछा, हे सूतजी ! त्रेतायुगकी आदिमें स्वायंभुव
 मनुके सर्गमें यज्ञोंकी प्रवृत्ति कैसें होती भयी ? यह आप हमको सम-
 झाइये । जब सत्ययुगकी संध्या समाप्त होजानेपर त्रेतायुगकी प्राप्ति
 होती है, तब बहुतसी औषध उत्पन्न होती हैं, अधिक वर्षा होती है,
 ग्रामपुरआदिकोंमें उत्तम प्रतिष्ठित बातें होने लगती हैं, उस समय सब-
 वर्णाश्रम इकट्ठे होकर अन्नको इकट्ठा करके वेदसंहिताओंसे यज्ञोंकी कैसे
 प्रवृत्ति करते हैं ? ऋषियोंके इन वचनोंको सुनकर सूतजीने कहा कि, हे
 ऋषिलोगो !—इस संसारके, और परलोकके कर्मोंमें मंत्रोंको युक्त करके
 विश्वका भोगनेवाला इंद्र सर्वसाधनों और देवताओंसे युक्त होकर, जब
 यज्ञ करता भया, तब उस यज्ञमें बड़े २ ऋषिलोग आये । ऋत्विक् ब्रा-

ह्यण यज्ञोंके कर्मोंको करके उस बड़े यज्ञकी अग्निमें बहुत प्रकारसे हवन करते भये,। सामवेदी ब्राह्मण तो उच्चस्वरसे पाठ करते भये, अध्वर्यु आदिक अन्य ब्राह्मण अपने कर्म करने लगे, यज्ञमें कहे हुए पशुओंका आलंभन होने लगा, यज्ञभोक्ता ब्राह्मण और देवता आने लगे, हे ऋषियो ! जो इंद्रियोंके भोगकी इच्छा करनेवाले देवता हैं, वही यज्ञके भागको भोगते हैं; अन्य सब देवता उन्हींका पूजन करते हैं। वेही फिर कल्पकी आदिमें उत्पन्न होते हैं। उस यज्ञमें जब अध्वर्युके प्रेरणका समय आया, तब ऋदिलोग खड़े हो गये; और उन दीन पशुओंको देख कर विश्वभुक् देवताओंसे यह वचन बोले कि, तुम्हारे इस यज्ञका कैसा विधि है ? इस हिंसा करनेका महा अधर्म है; और हे इंद्र ! तेरे इस यज्ञमें यह विधि उत्तम नहीं है,। तैने पशुओंके मारनेकरके यह अधर्म प्रारंभ किया है, इस हिंसारूपी यज्ञसे धर्म नहीं होता है; किंतु महा अधर्म होता है। जो तुम उत्तम कर्म चाहते हो तो, शास्त्रोंके अनुसार धर्म करो। हे इंद्र तैने त्रिवर्णकी नाश करनेवाली महादुर्व्यसनरूप हिंसासंबंधी विधियोंकरके अपने यज्ञको रचा है। इसप्रकार ऋषियोंसे शिक्षा किया हुआ भी इंद्र अपने अभिमानसे मोहको प्राप्त हो कर, उन तत्त्वदर्शी ऋषियोंके वचनको नहीं ग्रहण करता भया। उस समय उन ऋषियोंका और इंद्रका यह बड़ा भारी विवाद होता भया कि, यज्ञ जंगम पशुओंसे होना चाहिये, अथवा स्थावर वस्तुओंके शाकल्यादिकोंसे होना चाहिये। वह बड़े २ शक्तिमान् महर्षि उस विवादसे महादुःखित हो कर, आकाशमें विचरनेवाले वसुराजाको इंद्रकेही समान जान कर उससे यह पूछने लगे कि, हे महाप्राज्ञ तुमने यज्ञकी विधि देखी है ? जो देखी होय तो, हमारे संदेहको दूर करो। सूतजी कहते हैं कि, वह वसुराजा ऋषियोंके वचनको सुन कर बलाबलको न विचार, वेदशास्त्रको स्मरण कर, यज्ञके तत्त्वको कहने लगा कि, शास्त्रमें यज्ञके योग्य उत्तम पशुओंकरके, अथवा मूलफलादिकोंकरके यथार्थ विधिसे यज्ञ करना चाहिये। यज्ञका हिंसाही स्वभाव है, इसीसे वेदमें हिंसको

चिन्हवाले मंत्र कहे हैं; यह मैंने तत्त्वज्ञ ऋषियोंकेही प्रमाणसे कहा है. इसको आप क्षमा करियेगा, हे द्विजोत्तमलोगो! तुम जो अपनेही वचन और मंत्रोंको मुख्य मानते हो तो, अन्यथाही यज्ञ करो; मेरे वचनोंको सत्य मत जानो.। जब उसने ऐसा उत्तर दिया, तब वह ऋषि अपने आत्माको तपोबुद्धिकरके युक्त कर, और अवश्यभावीको देख कर उस वसुको नीचे जानेका शाप देते भये.। उससमय वह वसुराजा पाताललोकमें प्राप्त होता भया. ऋषियोंके शापसे ऊपरके लोकोंका भी विचरनेवाला हो कर, नीचेके लोकोंको प्राप्त होता भया.। उस वचनके कहनेसे वह धर्मज्ञ भी राजा पातालमें प्राप्त होता भया. इस हेतुसे अकेले बहुत जाननेवाले भी पुरुषको बहुतसी धारणावाले धर्मका खंडन करना योग्य नहीं है. क्योंकि, धर्मकी बड़ी सूक्ष्म गति है.। इसकारणसे किसी पुरुषको भी निश्चयकरके कोई धर्म न कहना चाहिये. क्योंकि, देवता और ऋषियोंके प्रति स्वायंभुवमनुके विना दूसरा कोई पुरुष भी कहनेको नहीं समर्थ है.। ऋषिलोग यज्ञमें कभी हिंसा नहीं करते, और किरौड़ों ऋषि तपस्याहीके प्रभावसे स्वर्गमें प्राप्त हुए हैं.। इसीहेतुसे बड़े महात्मा ऋषि हिंसाधर्मकी प्रशंसा नहीं करते हैं. तपोधन ऋषि, शिलोच्छवृत्ति, मूल, फल, शाक, जल और पात्र, इनहीके दान करनेसे स्वर्गमें प्राप्त हुए हैं. द्रोह मोहसे रहित, जितेंद्री, भूतोंपर दया, शांति, ब्रह्मचर्य, तप, शौच, क्रोध न करना, क्षमा और धृति, यह सब सनातन धर्मके मूल हैं. द्रव्य तो मंत्रात्मक यज्ञ है, तप समतात्मक यज्ञ है, यज्ञोंसेही देवयोनि प्राप्त होती है; तपकरके विराट शरीर प्राप्त होता है. कर्मोंके त्याग करनेसे ब्रह्माके शरीरको प्राप्त होता है, वैराग्यसे मायाका नाश होता है, और ज्ञानसे कैवल्य मोक्ष प्राप्त होता है. यह पांच गति कही है.। प्रथम स्वायंभुवमनुके अंतरमें ऐसे यज्ञके प्रवृत्त होनेमें, ऋषियोंका और देवताओंका बड़ा विवाद हुआ है.। इसके पीछे वह ऋषि बलसे हत हुए धर्मको देख कर, राजा वसुका अनादर कर, अपने स्थानमें जाते भये.।

जब ऋषि चले गये, तब देवतालोग यज्ञको प्राप्त होते भये. यह भी हमने सुना है कि, राजा प्रियव्रत, उत्तानपाद, ध्रुव, मेधातिथि, वसु, सुधामा, विरजा, शंखपाद, राजसू, प्राचीनवर्हि और हविर्धान, इत्यादि राजा, और अन्य भी अनेक राजा तपकरकेही स्वर्गको प्राप्त होते भये। जो राजऋषि महात्मा भये हैं, उनकी कीर्ति आजतक पृथिवीपर स्थित हो रही है, इसीसे अनेक कारणोंकरके यज्ञोंसे तपकोंही अधिक कहा है^(१). इसीतपके प्रभावसे ब्रह्मार्जिने भी सृष्टिकी रचना करी है, इसी कारण यज्ञसे अधिक तप है; सब पदार्थोंका मूल तप है। इसी-रीतिसे स्वायंभु मुनिके अंतरमें यज्ञ प्रवृत्त हुए हैं; तभीसे ले कर यह यज्ञ सब युगोंमें प्रवृत्त हो रहा है ॥ ४२ ॥ इतिमत्स्यपुराणे १४२ अध्यायः ॥

इस पूर्वोक्त लेखसे भी यही सिद्ध है कि, जो वेदोंका स्थापक है, सोही नास्तिक है; अधोगति जानेसे, वसुराजावत्; नतु निंदक, ऊर्ध्व स्वर्गगति जानेसे, पूर्वोक्त महर्षियोंवत्। तथा जैनी लोक जो मानते हैं कि, प्रायः हिंसक यज्ञ वसुराजाके समयमें सुरु हुए हैं^(२), तिसको भी यह पूर्वोक्त लेख सिद्ध करे है. अपरं च स्वायंभु मुनिके अंतरमें इन हिंसक यज्ञोंकी प्रवृत्ति महर्षियोंका कहना न मान कर इंद्रने अभिमानके वश हो कर करी है, तब तो सिद्ध हुआ कि, प्रथम हिंसक यज्ञ नहीं होते थे, और हिंसक यज्ञके न होनेसे हिंसक यज्ञोंके प्रतिपादक वेदादिशास्त्र, जो कि सांप्रति विद्यमान है, और जिनमें हिंसक यज्ञोंका मेघ वर्षाया है, तिनोंका अभाव सिद्ध हुआ; तब तो सांप्रति कालके विद्यमान वेदादि शास्त्र अनादि नहीं, किंतु बनावटी सिद्ध हुए। यदि कहो कि, प्राचीन वेद नष्ट हो गये, और यह हिंसक श्रुतियों बनाके एकत्र करके वेदकेही नामसे पुस्तक प्रसिद्ध हुआ, यह तो हम मानतेही हैं, तथा हमको बड़ा दुःख होता है कि वसुराजा 'यज्ञके योग्य उत्तम पशुओंकरके यज्ञ

(१) इस कथनसे 'स तपोऽतप्यत्' इत्यादि स्थानपर भाष्यकारने आलोचनात्मक तप करा लिखा है, सो असत्य भासन होता है.

(२) देखो जैनतत्त्वादर्शका एकादश (११) परिच्छेद.

करना चाहिये' इस वचनके कहनेमात्रसेही, अधोगतिको प्राप्त हुआ तो, जो लोक वेदशास्त्र और धर्मके नामसे दीन अनाथ निराधार बकरे गाय घोड़े आदि पशुओंको यज्ञमें हवन करके निर्दय हो कर यज्ञशेषको खाते हैं, वा खाते थे, उन विचारोंकी क्या गति होगी? अपशोस!!! कोइ नही विचारते हैं कि, आस्तिकनास्तिकके क्या क्या लक्षण है?

पूर्वपक्षः—आपका कहना तो ठीक है, परंतु महाभारत जिसको हम लोग पांचमा वेद मानते हैं, तिसमें ऐसा लेख है ॥

पुराणं मानवो धर्मः सांगो वेदश्चिकित्सितम् ॥

आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हंतव्यानि हेतुभिः ॥

अर्थः—पुराण, मनुस्मृति, षडंगवेद अर्थात् ऋगू, यजु, साम, अथर्व, यह चार वेद; और शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, ज्योतिष, निरुक्त, यह षडंग; तथा सुश्रुतचरकादि चिकित्साशास्त्र, ये सर्व आज्ञासिद्ध हैं. अर्थात् जो कुछ इनमें लिखा है, सो सर्व सत्य २ करके मान लेना, परंतु इनको युक्तिप्रमाणोंसे खंडित न करना इति ॥

उत्तरपक्षः—बाहजीवाह!! क्याही काबुलके उल्लूयोंके घोड़ेका अंडा है! जिसकी किसीसे भी परीक्षा न करानी, और न किसीको दिखलाना^(१), जैनोंका तो, इस पूर्वोक्त भारतके कथन उपर यह कहना है. ॥

अस्तिवक्तव्यता काचित्तेनेदं न विचार्यते ॥

निर्दोषं काञ्चनं चेत्स्यात् परीक्षाया बिभेति किम् ॥ १ ॥

अर्थः—जो लोग यह कहते हैं कि, अमुक २ ग्रंथ आज्ञासिद्ध है, तिसको प्रमाणयुक्तिसे विचारना नही; किंतु तिन ग्रंथोंमें जो लिखा है.

(१) सुनते हैं कि, कितनेक काबुली दिह्ली शहरमें आये थे, वहां उन्होंने पेठेका फल देखा, उस बड़े फलको देखके पूछने लगे कि, यह क्या है? तब उन उल्लूयोंको देखके फलवालेने कहा, यह घोड़ेका अंडा है, तब उन्होंने पूछा इसमेंसे कैसा बोड़ा निकलता है? फलवालेने कहा, दरीयाइ घोड़ा निकलता है, तब उन्होंने मूल्य देके घोड़ेका अंडा मानके पेठा (कुप्पांडाविशेष) फल लेलिया. फलवालेने कहा, खांसाहब! इम अंडेको जमीन ऊपर नही रखना, और किसीको दिखाना नही यदि पूर्वोक्त काम करोगे तो, तुमारा अंडा गल जायगा!!! इत्यादि॥

सो सर्व सत्य करके मान लेना; तो हम कहते हैं कि, तिन पुस्तकोंमें ऐसी कोइ वक्तव्यता है, जो कि प्रमाणयुक्तिद्वारा विचार करनेसे बाधित हो जावे; इसवास्तेही तुम कहते हो कि, प्रमाणयुक्तिसे तिसकी परीक्षा नहीं करनी ? जेकर सुवर्ण निर्दोष है तो, तिसको सराफकी परीक्षाका क्या भय है ? खोटेकोही परीक्षाका भय है, खरेको नहीं. । इससे पूर्वोक्त ग्रंथ खोटसंयुक्त है, तिनके खोट छिपानेकेवास्तेही तुमारे मतमें ऐसे २ श्लोकरूप जाल बनाके लिख गए हैं कि, जिसमें अज्ञानी पुरुषरूप मत्स्य फसके मर रहे हैं. सर्वज्ञोंका कहना तो यह है कि, परीक्षाकरके वस्तुतत्त्व ग्रहण करना चाहिये. हां. जो वस्तु प्रत्यक्ष अनुमानका विषय न होवे, तिसको आगमप्रमाणसे मानना चाहिये; परंतु आगम भी कैसा ? जो आतप्रणीत होवे. आत कौन ? जिसके अष्टादश (१८) दूषण अत्यंत दूर हो गये होवे; और आतका निर्दोषपणा तिसके संपूर्ण जन्मचरितके सुननेसे, और तिसकी मूर्तिके देखनेसे सिद्ध होता है; सो तो, प्रेक्षावानही कर सकते हैं, न तु मूढ़ कदाग्रही व्युद्वाहित. सो विस्तारपूर्वक देखके परीक्षा करनी होवे, उसने तिन २ आसोंके चरित वांचने. और संक्षेपरूप तो इसीग्रंथमें लिख आये हैं. इसवास्ते जिस शास्त्रका कथन युक्तिप्रमाणसे बाधित न होवे, सो मानना चाहिये.

तथा मनुजीके कथन करे श्लोकसे यह भी सिद्ध होता है कि, मनुजीके समयमें भी वेदोंके निंदक थे, जिनको मनुजीने नास्तिक कहा है. परंतु यह कहना मिथ्या है; क्योंकि, जेकर तो वेदोंका कथन प्रमाणयुक्तिसे बाधित न होवे, तब तो सत्य है कि, जो वेदोंका निंदक है सो नास्तिक है. और जेकर वेदोंका कथन युक्तिप्रमाणसे बाधित है, तब तो, वेदोंके माननेवाले और आतप्रणीत सत्य शास्त्रोंको मिथ्या शास्त्र कहनेवाले, और सत्य शास्त्रोंके माननेवालोंको नास्तिक कहनेवालेही नास्तिक हैं.

पूर्वपक्षः—जैन मतके मूल आगमग्रंथोंमें गृहस्थधर्मके पच्चीस वा सोलां संस्कार नहीं है, इसवास्ते जैनशास्त्र माननेयोग्य नहीं है.

उत्तरपक्षः—ऐसा माननेसे तो चारों वेद भी माननेयोग्य सिद्ध नहीं होवेंगे, क्योंकि, तिनमें भी संपूर्ण संस्कार वर्णन नहीं है. अपरं च ये पच्चीस वा सोळां संस्कार प्रायः संसारव्यवहारमेंही दाखिल हैं, और जैनके मूल आगममें तो निःकेवल मोक्षमार्गकाही कथन है; और जहां कहीं चरितानुवादरूप संसारव्यवहारका कथन भी है तो, ऐसा है कि, जब स्त्री गर्भवती होवे तब गर्भको जिन २ कृत्योंके करनेसे तथा आहार व्यवहार देशकालोचितसे विरुद्ध करनेसे गर्भको हानि पहुंचे सो नहीं करती है, और पुत्रके जन्म हुआपीछे प्रथमदिनमें लौकिक स्थिति मर्यादा करते हैं, तीसरे दिन चंद्रसूर्यका पुत्रको दर्शन कराते हैं, छठे दिनमें लौकिक धर्मजागरणा करते हैं, और ११ मे दिन अशुचि कर्म, अर्थात् सूति-कर्मसे निवृत्त होते हैं, और विविधप्रकारके भोजन उपस्कृत करके न्याती-वर्गादिको भोजन जिमाते हैं, और तिनके समक्ष पुत्रका नाम स्थापन करते हैं, जब आठ वर्षका होता है, तब तिसको लिखितगणितादि बहत्तर (७२) कला पुरुषकी पुत्रको, और चौसष्ट (६४) कला स्त्रीकी कन्याको सिखलाते हैं, तदपीछे जब तिसके नव अंग सूते प्रबोध होते हैं, और यौवनको प्राप्त होता है, तब तिसके कुल, रूप, आचारसदृश कुलकी निदोष कन्याके साथ विवाहविधिसें पाणिग्रहण करवाते हैं, पीछे संसारके यथा विभवसे भोगविलास करता है, पीछे साधुके जोग मिलें गृहस्थधर्म वा यतिधर्म अंगीकार करता है, धर्म पालके पीछे विधिसें प्राणत्याग करता है; इतना विधि गृहस्थ व्यवहारादिकका श्रीआचारांग, विवाहप्रज्ञप्ति (भगवती), ज्ञाता धर्मकथा, दशाश्रुत स्कंधके आठमे अध्ययनादिमें चरितानुवादरूप प्रतिपादन करा है. तीर्थंकरके जन्म हुये तिनके मातापिता जे कि श्रायक थे, तिनोंने भी यह पूर्वोक्त विधि करा है. इसवास्ते मूल आगमोंमें चरितानुवादकरके गृहस्थव्यवहारका विधि सूचन करा है, परंतु विधिवादसे कथन करा हुआ हमको मालुम नहीं होता है. परं आदि जगत् व्यवहार आदीश्वर श्रीऋषभदेवजीनेही चलाया था, तिनके चलाये व्यवहारकाही ब्राह्मणोंने उलटपलट घालमेल करके २५ वा १६

संस्कार जगत्में प्रसिद्ध करे हैं, ऐसैं जैनमतवाले मानते हैं. तथापि पूर्वोक्त आगमकी सूचनाअनुसार, और परंपरायसैं चले आए जगत्व्यवहारधर्मके सोलां संस्कार श्रीवर्द्धमानसूरिजीने आचारदिनकर नामा शास्त्रमें लिखे हैं, वह अग्रिमतन स्तंभोंमें लिखेंगे. इति. ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे
वेदभाष्यादीनामप्रमाणत्ववर्णनोनामद्वादशस्तम्भः ॥ १२ ॥

॥ अथत्रयोदशस्तम्भारम्भः ॥

अथ त्रयोदश (१३) स्तंभमें संस्कारोंका वर्णन लिखते हैं. ॥

तत्त्वज्ञानमयो लोके य आचारं प्रणीतवान् ॥

केनापि हेतुना तस्मै नम आद्याय योगिने ॥ १ ॥

श्रीवर्द्धमानसूरिजीने आचारदिनकर नामा ग्रंथ बनाया है, जिसके ४० उदय हैं. जिनमेंसैं गर्भाधानादि षोडश (१६) उदयोंका वर्णन यहां लिखते हैं, प्रकृतोपयोगित्वात्. तत्रादौ प्रथम गर्भाधानसंस्कारका वर्णन इस त्रयोदशस्तंभमें करते हैं. और संस्कारोंका वर्णन भी उत्तरोत्तर स्तंभोंमें करेंगे. ॥ क्योंकि, समस्त परमार्थके जाणकार भगवान् अर्हन् भी गर्भसैं लेकर राज्याभिषेकपर्यंत संस्कारोंको अपने देहमें धारण करते हुए, तथा देशविरतिरूप गृहस्थधर्ममें प्रतिमावहन सम्यक्त्वारोपणरूप आचार आचरण करते हुए, तथा निमेषमात्र शुक्लध्यानकरके प्राप्य केवल ज्ञानकेवास्ते दीर्घ कालतक यतिमुद्रातपः चरणादि धारण करते हुए, तथा केवलज्ञान हुए बाद परकी उपेक्षाकरके रहित चिदानंदरूप भी भगवान् समवसरणमें विराजमान हो कर धर्मदेशना, गण, गणधरस्थापना और संशयव्यवच्छेद (संशयका दूर करना) इत्यादि करते हुए, तथा तिस भगवान्के निर्वाण बाद इंद्रादि देवते प्राणरहित कर्तृकर्मकरके रहित भी तिस भगवान्के शरीरका संस्कार करते हैं, तथा स्तूपादि करतैं हैं. तिसवास्ते आर्हतके मतमें लोकोत्तर पुरुषोंके आचीर्ण होनेसैं आचार प्रमाणभूत है.

इसीवास्ते आचारका वर्णन करते हैं. यद्यपि ॥ “नाणं सवच्छ मूलं च साहा खंधो य दंसणं। चारित्तं च फलं तस्स रसो मुखो जिणोइओ॥१॥” अर्थः ॥ सर्वत्र मूलसमान ज्ञान है, और दर्शन (श्रद्धा) शाखा और खंधसमान है, तिस वृक्षका फल चारित्र है, और चारित्ररूप फलका रस जिनोदित भगवान्का कहा मोक्ष है. ॥ इसवास्ते सिद्धांतमहोदधि (समुद्र) के कल्लोलरूप चारित्रका व्याख्यान कोइ भी नहीं कर सकते हैं, तो भी, श्रुतकेवलीप्रणीतशास्त्रार्थलेशको अवलंबन करके किंचित् आचारयोग्य वचन कथन करते हैं. ॥ प्रथम आचार दोप्रकरका है, यत्याचारः—यतियोंका आचार १, और गृहस्थाचारः—गृहस्थोंका आचार २.

॥ यदुक्तम् ॥

सावज्झजोगपरिवज्झणाओ सव्वुत्तमो जईधम्मो ॥

वीओ सावगधम्मो तईओ संविग्गपरकपहो॥१॥ *

जिनमें यति (साधु) धर्म तो, महाव्रत समिति गुप्तिका धारण करना, परीषह उपसर्गोंका सहन करना, कषाय विषयोंका जीतना, श्रुतज्ञानका धारण करना, बाह्य अभ्यंतर द्वादश प्रकार तपका करना, इत्यादि योगोंकरके मोक्षका देनेवाला, अर्थात् मोक्षका रस्ता है. परं है दुःप्राप्य, अर्थात् यतिधर्म प्राप्त करना मुश्किल है. ११. और गृहस्थधर्म, परिग्रह धारण करना, सुखासिका यथेष्ट विहारभोगोपभोगादिकोंकरके औदारिक सुख लेशका देनेवाला है; परं मोक्ष देनेमें समर्थ नहीं है. तो भी वह गृहस्थधर्म द्वादश (१२) व्रतोंका धारण करना, यतिजनोंकी उपासना सेवा करनी, अर्हन् भगवान्का अर्चन (पूजन) करना, दान देना, शील पालना, तप करना, भावना भावनी, इत्यादिकोंकरके उपचीयमान पुष्ट हुआ थका, परंपराकरके मोक्ष देनेको समर्थ है. १२. यत उक्तमागमे ॥

विसमो वि निअडगमणो मग्गो मुखस्स इह जईधम्मो ।

सुगमो वि दूरगमणो गिहच्छधम्मो वि मुखपहो ॥१॥

*सावद्य योगोंके त्यागमेंसे सर्वोत्तम यतिधर्म कहाता है दूसरा श्रावकधर्म और तीसरा संविग्र पक्षीमार्ग कहाता है परमार्थमें संविग्रपक्षीमार्गका यतिश्रावकधर्ममें ही अंतर्भाव होजाता है.

भावार्थः—इसका यह है कि, यतिधर्म जो है सो विषम हैं, तो भी मोक्षका निकट मार्ग है. और गृहस्थधर्म जो है सो सुगम है, तो भी मोक्षका दूर मार्ग अर्थात् चिर पाकर मोक्षको प्राप्त होता है. ॥ तथा जैसें खद्योत (टटाणा) और सूर्य, सर्पप और मेरुपर्वत, घड़ी और वर्ष, यूका और गज, इनमें बड़ा भारी अंतर है; तैसें गृहस्थधर्म, और यतिधर्ममें अंतर जानना. ।

यत उक्तमागमे ॥

जह मेरुसरिसवाणं खद्योयरवीण चंदताराणं ॥

तह अंतरं महंतं जइधम्मगिहच्छधम्माणं ॥१॥

आगममें भी कहा है । जैसें मेरु और सरिसव, खद्योत और सूर्य, चंद्र और तारे, इनमें अंतर है, तैसें यतिधर्म और गृहस्थधर्ममें महत् अंतर है. । इसीवास्ते यतिधर्म ग्रहणके पूर्व साधनभूत, अनेक सुरासुर यति लिंगियोंको प्रीणन (पुष्ट-तृप्त) करनेवाला, भगवान्का पूजन, साधुओंकी सेवा, इत्यादि सत्कर्म करके पवित्र, ऐसे गृहस्थधर्मको कहते हैं. तिस गृहस्थधर्ममें भी, प्रथम व्यवहारका कथन जानना, और पीछे धर्मका व्यवहार भी प्रमाणही है. क्योंकि, ऋषभादि अरिहंत भी गर्भाधान जन्मकाल आदि व्यवहारोंको आचरण करते हैं. ।

यत उक्तमागमे—जो कहा है आगममें ॥

तएणं समणस्सणं भगवओ महावीरस्स अम्मापिउणो पढमे दिवसे ठिइवडियं करंति तइय दिवसे चंदसूरदंसणं कुणांति छेठ्ठे दिवसे धम्मजागरियं जागरंति संपत्ते बारसाहदिवसे विरण इत्यादि ॥

व्यवहारकर्म भगवान् भी आचरण करनेकेवास्ते आगममें कहते हैं. ॥

यतः ॥

व्यवहारो विहु बलवं जं वंदइ केवली वि छनुमच्छं ॥

आहाकम्मं भुंजइ तो ववहारं पमाणं तु ॥१॥

भावार्थः—व्यवहार भी बलवान् है, जिसवास्ते जबतक छद्मस्थको मालुम न होवे, और ना न कहैं, तबतक केवली भी छद्मस्थ गुरुको वंदना करता है; और छद्मस्थका ल्याया आहार यद्यपि छद्मस्थ अपनी जाणमें शुद्ध जाणकर ल्याया है, परंतु केवली केवलज्ञानकरके आधाकर्मादि-दूषणसंयुक्त जानते हैं, तो भी व्यवहार प्रमाण रखनेकेवास्ते तिस आहारको भक्षण करते हैं; इसवास्ते व्यवहार प्रमाण है.

लौकिक मतमें भी कहाहै ॥

चतुर्णामपि वेदानां धारको यदि पारंगः ॥

तथापि लौकिकाचारं मनसापि न लङ्घयेत् ॥ १ ॥

यदि चारों वेदोंका धारक, और पारगामी होवे, तो भी लौकिका-चारको मनकरके भी लंघन न करे ॥ इसीवास्ते प्रथम गृहस्थधर्मके षोडश १६ संस्कार कहते हैं. ।

तद्यथा श्लोकाः ॥

गर्भाधानं पुंसवनं जन्मचन्द्रार्कदर्शनम् ॥

क्षीराशनं चैव षष्ठी तथा च शुचि कर्म च ॥ १ ॥

तथा च नामकरणमन्नप्राशनमेव च ॥

कर्णवेधो मुण्डनं च तथोपनयनं परम् ॥ २ ॥

पाठारम्भो विवाहश्च व्रतारोपोन्तकर्म च ॥

अमी षोडशसंस्कारा गृहिणां परिकीर्त्तिताः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—गर्भाधान १, पुंसवन २, जन्म ३, चंद्रसूर्यदर्शन ४, क्षीराशन ५, षष्ठी ६, शुचिकर्म ७, नामकरण ८, अन्नप्राशन ९, कर्णवेध १०, मुंडन ११, उपनयन १२, पाठारंभ १३, विवाह १४, व्रतारोप १५, अंतकर्म १६, येह सोलां संस्कार गृहस्थीके कथन करे. इन षोडश (१६) संस्कारोंमें-से व्रतारोपसंस्कारको वर्जके, शेष १५ पंदरां संस्कार, यतिसाधुने गृह-स्थीको नहीं करणे.

जिसवास्ते कहा है आगममें. ॥

विद्ययं जोइसं चेव कम्मं संसारिअं तहा ॥

विद्या मंतं कुणंतो य साहू होइ विराहओ ॥१॥

अर्थ:-वैदक, ज्योतिष्य, सांसारिक कर्म, विद्या, मंत्र, ये सर्व कृत्य, जो साधु गृहस्थको करे, सो साधु जिनाज्ञाका विराधक होता है. ॥

पूर्वपक्ष:-तब येह व्रतारोपवर्जित १५ संस्कार किसने करने ?

उत्तरपक्ष:-

अर्हन्मंत्रोपनीतश्च ब्राह्मणः परमार्हतः ॥

क्षुल्लको वाऽऽप्तगुर्वाज्ञो गृहिसंस्कारमाचरेत् ॥१॥

अर्थ:-अर्हन्मंत्रोपनीत परमार्हत (परमश्रावक) ब्राह्मण, और प्राप्त करी है गुरुकी आज्ञा जिसने ऐसा क्षुल्लक श्रावक विशेष, जिसका स्वरूप १८ उदयमें लिखा है; इन दोनोंमेंसे कोई एक गृहस्थोंको संस्कार करे. । तिनमें प्रथम गर्भाधान संस्कारका विधि लिखते हैं. ॥ जब गर्भाधान (गर्भ-धारण) को पांच मास होवे, तब गर्भाधानविधि, गृहस्थगुरुओं (श्रावक ब्राह्मणों) ने करना. । गर्भाधान १, पुंसवन २, जन्म ३, नाम ४ और अंत ५, इन पांच संस्कारोंमें अवश्य कर्मके हुए, मास दिनादिकोंकी शुद्धि न देखनी. । श्रवण, हस्त, पुनर्वसु, मूल, पुष्य, मृगशीर्ष, येह नक्षत्र और रवि, मंगल, बृहस्पति, येह वार पुंसवनादिकर्मोंमें कहे हैं. । इसवास्ते पांचमे मासमें शुभ तिथि, वार, नक्षत्रके दिनमें पतिको बलवान् चंद्रादि देखकर, देशविरतिगुरु जिसने स्नान करा है, चोटी बांधी है, उपवीत और उत्तरासंग धारण करा है, श्वेतवस्त्र पहिना है, पंचकक्षा धारण करा है, मस्तकमें चंदनका तिलक करा है, सुवर्णमुद्रासहित दक्षिणकर सावित्रीक प्रकोष्ठबद्ध पंचपरमेष्ठि मंत्रोद्दिष्ट पांच ग्रंथियुक्त दर्भसहित कौसुंभ सूत्रका कंकण है जिसके, तथा जिसने रात्रिमें ब्रह्मचर्य पाला है, सेवन किया है; जिसने उपवास (व्रत) आचाम्ल (आंवल) निर्विकृति एकाक्षनादि प्रत्याख्यान करा है, संप्राप्तकरी है आजन्मसें यतिगुरुकी

आज्ञा जिसने, अर्थात् गुरुकी आज्ञाका करनेवाला, ऐसे पूर्वोक्त विशेषणों-वाला जैनब्राह्मण, अथवा क्षुल्लक, गृहस्थोंके संस्कारकर्म करनेके योग्य होता है।

उक्तं च ॥

शांतो जितेंद्रियो मौनी दृढसम्यक्त्ववासनः ॥

अर्हत्साधुकृतानुज्ञः कुप्रतिग्रहवर्जितः इत्यादिश्लोकः ॥४॥

भावार्थः—शांत, जितेंद्रिय, मौनी, दृढसम्यक्त्ववान्, अर्हन् और साधुकी आज्ञा करनेवाला, बुरा दान न लेवे, क्रोध मान माया लोभका जीपक, कुलीन, सर्व शास्त्रोंका जानकार, अविरोधी, दयावान्, राजा और रंकको समदृष्टिसे देखनेवाला, प्राणोंके नाश होते भी अपने आचारको न त्यागे, सुंदर चेष्टावाला होवे, अंगहीन न होवे, सरल होवे, सदा सद्गुरुकी सेवा करनेवाला होवे, विनीत, बुद्धिमान्, क्षान्तिमान्, कृतज्ञ, दोषप्रकारसे द्रव्यभावसे शुचि होवे; गृहस्थोंके संस्कार करनेमें ऐसा गुरु चाहिये ॥

सो पूर्वोक्त विशेषणविशिष्ट गुरु, गर्भाधान कर्ममें प्रथम गर्भवन्तीके पतिकी आज्ञा लेवे। और सो गर्भवन्तीका पति, नखसे लेके शिखा (चोटी) पर्यंत स्नान करके, शुचि वस्त्र पहिनके निज वर्णानुसार उपवीत उत्तरीय वस्त्र उत्तरासंग करके, प्रथम शास्त्रोक्त बृहत्स्नात्रविधिसे अर्हत्प्रतिमाका स्नात्र करे। और तिस स्नात्रके पाणीको शुभ भाजनमें स्थापन करे। तिसपीछे शास्त्रोक्त विधिसे गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, गीत, वादित्रोंकरके जिन-प्रतिमाकी पूजा करे। पूजाके अंतमें गुरु, गर्भवन्तीको, अविधवायोंके हाथोंकरी स्नात्रोदककरके सिंचनरूप अभिषेक करवावे। पीछे सर्व जलाशयोंके जलोंको एकत्र मिलाके, सहस्रमूलचूर्ण तिसमें प्रक्षेप करके, तिस जलको शांतिदेवीके मंत्रकरके, अथवा शांतिदेवीके मंत्रगर्भित स्तोत्र-करके मंत्रें ॥

शांतिदेवीमंत्रो यथा ॥

“ॐ नमो निश्चितवचसे । भगवते । पूजामर्हते । जयवते ।
यशस्विने । यत्निस्वामिने । सकलमहासंपत्तिसमन्विताय ।

त्रैलोक्यपूजिताय । सर्वासुरामरस्वामिपूजिताय । अजिताय
 भुवनजनपालनोद्यताय । सर्वदुरितौघनाशनकराय । सर्वा
 शिवप्रशमनाय । दुष्टग्रहभूतपिशाचशाकिनीप्रमथनाय ।
 यस्येतिनाममंत्रस्मरणतुष्टा । भगवती । तत्पदभक्ता । वि-
 जयादेवी ॐ ह्रीं नमस्ते । भगवति । विजये । जय २ ।
 परे । परापरे । जये । अजिते । अपराजिते । जयावहे ।
 सर्वसंघस्य भद्रकल्याणमंगलप्रदे । साधूनां शिवतुष्टिपुष्टि-
 प्रदे । जय २ भव्यानां कृतसिद्धे । सत्त्वानां निर्वृतिनिर्वा-
 णजननि । अभयप्रदे । स्वस्तिप्रदे भक्तानां जंतूनां शुभ-
 प्रदानाय नित्योद्यते । सम्यग्दृष्टीनां धृतिरतिमतिबुद्धिप्रदे
 । जिनशासनरतानां शांतिप्रणतानां जनानां श्रीसंपत्की-
 र्त्तियशोवर्द्धिनि । सलिलात् रक्ष २ । अनिलात् रक्ष २ । वि-
 षात् रक्ष २ । विषधरेभ्यो रक्ष २ । दुष्टग्रहेभ्यो रक्ष २ ।
 राजभयेभ्यो रक्ष २ । रोगभयेभ्यो रक्ष २ । रणभयेभ्यो
 रक्ष २ । राक्षसेभ्यो रक्ष २ । रिपुगणेभ्यो रक्ष २ । मारिभ्यो
 रक्ष २ । चोरेभ्यो रक्ष २ । ईतिभ्यो रक्ष २ । श्वापदेभ्यो
 रक्ष २ । शिवं कुरु २ । शांतिं कुरु २ । तुष्टिं कुरु २ ।
 पुष्टिं कुरु २ । स्वतिं कुरु २ । भगवति । गुणवति । ज-
 नानां शिवशांतितुष्टिपुष्टिस्वस्तिं कुरु २ ॐ नमो हूँ हः यः
 क्षः ह्रीं फुट् २ स्वाहा ” ॥ इति ॥

अथवा ॥

“ ॐ नमो भगवतेऽर्हते । शांतिस्वामिने । सकलातिशेषक-
 महासंपत्समन्विताय । त्रैलोक्यपूजिताय । नमः शांति-
 देवाय । सर्वांमरसमूहस्वामिसंपूजिताय । भुवनपालनो-

द्यताय । सर्वदुरितविनाशनाय । सर्वाशिवप्रशमनाय सर्व-
दुष्टग्रहभूतपिशाचमारिडाकिनीप्रमथनाय । नमो भगवति ।
विजये । अजिते । अपराजिते । जयंति । जयावहे । सर्वसं-
घस्य । भद्रकल्याणमंगलप्रदे । साधूनां शिवशांतितुष्टिपु-
ष्टिस्वस्तिदे । भव्यानां सिद्धिवृद्धिनिर्वृतिनिर्वाणजननि ।
सत्त्वानां अभयप्रदाननिरत्ने । भक्तानां शुभावहे । सम्यग्दृ-
ष्टीनां धृतिरतिमतिबुद्धिप्रदा ज्योद्यते । जिनशासननिरतानां
श्रीसंपत्त्यशोवर्द्धिनि । रोगजलज्वलनविषविषधरदुष्टज्व-
रव्यंतरज्वरराक्षसरिपुमारिचौरेतिश्वापदोपसर्गादिभयेभ्यो
रक्ष २ । शिवं कुरु २ । शांतिं कुरु २ । तुष्टिं कुरु २ । पुष्टिं
कुरु २ । स्वस्ति कुरु २ । भगवति श्रीशांतितुष्टिपुष्टिस्वस्ति
कुरु २ । ॐ नमो नमो हूँ ह्रः यः क्षः ह्रीं फट् २ स्वाहा ॥ इति ॥

इस मंत्रकरके अथवा पूर्वोक्त मंत्रकरके, सहस्रमूलचूर्णकरी संयुक्त
सर्वजलाशयोंके जलको सातवार मंत्रके, पुत्रवाली सधवा स्त्रीयोंके
हार्येकरी मंगलगीतोंके गातेहुए गर्भवतीको स्नान करवावे. तदपीछे
गर्भवतीको सुगंधका अनुलेपन करी सदश वस्त्र पहिराके, संपत्तिअनुसार
आभरण धारण करवाके, पतिके साथ वस्त्रांचलका ग्रंथिबंधन करके,
पतिके वामेपासे शुभ आसनके ऊपर स्वस्तिक मंगलकरके, गर्भवतीको
बिठलावे.

ग्रंथियोजनमंत्रो यथा ॥

ॐ अहं । स्वस्ति संसारसंबंधबद्धयोः पतिभार्ययोः ॥

युवयोरवियोगोस्तु भववासांतमाशिषा ॥ १ ॥

विवाहको वर्जके, सर्वत्र इसीमंत्रकरके दंपतीका (स्त्रीभर्ताका) ग्रंथि-
बंधन करना. । तदपीछे गुरु, तिस गर्भवतीके आगे शुभ पट्टे ऊपर
पद्मासन लगाके बैठके, मणिस्वर्णरूप्यताम्रपत्रके पात्रोंमें जिनलाभके

जलसंयुक्त तीर्थोदकको स्थापन करके, आर्यवेदमंत्र पढ़करके, कुशाग्र बिंदुयोंकरके, गर्भवतीको अभिषेचन करे.

आर्यवेदमंत्रो यथा ॥

“ॐ अहं । जीवोसि । जीवतत्त्वमसि । प्राण्यसि । प्राणो-
सि । जन्मासि । जन्मवानसि । संसार्यासि । संसरन्नसि ।
कर्मवानसि । कर्मबद्धोसि । भवभ्रांतोसि । भवविश्रमिषुर-
सि । पूर्णाङ्गोसि । पूर्णपिण्डोसि । जातोपाङ्गोसि । जाय-
मानोपाङ्गोसि । स्थिरो भव । नन्दिमान् भव । वृद्धिमान्
भव । पुष्टिमान् भव । ध्यातजिनो भव । ध्यातसम्यक्त्वो
भव । तत्कुर्या येन न पुनर्जन्मजरामरणसंकुलं संसारवासं
गर्भवासं प्राप्नोषि । अहं ॐ ॥ ”

इस मंत्रकरके दक्षिणहाथमें धारण करे कुशाग्र तीर्थोदक बिंदुयोंकरके गर्भवतीके शिर और शरीरऊपर सातवार अभिषेक करे. । तदपीछे पंच परमेष्ठिमंत्र पठनपूर्वक दंपतीको आसनसें उठायकरके, जिनप्रतिमाके पास लेजाके ‘नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं’ इत्यादि शक्रस्तव पाठ करके जिनवंदन करवावे. । यथाशक्ति फलमुद्रा वस्त्र स्वर्णादि जिनप्रति-
माके आगे ढोवे. । तदपीछे गर्भवती स्वसंपत्तिके अनुसार वस्त्राभरण द्रव्य सुवर्णादिदान देवे. । तदपीछे गुरु, पतिसहित गर्भवतीको आशीर्वाद देवे.

यथा ॥

ज्ञानत्रयं गर्भगतोपि विंदन् संसारपारैकनिबद्धचित्तः ॥

गर्भस्यपुष्टिं युवयोश्च तुष्टिं युगादिदेवः प्रकरोतु नित्यम् ॥१॥

तदपीछे आसनसें उठावके ग्रंथिवियोजन करे.

ग्रंथिवियोजनमंत्रो यथा ॥

ॐ अहं । ग्रंथो वियोज्यमानेऽस्मिन् स्नेहग्रंथिः स्थिरोस्तु वां ॥

शिथिलोस्तु भवग्रंथिः कर्मग्रंथिद्वदीकृतः ॥ १ ॥

इस मंत्रकरके ग्रंथि खोलके धर्मागारमें दंपतीको लेजाके सुसाधु (गुरु) को वंदना करवावे, और साधुओंको निर्दोष भोजन वस्त्र पान्नादि दिलवावे. ॥ इति गर्भाधानसंस्कारविधिः ॥

तदपीछे स्वकुलाचारगुक्तिकरके कुलदेवता, गृहदेवता, पुरदेवतादि पूजन जानना. । यहां जो कहा है कि, जैनवेदमंत्र; सो कथन करते हैं. यथा आदित्येन (ऋषभदेव) का पुत्र, अवधिज्ञानवान्, आदिचक्री, भरत राजा, श्रीमदादिजिनरहस्योपदेशसे प्राप्त किया है सम्यक् श्रुतज्ञान जिसने—सो भरतराजा—सांसारिक व्यवहारसंस्कारकी स्थितिकेवास्ते, अहंनकी आज्ञा पाकरके, धारे हैं ज्ञानदर्शनचारित्ररत्नत्रय, करणा करावणा अनुमतिसैं त्रिगुणरूप तीनसूत्र—मुद्राकरके चिन्हितवक्षःस्थलवाले ब्राह्मणोंको माहनोंको पूज्यतरीके मानता हुआ, और तिस अवसरमें अपनी वैक्रियलब्धिसैं चार मुखवाला होके, चार वेदोंको उच्चारण करता भया. तिनके नाम—संस्कारदर्शन १, संस्थापनपरामर्शन २, तत्त्वावबोध ३, विद्याप्रबोध ४, । सर्व नयवस्तु कथन करनेवाले इन चारों वेदोंको, माहनोंको पठन करता हुआ. । तदपीछे वह माहन, सात तीर्थकरोके तीर्थतक अर्थात् चंद्रप्रभतीर्थकरके तीर्थतक सम्यक्त्वधारी रहें, और आई-तश्रावकोंको व्यवहार दिखाते रहें, तथा धर्मोपदेशादि करते रहें. । तदपीछे नवमे तीर्थकर श्रीसुविधिनाथपुष्पदंतके तीर्थके व्यवच्छेद हुए, तिस बीचमें तिन माहनोंने परिग्रहके लोभी होके, स्वच्छंदसैं तिन आर्यवेदोंकी जगे कुछक सुनी सुनाइ बातों लेके नवीन श्रुतियां रचीं, तिनमें हिंसक यज्ञादि और अनेक देवताओंकी स्तुति प्रार्थना रचीं (क्रमसैं ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, नाम कल्पना करके, मिथ्यादृष्टिपणेको प्राप्त करें) तब व्यवहारपाठसैं पराङ्मुख अर्थात् परमार्थरहित मनःकल्पित हिंसक यज्ञप्रतिपादक शस्त्रोंसैं पराङ्मुख, ऐसे श्रीशीतलनाथादिके साधुओंने तिन हिंसक वेदोंको छोडके, जिनप्रणीत आगमकोही प्रमाणभूत माने. । तिन ब्राह्मणोंमेंसे भी, जिन माहनोंने (ब्राह्मणोंने) सम्यक् न त्यागन कर, अर्थात् जे माहन पुनः तीर्थकरोके उपदेशसैं

सम्यक्त्व पाके दृढ रहे, तिनोंके संप्रदायमें आज भी भरतप्रणीत वेदका लेश कर्मांतरव्यवहारगत सुनते हैं; सोही यहां कहते हैं ॥

यत उक्तमागमे ॥

सिरिभरहचक्रवट्टी आरियवेयाण विस्सुऊ कत्ता ॥

माहणपढणच्छमिणं कहिअं सुहझाणववहारं ॥१॥

जिणतिच्छे वुच्छिन्ने मिच्छते माहणेहिं ते ठविया ॥

असंजयाण पूया अप्पाणं कारिया तेहिं ॥२॥

व्याख्या:-श्रीभरतचक्रवर्ती आर्यवेदोंका कर्त्ता प्रसिद्ध है. भरतने आर्यवेद किसवास्ते करे? माहनोंके पढनेवास्ते, शुभ ध्यानकेवास्ते, और जगत्व्यवहारके वास्ते. । जिन तीर्थंकरके तीर्थके व्यवच्छेद हुए वह आर्य-वेद तिन माहनोंने मिथ्यामार्गमें स्थापन करे, और असंयति होके तिनोंने अपनी पूजा जगत्में करवाई ॥ इन वेदोंका विशेष निर्णय जैनतत्त्वाद-र्शग्रंथसें जानना ॥

इस गर्भाधानसंस्कारमें इतनी वस्तु चाहिये ॥ पंचामृत स्नात्र १, सर्वती-र्थोदक २, सहस्रमूलचूर्ण ३, दर्भ ४, कौसुमसुत्र ५, द्रव्य ६, फल ७, नैवेद्य ८, सदशवस्त्र दो ९, शुभआसन १०, शुभपट्ट ११, स्वर्णताम्रादिभाजन १२, वादित्र १३, पतिवाली स्त्रीयां १४ और गर्भवतीका पति १५. ॥ इत्याचार्य श्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धगर्भाधानसंस्कारकीर्त्त-ननामप्रथमोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्त-त्समाप्तौ च समाप्तोयं त्रयोदशस्तम्भः ॥ १ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे

प्रथमसंस्कारवर्णनो नाम त्रयोदशस्तम्भः ॥१३॥

॥ अथचतुर्दशस्तम्भारम्भः ॥

त्रयोदश स्तंभमें प्रथम संस्कारका वर्णन करा, अथ चतुर्दश स्तंभमें पुंसवन नामा द्वितीय संस्कारका वर्णन करते हैं. ॥

गर्भसैं आठ मास व्यतीत हुए, सर्व दोहदोंके पूर्ण हुए, सांगोपांग गर्भके उत्पन्न हुए, तिसके शरीरमें पूर्णीभाव प्रमोदरूप स्तनोंमें दूधकी उत्पात्तिका सूचक, पुंसवन कर्म करे। मूल, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, मृगशिर, श्रवण, येह नक्षत्र; और मंगल, गुरु, आदित्य, येह वार, पुंसवन कर्ममें संमत है। रिक्ता, दग्धा, क्रूरा, तीन दिनको स्पर्शनेवाली, अवम् (टूटी हुई,) षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, अमावास्या, ये तिथियां वर्जके; गंडांतकरके उपहत, और अशुभ नक्षत्रवर्जित, पूर्वोक्त वारनक्षत्रसहित दिनमें पतिको चंद्रमाके बल हुए, पुंसवनका आरंभ करे; सो ऐसे हैं। पूर्वोक्त भेष, और स्वरूपवाला गुरु पतिके समीप हुए, अथवा न हुए, गर्भाधान कर्मके अनंतर, जो वस्त्रवेष, और केशवेष धारण करे हैं, तिसही वस्त्रवेष और केशवेषवाली गर्भवंतीको, रात्रिके चौथे प्रहरमें तारेसहित आकाश होवे तब मंगलगीतगानपूर्वक आभरणसहित अविधवा स्त्रीयोंकरके, अभ्यंग उद्धर्त्तन जलाभिषेकोंकरके स्नान करवावे। तदपीछे प्रभात हुए नवीन वस्त्र गंधमाल्यभूषित गर्भवंतीको साक्षिणी करके, घरदेहरामें अर्हत्प्रतिमाको तिसका पति, वा तिसका देवर, वा तिसके कुलका पुरुष, वा गुरु, आप पंचामृतकरके बृहत्स्नात्रविधिसे स्नान करवावे। तदपीछे सहस्रमूलीस्नात्र प्रतिमाको करे, पीछे तीर्थोदकस्नात्र करे। पीछे सर्वस्नात्रोदकोंको सुवर्णरूप्यताम्रादि भाजनमें स्थापन करके, शुभासन ऊपर बैठी हुई साक्षीभूत करे हैं पति-देवरादि कुलज जिसने, ऐसी गर्भवंतीको, दक्षिणहस्तमें कुशा धारण करके, कुशाग्रबिंदुयोंकरके स्नात्रोदकसे गर्भवंतीके शिरस्तनउदरको सिंचन करता हुआ, इस वेदमंत्रको पढ़े ॥

“॥ॐ अहं । नमस्तीर्थकरनामकर्मप्रतिबंधसंप्राप्तसुरासुरेन्द्र-पूजायार्हते । आत्मन् त्वमात्मायुःकर्मबंधप्राप्यं मनुष्यजन्म-गर्भावासमवाप्नोषि । तद्भव जन्मजरामरणगर्भावासविच्छिन्न-ये प्राप्तार्हद्धर्मः अर्हद्भक्तः सम्यक्त्वनिश्चलः कुलभूषणः । सुखेन तव जन्मास्तु । भवतु तव त्वन्मातापित्रोः कुलस्याभ्यु-

दयः। ततः शांतिः पुष्टिः तुष्टिर्वृद्धिर्ऋद्धिः कांतिः सनातनी
अर्हं ॐ ॥”

इस वेदमंत्रको आठवार पढ़ता हुआ, गर्भवतीको अभिषेचन करे। तदपीछे गर्भवती आसनसे ऊठके सर्वजातिके आठ २ फल, स्वर्णरूप्य-मयी मुद्रा आठ, प्रणाम (नमस्कार) पूर्वक जिनप्रतिमाके आगे ढोवे। तदपीछे गुरुके चरणोंको नमस्कार करके, दो वस्त्र, सोनेरूपेकी आठ मुद्रा, और तंबोलसहित आठ ऋमुक गुरुको देवे। तदपीछे धर्मागार (पोषधशाला) में जाकर साधुओंको वंदना नमस्कार करे, और साधुओंको यथाशक्तिसे शुद्ध अन्न वस्त्र पात्र देवे। कुलदृष्टोंको नमस्कार करे। ॥ इति पुंसवनसंस्कारविधिः ॥ तदपीछे स्वकुलाचारकरके कुलदेवतादिपूजन जानना। ॥

पंचामृत १, स्नात्रवस्तु २, स्त्रीके नवीन वस्त्र ३, नवीन वस्त्रयुगल ४, स्वर्णकी आठ मुद्रा ५, रूपेकी आठ मुद्रा ६, सोनेकी ८ और रूपेकी ८ एवं षोडश (१६) मुद्रा और ७, फलकी जाति ८, कुशा ९, तांबूल १०, सुगंध पदार्थ ११, पुष्प १२, नैवेद्य १३, सधवा स्त्रीयां १४, गीतमंगल १५, इतनी वस्तु पुंसवनसंस्कारमें चाहिये। ॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिन-करस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धपुंसवनसंस्कारकीर्त्तननामद्वितीयोदयस्याचार्यश्रीम-द्विजयानन्दसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं चतु-र्दशस्तम्भः ॥ २ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे
द्वितीयपुंसवनसंस्कारवर्णनो नाम चतुर्दशस्तम्भः ॥ १४ ॥

॥ अथपञ्चदशस्तम्भारम्भः ॥

अथ पंचदश स्तंभमें जन्मसंस्कारनामा तृतीय संस्कारका वर्णन करते हैं ॥

जन्मसमय हुए, गुरु, ज्योतिषिकसहित, सूतिकागृहके निकट गृहमें एकांतस्थानमें जहां रौला न सुनाइ देवे, स्त्री, बाल, पशु, जहां न आवे,

तहां घटिकापात्र (घड़ा-कलाक) सहित उपयोगसहित चित्तवाला होकर, परमेष्ठिजापमें तत्पर हुआ थका रहे. । यहां पहिलां तिथि वार नक्षत्रादि देखना न चाहिये क्योंकि, यह जीव कर्म और कालके अधीन है.॥

यतः ॥

जन्म मृत्युर्द्धनं दौस्थ्यं स्वस्वकाले प्रवर्तते ॥

तदस्मिन् क्रियते हंत चेतश्चिंता कथं त्वया ॥ १ ॥

उक्तं चागमे श्रीवर्द्धमानस्वामिवाक्यम् ॥ गाथा ॥

समयं जन्मणकालं कालं मरणस्स कमइ सुरनाह ॥

संपत्तजोगहत्ती न अइसया विअराएहिं ॥ २ ॥

इसवास्ते बालकके जन्म हुए समीप रहा हुआ गुरु, ज्योतिषिको जन्मक्षण जाननेके वास्ते आज्ञा करे. तिसने भी सम्यग् जन्मकाल, करगोचर करके धारण करना तदपीछे बालकके पिता, पितृव्य (चाचा-काका) पितामहोनें, नाल बिना छेद्यां गुरुका, और ज्योतिषिका बहुत वस्त्र आभूषणवित्तादिसें पूजन करना. क्योंकि, नाल छेद्यांपीछे सूतक हो जाता है. । गुरु बालकके पिता, पितामह (दादा), आदिककों आशीर्वाद देवे.।

यथा ॥

“ ॐ अहं कुलं वो वर्द्धतां । संतु शतशः पुत्रप्रपौत्राः ।

अक्षीणमस्त्वायुर्द्धनं यशः च अहं ॐ ॥” इति वेदाशीः ॥

तथा । वृत्तम् ॥

यो मेरुशृंगे त्रिदशाधिनाथैर्देत्याधिनाथैस्सपरिच्छदैश्च ॥

कुंभामृतैः संस्त्रपितस्सदेव आद्यो विदध्यात् कुलवर्द्धनंच ॥१॥

ज्योतिषिकाशीर्वादो यथा शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥

आदित्यो रजनीपतिः क्षितिमुतः सौम्यस्तथा वाक्पतिः

श्रुकः सूर्यसतो विधुंतुदशिखिश्रेष्ठा ग्रहाः पांतु वः ॥

अश्विन्यादिभमण्डलं तदपरो मेषादिराशिक्रमः

कल्याणं पृथुकस्य वृद्धिमधिकां संतानमप्यस्य च ॥ १ ॥

तदपीछे लग्न धारण करके, ज्योतिषिके स्वघर गये हुए, गुरु सूतिक-
र्मकेवास्ते कुलवृद्धा स्त्रीयोंको, और दाईयोंको निर्देश करे । अन्य घरमें
रहाही बालकको स्नान करानेवास्ते जलको मंत्रके देवे ॥

जलाभिमंत्रणमंत्रो यथा ॥

“ ॥ ॐ अर्हं । नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः ॥ ”

वृत्तम् ॥

क्षीरोदनीरैः किल जन्मकाले यैर्मरुशृङ्गे स्रपितो जिनेन्द्रः ॥

स्नानोदकं तस्य भवत्विदं च शिशोर्महामङ्गलपुण्यवृद्धैः ॥ १ ॥

इस मंत्रकरके सात बार जलको मंत्र, तिस जलकरके कुलवृद्धा स्त्रीयों
बालकको स्नान करावे । और अपने २ कुलाचारके अनुसार नालच्छेद
करे । तदपीछे गुरु स्वस्थानमें बैठाही चंदन, रक्तचंदन, बिल्वकाष्ठादि दग्ध
करके भस्म करे; तिस भस्मको श्वेतसर्षप और लवणमिश्रित करके पोष्ट-
लिकामें बांधे ।

रक्षाभिमंत्रणमंत्रो यथा ॥

“ ॐ ह्रीं ” श्रीअंबे जगदंबे शुभे शुभंकरे अमुं बालं भूते-
भ्यो रक्ष २ । ग्रहेभ्यो रक्ष २ । पिशाचेभ्यो रक्ष २ ।
वेतालेभ्यो रक्ष २ । शाकिनीभ्यो रक्ष २ । गगनदेवीभ्यो रक्ष २ ।
द्वष्टेभ्यो रक्ष २ । शत्रुभ्यो रक्ष २ । कर्मणेभ्यो रक्ष २ ।
दृष्टिदोषेभ्यो रक्ष २ । जयं कुरु । विजयं कुरु । तुष्टिं कुरु ।
पुष्टिं कुरु । कुलवृद्धिं कुरु । श्रीं ह्रीं ॐ भगवति श्री-
अंबिके नमः ॥

इस मंत्रकरके सातवार मंत्रित रक्षापोटलीको काले सूत्रसे बांधके, लोहेका टुकड़ा, वरुणमूलका टुकड़ा, रक्तचंदनका टुकड़ा और कौड़ी, इनोसहित रक्षापोटलिको कुलवृद्धा स्त्रीयोंके पास बालकके हाथ उपर बंधवावे. ॥

सांवत्सर (पंचांग) घटीपात्र, चंदन, रक्तचंदन, समीपमें एकांत ग्रह, सरसव, लवण, कौशेय कृष्णसूत्र, कौड़ी, गीतमंगल, लोहा, रक्षा, वस्त्र, दक्षिणावास्ते धन, सूतिका, कुलवृद्धा, सर्व जलाशयका जल, जन्मसंस्कारमें इतनी वस्तु चाहिये. ॥ इतिजन्म सं० विधिः ॥ अथ कदाचित् अश्लेषामें, ज्येष्ठामें, मूलमें, गंडांतमें, भद्रामें, बालकका जन्म होवे तो बालकको, बालकके मातापिताको, बालकके कुलको, दुःख, दारिद्र, शोक, मरणादि कष्ट होवे; इसवास्ते बालकका पिता और कुलज्येष्ठ (कुलका बड़ा) शांतिकविधिमें कहे विधानके करेविना बालकका मुख न देखे. ॥ * इत्याचार्य श्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य ग्रहिधर्मप्रतिबद्धजातकर्मसंस्कारकीर्तननामतृतीयोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोऽयं पंचदशस्तंभः ॥ ३ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थेतृतीयजातकर्मसंस्कारवर्णनो नाम पञ्चदशस्तम्भः ॥ १५ ॥

॥ अथषोडशस्तम्भारम्भः ॥

अथ षोडशस्तंभमें चौथा सूर्यचंद्रदर्शन संस्कारका वर्णन करते हैं. ॥

जन्मदिनसे दो दिन व्यतीत हुए, तीसरे दिन गुरु समीपके घरमें अर्हतपूजनपूर्वक जिनप्रतिमाके आगे स्वर्णताम्रमयी वा रक्तचंदनमयी सूर्यकी प्रतिमा स्थापन करे. तिसका अर्चन, शांतिक पौष्टिक विधिकारके करे. + तदपीछे स्नानकरके सुवस्त्राभरणकरके अलंकृत बालककी माताको

* शांतिकविधिका वर्णन आचारदिनकरके ३४ मे उदयमें है वहांसे जानना.

+ शांतिकपौष्टिकका विधि आचारदिनकरके ३४ मे और ३९ मे उदयमें है.

जिसने दोनों हाथोंमें बालकको धारण किया है ऐसीको प्रत्यक्ष सूर्यके सन्मुख लेजाके, वेदमंत्रको उच्चारण करता हुआ, माता पुत्रको सूर्यका दर्शन करवावे. ॥

सूर्यवेदमंत्रो यथा ॥

“ ॥ ॐ अर्हं । सूर्योऽसि । दिनकरोऽसि । सहस्रकिरणोऽसि । विभावसुरसि । तमोपहोऽसि । प्रियंकरोऽसि । शिवंकरोऽसि । जगच्चक्षुरसि । सुरवेष्टितोऽसि । मुनिवेष्टितोऽसि । विततविमानोऽसि । तेजोमयोऽसि । अरुणसारथिरसि । मार्त्तण्डोऽसि । द्वादशात्माऽसि । वक्रबांधवोऽसि । नमस्ते भगवन् प्रसीदास्य कुलस्य तुष्टिं पुष्टिं प्रमोदं कुरु २ सन्निहितो भव अर्हं ॥ ”

ऐसें गुरुके पठन करे हुए, सूर्यको देखके, माता पुत्रसहित, गुरुको नमस्कार करे. गुरु पुत्रसहित माताको आशीर्वाद देवे ।

यथा । आर्या ॥

सर्वसुरासुरवन्द्यः कारयिता सर्वधर्मकार्याणाम् ॥

भूयात्रिजगच्चक्षुर्मगलदस्ते सपुत्रायाः ॥ १ ॥

सूतकमें दक्षिणा नहीं है. । तदपीछे गुरु स्वस्थानमें आयकर जिन प्रतिमाको और स्थापित सूर्यको विसर्जन करे. माता और पुत्रको सूतकके भयसें तहां जिनप्रतिमाके पास न लावे. । तिस दिनमेंही संध्याकालमें गुरु जिनपूजापूर्वक जिनप्रतिमाके आगे स्फटिकरूप्यचंदनमयी चंद्रमाकी मूर्ति स्थापन करे, तिस चंद्रमाकी मूर्तिका शान्तिकादिक प्रक्रमोक्त विधिकरके पूजन करे. तदपीछे तैसेंही सूर्यदर्शनरीतिसें चंद्रमाके उदय हुए प्रत्यक्ष चंद्रसन्मुख माता और पुत्रको ले जाके, वेदमंत्र उच्चार करता हुआ, मातापुत्र दोनोंको चंद्रका दर्शन करावे. ॥

चंद्रस्य वेदमंत्रो यथा ॥

“ ॥ ॐ अहं । चंद्रोऽसि । निशाकरोऽसि । सुधाकरोऽसि ।
चंद्रमा असि । ग्रहपतिरसि । नक्षत्रपतिरसि । कौमुदीप-
तिरसि । निशापतिरसि । मदनमित्रमसि । जगज्जीवनमसि ।
जैवात्कोऽसि । क्षीरसागरोद्भवोऽसि । श्वेतवाहनोऽसि । राजाऽ-
सि । राजराजोऽसि । औषधीगर्भोऽसि । वंद्योऽसि । पूज्योऽसि ।
नमस्ते भगवन् अस्य कुलस्य ऋद्धिं कुरु । वृद्धिं कुरु ।
तुष्टिं कुरु । पुष्टिं कुरु । जयं विजयं कुरु । भद्रं कुरु । प्र-
मोदं कुरु । श्रीशशांकाय नमः । अहं ॥ ”

ऐसें पढ़ता हुआ, माता पुत्रको चंद्र दिखलाके खड़ा रहे । माता पुत्र
सहित गुरुको नमस्कार करे । गुरु आशीर्वाद देवे ॥

यथा । वृत्तम् ॥

सर्वौषधीमिश्रमरीचिजालः सर्वापदां संहरणप्रवीणः ॥

करोतु वृद्धिं सकलेपि वंशे युष्माकमिन्दुः सततं प्रसन्नः ॥ १ ॥

तदपीछे गुरु जिनप्रतिमा, और चंद्रप्रतिमा दोनोंको विसर्जन करे ।
इसमें इतना विशेष है । कदाचित् तिस रात्रिके विषे चतुर्दशी अमावा-
स्याके वशसें वा बादलसहित आकाशके होनेसें चंद्रमा न दिखलाई देवे
तो भी पूजन तो तिस रात्रिकीही संध्यामें करना; और दर्शन तो और
रात्रिमें भी चंद्रमाके उदय हुए हो सकता है ॥ सूर्य और चंद्रमाकी
मूर्ति, तिसकी पूजाकी वस्तु, सूर्यचंद्रदर्शनसंस्कारमें चाहिये ॥ इत्याचार्य-
श्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य ग्रहिधर्मप्रतिबद्धसूर्येन्दुदर्शनसंस्कारकी-
र्त्तननामचतुर्थोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्तमाप्त-
स्तस्माप्तौ च समाप्तोयं षोडशस्तम्भः ॥ ४ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे चतुर्थ
सूर्येन्दुदर्शनसंस्कारवर्णनो नाम षोडशस्तम्भः ॥ १६ ॥

॥ अथसप्तदशस्तम्भारम्भः ॥

अथ सप्तदशस्तम्भमें क्षीराशननामा पांचमा संस्कारका स्वरूप लिखते हैं.

तिसही जन्मसें तीसरे, चंद्रसूर्यके दर्शनके दिनमेंही, बालकको क्षीराशनसंस्कार करना । तद्यथा । पूर्वोक्त वेषधारी गुरु, अमृतमंत्रकरके एकसौ आठ वार मंत्रित तीर्थोदकसें बालकको, और बालककी माताके स्तनोंको अभिषेक करके, माताकी गोदी (अंक) में स्थित बालकको दूध पावे. पूर्णांगनाशिकासंबंधि स्तन्य पहिलां चुंवावे, स्तन्य (दूध) पीते हुए बालकको गुरु आशीर्वाद देवे ॥

यथा वेदमंत्रः ॥

“॥ ॐ अर्हं । जीवोऽसि । आत्माऽसि । पुरुषोऽसि । शब्दज्ञोऽसि । रूपज्ञोऽसि । रसज्ञोऽसि । गंधज्ञोऽसि । स्पर्शज्ञोऽसि । सदाहारोऽसि । कृताहारोऽसि । अभ्यस्ताहारोऽसि । कावलिकाहारोऽसि । लोमाहारोऽसि । औदारिकशरीरोऽसि । अनेनाहारेण तवांगं वर्द्धतां । बलं वर्द्धतां । तेजोवर्द्धतां । पाटवं वर्द्धतां । सौष्ठवं । वर्द्धतां पूर्णायुर्भव । अर्हं ॐ ॥ ”

इस मंत्रकरके तीन वार आशीर्वाद देवे ॥

अमृतमंत्रो यथा ॥

“ ॐ ॥ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं श्रावय २ स्वाहा ॥ ”

इत्याचार्यवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धक्षीराशनसंस्कारकीर्त्तननामपंचमोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं सप्तदशस्तम्भः ॥ ५ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे

पञ्चमक्षीराशनसंस्कारवर्णनोनाम सप्तदशस्तम्भः ॥ १७ ॥

॥ अथाष्टादशस्तम्भारम्भः ॥

अथाष्टादशस्तम्भमें षष्ठीसंस्कारनामा छठे संस्कारका स्वरूप लिखते हैं ॥

छठे दिनमें संध्याके समयमें गुरु प्रसूतिघरमें आकरके षष्ठीपूजन विधिका आरंभ करे, षष्ठीपूजनमें सूतक नहीं गिणना.

यत उक्तम् ।

स्वकुले तीर्थमध्ये च तथावश्ये बलादपि ॥

षष्ठीपूजनकाले च गणयेन्नैव सूतकम् ॥ १ ॥

इसवचनसें ॥ सूतिकागृहकी भीत और भूमि दोनोंको सधवायोंके हाथसें गोवरकरके लेपन करवावे, तदपीछे दृश्य शुक्रबृहस्पतिके वर्तनेवाली दिशाके भीतभागको खड़ी आदिकरके धवल (श्वेत) करवावे, और भूमिभागको चौकमंडित करवावे, तदपीछे श्वेत भीतभागके ऊपर सधवाके हाथेंकरी कुंकुमहिंगुलादिवर्णोंकरके आठ माताओंको उद्धा (खड़ीयां) लिखावे, आठ बैठी हुई, और आठ सुती हुई भी लिखवावे. कुलक्रमांतरमें गुरुकर्मांतरमें षट् (६) षट् (६) लिखनीयां. तदपीछे सधवा स्त्रीयोंके गीतमंगल गाते हुए चौकमें शुभासनके ऊपर बैठ! हुआ गुरु, अनंतरोक्त पूजाक्रम करके मातायोंको पूजे.

यथा ॥

“॥ ॐ ह्रीं नमो भगवति । ब्रह्माणि । वीणापुस्तकपद्माक्षसूत्रकरे । हंसवाहने । श्वेतवर्णे । इह षष्ठीपूजने आगच्छ २ स्वाहा ॥” तीनवार पढ़के पुष्पकरके आव्हान करे ॥

तदपीछे ॥

“॥ ॐ ह्रीं नमो भगवति । ब्रह्माणि । वीणापुस्तकपद्माक्षसूत्रकरे । हंसवाहने । श्वेतवर्णे । मम सन्निहिता भव २ स्वाहा ॥”

तीनवार पढ़के सन्निहित करे ॥

तदपीछे ॥

“॥ ॐ ह्रीं नमो भगवति । ब्रह्माणि । वीणापुस्तकपद्माक्षसूत्रकरे । हंसवाहने । श्वेतवर्णे । इह तिष्ठ २ स्वाहा ॥”
इति । तीनवार पढके स्थापन करे ॥

तदपीछे

“॥ ॐ ह्रीं नमो भगवति । ब्रह्माणि । वीणापुस्तकपद्माक्षसूत्रकरे । हंसवाहने । श्वेतवर्णे । गंधं गृह्ण २ स्वाहा ॥”
चंदनादि गंध चढावे ॥

“ॐ ह्रीं नमो भगवति । ब्रह्माणि । वीणापुस्तकपद्माक्षसूत्रकरे । हंसवाहने । श्वेतवर्णे । पुष्पं गृह्ण २ स्वाहा ॥”
इसीतरें मंत्रपूर्वक ।

“धूपं गृह्ण २ । दीपं गृह्ण २ । अक्षतान् गृह्ण २ । नैवेद्यं गृह्ण २ स्वाहा ॥”

ऐसें एकएकवार मंत्रपाठपूर्वक इन पूर्वोक्त गंधादिवस्तुयोंकरके भगवतीको पूजे ॥ ऐसेंही अन्य सात मातायोंकी पूजा करणी ।

विशेष मंत्रोंमें है, सो लिखते हैं ॥

“॥ ॐ ह्रीं नमो भगवति । माहेश्वरि । शूलपिनाककपालखट्वांगकरे । चंद्रार्द्धललाटे । गजचर्मारिते । शेषाहिबद्धकांचीकलापे । त्रिनयने । वृषभवाहने । श्वेतवर्णे । इह षष्ठीपूजने आगच्छ २ ॥” शेषपूर्ववत् ॥ २ ॥

“॥ ॐ ह्रीं नमो भगवति । कौमारि । षण्मुखि । शूलशक्तिधरे । वरदाभयकरे । मयूरवाहने । गौरवर्णे । इह षष्ठीपूजने आगच्छ २ ॥” शेष पूर्ववत् ॥ ३ ॥

“॥ ॐ ह्रीं नमो भगवति । वैष्णवि । शंखचक्रगदासारंगख-

डुकरे । गरुडवाहने । कृष्णवर्णे । इह षष्ठीपूजने आगच्छ २॥”
शेषं पूर्ववत् ॥ ४ ॥

“॥ ॐ ह्रीं नमो भगवति । वाराहि । वराहमुहि । चक्रखड्गह-
स्ते । शेषवाहने । श्यामवर्णे । इह षष्ठीपूजने आगच्छ २ ॥”
शेषं पूर्ववत् ॥ ५ ॥

“॥ ॐ ह्रीं नमो भगवति । इंद्राणि । सहस्रनयने । वज्रहस्ते ।
सर्वाभरणभूषिते । गजवाहने । सुरांगनाकोटिवेष्टिते । कांच-
नवर्णे । इह षष्ठीपूजने आगच्छ २ ॥” शेषं पूर्ववत् ॥ ६ ॥

“॥ ॐ ह्रीं नमो भगवति । चामुंडे । शिराजालकरालशरीरे ।
प्रकटितदशने । ज्वालाकुंतले । रक्तत्रिनेत्रे । शूलकपालखड्गप्रे-
तकेशकरे । प्रेतवाहने । धूसरवर्णे । इह षष्ठीपूजने आगच्छ २॥”
शेषं पूर्ववत् ॥ ७ ॥

“॥ ॐ ह्रीं नमो भगवति । त्रिपुरे । पद्मपुस्तकवरदाभयकरे ।
सिंहवाहने । श्वेतवर्णे । इह षष्ठीपूजने आगच्छ २ ॥”
शेषं पूर्ववत् ॥ ८ ॥

एवं जैसें उर्ध्व (खड़ी) मातृयांका पूजन करे, तैसेंही बैठी और सुप्त
मातृयांका भी पूर्वोक्त मंत्रोंसेही तीनवार पूजन करे; । कितनेक चामुंडा,
त्रिपुरा, दोनोंको वर्जके षट्मातृकाही पूजन करते हैं ॥

मातृका पूजन करके ऐसें पढ़े ॥

ब्रह्माद्यामातरोप्यष्टौ स्वस्वास्त्रबलवाहनाः ॥

षष्ठीसंपूजनात्पूर्वं कल्याणं ददता शिशोः ॥ ९ ॥

तदपीछे मातृस्थापनाकी अग्रभूमिमें चंदनलेपस्थापना करके, अंबा-
रूप षष्ठीको स्थापन करे । और तिस स्थापनाको दाधि, चंदन, अक्षत,
दूर्वादिकरके पूजे ।

तदपीछे गुरु हस्तमें पुष्प लेके ॥

“ ॥ ॐ ऐं ह्रीं षष्ठि । आम्बवनासीने । कदंबवनविहारे ।

पुत्रद्वययुते । नरवाहने । श्यामाङ्गि । इह आगच्छ २ स्वाहा ॥ ”

मातृवत् इसकी भी पूजा करणी. । तदपीछे बालकमातासहित अवि-
धवा कुलवृद्धा स्त्रीयां मंगलगीतगानमें तत्पर वाजंत्रोंके वाजते हुए
षष्ठीरात्रिको जागरणा करे. ।

तदपीछे प्रातःकालमें ॥

“ ॥ ॐ भगवति माहेश्वरि पुनरागमनाय स्वाहा ॥ ”

ऐसें प्रत्येक नामपूर्वक गुरु, मातृको और षष्ठीको विसर्जन करे ।
तदपीछे गुरु, बालकको पंचपरमेष्ठिमंत्रपवित्रित जलकरके अभिषेक करता
हुआ, वेदमंत्रकरके आशीर्वाद देवे. ॥

यथा ॥

॥ ॐ अहं जीवोऽसि । अनादिरसि । अनादिकर्मभागसि ।

यत्त्वया पूर्वं प्रकृतिस्थितिरसप्रदेशैराश्रवतृत्या कर्मबद्धं
तद्वन्धोदयोदीरणासत्ताभिः प्रतिभुङ्क्ष्व । मा शुभकर्मोदयफ-
लभुक्तेरुच्छेकं दध्याः । नचाशुभकर्मफलभुक्त्या विषादमा-
चरेः । तवास्तु संवरवृत्त्या कर्मनिर्जरा अहं ॐ ॥ ”

सूतकमें दक्षिणा नहीं है. ॥ चंदन, दधि, दूर्वा, अक्षत, कुंकुम, लेखिनी,
हिंगुलादिवर्ण, पूजाके उपकरण, नैवेद्य, सधवा स्त्रीयां, दर्भ, भूमिलेपन,
इतनी वस्तुयां षष्ठीजागरणसंस्कारमें चाहिये. ॥ इत्याचार्यवर्द्धमानसूरि-
कृताचारदिनकरस्य ग्रहिधर्मप्रतिबद्धषष्ठीजागरणसंस्कारकीर्त्तननामषष्ठोद-
यस्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समा-
प्तोयमष्टादशस्तम्भः ॥ ६ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे षष्ठी-
जागरणनामषष्ठसंस्कारवर्णनो नामाष्टादशस्तम्भः ॥ १८ ।

॥ अथैकोनविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथैकोनविंशस्तम्भमें शुचिकर्मसंस्कारका वर्णन करते हैं. ॥ यहां शुचिकर्म स्वस्ववर्णानुसार करके दिनोंके व्यतीत हुए करणा.

तद्यथा ॥

शुद्धयेद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन बाहुजः ॥

वैश्यस्तु षोडशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ १ ॥

कारूणां सूतकं नास्ति तेषां शुद्धिर्न चापिहि ॥

ततो गुरुकुलाचारस्तेषु प्रामाण्यमिच्छति ॥ २ ॥

तिस कारणसें स्वस्ववर्णकुलानुसार करके दिनोंके व्यतीत हुए, गुरु सर्वही, सोलां पुरुषयुगसें उरे, तिस कुलवर्गकों बुलवावे. क्योंकि, सूतक सोलां पुरुषयुगसें उरे ग्रहण करिये हैं. ॥

यदुक्तं ॥

नृषोडशकपर्यन्त गणयेत् सूतकं सुधीः ॥

विवाहं नानुजानीयाद्रोत्रे लक्षनृणां युगे ॥ १ ॥

भावार्थः—सोलां पुरुषपर्यंत सुधी पुरुष सूतक गिणे, परंतु एकगोत्रमें लक्ष पुरुषयुग व्यतीत हुए भी, विवाह नहीं करे; न माने. । तिसवास्ते तिन गोत्रजको बुलवायके तिन सर्वको सांगोपांग स्नान और वस्त्रक्षालन करनेको कहे. । स्नान करके शुचि वस्त्र पहिनके गुरुको साक्षी करके, वे सर्व गोत्रज विविध प्रकारकी पूजासें जिन प्रतिमाका पूजन करे. । तदपीहे बालकके माता पिता पंचगव्यकरके अंतस्नान करे. । पुत्रसहित नखच्छेदनकरके गांठ जोड़ी दंपती जिनप्रतिमाको नमस्कार करे, सधवा स्त्रीयां मंगलगीत गाते वाजंत्रोंके वाजते हुए. । और सर्व चैत्योंमें पूजा नैवेद्य दौकन करे. । साधुओंको यथाशक्ति चतुर्विध आहार वस्त्र पात्र देवे, औ संस्कार करनेवाले गुरुको वस्त्र तांबूल भूषण द्रव्यादिदान देवे. तथा जन्म, चंद्रसूर्यदर्शन, क्षीराशन, षष्ठी, इनसंबंधिनी दक्षिणा तिस दिनों

संस्कारगुरुकेतांइ देणी. । और सर्व गोत्रज स्वजन भिन्नवर्गोंको यथाशक्ति भोजन तांबूल देना. । तथा गुरु तिस कुलके आचारानुसारकरके पंचगव्य, जिनस्नात्रोदक, सर्वौषधिजल और तीर्थजल, इनोंकरके स्नान कराये हुए बालकको वस्त्राभरणादि पहिनावे. ॥ तथा स्त्रीयोंको सूतकदिनोंके पूर्ण हुए भी, आर्द्र नक्षत्रोंमें, और सिंह गजयोनि नक्षत्रोंमें, सूतकस्नान नही करवावणा. । आर्द्र नक्षत्र दश है. । कृत्तिका १, भरणी २, मूल ३, आर्द्रा ४, पुष्य ५, पुनर्वसु ६, मघा ७, चित्रा ८, विशाखा ९, श्रवण १०, ये दश आर्द्र नक्षत्र हैं; इनमें स्त्रीको सूतकस्नान न करावे. यदि स्नान करे तो, फिर प्रसूति न होवे. ॥ धनिष्ठा १, पूर्वाभाद्रपदा २, ये दो सिंह-योनि नक्षत्र जाणने; और भरणी १, रेवती २, ये दो नक्षत्र गजयोनि जाणने. ॥ कदाचित् सूतक पूर्ण हुए दिनमें इन पूर्वोक्त नक्षत्रोंमेंसे कोई नक्षत्र आवे, तब एक एक दिनके अंतरे शुचिकर्म करणा. ॥ पूजावस्तु, पंचगव्य, स्वगोत्रज जन, तीर्थोदक, शुचिकर्मसंस्कारमें चाहिये. ॥ इत्याचा० श्रीव० गृहिधर्मप्रतिबद्धशुचिसंस्कारकीर्त्तननामसप्तमोदयस्याचार्यश्रीमद्वि० बा० स० तत्स० समाप्तोयमेकोनविंशस्तम्भः ॥ ७ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे
सप्तमशुचिकर्मसंस्कारवर्णनो नामैकोनविंशस्तम्भः ॥ १९ ॥

॥ अथविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ विंशस्तम्भमें नामकरणसंस्कारविधि लिखते हैं. ॥

मृदु, ध्रुव, क्षिप्र और चर, इन नक्षत्रोंमें पुत्रका जातकर्म करना. अथवा गुरु वा शुक्र, चतुर्थ स्थित होवे, तब नाम करना, सज्जन पुरुषोंको सम्मत है. ॥ शुचिकर्मदिनमें अथवा तिसके दूसरे वा तीसरे शुभ दिनमें बालकको चंद्रमाके बल हुए, ज्योतिषिकसहित गुरु तिसके घरमें शुभस्थानमें शुभासनके ऊपर बैठा हुआ, पंचपरमेष्ठिमंत्रको स्मरण करता हुआ रहे. । तिस अवसरमें बालकके पिता, पितामहादि, पुष्प फलकरके हाथ

परिपूर्ण करके ज्योतिषिकसहित गुरुको साष्टांग नमस्कार करके ऐसें कहे हे भगवन् ! पुत्रका नामकरण करो. । तब गुरु तिन पितापितामहादिको तिसके कुलके पुरुषोंको, और कुलवृद्धा स्त्रीयोंको, आगे बैठाके, ज्योतिषिको जन्मलग्न कहनेकेवास्ते आदेश करे. । तब ज्योतिषिक शुभपट्टे ऊपर खट्टिका (खडी) करके तिस बालकके जन्मलग्नको लिखे, स्थान : में ग्रहोंको स्थापन करे. । तब बालकके पितापितामहादि जन्मलग्नकी पूजा करे. । तिसमें स्वर्णमुद्रा १२, रूप्यमुद्रा १२, ताम्रमुद्रा १२, क्रमुक् (सुपारी) १२, अन्य फलजाति १२, नालिकेर १२, नागवल्लीदल (पान) १२, इनोंकरके द्वादश लग्नका पूजन करे. इनही नव नव वस्तुयोंकरी नव ग्रहोंका पूजन करे. ऐसें लग्नके पूजे हुए, तिनोंके आगे ज्योतिषिक लग्न विचार कहे. वे भी उपयोगसहित सुणे. । तदपीछे व्यावर्णनसहित लग्नको ज्योतिषिक कुंकुमाक्षरोंकरके पत्रेमें लिखके, कुलज्येष्ठको सौंप देवे. । बालकके पितादिकोंने ज्योतिषिका निवाष (पितृउद्देशपूर्वक) वस्त्र स्वर्णदान करके सन्मान करणा. । और ज्योतिषिक भी तिनोंके आगे जन्मनक्षत्रानुसारे, नामाक्षरको प्रकाश करके, स्वर्णको जावे. । तदपीछे गुरु, सर्व कुलपुरुषोंको और कुलवृद्धा स्त्रीयोंको, आगे स्थापन करके (बिठलाके) तिनोंकी सम्मतिसें हाथमें दूर्वा लेके परमेष्ठिमंत्रपठनपूर्वक कुलवृद्धाके कानमें जातिगुणोचित नाम सुणावे. । तिसपीछे कुलवृद्धा नारीयां गुरुके साथ पुत्र गोदीमें लीयां तिसकी माता शिविकादि नरवाहनमें बैठी हुई, वा पादचारिणी अविधवायोंके गीत गाते हुए, वाजंत्र बाजते हुए, जिनमंदिरमें जावे. । तहां मातापुत्र दोनों जिनको नमस्कार करे, माता चौबीस २ सुवर्णमुद्रा, रूप्यमुद्रा, फलनालिकेरादिकरके जिनप्रतिमाके आगे ढौकनिका करे. । तदपीछे देवके आगे कुलवृद्धा स्त्रीयां बालकका नाम प्रकाश करे. चैत्य न होवे तो, घरदेरासरकी प्रतिमाके आगे यह विधि करना. तदपीछे तिसही रीतिसें पौषधशालामें आवे, तहां प्रवेश करके भोजनमंडली स्थानमें मंडलीपट्ट स्थापन करके तिसकी पूजा करे. मंडलीपूजाका विधि यह है. पुत्रकी माता “ श्रीगातमाय नमः ” ऐसा उच्चार करती हुई, गंध, अक्षत,

पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य करके मंडलीपट्टकी पूजा करे. मंडलीपट्टोपरि स्वर्ण-मुद्रा १०, रूप्यमुद्रा १०, क्रमुक १०८, नालिकेर २९, वस्त्रस्त २९, स्थापन करे. । तदपीछे पुत्रसहित माता तीन प्रदक्षिणा करके यतिगुरुको नमस्कार करे. । नव सोनेरूपेकी मुद्रा करके गुरुके नवांगकी पूजा करे. । निरुंछ-मा और आरात्रिका (आरती) करके क्षमाश्रमणपूर्वक हाथ जोडके, “वासरकेवंकरेह ” ऐसा पुत्रकी माता कहे. तब यतिगुरु वासक्षेपको, ॐकार ह्रींकार श्रींकार सन्निवेशकरके कामधेनुमुद्राकरके, वर्द्धमान विद्याकरके जपके, मातापुत्र दोनोंके शिरपर क्षेप करे. तहां भी तिनके शिरमें ॐ ह्रीं श्रीं अक्षरोंका सन्निवेश करे. । तदपीछे बालकका अक्ष-तप्त हत चंदनकरके तिलक करके, कुलवृद्धाके अनुवादकरके, नाम स्थाप-न करे. । तदपीछे तिसही युक्तिकरके सर्व अपने घरको आवे. । यतिगुरुओं-को शुद्ध आहार वस्त्र पात्रका दान देवे. । और गृहस्थगुरुको वस्त्र अलं-कार स्वर्णदान देवे. ॥ नांदी, मंगलगीत, ज्योतिषिकसहित गुरु, प्रभूत फल, और मुद्रा, विविधप्रकारके वस्त्र, वास, चंदन, दूर्वा, नालिकेर, धन, इतनी वस्तु नामसंस्कारकार्यमें चाहिये. ॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृ-ताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धनामकरणसंस्कारकीर्त्तननामाष्टमोदय-स्थाचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समा-प्तौ च विंशस्तम्भः ॥ ८ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथेऽष्ट

नामकरणसंस्कारवर्णनो नाम विंशस्तम्भः ॥ २० ॥

॥ अथैकविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ २१ मे स्तंभमें अन्नप्राशनसंस्कारविधि लिखते हैं. ॥ रेवती, श्रव-ण, हस्त, मृगशीर्ष, पुनर्वसु, अनुराधा, अश्विनी, चित्रा, रोहिणी, उत्तरा-त्रय, धनिष्ठा, पुष्य, इन निर्दोष नक्षत्रोंमें और रवि, चंद्र, बुध, शुक्र, गुरु वारोंमें पुरुषोंको नवीन अन्नप्राशन (खाना) श्रेष्ठ है. । और बालकोंको

अन्नभोजन रिक्तादि कुतिथीयां और कुयोगोंको वर्जके श्रेष्ठ है। पुत्रको छठे मासमें, और कन्याको पांचमे मासमें अन्नप्राशन, सत्पुरुषोंने कहा है। जे नक्षत्र कहे तिनमें और पूर्वोक्त वारमें सद्गहोंके विद्यमान हुए अमा-वासी और रिक्ता, तिथीको वर्जके शुभ तिथीमें करणा। क्योंकि, लग्नमें रवि होवे तो, कुष्टी होवे; मंगल होवे तो, पित्तरोगी होवे; शनि होवे तो, वातव्याधि होवे; क्षीणचंद्र होवे तो, भीख मांगनेमें रत होवे; बुध होवे तो, ज्ञानी होवे; शुक्र होवे तो, भोगी होवे; बृहस्पति होवे तो, चिरायु होवे; और पूर्ण चंद्रमा होवे तो, यज्ञ करनेवाला और दान देनेवाला होवे। कंटक ४।७।१०। अंत्य १२। निधन ८। त्रिकोण ५।९। इन घरोंमें पूर्वोक्त ग्रह होवे तो, शरीरमें शुभ-फल देते हैं। छठे और आठमे घरमें चंद्रमा अशुभ होता है, केंद्र १।४।७।१०। त्रिकोण ५।९। इन घरोंमें सूर्य होवे तो, अन्ननाश होवे। तिसवास्ते छठे मासमें बालकको, और पांचमे मासमें कन्याको पूर्वोक्त तिथी वार नक्षत्र योगोंमें बालकको चंद्रबलके हुए अन्नप्राशनका आरंभ करे। तद्यथा। पूर्वोक्त वेषधारी गुरु, तिसके घरमें जाके सर्वदेशोत्पन्न अन्नोंको एकत्र करे; देशोत्पन्न और अन्य नगरोंमेंसे जे प्राप्त होवे, तिन सर्व फलोंको, और षट्बिक्रयोंको त्याग करे। तदपीछे सर्व अन्नोंको, सर्व शाकोंको, सर्व विकृतीयोंको, घृत, तैल, इक्षुरस, गोरस, जल, इत्यादि-कोंसें पकाये हुए बहुतप्रकारके पदार्थोंको पृथक् न्यारे २ करे। तदपीछे अर्हत्प्रतिमाका बृहत्स्नात्रविधिसें * पंचामृतस्नात्र करके पृथक् पात्रोंमें तिन अन्न शाक विकृति पाकादिकोंको जिनप्रतिमाके आगे अर्हत्कल्पोक्त + नैवेद्यमंत्रकरके ढोवे। सर्वजातके फल भी ढोवे। तदपीछे बालकको अर्हत्स्नात्रोदक पिलावे। फिर जिनप्रतिमाके नैवेद्यसें उद्धरित बची हुई तिन सर्ववस्तुओंको सूरिमंत्रके मध्यगत अमृताश्रवमंत्रकरके श्रीगौतम-प्रतिमाके आगे ढोवे, तिससें उद्धरित वस्तुओंको कुलदेवताके मंत्रकरके

* बृहत्स्नात्रविधि आचारदिनकरके ३३ मे उदयमें है।

+ अर्हत्कल्पोक्त पूजाविधि इसीग्रंथके २७ मे स्तंभमें है।

गोत्रदेवीकी प्रतिमाके आगे चढ़ावे, । तदपीछे कुलदेवीके नैवेद्यमेंसें योग्य आहार मंगलगीत गाते हुए माता पुत्रके मुखमें देवे, । और गुरु यह वेदमंत्र पढ़े, ॥

यथा ॥

“॥ ॐ अर्हं भगवानर्हन् त्रिलोकनाथस्त्रिलोकपूजितः सुधा-
धारधारितशरीरोपि कावलिकाहारमाहारितवान् । तपस्य-
न्नपि पारणाविधाविशुरसपरमान्नभोजनात् परमानंदादाप
केवलं तद्देहिन्नौदारिकशरीरमाप्तस्त्वमप्याहार्य आहारं
तत्ते दीर्घमायुरारोग्यमस्तु अर्हं ॐ ॥ ”

यह मंत्र तीनवार पढ़े, । तदपीछे साधुयोंको षट् विकृतियांकरके षट्-
ससंयुक्त आहार देवे, यतिगुरुके मंडलीपट्टोपरि परमान्नपूरित सुवर्णपात्र
चढ़ावे, ग्रहस्थगुरुको द्रोण द्रोण प्रमाण सर्वजातका अन्नदान करे, ।
तुला २ प्रमाण सर्व घृत, तैल, गुड लवणादि दान करे, । सर्वजातके
एक सौ आठ २ फल देवे, । तांबिका चरु, कांश्यक थाल, और वस्त्रयुगल
देवे, । सर्वजातिके अन्न, सर्वजातिके फल, सर्व विकृतियां, स्वर्ण, रूप्य,
ताम्र, कांश्य, इनोके पात्र (भाजन) इतनी वस्तुयां इस संस्कारमें चा-
हिये, ॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसुरिकृताचारदिनकरस्य ग्रहिधर्मप्रतिबद्ध
अन्नप्राशनसंस्कारकीर्तननाम नवमोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो
बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयमेकविंशस्तम्भः ॥१॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे
नवमान्नप्राशनसंस्कारवर्णनो नामैकविंशस्तम्भः ॥ २१ ॥

॥ अथद्वाविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ २२ मे स्तंभमें कर्णवेधसंस्कारविधि लिखते हैं, ॥ उत्तरात्रय,
हस्त, रोहिणी, रेवती, श्रवण, पुनर्वसू, मृगशीर्ष, पुष्य, इन नक्षत्रोंमें ।

रेवती, श्रवण, हस्त, अश्विनी, चित्रा, पुष्य, धनिष्ठा, पुनर्वसू, अमृतश्रावण, चंद्रसहित इन नक्षत्रोंमें कर्णवेध करना, मुनिजन कहते हैं। लाभ ११, तृतीय ३, घरमें शुभ ग्रहोंकरके संयुक्त होवे, शुभराशि लग्नमें क्रूर ग्रहोंकरके रहित बृहस्पतिके लग्नाधिप, वा लग्नमें हुए कर्णवेध करना। जिसमें चंद्र नक्षत्र, पुष्य, चित्रा, श्रवण, रेवती, जाणने। मंगल, शुक्र, सूर्य, बृहस्पति, इन वारमें शुभ तिथीमें शुभ योगमें बालक और कन्याका कर्णवेध करना ॥ इन निर्दोष तिथि वार नक्षत्रमें बालकको चंद्रबलके हुए कर्णवेध आरंभ करे। उक्तं च। “गर्भाधान, पुंसवन, जन्म, सूर्य-चंद्रदर्शन, क्षीराशन, षष्ठी, शुचि, नामकरण, अन्नप्राशन, मृत्यु, इन संस्कारोंमें अवश्य कार्य होनेसे पंडित पुरुषोंने वर्षमासादिकी शुद्धि न देखणी। कर्णवेधादिक अन्य संस्कारोंमें विवाहकीतरें वर्ष मास दिन नक्षत्रादिकोंकी शुद्धि अवश्यमेव विलोकन करणी। यथा। तीसरे पांचमे सातमे निर्दोष वर्षमें बालकको बलवान सूर्य होवे, तिस मासमें इष्ट दिनमें, गुरु, बालकको और बालककी माताको अमृतामंत्र अभिमंत्रित जलकरके मंगलगानपूर्वक अविधवायोंके हाथेंकरी स्नान करावे। और तहां कुलाचारसंपदा अतिशय विशेषकरके तैलनिषेकसहित तीन पांच सात नव इग्यारह दिनांतक स्नानका विधि जाणना,। तिसके घरमें पौष्टिकाधिकारमें कहे सर्व पौष्टिकको करना, षष्ठीको वर्जके मात्रष्टकपूजन पूर्ववत् करना,। तदपीछे ख २ कुलानुसार अन्य ग्राममें कुलदेवताके स्थानमें पर्वतउपर नदीतीरे वा घरमें कर्णवेधका आरंभ करे। तहां मोदक नैवेद्यकरण गीतगान मंगलाचारादि ख २ कुलागत रीतिकरके करना। तदपीछे बालकको पूर्वाभिमुख आसनऊपर विठलाके तिसके कर्णवेध करे तहां गुरु यह वेदमंत्र पढ़े।

यथा ॥

“॥ ॐ अर्हं” श्रुतेनाङ्गोपाङ्गैः कालिकैरुत्कालिकैः पूर्वगतैश्चू-
लिकाभिः परिकर्माभिः सूत्रैः पूर्वानुयोगैः छन्दोभिर्लक्षणैर्नि-
रुक्तैर्धर्मशास्त्रैर्विद्वकणो भयात् अर्हं ॐ ॥”

मुद्राविकोंको ॥ ‘॥ॐ अहं तव श्रुतिद्वयं हृदयं धर्माविद्धमस्तु ॥’

ऐसें कहना ॥

तदपीछे बालकको याममें बैठाके, वा नर नारी उत्संगमें लेके धर्मा-
गारमें लेइ जावे; तहां पूर्वोक्त विधिसें मंडलीपूजा करके बालकको गुरुके
चरणोंआगे लोटावे. तब यतिगुरु विधिसें वासक्षेप करे.। तदपीछे बालक-
को घरमें ल्याके गृहस्थगुरु कर्णाभरण पहिनावे.। यतिगुरुओंको शुद्ध चार
प्रकारका आहार वस्त्र पात्र देवे. । गृहस्थगुरुको वस्त्र स्वर्णदान देवे. ॥
इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिषद्धकर्णवेधसं-
स्कारकीर्तननामदशमोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतोबालावबोधस्स-
माप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं द्वाविंशस्तम्भः ॥ १० ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे
दशमकर्णवेधसंस्कारवर्णनो नाम द्वाविंशस्तम्भः ॥ २२ ॥

॥ अथ त्रयोविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ २३ मे स्तंभमें चूडाकरणसंस्कारविधि लिखते हैं. ॥ हस्त,
चित्रा, स्वाति, मृगशीर्ष, ज्येष्ठा, रेवती, पुनर्वसू, श्रवण, धनिष्ठा, इन नक्ष-
त्रोंमें १।२।३।५।७।१३।१०।११। इन तिथियोंमें। शुक्र, सोम, बुध,
इन वारोंमें चंद्र वा तारेके बल हुए, क्षौरकर्म करणा. । पर्वके दिनोंमें,
यात्रामें, स्नानसेंपीछे, भोजनसेंपीछे, विभूषापीछे, तीन संध्यामें, रात्रिमें,
संग्राममें, क्षयतिथिमें, पूर्वोक्त तिथिवारसें अन्य तिथिवारमें, और अन्य
भी मंगलकार्यमें क्षौरकर्म न करणा. ॥ क्षौरनक्षत्रोंमें स्वकुलविधिकरके
चूडाकरण करणा मुनींद्र कहते हैं; परं गुरु, शुक्र और बुध यह तीन ग्रह
केंद्रमें १।४।७।१० होने चाहिये.। यदि केंद्रमें सूर्य होवे तो ज्वर होवे;
मंगल होवे तो शस्त्रसें नाश होवे; शनि होवे तो पंगुपणा होवे; क्षीण
चंद्र होवे तो नाश होवे.। षष्ठी (६), अष्टमी (८), चतुर्थी (४), सिनीवाली
(चतुर्दशीयुक्तअमावास्या), चतुर्दशी (१४), नवमी (९), इन तिथियोंमें और
रवि, शनि, मंगल, इन वारोंमें क्षौरकर्म न करावणा.। वन २, व्यय १२,

त्रिकोण ५ । ९, इन ग्रहोंमें असद्रह होवे तो, मृत्यु हुए भी क्षुरक्रिया सुंदर नहीं होवे; और इनही घरोंमें शुभ ग्रह होवे तो क्षुरक्रिया पुष्टिकी करणहार जाणनी. । तिसवास्ते बालकको सूर्यबलयुक्त मासके हुए, चंद्र-ताराबलयुक्त दिनमें, पूर्वोक्त तिथिवारनक्षत्रमें कुलाचारानुसार कुलदेव-ताकी प्रतिमाके पास अन्य ग्राममें, वनमें, पर्वतके ऊपर, वा घरमें शास्त्रोक्त रीतिसें प्रथम पौष्टिक करे. । तदपीछे षष्ठीपूजावर्जित मात्रष्टपूजा पूर्ववत्. । तदपीछे कुलाचारानुसार नैवेद्य देवपक्वान्नादि करणा. । तदपीछे सुस्नात ग्रहस्थगुरु बालकको आसनऊपर बैठाके बृहत्स्नात्रविधिकृत जिन-स्नात्रोदकसें शांतिदेवीके मंत्रकरके सिंचन करे. । तदपीछे कुलक्रमागत नापित (नाइ) के हाथसें मुंडन करवावे. । तीन वर्णके शिरके मध्यभा-गमें शिखा स्थापन करे. और शूद्रको सर्वमुंडन. । चूडाकरण करते हुए यह वेदमंत्र पढ़े. ॥

यथा ॥

“ ॥ ॐ अर्हं ध्रुवमायुर्ध्रुवमारोग्यं ध्रुवाः श्रीयो ध्रुवं कुलं ध्रवं यशो ध्रवं तेजो ध्रुवं कर्म ध्रुवा च गुणसंततिरस्तु अर्हं ॐ ॥ ”

यह सातवार पढ़ता हुआ बालकको तीर्थोदककरके सींचे. । गीत वा-जंत्र सर्वत्र जाणने. । तदपीछे पंचपरमेष्ठिपाठपूर्वक बालकको आसनसें उठायकर स्नान करावे. । चंदनादिकरके लेपन करे. । श्वेतवस्त्र पहिनावे. । भूषणोंकरके भूषित करे. । तदनंतर धर्मांगारमें लेजावे. । तदपीछे पूर्वरी-तिसें मंडलीपूजा गुरुवंदना वासक्षेपादि. । तदपीछे साधुओंको शुद्ध वस्त्र, अन्न, पात्र और षड्रस विकृति दान देवे. । ग्रहगुरुको वस्त्र स्वर्ण दान देवे. । नापितको वस्त्र कंकण दान देवे. ॥ इत्याचार्यश्रीविर्द्धमानसूरिकृता-चारदिनकरस्य ग्रहिधर्मप्रतिबद्धचूडाकरणसंस्कारकीर्त्तननामैकादशोदयस्या-चार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं त्रयोविंशस्तम्भः ॥ ११ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे एका-दशचूडाकरणसंस्कारवर्णनो नाम त्रयोविंशस्तम्भः ॥ २३ ॥

॥ अथ चतुर्विंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ २४ मे स्तंभमें उपनयनसंस्कारविधि लिखते हैं ॥ तहां उपनयन नाम मनुष्योंको वर्णक्रममें प्रवेश करनेवास्ते संस्कारही वेषमुद्राके उद्ब-
हनसें स्व २ गुरुयोंके उपदेशे धर्ममार्गमें निवेश (प्रवेश) करता है ।
यदुक्तमागमे ॥

धम्मायारे चरिए वेसो सवच्छ कारणं पढमं ॥

संजमलज्जाहेऊ साह्वाणं तहय साह्वाणं ॥१॥

अर्थः—धर्माचारके आचरण करते हुए वेष जो है, सो सर्वत्र प्रथम कारण है. श्रावक तथा साधुयोंको संजमलज्जाका हेतु है. ॥

तथा च श्रीधर्मदासगणिपादैरुपदेशमालायामप्युक्तम् ॥

यथा ॥

धम्मं रक्खइ वेसो संकइ वेसेण दिक्खिओमि अहं ॥

उम्मग्रेण पडंतं रक्खइ राया जणवऊव्व ॥१॥

अर्थः—वेष धर्मकी रक्षा करता है. क्योंकि, वेष होनेसें अकार्य करता हुआ मनमें शंका करता है कि, मैं दीक्षितवेषवाला हूं, मुझको देखके लोक निंदा करेंगे, इसवास्ते उन्मार्गमें पडते हुएकी भी वेष रक्षा करता है, जैसे राजा देशकी रक्षा करता है. ॥ तथा इक्ष्वाकुवंशी, नारदवंशी, वैश्य, प्राच्य, उदीच्य, इन वंशोंके जैन ब्राह्मणको उपनयन और जिनो-पवीत धारण करणा. तथा क्षत्रीयवंशमें उत्पन्न हुए जिन, चक्रि, बलदेव, वासुदेवोंको, श्रेयांसकुमार दशार्णभद्रादि राजायोंको, हरिवंश, इक्ष्वाकुवंश, विद्याधरवंश, इन वंशोंमें उत्पन्न हुएको भी, उपनयन जिनोपवीतधारण विधि है. जिसवास्ते कहा है, आगममें,

“देवाणुप्पिआ, न एअं भूअं, न एअं भव्वं, न एअं भविस्सं, जन्नं, अरहंता वा, चक्रवट्ठी वा, बलदेवा वा, वासुदेवा वा, अंतकुलेसु वा, पंतकुलेसु वा, किविणकुलेसु वा, तुच्छकुलेसु वा, दरिद्रकुलेसु वा, भिरकाग-कुलेसु वा, माहणकुलेसु वा, आयाइंसु वा आयाइंति वा, आयाइस्संति वा,

एवं खलु, अरहता वा, चक्रबलवासुदेवा वा, उग्रकुलेसु वा, भोगकुलेसु वा, राइनकुलेसु वा, स्वत्तियकुलेसु वा, इरकागकुलेसु वा, हरिवंसकुलेसु वा, अन्नयरेसु वा, तहप्पगारेसु विसुद्ध जाइकुलवंसेसु आया इंसु वा, आया-ईति वा, आयाइस्संति वा, अच्छि पुण एसेवि भावे, लोगच्छेयभूए, अणंताहिं उसप्पिणि उसप्पिणीहिं वइकंताहिं, समुपद्यइ, नामगुत्तस्स, वा, कम्मस्स, अरकीणस्स, अवेइयस्स, अणिधिणस्स, उदण्णं, जन्नं, अरहंता वा, चक्रबलवासुदेवा वा, अंतकुलेसु वा, पंतकिविणतुच्छदरिइ भिरकागमाहणकुलेसु वा, आयाइंसु वा, आयाइंति वा, आयाइस्संति वा; नो चेव णं, जोणीजम्मणनिरकमणेणं निरकमिंसु वा, निक्खमंति वा, निक्खमिस्संति वा. तं जीअमेअं, तीअपच्चुप्पन्नमणागयाणं सक्कार्णं, देविंदाणं, देवराईणं, अरहंते भगवंते, तहप्पगारेहिंतो, अंतकुलेहिंतो, पंतकुलेहिंतो, तुच्छदरिइकिविण भिक्खागमाहणकुलहिंतो; तहप्पगारेसु उग्रभोगरायन्नस्वत्तियइरकागहरिवंसकुलेसु वा, अन्नयरेसु वा, तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवंसेसु साहरावित्तए. ॥” * तिसवास्ते कार्तिकशेठ कामदेवा दिवैश्योंको भी उपनयन जिनोपवीत धारण करणा. । आनंदादि शुद्रोंको भी उत्तरीय धारण करणा. । शेष वाणिगादिकोंको उत्तरासंगकी अनुज्ञा है. जिनोपवीत जो है सो भगवान् जिनकी गृहस्थपणेकी मुद्रा है. । सर्व बाह्य अभ्यंतर कर्मविमुक्त निर्ग्रथ यतियोंको तो, नव ब्रह्मगुप्तिगुप्ता-ज्ञानदर्शनचारित्ररत्नत्रयी, हृदयमेंही है. क्योंकि, मुनिजन सर्वदा तन्मात्र-नाभावितही होते हैं. इसवास्ते नवब्रह्मगुप्तियुक्तरत्नत्रयी सूत्ररूप बाह्यमु-द्राको नहीं धारण करते हैं, तन्मय होनेसें. नहीं समुद्र, जलपात्रको हस्तमें करता है. । नहीं सूर्य दीपकको धारण करता है.

यत उक्तम् ॥

अग्नौ देवोस्ति विप्राणां हृदि देवोस्ति योगिनाम् ॥

प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र विदितात्मनाम् ॥ १ ॥

* इस पाठका भावार्थ यह है कि पूर्वोक्त अंतादिकुलमें अरिहंतादि नहीं उत्पन्न होते हैं, किंतु उग्रादि उपन्यासवादिमुक्त कुलमें उत्पन्न होते हैं, शुद्ध होनेसें. ॥

अर्थः—अग्निहोत्रि ब्राह्मणोंका तो, अग्निही देव है, अर्थात् अग्निविषेही देवबुद्धि है; और योगिजनोंके हृदयमेंही देव है; क्योंकि, योगाभ्यासी मुनिजन तो, अपने पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत, ध्यानके बलसे अपने हृदयमेंही देवका स्वरूप ध्याय सकते हैं; और जो अल्पबुद्धि अर्थात् गृहस्थधर्मी श्रावकादि हैं, तिनोंको भगवान्की प्रतिमाही देव है; तिसकेही पूजन, ध्यान, प्रभावना, उत्सव, रथयात्रा, करनेसे कल्याण है. और जिनोंने आत्मस्वरूप जाना है, ऐसे याति, ऋषि, मुनियोंको तो सर्वजगें देव मालुम होता है; अर्थात् ध्याता, ध्येय, ध्यान, ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान रूपकरके सर्व देवस्वरूपही है. ॥ इसवास्ते शिखासूत्रविवर्जित ब्रह्मगुप्तिरत्नत्रय करण कारण अनुमतिमें सदैव आदरवाले यातिजन हैं. । और गृहस्थी, ब्रह्मगुप्तिरत्नत्रयलेशश्रवणस्मरणमात्रसे ब्रह्मगुप्तिरत्नत्रयको सूत्रमुद्राकरके हृदयमें धारण करते हैं. । ‘प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां’ इसवचनसे॥

तदात्मकत्वके न हुए मुद्राका धारण है. । जैसे छद्मस्थको बाह्य अभ्यंतर तपःका करणा है. । तथा नवतंतुगर्भसूत्रमय एक अग्र ऐसे तीन अग्र ब्राह्मणको, दो अग्र क्षत्रियको, एक अग्र वैश्यको, शूद्रको उत्तरीयक, और अपरको उत्तरासंगकी अनुज्ञा है. । ऐसा विशेष क्यों है ? सोही कहते हैं. । ब्राह्मणोंने नवब्रह्मगुप्तियुक्त ज्ञानदर्शनचारित्ररूप रत्नत्रय आप पालन करणे, अन्योसें करावणे, अन्य करतांको अनुमति देणी. ॥ ब्रह्मगुप्तिगुप्ताइति । ब्राह्मण आप रत्नत्रयीको अध्ययन सम्यक्दर्शन चारित्र क्रियायोंकरके आचरते हैं, अन्योसें अध्यापन सम्यक्त्वोपदेश आचार प्ररूपणाकरके रत्नत्रयीका आचरण करवाते हैं, और ज्ञानोपाशन सम्यग्दर्शन धर्मोपाशनादिकोंकरके श्रद्धा करनेवाले और अनुज्ञा मांगनेवाले अन्योको अनुज्ञा देते हैं, इसवास्ते नवब्रह्मगुप्तिगर्भ रत्नत्रय करण कारण अनुमतिवाले ब्राह्मणोंको जिनोपवीतमें तीन अग्र. । और क्षत्रियोंको आप रत्नत्रयका आचरण करणा, और निजशक्तिसे न्यायप्रवृत्तिकरके अन्योसें आचरण करावणा योग्य है, परंतु तिन क्षत्रियोंको अन्य जनोंको अनुज्ञा देनी योग्य नहीं है. क्योंकि, वे ठकुराड़वाले प्रभु

होनेसें अन्योविषे नियमादिकी अनुज्ञा नहीं देते हैं, इसवास्ते क्षत्रियोंको जिनोपवीतमें दो अग्र. । वैश्योंने ज्ञानभक्तिकरके सम्यक्त्व धृतिकरके उपासकाचारशक्तिकरके स्वयमेव रत्नत्रय आचरणा, । तिन वैश्योंको असामर्थ्य होनेसें अनुपदेशक होनेसें रत्नत्रयका करावणा, और अनुमतिका देणा योग्य नहीं है; इसवास्ते वैश्योंको जिनोपवीतमें एक अग्र. । श्रूद्रोंको तो ज्ञानदर्शनचारित्ररूप रत्नत्रयके करनेमें आपही अशक्त है तो करावणा और अनुमतिका देणा तो दूरही रहा. । तिनोंको अधम जाति होनेसें, निःसत्त्व होनेसें और अज्ञान होनेसें; इसवास्ते तिनोंको जिनाज्ञारूप उत्तरीयका धारण है। तिनसें अपरवणिगादिकोंको देवगुरु-धर्मकी उपासनाके अवसरमें जिनाज्ञारूप उत्तरासंगमुद्रा है.॥ जिनोपवीतका स्वरूप यह है.॥ स्तनांतरमात्रको चौराशीगुणा करिये तब एकसूत्र होवे, तिसको त्रिगुणा करणा, तिसको भी त्रिगुणा करके वर्त्तन करणा (वटना), ऐसें एक तंतु हुआ; इसी रीतिसें दो तंतु और योजन करिये, तब तीनो तंतु मिलाके एक अग्र होवे है. । तहां ब्राह्मणको तीन अग्र, क्षत्रियको दो और वैश्योंको एक. । परमतमें तो ऐसा कथन है॥

“ कृते स्वर्णमयं सूत्रं त्रेतायां रौप्यमेव च ॥

द्वापरे ताम्रसूत्रं च कलौ कार्पासमिष्यति ॥ १ ॥

कृतयुगमें स्वर्णमयसूत्र, त्रेतायुगमें रूपेका, द्वापरयुगमें तांबेका और कलियुगमें कपासका यज्ञोपवीत. ॥ ” परंतु जिनमतमें तो, सर्वदा ब्राह्मणोंको सौवर्णसूत्र, * और क्षत्रियवैश्योंको सदा कार्पास-सूत्रही है. ॥ इतिजिनोपवीतयुक्तिः ॥

अथ उपनयनविधि कहते हैं:-उपनीयते वर्णक्रमारोहयुक्तिकरके प्राणीको पुष्टिको प्राप्त करिये, इत्युपनयनं. । श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, मृगशिर, अश्विनी, रेवती, स्वाति, चित्रा, पुनर्वसू, । तथा च ।

* आवश्यकत्वेवमुक्तं ॥ स च (भरतः) काकिणीरत्नेन तान् लोच्छितवान्-आदित्ययशस्तु काकिणीरत्नं नासीत् सुवर्णमयानि यज्ञोपवीतानि कृतवान् । महायशःप्रभृतयस्तु केचन रूप्यमयानि केचित् विचित्रपट्टसूत्रमयानीत्येवं यज्ञोपवीतप्राप्तिदिः ॥

मृगशिर, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त स्वाति, चित्रा, पुष्य, अश्विनी, इन नक्षत्रोंमें मेखलाबंध, और मोक्ष करणा, आचार्यवर्य कहते हैं। गर्भाधानसें वा जन्मसें आठमे वर्षमें ब्राह्मणोंको मौंजीबंध कथन करते हैं, क्षत्रियोंको इग्यारह (११) वर्षमें, और वैश्योंको बारमे वर्षमें। वर्णाधिपके बलवान् हुए उपनीतिक्रिया हितकारिणी होती है, अथवा सर्व वर्णोंको गुरु चंद्र सूर्य बलवान् हुए, हित है। बृहस्पति-वार होवे, बृहस्पति बलवान् होवे, वा केंद्रगत होवे, तो, द्विजोंको उपनयन श्रेष्ठ है। और बृहस्पति तथा शुक्र नीच घरमें होवे, शत्रुके घरमें होवे, वा पराजित होवे तो, श्रवणविधीमें स्मृतिकर्म हीन होवे। लग्नमें बृहस्पति होवे, त्रिकोणमें शुक्र होवे, और शुक्रांशमें चंद्रमा होवे तो वेद-वित् होवे; शुक्रसहित सूर्य लग्नमें शनिके अंशमें स्थित होवे, तदा प्रोज्झितविद्याशील कृतघ्न होवे। केंद्रमें बृहस्पति होवे तो, स्वअनुष्ठानमें रक्त होवे, प्रवरमतियुत होवे। शुक्र होवे तो, विद्या सौख्य अर्थयुक्त होवे। बुध होवे तो, अध्यापक होवे, सूर्य होवे तो, राजाका सेवक होवे, मंगल होवे तो, शस्त्रवृत्तिवाला होवे। चंद्रमा होवे तो, वैश्यवृत्तिवाला होवे। शनि होवे तो, अंत्यजोंका सेवक होवे। शनिके अंशमें मूर्खता उदय होवे, सूर्यके भागमें क्रूरपणा होवे, मंगलके अंशमें पापबुद्धि होवे, चंद्रांशमें अतिजडपणा होवे, बुधांश होवे तो पटुपणा होवे, गुरुशुक्रके भागमें सुज्ञपणा होवे। सूर्यसहित बृहस्पति होवे तो निर्गुण होवे अर्थहीन होवे, मंगलसहित सूर्य होवे तो क्रूर होवे, बुधसहित होवे तो पटु होवे, शनिसहित होवे तो आलसु और निर्गुण होवे, शुक्र और चंद्रमासहित होवे तो बृहस्पतिवत् जाणना। पूर्वोक्त निर्दोष नक्षत्रोंमें मंगलविना अन्यवारोंमें सुतिथिमें दिनशुद्धिमें दिनमें शुभग्रहयुक्त लग्नमें। विवाहवत् त्याज्य नक्षत्रदिनमासादिको वर्ज देवे। ग्रहनिर्मुक्त पांचमे लग्नमें व्रत आचरे ॥

प्रथम यथासंपत्तिकरके उपनेय पुरुषको सात, नव, पांच वा तीन, दिनतक सतैल निषेक स्नान करावे तदपीछे लग्नदिनमें गृह्यगुरु, तिसके घरमें ब्राह्म मुहूर्तमें पौष्टिक करे। तदनंतर उपनेयके शिरपर शिखावर्जके वपन मुंडन करावे, पीछे वेदी स्थापन करे, तिसके मध्यमें वेदीचतुष्किका चौ-

कीरूप वेदी करणी, अर्थात् चौतडा करणा, वेदीप्रतिष्ठा विवाहाधिकारसें जाणनी. तिस वेदीचतुष्पिकाके ऊपर समवसरणरूप चतुर्मुख जिनबिंब अर्थात् चौमुखा स्थापन करे, तिसको पूजके गुरु, जिसने सदश श्वेतवस्त्र पहिना है, वस्त्रका उत्तरासंग करा है, अक्षत नालिकेर क्रमुक हाथमें लिये हैं, ऐसे उपनेयको समवसरणको तीन प्रदक्षिणा करवावे. । तदपीछे गुरु उपनेयको वामे पासे स्थापके, पश्चिमदिशाके सन्मुख जिसका मुख है, तिस जिनबिंबके सन्मुख बैठके प्रथम ऋषभ अर्हत् देवस्तोत्रयुक्त शक्रस्तव पढे. । फेर तीन प्रदक्षिणाकरके उत्तराभिमुख जिनबिंबके सन्मुख तैसेही शक्रस्तव पढे; । ऐसेही त्रिप्रदक्षिणांतरित पूर्वाभिमुख, दक्षिणाभिमुख, जिनबिंबोंके आगे भी शक्रस्तव पढे. मंगलगीतवाजंत्रादिकोंका तिसवखत विस्तार करणा. । तदपीछे तहां आचार्य उपाध्याय, साधु, साध्वी, श्रावक श्राविकारूप श्रीश्रमणसंघको एकत्र करे. तदपीछे प्रदक्षिणा शक्रस्तवपाठके अनंतर गृह्यगुरु, उपनयनके प्रारंभवास्ते वेदमंत्रका उच्चार करे. और उपनेय जो है, सो दूर्वाफलादिकरके हस्तपूर्ण करके जिन आगे हाथ जोडके अर्थात् अंजलिकरके खडा होके श्रवण करे. ॥

उपनयनारंभ वेदमंत्रो यथा ॥

“ॐ अहं अर्हज्योनमः । सिद्धेभ्योनमः । आचार्येभ्योनमः ।
उपाध्यायेभ्यो नमः । साधुभ्यो नमः । ज्ञानाय नमः ।
दर्शनाय नमः । चारित्राय नमः । संयमाय नमः । सत्या-
य नमः । शौचाय नमः । ब्रह्मचर्याय नमः । आर्किचन्या-
य नमः । तपसे नमः । शमाय नमः । मार्दवाय नमः । आ-
र्जवाय नमः । मुक्तये नमः । धर्माय नमः । संघाय नमः ।
सैद्धांतिकेभ्यो नमः । धर्मोपदेशकेभ्यो नमः । वादिल-
ब्धिभ्यो नमः । अष्टाङ्गनिमित्तज्ञेभ्यो नमः । तपस्विभ्यो
नमः । विद्याधरेभ्यो नमः । इहलोकसिद्धेभ्योनमः । कवि-
भ्यो नमः । लब्धिमद्भ्यो नमः । ब्रह्मचारिभ्यो नमः ।

निष्परिग्रहेभ्यो नमः । दयालुभ्यो नमः । सत्यतादिभ्यो नमः । निःस्पृहेभ्यो नमः । एतेभ्यो नमस्कृत्यायं प्राणी प्राप्तमनुष्यजन्मा प्रविशति वर्णक्रमं अर्हं ॐ ॥”

ऐसे वेदमंत्रका उच्चार करके फिर भी पूर्ववत् तीन २ प्रदक्षिणा करके चारों दिशामें युगादिदेव स्तवसंयुक्त शक्रस्तव पाठ करे । तिस दिनमें, जल जवान्न भोजन करके आचाम्लका प्रत्याख्यान उपनेयको करावे । तदपीछे उपनेयको वामे पासे स्थापके सर्वतीर्थोदकोंकरके अमृतामंत्र करके कुशाग्रोंसे सिंचन करे ।

तदनंतर परमेष्ठिमंत्र पढके

“नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः”

ऐसा कहके, जिन प्रतिमाके आगे उपनेयको पूर्वाभिमुख बैठावे; तदपीछे गृह्यगुरु, चंदनमंत्रकरके अभिमंत्रण करे ॥

चंदनमंत्रो यथा ॥

“॥ ॐ नमो भगवते, चंद्रप्रभजिनेन्द्राय, शशांकहारगोक्षीरध्वलाय, अनंतगुणाय, निर्मलगुणाय, भव्यजनप्रबोधनाय, अष्टकर्ममूलप्रकृतिसंशोधनाय, केवलालोकावलोकितसकललोकाय, जन्मजरामरणविनाशनाय सुमंगलाय, कृतमंगलाय, प्रसीद भगवन् इह चंदनेनामृताश्रवणं कुरु २ स्वाहा ॥”

इस मंत्रकरके चंदनको मंत्रके हृदयमें जिनोपवीतरूप, कटिमें मेखलारूप और ललाटमें तिलकरूप, रेखाकरे, तदपीछे उपनेय “नमोस्तु २” ऐसे कहता हुआ, गुरुके चरणोंमें पडके खड़ा होके हाथ जोडके ऐसे कहै ।

“॥ भगवन् वर्णरहितोऽस्मि । आचाररहितोऽस्मि । मंत्ररहितोऽस्मि । गुणरहितोऽस्मि । धर्मरहितोऽस्मि । शौचरहितोऽस्मि । ब्रह्मरहितोऽस्मि । देवर्षिपितृतिथिकर्मसु नियोजय मां ॥”

ऐसें कहकर फिर “नमोस्तु २ ” ऐसें कहता हुआ, गुरुके चरणोंमें पड़े; गुरु भी. इस मंत्रको पढ़के उपनेयको चोटीसें पकड़के खड़ा करे । मंत्रो यथा ॥

“ ॥ ॐ अहं देहिन् निमग्नोऽसि भवार्णवे तत्कर्षति त्वां भगवतोऽर्हतः प्रवचनैकदेशरज्जुना गुरुस्तदुत्तिष्ठ प्रवचना-दानाय श्रद्धधाहि अहं ॐ ॥ ”

ऐसें पढ़के उपनेयको खड़ा करके अर्हतप्रतिमाके आगे पूर्वाभिमुख खड़ा करे. तदपीछे गृह्यगुरु, वितंतुवर्त्तित—तीन तंतुकी गुणी, एकाशीति (८१) हाथ प्रमाण, मुंजकी मेखलाको अपने दोनों हाथोंमें लेके, इस वेदमंत्रको पढ़े. ॥

“ ॥ ॐ अहं आत्मन् देहिन् ज्ञानावरणेन बद्धोऽसि दर्शनावरणेन बद्धोऽसि । वेदनीयेन बद्धोऽसि । मोहनीयेन बद्धोऽसि । आयुषा बद्धोऽसि । नाम्ना बद्धोऽसि । गो-त्रेण बद्धोऽसि । अंतरायेण बद्धोऽसि । कर्माष्टकेन प्रकृ-तिस्थितिरसप्रदेशैश्च बद्धोऽसि । तन्मोचयति त्वां भगवतो-र्हतः प्रवचनचेतना तद्बुद्ध्यस्व मामुहः मुच्यतां तव कर्म-बंधनमनेन मेखलाबंधेन अहं ॐ ॥ ”

ऐसा पढ़के उपनेयकी कटिमें नवगुणी मेखलाको बांधे । तदपीछे उप-नेय ‘ नमोस्तु २ ’ कहता हुआ, गृह्यगुरुके पगोंमें पड़े । मेखलाको एकाशी (८१) हाथपणा विप्रको एकाशीतंतुगर्भ जिनोपवीत सूचनकेवास्ते, क्षत्रियको चौपन (५४) हाथ तावत्प्रमाणतंतुगर्भ जिनोपवीत सूचनकेवास्ते, और वैश्यको सत्ताइस (२७) हाथ तद्गर्भसूत्रसूचनकेवास्ते हैं । ब्राह्मणको नवगुणी क्षत्रियको छीगुणी, और वैश्यको त्रिगुणी, मेखला बांधनी । तथा मौंजी, कौपीन, जिनोपवीत, इनोंका पूजन, गीतादिमंगल, निशाजागरण, तिसके पूर्वदिनकी रात्रिमें करणा । मेखलाबंधनके पीछे फेर गृह्यगुरु, उपनेयके

विलस्तप्रमाण पृथुल (चौड़ा) और तीन विलस्तप्रमाण दीर्घ (लंबा) कौपीन दोनों हाथोंमें लेके ॥

“ ॥ ॐ अहं आत्मन् देहिन् मतिज्ञानावरणेन श्रुतज्ञाना-
वरणेन अवधिज्ञानावरणेन मनःपर्यायावरणेन केवलज्ञाना-
वरणेन इंद्रियावरणेन चित्तावरणेन आवृतोऽसि तन्मुच्यतां
तवावरणमनेनावरणेन अहं ॐ ॥ ”

इस वेदमंत्रको पढता हुआ, उपनेयके अंतःकक्षको कौपीन पहरावे । तदपीछे उपनेय ‘ नमोस्तु २ ’ कहता हुआ, फिर भी गुरुके पगोंमें पड़े । फिर तीन २ प्रदक्षिणा करके चारों दिशामें शक्रस्तवपाठ करे ॥

तदनंतर लग्नवेलाके हुए गुरु, पूर्वोक्त जिनोपवीतको अपने हाथमें लेवे पीछे उपनेय फेर खडा होकर हाथ जोडके ऐसैं कहे ॥

“ ॥ भगवन् वण्णोज्झितोऽस्मि । ज्ञानोज्झितोस्मि । क्रियो-
ज्झितोस्मि । तजिनोपवीतदानेन मां वर्णज्ञानक्रियासु समा-
रोपय ॥ ”

ऐसैं कहके ‘ नमोस्तु २ ’ कहता हुआ गृह्यगुरुके पगोंमें पड़े गुरु फिर पूर्वोक्त उत्थापनमंत्रकरके तिसको उठाके खडा करे । तदपीछे गुरु दक्षि-
ण हाथमें जिनोपवीत रखके ॥

“ ॥ ॐ अहं नवब्रह्मगुप्तीः स्वकरकारणानुमतीर्द्धारयेः तदक्ष-
यमस्तु ते व्रतं स्वपरतरणतारणसमर्थो भव अहं ॐ ॥ ”

क्षत्रियको

“ ॥ करणकारणाभ्यां धारयेः स्वस्य तरणसमर्थो भव ॥ ”

वैश्यको

“ ॥ करणेन धारयेः स्वस्य तरणसमर्थो भव ॥ ”

शेषं पूर्ववत् ॥

इस वेदमंत्रकरके पंच परमेष्ठिमंत्र पढ़ता हुआ उपनेयके कंठमें जिनो पवीत स्थापन करे । पीछे उपनेय तीन प्रदक्षिणा करके ‘नमोस्तु २’ कहता हुआ, गुरुको नमस्कार करे. गुरु भी “ निस्तारगपारगो भव ” ऐसा आशीर्वाद कहे । तदपीछे गृह्यगुरु पूर्वाभिमुख होके, जिनप्रतिमाके आगे शिष्यको वामेपासे बैठाके, सर्व जगत्में सार, महा आगमरूप क्षीरोदधि-का माखण, सर्ववांछितदायक, कल्पद्रुम कामधेनु चिंतामणिके तिरस्कार-का हेतु, निमेषमात्र स्मरण करनेसे मोक्षका दाता, ऐसैं पंचपरमेष्ठिमंत्रको गंधपुष्पपूजित शिष्यके दक्षिणकानमें तीनवार सुणावे पीछे तीनवार ति-सके मुखसे उच्चारण करावे ॥

यथा ॥

“ ॥ नमो अरिहंताणं । नमो सिद्धाणं । नमो आयरियाणं ।
नमो उवज्झायाणं । नमो लोए सव्वसाहूणं ॥ ”

पीछे उपनेयको मंत्रका प्रभाव सुणावे. ॥

तद्यथा ॥

सोलससु अरकरेसु इक्किं अक्खरं जगुज्जोअं ॥
भवसयसहस्स महणो जम्मि द्विउ पंच नवकारो ॥ १ ॥
थंभेइ जलं जलणं चित्तिमत्तो इ पंच नवकारो ॥
अरिमारिचोरराउलघोरुवसग्गं पणासेइ ॥ २ ॥

एकत्र पंचगुरुमंत्रपदाक्षराणि ।

विश्वत्रयं पुनरनंतगुणं परत्र ॥

यो धारयेत्किल तुलानुगतं ततोऽपि ।

वंदे महागुरुतरं परमेष्ठिमंत्रम् ॥ ३ ॥

ये केचनापि सुखमाद्यरका अनंता ।

उत्सर्पिणीप्रभृतयः प्रययुर्विवर्त्ताः ॥

तेष्वप्ययं परतरः प्रथितः पुराऽपि ।

लब्ध्वैनमेव हि गताः शिवमत्र लोकाः ॥ ४ ॥

जग्मुर्जिनास्तदपवर्गपदं यदैव ।

विश्वं वराकमिदमत्र कथं विनास्मान् ॥

एतद्विलोक्य भुवनोद्धरणाय धीरैः ।

मंत्रात्मकं निजवपुर्निहितं तदाऽत्र ॥ ५ ॥

इंदुर्दिवाकरतया रविरिंदुरूपः ।

पातालमंबरमिलासुरलोक एव ॥

किंजलिपतेन बहुना भुवनत्रयेऽपि ।

तन्नास्ति यन्न विषमं च समं च तस्मात् ॥ ६ ॥

सिद्धांतोदधिनिर्मथान्नवनीतामिवोद्धृतम् ॥

परमेष्ठिमहामंत्रं धारयेत् हृदि सर्वदा ॥ ७ ॥

सर्वपातकहर्तारं सर्ववाञ्छितदायकम् ॥

मोक्षारोहणसापाने मंत्रे प्राप्नोति पुण्यवान् ॥ ८ ॥

धार्योयं भवता यत्नात् न देयो यस्य कस्यचित् ॥

अज्ञानेषु श्रावितोयं शपत्येव न संशयः ॥ ९ ॥

* न स्मर्त्तव्योऽपवित्रेण न जने नाऽन्यसंश्रये ॥

नाऽविनीतेन नो दीर्घशब्देनाऽपि कदाचन ॥ १० ॥

न बालानां नाऽशुचीनां नाऽधर्म्माणां न दुर्दृशाम् ॥

+ न प्लुतानां न दुष्टानां दुर्जातीनां न कुत्रचित् ॥ ११ ॥

अनेन मंत्रराजेन भूयास्त्वं विश्वपूजितः ॥

प्राणांतेऽपि परित्यागमस्य कुर्यान्न कुत्रचित् ॥ १२ ॥

* न स्मर्त्तव्योपचितेन न शठेनान्यसंश्रये इति पुस्तकांतरे ॥ तथा अन्येषु श्राद्धदिनकृतश्राद्ध-
विधिकौमुदीपिकाशकादिषु शास्त्रेष्वेवमुक्तं यथा सा काप्यवस्था नास्ति यस्यां नमस्कारो न स्मर्त्तव्य इति ॥

+ नाऽप्लुतानां न दुष्टानां दुर्जनानां न कुत्रचित् । इति पुस्तकांतरे ॥

गुरुत्यागे भवेदुःखं मंत्रव्रत्यागे दरिद्रता ॥

गुरुमंत्रपरित्यागे सिद्धोऽपि नरकं व्रजेत् ॥ १३ ॥

इति ज्ञात्वा मुगृहीतं कुर्या मंत्रममुं सदा ॥

सेत्स्यन्ति सर्वकार्याणि तवास्मान्मंत्रतो ध्रुवम् ॥ १४ ॥

गुरुने ऐसे शिक्षा दिया हुआ उपनेय तीन प्रदक्षिणा करके “नमोस्तु २” ऐसे कहता हुआ, गुरुको नमस्कार करे. पीछे गुरुको स्वर्णका जिनोपवीत, श्वेत वस्त्र रेशमी, और स्वर्णमौंजी स्वसंपदानुसारें देवे. और सर्वसंघको भी तांबूल वस्त्रादि देवे. ॥ इत्युपनयने व्रतबंधविधिः ॥

अथ व्रतादेशविधि लिखते हैं. ॥ तिसही अवसरमें, तिसही संघके संगममें, तिसही गीतवाजंत्रादि उत्सवमें, तिसही वेदचतुष्किकामें, प्रतिमास्थापन संयोगमें, व्रतादेशका आरंभ करे. तिसका यह क्रम है. । गृह्यगुरु, उपनीत पुरुषके कार्पास रेशमी अंतरीय उत्तरीय वस्त्र दूर करके मौंजी जिनोपवीत कौपीन येह वस्तुयों तिसकी देहमें तैसेंही स्थापके, तिसके ऊपर कृष्णसाराजिन (कालामृगचर्म) वा, वृक्षके बल्कलका वस्त्र पहिरावे. । हाथमें पलाशका दंडा देवे. और इस मंत्रको पढ़े.

“ ॥ ॐ अर्हं ब्रह्मचार्यसि । ब्रह्मचारिवेषोऽसि अवाधेब्रह्मचर्योसि । धृतब्रह्मचर्योसि । धृताजिनदंडोसि । बुद्धोऽसि । प्रबुद्धोऽसि । धृतसम्यक्त्वोऽसि । दृढसम्यक्त्वोसि । पुमानसि । सर्वपूज्योऽसि । तदवधिब्रह्मव्रतं आगुरुनिदेशं धारयेः अर्हं ॐ ॥ ”

ऐसें पढ़के व्याघ्रचर्ममय आसनके ऊपर, वा कल्पित काष्ठमय आसनके ऊपर उपनीतकों बिठलावे. तिसके दक्षिण हाथकी प्रदेशिनी अंगुलीमें दर्भसहित कांचनमयी षोडश १६ मासे प्रमाण (पांच गुंजाका एक मासा जाणना) पवित्रिका मुद्रा पहरावे. ।

पवित्रिका परिधापनमंत्रो यथा ॥

“ पवित्रं दुर्लभं लोके सुरासुरनृवल्लभम् ॥

सुवर्णं हन्ति पापानि मालिन्यं च न संशयः ॥ १ ॥ ”

तदपीछे उपनीत, मुखसें पंचपरमेष्ठिमंत्र पढता हुआ, गंध पुष्प अक्षत धूप दीप नैवेद्यकरके चारों दिशामें जिनप्रतिमाको पूजे । तदपीछे जिन-प्रतिमाको प्रदक्षिणाकरके और गुरुको प्रदक्षिणा करके ‘ नमोस्तु २ ’ कहता हुआ, हाथ जोडके ऐसें कहे ॥ “ भगवन् उपनीतोहं ” गुरु कहे “ सुष्टूपनीतो भव । ” फेर उपनीत ‘ नमोस्तु ’ कहता हुआ नमस्कार करके कहे । “ कृतो मे व्रतबंधः । ” गुरु कहे । “ मुकृतोऽस्तु । ” फेर ‘ नमोस्तु ’ कहके नमस्कार करके शिष्य कहे “ । भगवन् जातो मे व्रत-बंधः । ” गुरु कहे “ । मुजातोऽस्तु । ” फेर नमस्कार करके शिष्य कहे । “ जातोऽहं ब्राह्मणः । क्षत्रियो वा । वैश्यो वा । ” गुरु कहे । “ दृढव्रतो भव । दृढसम्यक्त्वो भव । ” फेर शिष्य नमस्कार करके कहे । “ भगवन् यदि त्वया कृतो ब्राह्मणोऽहं तदादिश कृत्यं । ” गुरु कहे “ अर्हद्विरा दिशामि । ” फेर नमस्कार करके शिष्य कहे । “ भगवन् नवब्रह्मगुप्ति गर्भं रत्नत्रयंममादिष्टं । ” गुरु कहे । “ आदिष्टं । फेर नमस्कार करके शिष्य । “ भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं मम समादिश । ” गुरु कहे । “ समादिशामि । ” फेर नमस्कार करके शिष्य कहे । “ भगवन् नव-ब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं मम समादिष्टं । ” गुरु कहे । “ समादिष्टं । ” फेर नमस्कार करके शिष्य कहे । “ भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं ममा-नुजानीहि । ” गुरु कहे । “ अनुजानामि ” फेर नमस्कार करके शिष्य कहे । “ भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं ममानुज्ञातं । ” गुरु कहे । “ अनुज्ञातं ” । फेर नमस्कार करके शिष्य कहे । “ भगवन् नवब्रह्मगु-प्तिगर्भं रत्नत्रयं मया स्वयं करणीयं । ” गुरु कहे । “ करणीयं ” फेर नम-स्कार करके शिष्य कहे । “ भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं मया अन्यैः कारयितव्यं । ” गुरु कहे । “ कारयितव्यं । ” फेर नमस्कार करके शिष्य कहे । “ भगवत् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं कुर्वतोऽन्ये मया अनु-

ज्ञातव्याः । ” गुरु कहे । “ अनुज्ञातव्याः ” क्षत्रियकों यह विशेष है ‘ भगवन् अहं क्षत्रियो जातः ’ आदेश समादेश दोनों कहने, अनुज्ञा न कहनी. करणकारणमें ‘ कर्त्तव्यं ’ ‘ कारयितव्यं ’ ऐसे कहना, ‘ अनुज्ञा-तव्यं ’ ऐसे न कहना. । और वैश्यको आदेश ही कहना, समादेश अनुज्ञा यह दोनों न कहने. । ‘ कर्त्तव्यं ’ कहना, ‘ कारयितव्यं ’ ‘ अनुज्ञा-तव्यं ’ यह न कहने. । तदपीछे उपनीत हाथ जोड़के कहे. । ‘ हे भगवन् ! आदिश्यतां व्रतादेशः । ’ तब गुरु आदेश करे अर्थात् व्रतादेश कथन करे. । तहां प्रथम ब्राह्मणप्रति व्रतादेश कहते हैं.

यथा. ॥

॥ मूलम् ॥

परमेष्ठिमहामंत्रो विधेयो हृदये सदा ॥

निर्ग्रथानां मुनीन्द्राणां कार्यं नित्यमुपासनम् ॥ १ ॥

त्रिकालमर्हत्पूजा च साभाविकमपि त्रिधा ॥

शक्रस्तवैस्सप्तवेलं वंदनीया जिनोत्तमाः ॥ २ ॥

त्रिकालमेककालं वा स्नानं पूतजलैरपि ॥

मद्यं मांसं तथा क्षौद्रं तथोदुंबरपंचकम् ॥ ३ ॥

आमगोरससंपृक्तं द्विदलं पुष्पितौदनम् ॥

संधानमपि संसक्तं तथा वै निशि भोजनम् ॥ ४ ॥

शूद्रान्नं चैव तैवेद्यं नाश्नीयान्मरणेऽपि ॥ ५ ॥

प्रजार्थं गृहवासेऽपि संभोगो न तु कामतः ॥ ६ ॥

आर्यवेदचतुष्कं च पठनीयं यथाविधि ॥

कर्षणं पाशुपाल्यं च सेवावृत्तिं विवर्जयेः ॥ ७ ॥

सत्यं वचः प्राणिरक्षामन्यस्त्रीधनवर्जनम् ॥

कषायविषयत्यागं विदध्याः शौचभागपि ॥ ८ ॥

प्रायः क्षत्रियवैश्यानां न भोक्तव्यं गृहे त्वया ॥

ब्राह्मणानामार्हतानां भोजनं युज्यते गृहे ॥ ९ ॥

स्वज्ञातेरपि मिथ्यात्ववासितस्य पलाशिनः ॥
 न भोक्तव्यं गृहे प्रायः स्वयंपाकेन भोजनम् ॥ ९ ॥
 आमाम्नमपि नीचानां न ग्राह्यं दानमंजसा ॥
 भ्रमता नगरे प्रायः कार्यः स्पर्शो न केनचित् ॥ १० ॥
 उपवीतं स्वर्णमुद्रां नांतरीयमपि त्यजेः ॥
 कारणांतरमुत्सृज्य नोष्णीषं शिरसि व्यधाः ॥ ११ ॥
 धर्मोपदेशः प्रायेण दातव्यः सर्वदेहिनाम् ॥
 व्रतारोपं परित्यज्य संस्कारान् गृहमेधिनाम् ॥ १२ ॥
 निर्ग्रन्थगुर्वनुज्ञातः कुर्याः पंचदशापि हि ॥
 शांतिकं पौष्टिकं चैव प्रतिष्ठामर्हदादिषु ॥ १३ ॥
 निर्ग्रन्थानुज्ञया कुर्याः प्रत्याख्यानं च कारयेः ॥
 धार्यं च दृढसम्यक्त्वं मिथ्याशास्त्रं विवर्जयेः ॥ १४ ॥
 नानार्यदेशे गंतव्यं त्रिशुद्ध्याशौचमाचरेः ॥
 पालनीयस्त्वया वत्स व्रतादेशो भवावधिः ॥ १५ ॥

॥ इतिब्राह्मणव्रतादेशः ॥

[भाषार्थः] परमेष्ठिमहामंत्र सदा हृदयमें धारण करना, मिर्ग्रन्थ मुनींद्रोकी नित्य उपासना करनी। तीन कालमें अरिहंतकी पूजा करनी, तीनवार सामायिक करनी, शक्रस्तवसें सातवार चैत्यवंदना करनी। छाने हुए शुद्ध जलसें त्रिकालमें वा, एककालमें स्नान करना, मदिरा, मांस, मधु, माखण * पांच जातिके उदुंबरफल, आमगोरससंयुक्त अर्थात् कच्चे विना गरम करे गोरस दूध दही छाछके साथ द्विदल अन्न, जिसपर नीली फूली आजावे सो अन्न जीवोत्पत्तिसंयुक्त संधान अर्थात् तीन दिन

* तक्रमें पडा हुआ माखण औषधादिकमें ग्राह्य होनेसें सूत्रकारने लिखा नहीं है, तथापि तद्वर्णिगंत अंतर्मुहूर्तीनंतर अभक्ष्य ही जाणना ॥

उपरांतका आचार, रात्रिभोजन, शूद्रका अन्न, देवके आगे चढा नैवेद्य इन पूर्वोक्त वस्तुओंको मरणांतमें भी न खाना । संतानोत्पत्तिकेवास्ते गृह-वासमें स्त्रीसँ संभोग करना न तु कामासक्त होके । चारों आर्यवेदविधिसँ पढने, खेती, पशुपालपणा और सेवावृत्ति (नौकरी) येह नहीं करने । शुचिमान् ऐसे तैनेँ सत्य वचन बोलना, प्राणिकी रक्षा करनी, अन्य स्त्री और अन्य धन येह वर्जने, कषाय विषयको त्यागने, प्रायः क्षत्रिय और वैश्योके घरमें तैनेँ भोजन न करना, आर्हत ब्राह्मणोंके घरमें भोजन करना तुझको योग्य है । अपनी ज्ञातिका जो मिथ्यात्ववासित होवे, और मांसाहारी होवे तिसके घरमें भी भोजन नहीं करना । प्रायः आपही पकाके भोजन करना । कच्चे अन्नका भी दान नीचोंका न ग्रहण करना, नगरमें भ्रमण करतां किसीका भी प्रायः स्पर्श न करना । उपवीत, स्वर्णमुद्रा और अंतरीय, इनको त्याग न करने । कारणांतरको वर्जके शिरके उपर उष्णीष धारण न करना । प्रायः सर्व मनुष्योंको धर्मोपदेश देना, व्रतारोपको वर्जके निर्ग्रथ गुरुकी आज्ञासँ पंचदश १५ संस्कार गृहस्थोंको करने, तथा शांतिक, पौष्टिक, जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठादि करावने । निर्ग्रथकी आज्ञासँ प्रत्याख्यान करना, और अन्यको करावना; सम्यक्त्वको दृढ धारण करना, मिथ्याशास्त्रकी श्रद्धा वर्जनी । अनार्य देशमें जाना नहीं, तीनों शुद्धियां करके शौच आचरण करना; हे वत्स ! तैनेँ पूर्वोक्त व्रतादेश जबतक संसारमें रहे तबतक पालना ॥ १५ ॥ इतिब्राह्मणव्रतादेशः ॥

अथक्षत्रियव्रतादेशः ॥

॥ मूलम् ॥

परमेष्ठिमहामंत्रः स्मरणीयो निरंतरम् ॥

शक्रस्तवैस्त्रिकालं च वंदनीया जिनेश्वराः ॥ १ ॥

मयं मांसं मधु तथा संधानोदुंबरादि च ॥

निशि भोजनमेतानि वर्जयेदतियत्नतः ॥ २ ॥

दुष्टनिग्रहयुद्धादिवर्जयित्वा वधोगिनाम् ॥

न विधेयः स्थूलमृषावादस्त्यक्तव्य एव च ॥ ३ ॥

परनारीं परधनं त्यजेदन्यविकथनम् ॥
 युक्त्यासाधूपासनं च द्वादशव्रतपालनम् ॥ ४ ॥
 विक्रमस्याविरोधेन विधेयं जिनपूजनम् ॥
 धारणं चित्तयत्नेन स्वोपवीतांतरीययोः ॥ ५ ॥
 लिंगिनामन्यविप्राणामन्यदेवालयेष्वपि ॥
 प्रणामदानपूजादि विधेयं व्यवहारतः ॥ ६ ॥
 सांसारिकं सर्वकर्म धर्मकर्मापि कारयेत् ॥
 जैनविप्रैश्च निर्ग्रथैर्दृढसम्यक्त्ववासितः ॥ ७ ॥
 रणे शत्रुसमाकीर्णे धार्यो वीररसो हृदि ॥
 युद्धे मृत्युभयं नैव विधेयं सर्वथापि हि ॥ ८ ॥
 गोब्राह्मणार्थे देवार्थे गुरुमित्रार्थ एव च ॥
 स्वदेशभंगे युद्धे च सोढव्यो मृत्युरप्यलम् ॥ ९ ॥
 ब्राह्मणक्षत्रियोर्नैव क्रियाभेदोस्ति कश्चन ॥
 विहायान्यव्रतानुज्ञाविद्यावृत्तिप्रतिग्रहान् ॥ १० ॥
 दुष्टनिग्रहणं युक्तं लोभं भूमिप्रतापयोः ॥
 ब्राह्मणव्यतिरिक्तं च क्षत्रियोदानमाचरेत् ॥ ११ ॥

॥ इतिक्षत्रियव्रतादेशः ॥

अथक्षत्रियव्रतादेश कहते हैं. ॥ परमेष्ठिमहामंत्र निरंतर स्मरण करना शक्रस्तवोंकरके त्रिकाल जिनेश्वरको वंदन करना. । मद्य, मांस, मधु, संधान, पांच उदुंबरादि, आदिशब्दसें आमगोरससंयुक्त द्विदल, पुष्पितौदन, ग्रहण करना, और रात्रिभोजन, इनको यत्नसें वर्जें । दुष्टका निग्रह करना, और युद्धादि वर्जके प्राणियोंका बध न करना, स्थूलमृषावादत्याग करना, न बोलना इत्यर्थः । परस्त्रीका और परधनका त्याग करना; परकी निंदाका त्याग करे, युक्तिसें साधुओंकी उपासना करे, और बारां व्रत पालन करे । अपनी शक्ति अनुसार जिनपूजन करना, चित्तयत्नसें

अर्थात् उपयोगसें स्वउपवीत, और अंतरीयको धारण करना । लिंगियोंको, अन्य ब्राह्मणोंको, और अन्यदेवालयोंमें भी, प्रणाम दान पूजादि काम पड़े तो, लोकव्यवहारसें करने । संसारिक सर्व कर्म जैनब्राह्मणों और धर्म कर्म निर्ग्रंथों करके करवावे. दृढसम्यक्त्वकी वासनावाला होवे । शत्रुओंकरके समाकीर्ण रणमें हृदयके विषे वीररस धारण करना, युद्धमें मृत्युका भय सर्वथा नहीं करना । गौ ब्राह्मणके अर्थें, देवके अर्थें, गुरु और मित्रके अर्थें, स्वदेशके भंग होते, और युद्धमें, मृत्यु भी सहन करना योग्य है । ब्राह्मण और क्षत्रियकी क्रियामें कुछ भी भेद नहीं है, परं अन्यको व्रतअनुज्ञा देनी, विद्यावृत्ति प्रतिग्रह (स्वीकार-दान) इनको वर्जके दुष्टोंका निग्रह करना योग्य है, भूमि और प्रतापका लोभ करना, ब्राह्मणसें व्यतिरिक्त क्षत्रिय दान आचरण करे ॥ ११ ॥ इति क्षत्रियव्रतादेशः ॥

अथ वैश्यव्रतादेशः ॥

॥ मूलम् ॥

त्रिकालमर्हत्पूजा च सत्तवलं जिनस्तवः ॥

परमेष्ठिस्मृतिश्चैव निर्ग्रंथगुरुसेवनम् ॥ १ ॥

आवश्यकं द्विकालं च द्वादशव्रतपालनम् ॥

तपोविधिर्गृहस्थार्हो धर्मश्रवणमुत्तमम् ॥ २ ॥

परनिंदावर्जनं च सर्वत्राप्युचितक्रमः ॥

वाणिज्यपाशुपाल्याभ्यां कर्षणेनोपजीवनम् ॥ ३ ॥

सम्यक्त्वस्यापरित्यागः प्राणनाशेऽपि सर्वथा ॥

दानं मुनिभ्य आहारपात्राच्छादनसद्गनाम् ॥ ४ ॥

कर्मादानविनिर्मुक्तं वाणिज्यं सर्वमुत्तमम् ॥

उपनीतेन वैश्येन कर्त्तव्यमिति यत्नतः ॥ ५ ॥

॥ इतिवैश्यव्रतादेशः ॥

अथ वैश्यव्रतादेश कहते हैं ॥ त्रिकाल अर्हत्पूजा करनी, सातवार जिनस्तव चैत्यवन्दन करना, पंचपरमेष्ठिमंत्रका स्मरण करना, निर्ग्रन्थ गुरुकी सेवा करनी । दो कालमें (प्रातः कालमें और सायं कालमें) आवश्यक (प्रतिक्रमणादि) करना. बारां व्रत पालने, गृहस्थोचित तपोविधि करना, उत्तम धर्म श्रवण करना, परकी निंदा वर्जनी, सर्वत्र उचित काम करना, वाणिज्य, पशुपालन और खेती करके आजीविका करनी. । सर्वथाप्रकारे प्राणोंका नाश होवे तो भी, सम्यक्त्व नहीं त्यागना; मुनियोंको आहार, पात्र, वस्त्र, मकान (उपाश्रय) का दान करना. । कर्मादानसे रहित सर्व उत्तम वाणिज्य (व्यापार) करना, उपनीत वैश्यको ये पूर्वोक्त यत्नसें करणे योग्य है. ॥ इतिवैश्यव्रतादेशः ॥

अथ चातुर्वर्ण्यस्य समानो व्रतादेशः ॥

॥ मूलम् ॥

निजपूज्यगुरुप्रोक्तं देवधर्मादिपालनम् ॥
 देवार्चनं साधुपूजा प्रणामोविप्रलिंगिषु ॥ १ ॥
 धनार्जनं च न्यायेन परनिंदाविवर्जनम् ॥
 अवर्णवादो न क्वापि राजादिषु विशेषतः ॥ २ ॥
 स्वसत्त्वस्यापरित्यागो दानं वित्तानुसारतः ॥
 आयोचितो व्ययश्चैव काले काले च भोजनम् ॥ ३ ॥
 न वासोऽल्पजले देशे नदीगुरुविवर्जिते ॥
 न विश्वासो नरेन्द्राणां नागरीयनियोगिनाम् ॥ ४ ॥
 नारीणां च नदीनां च लोभिनां पूर्ववैरिणाम् ॥
 कार्यं विना स्थावराणामहिंसा देहिनामपि ॥ ५ ॥
 नासत्याहितवाक् चैव विवादो गुरुभिर्न च ॥
 मातापित्रोर्गुरोश्चैव माननं परतत्त्ववत् ॥ ६ ॥

शुभशास्त्राकर्णनं च तथा नाऽभक्ष्यभक्षणम् ॥
 अत्याज्यानां न च त्यागोप्यऽघात्यानामघातनम् ॥ ७ ॥
 अतिथौ च तथा पात्रे दीने दानं यथाविधि ॥
 दरिद्राणां तथांधानामापद्भारभृतामपि ॥ ८ ॥
 हीनाङ्गानां विकलानां नोपहासः कदाचन ॥
 समुत्पन्नक्षुत्पिपासाघृणाक्रोधादिगोपनम् ॥ ९ ॥
 अरिषड्वर्गविजयः पक्षपातो गुणेषु च ॥
 देशाचाराऽऽचरणं च भयं पापापवादयोः ॥ १० ॥
 उद्वाहः सदृशाचारैः समजात्यन्यगोत्रजैः ॥
 त्रिवर्गसाधनं नित्यमन्योन्याप्रतिबंधतः ॥ ११ ॥
 परिज्ञानं स्वपरयोर्देशकालादिचिंतनम् ॥
 सौजन्यं दीर्घदर्शित्वं कृतज्ञत्वं सलज्जता ॥ १२ ॥
 परोपकारकरणं परपीडनवर्जनम् ॥
 पराक्रमः परिभवे सर्वत्र क्षांतिरन्यदा ॥ १३ ॥
 जलाशयश्मशानानां तथा दैवतसद्गनाम् ॥
 निद्राहाररतादीनां संध्यासु परिवर्जनम् ॥ १४ ॥
 प्रवेशोल्लंघनं चैव तटे शयनमेव च ॥
 कूपस्य वर्जनं नद्यालंघनं तरणीं विना ॥ १५ ॥
 गुर्वासनादिशय्यासु तालवृक्षे कुभूमिषु ॥
 दुर्गोष्ठिषु कुकार्येषु सदैवासनवर्जनम् ॥ १६ ॥
 न लंघनं च गर्त्तादिर्नदुष्टस्वामिसेवनम् ॥
 न चतुर्थीदुनग्नस्त्रीशक्रचापविलोकनम् ॥ १७ ॥
 हस्त्यश्वनखिनां चापवादिनां दूरवर्जनम् ॥
 दिवासंभोगकरणं वृक्षस्योपासनं निशि ॥ १८ ॥

कलहे तत्समीपं च वर्जनीयं निरंतरम् ॥
 देशकालविरुद्धं च भोज्यं कृत्यं गमागमौ ॥ १९ ॥
 भाषितं व्यय आयश्च कर्त्तव्यानि न कर्हिचित् ॥
 चातुर्वर्ण्यस्य सर्वस्य व्रतादेशोयमुत्तमः ॥ २० ॥
 इतिचातुर्वर्ण्यस्यसमानोव्रतादेशः ॥

अथ चारों वर्णोंका समान व्रतादेश कहते हैं. ॥ अपने पूज्य गुरुके कहे देवधर्मादिका पालना, देवपूजा करनी, साधुकी यथायोग्य पूजा करनी, ब्राह्मण और लिंगधारीको प्रणाम करना. । न्यायसें धन उपार्जन करना. परकी निंदा वर्जनी, किसीका भी अवर्णवाद न बोलना, राजादि-विषयक तो विशेषसें अवर्णवाद न बोलना. । अपने सत्त्वको छोड़ना नहीं, धनके अनुसार दान देना, लाभानुसार खरच करना, भोजनके कालमें भोजन करना. । थोड़े जलवाले देशमें वसना नहीं, नदी और धर्मगुरुवर्जित देशमें भी नहीं वसना. । राजा, राज्याधिकारी, स्त्री, नदी, लोभी, पूर्ववैरी, इनोंका विश्वास नहीं करना. । कार्यविना स्थावर जीवोंकी भी हिंसा नहीं करनी. । असत्य अहितकारि वचन नहीं बोलना, गुरुओं (बड़ों) के साथ विवाद नहीं करना. माता, पिता और गुरु, इनको उत्कृष्ट तत्त्वकीतरें मान सत्कार करना. । शुभ अष्टादश दूषणरहित सर्वज्ञोक्त शास्त्रका श्रवण करना; अभक्ष्य (नहीं खाने योग्य) का भक्षण नहीं करना; जे त्यागने योग्य नहीं है, उनका त्याग नहीं करना; जे मारणे योग्य नहीं है, तिनको मारणा नहीं. अतिथि, सुपात्र, और दीन, इनको यथाविधि यथायोग्य दान देना; दरिद्र, अंधे, दुःखी, इनको भी यथाशक्ति दान देना. । हीन अंगवालोंको, और विकलोंको कदापि हसना नहीं. । भूख, तृषा, घृणा, क्रोधादि उत्पन्न हुए भी, गोपन करने. । षट् (६) अरिवर्गका विजय करना, गुणोंमें पक्षपात करना, देशाचार आचरण करना, पाप और अपवादका भय करना. । सदृश आचारवाले, समजाति, और अन्य गोत्रजोंके साथ विवाह करना; धर्म अर्थ कामको निरंतर परस्पर अप्रतिबंधसें साधन करना. । अपने और परायेका ज्ञान

करना, देशकालादिका चिंतन करना, सौजन्य धारण करना, दीर्घदर्शी होना, कृतज्ञ होना, लज्जालु होना. परोपकार करना, परको पीडा न करनी, अपना परिभव (तिरस्कार) होवे तब पराक्रम दिखाना, अन्यदा सर्वत्र क्षांति करनी.। जलाशय, श्मशान, देवल, इनमें और तीन संध्यामें निद्रा, आहार, मैथुनादि वर्जना.। कूपमें प्रवेश करना, कूपको उल्लंघन करना, कूपकांठेपर शयन करना, इन सर्वको वर्जना; तथा नावाविना नदीका लंघना वर्जना.। गुरुके आसनशय्यादिके ऊपर, ताडवृक्षके हेठें, बुरी भूमिमें, दुर्गोष्ठिमें, कुकार्यमें, बैठना सदाही वर्जना.। खाड कूदनी नहीं, दुष्ट स्वामीकी सेवा नहीं करनी; चौथका चंद्र, नग्न स्त्री, इंद्रधनुः, इनको देखना नहीं.। हाथी, घोडा, नखावाला, और निंदक, इनको दूरसे वर्जना.। दिनमें संभोग (मैथुन) न करना, रात्रिको वृक्षका सेवन न करना.। कलह, और कलहका समीप, निरंतर वर्जना.। देशकाल विरुद्ध, भोजन, कार्य, गमन, आगमन, भाषण, व्यय (खर्च) और आय (लाभ) ये कदापि न करने. यह पूर्वोक्त उत्तम व्रतादेश चारों वर्णोंका है. ॥ २० ॥ इति चातुर्वर्ण्यस्य समानोव्रतादेशः ॥

गृह्यगुरु, पूर्वोक्त प्रकारसे शिष्यको व्रतादेश करके, आगे करके जिन प्रतिमाको तीन प्रदक्षिणा करावे. फिर पूर्वाभिमुख होके शक्रस्तव पढ़े.। तदपीछे गृह्यगुरु, आसन ऊपर बैठ जावे, और शिष्य 'नमोस्तु' कहता हुआ गुरुके पगोंमें पडके ऐसे कहे, "भगवन् भवद्भिर्मम व्रतादेशो दत्तः" तब गुरु कहे, "दत्तःसुगृहीतोस्तु सुरक्षितोस्तु स्वयं तर परं तारय संसारसागरात्" ऐसे कहके नमस्कार पढ़ता हुआ ऊठके दोनों. गुरु शिष्य चैत्यवंदन करें. तदपीछे ब्राह्मणने, विप्र क्षत्रिय वैश्यके घरमें भिक्षाटन करना; क्षत्रियने शस्त्र ग्रहण करना; और वैश्यने अन्नदान करना. ॥

इत्युपनयने व्रतादेशः ॥

अथ व्रतविसर्गः कथ्यते—अथ व्रतविसर्ग कहते हैं. ॥ ब्राह्मणने आठ वर्षसे लेके सोलां वर्षपर्यंत, दंड और अजिन धारण करके, भिक्षावृत्ति

करके भोजन करना, यह उत्तम पक्ष है. क्षत्रियने दंड अजिन धारण करके दश वर्षसें लेके सोलां वर्ष पर्यंत आपही पाक करके, देवगुरुकी सेवामें तत्पर होके, भोजन करना; और वैश्यने दंड अजिन धारण करके स्वकृत भोजन करके बारां वर्षसें लेके सोलां वर्ष पर्यंत भोजन करना; यह उत्तम पक्ष है. । यदि कार्यव्यग्रतासें तितने दिन न रह सके तो, छ (६) मास पर्यंत रहना. तदभावे एक मास पर्यंत, तदभावे पक्ष पर्यंत, तदभावे तीन दिन रहना. यदि तीन दिन भी न रह सके तो, तिसही उपनयन-व्रतादेशके दिनमेंही विसर्ग करिये, सोही कहे हैं. । उपनीत, तीन २ प्रदक्षिणा करके चारों दिशायोंमें जिनप्रतिमाके आगे पूर्ववत् युगादिजिनस्तोत्र सहित शक्रस्तव पढ़े. तदपीछे आसनपर बैठे गुरुके आगे नमस्कार करके हाथ जोड़के ऐसैं कहे ॥ “ भगवन् देशकालाद्यपेक्षया व्रतविसर्गमादिश ” ॥ गुरु कहे ॥ “ आदिशामि ॥ ” फिर नमस्कार करके शिष्य कहे ॥ “ भगवन् ममव्रतविसर्ग आदिष्टः ॥ ” गुरु कहे ॥ “ आदिष्टः ॥ ” फिर नमस्कार करके शिष्य कहे ॥ “ भगवन् व्रतबंधो विमृष्टः ॥ ” गुरु कहे ॥ “ जिनोपवीतधारणेन अविमृष्टोस्तु स्वजन्मतः षोडशाब्दीं ब्रह्मचारी पाठधर्मनिरतस्तिष्ठेः ॥ तदपीछे पंचपरमेष्ठिमंत्र पढ़ता हुआ शिष्य, मौंजी, कौपीन, वल्कल, दंड, इनको दूर करके, गुरुके आगे स्थापन करे; और आप जिनोपवीत-धारी श्वेतवस्त्र उत्तरीय होके गुरुके आगे नमस्कार करके बैठे, तब गुरु तिस बारां तिलकधारी उपनीतके आगे उपनयनका व्याख्यान करे. ।

तद्यथा ॥ आठ वर्षके ब्राह्मणको, दश वर्षके क्षत्रियको, और बारां वर्षके वैश्यको, उपनयन करना तिसमें गर्भमास भी बीचमेंही गिणने ।

तथाच ॥

“जिनोपवीतमिति जिनस्य उपवीतं मुद्रासूत्रमित्यर्थः ॥ ”

जिनका उपवीत अर्थात् मुद्रासूत्र सो कहावे जिनोपवीत. । नवब्रह्मगु-प्तिगर्भरत्नत्रय, येह पुरा, श्रीयुगादिदेवने गृहस्थीवर्णत्रयको अपनी मुद्राका धारण करना यावत् जीवतांइ कहा था. । तदपीछे तीर्थके व्यवच्छेद हुए,

मिथ्यात्वको प्राप्त हुए ब्राह्मणोंने हिंसा प्ररूपणसे चारों वेदको मिथ्या पथमें प्राप्त करे हुए, पर्वत और वसुराजासे प्रायः हिंसक यज्ञके प्रवृत्त हुए, 'यज्ञोपवीत' ऐसा नाम धारण करा. मिथ्यादृष्टि यथेच्छासे प्रलाप करो ! परंतु जिनमतमें तो, जिनोपवीतही नाम है, नतु यज्ञोपवीत. तिसवास्ते तैने इस जिनोपवीतको अच्छीतरें धारण करना, मासमासपीछे नवीन धारण करना; प्रमादसे जिनोपवीत जाता रहे, वा टुट जावे तो, तीन उपवास करके नवीन धारण करना. प्रेतक्रियामें दक्षिण स्कंधके ऊपर, और वाम कक्षाके हेठें, ऐसैं विपरीत धारण करना. क्योंकि, सो विपरीत कर्म है. । मुनि भी, मृत मुनिके त्यागनमें तथाविध विपरीतही वस्त्र पहनते हैं, जिसवास्ते, तूं पुरा जन्मकरके शूद्र होता भया, सांप्रत संस्कारविशेषकरके ब्रह्मगुप्तिके धारणसे ब्राह्मण, वा क्षता-त्राणेन-त्राणकरके क्षत्रिय, वा न्यायधर्ममें प्रवेश करनेसे वैश्य हुआ है; तिसवास्ते, क्रियासहित इस जिनोपवीतको अच्छीतरें ग्रहण करना, अच्छीतरें रखना. तेरेको सद्धर्मवासना उपनयनविधि क्षयरहित होवे. ऐसैं व्याख्यान करके परमेष्ठिमंत्र पढ़कर दोनों गुरु शिष्य खड़े होवे. पीछे चैत्यवंदन, और साधुवंदन करे. ॥ इत्युपनयने व्रतविसर्गविधिः ॥

अथ गोदानविधिर्यथा ॥

अथ गोदानविधि लिखते हैं. ॥ तदा व्रतविसर्गके अनंतर शिष्यसहित गुरु, जिनको तीन २ प्रदक्षिणा करके पूर्ववत् चारों दिशामें शक्रस्तवका पाठ करे. पीछे गृह्यगुरु, आसनपर बैठे तब शिष्य गुरुको तीन प्रदक्षिणा करके नमस्कार करके हाथ जोड़के खड़ा होके, गुरुको विज्ञापना करे.

यथा ॥

“ ॥ भगवन् तारितोहं निस्तारितोहं उत्तमः कृतोहं सत्तमः
कृतोहं पूतः कृतोहं पूज्यः कृतोहं तद्भगवन्नादिश प्रमाद-
बह्वले गृहस्थधर्मे मम किंचनापि रहस्यभूतं सकृतं ॥ ”

हे भगवन् ! तारा मुझको, निस्तारा मुझको, उत्तम करा मुझको, अति-
शयसाधु (श्रेष्ठ) करा मुझको, पवित्र करा मुझको, पूज्य करा मुझको,
तिसवास्ते हे भगवन् ! प्रमादबहुल गृहस्थधर्ममें मेरेको कुछक रहस्यभूत
सुकृत कथन करो ॥

तब गुरु कहे ॥

“ ॥ वत्स सुष्ठुनुष्ठितं सुष्ठु पृष्ठं ततः श्रूयताम् ॥ ”

हे वत्स अच्छा करा, भला पूछा, तिसवास्ते तूं श्रवण कर ॥

दानं हि परमो धर्मो दानं हि परमा क्रिया ॥

दानं हि परमो मार्गस्तस्माद्दाने मनः कुरु ॥ १ ॥

दया स्यादभयं दानमुपकारस्तथाविधः ॥

सर्वो हि धर्मसंघातो दानेन्तर्भावमर्हति ॥ २ ॥

ब्रह्मचारी च पाठेन भिक्षुश्चैव समाधिना ॥

वानप्रस्थस्तु कष्टेन गृही दानेन शुद्ध्यति ॥ ३ ॥

ज्ञानिनः परमार्थज्ञा अर्हन्तो जगदीश्वराः ॥

व्रतकाले प्रयच्छन्ति दानं सांवत्सरं च ते ॥ ४ ॥

गृह्णतां प्रीणन्सम्यक् ददातां पुण्यमक्षयम् ॥

दानतुल्यस्ततो लोके मोक्षोपायोऽस्ति नाऽपरः ॥ ५ ॥

अर्थः—दानही परम उत्कृष्ट धर्म है, दानही परमा क्रिया है, दानही
परम मार्ग है, तिसवास्ते दान देनेमें मन कर । अभयदानसें दया होवे
है, दानसेंही तथाविध उपकार होवे है, सर्वही धर्मसमूह दानमें अंतर्भाव
हो सक्ता है । ब्रह्मचारी पाठ करके, साधु समाधि करके, वानप्रस्थ कष्ट क-
रके, और गृहस्थी दान करके शुद्ध होता है । तीन ज्ञानके धर्त्ता परमार्थके
जाणकार, ऐसे अर्हत भगवंत जगदीश्वर भी व्रतसमयमें सांवत्सर दान
देते हैं । दान ग्रहण करनेवालेको तो, दान तृप्त करता है; और देनेवा-
लेको अक्षय पुण्य प्राप्त कराता है; तिसवास्ते दानके समान दूसरा कोई
मोक्षका उपाय लोकमें नहीं है ॥ ५ ॥ जिसवास्ते हे वत्स ! तैनें ब्राह्मण-

पणा, वा क्षात्रियपणा, वा वैश्यपणा प्राप्त करा है, अंगीकार करा है; तिस-
वास्ते हे वत्स ! तूं गृहस्थधर्ममें मोक्षके सोपानरूप दान देनेका प्रारंभ
कर. । तब नमस्कार करके शिष्य कहे, हे भगवन् ! मुझको दानका
विधी कहो. । गुरु कहे 'आदिशामि' कहता हूं ।

यथा ॥

गावो भूमिः सुवर्णं च रत्नान्यन्नं च नक्तकाः ॥
गजाश्वा इति दानं तदष्टधा परिकीर्तयेत् ॥ १ ॥
एतच्चाष्टविधं दानं विप्राणां गृहमेधिनाम् ॥
देयं न चापि यतो गृह्णन्त्येतच्च निःस्पृहाः ॥ २ ॥
यतिभ्यो भोजनं वस्त्रं पात्रमौषधपुस्तके ॥
दातव्यं द्रव्यदानेन तौ द्वौ नरकगामिनौ ॥ ३ ॥

अर्थः—गौ १, भूमि २, सुवर्ण ३, रत्न ४, अन्न ५, नक्तक* ६, हाथी ७,
और घोडा ८, येह आठ प्रकारका दान कहिये । येह पूर्वोक्त आठ
प्रकारका दान, गृहस्थी ब्राह्मणगुरुओंको देना. और निःस्पृह यति साधु
मुनिराज, इस दानको नहीं लेते हैं । यतियोंको तो, भोजन, वस्त्र, पात्र,
औषध, पुस्तक, इनका दान देना. यतिको द्रव्य (धन) का दान देनेसें,
देनेलेनेवाले दोनोंही नरकगामी होते हैं. ॥ ३ ॥ तिसवास्ते प्रथम गोदान
ग्रहण करना. उपनीत, बछड़ेसहित कपिला, वा पाटला, वा श्वेतरंगकी,
स्नापित, चर्चित, भूषित, धेनुको, आगे ल्यायके, पूंछसे पकडके, रूप्यमय
खुरा है जिसके, स्वर्णमय शृंग है जिसके, ताम्रमय पृष्ठ है जिसकी,
कांस्यमय दोहपात्र है जिसका, ऐसी धेनु, गृह्यगुरुकेतांइ देवे । गुरु तिस
गौकी पूंछको हाथमें धारण करके, यह वेदमंत्र पढे ।

यथा ॥

“॥ॐ अर्हं गौरियं धेनुरियं प्रशस्यपशुरियं सर्वोत्तमक्षीरदधि
घृतेयं पवित्रगोमयमूत्रेयं सुधास्राविणीयं रसोद्भाविनीयं

* नक्तकवस्त्रविशेष.

पूज्येयं हृद्येयं अभिवाद्येयं तद्वत्तेयं त्वया धेनुः कृतपुण्यो
भव प्राप्तपुण्यो भव अक्षयं दानमस्तु अर्हं ॐ ॥ ”

यह कहकर गृह्यगुरु, धेनुको ग्रहण करे. शिष्य तिस गौकेसाथ द्रो-
णप्रमाण सात धान्य, तुलामात्र षट् (६) रस और पुरुषतृप्तिमात्र षट् (६)
विकृती (विगय) देवे ॥ इतिगोदानम् ॥

अन्य सर्व भूमिरत्नादिदानोविषे यह मंत्र पढना ।

यथा ॥

“॥ ॐ अर्हं ” एकमस्ति दशकमस्ति शतमस्ति सहस्रमस्ति
अयुतमस्ति लक्षमस्ति प्रयुतमस्ति कोट्यस्ति कोटिदशक-
मस्ति कोटिशतकमस्ति कोटिसहस्रमस्ति कोट्ययुतमस्ति
कोटिलक्षमस्ति कोटिप्रयुतमस्ति कोटाकोटिरस्ति संख्येय-
मस्ति असंख्येयमस्ति अनंतमस्ति अनंतानंतमस्ति दान-
फलमस्ति तदक्षयं दानमस्तु ते अर्हं ॐ ॥ ”

इति परेषां दानानां मंत्रपाठः ॥

यहां उपनयनमें गोदानकाही निश्चय है, शेष दान क्रमकरके अन्यदा
भी देना. गोदानादि दान गृह्यगुरु ब्राह्मणोंकोही देना. निःस्पृह यतियों-
को न देना. तथा तिन यतियोंको, अन्न, पान, वस्त्र, पात्र, भेषज, वसति,
पुस्तकादि दानमें ‘ धर्मलाभः ’ यही मंत्र जाणना. । अथ गृह्यगुरु, उपनी-
तसें गोदान लेके, पर्णानुज्ञा देके, चैत्यवंदन, और साधुवंदन करा-
यके, तैसेंही संघके मिले हुए, मंगलगीतवाजंत्रोंके वाजते हुए,
शिष्यको साधुयोंकी वसतिमें (उपाश्रयमें) ले जावे. तहां मंडली-
पूजा, वासक्षेप, साधुवंदनादि सर्व पूर्ववत् करना. । तदपीछे चतुर्वि-
ध संघकी पूजा, और मुनियोंको वस्त्र, अन्न, पात्रादि दान करे. ॥ इति
गोदानविधिः ॥ संपूर्णोयं चतुर्विधउपनयनविधिः ॥

अथ शूद्रस्योत्तरीयकन्यासविधिः—अथ शूद्रको उत्तरीयकन्यासविधि
लिखते हैं. ॥ सात दिन तैलनिषेकस्नान पूर्ववत् जाणना. । तदनंतर यथाविधि

पौष्टिक, सर्वशिरका मुंडन, वेदिकरण, चतुष्किकाकरण, जिनप्रतिमास्थापन, पूर्ववत् । तदपीछे गृह्यगुरु, जिनेश्वरकी अष्टप्रकारी पूजा करे । चारों दिशाओंमें शक्रस्तव पाठ करे । पीछे गुरु आसनऊपर बैठ जावे । तब शिष्य श्वेत-वस्त्र पहिरके, उत्तरासंगकरके समवसरण और गुरुको, प्रदक्षिणा करके, 'नमोस्तु २' कहता हुआ, गुरुको नमस्कार करके, हाथ जोडके, खड़ा होयके कहे । "॥ भगवन् प्राप्तमनुष्यजन्मार्थदेशार्थकुलस्य मम बोधिरूपां जिनाज्ञां देहि ॥" गुरु कहे "॥ ददामि ॥" शिष्य फिर नमस्कार करके कहे "॥ न योग्योहमुपनयनस्य तज्जिनाज्ञां देहि ॥" गुरु कहे "॥ ददामि ॥" तदपीछे द्वादश (१२) गर्भतंतुरूप, जिनोपवीतप्रमाण दीर्घ (लंबा) कार्पासका, वा रेशमका, उत्तरीयक, परमेष्ठिमंत्र पढ़ता हुआ, जिनोपवीतवत् पहिरावे । पीछे गुरु, पूर्वाभिमुख शिष्यको चैत्यवंदन करवावे । तदपीछे शिष्य 'नमोस्तु २' कहता हुआ, सुखसे बैठे गुरुके पगोंमें पडके, फिर खड़ा होके, हाथ जोडके, ऐसे कहे । "॥ भगवन् उत्तरीयकन्यासेन जिनाज्ञामारोपितोहं ॥" गुरु कहे "॥ सम्यगारोपितोसि तर भवसागरम् ॥" तदपीछे गुरु सन्मुख बैठे शूद्रके आगे व्रतानुज्ञा देवे ॥

यथा ॥

सम्यक्त्वेनाधिष्ठितानि व्रतानि द्वादशैव हि ॥
 धार्याणि भवता नैव कार्यः कुलमदस्त्वया ॥ १ ॥
 जैनर्षीणां तथा जैनब्राह्मणानामुपासनम् ॥
 विधेयं चैव गीतार्थाचीर्णं कार्यं तपस्त्वया ॥ २ ॥
 न निन्द्यः कोपि पापात्मा न कार्यं स्वप्रशंसनम् ॥
 ब्राह्मणेभ्यस्त्वया मानं दातव्यं हितमिच्छता ॥ ३ ॥
 शेषं चतुर्वर्णशिक्षाश्लोकव्याख्यानमाचरेत् ॥
 उत्तरीयपरिभ्रंशे भंगे वाप्युपवीतवत् ॥ ४ ॥
 कार्यं व्रतं प्रेतकर्मकरणं वृषल त्वया ॥
 युक्तिरेषोत्तरासंगानुज्ञायां च विधीयते ॥ ५ ॥

क्षात्राणामथ वैश्यानां देशकालादियोगतः ॥

त्यक्तोपवीतानां कार्यमुत्तरासंगयोजनम् ॥ ६ ॥

धर्मकार्ये गुरोर्दृष्टौ देवगुर्वालयेऽपि च ॥

धार्यस्तथोत्तरासंगः सूत्रवत् प्रेतकर्मणि ॥ ७ ॥

अन्येषामपि कारूणां गुर्वानुज्ञां विनापि हि ॥

गुरुधर्मादिकार्येषु उत्तरासंग इष्यते ॥ ८ ॥

अर्थः—सम्यक्त्वके संयुक्त द्वादश व्रत तैने धारण करने, और कुलका मद न करना. । जैन ऋषियोंकी, और जैन ब्राह्मणोंकी उपासना करनी; तथा गीतार्थाचीर्ण तप करना. । किसी पापात्माको निंदना नही, अपनी प्रशंसा न करनी, हित इच्छके ब्राह्मणोंको मान देना. । शेष चतुर्वर्णशिक्षाश्लोकमें कहे आचारको आचरण करना; उत्तरीयके परिभ्रंशमें, वा भंगमें उपवीतवत् जाणना. । व्रत करना, प्रेतकर्म करना, हे वृषल-शूद्र ! उत्तरासंगकी अनुज्ञामें तैने यह युक्ति करनी. । देशकालादियोगसे त्याग न किया है उपवीत जिनोंने, वैसे क्षत्रिय और वैश्योंको, उत्तरासंग योजन करना. । धर्मकार्यमें, गुरुकी दृष्टिमें, देव और गुरुके मकानमें, तथा प्रेतकर्ममें, सूत्रकीतरें उत्तरासंग धारण करना. । और भी कारुण्यको गुरुकी आज्ञाके विना भी गुरुधर्मादिकार्योंमें उत्तरासंग इच्छते हैं. ॥ ऐसा व्याख्यान करके गुरु शिष्यको चैत्यवंदन करवावे. । परमेष्ठिमंत्रका उच्चार और मंत्रव्याख्यान पूर्ववत्. । इतना विशेष है. शूद्रादिकोंको ' नमो ' के स्थानमें 'णमो' उच्चारण कराना. इतिगुरुसंप्रदायः । तदपीछे शिष्यसहित गुरु, उत्सव करते हुए धर्मागारमें जावे. तहां मंडलीपूजा, गुरुनमस्कार, वासक्षेपादि पूर्ववत्. । तदपीछे मुनियोंको अन्न, वस्त्र, पात्र दान देवे. और चतुर्विध संघकी पूजा करे. ॥ इति उपनयने शूद्रादीनां उत्तरीयकन्यासो-त्तरासंगानुज्ञाविधिः ॥

अथ बटूकरणविधिः—अथ बटूकरणविधि लिखते हैं. ॥ जिसवास्ते सम्यक् उपनीत, वेदविद्यासंयुक्त, दुःप्रतिग्रहवर्जित, अशूद्रान्नभोजन कर-

नेवाले, माहनोंके आचारमें रक्त, सर्व गृह्यसंस्कारप्रतिष्ठादिकर्मोंके कराने-
वाले, ऐसे ब्राह्मण, पूज्य होते हैं। नही, वे पूर्वोक्त ब्राह्मण, क्षत्रियादि
राजायोंको, सेवा, अन्नपाक, तिसके आज्ञा करनी, अभ्युत्थान, चाटुः-मनो-
हर वचन, प्रशंसा, विना नमस्कारके आशीर्वाद देना, विज्ञानकर्म,
कृषिवाणिज्यकरण, तुरंगवृषभादि शिक्षाकरण, इत्यादिवास्ते जोड़ने
कल्पते हैं। इसवास्ते तथाविध पूर्वोक्त कर्मोंमें, बटूकृत ब्राह्मण, योजन
करने योग्य होते हैं। इसवास्ते तिन ब्राह्मणोंको बटू करनेका विधि
कहते हैं।

उक्तं च यतः ॥

च्युतव्रतानां व्रात्यानां तथा नैवेद्यभोजिनाम् ॥
कुकर्म्मणामवेदानामजपानां च शस्त्रिणाम् ॥ १ ॥
ग्राम्याणां कुलहीनानां विप्राणां नीचकर्मणाम् ॥
प्रेतान्नभोजिनां चैव मागधानां च बंदिनाम् ॥ २ ॥
घांटिकानां सेवकानां गंधतांबूलजीविनाम् ॥
नटानां विप्रवेषाणां पर्शुरामान्ववायिनाम् ॥ ३ ॥
अन्यजात्युद्भवानां च बंदिवेषोपजीविनाम् ॥
इत्यादिविप्ररूपाणां बटूकरणमिष्यते ॥ ४ ॥

अर्थः-व्रतसें भ्रष्ट हुए, संस्कारहीन, नैवेद्यका भोजन करनेवाले,
कुकर्म्मके करनेवाले, वेदको नही जाणनेवाले, वेद मंत्रोंका जप न करने-
वाले, शस्त्रको धारण करनेवाले, ग्रामके वसनेवाले, कुलहीन, नीच कर्मके
करनेवाले, प्रेतके अन्नका भोजन करनेवाले, मागध-स्तुतिपाठ पढनेवाले
बंदी-राजादिकी स्तुति पढनेवाले, घांटिका बजानेवाले, सेवा करनेवाले,
गंधतांबूलकरके आजीविका करनेवाले, विप्रवेष धारण करनेवाले नट,
पर्शुरामके संतानीय, अन्य जातिसें उत्पन्न हुए, बंदिवेषसें आजीविका
करनेवाले, इत्यादि विप्ररूपको बटूकरण इच्छते हैं। तिसका यह विधि है।
प्रथम तिसके घरमें गृह्यगुरु, यथोक्त विधिसें पौष्टिक करे। पीछे तिसको

शिखावर्जके मुंडन करवावे, तदपीछे तिसको तीर्थोदक मंत्रोंकरके मंत्रित जलकरके स्नान करवावे ।

तीर्थोदकाभिमंत्रणमंत्रो यथा ॥

“॥ ॐ वं वरुणोसि वारुणमसि गांगमसि यामुनमसि गौ-
दावरमसि नार्म्मदमसि पौष्करमसि सारस्वतमसि शात-
द्रवमसि वैपाशमसि सैन्धवमसि चांद्रभागमसि वैतस्तमसि
ऐरावतमसि कावेरमसि कारतोयमसि गौमतमसि शैतम-
सि शैतोदमसि रोहितमसि रोहितांशमसि सारेयवमसि
हारिकांतमसि हारिसालिलमसि नारिकांतमसि नारकांतमसि
रौप्यकूलमसि सौवर्णकूलमसि सालिलमसि रक्तवतमसि
नैमग्नसलिलमसि उन्मग्नसलिलमसि पाद्ममसि महापाद्म-
मसि तैगिच्छमसि कैशरमसि जीवनमसि पवित्रमसि पा-
वनमसि तदमुं पवित्रय कुलाचाररहितमपि देहिनं ॥”

इस मंत्रसें कुशाग्रकरी सात वार अभिसिंचन करे. पीछे नदीकांटे वा तीर्थऊपर, वा मंदिरमें, वा पवित्र गृहस्थानमें तिस बटूकरण योग्यको, प्रथम तीनगुणी कुशमेखला, तीन प्रकारसें बांधे ।

मेखलाबंधमंत्रो यथा ॥

“॥ ॐ पवित्रोसि प्राचीनोसि नवीनोसि सुगमोसि अजोसि
शुद्धजन्मासि तदमुं देहिनं धृतव्रतमव्रतं वा पावय पुनीहि
अब्राह्मणमपि ब्राह्मणं कुरु ॥ ”

इस मंत्रका तीन वार पाठ करे. ॥ पीछे कौपीन पहिरावे. ।

कौपीनमंत्रो यथा ॥

ॐ अब्रह्मचर्यगुप्तोपि ब्रह्मचर्यधरोपि वा ॥

व्रतः कौपीनबंधेन ब्रह्मचारी निगद्यते ॥ १ ॥

ऐसें तीन वार पढके कौपीन पहिरावणा. । तदपीछे पूर्वोक्त ब्राह्मण-
समान उपवीत, मंत्रपूर्वक पहिरावे. ।

मंत्रो यथा ॥

“॥ॐ सधम्मोसि अधम्मोसि कुलीनोसि अकुलीनोसि सब्रह्मच-
र्योसि अब्रह्मचर्योसि सुमनाअसि दुम्मनाअसि श्रद्दालुरसि
अश्रद्दालुरसि आस्तिकोसि नास्तिकोसि आर्हतोसि सौग-
तोसि नैयायिकोसि वैशेषिकोसि सांख्योसि चार्वाकोसि
सलिंगोसि अलिंगोसि तत्त्वज्ञोसि अतत्त्वज्ञोसि तद्भव
ब्राह्मणोऽमुनोपवीतेन भवंतु ते सर्वार्थसिद्धयः ॥”

इस मंत्रको नव वार पढ़के उपवीत स्थापन करे. । पीछे तिसके हाथमें पलाशका दंड देवे, और मृगचर्म तिसको पहिरावे, और भिक्षा मांगनी करवावे. भिक्षामार्गणकेपीछे उपवीतको वर्जके, मेखला, कौपीन, चर्मदंडादि दूर करे. ।

तदपनयनमंत्रो यथा ॥

“॥ॐ ध्रुवोसि स्थिरोसि तदेकमुपवीतं धारय ॥”

ऐसें तीन वार पढ़े. । पीछे गुरु, धारण किया है श्वेतवस्त्रका उत्तरासंग जिसने, ऐसे तिसको, आगे बिठलाके, शिक्षा देवे. ।

यथा ॥

परनिंदां परद्रोहं परस्त्रीधनवाञ्छनम् ॥

मांसाशनं म्लेच्छकंदभक्षणं चैव वर्जयेत् ॥ १ ॥

वाणिज्ये स्वामिसेवायां कपटं मा कृथाः क्वचित् ॥

ब्रह्मस्त्रीभ्रूणगोरक्षां दैवर्षिगुरुसेवनम् ॥ २ ॥

अतिथीनां पूजनं च कुर्याद्दानं यथा धनम् ॥

अथात्मघातं मा कुर्या मा वृथा परतापनम् ॥ ३ ॥

उपवीतमिदं स्थाप्यमाजन्मविधिवत्त्वया ॥

शेषः शिक्षाक्रमः कथ्यश्चातुर्वर्ण्यस्य पूर्ववत् ॥ ४ ॥

अर्थः—परनिंदा, परद्रोह, परस्त्री, परधनकी वांछा, मांसभक्षण, म्ले-
च्छकंद-लशुनादिभक्षण, इनको वर्जना. । वाणिज्यमें, स्वामीकी सेवामें,
कदापि कपट न करना; ब्राह्मण, स्त्री, गर्भ और गौ, इन चारोंकी रक्षा
करनी; देव, ऋषि और गुरुकी सेवा करनी. । अतिथीयोंका पूजन करना,
धनके अनुसार दान देना, आत्मघात नहीं करना, परको पीडा न
करनी. । जन्मपर्यंत यावज्जीवे तबतक विधिपूर्वक उपवीत धारण करना,
शेष शिक्षाक्रम पूर्ववत् चारों वर्णोंका कथन करना. ॥ पीछे सो बटूकृत,
गुरुको स्वर्ण, वस्त्र, धेनु, अन्न, दान करे. । यहां बटूकरणमें वेदी,
चतुष्किका, समवसरण, चैत्यवंदन, व्रतानुज्ञा, व्रतविसर्ग, गोदान, वास-
क्षेपादि नहीं हैं. ॥ इति बटूकरणविधिः ॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृता-
चारदिनकरस्य ४० उपनयनादिकीर्तननामद्वादशमोदयस्याचार्यश्रीमद्वि०
बा० स० त० समाप्तोऽयं २४ स्तम्भः ॥ १२ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे

द्वादशमोपनयनादिसंस्कारवर्णनोनाम चतुर्विंशस्तम्भः ॥ २४ ॥

॥ अथपञ्चविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ पञ्चविंश स्तम्भमें अध्ययनारंभविधि लिखते हैं ॥ अश्विनी, मूल
पूर्वा ३, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, हस्त, शतभिषक्
स्वाति, चित्रा, श्रवण, धनिष्ठा, येह नक्षत्र और बुध, गुरु, शुक्र, येह
वार विद्यारंभमें शुभ हैं. अर्थात् इनमें प्रारंभ करी विद्या प्राप्त होती है
रवि और चंद्र, मध्यम हैं. मंगल और शनिवार, त्यागने योग्य हैं. । अमावा
स्या, अष्टमी, प्रतिपत् (एकम), चतुर्दशी, रिक्ता, षष्ठी, नवमी, येह
तिथियां विद्यारंभमें सदाही वर्जनी. ।

अथ उपनयनसदृश दिन और लग्नमें विद्यारंभसंस्कारका आरंभ
करिये, तिसका यह विधि है. । गृह्यगुरु प्रथम विधिसें उपनीत पुरुष
घरमें पौष्टिक करे; पीछे गुरु, मंदिरमें, वा उपाश्रयमें, वा कदंबवृक्षकेतले

कुशाके आसनउपर आप बैठके, शिष्यको वामेपासे कुशासनोपरि बिठलाके तिसके दक्षिण कानको पूजके तीनवार सारस्वत मंत्र पढे. पीछे गुरु, अपने घरमें वा अन्य उपाध्यायकी शालामें, वा पौषधागारमें, शिष्यको पालखी, वा घोड़ेपर चढायके मंगलगीतोंके गाते हुए, दान देते हुए, वाजंत्र वाजते हुए, यति गुरुकेपास लेजाके मंडलीपूजापूर्वक वासक्षेप करवाके, पाठशालामें लेजावे. पीछे गुरु शिष्यको आगे बिठलाके येह शिक्षाश्लोक पढे. ।

यथा ॥

अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानांजनशलाकया ॥

नेत्रमुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १ ॥

यासां प्रसादादधिगम्य सम्यक् शास्त्राणि विदन्ति परंपदं ज्ञाः॥

मनीषितार्थप्रतिपादकाभ्यो नमोस्तु ताभ्यो गुरुपादुकाभ्यः ॥२॥

सत्येतस्मिन्नरतिरतिदं गृह्यते वस्तु दूरा-

दप्यासन्नेप्यसति तु मनस्याप्यते नैव किञ्चित् ॥

पुंसामित्यप्यवगतवतामुन्मनीभावहेता-

विच्छा बाढं भवति न कथं सद्गुरुपासनायाम् ॥ ३ ॥

इति मत्वा त्वया वत्स त्रिशुद्धोपासनं गुरोः ॥

विधेयं येन जायंते गोधीकीर्त्तिधृतिश्रियः ॥ ४ ॥

ऐसैं शिष्यको शिक्षा देके, और तिससैं स्वर्ण वस्त्र दक्षिणा लेके, गुरु अपने घरको जावे. पीछे उपाध्याय, सर्वको पहिले मातृका पढावे; पीछे विष्णुको प्रथम आर्यवेद पढावे, पीछे षडंगी, पीछे पुराणादि धर्मशास्त्र पढावे; क्षत्रियको भी ऐसैंही चतुर्दश विद्या पढावे. पीछे आयुर्वेद, धनुर्वेद, दंडनीति और आजीविकाशास्त्र पढावे. वैश्यको धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र और अर्थशास्त्र पढावे. शूद्रको नीतिशास्त्र और आजीविकाशास्त्र पढावे. कारुण्यको तिनके उचित विज्ञानशास्त्र पढावे. पीछे साधुओंको चतुर्विध

आहार वस्त्र पात्र पुस्तक दान देवे । इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचार्य-
रविनकरस्यगृहिधर्मप्रतिबद्धविद्यारंभसंस्कारकीर्तननामत्रयोदशमोदयस्या-
चार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतोवालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं
पञ्चविंशस्तम्भः ॥ १३ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे त्रयो-
दशमविद्यारंभसंस्कारवर्णनोनामपञ्चविंशस्तम्भः ॥ २५ ॥

अथषड्विंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ २६ मे स्तंभमें विवाहविधि लिखते हैं ॥ विवाह जो है सो सम-
कुलशीलवालोंकाही होता है.

यतउक्तं ॥

ययोरेव समं शीलं ययोरेव समं कुलम् ॥

तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥ १ ॥

तिसवास्ते समकुलशील, समजाति, जाने है देशकृत्य जिनोंके, तिन-
का विवाहसंबंध जोडना योग्य है; तिसवास्ते जो अविकृत है, तिसनें
विकृतकुलकी कन्या ग्रहण नहीं करनी । विकृतकुलं यथा । जिनके कुलमें
शरीरऊपर रोम बहुत होवे, अर्शरोग होवे, दाद होवे, चित्रकुष्ठि होवे, नेत्र-
रोग होवे, उदररोग होवे, ऐसे वंशोंकी कन्या न ग्रहण करनी. विकृत कुल
होनेसें । कन्या विकृता यथा । वरसें लंबी होवे, हीन अंगवाली होवे, कपिला
होवे, ऊंची दृष्टिवाली होवे, जिसका भाषण और नाम भयानक होवे, ऐसी
कन्या विचक्षणोंको त्यागने योग्य है. तथा देवता, ऋषि, ग्रह, तारा,
अग्नि, नदी, वृक्षादिकके नामसें जो कन्या होवे, तथा जिसके शरीरऊपर
बहुत रोम होवे, पिंगाक्षी और घरघरास्वरवाली, ऐसी कन्या भी पाणि-
ग्रहणमें वर्जनी. ॥ कन्यादाने वरस्य विकृतं कुलं यथा ॥ हीन होवे, क्रूर
होवे, बधूसहित होवे, दरिद्री होवे, व्यसन (कष्ट) संयुक्त होवे, कन्या-
दानमें ऐसें कुल, और पुरुषको वर्जना. मूर्ख, निर्धन, दूर देशमें रहनेवाला,

शूर योद्धा सूरमा, मोक्षाभिलाषी, कन्यासैं तीनगुणी अधिक आयुवाला, इनको भी कन्या न देनी. तिसवास्ते दोनों अविकृत कुलोंका, और दोनों विकृत कुलवालोंका विवाहसंबंध योग्य है. तथा पांच शुद्धियां देखके वधूवरका संयोग करना, सोही दिखावे हैं. राशि १, योनि २, गण ३, नाडी ४ और वर्ग ५, येह पांच शुद्धियां दोनोंकी देखके वरवधूका संयोग करना. कुल १, शील २, स्वामिपणा ३, विद्या ४, धन ५, शरीर ६ और वय ७, येह सातो गुण वरमें देखने. अर्थात् येह सात गुण वरमें देखके कन्या देनी. आगे जो होवे, सो कन्याका भाग्य है. गर्भसैं आठ वर्षसैं लेके इग्यारह वर्षतांइ कन्याका विवाह करना. * तिसके ऊपरांत रजस्वला होती है. तिसको राका भी कहते हैं. तिसका विवाह शीघ्र होना चाहिये. वरको पाकरके चंद्रबलके हुए, तुच्छ महोत्सवके भी हुए, विवाह करना उचित है.

यतउक्तम् ॥

वर्षमासदिनादीनां शुद्धिं राकाकरग्रहे ॥

नालोकयेच्चंद्रबलं वरं प्राप्य विधापयेत् ॥ १ ॥

* पुरुषका आठ वर्षसैं लेके ८० वर्षके बीच २ विवाह होना चाहिये. क्योंकि, अस्सीवर्ष उपरांत प्रायः पुरुष शुक्ररहित होता है. ।

विवाह दो प्रकारके होते हैं, आर्यविवाह १, और पापविवाह २. । आर्य विवाहके चार भेद हैं. ब्राह्म्यविवाह १, प्राजापत्यविवाह २, आर्षविवाह ३, और दैवतविवाह ४. ये चारों विवाह मातापिताकी आज्ञासैं होनेसैं लौकिक व्यवहारमें धार्मिक विवाह गिने जाते हैं. पापविवाहके भी चार भेद हैं. गांधर्वविवाह १, आसुरविवाह २, राक्षसविवाह ३, और पैशाच विवाह ४. ये चारों करनेसैं स्वेच्छानुसार पापविवाह हैं. ।

* यह कथन प्रायः लौकिकव्यवहारानुसार है. क्योंकि, जैनागममें तो “जोव्वणगमणमणुपत्ता” इतिवचनात्, जब वरकन्या यौवनको प्राप्त होवे, तब विवाह करना. और ‘प्रवचनसारोद्धार’में लिख है कि, सोलां वर्षकी स्त्री, और पच्चीस वर्षका पुरुष, तिनके संयोगसैं जो संतान उत्पन्न होवे, से बलिष्ठ होवे है. इत्यादि मूलगमसैं तो बाललग्नका और वृद्धके विवाहका निषेध सिद्ध होता है. ॥

प्रथम ब्राह्म्यविवाहविधि लिखते हैं । शुभ दिनमें, शुभ लग्नमें, पूर्वोक्त गुणसंयुक्त वरको बुलवाके स्नान अलंकार करके संयुक्त हुए तिस वरकेताइ, अलंकृत कन्या देवे ।

मंत्रो यथा ॥

“॥ ॐ अर्हं सर्वगुणाय सर्वविद्याय सर्वसुखाय सर्वपूजिताय सर्वशोभनाय तुभ्यं वस्त्रगंधमाल्यालंकारालंकृतां कन्यां ददामि प्रतिगृहीष्व भद्रं भव ते अर्हं ॐ ॥”

इस मंत्रकरके बद्धांचलदंपती-स्त्रीभर्ता, अपने घरमें जावे ॥ इति धाम्यो ब्राह्म्यविवाहः ॥ १ ॥

प्राजापत्य विवाह जगत्में प्रसिद्ध है, इसवास्ते विस्तारसें कहेंगे ॥ २ ॥

आर्ष विवाहमें वनमें रहनेवाले मुनि, ऋषि, गृहस्थ अपनी पुत्रीको, अन्यऋषिके पुत्रकेताइ, गौ बैलके साथ देते हैं। तहां अन्य कोई उत्सवादि नहीं होते हैं, इस विवाहका मंत्र जैनवेदोंमें नहीं है। जैन वेदकरके वर्णादिको आश्रित हुए जनोंके आचार कथन करनेसें, जैनोको ऐसे विवाहके अकृत्य होनेसें । दैवतविवाहमें भी ऐसेही जाणना । इन दोनों विवाहोंके मंत्र परसमयसें जाणने ॥ इति धाम्य आर्षविवाहः ॥ ३ ॥

दैवत विवाहमें तो, पिता, अपने पुरोहितकेताइ इष्ट पूर्त कर्मके अंतमें अपनी कन्याको दक्षिणाकीतरें देवे ॥ इति दैवतो धाम्य विवाहः ॥ ४ ॥

ये चार धाम्यविवाह हैं ॥

पितादिके प्रमाणविना, अन्योन्यप्रीतिकरके जो उद्यम होना, सो गांधर्वविवाह ॥ १ ॥

पणबंधके विवाह करना, सो आसुरविवाह ॥ २ ॥

हठसें कन्याको ग्रहण करे, सो राक्षसविवाह ॥ ३ ॥

सुप्त, और प्रमत्तकन्याको ग्रहण करनेसें, पैशाच विवाह कहा जाता है ॥ ४ ॥ माता, पिता, गुरु, आदिकी आज्ञा न होनेसें इन चारों विवाहोंको विवाहज्ञ पुरुष पापविवाह कहते हैं ॥ तथा ब्राह्म्य १, आर्ष २, और दैवत ३,

येह तीन विवाह दुःखमकालकलियुगमें प्रवर्तते नहीं हैं । * चारों पाप-विवाहोंका वेदोक्तविधि भी नहीं है. अधर्म होनेसें. ॥

संप्रति वर्तमान प्राजापत्य विवाहका विधि कहते हैं ॥ मूल, अनुराधा, रोहिणी, मघा, मृगशिर, हस्त, रेवती, उत्तरा ३, स्वाति, इन नक्षत्रोंमें करग्रहण करना. । वेध, एकार्गल, लत्ता, पात, उपग्रहसंयुक्त नक्षत्रोंमें विवाह नहीं करना. । तथा युतिमें, और क्रांति साम्य दोषमें भी नहीं करना. । तीन दिनको स्पर्शनेवाली तिथिमें, अवम् (क्षय) तिथिमें, क्रूर तिथिमें, दग्ध तिथिमें, रिक्ता तिथिमें, अमावास्या, अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी इनमें विवाह नहीं करना. । भद्रामें, गंडांतमें, दुष्टनक्षत्र तिथि वार योगोंमें, व्यतिपातमें, वैधृतिमें और निंद्य वेलामें, विवाह नहीं करना. । सूर्यके क्षेत्रमें बृहस्पति होवे, और बृहस्पतिके क्षेत्रमें सूर्य होवे तो, दीक्षा, प्रतिष्ठा, विवाह प्रमुख वर्जने. । चौमासेमें, अधिमासमें, गुरु शुक्रके अस्त हुए, मल-मासमें, और जन्ममासमें, विवाहादि न करना. । मासांतमें, संक्रांतिमें, संक्रांतिके दूसरे दिनमें, ग्रहणादि सात दिनोंमें भी, पूर्वोक्त कार्य नहीं करना. । जन्मके तिथि, वार, नक्षत्र, लग्नमें; राशि और जन्मके ईश्वरके अस्त हुए, और क्रूर ग्रहोंकरके हत हुए भी, विवाह नहीं करना. । जन्मराशिमें, जन्मराशि और जन्मलग्नसें वारमें और आठमेमें, और लग्नके अंशके अधिपके छठे, और आठमे घरमें गए हुए, लग्न नहीं करना. । स्थिर लग्नमें, वा द्विस्वभावलग्नमें, वा सद्गुण करी संयुक्त चर लग्नमें, उदयास्तके विशुद्ध हुए, विवाह करना. परंतु उत्पातादिकरके विदूषितमें नहीं करना. । लग्न और सप्तम घर, ग्रहकरके वर्जित होवे; तीसरे, छठे, और इग्यारमे घरमें, रवि, मंगल और शनि होवे. । छठे और तीसरे घरमें, तथा पापग्रहवर्जित पांचमें घरमें राहु होवे; लग्नमें तथा पांचमे, चौथे, दशमे, और नवमे घरमें, बृहस्पति होवे. । ऐसेंही शुक्र, बुध, होवे; लग्न, छठे, आठमे, वारमे घरसें, अन्यत्र चंद्रमा होवे, सो भी पूर्ण होवे. । क्रूरकरके दृष्ट, और क्रूरसंयुक्त चंद्र वर्जना; क्रूर, और अंतरस्थ लग्न और चंद्र वर्जने. । इत्यादि गुणसंयुक्त, दोष विवर्जित लग्नमें, शुभ

* गौतमप्रत्यक्षेणाद्या यक्षाः पाणिग्रहत्रय ॥ सुताश्च गोत्रजगुरोर्न भवन्ति कलौ युगे ॥ इतिवचनात् ॥

अंशमें, शुभ ग्रहोंकर दृष्ट हुए, पाणिग्रहण शुभ है. ॥ इत्यादि श्रीभद्रबाहु, वराह, गर्भ, लल्ल, पृथुयशः, श्रीपति, विरचितविवाहशास्त्रके अवलोकनसें शुभ लग्न देखके विवाहका आरंभ करना. ॥

श्लोकः ॥

ततश्च कुलदेशादि गुरुवाक्यविशेषतः ॥

अनुज्ञातं विवाहादि गग्गादिमुनिभिः पुरा ॥ १ ॥

वृत्तम् ॥

सूर्यः षट् त्रिदशस्थितस्त्रिदशषट्सप्ताद्यगश्रंद्रमा

जीवः सप्तनवद्विपंचमगतो वक्रार्कजौ षट्त्रिगौ ॥

सौम्यः षट्द्विचतुर्दशाष्टमगतः सर्वेप्युपांते शुभाः

शुक्रः सप्तमषट्दशाष्टरहितः शार्दूलवत्रासकृत् ॥ १ ॥ ”

स्त्रीयोंको बृहस्पति बलवान् होवे, पुरुषोंको सूर्य बलवान् होवे, और दंप-
तीको चंद्र बलवान् होवे तो, लग्न शोधना. ॥

प्रथम कन्यादानविधि कहते हैं:-पूर्वोक्त समान कुलशीलवाले, अन्य
गोत्रीसें कन्या मांगनी. । पूर्वोक्त गुणविशिष्ट वरकेतांड़ कन्या देनी. ।
कन्याके कुलज्येष्ठने वरके कुलज्येष्ठको, नालिकेर, क्रमुक (सुपारी) जिनो-
पवीत, व्रीही, दूर्वा, हरिद्रा अपने २ देशकुलोचित वस्तु दानपूर्वक कन्या-
दान करना.

तदा गृह्यगुरु वेदमंत्र पठे । स यथा ॥

“ ॥ ॐ अहं परमसौभाग्याय परमसुखाय परमभोगाय
परमधर्माय परमयशसे, परमसन्तानाय भोगोपभोगांतराय-
व्यवच्छेदाय इमां अमुकनाम्नीं कन्यां अमुकगोत्रां अमुक-
नाम्ने वराय अमुकगोत्राय ददाति गृहाण अहं ॐ ॥ ”

पीछे सर्व लोकोंकेतांड़ कन्याके पक्षी तांबूल देवे. । तथा दूर रहे
विवाहकालमें वरके जीत हुए, सा कन्या अन्यको न देनी.

उक्तं च ॥

सकृज्जल्पन्ति राजानस्सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः ॥

सकृत् प्रदीयते कन्या त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ॥ १ ॥

राजाओं एकवार बोलते हैं, पंडित जन एकवार बोलते हैं, कन्या एकवार देइए हैं. पूर्वोक्त तीन कार्य एकएकहीवार होते हैं. ॥ तथा वर भी, तिस कन्याको वस्त्र, आभरण, गंधादिउत्सवसहित, तिसके पिताके घरमें देवे. । कन्याका पिता भी, परिजनसंयुक्त वरको, महोत्सवसहित वस्त्र मुद्रिकादि देवे.

लग्नदिनसें पहिले मासमें, वा पक्षमें वैयग्र्यानुसारें दोनों पक्षोंके स्वजनोंको एकट्ठे करके, सांवत्सर-ज्योतिषिकको उत्तम आसनऊपर बिठलाके, तिसके हाथसें विवाहलग्न भूमिके ऊपर लिखवावे; और रूप्य, स्वर्णमुद्रा, फल, पुष्प, दूर्वा करके जन्मलग्नवत् विवाहलग्नको पूजे. । पीछे ज्योतिषिकको दोनों पक्षोंके वृद्धनें वस्त्रालंकार तांबूलदान देवें. इति विवाहारंभः ॥

तदपीछे कोरे शरावलोंमें यव बोवने । पीछे कन्याके घरमें मातृस्थापना, और षष्ठीस्थापना, षष्ठी आदि प्रक्रमोक्त प्रकारसें करना. । वरके घरमें जिनसमयानुसारियोंको मातृस्थापन, और कुलकरस्थापन करना. । परमतमें गणपति, कंदर्प स्थापन करते हैं. सो सुगम, और लोक प्रसिद्ध है.॥

अथ कुलकर स्थापनविधि कहते हैं. ॥ गृह्यगुरु भूमिपर पड़े गोमय (गोबर) करके लीपी हुई भूमिमें, स्वर्णमय, रूप्यमय, ताम्रमय, वा श्रीपर्णीकाष्ठमय, पट्टा, स्थापन करे. । पट्टकस्थापन मंत्रः

“॥ ॐ आधाराय नमः आधारशक्तये नमः । आसनाय नमः ॥”

इस मंत्रकरके एकवार मंत्रके पट्टेको स्थापन करके, तिस पट्टेको अमृतामंत्रकरके तीर्थजलोंसें अभिषिचन करे. । पीछे चंदन, अक्षत, दूर्वाकरके पट्टेको पूजे. । पीछे आदिमें

“॥ ॐ नमः प्रथमकुलकराय कांचनवर्णाय श्यामवर्ण चंद्रय-
शःप्रियतमासहिताय हाकारमात्रोच्चारख्यापितन्याय्यपथाय
विमलवाहनाभिधानाय इह विवाहमहोत्सवादौ आगच्छ २
इह स्थाने तिष्ठ २ सन्निहितो भव २ क्षेमदो भव २ उत्सवदो
भव २ आनंददो भव २ भोगदो भव २ कीर्तिदो भव २
अपत्यसंतानदो भव २ स्नेहदो भव २ राज्यदो भव २
इदमर्घ्यं पाद्यं बलिं चर्चां आचमनीयं गृहाण २ सर्वो-
पचारान् गृहाण २ ॥ ”

तदपीछे—

“ ॥ ॐ गंधं नमः । ॐ पुष्पं नमः । ॐ धूपं नमः । ॐ
दीपं नमः । ॐ उपवीतं नमः । ॐ भूषणं नमः । ॐ
नैवेद्यं नमः । ॐ तांबूलं नमः ॥ ”

पूर्व मंत्रकरी आवाहन करके, संस्थापन करके, सन्निहित करके, अर्घ्य,
पाद्य, बलि, चर्चा, आचमनीय, दान देवे. अन्य ॐकारादिमंत्रोंकरके,
गंध दो तिलक, दो पुष्प, दो धूप, दो दीप एक उपवीत, दो स्वर्णमुद्रा,
दो नैवेद्य, दो तांबूल, देवे. ॥ १ ॥

पीछे दूसरे स्थानमें ॥

“॥ ॐ नमो द्वितीयकुलकराय श्यामवर्णाय श्यामवर्णचंद्रकांता-
प्रियतमासहिताय हाकारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय चक्षुष्मदभि-
धानाय ॥ ” शेषं पूर्ववत् ॥ २ ॥

“॥ ॐ नमस्तृतीयकुलकराय श्यामवर्णाय श्यामवर्णसुरूपप्रि-
यतमासहिताय माकारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय यशस्व्यभिधा-
नाय ॥ ” ॥ शेषं पूर्ववत् ॥

“॥ ॐ नमश्चतुर्थकुलकराय श्वेतवर्णाय श्यामवर्णप्रतिरूपा-
प्रियतमासहिताय माकारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय अभिचंद्रा-
भिधानाय ॥ ” शेषं पूर्ववत् ॥

“॥ ॐ नमः पंचमकुलकराय श्यामवर्णाय श्यामवर्णचक्षुःकांता-
प्रियतमासहिताय धिक्कारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय प्रसेनजिद-
भिधानाय ॥ ” शेषं पूर्ववत् ॥ ५ ॥

“॥ ॐ नमः षष्ठकुलकराय स्वर्णवर्णाय श्यामवर्णश्रीकांता-
प्रियतमासहिताय धिक्कारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय मरुदे-
वाभिधानाय ॥ ” शेषं पूर्ववत् ॥ ६ ॥

“॥ ॐ नमः सप्तमकुलकराय कांचनवर्णाय श्यामवर्णमरुदे-
वाप्रियतमासहिताय धिक्कारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय ना-
भ्यभिधानाय ॥ ” शेषं पूर्ववत् ॥ ७ ॥ इतिकुलकरस्थापन
पूजनविधि : ॥

यह कुलकरस्थापना और परसमयमें गणेशमदनस्थापना, विवाहके पीछे भी सात अहोरात्रपर्यंत रखनी चाहिये । पीछे वरके घरमें शांतिक, पौष्टिक करे. और कन्याके घरमें मातृपूजा पूर्ववत् । तदपीछे विवाहकालसें पूर्व सात, नव, इग्यारह, वा तेरह, दिनोंमें वधूवरको अपने २ घरमें, मंगलगीतवाजंत्रपूर्वक, तैलाभिषेक और स्नान, नित्य विवाहपर्यंत कराना. । प्रथमतैलाभिषेकदिनमें, वरके घरसें कन्याके घरमें, तैल, शिरः-प्रसाधनगंधद्रव्य, द्राक्षादि खाद्य शुष्कफल, भेजने. । नगरकी औरतें वरके घरमें, और कन्याके घरमें, तैल, धान्य, ढौकन करें । वधूवरके घरकी वृद्ध नारीयों तिन तैल धान्यढौकनेवाली नारीयोंको, पूडे आदि पकान्न देवें । तहां धारणादि देशाचार, कुलाचारोंसें करना. । तैलाभिषेक, कुलकर गणेशादि स्थापन, कंकणबंध, अन्यविवाहके उपचारादिक सर्व, वधूवरको चंद्रबलके हुए, विवाहवाले नक्षत्रमें करना. । तथा धूलिभक्त, कौरभक्त, सौभाग्यजलल्यावन प्रमुख, कर्म, मंगलगीतवाजंत्रादिसहित

देशाचार कुलाचार विशेषसें करना । तदपीछे जेकर, वर, अन्य ग्रामांतर, नगरांतर, वा देशांतरमें होवे तो, तिसकी गमनयात्रा * कन्याके निवासस्थानप्रति करनी; तिसका विधि यह है ॥

प्रथम एक दिनमें मातृपूजापूर्वक सर्व लोकोंको भोजन देना; पीछे दूसरे दिन सुस्नात होके, चंदनका लेपन करके, वस्त्रगंधमाल्यादिकरके अलंकृत होके, मुकुटकरके भूषित शिरको करके, घोड़ेपर, वा हाथीपर, वा पालखीमें आरूढ होके, वर चले । तिसके समीप, अच्छे वस्त्रोंवाले, प्रमोदसहित, पानबीडे चावे हुए, संबंधी ज्ञातिजन, अपनी २ संपदानुसार घोड़ेआदि ऊपर चढ़े हुए, वा पगोंसें चलते हुए, वरकेसाथ चलें । दोनों पासे, मंगलगानमें प्रसक्त ऐसी ज्ञातिकी नारीयां चलें और आगे ब्राह्मणलोक, गृह्यशांतिमंत्र पढ़ते हुए चलें ॥

स यथा ॥

“॥ॐ अर्हं आदिमोर्हन् आदिमो नृपः आदिमो यन्ता आदिमो नियन्ता आदिमो गुरुः आदिमः स्रष्टा आदिमः कर्त्ता आदिमो भर्त्ता आदिमो जयी आदिमो नयी आदिमः शिल्पी आदिमो विद्वान् आदिमो जल्पकः आदिमः शास्ता आदिमो रौद्रः आदिमः सौम्यः आदिमः काम्यः आदिमः शरण्यः आदिमो दाता आदिमो वन्द्यः आदिमः स्तुत्यः आदिमो ज्ञेयः आदिमो ध्येयः आदिमो भोक्ता आदिमः सोढा आदिम एकः आदिमोऽनेकः आदिमः स्थूलः आदिमः कर्मवान् आदिमोऽकर्म आदिमो धर्मवित् आदिमोऽनुष्ठेयः आदिमोऽनुष्ठाता आदिमः सहजः आदिमो दशावान् आदिमः सकलत्रः आदिमो निःकलत्रः आदिमो विबोढा आदिमः ख्यापकः आदिमो ज्ञापकः आदिमो विदुरः आ-

दिमः कुशलः आदिमो वैज्ञानिकः आदिमः सेव्यः आदिमो-
 गम्यः आदिमो विमृश्यः आदिमो विम्रष्टा सुरासुरनरोग-
 प्रणतः प्राप्तविमलकेवलो यो गीयते सकलप्राणिगणहि-
 तो दयालुरपरापेक्षापरात्मा परंज्योतिः परं ब्रह्मा परमैश्व-
 र्यभाक् परंपरः परापरो जगदुत्तमः सर्वगः सर्ववित् सर्व-
 जित् सर्ववीर्यः सर्वप्रशस्यः सर्वबंधः सर्वपूज्यः सर्वात्माऽसं-
 सारोऽव्ययोऽवार्यवीर्यः श्रीसंश्रयः श्रेयः संश्रयः विश्वाव-
 श्यायहत् संशयहत् विश्वसारो निरंजनो निर्म्ममो निःक-
 लंको निःपाप्मा निःपुण्यः निर्मना निर्वाचा निर्देहो निःसं-
 शयो निराधारो निरवधिः प्रमाणं प्रमेयं प्रमाता जीवाजी-
 वाश्रवबंधसंवरनिर्जराबंधमोक्षप्रकाशकः स एव भगवान्
 शान्तिं करोतु तुष्टिं करोतु पुष्टिं करोतु ऋद्धिं करोतु वृद्धिं
 करोतु सुखं करोतु सौख्यं करोतु श्रियं करोतु लक्ष्मीं
 करोतु अहं ॐ ॥ ”

ऐसे आर्यवेदके पाठी ब्राह्मण, आगे चलें। तदपीछे इसी विधिसें
 महोत्सवकरके, चैत्यपरिपाटी, गुरुवंदन, मंडलीपूजन, नगरदेवतादिपूजन
 करके, नगरके समीप रहे; पीछे पंथमें चलें। तथा इसीरीतिसें कन्या
 धिष्ठित नगरमें प्रवेश करना। तिसही नगरमें विवाहकेवास्ते चले हुए
 वरका भी, यही विधि जाणना। तथा नित्यस्नानके अनंतर कौसुंभसूत्र
 करके बधूवरके शरीरका माप करना। तदपीछे विवाहदिनके आये हुए
 विवाहलग्नसें पहिले, तिसही नगरका वासी, वा अन्यदेशसें आया वर
 तिसही पूर्वोक्त विधिसें, पाणिग्रहणकेवास्ते चले। तिसकी बहिनां विशेष
 करके लूणआदि उत्तारण करे। पीछे वर, आडंबर और गृह्यगुरुसहित
 कन्याके घरके द्वारमें आवे। तहां खड़े हुए वरको, तिसके सासुजन, कर्पूरदी-
 पकादिकरके आरात्रिक (आरति) करे। तदपीछे अन्य स्त्री, जलते
 हुए अंगारे, और लवणकरके संयुक्त, ढड ढड ऐसे शब्द करते हुए

सरावसंपुटको, वरको निरुंछन करके, प्रवेशमार्गके वामे पासे स्थापन करे। तदपीछे अन्य स्त्री कौसुंभसूत्रसें अलंकृत, मंथानको लाके, तिस-करके तीन वार वरके ललाटको स्पर्श करे। पीछे वर, वाहनसें नीचे उतरके, वामे पग करी तिस अग्निलवणगर्भसंपुटको खंडित करे (तोड़े)। पीछे वरकी सासु, वा कन्याकी मामी, वा कन्याका मामा, कौसुंभ-वस्त्रको वरके कंठमें डालके, खेंचता हुआ वरको मातृघरमें ले जावे। तहां विभूषाकरके, कौतुकमंगलकरके, प्रथम आसनउपरबैठी हुई कन्याके वामे पासे, मातृदेवीके सन्मुख, वरको बिठलावे। तदपीछे गृह्यगुरु लग्नवेलामें शुभांशके हुए, पीसी हुई समी (खेजडी) की छाल, और पीपकी छाल, चंद-नद्रव्यमिश्रितकरके, तिससें लीपे हुए, वधूवरके दोनों दक्षिण हाथ जोड़े। उपर कौसुंभसूत्रसें बांधे ॥

हस्तबंधनमंत्रः ॥

“ ॥ ॐ अहं आत्मासि जीवोसि समकालोसि समचि-
त्तोसि समकर्मोसि समाश्रयोसि समदेहोसि समक्रियोसि
समस्नेहोसि समचेष्टितोसि समाभिलाषोसि समेच्छोसि
समप्रमोदोसि समविषादोसि समावस्थोसि समनिमित्तोसि
समवचासि समक्षुत्तृष्णोसि समगमोसि समागमोसि
समविहारोसि समविषयोसि समशब्दोसि समरूपोसि सम-
गंधोसि समस्पर्शोसि समेन्द्रियोसि समाश्रवोसि समबंधोसि
समसंवरोसि समनिर्जरोसि सममोक्षोसि तदेह्येकत्वमिदानीं
अहं ॐ ॥ ” इति हस्तबंधनमंत्रः ॥

यहां समयांतरमें वैदिक मतमें मधुपर्क*भक्षण, देशांतरमें वरको दो गौयां देनी, और कुलांतरमें कन्याको आभरण पहिरावणे, इत्यादि करते

*ऋग्वेदके आश्वलायनसूत्रके दूसरे हिस्से गृह्यसूत्रके प्रथम अध्यायकी चौबीसमी कंडिकामें मधुपर्कका विधि लिखा है, तिसके सूत्र नीचे प्रमाणे हैं ॥

हैं। तदपीछे वधुवरको मातृघरमें बैठे हुए, कन्याके पक्षी, वेदिकी रचना करें; तिसका विधि यह है। ॥ कितनेक काष्ठस्तंभ काष्ठाच्छादनो-करके चौकूणी वेदी करते हैं; और कितनेक चारों कूणोंमें स्वर्ण, रूप्य, ताम्र, वा माटीके सात सात कलशोंको ऊपर लघु लघु, अर्थात् प्रथम बड़ा उसके ऊपर छोटा, उसके ऊपर फिर छोटा, एवं स्थापन करके चारों पासे चार चार आर्द्र वांसोंसे बांधके वेदि करते हैं। चारों वार-णोंमें वस्त्रमय, वा काष्ठमय तोरण, और वंदनमालिका बांधते हैं; और अंदर त्रिकोण अग्निका कुंड करते हैं। वेदी बनाया पीछे गृह्यगुरु, पूर्वोक्त वेष धारण करके वेदिकी प्रतिष्ठा करे। तिसका विधि यह है। ॥

१ ऋत्विजो वृत्वा मधुपर्कमाहरेत् । १-२४-१॥ २ स्नातकयोऽपस्थिताय । १२४।२॥ ३ रात्रे च । १२४।३॥ ४ आचार्यश्चशुरपितृव्यमातुलानां च । १२४।४॥ ५ आचांतोदकाय गां वेदयन्ते । १२४।२३॥ ६ इतो मे पाप्मापाप्मामे हव । इति जपित्वोऽकुरुतेति कारयिष्यन् । १२४।२४॥ [नारायणवृत्ति—इमं मंत्रं जपित्वा ओम् कुरुतेति ब्रूयात् यदि कारयिष्यन् मारयिष्यन् भवति तदा च दाता आलभेत्] ७ नामांसो मधुपर्को भवति । १२४।२६॥ [नारायणवृत्ति—मधुपर्कीगभोजनं अमांसं न भवतीत्यर्थः पशुकरणपक्षे तन्मासेन भोजनं उत्सर्जनपक्षे मांसांतरेण]—अर्थः ॥ यज्ञ करनेवास्ते ऋत्विज खड़ा करते बखत तिसको मधुपर्क देना चाहिये। इसीतरे विवाहवास्ते जो वर घरमें आवे तिसको, और राजा घरमें आवे तिसको मधुपर्क देना चाहिये। आचार्य, गुरु, श्वशुर, चाचा, मामा, येह घरमें आवे तो तिनको भी मधुपर्क देना चाहिये। मुख साफ करनेवास्ते पाणी देकर तिसके आगे गाय खड़ी रखनी चाहिये। सूत्रमें लिखा मंत्र पढ़के ओम् कहके घरके स्वामिने गौका वध करना। मधुपर्कीगभोजन, विनामांसके नहीं होता है, इसवास्ते पशुके वधपूर्वक मधुपर्क करा होवे तो, तिसही पशुका मांस भोजनके काममें आवे, और पशुको छोड़ दीया होवे तो, और मांससे भोजन करना चाहिये। ॥

तथा मणिलाल नभूभाइ द्विवेदी सिद्धांतसारमें लिखते हैं ॥ “विवाहके संबंधमें मधुपर्ककी बात कहने-जोग है। ऐसा धर्माचार है कि आवे हुए अतिथिकेवास्ते मधुपर्क करना चाहिये। वर भी अतिथिही है। असल जैसे यज्ञकेवास्ते गोवध विहित था, तैसें मधुपर्कवास्ते भी गौका वा बैलका वध विहित था। मांसविना मधुपर्क नहीं ऐसें आश्वलायन कहता है; और नाटकादिकोंसे मालुम होता है, कि अच्छे महर्षियोंवास्ते भी, मधुपर्कमें गोवध किया है। आश्चर्यकी बात है, कि जो गौ आज बहुत पवित्र गिणी जाती है, तिसको प्राचीन समयमें यज्ञकेवास्ते तथा मधुपर्ककेवास्ते मारनेका रीवाज था? हाल तो मधुपर्कमें फक्त दधि मधु और घृत येही बापरते हैं।”—जैसें अनार्य वेदोंमें हिंसक क्रिया कथन करी है, तैसें आर्य वेदोंमें नहीं है। और मधुपर्कमें तथा यज्ञमें प्रायः जीववध बंध हुआ है सो भी जैन, बौद्ध, वैष्णवादि संप्रदायोंके जोर (बल) का प्रताप है। मणिलाल नभूभाइ सिद्धांतसारमें लिखते हैं ॥ “पाटण, खंभात, जैसलमेर, जेपुर आदि स्थलोंके जैनमंडार जाहों पुस्तकोंसे भरपूर हैं, और विद्याके खरे भंडाररूप हैं। इसतरे छह

वास पुष्प अक्षतों करके हाथ भरके ॥

“॥ ॐ नमः क्षेत्रदेवतायै शिवायै क्षाँ क्षी क्षू क्षौँ क्षः इह विवाहमंडपे आगच्छ २ इह बलिपरिभोग्यं गृह्ण २ भोगं देहि सुखं देहि यशो देहि संततिं देहि ऋद्धिं देहि वृद्धिं देहि बुद्धिं देहि सर्वसमीहितं देहि २ स्वाहा ॥ ”

ऐसें पढके चारों कोणोंमें न्यारे न्यारे वास, माह्य, अक्षत, क्षेप करना; तोरणकी प्रतिष्ठा भी ऐसेही करनी.

तन्मंत्रो यथा ॥

“॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ नमो द्वारश्रिये सर्वपूजिते सर्वमानिते सर्वप्रधाने इह तोरणस्थासर्वसमीहितं देहि २ स्वाहा ॥ ”

॥ इतितोरणप्रतिष्ठा ॥

तदपीछे वेदिके मध्यमें अग्निकोणमें अग्निकुंडमें मंत्रपूर्वक अग्निको स्थापन करे. ।

अग्निन्यासमंत्रो यथा ॥

“॥ ॐ रं रां रीं रूं रौं रः नमोऽग्नये नमो बृहद्भानवे नमोनंत-तेजसे नमोनंतवीर्याय नमोनंतगुणाय नमो हिरण्यरेतसे नमश्छागवाहनाय नमो हव्यासनाय अत्र कुंडे आगच्छ २ अवतर २ तिष्ठ २ स्वाहा ॥ ”

मूल डालके चला हुआ यह अहिंसारूप परम धर्म अपनी दृष्टिके आगे अद्यापि भी है. ब्राह्मणोंके धर्मको वेदमार्गको तथा यज्ञमें होती हिंसाको-खरा धक्का इसी धर्मने लगाया है. बुद्धके धर्मने वेदमार्गकाही इनकार किया था तिसको अहिंसाका आग्रह नहीं था. यह महादयारूप, प्रेमरूप धर्म, तो जैनकाही हुआ. सारे हिंदु-स्थानमेंसे पशुयज्ञ निकल गया है, फक्त छेक दक्षिणमें, जहां बौद्ध के जैनकी छाया बराबर पड सकती नहीं है, तहांही चालु है. इतनाही नहीं परंतु उपनिषदोंका ज्ञानमार्ग सर्वथा सतेज होके, जैनोंके जीवाजीव तथा कर्म धर्मरूप वादपरत्वे, बहोत बहार आया है. ऐसें शंकारूप, बौद्ध तथा जैन धर्मोंने दर्शनोंके परम धर्मका रस्ता किया है, तत्त्वदृष्टिको खरे रूपमें प्रवर्तनेका मार्ग किया है, और वर्ण जाति सब भूलके, मनुष्यमात्रको परम प्रेममें एकात्मभाव प्राप्त करणहार ब्रह्मज्ञानका उदय सूचन किया है.” यद्यपि सांप्रत कितनेक अज्ञानी कदाग्रही पुनः हिंसक क्रियाको उत्तेजन कर रहे हैं, तथापि तिसका सार्वत्रिक होना असंभव है, प्रतिपक्षि-योर्कोविद्यमान होनेसें. ॥

समयांतरमें, देशांतरमें वा कुलांतरमें, वेद्यंतरमेंही, हस्तलेपन करते हैं. देश कुलाचारादिमें मधुपर्क प्राशनके अनंतर, वेदि; और हस्तलेपसे पहिले परस्पर कंबायुद्ध, वधूवरास्फालन, वेडानयन, मणिग्रथन, स्नान, भ्राष्टकर्म, पर्याणकर्म, वस्त्रकौसुंभसूत्रांतःकर्षणप्रमुख, कर्म करते हैं. वे देशविशेषलोकोसे जाण लेने. व्यवहार शास्त्रोंमें नहीं कहे हैं. परंतु स्त्रीयोंको सौभाग्यप्राप्तिवास्ते, शौक आदि न होवे तिसके वास्ते, वरको वशीभूत करनेकेवास्ते करते हैं. ॥

तदपीछे युक्त हाथवाले, नारी और नरकी कटीउपर चढ़े हुए वधूवर दोनोंको, गीतवाजंत्रादि बहुत आडंबरसे दक्षिण द्वारसे प्रवेश कराके वेदिके मध्यमें लावे. । तदपीछे देशकुलाचारसे काष्ठासनोंके ऊपर, वा वेत्रासनोंके ऊपर, वा सिंहासनके ऊपर, वा अधोमुखी शरमय खारीके ऊपर, वधूवरको पूर्वसन्मुख बिठलावे. । तथा हस्तलेपमें, और वेदिकर्ममें कुलाचारके अनुसार दसियां सहित कौरवस्त्र, वा कौसुंभवस्त्र, वा स्वभाववस्त्र वधूवरको पहिशावे हैं. । तदपीछे गृह्यगुरु, उत्तरसन्मुख मृगचर्म ऊपर बैठाहुआ, शमी, पिप्पल, कपित्थ (कवठ-कण्ठवेले) कुटज (कुडची-जिस वृक्षका फल इंद्रयव होता है), बिल्व, आमलकके इंधनकरके अग्निको जगाके, इस मंत्रकरके घृत मधु तिल यव नाना फलोंका हवन करे ॥

मंत्रो यथा ॥

“॥ॐ अहं” अग्ने प्रसन्नः सावधानो भव तवायमवसरः तदा-
हारयेद्रं यमं नैर्ऋतं वरुणं वायुं कुबेरमीशानं नागान् ब्रह्माणं
लोकपालान् ग्रहांश्च सूर्यशशिकुजसौम्यवृहस्पतिकविशनि-
राहुकेतून् सुरांश्चामुरनागसुपर्णविद्युदग्निद्वीपोदधिदिककुमा-
रान् भुवनपतीन् पिशाचभूतयक्षराक्षसकिन्नरकिंपुरुषमहोर-
गगंधर्वान् व्यंतरान् चंद्रार्कग्रहनक्षत्रतारकान् ज्योतिष्कान्
सौधम्मेशान् * सनत्कुमारमाहेंद्रब्रह्मलांतकशुक्रसहस्रारा-

* प्रत्यंतरे ‘श्रीषत्साखंडरूपज्ञोत्तरब्रह्मोत्तर’ इत्यधिकपाठो दृश्यते.

नतप्राणतारणाच्युतग्रैवेयकानुत्तरभवान् वैमानिकान् इंद्र-
सामानिकपार्षद्यत्रायस्त्रिंशल्लोकपालानीकप्रकीर्णकलौकांति-
काभियोगिकभेदभिन्नांश्रुतुर्णिकायानपि सभार्यान् सायुध-
बलवाहनान् स्वस्वोपलक्षितचिह्नान् अप्सरसश्च परिगृहिता-
परिगृहितभेदभिन्नाः ससखिकाः सदासिकाः साभरणा रुच-
कवासिनीर्दिक्कुमरिकाश्च सर्वाःसमुद्रनदीगिर्याकरवनदेवता-
स्तदेतान् सर्वान् सर्वाश्च इदमर्घ्यं पाद्यमाचमनीयं बलिं
चरुं हुतं न्यस्तं ग्राह्य २ स्वयं गृहाण २ स्वाहा अर्हं ॐ ॥”

तदपीछे अच्छीतरें हुत करके प्रदीप्त अग्निके हुए, गृह्यगुरु, तहांसे उठके
दक्षिणपासे स्थित हुई वधूके सन्मुख बैठके, ऐसा कहे. ॥

“॥ ॐ अर्हं इदमासनमध्यासीनौ स्वध्यासीनौ स्थितौ सु-
स्थितौ तदस्तु वां सनातनः संगमः अर्हं ॐ ॥ ”

ऐसे कहके कुशाग्रतीर्थोदककरके दोनोंको सींचन करे.। पीछे वधूका
पितामह, वा पिता, वा चाचा, वा भाइ वा मातामह, वा कुलज्येष्ठ,
धर्मानुष्ठान करके उचित वेषवाला, वधूवरके आगे बैठे.। शांतिक पौष्टिकसें
आरंभके विवाहसें मासपर्यंत, मंगलगान, वादित्रवादन, भोजन तांबूल
वस्त्र सामग्री, सदैव गवेसीये हैं. ॥

तदपीछे गृह्यगुरु ॥

“॥ ॐ नमोर्हत्सिद्वाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः ॥”

ऐसे कहके, प्रथम अक्षतपूर्ण हाथवाला होके वधूवरके आगे
ऐसा कहे. ॥

“ विदितं वां गोत्रं संबंधकरणेनैव ततः प्रकाश्यतां जनाग्रतः ”

जाना है तुमारा गोत्र, संबंध करनेसेही; तिसवास्ते प्रकाश करो,
लोकोंके आगे.। तब प्रथम वरके पक्षीय, अपने गोत्र, अपनी प्रवर, ज्ञाति
और अपने अन्वय-वंशको प्रकाश करे,। पीछे वरकी माताके पक्षीय,

गोत्र, प्रवर, ज्ञाति, और अन्वयको प्रकाश करे. । तदपीछे कन्याके पक्षीय, अपने गोत्र, प्रवर, ज्ञाति, अन्वयको प्रकाश करे. । फिर कन्याकी माताके पक्षीय, गोत्र, प्रवर, ज्ञाति, अन्वयको प्रकाश करे. ।

तदपीछे गृह्यगुरु. ॥

“॥ॐ अर्हं” अमुकगोत्रीयः इयत्प्रवरः अमुकज्ञातिः अमुकान्वयः अमुकप्रपौत्रः अमुकपौत्रः अमुकपुत्रः अमुकगोत्रीयः इयत्प्रवरः अमुकज्ञातीयः अमुकान्वयः अमुकप्रदौहित्रः अमुकदौहित्रः अमुकः सर्ववरगुणान्वितो वरयिता अमुकगोत्रीया इयत्प्रवरा अमुकज्ञातीया अमुकान्वया अमुकप्रपौत्री अमुकपौत्री अमुकपुत्री अमुकगोत्रीया इयत्प्रवरा अमुकज्ञातीया अमुकान्वया अमुकप्रदौहित्री अमुकदौहित्री अमुका वर्या तदेतयोर्वर्यावरयोर्वरवर्ययोर्निबिडोविवाहसंबंधोस्तु शांतिरस्तु तुष्टिरस्तु पुष्टिरस्तु धृतिरस्तु बुद्धिरस्तु धनसंतानवृद्धिरस्तु अर्हं ॐ ॥ ” ऐसे कहे. ॥

तदपीछे गृह्यगुरु, वरवधूके पाससें गंध, पुष्प, धूप, नैवेद्य करके अग्निकी पूजा करवावे. । पीछे वधू लाजांजलिको अग्निमें निक्षेप करे. । तदपीछे फिर तैसेंही दक्षिण पासे वधू, और वामे पासे वर बैठे. । पीछे गृह्यगुरु वेदमंत्र पढे.

“॥ॐ अर्हं” अनादिविश्वमनादिरात्मा अनादिकालः अनादिकर्म अनादिसंबंधो देहिनां देहानुमतानुगतानां क्रोधाहंकारछद्मलोभैः संज्वलनप्रत्याख्यानावरणाप्रत्याख्यानानंतानुबंधिभिः शब्दरूपरसगंधस्पर्शैरिच्छानिच्छापरिसंकलितैः संबंधोनुबंधः प्रतिबंधः संयोगः सुगमः सुकृतः स्वनुष्ठितः सुनिवृत्तः सुप्राप्तः सुलब्धो द्रव्यभावविशेषेण अर्हं ॐ ॥ ”

यह मंत्र पढ़के फेर ऐसा कहे.

“ ॥ तदस्तु वां सिद्धप्रत्यक्षं केवलिप्रत्यक्षं चतुर्णिकायदेव-
प्रत्यक्षं विवाहप्रधानाग्निप्रत्यक्षं नागप्रत्यक्षं नरनारीप्रत्यक्षं
नृपप्रत्यक्षं जनप्रत्यक्षं गुरुप्रत्यक्षं मातृप्रत्यक्षं पितृप्रत्यक्षं
मातृपक्षप्रत्यक्षं पितृपक्षप्रत्यक्षं ज्ञातिस्वजनबंधुप्रत्यक्षं
संबंधः सुकृतः सद्नुष्ठितः सुप्राप्तः सुसंबद्धः सुसंगतः
तत्प्रदक्षिणीक्रियतां तेजोराशिर्विभावसुः ॥ ”

ऐसें कहके तैसेंही ग्रथित अंचल वरवधू, अग्निकी प्रदक्षिणा करें.
तैसें प्रदक्षिणाकरके तैसेंही पूर्वरीतिसें बैठे. लाजा तीनकी तीनों प्रदक्षि-
णामें आगे वधू और पीछे वर होवे. दक्षिण पासे वधूका आसन, और
वामे पासे वरका आसन. ॥ इति प्रथमलाजाकर्म ॥

तदपीछे वरवधूके आसन ऊपर बैठे हुए, गुरु वेदमंत्र पढ़े.

“ ॥ ॐ अहं कर्मास्ति मोहनीयमस्ति दीर्घस्थित्यस्ति नि-
विडमस्ति दुःछेद्यमस्ति अष्टाविंशतिप्रकृत्यस्ति क्रोधोस्ति
मानोस्ति मायास्ति लोभोस्ति संज्वलनोस्ति प्रत्याख्यानाव-
रणोस्ति अप्रत्याख्यानोस्ति अनंतानुबंध्यस्ति चतुश्चतु-
र्विधोस्ति हास्यमस्ति रतिरस्ति अरतिरस्ति भयमस्ति
जुगुप्सास्ति शोकोस्ति पुंवेदोस्ति स्त्रीवेदोस्ति नपुंसकवे-
दोस्ति मिथ्यैक्यमस्ति मिश्रमस्ति सम्यक्त्वमस्ति सप्तति
कोटाकोटिसागरस्थित्यस्ति अहं ॐ ॥ ”

यह वेदमंत्र पढ़के ऐसा कहे.

“ ॥ तदस्तु वां निकाचितनिविडबद्धमोहनीयकर्मोदयकृतः
स्नेहः सुकृतोस्तु सुनिष्ठितोस्तु सुसंबंधोस्तु आभवमक्षयो-
स्तु तत् प्रदक्षिणीक्रियतां विभावसुः ॥ ”

फेर भी तैसैंही अग्निकी प्रदक्षिणा करे. ॥ इति द्वितीयलाजाकर्म ॥

चारोंही लाजामें प्रदक्षिणाके प्रारंभमें वधू, अग्निमें लाजामुष्टि प्रक्षेप करे. तदपीछे तिन दोनोंके, तैसैंही बैठे हुए, गुरु, ऐसा वेदमंत्र पढे.

“ ॥ ॐ अर्हं कर्मास्ति वेदनीयमस्ति सातमस्ति असा-
तमस्ति सुवेद्यं सातं दुर्वेद्यमसातं सुवर्गणाश्रवणं सातं
दुर्वर्गणाश्रवणमसातं शुभपुद्गलदर्शनं सातं दुःपुद्गलदर्शन-
मसातं शुभषड्रसास्वादनं सातं अशुभषड्रसास्वादनम-
सातं शुभगंधाघ्राणं सातं अशुभगंधाघ्राणमसातं शुभपु-
द्गलस्पर्शः सातं अशुभपुद्गलस्पर्शोऽसातं सर्वं सुखकृत्
सातं सर्वं दुःखकृदसातं अर्हं ॐ ॥ ”

इस वेदमंत्रको पढके ऐसैं कहे.

“ ॥ तदस्तु वां सातवेदनीयं माभूदसातवेदनीयं तत् प्रद-
क्षिणीक्रियतां विभावसुः ॥ ”

इति पुनः अग्निको प्रदक्षिणा करके वधूवर दोनों तैसैंही बैठ जावे.
॥ इति तृतीयलाजाकर्म ॥

तदपीछे गृह्यगुरु ऐसा वेदमंत्र पढे.

“ ॥ ॐ अर्हं सहजोस्ति स्वभावोस्ति संबन्धोस्ति प्रतिब-
द्धोस्ति मोहनीयमस्ति वेदनीयमस्ति नाम्नास्ति गोत्रमस्ति
आयुरस्ति हेतुरस्ति आश्रवबद्धमस्ति क्रियाबद्धमस्ति का-
यबद्धमस्ति सांसारिकसंबन्धः अर्हं ॐ ”

ऐसा वेदमंत्र पढके, कन्याके पिताके, चाचेके, भाइके वा कुलज्येष्ठके हाथको तिलयवकुशदूर्वासंयुक्त जलसैं पूरके, ऐसैं कहे.

“ ॥ अद्य अमुकसंवत्सरे अमुकायने अमुकऋतौ अमुकमासे
अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवारे अमुकनक्षत्रे अमुक-

योगे अमुककरणे अमुकमुहूर्ते पूर्वकर्मसंबंधानुबद्धवस्त्रगंध-
माल्यालंकृतां सुवर्णरूप्यमणिभूषणभूषितां ददात्ययं
प्रतिगृहीष्व ॥ ”

ऐसें कहके वधूवरके योजित हाथमें जलक्षेप करे । तब वर कहे-
“ प्रतिगृह्णामि ” तदनंतर गुरु कहे-

“ ॥ सुप्रतिगृहीतास्तु शांतिरस्तु पुष्टिरस्तु ऋद्धिरस्तु वृद्धि-
रस्तु धनसंतानवृद्धिरस्तु ॥ ”

तदपीछे प्रथम तीन लाजामें वरके हाथ ऊपर रहे कन्याके हाथको नीचे करे, और वरके हाथको ऊपर करे । पीछे वरवधूको आसनसें ऊठाकर वरको आगे करे, और वधूको पीछे करे । पीछे लाजाकी मुष्टि अग्निमें प्रक्षेप करके गुरु ऐसें कहे- “ प्रदक्षिणीक्रियतां विभावसुः ” वर-वधूको प्रदक्षिणा करते हुए, कन्याका पिता, यावत् कन्याका कुलज्येष्ठ, वा वरवधूके देनेयोग्य वस्त्र, आभरण, स्वर्ण, रूप्य, रत्न, ताम्र, कांश्य, भूमि, निःक्रय, हाथी, घोडा, दांसी, गौ, बैल, पल्यंक, तूलिका, उत्सीर्षक, दीप, शस्त्र, पाकके भांडे, आदि सर्व वस्तुको वेदिमें ल्यावे । और भी तिसके भाइ, संबंधी, मित्रादि, स्वसंपदाके अनुसारसें पूर्वोक्त वस्तुयों वेदिमें ल्यावें । तदपीछे प्रदक्षिणाके अंतमें वरवधू, तैसेंही आसन ऊपर बैठें । नवरं इतना विशेष है कि, चतुर्थ लाजाके अनंतर वरका आसन दक्षिण पासे, और वधूका आसन वामे पासे करणा । तदपीछे गृह्यगुरु, कुश दूर्वा अक्षत घास करके हस्त पूर्ण हुआ थका, ऐसें कहे-

“ ॥ शक्रादिदेवलोष्टिपरिवृतो भोग्यफलकर्मभोगाय संसारि-
जीवव्यवहारमार्गसंदर्शनाय सुनंदासुमंगले पर्यणैषीत् ज्ञात-
मज्ञातं वा तदनुष्ठानमनुष्ठितमस्तु ॥ ”

ऐसें कहके वास, दूर्वा, अक्षत, कुशको वरवधूके मस्तक ऊपर क्षेप करे । तदपीछे गृह्यगुरुके कहनेसें वधूका पिता, जल, यव, तिल, कुशको

हाथमें लेके, वरके हाथमें देके, ऐसैं कहे. “सुदायं ददामि प्रतिगृहाण” तब वर कहे “ प्रतिगृह्णामि प्रतिगृहीतं परिगृहीतं ” गुरु कहे “ सुगृहीतमस्तु सुपरिगृहीतमस्तु ” पुनः तैसैंही वस्त्र, भूषण, हस्ति, अश्वदि दाय, देनेमें बधूके पिताका, और वरका यही वाक्य, और यही विधि है. । तदपीछे सर्व वस्तुके दीए हुए गुरु ऐसैं कहे.

“ ॥ वधूवरौ वां पूर्वकर्मानुबन्धेन निबिडेन निकाचितबद्धेन अनुपवर्त्तनीयेन अपातनीयेन अनुपायेन अश्लथेन अवश्यभोग्येन विवाहः प्रतिबद्धो बभूव तदस्त्वखंडितोऽक्षयोऽव्ययो निरपायो निर्व्याबाधः सुखदोस्तु शांतिरस्तु पुष्टिरस्तु ऋद्धिरस्तु वृद्धिरस्तु धनसंतानवृद्धिरस्तु ॥ ”

ऐसा कहके तीर्थोदकोंकरके कुशाग्रसैं सिंचन करे. । फेर गुरु तैसैंही बधूवरको उठाके मातृघरमें ले जावे, तहां ले जाके बधूवरको ऐसैं कहे.

“ ॥ अनुष्ठितो वां विवाहो वत्सौ सस्नेहौ सभोगौ सायुषौ सधर्मौ समदुःखसुखौ समशत्रुमित्रौ समगुणदोषौ समवाङ्मनःकायौ समाचारौ समगुणौ भवतां ॥ ”

तदपीछे कन्याका पिता, करमोचनेकेवास्ते गुरुप्रतें कहे. । तब गुरु ऐसा वेदमंत्र पढे.

“ ॥ ॐ अहं जीवस्त्वं कर्मणा बद्धः ज्ञानावरणेन बद्धः दर्शनावरणेन बद्धः वेदनीयेन बद्धः मोहनीयेन बद्धः आयुषा बद्धः नाम्ना बद्धः गोत्रेण बद्धः अंतरायेण बद्धः प्रकृत्या बद्धः स्थित्या बद्धः रसेन बद्धः प्रदेशेन बद्धः तदस्तु ते मोक्षो गुणस्थानारोहक्रमेण अहं ॐ ॥ ”

इस वेदमंत्रको पढके फेर ऐसैं कहे.

“ ॥ मुक्तयोः करयोरस्तु वां स्नेहसंबन्धोऽखंडितः ॥ ”

ऐसें कहके करमोचन करे. । कन्याका पिता करमोचनपर्वमें जामातृ (जमाइ) के मांगेप्रमाण, स्वसंपत्तिके अनुसार बहुत वस्तु देवे. । दान-विधि, पूर्वयुक्तिसेही है. । तदपीछे मातृघरसें ऊठके, फेर वेदिघरमें आवें. तदपीछे गृह्यगुरु, आसनऊपर बैठे दोनोंको ऐसें कहे.

“ ॥ वृत्तम् । पूर्वं युगादिभगवान् विधिनैव येन विश्वस्य कार्यकृतये किल पर्यणेषीत् ॥ भार्याद्वयं तदमुना विधिना-स्तु युग्ममेतत्सुकामपरिभोगफलानुबन्धि ॥ १ ॥ ”

ऐसें कहके पूर्वोक्त विधिसें अंचलमोचन करके “ वत्सौ लब्धविषयौ भवतां ” ऐसें गुरुअनुज्ञात दोनो दंपती-स्त्रीभर्ता, विविध विलासिनीयोंके गणकरी वेष्टित, शृंगारगृहमें प्रवेश करें. । तहां पूर्वस्थापित मदनकी कुलवृद्धानुसार करी मदनपूजा करे. । पीछे तहां वधूवरको समहीकालमें क्षीरान्नभोजन कराना. तदपीछे यथायुक्तिकरके सुरतका प्रचार. । *

तदपीछे तिसही आगमनरीतिकरके उत्सवसहित अपने घरको जावे. । पीछे वरके मातापिता, वरको निरुल्लनमंगलविधी स्वदेशकुलाचारकरके करे. । कंकणबंधन, कंकणमोचन, लूतक्रीडा, वेणीग्रंथनादि, सर्व कर्म भी, तिस २ देशकुलाचारकरके करणे चाहिये. । विवाहसें पहिलें वधूवर दोनोंके पक्षमें भोजन देना. । तदनंतर धूलिभक्त, जन्यभक्त, आदि देशकुलाचारसें करणे. । तदपीछे सात दिनके अनंतर वरवधू विसर्जन करना, तिसका विधि यह है. । सात दिनतक विविध भक्तिसें पूजित जमाइको, पूर्वोक्त रीतिसें अंचलग्रंथन करके अनेक वस्तुदानपूर्वक तिसही आडंबरसें स्वगृहको पहुंचावे. । पीछे सात रात्रपर्यंत, वा मासपर्यंत, वा छ मासपर्यंत, वा वर्षपर्यंत स्वकुलसंपत्तिदेशाचारानुसार महोत्सव करना. सात रात्रके अनंतर, वा मासअनंतर, कुलाचारानुसारकरके कन्याके पक्षमें पूर्वोक्त रीतिकरके मातृविसर्जन करना.—गणपतिमदनादिविसर्जन विधिलोकमें प्रसिद्ध है.—और वरपक्षमें कुलकर विसर्जनविधि कहते हैं. ।

* इस कथनसें भी यही सिद्ध होता है कि, योवनप्राप्तोकाही विवाह होना चाहिये. कामक्रीडाकरणात्. ॥

कुलकरस्थापनानंतर, नित्य कुलकरकी पूजा करनी. । विसर्जनकालमें कुलकरोंका पूजन करके, गुरु पूर्ववत् “ ॐ अमुककुलकराय ” इत्यादि संपूर्णमंत्र पढ़के “ पुनरागमनाय स्वाहा ” ऐसें सर्वकुलकरोंको विसर्जन करे. ॥ पीछे यह पढ़े.

“ आज्ञाहीनं क्रियाहीनं मंत्रहीनं च यत्कृतं ॥
तत्सर्वं कृपया देव क्षमस्व परमेश्वर ॥ १ ॥ ”

इतिकुलकरविसर्जनविधिः ॥

तदपीछे मंडलीपूजा, गुरुपूजा, वासक्षेपादि पूर्ववत्. । साधूओंको वस्त्र पात्र देना. । ज्ञानपूजा करणी. । ब्राह्मणोंको, बंदिजनोंको, अपर मागने-वालोंको, यथासंपत्तिसें दान करणा. ।

तथा देशकुलसमयांतरमें विवाहलग्नके प्राप्त हुए, वरको स्वसुरके घरको प्राप्त हुए, षट् (६) आचार करते हैं. प्रथम अंगणमें आसन देना. । स्वसुर कहे “ विष्टरं प्रतिगृहाण ” तब वर कहे “ ॐ प्रतिगृह्णामि ” ऐसें कहके आसन ऊपर बैठे । १ । पीछे स्वसुर वरके पग प्रक्षालन करे । २ । पीछे दाहि चंदन अक्षत दूर्वा कुश पुष्प स्वेतसरसों और जलकरके स्वसुर जमाड़को अर्घ्य देवे । ३ । पीछे आचमन देवे । ४ । पीछे गंधअक्षतसें तिलक करे । ५ । पीछे वरको मधुपर्क प्राशन करावे । ६ । पीछे गृहके अंदर वधूवरका परस्पर दृष्टिसंयोग, और पक्ष्मपर दोनोंका नामग्रहण, शेषं पूर्ववत्. ॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृतौ चारदिनकरस्य गृहिधर्म-प्रतिबद्धविवाहसंस्कारकीर्त्तनामचतुर्दशोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरि-कृतोवालावबोधस्तस्मास्तत्समाप्तौचसमाप्तोयं षड्विंशःस्तम्भः ॥ १४ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचितेतत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थेचतुर्द-
शविवाहसंस्कारवर्णनोनामषड्विंशःस्तम्भः ॥ २६ ॥

॥ अथसप्तविंशस्तम्भारम्भः ॥



अथ व्रतारोपसंस्कारविधि लिखते हैं । इहां जैनमतमें गर्भाधानसे लेके विवाहपर्यंत चतुर्दश १४ संस्कारोंकरके संस्कृत भी पुरुष, व्रतारोपसंस्कारविना इस जन्ममें श्लाघा श्रेयः लक्ष्मीका पात्र नहीं होता है. और परलोकमें आर्यदेशादिभावपवित्रित मनुष्यजन्म स्वर्गमोक्षादिका भाजन नहीं होता है. इसवास्ते व्रतारोपही, मनुष्योंको परमसंस्कार है. यत उक्तमागमे ।

“ बंभणो खत्तिओ वावि वेसो सुदो तहेवय ॥

पयई वावि धम्मेण जुत्तो मुक्खस्स भायणं ॥ १ ॥ ”

अर्थः—ब्राह्मण, वा क्षत्रिय, वा वैश्य, वा शूद्र, धर्मसें युक्त हुआ, मोक्षका भाजन होता है. ॥ १ ॥

अपिच गाथा. ॥

“ बाहत्तरिकलकुसला विवेयस हिया न ते नरा कुसला ॥

सवुकलाण य पवरं जेधम्मकलं न याणंति ॥ १ ॥ ”

अर्थः—बहत्तर कलाकुशल भी, विवेकसहित भी होवे, तो भी ते नर कुशल नहीं हैं; जे, सौ कलाओंमें प्रधान जो धर्मकला तिसको नहीं जानते हैं. ॥ १ ॥ परमतमें भी कहा है । ‘ उपनीतोपि पूज्योपि कलावानपि मानवः । न परत्रेह सौख्यानि प्राप्नोति च कदाचन ॥ १ ॥ ’ इसवास्ते सर्वसंस्कार प्रधानभूत व्रतसंस्कार कहते हैं. । तिसका विधि यह है.

पीछले विवाहपर्यंत संस्कार गृह्यगुरु जैन ब्राह्मणने वा क्षुल्लकने करवावने. परंतु व्रतारोपसंस्कार तो, निर्ग्रथ यतिनेही करावना. प्रथम गुरुकी गवेषणा करणी.

यथा ॥

“ पंचमहवृयजुत्तो पंचविहायारपालणसमच्छो ॥
 पंचसमिओ तिगुत्तो छत्तीसगुणो गुरु होइ ॥ १ ॥
 पडिरूवो तेअस्सी जुगप्पहाणागमो मधुरवक्को ॥
 गंभीरो धीमंतो उवएसपरो य आयरिओ ॥ २ ॥
 अपरिस्सावी सोमो संग्रहसीलो अभिग्रहमईय ॥
 अविकच्छणो अचवलो पसंतहियओ गुरु होइ ॥ ३ ॥
 कइयावि जिणवरिंदा पत्ता अयरामरं पंहं दाउं ॥
 आयरिएहि पवयणं धारिज्जइ संपयं सयलं ॥ ४ ॥ ”

अर्थ:—पांच महाव्रतयुक्त, ५, पांच प्रकारके आचार पालनेमें समर्थ, ५, पांच समिति, ५, और तीन गुप्तिसहित, ३, एवं छत्तीस गुणोंवाला गुरु होता है। *प्रतिरूप, तेजस्वी, युग प्रधान, आगमका जानकार, मधुर वाक्यवाला, गंभीर, बुद्धिमान्, उपदेश देनेमें तत्पर, ऐसा आचार्य होता है। किसीका आलोचित दूषण अन्यआंगे प्रकाशे नहीं, सोमप्रकृतिवाला होवे, शिष्यादिका संग्रह करनेवाला होवे, द्रव्यादि अभिग्रहमें जिसकी मति होवे, किसीके दूषण न बोले, चपल न होवे, प्रशान्तहृदयवाला होवे, ऐसे गुणोंयुक्त गुरु होता है। कितनेही जिनवरेंद्र अजरामर पदका पंथ दिखाके मोक्षको प्राप्त हुए हैं; परं संप्रति कालमें तो, जिनप्रवचन, आचार्योंनेही धारण करा है ॥

अब प्रकारांतरकरके गुरुके छत्तीस गुण कहत हैं। आचारविनय, श्रुत-विनय, विक्षेपनाविनय, दोषका परिघात, एवं चार प्रकारके विनयकी प्रतिपत्ति करनेवाले गुरु होवे। अथवा सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, इन

* पंचिंद्रियसंवरणो तह नवविहवंबभेचरगुत्तिधरो । चउविहकसायमुक्को इअ अट्टारसगुणेहि संजुत्तो ॥ १ ॥
 पांच इंद्रियको रोकनार, नवविध ब्रह्मचर्यगुतिके धरनार, चतुर्विध कषायसें मुक्त, एवं अष्टादश गुणोंकी संयुक्त । इस पाठको गिणनेसें ३६ गुण पूर्ण होते हैं ॥ पंच महाव्रतादीनामष्टादशानामपि स्वयंकरणान्यकार-
 णतो द्वैगुण्येन षट्त्रिंशद्गुणो गुरुर्भवतीति तु सम्यक्वरत्नवृत्तौ ॥

प्रत्येकके आठ २ भेद हैं; एवं २४, और तपके द्वादश १२ भेद हैं, ऐसे आचार्यके छत्तीस गुण होते हैं।

अथवा आचारादि आठ ८, और दश प्रकारका स्थितकल्प १० द्वादश १२ तप, और बडावश्यक ६, येह छत्तीस गुण आचार्यके हैं। *

अथवा संविग्रह होवे १, मध्यस्थ होवे २, शांत होवे ३, मृदु-कोमल-स्वभाववाला होवे ४, सरल होवे ५, पंडित होवे ६, सुसंतुष्ट होवे ७, गीतार्थ होवे ८, कृतयोगी होवे ९, श्रोताके भावको जाननेवाला होवे १०, व्याख्यानादिलब्धिसंपन्न होवे ११, उपदेश देनेमें निपुण होवे १२, आदेयवचन होवे १३, मतिमान् होवे १४, विज्ञानी होवे १५, निरुपपाति होवे १६, नैमित्तिक होवे १७, शरीरका बलिष्ठ होवे १८, उपकारी होवे १९, धारणाशक्तिवाला होवे २०, बहुत कुछ जिसने देखा होवे २१, नैगमादि नयमतमें निपुण होवे २२, प्रियवचनवाला होवे २३, अच्छे मधुर गंभीर स्वरवाला होवे २४, तप करनेमें रक्त होवे २५, सुंदर शरीरवाला होवे २६, शुभ भली प्रतिभावाला होवे २७, वादीयोंको जीतनेवाला होवे २८, परिषदादिको आनंदकारक होवे २९, शुचि-पावित्र होवे ३०, गंभीर होवे ३१, अनुवर्त्ती होवे ३२, अंगीकार करेका पालनेवाला होवे ३३, स्थिरचित्तवाला होवे ३४, धीर होवे ३५, उचितका जाननेवाला होवे ३६, येह पूर्वोक्त ३६, गुण आचार्यके सूत्रमें कहे हैं ॥

ऐसे पितापरंपरायसे माने गुरुके प्राप्त हुए, वा, तिसके अभावमें पूर्वोक्त गुणयुक्त अन्यगच्छीय गुरुके प्राप्त हुए, गृहस्थको व्रतारोपविधि योग्य है, सो विधि यह है ॥ चतुर्दश संस्कारोंकरके संस्कृत ऐसा गृहस्थी गृहस्थधर्मको अंगीकार करने योग्य होता है।

* आचारसंपत् १ श्रुतसंपत् २ शरीरसंपत् ३ वचनसंपत् ४ वाचनासंपत् ५ मतिसंपत् ६ प्रयोगम-
तिसंपत् ७ संग्रहपरिज्ञासंपत् ८ इत्याचारसंपदादि अष्ट । और दशप्रकारका स्थित कल्प तथाहि आचैलक्य १
औद्देशिक २ शय्यातरपिंड ३ राजपिंड ४ कृतिकर्म ५ व्रत ६ ज्येष्ठरत्नाधिकपणा ७ प्रतिक्रमण ८ मासकल्प
९ पर्येषणाकल्प १० येह दशप्रकारका स्थित कल्प जैन मतमें प्रायः प्रसिद्ध हैं ॥

यत उक्तमागमे ॥

धम्मरयणस्स जुग्गो अक्खुदो रूववं पगईसोमो ॥
 लोअप्पिउ अकूरो भीरू असद्वो सुदक्खिणो ॥ १ ॥
 लज्जालुओ दयालू मब्भच्छो सोमदिट्ठी गुणरागी ॥
 सक्कह सपक्खजुत्तो सुदीदहंसी विसेसब्रू ॥ २ ॥
 बद्धाणुगो विणीओ कयन्नुओ परहिअच्छकारीअ ॥
 तहचेव लद्धलक्खो इगवीसगुणो हवइ सव्वो ॥ २ ॥

अर्थ:-अक्षुद्र १, रूपवान् २, प्रकृतिसौम्य ३, लोकप्रिय ४, अकूरचित्त ५, भीरु ६, अशठ ७, सुदाक्षिण्य ८, लज्जालु ९, दयालु १० मध्यस्थ सोमदृष्टि ११, गुणरागी १२, सत्कर्त्ता १३, सुपक्षयुक्त १४, सुदीर्घदर्शी १५, विशेषज्ञ १६, बृद्धानुग १७ विनीत १८, कृतज्ञ १९, परहितार्थकारी २०, और लब्धलक्ष २१, इन इक्कीस गुणोंवाला श्रावक धर्मरत्नके योग्य होता है; अर्थात् इक्कीस गुण जिस जीवमें होवे, अथवा प्रायः नवीन उपार्जन करे, तिस जीवमें उत्कृष्ट योग्यता जाननी. और थोड़ेसे थोड़े इक्कीस गुणोंमेंसे चाहो कोई दश गुण जीवमें होवे, तिसको जघन्य योग्यतावाला जानना, ११-१२-१३-१४-१५-१६-१७-१८-१९-२० शेष गुणवालेको मध्यमयोग्यतावाला जानना इन इक्कीस गुणोंका विस्तारसहित वर्णन अज्ञानतिमिरभास्करके द्वितीय खंडके ४६ पृष्ठसे लेके ८३ पृष्ठपर्यंत हमने लिखा है, इसवास्ते इहां नहीं लिखते हैं.

योगशास्त्रे श्रीहेमचंद्राचार्योक्तिर्यथा ॥

न्यायसंपन्नविभवः शिष्टाचारप्रशंसकः ॥
 कुलशीलसमैः सार्धं कृतोद्वाहोऽन्यगोत्रजैः ॥ १ ॥
 पापभीरुः प्रसिद्धं च देशाचारं समाचरन् ॥
 अवर्णवादी न कापि राजादिषु विशेषतः ॥ २ ॥
 अनतिव्यक्तगुप्ते च स्थाने सुप्रातिवेशिके ॥

अनेकनिर्गमद्वारविवर्जितनिकेतनः ॥ ३ ॥
 कृतसंगः सदाचारैर्मातापित्रोश्च पूजकः ॥
 त्यजन्नुपप्लुतं स्थानमप्रवृत्तश्च गर्तिते ॥ ४ ॥
 व्ययमायोचितं कुर्वन् वेषं वित्तानुसारतः ॥
 अष्टविधागुणैर्युक्तः शृण्वानो धर्ममन्वहं ॥ ५ ॥
 अजीर्णं भोजनत्यागी काले भोक्ता च साम्यतः ॥
 अन्योन्याप्रतिबंधेन त्रिवर्गमपि साधयन् ॥ ६ ॥
 यथावदतिथौ साधौ दीने च प्रतिपत्तिकृत् ॥
 सदानभिनिविष्टश्च पक्षपाती गुणेषु च ॥ ७ ॥
 अदेशाकालयोश्चर्यां त्यजन् जानन्बलाबलं ॥
 वृत्तस्थज्ञानवृद्धानां पूजकः पोष्यपोषकः ॥ ८ ॥
 दीर्घदर्शी विशेषज्ञः कृतज्ञो लोकवल्लभः ॥
 सलज्जः सदयः सौम्यः परोपकृतिकर्मठः ॥ ९ ॥
 अंतरंगारिषड्वर्गपरिहारपरायणः ॥
 वशीकृतेन्द्रियग्रामो गृहिधर्माय कल्पते ॥ १० ॥

अर्थः—न्यायसं धन उपार्जन करनेवाला, शिष्टाचारकी प्रशंसा करनेवाला, जिनका कुलशील अपने समान होवे, ऐसे अन्य गोत्रवालेके साथ विवाह किया है जिसने; पापसे डरनेवाला, प्रसिद्ध देशाचारको करनेवाला, अर्थात् देशाचारका उल्लंघन नहीं करनेवाला, किसी जगे भी अवर्णवाद नहीं बोलनेवाला, राजादिकोंमें विशेषसे अवर्णवाद वर्जनेवाला; । अतिप्रकट, वा अति गुप्त स्थानमें नहीं रहनेवाला, अच्छा पाडोसी होवे तिस घरमें रहनेवाला, जिस मकानके अनेक आनेजानेके रस्ते होवें तिस घरको वर्जनेवाला; । सदाचारोंसे संग करनेवाला, माता-पिताकी पूजा भक्ति करनेवाला, उपद्रवसंयुक्त स्थानको त्यागनेवाला,

जगत्में जो कर्म निंदनीक होवे तिसमें प्रवृत्त नही होनेवाला; । अपनी आमदनीअनुसार खर्च करनेवाला, अपने धनके अनुसार वेष रखनेवाला; बुद्धिके आठ गुणोंकरी संयुक्त निरंतर धर्मोपदेश श्रवण करनेवाला; अजीर्णमें भोजनका त्यागी, वखतसर साम्यतासें भोजन करनेवाला, एक दूसरेकी हानी न करे इस रीतिसें धर्म अर्थ कामको सेवनेवाला; । यथायोग्य अतिथि साधु और दीनकी प्रतिपत्ति करनेवाला, सदा आग्र-हरहित, गुणोंका पक्षपाती; । देशकालविरुद्धचर्या त्यागनेवाला, । कोई भी कार्य करनेमें अपना बलाबल जाननेवाला, जे पांच महाव्रतमें स्थित होवे और ज्ञानवृद्ध होवे तिनकी पूजा भक्ति करनेवाला, पोषणेयोग्यका पोषण करनेवाला, । दीर्घदर्शी, विशेषज्ञ, कृतज्ञ, लोकवल्लभ, लज्जालु, दयालु, सौम्य, परोपकार करणमें समर्थ, काम, क्रोध, लोभ, मान, मद, हर्ष, इन षट् ६ अंतरंग वैरीयोंके त्याग करनेमें तत्पर, पांच इंद्रियोंके समूहको वश करनेवाला, ऐसा पुरुष गृहस्थधर्मके वास्ते कल्प-ता है ॥ १० ॥

ऐसे पुरुषको व्रतारोप करिये हैं । प्रायःकरके व्रतारोपमें गुरु शिष्यके वचन प्राकृत भाषामें होते हैं, क्यों कि गर्भाधानादि विवाहपर्यंत संस्कारोंमें प्रायः करके गुरुकेही वचन हैं, शिष्यके नहीं और गुरु प्रायः शास्त्र-विद होते हैं, इसवास्ते संस्कृतही बोलते हैं । । इहां व्रतारोपमें बाल, स्त्री, मूर्ख शिष्योंका क्षमाश्रवणदानपूर्वक वचनाधिकार है, तिसवास्ते तिनको संस्कृत उच्चार असामर्थ्य होनेसें प्राकृत वाक्य है। तिसकी साहचर्यतासें तिसके प्रबोधवास्ते, गुरुके वचन भी, प्राकृतही है. ॥

यतउक्तभागमे ॥

“ ॥ मुत्तूण दिड्ढिवायं कालियउक्कालियंगसिद्धंतं ॥

थीबालवायणच्छंपाइयमुइयं जिणवरेहिं ॥ १ ॥ ”

अर्थः—दृष्टिवादको वर्जके कालिक उत्कालिक अंगसिद्धांतको स्त्री-बालकोंके वाचनार्थ जिनवरोंने प्राकृत कथन करे है. ॥

तथाच ॥

बालस्त्रीवृद्धमूर्खाणां नृणां चारित्रकाक्षिणाम् ॥

उच्चारणाय तत्त्वज्ञैः सिद्धांतः प्राकृतः कृतः ॥ १ ॥

और दृष्टिवाद बारमा अंग, परिकर्म १ सूत्र २ पूर्वानुयोग ३, पूर्वगत ४, चूलिकारूप ५ पंचविध संस्कृतमेंही होता है, सो बालस्त्रीमूर्खको पठनीय नहीं है. संसारपारगामी तत्त्वउपन्यासके वेत्ता गीतार्थोंनेही पठनीय है. शेष एकादशांग कालिक उत्कालिकादिशास्त्र योगवाहि साधु साध्वी और संयमिबालकोंके पढ़ने योग्य हैं. इसवास्तेही अरिहंत भगवंतोंने एकादशांगादि शास्त्र प्राकृतमें करे हैं. तिसवास्ते व्रतारोपमें भी, यहस्थ बाल स्त्री मूर्ख अवस्थाधारीयोंके, और तैसैं यतियोंके भी, वचन, प्राकृतमें है. ॥

अथ मृदु, ध्रुव, चर, क्षिप्र नक्षत्रोंमें प्रथम भिक्षा, तप, नंदि, आलोचनादि कार्य करणे शुभ है. और मंगल, शनि, विना सर्व वारोंमें. । वर्ष, मास, दिन, नक्षत्र, लग्न शुद्धिके हुए, विवाहदीक्षा प्रतिष्ठावत्, शुभ लग्नमें गुरु तिसके घरमें शांतिक पौष्टिक करके, फेर देवघरमें, शुभ आश्रममें, अन्यत्र, वा, यथाकल्पित समवसरणको स्थापन करे. । तदपीछे स्नान करके स्वघरमें महोत्सवसहित आये हुए श्रावकको पूर्वाभिमुख गुरु, अपने वामे पासें स्थापके ऐसें कहे—कैसे श्रावकको—सकक्ष श्वेत वस्त्र और श्वेत उत्तरासंग धारण किया है जिसने, तथा मुखवस्त्रिका हाथमें धारण करी है जिसने, तथा जिसकी चोटी बांधी हुई है, चंदनका मस्तकमें तिलक करा है जिसने, खवर्णानुसार जिनोपवीत, वा उत्तरीय, वा उत्तरासंग धारण किया है जिसने ऐसे श्रावकको—क्या कहे सो कहते हैं ।

“ सम्मत्तंमि उ लद्धे टइयाइं नरयतिरियदाराइं ॥

दिवाणि माणुसाणि अमुरखसुहाइं सहीणाइं ॥ १ ॥ ”

अर्थः—सम्यक्त्वके लाभ हुए, नरकतिर्यग्गतिके द्वार ढांके हैं, और देवता मनुष्य मोक्षके सुख स्वाधीन है। तदपीछे गुरुकी आज्ञासें श्राद्धजन, नालिकेर अक्षत सुपारी करके पूर्ण हस्त करके परमेष्ठिमंत्र पढता हुआ समवसरणको तीन प्रदक्षिणा करे। तदपीछे गुरुके पास आयकर, गुरु श्राद्ध दोनोही इर्यापथिकीपडिक्कमे। पीछे आसन उपर बैठे गुरुके आगे, श्राद्धजन ऐसें कहे ॥

“ इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्झाए निसीहि-
आए मच्छएण वंदामि ॥ भगवन् इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं
सम्मत्ताइतिगारोवणिअं नंदिकट्ठावणियं वासक्खेवं करेह ॥ ”

तदपीछे गुरु, वासांको, सूरिमंत्रसें, वा, गणिविद्या अर्थात् वर्द्धमान विद्यासें, अभिमंत्रके, परमेष्ठि और कामधेनु दोनों मुद्राकरके, पूर्वाभिमुख खड़ा होके, वामे पासे रहे श्रावकके शिरमें निक्षेप करे। तिसके मस्तकके उपर हाथ रखके, गणधर विद्यासें रक्षा करे। तदपीछे गुरु आसनउपर बैठ जावे, और श्राद्ध पूर्ववत् समवसरणको प्रदक्षिणा करके, गुरु आगे क्षमा श्रमण देके कहे.

“ ॥ इच्छाकारेण तुब्भे अम्हं सम्मत्ताइतिगारोवणिअं
चेइआइं वंदावहे ॥ ”

तदपीछे गुरु और श्रावक दोनो, चार वर्द्धमानस्तुतियों करके चैत्यवंदन करें। जे छंदसें वर्द्धमान होवे, और चरम जिनकी प्रथम स्तुतिवालीयां होवे, तिनको वर्द्धमानस्तुति कहते हैं। पीछे चार-स्तुतिके अंतमें “ श्रीशांतिदेवाराधनार्थं करोमि काउसग्गं वंदणवत्तियाण पूअणवत्तियाण सक्कारव० स० जावअप्पाणं वोसिरामि ” सत्ताइस उत्स्वा-सप्रमाण अर्थात् ‘सागरवरगंभीरा’ तक चतुर्विंशतिस्तव चिंतवन करे। तद-पीछे ‘नमो अरिहंताणं’ कहके पारे। पारके—‘ नमोर्हत्सिद्धाचार्यो-पाच्यायसर्वसाधुभ्यः ’ यह कहके स्तुति पढे।

यथा ॥

“ श्रीमते शांतिनाथाय नमः शांतिविधायिने ॥
त्रैलोक्यस्यामराधीशमुकुटाभ्यर्चितांग्रये ॥ १ ॥ ”

अथवा ॥

“ शांतिः शांतिकरः श्रीमान् शांतिं दिशतु मे गुरुः ॥
शांतिरेव सदा तेषां येषां शांतिर्गृहे गृहे ॥ १ ॥ ”

पीछे

“॥श्रुतदेवताराधनार्थं करेभि काउसगं अन्नच्छ उससिएणं—यावत्—
अप्पाणं वोसिरामि॥ ”

कायोत्सर्गमें एक नवकार चिंतन करे. पीछे ‘नमो अरिहंताणं’
कहके पारे, पारके ‘नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः’ ऐसा कहके
स्तुति (थूड़) पढे ।

यथा ॥

“ ॥ मुअदेवया भगवई नाणावरणीयकम्मसंधायं ॥
तेसिंखवउ सययं जेसिं सुयसायरे भत्ती ॥ १ ॥ ”

अथवा ॥

“ श्वसितसुरभिग्रंथालब्धभृंगी कुरंगं मुखशशिनमजस्रं
विभ्रति या विभर्ति ॥ विकचकमलमुत्रैः सास्त्वचित्यप्र-
भावासकलसुखविधात्री प्राणभाजां श्रुतांगी ॥ १ ॥ ”

पुनरपि ॥

“ ॥ क्षेत्रदेवताराधनार्थं करेभि काउसगं अन्नच्छ उससिएणं—
यावत्—अप्पाणं वोसिरामि ॥ ”

कायोत्सर्गमें एक नमस्कार चिंतन करे, पीछे ‘नमो अरिहंताणं’ कहके पारे, पारके ‘नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः’ कहके थूई पड़े।

यथा ॥

यस्याः क्षेत्रं समाश्रित्य साधुभिः साध्यते क्रिया ॥

सा क्षेत्रदेवता नित्यं भूयान्नः सुखदायिनी ॥ १ ॥

पुनरपि ॥

“॥ भुवनदेवताराधनार्थं करोमि काउसर्गं अन्नच्छ उससिएणं—
यावत्—अप्पाणं वोणिमि ॥”

कायोत्सर्गमें एक नमस्कार चिंतन करे, पीछे ‘नमोअरिहंताणं’ कहके पारे, पारके ‘नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः’ कहके स्तुति पड़े।

यथा. ॥

“ज्ञानादिगुणयुक्तानां नित्यं स्वाध्यायसंयमरतानां ॥

विदधातु भुवनदेवी शिवं सदा सर्वसाधूनाम् ॥ १ ॥”

पुनरपि ॥

“शासनदेवताराधनार्थं करोमि काउसर्गं अन्नच्छ०” कायोत्सर्गमें एक नमस्कार चिंतन करे, पीछे ‘नमोअरिहंताणं’ कहके पारे, पारके ‘नमोर्हत्सिद्धा०’ कहके स्तुति पड़े.

यथा. ॥

“या पाति शासने जैनं सद्यः प्रत्यूहनाशिनी ॥

साभिप्रेतसमृद्धयर्थं भूयाच्छासनदेवता ॥ १ ॥”

पुनरपि. ॥

“समस्तवैयावृत्त्यकराराधनार्थं करोमि काउसर्गं अन्नच्छ०” कायोत्सर्गमें एक नमस्कार चिंतन करे, पीछे ‘नमो अरिहंताणं’ कहके पारे, पारके ‘नमोर्हत्सिद्धा०’ कहके स्तुति पड़े.

यथा ॥

“ ये ये जिनवचनरता वैयावृत्योद्यताश्च ये नित्यम् ॥
ते सर्वे शांतिकरा भवन्तु सर्वाण्यक्षाद्याः ॥ १ ॥ ”

पीछे. ॥

‘नमो अरिहताणं’ कहके बैठके “ नमुश्च्युणं० जावंतिचेइयाइं०
और “ अर्हणादिस्तोत्र ” पढ़े.

यथा ॥

अरिहाण नमो पूअं अरहंताणं रहस्स रहिआणं ॥
पयओ परमिट्ठीणं अरुहंताणं धुअरयाणं ॥ १ ॥
निट्ठअट्ठकम्मिधणाण वरणाणदंसणधराणं ॥
मुत्ताण नमो सिद्धाणं परमपरमिड्ढिभूयाणं ॥ २ ॥
आयारधराण नमो पंचविहायारसुड्डियाणं च ॥
नाणीणायरियाणं आयारुवएसयाण सया ॥ ३ ॥
बारसविहं अपूव्वं दिंताण सुअं नमो सुअहराणं ॥
सययमुवज्झायाणं सज्झायज्झाणजुत्ताणं ॥ ४ ॥
सव्वेसिं साहूणं नमो तिगुत्ताण सव्वलोएवि ॥
तवनियमनाणदंसणजुत्ताणं बंभयारीणं ॥ ५ ॥
एसो परमिट्ठीणं पंचन्हवि भावओ नमुक्कारो ॥
सव्वस्स कीरमाणो पावस्स पणासणो होइ ॥ ६ ॥
भुवणेवि मंगलाणं मणुयासुरअमरखयरमहियाणं ॥
सव्वेसिमिमो पढमो होइ महामंगलं पढमं ॥ ७ ॥
चत्तारि मंगलं मे हुंतु अरहा तहेव सिद्धा य ॥
साहू य सव्वकालं धम्मो य तिलोयमंगल्लो ॥ ८ ॥

चत्तारि चेव ससुरासुरस्स लोगस्स उत्तमा हुंति ॥
 अरिहंत सिद्ध साहू धम्मो जिणदेसियमुयारो ॥ ९ ॥
 चत्तारिवि अरिहंते सिद्धे साहू तहेव धम्मं च ॥
 संसारघोररक्खसभएण सरणं पवज्जामि ॥ १० ॥
 अह अरहओ भगवओ महइ महा वद्धमाणसामिस्स ॥
 पणयसुरेसरसेहरवियलियकुसुमुच्चयकमस्स ॥ ११ ॥
 जस्स वरधम्मचक्रं दिणयरविंवव्व भासुरच्छायं ॥
 तेएण पज्जलंतं गच्छइ पुरओ जिणंदस्स ॥ १२ ॥
 आयासं पायालं सयलं महिमंडलं पयासंतं ॥
 मिच्छत्तमोहतिमिरं हरेइ तिण्हंपि लोयाणं ॥ १३ ॥
 सयलंमिवि जियलोए चित्तियमित्तो करेइ सत्ताणं ॥
 रक्खं रक्खसडाइणिपिसायगहभूअजक्खाणं ॥ १४ ॥
 लहइ विवाए वाए ववहारे भावओ सरंतो अ ॥
 जूए रणे अ रायंगणे अ विजयं विसुद्धप्पा ॥ १५ ॥
 पच्चूसपओसेसुं सययं भव्वो जणो सुहज्झाणो ॥
 एअं द्वाएमाणो मुक्खं पइ साहगो होइ ॥ १६ ॥
 वेआलरुद्धदाणवनारिंदकोहंडिरेवईणं च ॥
 सव्वेसिं सत्ताणं पुरिसो अपराजिओ होइ ॥ १७ ॥
 विज्जुव्व पज्जलंती सव्वेसुवि अक्खरेसु मत्ताओ ॥
 पंचनमुक्कारपए इक्किं उवरिमा जाव ॥ १८ ॥
 ससिधवलसलिलनिम्मलआयारसहं च वन्नियं बिंदुं ॥
 जोयणसयप्पमाणं जालासयसहस्सदिप्पंतं ॥ १९ ॥
 सोलससु अक्खरेसु इक्किं अक्खरं जगुज्जोअं ॥
 भवसयसहस्समहणो जंमि ढिओ पंच नवकारो ॥ २० ॥

जो गुणइ हु इक्रमणो भविओ भावेण पंच नवकारं ॥
 सो गच्छइ सिवलोयं उज्जोअंतो दसदिसाओ ॥ २१ ॥
 तवनियमसंजमरहो पंचनमोकारसारहिनिउत्तो ॥
 नाणतुरंगमजुत्तो नेइ फुडं परमनिव्वाणं ॥ २२ ॥
 सुद्धप्पा सुद्धमणा पंचसु समिईसु संजय तिगुत्तो ॥
 जे तम्मि रहे लग्गा सिग्घं गच्छंति सिवलोअं ॥ २३ ॥
 थंभेइ जलं जलणं चिंतियमित्तोवि पंच नवकारो ॥
 अरिमारिचोरराउलघोरुवसग्गं पणासेइ ॥ २४ ॥
 अट्टेवय अट्टसयं अट्टसहस्सं च अट्टकोडीओ ॥
 रक्खंतु मे सरीरं देवासुरपणमिआ सिद्धा ॥ २५ ॥
 नमो अरहंताणं तिलोयपुज्जो अ संथुओ भयवं ॥
 अमरनररायमहिओ अणाइनिहणो सिवं दिसउ ॥ २६ ॥
 निट्ठविअ अट्टकम्मो सिवसुहभूओ निरंजणो सिद्धो ॥
 अमरनररायमहिओ अणाइनिहणो सिवं दिसउ ॥ २७ ॥
 सव्वे पओसमच्छरआहिअहिअया पणासमुवयंति ॥
 दुगुणीकयधणुसद्धं सोउपि महाधणुसहस्सं ॥ २८ ॥
 इय तिहुअणप्पमाणं सोलसपत्तं जलंतदित्तसरं ॥
 अट्ठारअद्धवलयं पंचनमुक्कारचक्कमिणं ॥ २९ ॥
 सयलुज्जोइअभुवणं निट्ठाविअसेससत्तुसंघायं ॥
 नासिअमिच्छत्ततमं विअलियमोहं गयतमोहं ॥ ३० ॥
 एयस्स य मज्झथ्थो सम्मदिट्ठीवि सुद्धचारिती ॥
 नाणी पवयणभत्तो गुरुजणसुस्सूसणापरमो ॥ ३१ ॥
 जो पंच नमुक्कारं परमो पुरिसो पराइ भत्तीए ॥
 परियत्तेइ पइदिणं पयओ सुद्धप्पओगप्पा ॥ ३२ ॥

अद्वैवय अद्वसया अद्वसहस्सं च अद्वलक्खं च ॥
 अद्वैवय कोडीओ सो तइयभवे लहइ सिद्धिं ॥ ३३ ॥
 एसो परमो मंतो परमरहस्सं परंपरं तत्तं ॥
 नाणं परमं णेअं सुद्धं ज्झाणं परं ज्झेयं ॥ ३४ ॥
 ण्वं कवयमभेयं खाइयमच्छं पराभुवणरक्खा ॥
 जोईसुन्नं बिंदु नाओ तारालवो मत्ता ॥ ३५ ॥
 सोलसपरमक्खरबीअबिंदुगम्भो जगुत्तमो जोओ ॥
 सुअवारसंगसायरमहच्छपुवूच्छपरमच्छो ॥ ३६ ॥
 नासेइ चोरसावयविसहरजलजलणबंधणसयाइं ॥
 चित्तिज्जंतो रक्खसरणरायभयाइं भावेण ॥ ३७ ॥

॥ इतिअरिहणादिस्तोत्रम् ॥

इस अरिहणादि स्तोत्रको पढ़के “ जय वीरराय जगगुरु० ” इत्यादि गाथा पढ़े । पीछे आचार्य उपाध्याय गुरु साधुओंको वंदना करे । यह शक्रस्तवविधि, गुरु और श्रावक दोनोंही करे । चैत्यवंदनके अनंतर, श्राद्ध, क्षमाश्रमणदानपूर्वक कहे ।

“ ॥ भगवन् सम्यक्त्वसामायिकश्रुतसामायिकदेशविरतिसामायिकआरोवणिअं नंदिकट्ठावणिअं काउसग्गं करेमि ॥ ”

गुरु कहे “ करेह ” तब श्रावक “सम्मत्ताइतिगारोवणिअं करेमि काउसग्गं अनच्छ० ” इत्यादि कहके सत्ताइस ऊसास प्रमाणअर्थात् ‘सागरवरगंभीरा’लग कायोत्सर्ग करे । पीछे नमो अरिहंताणं कहके पारके चतुर्विंशतिस्तव अर्थात् लोगस्स संपूर्ण पढ़े । पीछे मुखवस्त्रिका प्रतिलेखनपूर्वक श्रावक द्वादशावर्त्त वंदन करे, फिर क्षमाश्रमण देके कहे “ भगवन् सम्मत्ताइतिगं आरोवेह ” गुरु कहे “ आरोवेमि ” पीछे श्रावक गुरुके आगे खड़ा होके, अंजलि करी, मुखवस्त्रिकासें मुखाच्छादन करी, तीन बार परमेष्ठिमंत्र पढ़े । पीछे सम्यक्त्वदंडक पढ़े ।

सयथा ॥

“ ॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे मिच्छत्ताओ पडिक्कमामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि । तंजहा दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ । दव्वओणं मिच्छत्तकारणाइं पच्चक्खामि सम्मत्तकारणाइं उवसंपज्जामि नो मे कप्पइ अद्यप्पभिई अन्नउच्छि-
ए वा अन्नउच्छिअदेवयाणि वा अन्नउच्छियपरिग्गहि-
याणि अरिहंतचेइआणि वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुर्व्वि
अणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं
वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पयाउं
वा । खित्तओणं इहेव वा अन्नच्छ वा । कालओणं जावज्जीवाए ।
भावओणं जाव गहेणं न गहिज्जामि जाव छलेणं न छलि
ज्जामि जाव सन्निवाएणं नाभिभविस्सामि जाव अन्नेण वा
केणइ परिणामवसेण परिणामो मे न परिवडइ ताव मे
एअं सम्मदंसणं अन्नच्छ रायाभिओगेणं बलाभिओगेणं गणा
भिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं वित्तीकंतरएणं
वोसिरामि ॥ ”

ऐसें तीनवार दंडक पाठ कहना ॥ अन्ये तु दंडकमिच्छमुच्चारयंति ॥

यथा ॥

“ ॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे मिच्छत्ताओ पडिक्कमामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि नो मे कप्पइ अज्जप्पभिई अन्नउ-
च्छिए वा अन्नउच्छियदेवयाणि वा अन्नउच्छियपरिग्ग
हियाणि चेइआणि वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुर्व्वि अणा-
लत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं वा पाणं
वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पयाउं वा अन्नच्छ

रायाभिओगेणं गणाभिओगेणं बलाभिओगेणं देवयाभिओगे-
णं गुरुनिग्गहेणं वित्तीकंतारेणं तं चउव्विहं । तंजहा । दवओ
खित्तओ कालओ भावओ । दव्वओणं दंसणदव्वाइं अंगीकयाइं ।
खित्तओणं उट्ठलोए वा अहोलोए वा तिरिअलोए वा । का-
लओणं जावज्जीवाए । भावओणं जावगहेणं न गहिज्जामि
जाव छलेणं न छलिज्जामि जाव सन्निवाएणं नाभिभवि-
स्सामि अन्नेण वा केणइ परिणामवसेण परिणामो मे न
परिवडइ ताव मे एसा दंसणपडिवती ॥ ”

इति गुरुविशेषेण द्वितीयो दंडकः ॥ प्रथम दंडक, वा यह दंडक
दोनोमेंसें कोई एक दंडक तीन बार उच्चारण करे ।

पीछे गाथा ॥

“इअ मिच्छाओ विरमिअ सम्मं उवगम्म भणइ गुरुपुरओ ॥
अरिहंतो निस्संगो मम देवो दक्खणा साहू ॥ १ ॥ ”

गुरु तीन बार यह गाथा पढके श्राद्धके मस्तकोपरि वासक्षेप करे.
पीछे गुरु, निषद्याऊपर बैठे, बैठके गंध अक्षत वासांको सूरिमंत्रसें, वा
गणिविद्यासें मंत्रे । पीछे तिन गंधाक्षत वासांको हाथमें लेके जिन
चरणोंको स्पर्श करावे । पीछे तिनको साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका-
ओंको देवे । ते साधुआदि, मुट्ठीमें लेलेवे । पीछे श्राद्ध आसनोपरि बैठे
गुरुके आगे क्षमाश्रमण देके कहे ॥ “ भयवं तुब्भे अम्हं सम्मत्ताइस माइयं
आरोवेह । ” गुरुकहे “ आरोवेभि ” फिर श्रावक क्षमाश्रमण देके
कहे “ संदिसह किं भणामि ” गुरु कहे “ वंदितु पवेयह ” फिर श्रावक क्षमा-
श्रमण देके कहे “ भयवं तुज्झेहिं अम्हं सामाइयतिअमारोविअं ” गुरु कहे
“ आरोवियं २ खमासमणेणं हच्छेणं सुत्तेणं अच्छेणं तदुभएणं गुरु-
गुणेहिं वट्ठाहि निच्छारगपारगो होहि ” श्रावक कहे “ इच्छामो अणुसद्धिं ”
पुनः श्रावक क्षमाश्रमण देके कहे “ तुम्हाणं पवेइयं संदिसह साहूणं

पएवेमि ” गुरु कहे “ पवेयह ” तदपीछे श्रावक परमेष्ठिमंत्र पढता हुआ, समवसरणको प्रदक्षिणा करे । और संघ पूर्वे दिने हुए वासांको, तिसके मस्तकोपरि क्षेपण करे । गुरु निषद्याऊपर बैठे, वहांसें लेके वासक्षेपपर्यंत क्रिया, तीन वार इसहि रीतिसें करना । फिर श्रावक क्षमाश्रमण देके कहे “ तुम्हाणं पवेइयं ” फिर क्षमाश्रमण देके कहे “ साहूणं पवेइयं संदिसह काउसग्गं करेमि ” गुरु कहे “ करेह ” पीछे श्रावक-सम्म-त्ताइतिगस्स थिरीकरणच्छं करेमि काउसग्गं अन्नच्छं-सागरवरगंभीरातक कायोत्सर्गं करे । पारके संपूर्ण लोगस्स कहे । पीछे चारथुइवर्जित शक्रस्तव-सें चैत्यवंदन करे । तदपीछे श्रावक, गुरुको तीन प्रदक्षिणा देवे । पीछे निषद्याऊपर बैठा हुआ गुरु, श्रावकको आगे बिठाके नियम देवे ॥

नियमशुक्तिर्यथा । गाथा ॥

पंचुंवरि चउ विगई अणायफलकुसुम हिम विस करे अ ॥

मट्टि अ राइभोयण घोलवडा रिंगणा चेव ॥ १ ॥

पंपुट्टय सिंघाडय वायंगण कायंवाणि य तहेव ॥

बावीसं दव्वाइं अभक्खणीआइं सट्ठणं ॥ २ ॥

अर्थः—गुलर, लक्षण, काकोदुंबरि, वट और पिप्पल, येह पांच जा-तिके फल ५. मांस, मदिरा, माखण और मधु, ये चार विकृति ४—एवं ९—अज्ञात फल १०, अज्ञात पुष्प ११, हिम (बरफ) १२, विष १३, करहे (ओले-गडे) १४, सर्वसञ्चित्तमिट्टी १५, रात्रिभोजन १६, घोलवडा—काचे दूध दहि छाछमें गेरा हुआ विदल १७, बड़ंगण १८, पंपोटा—खसखसका दोडा १९, सिंघाडे २०, * वायंगण २१, और कायंवाणि २२, येह बावीस द्रव्य श्रावकोंको भक्षण करने योग्य नहीं हैं ॥

* यद्यपि सिंघाडे अनंतकाय नहीं है, तथापि कामवृद्धिजनक होनेसें वर्जनीय है । तथा पुस्तकांतरमें अन्यप्रकारसें २२ अभक्ष्य लिखे हैं । यथा ॥ पंचुंवरि ५, चउविगई ४, हिम १०, विस ११, करगे अ १२, सवमट्टी अ १३, राइभोयणं चिय १४, बहुबीय १५, अणंत १६, संधाणा १७, घोलवडा १८, बिङ्गण १९, अमुणियनामाणि फुल्ललयाणि २०, तुच्छफलं २१, चलियरसं २२, वज्जेअ अभक्ख बावीसं ॥ इनक. नि-स्तारसहित अर्थ जैनतत्त्वादर्शके अष्टम परिच्छेदसें जाण लेना ।

ऐसे नियम देके यह गाथा उच्चारण करवावे ॥

“ अरिहंतो मह देवो जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ॥
जिणपणत्तं तत्तं इअ समत्तं मए गहिअं ॥ १ ॥ ”

सुगमा ॥

तदनंतर अरिहंतको वर्जके अन्यदेवको नमस्कार करनेका, जिनयति महाव्रतधारी शुद्ध प्ररूपकको वर्जके अन्य याति विप्रादिकोंको भावसे अर्थात् मोक्षलाभ जानके वंदना करनेका, और जिनोक्त सप्त तत्त्वको वर्जके + तत्त्वांतरकी श्रद्धा करनेका, नियम करना.

अन्य देव और अन्य लिंगि विप्रादिकोंको नमस्कार और दान, लोकव्यवहारकेवास्ते करना. और अन्यमतके शास्त्रका श्रवण पठन भी, ऐसेही जानना. । तदपीछे गुरु सम्यक्त्वकी देशना करे. ।

सा यथा ॥

मानुष्यमार्यदेशश्च जातिः सर्वाक्षिपाटवम् ॥

आयुश्च प्राप्यते तत्र कथंचित्कर्मलाघवात् ॥ १ ॥

प्राप्तेषु पुण्यतः श्रद्धा कथकः श्रवणेष्वपि ॥

तत्त्वनिश्चयरूपं तद्वोधिरत्नं सुदुर्लभम् ॥ २ ॥

गाथा ॥

कुसमयसुईण महणं सम्मतं जस्स सुट्ठिअं हियए ॥

तस्स जगुज्जोयकरं नाणं चरणं च भवमहणं ॥ १ ॥

अर्थः—मनुष्यजन्म १, आर्यदेश २, उत्तमजाति ३, सर्वइंद्रि संपूर्ण ४, आयुः ५, यह कथंचित् कर्मकी लाघवतासे प्राप्त होवे है. । पुण्योदयसे जिनोक्त प्राप्ति हुये भी श्रद्धा १, शुद्ध प्ररूपकका जोग २, और सुणनेसे तत्त्वनिश्चयरूप बोधिरत्न सम्यक्त्व ३, यह अतिही दुर्लभ हैं. ॥ कुत्सितस-
कथकांतवादियोंके शास्त्र तिनकी श्रुतियोंको मथन करनेवाला सम्यक्त्व,

+ पुण्य और पापको आश्रवतत्त्वके अंतर्गत गिणनेसे सप्त तत्त्व, अन्यथा नव तत्त्व जानने. जिनोका स्वरूप जैनतत्त्वादार्शके पंचम परिच्छेदमें है.

जिसके हृदयमें अच्छीतरें स्थित हैं, तिस पुरुषको जगत्के उद्योत करनेवाले, और भव-संसारको मथनेवाले, ज्ञान और चारित्र प्राप्त होते हैं. ॥

॥ श्लोकाः ॥

या देवे देवताबुद्धिर्गुरौ च गुरुतामतिः ॥
 धर्मे च धर्मधीः शुद्धा सम्यक्त्वमिदमुच्यते ॥ १ ॥
 अदेवे देवबुद्धिर्या गुरुधीरगुरौ च या ॥
 अधर्मे धर्मबुद्धिश्च मिथ्यात्वं तद्विपर्ययात् ॥ २ ॥
 सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः ॥
 यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः ॥ ३ ॥
 ध्यातव्योयमुपास्योयमयं शरणमिष्यताम् ॥
 अस्यैव प्रतिपत्तव्यं शासनं चेतनाऽस्ति चेत् ॥ ४ ॥
 ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्रादिरागाद्यंककलंकिताः ॥
 निग्रहानुग्रहपरास्ते देवा स्युर्न मुक्तये ॥ ५ ॥
 नाट्याट्टहाससंगीताद्युपप्लवविसंस्थुलाः ॥
 लंभयेयुः पदं शांतं प्रपन्नान् प्राणिनः कथं ॥ ६ ॥
 महाव्रतधरा धीरा भैक्ष्यमात्रोपजीविनः ॥
 सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मताः ॥ ७ ॥
 सर्वाभिलाषिणः सर्वभोजिनः सपरिग्रहाः ॥
 अब्रह्मचारिणो मिथ्योपदेशा गुरवो न तु ॥ ८ ॥
 परिग्रहारंभमन्नास्तारयेयुः कथं परान् ॥
 स्वयं दरिद्रो न परमीश्वरी कर्तुमीश्वरः ॥ ९ ॥
 दुर्गतिप्रपतत्प्राणिधारणाद्धर्म उच्यते ॥
 संयमादिर्दशविधः सर्वज्ञोक्तो विमुक्तये ॥ १० ॥

अपौरुषेयं वचनमसंभवि भवेद्यदि ॥
 न प्रमाणं भवेद्वाचां ह्याप्ताधीना प्रमाणता ॥ ११ ॥
 मिथ्यादृष्टिभिराम्नातो हिंसाद्यैः कलुषीकृतः ॥
 स धर्म इति चित्तोपि भवभ्रमणकारणम् ॥ १२ ॥
 सरागोपि हि देवश्चेद्गुरुब्रह्मचार्यपि ॥
 कृपाहीनोपि धर्मः स्यात् कष्टं नष्टं हहा जगत् ॥ १३ ॥
 शमसंवेगनिर्वेदानुकंपास्तिक्यलक्षणैः ॥
 लक्षणैः पंचभिः सम्यक् सम्यक्त्वमुपलक्ष्यते ॥ १४ ॥
 स्थैर्यं प्रभावनाभक्तिः कौशलं जिनशासने ॥
 तीर्थसेवा च पंचास्य भूषणानि प्रचक्ष्यते ॥ १५ ॥
 शंका कांक्षा विचिकित्सा मिथ्यादृष्टिप्रशंसनम् ॥
 तत्संस्तवश्च पंचापि सम्यक्त्वं दूषयंत्यमी ॥ १६ ॥

अर्थः—साचे देवके जो देवपणेकी बुद्धि, साचे गुरुके विषे गुरुप-
 णेकी बुद्धि और साचे धर्मके विषे धर्मकी बुद्धि, कैसी बुद्धि ? शुद्धा
 सूधी निश्चल संदेहरहित, इसको सम्यक्त्व कहिये हैं। ऐसी सम्यक्त्वकी
 बुद्धि थोड़े बखत भी जिसको आजावेगी, सो प्राणि अर्द्धपुद्गलपरावर्त-
 कालमेंही संसारसे निकलके मोक्षको प्राप्त होगा, यह निश्चय जाणना।

यत उक्तम् ॥

अंतोमुहुत्तमित्तंपि फासियं जेहिं हुज्झ सम्मत्तं ॥

तेसिं अवट्ठ पुग्गलपरिअट्ठो चेव संसारो ॥ १ ॥

भावार्थः—अंतर्मुहूर्तमात्र भी जिनोंने सम्यक्त्व स्पर्श किया है, ति-
 नोंका अर्द्धपुद्गलपरावर्तही उत्कृष्ट संसार जाणना, तदनंतर अवश्यमेव
 मोक्षको प्राप्त होवे. इति सम्यक्त्वस्वरूपम् ॥ १ ॥

अथ मिथ्यात्वस्वरूपमाह ॥ जिसमें देवके गुण नहीं हैं, ऐसे अदेवमें
 देवकी बुद्धि—जैसे तममें उद्योतकी बुद्धि । जिसमें गुरुके गुण नहीं हैं,

ऐसें अगुरुमें गुरुकी बुद्धि—जैसें नीबमें आम्रकी बुद्धि । अधर्म यागादिमें जीवहिंसादिक, तिसके विषे धर्मकी बुद्धि—जैसें सर्पके विषे पुष्पमालाकी बुद्धि, सो मिथ्यात्व है. सम्यक्त्वसें विपर्यय होनेसें, अर्थात् साचे देवके ऊपर अदेवपणेकी बुद्धि, जैसें कौशिक (घूअड) की सूर्यके तेजऊपर अंधकारकी बुद्धि, साचे गुरुऊपर अगुरुपणेकी बुद्धि, जैसें फूलमालाके ऊपर सर्पकी बुद्धि । और साचे धर्मके ऊपर अधर्मपणेकी बुद्धि, जैसें श्वेतशंखके ऊपर काचकामलरोगवालेकी नीलशंखकी बुद्धि । तिसको मिथ्यात्व कहिये हैं. । सो मिथ्यात्व पांच प्रकारका है. १ आभिग्रहिक, २ अनाभिग्रहिक, ३ आभिनिवेशिक, ४ सांशयिक, ५ अनाभोगिक. ॥

(१) प्रथम आभिग्रहिकमिथ्यात्व, सो, जो जीव मिथ्या कुशा-
स्त्रोंके पढ़नेसें कुदेव कुगुरु कुधर्मके ऊपर आस्था करके दृढ हुआ है,
और ऐसा जानता है कि, जो कुछ मैंने समझा है सोही सत्य है, औ-
रोंकी समझ ठीक नहीं है, जिसको सच्चजूठकी परीक्षा करनेका मन भी
नहीं है, और जो सच्चजूठका विचार भी नहीं करता है. यह
मिथ्यात्व, दीक्षित शाक्यादि अन्यमतममत्वधारीयोंको होता है. वे अपने
मनमें ऐसें जानते हैं कि, जो मत हमने अंगिकार किया है, वोही सत्य
है; और सर्व मत झूठे हैं. ऐसें जिसके परिणाम होवे, सो आभिग्रहिक
मिथ्यात्व है.

(२) दूसरा अनाभिग्रहिकमिथ्यात्व, सो सर्व मतोंको अच्छा जाणे,
सर्व मतोंसें मोक्ष है, इसवास्ते किसीको बुरा न कहना, सर्व देवोंको नम-
स्कार करना, ऐसी जो बुद्धि, तिसको अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व कहते
हैं. यह मिथ्यात्व जिनोंने कोइ दर्शन ग्रहण नहीं करा ऐसें जो गोपाल
बालकादि तिनको है. क्योंकि, यह अमृत और विषको एकसरिखे
जाननेवाले हैं.

(३) तीसरा आभिनिवेशिक मिथ्यात्व, सो जो पुरुष जानकरके
झूठ बोले, प्रथम तो अज्ञानसें किसी शास्त्रार्थको भूल गया, पीछे जब
कोइ विद्वान् कहे कि, तुम इस विषयमें भूलते हो, तब अपने मनमें

सत्य विषयको जाणता हुआ भी, झूठे पक्षका कदाग्रह, ग्रहण करे, जात्यादि अभिमानसे कहना, न माने, उलटी स्वकपोलकल्पित कुयुक्तियों बनाकरके अपने मनमाने मतको सिद्ध करे, वादमें हार जावे तो भी न माने, ऐसा जीव, अतिपापी, और बहुल संसारी होता है. ऐसा मिथ्यात्व, प्रायः जो जैनी, जैन मतको विपरीतकथन करता है, उसमें होता है, गोष्ठमाहिलादिवत् ॥

(४) चौथा सांशयिकमिथ्यात्व, सो देव गुरु धर्म जीव काल पुद्गलादिक पदार्थोंमें यह सत्य है कि, यह सत्य है? ऐसी बुद्धि, तिसको सांशयिकमिथ्यात्व कहते हैं. यथा क्या वह जीव असंख्य प्रदेशी है? वा नहीं है? इसतरें जिनोक्त सर्व पदार्थमें शंका करनी । “सांशयिकं मिथ्यात्वं तदशेषया शंका संदेहो जिनोक्ततत्त्वेष्विवितिबचनात् ॥ ”

(५) पांचमा अनाभोगिकमिथ्यात्व, सो जिन जिवोंको उपयोग नहीं कि, धर्म अधर्म क्या वस्तु है? ऐसैं जे एकेंद्रियादि विशेषचैतन्यरहित जीव, तिनको अनाभोगमिथ्यात्व होता है. ॥ २ ॥

अथदेवलक्षणमाह ॥ देव सो कहिये, जो सर्वज्ञ होवे, परंतु जैसें लौकिक मतमें विनायकका मस्तक ईश्वरने छेदन कर दिया, पीछे पार्वतीके आग्रहसें सर्वत्र देखने लगा, परं किसी जगे भी मस्तक न देखा, तब हाथीके मस्तकको ल्यायके विनायकके मस्तकके स्थानपर चप दिया, जिसवास्ते विनायकका (गणेशका) नाम “ गजानन ” प्रसिद्ध हुआ. इत्यादि—यदि ईश्वर (महादेव) सर्वज्ञ होवे तो, पार्वतीका पुत्र जाणके विनायकका मस्तक कभी न छेदन करे. यदि छेदे, तो जगत्में विद्यमान तिस मस्तकको क्यों न देखे? इसवास्ते ऐसैं अधूरेज्ञानवालेको देव न कहिये. । तथा ‘ जितरागादिदोषः ’ जे संसारके मूलकारण राग द्वेष काम क्रोध लोभ मोहादिक दोष, तिन सर्वको जिसने जीते हैं, निर्मूल किये हैं, तिसको देव कहिये. जिसमें रागादि दोष होवे, तिसको असंख्यदिवत् संसारी जीवही कहिये, तिसमें देवपणा न होवे. । तथा

‘त्रैलोक्यपूजितः’ स्वर्गमर्त्यपातालके स्वामी इंद्रादिक परम भक्तिकरके जिसको वांदे, पूजे, नमस्कार करे, सेवे, सो देव कहिये. परंतु कितनेक इस लोकके अर्थियोंके वांदनेसें, वा पूजनादिकसें देवपणा नही होवे है. । तथा ‘यथास्थितार्थवादी’ जो यथास्थित सत्यपदार्थका वक्ता, सो देव कहिये, परंतु जिसका कथन पूर्वापरविरोधि होवे, और विचारते हुए सत्य २ मिले नही, सो देव न कहिये. ॥ देवोर्हन् परमेश्वरः ॥ येह पूर्वोक्त चार गुण पूर्ण जिसमें होवे, सो अरिहंत, वीतराग, परमेश्वर, देव, कहिये. इससें अन्य कोई देव नही है. ॥ ३ ॥

ऐसा पूर्वोक्त साचा देव, पिछाणके आराधना, सोही कहते हैं. ध्यातव्योयमित्यादि-पूर्वे जे देवके लक्षण कहे, तिन लक्षणोंकरी संयुक्त जो देव, तिसको एकाग्र मन करी ध्यावना, जैसें श्रेणिक महाराजने श्रीमहावीरजीका ध्यान किया. । तिस ध्यानके प्रभावसें आगामी चउ-वीसीमें श्रेणिक महाराज, वर्ण, प्रमाण, संस्थान, अतिशयादिकगुणोंकरके श्रीमहावीरस्वामिसरिषा ‘पद्मनाभ,’ इस नामकरके प्रथम तीर्थंकर होगा. इसीतरें औरोंने भी तल्लीनपणे देवका ध्यान करना, तथा ‘उपास्योयम्’ ऐसे पूर्वोक्त देवकी सेवा करनी श्रेणिकादिवत्. । तथा इसी देवका, संसारके भयको टालनहार जाणके, शरण वांछना. । इसी देवका शासन, मत, आज्ञा, धर्म, अंगीकार करना. । ‘चेतनास्ति चेत्’ जो कोई चेतना चैतन्यपणा है तो, सचेतन सजाण जीवको उपदेश दिया सार्थक होवे, परंतु अचेतन अजाणको दिया उपदेश क्या काम आवे ? इसवास्ते ‘चेतनास्ति चेत्’ ऐसें कहा. ॥ ४ ॥

अथादेवत्वमाह ॥ अथ देवके लक्षण कहते है. ॥ ये स्त्री० जिनके पास स्त्री (कलत्र) होवे तथा खड्ग धनुष्य चक्र त्रिशूलादिक शस्त्र (हथियार) होवे, तथा अक्षसूत्र जपमाला आदि शब्दसें कमंडलुप्रमुख होवे, येह कैसें है ? रा० रागादिकके अंक-चिन्ह है, सोही दिखावे हैं. स्त्री रागका चिन्ह है, । जो पासे स्त्री होवे तो जाणना कि, इसमें राग है. । शस्त्र द्वेषका चिन्ह है, जो पासे हथियार देखीए तो, ऐसा जाणिये कि तिसने किसी

वैरीको मारना, चूरना है, अथवा किसीका भय है, जिस वास्ते शस्त्रधारण किये हैं। अक्षसूत्र असर्वज्ञपणेका चिन्ह है, जो हाथमें माला धारण करे तो जाणिये कि, इसमें सर्वज्ञपणा नहीं है। यदि होवे तो, मणके बिना गिण-तीकी संख्या जाणलेवे। अथवा तिससैं अधिक बड़ा अन्य कोई है, जिसका वो जाप करता है। यदि अन्य कोई नहीं है तो, जपमालासैं किसका जाप करता है ? । कमंडलु अशुचिपणेका चिन्ह है, यदि हाथमें कमंडलु पाणीका भाजन देखीए तो, ऐसा जाणिये कि, यह अशुचि है। शौच करणेके वास्ते यह कमंडलु धारण करता है।

यत उक्तम् ।

स्त्रीसंगः काममाचष्टे द्वेषं चायुधसंग्रहः ॥

व्यामोहं चाक्षसूत्रादिरशौचं च कमंडलुः ॥ १ ॥

इन पूर्वोक्त दोषोंकरके जे कलंकित दूषित है, तथा निग्रहा० जिसके ऊपर रुष्टमान होवे, तिसको निग्रह (बंधनमरणादिक) करें, और जिसके ऊपर तुष्टमान होवे, तिसको अनुग्रह (राज्यादिकके वर) देवें; तेदेवा० जे ऐसे रागादिकोंकरके दूषित हैं, वे देव, मुक्तिके हेतु नहीं होते हैं. ॥ ५ ॥

ऐसे पूर्वोक्त देव अपने सेवकोंको मोक्ष नहीं दे सकते हैं, सोही बात फिर कहते हैं. । नाट्याट्ट० जे देव नाटकके रसमें मग्न हैं, अट्टाट्टहास करते हैं, वीणा लेके संगीत गानादिक करते हैं, इत्यादि उपप्लव संसारकी चेष्टा तिनोंकरके जे विसंस्थुल निःप्रतिष्ठ अस्थिर है; लंभयेयुः—जे आपही ऐसे हैं, वे देव, अपने प्रपन्न आश्रित सेवकोंको शांतपद, संसार चेष्टारहित मुक्ति केवलज्ञानादिकपद, कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? जैसे एरंडवृक्ष कल्पवृक्षकीतरें इच्छा नहीं पूर सकता है, यदि किसी मूढ़ पुरुषने एरंडको कल्पवृक्ष मान लिया तो, क्या वो कल्पवृक्षकीतरें मनोवांछित दे सकता है ? ऐसेही किसी मिथ्या दृष्टीनें पूर्वोक्त दूषणोंवाले कुदेवोंको देव मान लिये तो, क्या वे देव परमेश्वर मोक्षदाता हो सकते हैं ? कदापि नहीं हो सकते हैं. ॥ ६ ॥

अथगुरुलक्षणमाह ॥ अथ गुरुके लक्षण कहते हैं ॥ महाव्र० अहिंसा-
दि पांच महाव्रतके धारने पालनेवाले होवे, और आपदा आ पड़े तब
धीर साहसिक होवे, अपने व्रतोंको विराधे नहीं, कलंकित करे नहीं ।
बेंतालीश (४२) दूषणरहित भिक्षावृत्ति माधुकरी वृत्ति करी अपने चारित्र-
धर्मके तथा शरीरके निर्वाहवास्ते भोजन करे, भोजन भी ऊनोदरतासंयुक्त
करे, भोजनकेवास्ते अन्न पाणी रात्रिको न राखे, धर्मसाधनके उपकरण-
विना और कुछ भी संग्रह न करे, तथा धन, धान्य, सुवर्ण, रूपा,
मणि, मोती, प्रवालादि परिग्रह, न राखे. । सामा० रागद्वेषके परिणामर-
हित मध्यस्थ वृत्ति होकर सदा सामायिकमें वर्त्ते. । धर्मोप० जो धर्म
जीवोंके उद्धारवास्ते सम्यग् ज्ञानदर्शनचारित्ररूप परमेश्वर अरिहंत
भगवंतने स्याद्वाद अनेकांतस्वरूप निरूपण किया है, तिस धर्मका जे
भव्य जीवोंकेतांइ उपदेश करे, परंतु ज्योतिषशास्त्र, अष्टप्रकारका निमित्त
शास्त्र, वैद्यशास्त्र, धन उत्पन्न करनेका शास्त्र, राजसेवादि अनेकशास्त्र,
जिनसे धर्मको बाधा पहुंचे तिनका उपदेश न करे; ऐसे गुरु कहियें. ।
काष्ठमय बेडीसमान आप भी तरें, और औरोंको भी तारें. ॥ ७ ॥

अथागुरुलक्षणमाह ॥ अथ अगुरुके लक्षण कहते हैं ॥ सर्वा० स्त्री, धन,
धान्य, हिरण्य, रूपादि सर्व धातु, क्षेत्र, हाट, हवेली, चतुःपदादिक अनेक
प्रकारके पशु, इन सर्वकी अभिलाषा है जिनको, वे सर्वाभिलाषिणः ।
सर्वभोजिनः । मधु, मांस, मांखण, मदिरा, अनंतकाय, अभक्ष्यादिक
सर्व वस्तुके भोजन करनेवाले होवे, किसी भी वस्तुको वर्जे नहीं, ।
सपरिग्रहाः । जे पुत्र, कलत्र, धन, धान्य, सुवर्ण, रूपा, क्षेत्रादिककरीस-
हित हैं, । अब्रह्म० तथा अब्रह्मचारी हैं । मिथ्यो० मिथ्या वितथ झूठे धर्म-
का उपदेश करें, झूठाधर्म प्रकाशें, ज्योतिष, निमित्त, वैदक, मंत्र तंत्रा-
दिकका उपदेश देवें, वे गुरु नहीं. लोहमय बेडी (नावा) समान, आप
भी डूबें, और औरोंको भी डोबें. ॥ ८ ॥

पूर्वोक्त वातही कहते हैं ॥ परिग्रहा० स्त्री, घर, लक्ष्मी आदि परि-
ग्रह, और क्षेत्र, कृषी, व्यवसायादि आरंभ इनमें जे मग्न है, आपही

भवसमुद्रमें डूबे हुए हैं, ता० वे, किसतरसे दूसरे जीवोंको संसार-सागरसे तार सकते हैं? इसवातमें दृष्टान्त कहते हैं। जो पुरुष आपही दरिद्री है, सो परको ईश्वर, लक्ष्मीवन्त करनेको समर्थ नहीं है; तैसेही वे कुगुरु, आपही संसारमें डूबे हुए, पर अपने सेवकोंको कैसे तार सके ? ॥ ९ ॥

धर्मलक्षणमाह ॥ सत्य धर्मका स्वरूप कहते हैं. ॥ दुर्गति० नरक, तिर्यंच, कुमनुष्य, कुदेवत्वादि दुर्गतिमें गिरते हुए प्राणिकी रक्षा करे, गिरने न देवे, इसवास्ते धारण करनेसे धर्म कहिये. सो, संयमादि दशप्रकार सर्वज्ञका कथन करा हुआ धर्म, पालनेवालेको मोक्षकेवास्ते होता है। संयमादि दश प्रकार येह हैं. संयम जीवदया १, सत्यवचन २, अदत्तादानत्याग ३, ब्रह्मचर्य ४, परिग्रहत्याग ५, तप ६, क्षमा ७, निरहंकारता ८, सरलता ९, निर्लोभता १०. ॥ इससे उलटा हिंसादिमय असर्वज्ञोक्त धर्म, दुर्गतिकाही कारण है. ॥ १० ॥

अधर्मत्वमाह ॥ अपौरुषेय० अपौरुषेय वचन, असंभवि-संभवरहित है. क्योंकि, जो वचन है, सो किसी पुरुषके बोलनेसेही है, विना बोले नहीं. वच् परिभाषणे इति वचनात्. और अक्षरोत्पत्तिके आठ स्थान नियत है, सो भी पुरुषकोही होते हैं. इसवास्ते वचन पुरुषके विना संभवे नहीं. । भवेद्यदि-न प्रमाणं । याहि होवे तो, वेदको प्रमाणता नहीं. क्योंकि, । भवेद्वाचां ह्यासाधीना प्रमाणता । वचनोंकी प्रमाणता, आस पुरुषोंके अधीन है. ॥ ११ ॥

असर्वज्ञोक्त धर्म प्रमाण नहीं यह कहते हैं. ॥ मिथ्या० मिथ्यादृष्टि असर्वज्ञोंने अपनी बुद्धिसे कहा हुआ, पशुमेध, अश्वमेध, नरमेधादि यज्ञोंके कथनसे, और अपुत्रस्य गतिर्नास्ति इत्यादि कथनसे, जीवबधादिकोंकरके जो धर्म मलीन है, सधर्म० सो धर्म है, अर्थात् यज्ञादि हिंसा धर्मही है, ऐसा अजाण लोकोंमें विशेष प्रसिद्ध है. तो भी, भवभ्रमण (संसारभ्रमण) का कारण है. यथार्थ धर्मके अभावसे ॥ १२ ॥

कुदेवकुगुरुकुधर्मनिंदामाह ॥ सरागोपि० यदि जगत्में सरागः रागद्वेषादिकरी सहित भी देव होवे, अब्रह्मचारी मैथुनाभिलाषी भी गुरु होवे, और दयाहीन भी धर्म होवे, तो, हाहा ! इति खेदे बड़ा भारी कष्ट है, संसारलक्षण जगत् नष्ट हुआ, दुर्गतिमें पडनेसें. क्योंकि, पूर्वोक्त देव गुरु धर्मकरके डूबनाही होवे. ।

यत उक्तम् ॥

रागी देवो दोसी देवो नामिसूमंपि देवो रत्ता मत्ता कंता
सत्ता जे गुरू तेवि पुज्जा । मज्जे धम्मो मंसे धम्मो जीव
हिंसाइ धम्मो हाहा कट्ठं नट्ठो लोओ अट्टमट्ठं कुणंतो ॥ १ ॥ १३ ॥

ऐसें पूर्वोक्त अदेव, अगुरु, अधर्मका परित्याग करके, सत्य देव, गुरु, धर्मकी, आस्था करनी, तिसका नाम सम्यक्त्व है. अर्थात् आत्माका जो शुभ परिणाम है, सोही सम्यक्त्व है. सो सम्यक्त्व हृदयमें है, ऐसा पांच लक्षणोंकरके मालुम होता है, वे पांच लक्षण कहते हैं. ॥

शमसं०—जिस जीवमें अनंतानुबंधि क्रोध मान माया लोभका उपशम देखिये, अर्थात् अपराध करनेवालेके ऊपर जिसको तीव्र कषाय उत्पन्न होवेही नहीं, यदि उत्पन्न होवे तो, तिस क्रोधादिको निष्फल कर देवे, इस शमरूप लक्षणसें जाणिये कि, इस जीवमें सम्यक्त्व है. १ । संवेग—जिसके हृदयमें संवेग संसारसें वैराग्यपणा होवे, तिस जीवमें संवेगरूप लक्षणसें सम्यक्त्व जाणिये हैं. २ । संसारके सुखों ऊपर द्वेषी, वैराग्यवान्, परवशपणेसें कुटुंबादिकके दुःखसें गृहस्थपणेमें रहा हुआ मोक्षाभिलाषी, जो जीव है, तिसमें निर्वेदरूप लक्षणसें सम्यक्त्व है. ३ । जिसके हृदयमें दुःखिजीवोंको देखके अनुकंपा (दया) उत्पन्न होवे, दुःखिजीवोंके दुःखोंको दूर करनेका जिसका मन होवे, जो दुःखिजीवको देखके अपने मनमें दुःखी होवे, शक्तिअनुसार दुःखिजीवके दुःखोंको दूर करे, तिसमें अनुकंपारूप लक्षणसें सम्यक्त्व उपलब्ध होता है. ४ । जिनोक्त तत्त्वोंमें अस्ति-

भावका होना, सो आस्तिक्य । ५ । एतावता शम १, संवेग २, निर्वेद ३, अनुकंपा ४, और आस्तिक्य ५, इन पांचों लक्षणोंसे हृदयगत सम्यक्त्व जाणिये हैं ॥ १४ ॥

सम्यक्त्वस्य पंचभूषणान्याह ॥ अथ सम्यक्त्वके पांच भूषण कहते हैं ॥
स्थैर्य०—स्थैर्य जिनधर्मकेविषे स्थिरता । १ । जिनधर्मकी प्रभावना । २ ।
जिनधर्ममें भक्ति । ३ । जिनशासनमें कुशलता । ४ । और तीर्थसेवा । ५ ।
येह पांच सम्यक्त्वके भूषण हैं ॥ १५ ॥

सम्यक्त्वस्य पंचदूषणान्याह ॥ अथ सम्यक्त्वके पांच दूषण कहते हैं ॥
शंका०—शंका धर्म है, वा नहीं ? इत्यादि संदेह । १ । आकांक्षा—अन्य २
धर्मकी अभिलाषा । २ । विचिकित्सा—धर्मके फलका संदेह । ३ । मिथ्या-
दृष्टिकी प्रशंसा । ४ । और मिथ्यादृष्टियोंका परिचय । ५ । येह पांच
सम्यक्त्वों दूषित करते हैं ॥ १६ ॥

ऐसे पूर्वोक्त उपदेशकरके श्रेणिक, संप्रति, दशार्णभद्रादि सम्यक्त्वमें
दृढ राजायोंके चरित्रोंके व्याख्यान करे । उस दिनमें श्रावक एकभक्त
आचाम्लादि तप करे । साधुओंको अन्न, वस्त्र, पुस्तक, वसति, यथा-
योग्य देना । मंडलीपूजा करनी । चतुर्विधसंघवात्सल्य करना । और
संघपूजा करनी ॥

इतिव्रतारोपसंस्कारे सम्यक्त्वसामायिकारोपणविधिः ॥
इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे पंचद-
शव्रतारोपसंस्कारांतर्गतसम्यक्त्वसामायिकारोपणविधिवर्ण-
नोनाम सप्तविंशः स्तम्भः ॥ २७ ॥

॥ अथाष्टाविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ अष्टाविंश (२८) स्तम्भमें व्रतारोपसंस्कारांतर्गत देशविरतिसामायि-
कारोपणविधि लिखते हैं ॥ तदाही—सम्यक्त्व सामायिकारोपणानंतर
तत्कालही, तिसकी वासनानुसारें, वा मास वर्षादिके अतिक्रम हुए, देश
विरतिमासायिक आरोपण करिये हैं । तहां नंदि, चैत्यवंदन, कायोत्सर्ग

वासक्षेप, क्षमाश्रमणआदि, पूर्ववत् जानने. परंतु सर्वत्र सम्यक्त्वसामायिकके स्थानमें देशविरतिसामायिकका नाम ग्रहण करना. । सर्वत्र तैसें करके फिर दूसरी नंदि दंडकोच्चारणसें प्रथम करनी. । व्रतोच्चारकालमें नमस्कार तीन पाठानंतर, हाथमें ग्रहण करे परिग्रह परिमाण टिप्पनक (फहरिस्त-नोंध) ऐसे श्रावकको, गुरु, देशविरतिसामायिकदंडक उच्चारवे. ॥

सयथा ॥

“ ॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगं पाणाइवायं संकप्पओ वीइंदिआइजीवनीकायनिग्गहनियट्ठिरूवं निरावराहं पच्चक्खामि जावजीवाए दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥ ”

यह पाठ तीनवार कहना ॥ १ ॥ इसीतरें सर्व व्रतोंमें तीन २ वार पाठ पढना. ॥

“ ॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगं मुसावायं जीहाच्छेयाइनिग्गहहेऊअं कन्नागोभूमिनिक्खेवावहारकूडसक्खाइपंचविहं दक्खिन्नाइअविसए अहागहिअभंगएणं पच्चक्खामि जावजीवाए दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ० ॥ २ ॥ ”

“ ॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगं अदिन्नादाणं खत्तखण्णाइचोरकारकरं रायनिग्गहकरं सच्चित्ताचित्तवत्थुविसयं पच्चक्खामि जावजीवाए दुविहं तिविहेणं ० ॥ ३ ॥ ”

“ ॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगमेहुणं उरालियवेउव्वियभेअं अहागहिअभंगएणं तत्थ दुविहं तिविहेणं दिव्वं एगविहं तिविहेणं तेरिच्छं एगविहमेगविहेणं माणुस्सं पच्चक्खामि जावजीवाए दुविहं तिविहेणं ० ॥ ४ ॥ ”

“॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे अपरिमिअं परिग्गहं धण-
धन्नाइनवविहवत्थुविसयं पच्चक्खामि इच्छापरिमाणं अहा-
गहिअभंगएणं उवसंपज्जामि जावज्जीवाए दुविहं
तिविहेणं० ॥ ५ ॥”

“॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे पढमं गुणवूयं दिसिपरिमा-
णरूवं पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ६ ॥”

“॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे उवभोगपरिभोगवयं भोयणओ
अणंतकायबहुवीयरईभोयणाइबावीसवत्थुरूवंकम्मणापन्न-
रसकम्मादाणइंगालकम्माइबहुसावज्जंखरकम्माइरायनिओ-
गं च परिहरामि परिमिअं भोगउवभोगं उवसंप-
ज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ७ ॥”

“॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे अणत्थदंडगुणव्वयं अट्ठरुद्ध-
ज्झाणपावोवएसहिंसोवयारदाणपमायकरणरूवं चउव्विहं
जहासत्तीए पडिवज्जामि दुविहं तिविहेणं० ॥ ८ ॥”

“॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे सामाइयं जहासत्तीए पडिव-
ज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ९ ॥”

“॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे देसावगासिअं जहासत्तीए
पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ १० ॥”

“॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे पोसहोववासं जहासत्तीए
पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ११ ॥”

“॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे अतिहिसांविभागं जहासत्तीए
पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ १२ ॥”

“ ॥ इच्चेयं सम्मत्तमूलं पंचाणुव्वइयं तिगुणव्वइयं चउ-
सिक्खावइयं दुवालसविहं सावगधम्मं उवसंपज्जित्ताणं
विहरामि ॥ इति ॥ ”

दंडकोच्चारणानंतर कायोत्सर्ग, वंदनक, क्षमाश्रमण, प्रदक्षिणा, वास-
क्षेपादिक पूर्ववत्.

परिग्रहप्रमाणटिप्पनकयुक्तिर्यथा ॥

पणमिअ अमुगजिणंदं अमुगा सद्धी य अमुग सद्धो वा ॥

गिहिधम्मं पडिवज्जइ अमुगस्स गुरुस्स पासंमि ॥ १ ॥

अरहंतं मुत्तूणं न करेमि अ अन्नदेवयपणामं ॥

मुत्तूणं जिणसाहू न चेव पणमामि धम्मत्थं ॥ २ ॥

जिणवयणभाविआइं तत्ताइं सच्चमेव जाणामि ॥

मिच्छत्तसत्थसवणे पढणे लिहणे अ मे नियमो ॥ ३ ॥

परतित्थिआण पणमण उज्झावण थुणण भत्तिरागं च ॥

सक्कारं सम्माणं दाणं विणयं च वज्जेमि ॥ ४ ॥

धम्मत्थमन्नतित्थे न करे तवदाणन्हाणहोमाई ॥

तेसिं च उचियकम्मे करणिजे होउ मे जयणा ॥ ५ ॥

तिअपंचसत्तवेलं चियवंदणयं जहाणुसत्तीए ॥

इगदुन्निअवाराओ सुसाहूनमणं च संवासो ॥ ६ ॥

इगदुन्नित्तिन्निवेलं जिणपूआ निच्च पवून्हवणं च ॥

जयणा य कुलायारे पाणवहं सबूजीवाणं ॥ ७ ॥

न करेमि अकज्जेणं कज्जे एगिंदिआण मह जयणा ॥

कन्नाईविसयअलियं वज्जेमि अ पंच नियमेणं ॥ ८ ॥

वज्जेमि धणं चोरंकारकरं रायनिग्गहकरं च ॥

दुविहतिविहेण दिव्वं एगविहं तिविहतेरिच्छं ॥ ९ ॥

नियमुत्ति अणुभवेणं वंभवयं नियमणंमि धारेमि ॥
 माणुस्से जाजीवं काएणं मेहुणं वज्जे ॥ १० ॥
 परनारिं परपुरिसं वज्जेमि अ अन्नओ अ जयणा मे ॥
 अह य परिग्गहसंखा परिग्गहे नवविहे एसा ॥ ११ ॥
 इत्तिअमित्ता टंका इत्तिअमित्ताइं अहव दम्मा वा ॥
 तेस्सि च वत्थुगहणे इत्तिअमित्ताइं संखा वा ॥ १२ ॥
 इत्तियमित्ताण टंकयाण गणिमस्स वत्थुणो गहणं ॥
 तुलिमस्स इत्तिआण य मेअस्स य इत्तिआणं च ॥ १३ ॥
 हत्थंगुलमेयाणं इत्तिअमित्ताण मज्झ संगहणं ॥
 तहदिट्ठिमुल्लयाणं इत्तिअमित्ताण टंकाणं ॥ १४ ॥
 इत्तिअखारी अन्नाण इत्तिअ मह परिग्गहे भूमी ॥
 पुरगामहट्ठगेहा खित्ता मह इत्तिअपमाणा ॥ १५ ॥
 इत्तिअमित्तं कणयं इत्तिअमित्तं तहेव रूप्पं च ॥
 कंसं तंव लोहं तउं सीसं इत्तियं च धरे ॥ १६ ॥
 इत्तिअमित्ता दासा दासीओ इत्तिआओ मह संखा ॥
 संखा सेवयचेडाण इत्तिआणं च मह होउ ॥ १७ ॥
 इत्तिअमित्ता करिणो इत्तिअ तुरया य इत्तिआ वसहा ॥
 इत्तिअ करहा य सगडा गोमहिस्सीओ इअपमाणा ॥ १८ ॥
 इत्तिअमित्ता मेसा इत्तिअ छगलाओ इत्तिआ य हला ॥
 अमुगस्स य अमुगस्स य कम्मस्स उ होइ मे नियमो ॥ १९ ॥
 दससुवि दिसासु इत्तिअजोअणगमणं च जावजीवं मे ॥
 अप्पस्स वसेणं चिअ जयणा पुण तित्थजत्तासु ॥ २० ॥
 कम्मे भोगुवभोगे खरकम्मं कम्मदाणपनरसणं ॥
 दप्फोलाहारं चिअ अण्णायपुप्फं फलं वज्जे ॥ २१ ॥

पंचुंबरि चउ विगई हिम विस करगे अ सव्वमट्ठी अ ॥
 राईभोयणगं चिय बहुवीअ अणंत संधाणा ॥ २२ ॥
 घोळवडा वायंगण अमुणिअनामाइं पुप्फफल्याइं ॥
 तुच्छफलं चलिअरसं वज्जे वज्जाणि बावीसं ॥ २३ ॥
 एआइं मुत्तूणं अन्नाण फलाण पुप्फपत्ताणं ॥
 एआइं एआइं पाणंतेवि हु न भक्खेमि ॥ २४ ॥
 इत्तिअमित्तअणंते फासुअरईएण होउ मे जयणा ॥
 इत्तिअफले अपक्के अखंडिएवि हु न भक्खेमि ॥ २५ ॥
 आजम्मं सच्चित्ता इत्तिअमित्ता य भक्खणिज्जा मे ॥
 इत्तिअमित्ता दव्वा वंजणधिअदुद्धदहिपभिई ॥ २६ ॥
 इत्तिअमित्ता विगई इत्तिअमित्ता य मे पइत्ताणा ॥
 इत्तिअमित्ता गयतुरयरहवरा हुंतु जयणा मे ॥ २७ ॥
 इत्तिअमित्ता पूगा इत्तिअमित्ता लवंग पत्ता य ॥
 एला जाइफलाइ अ मह निच्चं इत्तिअपमाणा ॥ २८ ॥
 चउव्विहवत्थाणंपि अ इत्तिअमत्ताण मज्झ परिहाणं ॥
 इअजाई इअसंखा पुप्फाणं अंगभोगे मे ॥ २९ ॥
 आसंदी सीहासण पीढय पट्ठा य चउक्किआओ अ ॥
 इत्तिअमित्ता पल्लं क तूलिया खट्ठमाईओ ॥ ३० ॥
 कप्पूरागरुकच्छूरिआओ सिरिहंडकुंकुमाई अ ॥
 इत्तिअमित्ता मह अंगलेवणे पूयणे जयणा ॥ ३१ ॥
 इत्तिअमित्ता नारीओ मज्झ संभोगमित्तिअं कालं ॥
 इत्तिअघडेहि पूएहि फासुएहिं च मे न्हाणं ॥ ३२ ॥
 इत्तिअवारा इत्तिअतिळेहिं इत्तिअप्पयारेहिं ॥
 इत्तिअमित्तं भत्तं इत्तिअवाराइं भुंजामि ॥ ३३ ॥

इअ जावजीवं चिय सच्चित्ताईण भोगपरिभोगा ॥
 एएसिं पुण संखं दिवसे दिवसे करिस्सामि ॥ ३४ ॥
 इत्तिअमित्तं मणिकणयरूपमुत्ताइभूसणं अंगे ॥
 इत्तिअमित्तं गीअं नटं वज्जं च उवभुज्जं ॥ ३५ ॥
 वज्जेमि अट्ठरुहं झाणं अरिघायवयरमाईयं ॥
 दक्खिन्नाविसए पुण सावज्जुवएसदाणं च ॥ ३६ ॥
 तह दक्खिणाविसए हिंसगगिहोवगरणाइदाणं च ॥
 तह कामसत्थपढणं जूयं मज्जं परिहरेमि ॥ ३७ ॥
 हिंडोलायविणोअं भत्तिथीदेसरायथुइनिंदं ॥
 पसुपक्खिजोहणं चिय अकालनिदं सयलरयणी ॥ ३८ ॥
 इच्चाइपमायाइं अणत्थदंडे गुणव्वए वज्जे ॥
 वरिसे इत्तिअसामाइआइं तह पोसहाइं इत्ताइं ॥ ३९ ॥
 इत्ताइं जोअणाइं मह दिवसे दसदिसासु गमणं च ॥
 साहूण संविभागं भोयणवत्थाइसु करेमि ॥ ४० ॥
 पढमं जईण दाउण अप्पणा पणमिउण पारेमि ॥
 असईइ सुविहिआणं भुंजेमि अ कयदिसालोओ ॥ ४१ ॥
 इअवारसविहमिमिणा विहिणा पालेमि सावगं धम्मं ॥
 अगलिअजलस्सपाणं न्हाणं मरणेवि वज्जेमि ॥ ४२ ॥
 कंदप्पदप्पनिट्ठीवणाइं सुअणं चउव्विहाहारं ॥
 सजिणजिणमंडवंते विकहं कलहं च मुंचामि ॥ ४३ ॥
 अमुगंमि महागच्छे अमुगस्स गुरुस्स सूरिसंताणे ॥
 अमुगस्स सीसपासे पायंते अमुगसूरिस्स ॥ ४४ ॥
 अमुगम्मि वच्छेरे अमुगमासि अमुगम्मि पक्खसमयंमि ॥
 अमुगतिथि अमुगवारं अमुगे रिक्खे अ अमुगपुरे ॥ ४५ ॥

अमुगस्स सुओ अमुगो सढो गिण्हेइ इत्थ गिहिधम्मं ॥
 अमुगस्स अमुगकंता अमुगा वा साविआ चेव ॥ ४६ ॥
 जुञ्झंमि गोगहम्मि अ चेइअगुरुसाहुसंघउवसग्गे ॥
 तह दुट्ठनिग्गहे चिअ जीवविघाए न मह दोसो ॥ ४७ ॥
 जणदेसरक्खणत्थं हणणे मह सीहवग्घसत्तूणं ॥
 नहु दोसो जलपिअणे गलणं अन्नत्थ जहंसत्ती ॥ ४८ ॥
 इत्थेव पमाणं घुरुवयणेणं इमं तवं कुव्वे ॥
 अप्पवहुभंगणं तेणं जायइ मह विसोही ॥ ४९ ॥

भाषार्थः—अमुक जिनेन्द्रको नमस्कार करके, अमुक श्राविका, वा अमुक श्रावक अमुक गुरुके पासे, गृहस्थधर्मको अंगीकार करता है. ॥ १ ॥

श्री अरिहंतको व्रजके अन्य देवको नमस्कार न करूं, जिनमतके सुसाधुको छोड़के अन्य लिंगिको-धर्मार्थें नमस्कार न करूं. ॥ २ ॥ जिन वचन स्याद्वादयुक्त जो सत्त वा नव तत्त्व तिनको सत्य करी जानता हूं, मिथ्याशास्त्रोंके श्रवण पठन लिखनेका मुझको नियम होवे. ॥ ३ ॥ परतीर्थियोंको प्रणाम, उद्भावन, स्तवन, भक्ति, राग, सत्कार, सन्मान, दान, विनय, वर्जु—न करूं. ॥ ४ ॥ धर्मकेवास्ते अन्य तीर्थमें तप, दान, ज्ञान, होमादिक नही करूं. तिनके उचित करने योग्य कर्ममें जयणा मुझको होवे. ॥ ५ ॥ तीन, वा पांच, वा सातवार यथाशक्तिसें चैत्यवंदन करूं; एक, वा दो वा तीन बार, प्रतिदिन सुसाधुको नमस्कार करूं, और तिसकी सेवा करूं. ॥ ६ ॥ एक, वा दो, वा तीनवार प्रतिदिन जिनपूजा करूं; और पर्वदिनमें छात्रादि अधिक अधिकतर पूजा करूं. इतिसम्यक्त्वम् ।

कुलाचार विवाहादि कृत्यमें जीवबध होते जयणा करूं. ७ ॥ विना प्रयोजन एकेंद्रियका भी बध न करूं, प्रयोजनके हुए जयणा करूं. ॥ इतिप्रथमव्रतम् ।

कन्या आदि पांच प्रकारका मृषावाद, नियमकरके वर्जता हूं। इति-
द्वितीयव्रतम् ।

जिससे चोर नाम पड़े, और राजदंड होवे, ऐसा धन वर्जु, अर्थात्
चोरी वर्जु। इतितृतीयव्रतम् ।

दो करण तीन योगसे देवतासंबंधि, एकाविध त्रिविधें करी तिर्यच
संबंधि मैथुनका नियम करता हूं। ९। अनुभव करके स्तंभसमान ब्रह्म-
व्रतको अपने मन्त्रमें धारण करूं, और जावजीव मनुष्यसंबंधि मैथुन
कायाकरके वर्जु। १०। परनारीको, और परपुरुषको (स्त्री व्रतग्राहिता
आश्रित) वर्जु। इनके उपरांत अन्यकी मुझको जयणा। इतिचतुर्थव्रतम् ।

अथ च नव प्रकारके परिग्रहमें परिग्रहकी संख्याका प्रमाण यह है।
११। इतने मात्र रूप्यक, इतने द्रम्म, तिनसें वस्तुका ग्रहण करना, इतने
मात्र गिणतिमें। १२। इतने गिणतिमें रूप्यक, यह गणिमवस्तुका ग्रह-
ण है॥ तोलमें इतनी वस्तु और मापसें इतनी वस्तु। १३। हाथ अं-
गुलसें मेय वस्तुका इतने प्रमाण मात्रसें मुझको संग्रह करना कल्पे
तथा दृष्टिसें देखके जिनका मोल करा जावे ऐसे पदार्थ इतने रूपइ-
योंके मोलके रखने। १४। इतनी खारीयां अन्नकी एक वर्षमें रखनी
इतनी मुझको परिग्रहमें भूमि रखनी कल्पे; इतने पुर, इतने गाम
इतनी हटां, इतने घर, और इतने प्रमाण क्षेत्र, मुझको कल्पे। १५
इतने सेर, वा इतने तोले प्रमाण सोना, इतने मात्र रूपा, इतना कांसा
इतना ताम्र (तांबा), इतना लोहा, इतना तरुया, इतना सीसा, अपने
घरमें रखना। १६। इतने दास, इतनी दासी, इतने सेवक-नौकर और
इतने दासचेटकोंकी संख्या मुझको रखनी कल्पे। १७। इतने हाथी
इतने घोड़े, इतने बलद, इतने ऊंट, इतने गाड़े, इतनी गौयां, इतने
महिषीयां (भैंसां)। १८। इतनी बकरीयां, इतनी भेड़ें, और इतने
हल रखने मुझको कल्पे और अमुक अमुक कर्मका मुझको नियम
होवे। १९। इति पंचमव्रतम् ।

दसोंही दिशायोंमें अपने वशसें इतने योजन प्रमाण जावजीव गमन
करना, और तीर्थयात्रामें जानेकी जयणा। २०। इतिषष्ठव्रतम् ।

कर्ममें भोगोपभोगमें, खरकर्ममें, पंदरा कर्मादानमें, दुष्पोल आहार अज्ञात फूल फल इनको वर्जुं । २१ । पांच ऊंवर ५, चार महाविगइ ४, हिम १०, विष ११, करक १२, सर्व जातकी मट्टी १३, रात्रिभोजन १४, बहुबीजा १५, अनंतकाय १६, संधान (आचार) १७ । २२ । घोलवडां (विदल) १८, वृंताक १९, अज्ञात फल फूल २०, तुच्छ फल २१, और चलितरस २२, येह बावीस वस्तुयोंको वर्जुं । २३ । इनको वर्जके अन्य फल फूल पत्रमेसें अमुक अमुक प्राणांतमें भी, भक्षण न करूं । २४ । इतने मात्र प्रासुक अनंतकी मुझको जयणा होवे, इतने अपक फल और अखंडित भी भक्षण न करूं । २५ । आ जन्मतांइ इतनी सच्चित्त वस्तुयों मेरेको भक्षण करने योग्य है, इतने पुष्टिकारक द्रव्य, और इतने व्यंजन शाकादि मुझको कल्पे; तथा घृत, दुग्ध, दहि प्रभृति- । २६ । इतनी विगइयां मुझको कल्पे. इतने पियादे, इतने गज, इतने तुरग और इतने प्रधान रथोंकी मुझको जयणा होवे । २७ । इतने पूगफल (सुपारी), इतने लवंग, इतने पत्र, इतने एलाफल (इलायची) जायफल आदि मेरेको नित्य इतने प्रमाण कल्पे । २८ । सौत्र, कौशेय, और्ण, ताण्ण, इन चार प्रकारके वस्त्रोंमें भी इतने वस्त्र पहिरने मुझको कल्पे; और इतनी जातिके फूल मेरे अंगके भोगवास्ते कल्पे । २९ । आसंदी, सिंहासण, पीढी, पट्टे, चौकीयां, पल्लंक, तुलिका (तूलाई) और खाट आदि, येह सर्व इतने प्रमाण मुझको कल्पे । ३० । कर्पूर, अगर, कस्तूरी, श्रीखंड, कुंकुमादि इतने मात्र मेरे अंगके लेपवास्ते कल्पे; और पूजामें जयणा । ३१ । इतनी नारीयां मेरे संभोगमें इतने कालमात्र, इतने घडे, छाणे हुए जलके और प्रासुक जलके मेरेको स्नानवास्ते कल्पे । ३२ । इतनी वार दिनमें इतनी जातिके तेल अभ्यंग (मर्दन) वास्ते, इतने प्रकारके भात रोटी आदिक भोजन, और दिनमें इतनी वार भोजन करना । ३३ । यह सच्चित्तादिका भोग परिभोग जावजीवतांइ है, इनका भी फेर प्रमाण दिनदिनमें करूं * । ३४ । इतने मात्र मणि, कनक, रूपा, मोती भूषण,

* दिन २ में जो प्रमाण करना है, सो दशम देसावकाशिकव्रतांतर्गत जाणना । ॥

अंगऊपर धारण करूं. इतने मात्र गीत, नृत्य, वाजंत्र, मुझको उपभोग-वास्ते कल्पे. । ३५ ॥ इतिसप्तमव्रतम् ॥

वैरिका घात वैर लेना इत्यादिक आर्त्त रौद्र ध्यान अदाक्षिण्यताविषे पापोपदेशका देना, इनको वर्जु. । ३६ । अदाक्षिण्यताविषे हिंसाकारी ग्रहोपकरणादि देना तथा कामशास्त्रका पढना, जूया खेलना, मद्य पीना, इनको परिहरूं. । ३७ । हिंडोलेका विनोद, भक्त (भोजन), स्त्री, देश, और राजा, इनकी स्तुति, वा निंदा; पशु पक्षीका युद्ध, अकालमें नींद लेनी, संपूर्ण रात्रिमें सोना, । ३८ । इत्यादि प्रमादस्थानक, अनर्थादंडना-मक गुण व्रत में वर्जु. । इत्यष्टमव्रतम् ॥

एक वर्षमें इतने सामायिक करूं. । इतिनवमव्रतम् ॥

इतने योजन मेरेको दिन, वा रात्रिमें दशोदिशायोंमें जाना कल्पे. । इतिदशमव्रतम् ।

एक वर्षमें इतने पौषध करूं. । इत्येकादशव्रतम् ॥

साधुयोंको संविभाग भोजन वस्त्र आदिकसें करूं. । ४० । प्रथम यतिको देके और नमस्कार करके पीछे आप पारणा करूं; जेकर सुविहित साधुयोंका योग न होवे तो, दिशावलोकन करके भोजन करूं. । ४१ । इतिद्वादशव्रतम् ॥

यह द्वादश व्रतरूप श्रावकधर्म, पूर्वोक्त विधिसें पालुं, विना छाण्या जलका पान और स्नान, मरणांतमें भी न करूं. । ४२ । कंदर्प, दर्प, धूकना, सोना, चार प्रकारका आहार करना, विकथा, कलह, इत्यादि जिनमंडपमें वर्जु. । ४३ ।

अमुक महागच्छमें, अमुक गुरु सूरिके संतानमें, अमुकके शिष्यके पास, अमुक सूरिके पादांतमें- । ४४ । अमुक संवत्सरमें, अमुक मासमें, अमुक पक्षमें, अमुक तिथिमें, अमुक वारमें, अमुक नक्षत्रमें, अमुक नगरमें- । ४५ । अमुकका पुत्र, अमुक नामका श्रावक, यहां गृहस्थधर्म ग्रहण करता है. अमुककी पुत्री, अमुककी भार्या, अमुक नामकी श्राविका, वा व्रत ग्रहण करती है. । ४६ ।

नवरं क्षत्रियकेवास्ते प्राणातिपात स्थानमें प्रथम व्रतमें ४७ । ४८ । यह दो गाथा, अधिक जाननी । युद्धमें, कोई गौयांको चुरा ले जाता होवे तिसके हटानेमें, चैत्य, गुरु, साधु, संघको उपसर्ग हुए. उपसर्ग देनेवाले-को हटानेमें तथा दुष्टके निग्रहमें, जीवके बध हुए मुझको दोष नहीं । ४९ । जनोके, और देशके रक्षणवास्ते सिंह, बाघ, शत्रुयोके हननेमें मुझको दोष नहीं; अर्थात् इन कामोंके करनेसे मेरा व्रत भंग न होवे । जल पीनेमें छाणना, अन्यत्र स्नानादिमें यथाशक्ति । ४८ । इनमें प्रमादके होनेसे, गुरुके वचनसे यह तप करुं; अल्प बहुत भांगेसे, तिससे मेरी विशुद्धि होवे । ४९ ॥ इति परिग्रहप्रमाणटिप्पनकविधिः ॥

इन बारांही व्रतोंमेंसे कोई कितनेही व्रत अंगीकार करे, तिसको तित-नेही उच्चार करावने । जिसको छ मासिक सामायिक व्रत आरोपीये हैं, तिसका यह विधि है । ॥ चैत्यवन्दना, नंदि, क्षमाश्रमणादि सर्व, पूर्ववत् सामायिकके अभिलाप करके; । और विशेष यह है; । कायोत्सर्गके अनंतर तिसके हस्तगत नूतन मुखवस्त्रिकाके ऊपर वासक्षेप करना । तिसही मुखवस्त्रिकाकरके षट् (६) मासपर्यंत उभयकाल सामायिक ग्रहण करे । पीछे तीनवार नमस्कारका पाठ करके दंडक पढावे ।

सयथा ॥

“॥ करेमि भंते सामाइयं सावज्जं जोग पच्चक्खामि जाव-
नियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए
काएणं न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि
निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । से सामाइए
चउविहे तंजहा दवूओ खित्तओ कालओ भावओ दवूओणं
सामाइअं पडुच्च खित्तओणं इहेव वा अन्नत्थ वा काल-
ओणं जाव च्छम्मासं भावओणं जाव गहेणं न गहिज्जामि
जाव छलेणं न छलिज्जामि जाव सन्नि वाएणं नाभिभ-
विज्जामि ताव मे एसासामाइयपडिवत्ती ॥ ”

ऐसें तीनवार पढावना । मस्तकोपरि वासक्षेप करना, अक्षतवासांका अभिमंत्रणा, और संघके हाथसें वासक्षेप देना, यहां नहीं है. परंतु प्रदक्षिणा तीन, करवावनी. । इतिषाण्मासिक सम्यक्त्वारोपणविधिः ॥

इसीतरें सम्यक्त्वका, और द्वादश व्रतोंका भी इसही दंडकसें तिस २ अभिलापसें मास, षट् (६) मास, वा वर्ष पर्यंत, सम्यक्त्व व्रतोंका उच्चारण करना. । नवरं सम्यक्त्वका सम्यक्त्वदंडसें उच्चार करना. नवरं इतना विशेष है कि, सम्यक्त्वकी अवधिमें ' जावज्जीवाए ' यह पाठ न कहना. किंतु, ' मासं छम्मासं वरिसं ' इत्यादि कहना. शेष व्रतोंमें भी जाव-ज्जीवाएके स्थानमें ' मासं छम्मासं वरिसं ' इत्यादि कहना. ॥

अथ प्रतिमोद्वहनविधिः ॥ यावज्जीवतांइ नियम स्थिरीकरण प्रतिज्ञा जो है, तिसको प्रतिमा कहते हैं. तिनमें कालादिमें नियमव्यवच्छेद नहीं है. । ते प्रतिमा एकादश (११) गृहस्थोंकी हैं. ।

तद्यथा ॥

“॥दंसण १, वय २, सामाइय ३, पोसह ४, पडिमाय ५,
बंभ ६, अचित्ते ७,॥ आरंभ ८, पेस ९, उद्दिष्टवज्जए १०,
समणभूए य ११, ॥१॥”

अर्थ:-तहां जिस प्रतिमामें मासतांइ श्रावक निःशंकितादि सम्यग् दर्शनवाला होवे, सा प्रथमदर्शनप्रतिमा १. व्रतधारी द्वितीया २. कृतसामायिक तृतीया ३. अष्टमी चतुर्दश्यादिमें चतुर्विध पौषध करना, चतुर्थी ४. पौषधकालमें, रात्रिकी आदि प्रतिमा, अंगीकार करनी, अस्नान, प्रासुकभोजी, दिनमें ब्रह्मचारी, रात्रिमें परिमाण करे, और कृतपौषध तो, रात्रिमें भी ब्रह्मचारी, इति पंचमी ५. सदा ब्रह्मचारी षष्ठी ६. सच्चित्त-हारवर्जक सप्तमी ७. आप आरंभ नहीं करना, अष्टमी ८. नौकरोंसें आरंभ नहीं करावना, नवमी ९. उद्दिष्टकृताहारवर्जक, क्षुरमुंडित, शिखासहित, वा निराधारीकृतधनका, पुत्रादिकोंको बतलानेवाला, इतिदशमी १०.

क्षुरमुंडित, लुंचितकेश, वा रजोहरणपात्रधारी, साधुसमान, निर्ममत्व, अपनी जातिमें आहारादिकेवास्ते विचरे, इत्येकादशी. ॥ ११ ॥

यहां पहिली एक मास, दूसरी दो मास, तीसरी तीन मास, एवं यावत् इग्यारहमी इग्यारह मास पर्यंत. तथा जो अनुष्ठान पूर्व प्रतिमामें कहा है, सोही अनुष्ठान, आगेकी सर्व प्रतिमायोंमें जानना. इनमें वितथ प्ररूपणा श्रद्धानादि करना, सो अतिचार है. । तिनमें पहिली 'दर्शन प्रतिमा' तिसमें नंदि, चैत्यवंदन, क्षमाश्रमण, वासक्षेप, इनोंका विधि दर्शनप्रतिमाके अभिलापसें सोही पूर्वोक्त जानना. और दंडक ऐसे हैं ।

“॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे मिच्छत्तं दव्वभावभिन्नंपच्च-
क्खामि दंसणपडिमं उवसंपज्जामि नो मे कप्पइ अज्जप्प-
भिई अन्नउत्थिए वा अन्नउत्थिअदेवयाणि वा अन्नउत्थि-
अपरिग्गाहिआणि वा अरिहंतचेइआणि वा वंदित्तए वा
नमंसित्तए वा पुब्बिअणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवि-
त्तए वा तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं
वा अणुप्पयाउं वा तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं
न करेमि न कारवेमि करंतपि अन्नं न समणुजाणामि तहा
अईअं निंदामि पडुप्पन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि अ-
रिहंतसक्खिअं सिद्धसक्खिअं साहुसक्खिअं अप्पसक्खिअं
वोसिरामि तहा दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ दव्वओणं
एसा दंसणपडिमा खित्तओणं इहेव वा अन्नत्थ वा काल-
ओणं जाव मासं भावओणं जाव गहेणं न गहिज्जामि जाव
छलेणं न छलिज्जामि जाव सन्निवाएणं नाभिभविज्जामि
ताव मे एसा दंसणपडिमा ॥ ”

शेषं पूर्ववत् । प्रदाक्षिणात्रयादिक, दर्शनप्रतिमास्थिरीकरणार्थं कायो-
त्सर्गादि. यहां अभिग्रह मासतक यथाशक्ति आचाम्लादि प्रत्याख्यान

करना. तीनों संध्यामें विधिसें देवपूजन करणा. पार्श्वस्थादिवंदनका परिहार करना. शंकादि पांच अतिचारोंका त्याग करना. राजाभियोगादि छ (६) कारणोंसें भी यह दर्शन प्रतिमा नही त्यागनी. ॥ इति दर्शन प्रतिमा. १ ।

अथ दूसरी व्रतप्रतिमा, सा, मास दोतक यावत् निरतिचार पांच अणुव्रत पालनविषया, गुणव्रत ३, शिक्षाव्रत ४, इनका पालना भी साथही जानना. अर्थात् दो मासपर्यंत निरतिचार द्वादश (१२) व्रतोंका पालना यहां नंदिक्षमाश्रमणादि तिसतिस प्रतिमाके अभिलापसें पूर्ववत् । प्रत्याख्यान नियमचर्यादि सर्व तैसेंही जानने. दंडक भी तिसके अभिलापसें सोही जानना. ॥ इति व्रतप्रतिमा ॥ २ ॥

अथ तीसरी सामायिक प्रतिमा, सा, तीन मासतक उभयसंध्यामें सामायिक करनेसें होती है. शेष नंदीनियम व्रतादिविधि सोइ अर्थात् पूर्वोक्तही जानना. और दंडक सामायिकके अभिलापसें कहना. ॥ इति सामायिकप्रतिमा ॥ ३ ॥

अथ चौथी पौषधप्रतिमा, सा, चार मास यावत् अष्टमी चौदशको चार प्रकारके आहारके त्यागमें रक्तको चार प्रकारके पौषधके करनेसें होवे है. द्रव्यादिभेदसें दो आदि मासपर्यंत इस कथनसें यथाशक्ति सूचन किइ गइ. यहां नंदिव्रत नियमादिविधि सोही सोही और दंडक तिसके (पौषधप्रतिमाके) अभिलापसें कहना. ॥ इति पौषधप्रतिमा ॥ ४ ॥

ऐसें पांचमासादिकालवालीयां शेषप्रतिमायोंमें भी यही पूर्वोक्त विधि है. नंदिक्षमाश्रमण दंडकादि तिसतिस प्रतिमाके अभिलापसें. व्रतचर्या सोही है, परं संप्रतिकालमें, पर्यायसें, वा संहननकी शिथिलतासें, पांचमी प्रतिमासें लेके इग्यारहमीतांइ प्रतिमाके अनुष्ठानका विधि शास्त्रोंमें नही दीखता है. प्रतिमाका आरंभ शुभ सुहूर्तमें करना. ॥ इति व्रतारोपसंस्कारे देशविरतिसामायिकारोपणविधिः ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे पंचदश

व्रतारोपसंस्कारांतर्गतदेशविरतिसामायिकारोपणधिवर्णनो

नामाष्टाविंशः स्तम्भः ॥ २८ ॥

॥ अथैकोनविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ एकोनविंशस्तम्भमें व्रतारोपसंस्कारांतर्गत श्रुतसामायिकारोपण-विधि कहते हैं. ॥ तहां यति (साधु)योंको श्रुतसामायिकारोपण, योगो-द्रहनविधिकरके होता है. और श्रुतारोपण, आगम पाठसें होता है. और योगोद्रहन आगमपाठ रहित गृहस्थोंको, श्रुतसामायिकारोपण, उप-धानोद्रहनकरके होता है. और सुधारोपण, परमेष्ठिमंत्र, ईर्यापथिकी, शक्रस्तव, चैत्यस्तव, चतुर्विंशतिस्तव, श्रुतस्तव, सिद्धस्तवादि पाठकरके होता है. ॥

उपधीयते ज्ञानादि परीक्ष्यते अनेनेत्युपधानं—जिससें ज्ञानादिकी परी-क्षा करिये, तिसको उपधान कहते हैं. अथवा चार प्रकारके संवर स-माधिरूप सुखशय्यामें उत्तम होनेसें उत्सीर्षक स्थानमें उपधीयते स्थापन करिये, तिसको उपधान कहिये. तिस उपधानमें छ (६) श्रुतस्कंधोंका उपधान होता है, सोही दिखाते हैं. परमेष्ठिमंत्रका १, ईर्यापथिकीका २, शक्रस्तवका ३, अर्हत् चैत्यस्तवका ४, चतुर्विंशतिस्तवका ५, श्रुतस्तवका ६. सिद्धस्तवकी वाचना उपधानविना होवे है.

प्रथम परमेष्ठिमंत्र महाश्रुतस्कंधके पांच अध्ययन है, और एक चू-लिका है. दो दो पदके आलापक (आलावे) पांच है, सात २ अक्षरके अर्हत् आचार्य उपाध्याय नमस्कृति (नमस्कार) रूप तीन पद है, सिद्ध-नमस्कृतिरूप दूसरा पद पांच अक्षरोंका है, साधुयांको नमस्काररूप पां-चमा पद नव अक्षरोंका है, एवं पांच पद. तिसके पीछे चूलिका, तिसमें दो पदरूप प्रथम आलापक सोलां (१६) अक्षरोंका है, तृतीय पदरूप दूसरा आलापक आठ (८) अक्षरोंका है, और चौथे पदरूप तीसरा आलापक नव (९) अक्षरोंका है. तहां पंचपरमेष्ठिमंत्रमें पांचो पदोंमें तीन उद्देशे है, और चूलिकामें भी उद्देशे तीन है, एवं उद्देशे ६. ॥ प्रथमके पांचो पदोंमें पैंतीस (३५) अक्षर है, और चूलिकामें तेतीस (३३) अक्षर है.

पांच अध्ययन ऐसैं है ॥

नमो अरिहंताणं १ । नमो सिद्धाणं २ । नमो आयरिआ-
णं ३ । नमो उवज्झायाणं ४ । नमो लोए सव्वसाहूणं ॥ ५ ॥

एका चूलिका यथा ॥

एसो पंच नमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो मंगलाणं च सव्वे-
सिं पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

दो दो पदके आलापक यह है ॥

नमो अरिहंताणं । नमो सिद्धाणं । इत्येक आलापकः ॥ १ ॥

नमो आयरिआणं नमो उवज्झायाणं । इति द्वितीयालापकः ॥ २ ॥

नमो लोए सव्वसाहूणं । इति तृतीयालापकः ॥ ३ ॥

एसो पंच नमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो । इति चतुर्थालापकः ॥ ४ ॥

मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं । इति पंचमालापकः ॥ ५ ॥

सात २ अक्षरके तीन पद यह है ॥

नमो अरिहंताणं । ७ । नमो आयरिआणं । ७ ।

नमो उवज्झायाणं । ७ । यह एक उद्देशक है ॥ १ ॥

पांच अक्षरोंका दूसरा पद नमो सिद्धाणं । इति द्वितीय उद्देशकः ॥ २ ॥

पांचमा पद नव अक्षरप्रमाण नमो लोएसव्वसाहूणं । इति तृतीय
उद्देशकः ॥ ३ ॥

चूलिकामें सोलां (१६) अक्षरप्रमाण प्रथम आलापक ॥

एसो पंच नमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो । इति चूलिकायां
प्रथम उद्देशः ॥ १ ॥

चूलिकामें आठ अक्षरप्रमाण दूसरा आलापक ॥

मंगलाणं च सव्वेसिं । इति चूलिकायां द्वितीय उद्देशकः ॥ २ ॥

चूलिकामें नव अक्षरप्रमाण तीसरा आलापक ॥

पढमं हवइ मंगलं । इति चूलिकायां तृतीय उद्देशः ॥ ३ ॥

सर्व अक्षर अडसठ (६८) तिसका उपधान ऐसें है ॥

नंदि, देववन्दन, कायोत्सर्ग, क्षमाश्रमण, वन्दनक, प्रमुख नमस्कारश्रु-
तस्कंधके अभिलापसें पूर्ववत् जाणना. और अभिमंत्रित वासक्षेप भी
पूर्ववत् जाणना. । तहां पूर्वसेवामें एकभक्तके अंतरे उपवास पांच, एवं
दिन ११, तहां प्रथम नंदिदिनमें एकभक्त, वा निविगड़, दूसरे दिन
उपवास, तीसरे दिन एकभक्त, चौथे दिन उपवास, पांचमे दिन एकभक्त,
छठे दिन उपवास, सातमे दिन एकभक्त, आठमे दिन उपवास, नवमे
दिन एकभक्त, दशमे दिन उपवास, एकादशमे दिन एकभक्त. ऐसें
द्वादशम तप पूर्व सेवामें करना. । तहां पंचपरमेष्ठि पदांकी वाचना नंदि-
विना भी देनी. शक्रस्तवका पढना, वासक्षेपपूर्वक तीन नमस्कारोंका
पढना, सर्व वाचनायोंमें जाणना. । तहां श्रेणिवद्ध आठ आचाम्ल करने,
ऐसें एकोनविंशति (१९) दिन. तदपीछे बीसमे दिन एकभक्त, इक्कीसमे
दिन उपवास, बावीसमे दिन एकभक्त, तेइबीसमे दिन उपवास, चौबीसमे
दिन एकभक्त, पच्चीसमे दिन उपवास. । ऐसें अष्टम तप उत्तर सेवामें. ।

तदपीछे चूलिकाकी वाचना ॥

एसो पंच यहांसें लेके हवइ मंगलं । इति नमस्कारस्योपधानं ॥

तदपीछे तिसकी वाचना, तिसका विधि यह है. ॥ पहिलां सामाचारीका
पुस्तक पूजना, पीछे मुखवस्त्रिकासें मुख ढांकके ऐर्यापथिकी (इरियावहि-
यं) पडिक्रमके क्षमाश्रमणपूर्वक कहैं. ॥

“॥ भगवन् नमुक्कारवायणासंदिसावणियं वायणाले-
वावणियं वासक्खेवं करेह । चेइयाइं च वंदावेह ॥”

ऐसें नंदि करके छब्बीसमे दिनमें एकभक्त करें, वाचना देनी. चूलिकाके
चारों पदोंके सर्व उपधानोंमें प्रतिदिन अव्यापार पौषध करना, सवेरे
२ पौषध पारके पुनः २ (फिर २) नित्य पौषध ग्रहण करना, और नमस्कार
सहस्र गुणना. ॥ इतिप्रथममुपधानम् ॥ १ ॥

ऐर्यापथिकीका भी उपधान ऐसैही है. आदिकी, और अंतकी, दोनोंही नंदि तिसके—ऐर्यापथिकीके अभिलापसैं करनी. । तहां वाचनामें आठ अध्ययन, और वाचना दो,—एक पांच पदोंकी और दूसरी तीन पदोंकी; पांच पदोंकी एक चूलिका ॥

“ ॥ इच्छामि पडिक्कमिउं इरिआवहिआए विराहणाए । १ । गमणागमणे । २ । पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे । ३ । ओसाउत्तिंगपणगदगमट्ठीमक्कडासंताणासंकमणे । ४ । जे मे जीवा विराहिया । ५ । यह एक वाचना, द्वादशम तपके पीछे देते हैं. ॥ १ ॥

“ ॥ एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया । ६ । अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्वविया, ठाणाओ ठाणं संकामिया, जीवियाओ ववरोविया, तस्स मिच्छामि दुक्कडं । ७ । तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्तकरणेणं, विसोहीकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए, ठामि काउस्सग्गं । ८ ॥ ” यह दूसरी वाचना, आठ आचाम्लके अंतमें देनी. ॥ २ ॥

इसके पीछे ॥

“ ॥ अन्नत्थउससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलिए, पित्तमुच्छाए । १ । सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं । २ । एवमाइएहिं, आगारेहिं, अभग्गो, अविराहिओ, हुज्ज मे काउस्सग्गो । ३ । जाव अरिहंताणं, भगवंताणं, न मुक्कारेणं, न पारेमि । ४ । ताव कायं, ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि । ५ ॥ ” यह चूलिकाकी

वाचना, अंत दिनमें देनी ॥ इत्यैर्यापथिक्या उपधानम् ॥ २ ॥

अथ शक्रस्तवका उपधान कहते हैं ॥ तहां नंदिआदि सर्व शक्रस्तवके अभिलापसें पूर्ववत् । तथा प्रथम दिनमें एकभक्त, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एकभक्त, चौथे दिन उपवास, पांचमे दिन एकभक्त, छठे दिन उपवास, सातमे दिन एकभक्त; । तहां तीन संपदायोंकी प्रथम वाचना देते हैं ॥

यथा ॥

“ ॥ नमुथ्युणं अरिहंताणं भगवंताणं । १ । आइगराणं ति-
थ्यराणं सयंसंबुद्धाणं । २ । पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं
पुरिसवरपुंडरीआणं पुरिसवरगंधहृथीणं । ३ । इत्येका वाचना ।

यह एक वाचना । नमुथ्युणं । यह पद भिन्न है । तीनोंही संपदा अनुक्रमे दो, तीन, चार पदवाली है । तदपीछे एकश्रेणिकरके निरंतर सोलां (१६) आचाम्ल करने । तिसमें पांच २ पदोंवाली तीन संपदाकी वाचना देते हैं ॥

यथा ॥

॥ लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहिआणं लोगपईवाणं लो-
गपज्जोअगराणं । ४ । अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्ग-
दयाणं सरणदयाणं बोहिदयाणं । ५ । धम्मदयाणं धम्म-
देसियाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंत-
चक्कवट्ठीणं । ६ । यह दूसरी वाचना ॥ २ ॥

तदपीछे फिर भी तिसही श्रेणिकरके सोलां आचाम्ल करने । तिसमें दो तीन पदोंवाली तीन संपदाकी वाचना देनी ॥

यथा ॥

॥ अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं विअट्ठथउमाणं । ७ । जि-
णाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं

मोअगाणं । ८ । सव्वन्नूणं सव्वदरिसिणं सिवमयलमरु-
अमणंतमक्खयमव्वावाहमपुणरावितिसिद्धिगइनामधेयंठाणं
संपत्ताणं नमो जिणाणं जिअभयाणं । ९ ॥ ” यह तीसरी
वाचना ॥ ३ ॥

“॥ जे अ अईआ सिद्धा जे अ भविस्संतिणाए काले ॥
संपइ अ वट्टमाणा सव्वे तिविहेण वंदामि ॥” इस अंतिमगा-
थाकी वाचना भी, तीसरी वाचनाके साथही देनी ॥ इतिशक्रस्तवो-
पधानम् ॥ ३ ॥

अथ चैत्यस्तवका उपधान कहते हैं ॥ नंदिआदिपूर्ववत् । प्रथम
दिने एक भक्त, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एक भक्त; तदपीछे
श्रेणिकरके लगतमार तीन आचाम्ल करने. अंतमें तीनोंही अध्ययनोंकी
समकालं एकही साथ एक वाचना देनी ॥

यथा ॥

“॥ अरिहंतचेइआणं करेमि काउस्सग्गं वंदणवत्तिआए पू-
अणवत्तिआए सक्कारवत्तिआए सम्माणवत्तिआए बोहिला-
भवत्तिआए निरुवसग्गवत्तिआए । १ । सद्धाए मेहाए
धीईए धारणाए अणुप्पेहाए वट्टमाणीए ठामिकाउस्सग्गं
। २ । अन्नथ्थउससिएणं—यावत्—वोसिरामि । ३ ॥” यह एकही
वाचना है ॥ इति चैत्यस्तवोपधानम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्विंशतिस्तवका उपधान कहते हैं ॥ नंदि, दो पूर्ववत् । प्रथम
दिने एकभक्त, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एकभक्त, चौथे दिन
उपवास, पांचमे दिन एकभक्त, छठे दिन उपवास, सातमे दिन एकभक्त.
ऐसें अष्टम तप । अंतमें प्रथम गाथाकी एक वाचना ॥

यथा ॥

“॥ लोगस्स उज्जोअगरे धम्मतिथ्यरे जिणे । अरिहंते कित्त-
इस्सं चउवीसंपि केवली । १ । ” यह एक वाचना. ॥ १ ॥

तदपीछे श्रेणिकरकेही वारां (१२) आचाम्ल करने. तिसके अंतमें तीन गाथाकी वाचना. ॥

यथा ॥

॥ उसभमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे । २ । सुविहिं च
पुप्फदंतं सीअलसिज्जंसवासुपुज्जं च । विमलमणंतं च जिणं
धम्मं संतिं च वंदामि । ३ । कुंथुं अरं च मल्लिं वंदे मुणि-
सुव्वयं नभिजिणं च वंदामिरिड्ढेनेमिं पासं तह वद्धमाणं च । ४ । यह

दूसरी वाचना. ॥ २ ॥

तदपीछे तिस श्रेणिकरकेही तेरा (१३) आचाम्ल करने. तिसके अंतमें तीसरी वाचना ॥

यथा ॥

॥ एवं मए अभिथुआ विहुरयमला पहीणजरमरणा चउवी-
संपि जिणवरा तिथ्यरा मे पसीयंतु । ५ । कित्तियवंदिय-
महिया जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा । आरुग्गबोहिलाभं
समाहिवरमुत्तमं दिंतु । ६ । चंदेसु निम्मलयर आइच्चेसु
अहियं पयासयर । सागरवरगंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम
दिसंतु ॥ ७ ॥ ” यह तीसरी वाचना. ॥ ३ ॥ इति चतुर्विंशतिस्त-

वोपधानम् ॥ ५ ॥

अथ श्रुतस्तवका उपधान कहते हैं. । नंदि, दो पूर्ववत्. । प्रथमदिने एकभक्त, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एकभक्त, पीछे श्रेणिकरके पांच आचाम्ल करने. तिसके अंतमें दो गाथायोंकी, और दोनों वृत्तोंकी

समकालही वाचना. । तिसमें पांच अध्ययन है. । तिसमें प्रथमकी दो गाथायोंके दो अध्ययन ॥

यथा ॥

“ ॥ पुक्खरवरदीवहे धायइसंडे अ जंबुदीवेअ । भरहेरवय-
विदेहे धम्माइगरे नमंसामि । १ । तमतिमिरपडलविद्धंस-
णस्स सुरगणनरिंदमहिअस्स । सीमाधरस्स वंदे पप्फोडि-
अमोहजालस्स । २ ।

तीसरा अध्ययन वसंततिलका वृत्तसें । यथा ॥

॥ जाईजरामरणसोगपणासणस्स कल्लाणपुक्खलविसालसु-
हावहस्स । को देवदाणव । नरिंदगणच्चिअस्स धम्मस्स
सारमुवलप्भ करे पमायं । ३ ।

चौथा अध्ययन शार्दूलविक्रीडितवृत्तके पूर्वाद्धसें । यथा ॥

॥ सिद्धे भो पयओ णमो जिणमए नंदीसयासंजमे देवंनाग-
सुवन्नकिन्नरगणस्सप्भूयभावच्चिए । ४ ।

पांचमा अध्ययन शार्दूलविक्रीडितवृत्तके उत्तराद्धसें । यथा ॥

॥ लोगो जथ्थ पइहिओ जगमिणं तेलुक्कमच्चासुरं धम्मो
वद्धउ सासओ विजयओ धम्मुत्तरं वट्टउ । ४ । -५ ॥ ” इति

श्रुतस्तवोपधानम् । ६ । इति षडुपधानानि ॥

तथा सिद्धस्तवमें प्रथम तीन गाथाकी वाचना यथा ॥

“ ॥ सिद्धाणं बुद्धाणं पारगयाणं परंपरगयाणं । लोअग्ग
मुवगयाणं नमो सया सब्वसिद्धाणं । १ । जो देवाणविदे-
वो जं देवा पंजली नमंसंति । तं देवदेवमहिअं सिरसा
वंदे महावीरं । २ । इक्कोवि नमुक्कारो जिणवरवसहस्स । वद्ध-
माणस्स । संसारसागराओ तारेइ नरं व नारिं वा ॥३॥ ”

शेष दो गाथा । यथा ॥

॥ उज्जितसेलसिहरे दिक्खा नाणं च निसीहिआ जस्स ।
तं धम्मचक्कवट्ठिं अरिट्ठनेमिं नमंसामि । ४ । चत्तारि अट्ठ
दस दो अ वंदिआ जिणवरा चउवीसं । परमट्ठनिट्ठिअट्ठा
सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ ५ ॥ ” इत्युपधानवाचनास्थितिः ॥

अथ विस्तार, निशीथसिद्धांतसें उधृत उपधानप्रकरणसें जानना ।
सयथा ॥

पंचनमुक्कारे किल दुवालसतवो उ होइ उवहाणं ॥
अट्ठ य आयामाइं एगं तह अट्ठमं अंते ॥ १ ॥
एवंचिय नीसेसं इरियावहिआइ होइ उवहाणं ॥
सक्कच्छंयंमि अट्ठममेगं वत्तीस आयामा ॥ २ ॥
अरिहंतचेइअथए उवहाणमिणं तु होइ कायव्वं ॥
एगं चेव चउत्थं तिन्नि अ आयंबिलाणि तहा ॥ ३ ॥
एगंचिय किर छट्ठं चउत्थमेगं तु होइ कायव्वं ॥
पणवीसं आयामा चउवीसत्थयम्मि उवहाणं ॥ ४ ॥
एगं चेव चउत्थं पंच य आयंबिलाणि नाणत्थए ॥
चिइवंदणाइसुत्ते उवहाणमिणं विणिदिट्ठं ॥ ५ ॥
अवावारो विकहा विवज्जिओ रुद्धाणपरिमुक्को ॥
विस्सामं अकुणंतो उवहाणं कुणइ उवउत्तो ॥ ६ ॥
अह कहवि हुज्ज बालो बुट्ठो वा सत्तिवज्जिओ तरुणो ॥
सो उवहाणपमाणं पूरिजा आयसत्तीए ॥ ७ ॥
राईभोयणाविरई दुविहं तिविहं चउव्विहं वावि ॥
नवकारसहिअमाई पच्चक्खाणं विहेऊणं ॥ ८ ॥
एगेए सुद्धआयंबिलेण इयरेहिं दोहिं उववासो ॥
नवकारस्सहिएहिं पणयालीसाइं उववासो ॥ ९ ॥

पोरसिचउवीसाए होइ अवट्टेहिं दसहिं उववासो ॥
 विगईचाएहिं तिहिं एगट्ठाणेहि अ चऊहिं ॥ १० ॥
 आयरणाओ नेअं पुरिमट्ठा सोलसेहिं उववासो ॥
 एगासणगा चउरो अट्ट य बेकासणा तहय ॥ ११ ॥
 भयवं बहू अ कालो एवं करितस्स पाणिणो हुज्जा ॥
 तो कहवि हुज्ज मरणं नवकारविवज्जिअस्सावि ॥ १२ ॥
 नवकारवज्जिओ सो निव्वाणमणुत्तरं कह लभिज्जा ॥
 तो पढमं चिअ गिएहओ उवहाणं होओ वा मा वा ॥ १३ ॥
 गोअम जं समयं चिअ मुओवयारं करिज्ज जो पाणी
 तं समयं चिअ जाणसु गहिअवयट्ठं जिणाणाए ॥ १४ ॥
 एवं कयउवहाणो भवंतरे सुलहबोहिओ होज्जा ॥
 एअज्झवसाणोविहु गोअम आराहओ भणिओ ॥ १५ ॥
 जो उ अकाऊणमिणं गोअम गिह्मिज्ज भत्तिमंतोवि ॥
 सो मणुओ दट्ठवो अगिएहंमाणोण सारिच्छो ॥ १६ ॥
 आसायइ तिथ्ययरं तवूयणं संघगुरुजणं चेव ॥
 आसायणबहुलो सो गोयम संसारमणुगामी ॥ १७ ॥
 पढमं चिअ कन्नाहेडण्ण जं पंचमंगलमहीअं ॥
 तस्सवि उवहाणपरस्स सुलहिआ बोहि निदिट्ठा ॥ १८ ॥
 इअ उवहाणपहाणं निउणं सयलंपि वंदण विहाणं ॥
 जिणपूआपुवं चिअ पढिज्ज सुअभणिअनीईए ॥ १९ ॥
 तं सरवंजणमत्ता बिंदुपयच्छेअठाणपरिसुद्धं ॥
 पढिऊणं चिइवंदणसुत्तं अथ्थं वियाणिज्जा ॥ २० ॥
 तथ्थ य जथ्थेव सिआ संदेहो सुत्तअथ्थविसयंमि ॥
 तं बहुसो वीमंसिअ सयलं निस्संकियं कुज्जा ॥ २१ ॥

अह सोहणतिहिकरणे मुहुत्तनरक्तजोगलग्गंमि ॥
 अणुकूलंमि ससिवले सस्से सस्से अ समयम्मि ॥ २२ ॥
 नियविहवाणुरूवं संपाडिअभुवणनाहपूएण ॥
 परमभत्तीइ विहिणा पडिलाभिअसाहुवग्गेण ॥ २३ ॥
 भत्तिभरनिप्भरेणं हरिसवसुल्लसिअबहलपुलएणं ॥
 सद्धासंवेगविवेगपरमवेरग्गजुत्तेणं ॥ २४ ॥
 विणिहयघणरागदोसमोहमिच्छत्तमललंकेणं ॥
 अइउल्लसंतनिम्मल अज्झवसाणेण अणुसमयं ॥ २५ ॥
 तिहुअणगुरुजिणपडिमाविणिवेसिअनयणमाणसेण तहा ॥
 जिणचंदवंदणाओ धन्नोहं मन्नमाणेणं ॥ २६ ॥
 नियसिरिरइयकरकमलमउलिणा जंतुविरहिओगासे ॥
 निस्संकं सुत्तथ्थं पए पए भावयंतेण ॥ २७ ॥
 जिणनाहदिट्ठगंभीरसमयकुसलेण सुहचारित्तेणं ॥
 अपमायाईबहुविहगुणेण गुरुणा तहा सद्धिं ॥ २८ ॥
 चउविहसंघजुएणं विसेसओ निययबंधुसहिएणं ॥
 इअविहिणा निउणेणं जिणबिंबं वंदणिज्जांति ॥ २९ ॥
 तयणंतरं गुणहे साहू वंदिज्ज परमभत्तीए ॥
 साहम्मियाण कुज्जा जहारिहं तह पणामाई ॥ ३० ॥
 जावय महग्घ मुक्किइ चुक्खवथ्थप्पयाणपुव्वेणं ॥
 पडिवत्तिविहाणेणं कायव्वा गरुअसम्माणो ॥ ३१ ॥
 एआवसरे गुरुणा सुविइअगंभीरसमयसारेण ॥
 अक्खेवणिविक्खेवाणि संवेइणिपमुहविहिणा उ ॥ ३२ ॥
 भवनिव्वेअपहाणा सद्धासंवेगसाहणे णिउणा ॥
 गरुएण पवधेणं घम्मकहा होइ कायव्वा ॥ ३३ ॥

सद्वासवेगपरं सूरि नाऊण तं तओ भवूं ॥
 चिइवंदणाइकरणे इअ वयणं भणइ निउणमई ॥ ३४ ॥
 भो भो देवाणुपिया संपाविअ निययजम्मसाफलं ॥
 तुमए अज्जप्पभिई तिकाळं जावजीवाए ॥ ३५ ॥
 वंदेअवाइं चेइआइं एगग्गसुथिरचित्तेणं ॥
 खणभंगुराओ मणुअत्तणाओ इणमेव सारंति ॥ ३६ ॥
 तथ्थ तुमे पुव्वण्हे पाणंपि न चेव ताव पायवूं ॥
 नो जाव चेइआइं साहूविअ वंदिआ विहिणा ॥ ३७ ॥
 मज्झण्हे पुणरवि वंदिऊण निअमेण कप्पए भुत्तुं ॥
 अवरण्हे पुणरवि वंदिऊण निअमेण सुअणांति ॥ ३८ ॥
 एवमभिग्गहवंधं काउं तो वद्धमाणविज्जाए ॥
 अभिमंतिऊण गिण्हइ सत्त गुरु गंधमुट्ठीओ ॥ ३९ ॥
 तस्सुत्तमंगदेसे नित्थारगपारगो हविज्ज तुमं ॥
 उच्चारेमाणोविअ निक्खिखवइ गुरु सपणिहाणं ॥ ४० ॥
 एआए विज्जाए पभावजोगेण एस किर भवो ॥
 अहिगयकज्जाण लहुं नित्थारगपारगो होउ ॥ ४१ ॥
 अह चउविहोवि संघो नित्थारगपारगो हविज्ज तुमं ॥
 धन्नो सलक्खणो जंपिरोत्ति निक्खिखवइ से गंधे ॥ ४२ ॥
 तत्तो जिणपडिमाए पुआदेसाओ सुरभिगंधट्ठं ॥
 अमिलाणं सिअदामं गिण्हिअ गुरुणा सहत्थेणं ॥ ४३ ॥
 तस्सोभयखंधेसुं आरोवंतेण सुद्धचित्तेणं ॥
 निस्संदेहं गुरुणा वत्तवूं एरिसं वयणं ॥ ४४ ॥
 भो भो सुलद्धनिअजम्म निचिअअइगरुअपुन्नपप्भार ॥
 नारयतिरिअगईओ तुज्झावस्सं निरुद्धाओ ॥ ४५ ॥

नो बंधगोसि सुंदर तुममित्तो अयसनीअगुत्ताणं ॥
 नो दुल्लहो तुह जम्मंतरेवि एसो नमुक्कारो ॥ ४६ ॥
 पंचनमुक्कारपभावओ अ जम्मंतरेवि किर तुज्झ ॥
 जाईकुलरूवारुग्गसंपयाओ पहाणाओ ॥ ४७ ॥
 अन्नं च इमाओच्चिय न हुंति मणुआ कयावि जीअलोए ॥
 दासा पेसा दुभगा नीआ विगल्लिंदिआ चेव ॥ ४८ ॥
 किं बहुणा जे इमिणा विहिणा एअं सुअं अहिजित्ता ॥
 सुअभणिअविहाणेणं सुद्धे सीले अभिरमिज्जा ॥ ४९ ॥
 नो ते जइ तेणं चिअ भवेण निव्वाणमुत्तमं पत्ता ॥
 तोणुत्तरगेविज्जाइएसु सुइरं अभिरमेउं ॥ ५० ॥
 उत्तमकुलम्मिउक्किट्ठलट्ठसव्वंगसुंदरा पयडा ॥
 सव्वकलापत्तट्ठा जणमणआणंदणा होउं ॥ ५१ ॥
 देविंदोवमरिद्धी दयावरा दाणविणयसंपन्ना ॥
 निव्विणकामभोगा धम्मं सयलं अणुट्ठेउं ॥ ५२ ॥
 सुहज्झाणानलनिदट्ठघाइकम्मिधणा महासत्ता ॥
 उप्पन्नविमलनाणा विहुयमला झत्ति सिज्झंति ॥ ५३ ॥
 इअ विमलफलं मुणिउं जिणस्स महमाणदेवसूरिस्स
 वयणा उवहाणमिणं साहेह महानिसीहाओ ॥ ५४ ॥

॥ इत्युपधानप्रकरणम् ॥

भावार्थः—पांच नमस्कारमें पांच उपवासका उपधान होता है, आठ
 आचम्ल तथा अंतमें एक अष्टमतप. । ऐसैही संपूर्ण उपधान इरियाव-
 हिका है; शक्रस्तवमें एक अष्टमतप, और बत्तीस आचाम्ल. चैत्यस्तवमें
 एक उपवास, और तीन आचाम्ल करने. । चतुर्विंशतिस्तवमें एक षष्ठ-

तप, एक उपवास, और पंचवीस (२५) आचाम्ल करणे. । श्रुतस्तवमें एक उपवास, और पांच आचाम्ल. । चैत्यवंदनादि सूत्रमें यह उपधान कथन करा है. । तीर्थकर गणधरोंने. ॥ ५ ॥ व्यापाररहित, विकथाविवर्जित, रौद्र ध्यानकरके रहित, विश्राम नहीं करता हुआ, उपयोगसहित, उपधान करे. ॥ ६ ॥ यह उत्सर्ग कहा. अब अपवाद कहते हैं. । अथ कदापि उपधानवाही बालक होवे, वा वृद्ध होवे, वा शक्तिरहित तरुण (युवा) होवे तो, सो अपनी शक्तिप्रमाण उपधानप्रमाण पूर्ण करे. । रात्रिभोजनकी विरति, चतुर्विधाहार, वा त्रिविधाहार, वा द्विविधाहार प्रत्याख्यान-रूप करे; नवकारसहिआदि पञ्चश्रवण करके. । एक शुद्ध आंबिलकरके, और इतर दो आंबिलकरके, एक उपवास होता है. पणतालीस (४५) नवकारसहि करनेसें एक उपवास होता है. चौवीस (२४) पोरसि करनेसें, और दश (१०) अपार्द्ध करनेसें, एक उपवास होता है. तीन निविकृति करनेसें, और चार एकलठाणे करनेसें, एक उपवास होता है. आचरणासें सोलां (१६) पुरिमार्द्ध करनेसें उपवास होता है. चार एकासनेसें, और आठ वियासणे करनेसें भी, उपवास होता है. अर्थात् उपवासका जो फल है, सोही प्रायः पूर्वोक्त तपका फल है. इसवास्ते जिसकी पूर्वोक्त उपधानकी शक्ति न होवे सो, इन तपोंमेंसें किसी भी तपके करनेसें उपधान प्रमाण पूर्ण करे. ॥ ११ ॥

गौतमस्वामी कहते हैं. हे भगवन् ! ऐसें करतेहुए प्राणीको बहोत काल होवे तो, कदापि नवकारवर्जित भी, तिसका मरण हो जावे, और नवकारवर्जित सो प्राणी अनुत्तर निर्वाण कैसें प्राप्त करें? तिसवास्ते नवकार प्रथमही ग्रहण करो, उपधान होवे, वा न होवे. ॥ १२ ॥

महावीर स्वामी कहते हैं. हे गौतम ! जो प्राणी जिस समयमें व्रतोपचार (उपधान) करे, तिसही समयमें, तूं जिनाज्ञाकरके ग्रहण करा है व्रतार्थ जिसनें, ऐसा तिसको जाण. ॥ १४ ॥ ऐसें जिसने उपधान करा है, सो प्राणी भवांतरमें सुलभबोधि होवे है. और इसके (उपधानके) अध्यवसायवालेको भी, हे गौतम ! आराधक कहा है. परंतु हे गौतम !

भक्तिवाला भी जो प्राणी, उपधानविना श्रुतको ग्रहण करे, तिसको नहीं ग्रहण करनेवालेके सदृश जाणना. तथा सो जीव, तीर्थकरकी, तीर्थकरके वचनोंकी, संघकी, और गुरुजनकी, आशातना करता है. सो आशातना बहुल प्राणी, हे गौतम संसारमें भ्रमण करता है. प्रथमही जिसने सुणके, पांच मंगल पढ लिया है, तिसको भी उपधानमें तत्पर होनेसें बोधि, जिनधर्मप्राप्ति, सुलभ कही है. यह उपधानकरके प्रधान, निपुण, संपूर्ण भी वंदनविधान, जिनपूजा, पूर्वकही श्रुतोक्त नीतिकरके पढना. तिस पंच मंगलको स्वर, व्यंजन, मात्रा, बिंदु, पदच्छेद, स्थानों-करके शुद्ध पढके, चैत्यवंदन सूत्रको, और अर्थको विशेषकरके जाणे. तिसमें जहां सूत्रविषे, वा अर्थविषे, संदेह होवे तो, तिसको बहुशः विचारके संपूर्ण निःशंक संदेहरहित करना. ॥ २१ ॥

अथ शुभतीथि, करण, मुहूर्त्त, नक्षत्र, जोग, लग्नमें, चंद्रबलके अनुकूल हुए, कल्याणकारी प्रशस्त समयमें, अपने विभवानुसार भगवान्का पूजन करा है जिसने, परम भक्तिसें विधिपूर्वक साधुवर्गको प्रतिलंभ करा है जिसने, भक्तिके अतिसमूहकरके सहित, हर्षवशसें खिडे हैं, बहोत पुलक (रोम) जिसके, श्रद्धासंवेगाविवेक परम वैराग्ययुक्त, दूर करे हैं, निविडरागद्वेषमोहमिथ्यात्वमलरूप कलंक जिसने, अति उल्लसायमान निर्मल अध्यवसाय करके, अनुसमय, त्रिभुवनगुरु जिन भगवान्की प्रति-मामें स्थापन किये हैं, नेत्र, और मन, जिसने, तथा जिन चंद्रको वंदना करनेसें मैं धन्य हूं ऐसें मानते हुए, अपने मस्तकके ऊपर रचा है, कर-कमलरूप मुकुट जिसने, जंतुरहित स्थानमें पदपदमें निःशंक सूत्रार्थको भावते (विचारते) हुए, ऐसें पूर्वोक्त विशेषणवाले उपधानवाहिने, जिनना-थके कथन करे गंभीर समयसिद्धांतमें कुशल, शुभचारित्रसंयुक्त, अप्रमादादि बहुविध गुणोंकरी संयुक्त, ऐसें गुरुके साथ, चतुर्विध संघसंयुक्त, विशेषसें निजबंधुसहित, इस निपुणविधिकरके जिनबिंदुको वंदना करनी. ॥ २२ ॥

तदनंतर उपधानवाही, गुणाढ्यसाधुयोंको परम भक्तिसें वंदना करे. तथा साधर्मियोंको यथायोग्य प्रणामादि करे. पीछे जितने बहुमोलके

उत्कृष्ट चोक्ष वस्त्र तिनके प्रदानपूर्वक भक्तिविधानकरके उपधानवाहिने श्रीसंघका भारी सन्मान करना. ॥ ३१ ॥

इस अवसरमें अच्छीतरें जान्या है गंभीर समयसिद्धांतका सा जिस्ने, ऐसे गुरुने, आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेदिनी, और निर्वेदिनी यह चार प्रकारकी धर्मकथा श्रद्धासंवेग साधनेमें निपुण भारी प्रबंध करके करनी. ॥ ३३ ॥

तदपीछे तिस भव्यजीवको श्रद्धासंवेगमें तत्पर जाणके, निपुणमति आचार्य, चैत्यवंदनादि करनेमें यह वचन कहे. ॥ ३४ ॥

भो भो देवानुप्रिय ! निज जन्म साफल्यताको प्राप्त करके तैंने आजसे लेके जावजीवपर्यंत तिनोंही कालमें एकाग्र सुस्थिर चित्तकरके अर्हत्प्रतिमायोंको वंदना करनी. क्योंकि, क्षणभंगुर मनुष्यपणसें यही सार है. तहां तैंने पुर्वान्हमें जबतक जिनप्रतिमाको और साधुओंको वंदना विधिपूर्वक नहीं करी है, तबतक पानी भी नहीं पीना. मध्यान्हमें फिर वंदना करकेही भोजन करना कल्पे, और अपरान्हमें भी फिर वंदना करकेही सोना कल्पे, अन्यथा नहीं. ॥ ३८ ॥

ऐसें अभिग्रहबंधन करके पीछे वर्द्धमान विद्यासें अभिमंत्रके गुरु सात मुट्ठीप्रमाण गंध (वासक्षेप) ग्रहण करे. पीछे तिस उपधानवाहीके मस्तकऊपर “ निश्धारगपारगो हविज्ज तुमं ” ऐसें उच्चारण करता हुआ गुरु, नमस्कारपूर्वक निक्षेप करे (डाले) इस विद्याके प्रभावके जोगसें निश्चय, यह भव्य अधिकृत प्रारंभित कार्योंका शीघ्र निस्तार करनेवाला, और पार होनेवाला होवे. ॥ ४१ ॥

अथ चतुर्विध संघ, तूं, निस्तारक पारग हो, तूं धन्य है, सलक्षण है, इत्यादि बोलता हुआ, तिसके मस्तकऊपर वासक्षेप करे. ॥ ४२ ॥

तदपीछे जिनप्रतिमाके पूजादेशसें सुरभिगंधसंयुक्त अम्लान श्वेत-माला ग्रहण करके, गुरु अपने हाथोंसें तिस उपधानवाहीके दोनों खंधोंऊपर आरोपण करता हुआ, शुद्ध चित्तकरके निसंदेह ऐसा वचन कहे. ॥ ४४ ॥

अच्छीतरें प्राप्त किया निज जन्म जिसने, तथा संचय करा है अति-भारी पुण्यका समूह जिसने, ऐसैं भो भो भव्य ! तेरी नरकगति, और तिर्यग्गति, अवश्यमेव बंद होगई. हे सुंदर ! आजसैं लेके, तूं, अपजस, नीच गोत्रोंका बंधक नहीं है. तथा जन्मांतरमें भी, यह पंचनमस्कार तुझको दुर्लभ नहीं है. पांच नमस्कारके प्रभावसैं जन्मांतरमें भी तुझको प्रधान जाति, कुल, आरोग्य संपदाएं प्राप्त होंगी. और इसके प्रभावसैं मनुष्य कदापि संसारमें दास, प्रेष्य, दुर्भग, नीच, और विकलेंद्रिय नहीं होते हैं. किं बहुना. जे इस विधिसें इस श्रुतज्ञानको पढके श्रुतोक्त विधिसें शुद्ध शील आचारमें रमे—क्रिडा करे, वे, यदि तिसही भवमें उत्तम निर्वाणको प्राप्त न होवे तो, अनुत्तर ग्रैवेयकादि देवलोकोमें चिरकाल क्रीडा करके उत्तम कुलमें उत्कृष्ट प्रधान सर्वांगसुंदर प्रकट सर्वकला प्राप्त करे हैं, अर्थ जिनोंने, ऐसैं लोकोंके मनको आनंद देनेवाले होयके, देवेंद्रसमान ऋद्धिवाले, दयामें तत्पर, दानविनयसंयुक्त, कामभोगोंसें निर्विघ्न-विरक्त संपूर्ण धर्मका अनुष्ठानकरके शुभ ध्यानरूप अश्रिकरके चार घातिकर्मरूप इंधनकौ दग्ध किये हैं—जला दिये हैं जिनोंने, ऐसैं महासत्त्व, उत्पन्न हुआ है, विमल निर्मल केवल ज्ञान जिनोंको, सर्व मलकर्मसें रहित होकर शीघ्र सिद्ध होते हैं. ॥ ५३ ॥ यह निर्मल फल जाणके बहोत मान देने योग्य जो देव, सोही भये सूरि, ऐसैं जो जिन तिनके वचनसें यह उपधान महानिर्वाण सूत्रसें सिद्ध करो.—इस अंतिम गाथामें प्रकरणकर्त्ता श्रीमान देवसूरिने भगवान्‌के ‘महमाणदेवसूरिस्स’ इस विशेषणद्वारा अपना भी नाम, सूचन करा है. ॥ ५४ ॥ इत्युपधानप्रकरणभावार्थः ॥

॥ इत्युपधानविधिः ॥

अथ उपधान तपके उद्यापनरूप मालारोपणका विधि कहते हैं. ॥ तहां पिछलाही नंदि क्रम जाणना. । और इतना विशेष हे कि, मालारोपण उपधानतपके पूर्ण हुए तत्कालही, वा दिनांतरमें होता है. तहां यह विधि है. ॥ मालारोपणसें पहिले दिनमें साधुओंको अन्न पान वस्त्र पात्र वसति पुस्तक दान देवे, संघको भोजन देवे, वस्त्रादिकसें संघकी

पूजा करे, तिस दिनमें शुभ तिथि वार नक्षत्र लग्नमें दीक्षाके उचित दिनमें परम युक्तिसें बृहत्स्नात्रविधिसें जिनपूजा करे, माता पिता परिजन साधर्मिकादिकोंको एकट्टे करे, तदपीछे मालाग्राही कृतउचितवेष कृतधम्मिल उत्तरासंगवाला निजवर्णानुसारसें जिनोपवीत उत्तरीयादि-धारी सज करके प्रचुरगंधादि उपकरण अक्षत नालिकेर हाथमें लेके पूर्ववत् समवसरणको तीन प्रदक्षिणा करे. । तदपीछे गुरुके समीपे क्षमाश्रमणपूर्वक कहे ॥ “इच्छाकारेण तुप्पे अम्हं पंचमंगलमहासुअक्खंध इरि आवहिआसुअक्खंधसक्कथ्यसुअक्खंधवेइअथ्यसुअक्खंध चउवीसथ्यसुअक्खंध सुयथ्यसुअक्खंध अणुजणावणिअं वासक्खेवं करेह” ॥ तदपीछे गुरु भी अभिमंत्रित वासक्षेप करे. । फिर श्राद्ध क्षमाश्रमणपूर्वक कहे “चेइ-आइं च वंदावेह” तदपीछे वर्द्धमानस्तुतियोंसैं चैत्यवंदन करना, शांति-देवादि स्तुतियां पूर्ववत्. फिर शक्रस्तव अर्हणादि स्तोत्र कहना. पूर्ववत्. । तदपीछे ऊठके “पंचमंगलमहासुअक्खंध पडिक्कमणसुअक्खंध भावारिहं-तथ्य ठवणारिहंतथ्य चउवीसथ्य नाणथ्य सिद्धथ्य अणुजाणाव-णिअं करेमि काउस्सग्गं अन्नथ्य उससिप्पणं-यावत्-अप्पाणं वोसिरामि” कहके चतुर्विंशतिस्तव चिंतन करे, पारके प्रकट चतुर्विंशतिस्तव पढे. । गुरु तीनवार परमेष्ठिमंत्र पढके निषद्याऊपर बैठ जावे, संघ और परिजनसहित श्राद्धको

भो भो देवाणुपिया संपाविअ निययजम्मसाफल्लं ॥

तुमए अज्जप्पाभिई तिक्कालं जावजीवाए ॥ १ ॥

वंदे अव्वाइं चेइआइं एगग्गसुथिरचित्तेणं ॥

खणभंगुराओ मणुअत्तणाओ इणमेव सारंति ॥ २ ॥

तथ्य तुमे पुव्वएहे पाणंपि न चेव ताव पायव्वं ॥

नो जाव चेइआइं साहूविअ वंदिआ विहिणा ॥ ३ ॥

मज्झण्हे पूणरवि वंदिऊण निअमेण कप्पए भुत्तुं ॥

अवरण्हे पुणरवि वादंऊण निअमण सुअणंति ॥ ४ ॥

इत्यादि महानिशीथमध्यगत वीस गाथामें कही हुई देशना देके, तीन संध्यामें चैत्यवंदन साधुवंदन करनेके अभिग्रह विशेषोंको देवे । तदपीछे वासमंत्रके सात गंधकी मुष्टी “निथ्यारगपारगो होहि” ऐसैं कहता हुआ गुरु, तिसके शिरमें प्रक्षेप करे । तदपीछे अक्षतसहित वासक्षेपको मंत्रे । तिस समयमें सुरभिगंध अम्लान श्वेत पुष्पोंके समूहसैं ग्रंथन करी हुई मालाको जिनप्रतिमाके पगोंऊपर स्थापन करे । सूरि खडा होके अभिमंत्रित वासांको जिनपगोंके ऊपर क्षेप करे, पास रहे साधु साध्वी श्रावक श्राविका जनको गंधाक्षत देवे । श्राद्ध नमस्कारअनुज्ञाकेवास्ते तीन प्रदक्षिणा देवे । तब गुरु “निथ्यारगपारगो होहि गुरुगुगेहि बुद्धाहि” ऐसैं कहे । और जन (संघ) “पूर्णमनोरथवाला तूं हुआ है, तूं धन्य है, तूं पुण्यवान् है” ऐसैं कहे । ऐसैं कहते हुए क्रमसैं गुरुसंघादि वासक्षेप करे । तदपीछे फिर श्राद्ध समवसरणको तीन प्रदक्षिणा देवे । पीछे गुरुको तीन प्रदक्षिणा देवे । पीछे गुरुसहित समवसरणको तीन प्रदक्षिणा देवे । पीछे गुरुसंघसहित समवसरणको तीन प्रदक्षिणा देवे, पीछे नमस्कारादिश्रुतस्कंध अनुज्ञापनार्थ कायोत्सर्ग करे, चतुर्विंशतिस्तव चिंतन करे, पारके प्रकट लोगस्स कहे । तदपीछे मालाधारण करनेवाले तिसके स्वजनोकेसाथ प्रतिमाके आगे जाके शक्रस्तव पढके “अणुजाणउ मे भयवं अरिहा” ऐसैं कहके जिनपादऊपरि पूर्व स्थापित मालाको लेके निजबंधुके हाथमें स्थापन करके नंदिके समीप आय कर, श्राद्ध, मालाको गुरुसैं मंत्रण करावे । पीछे गुरु खडा होकर उपधानविधिका व्याख्यान करे, सो श्राद्ध भी, खडा होकर श्रवण करे, “परमपयपुरिपथि” इत्यादि मालोवृंहण गाथायोंकरके गुरु देशना करे ।

तदनु ॥

तत्तो जिणपडिमाए पूआदेसाओ सुरभिगंधदूं ॥

अमिलाण सिअदामं गिण्हिअ गुरुणा सहत्थेणं ॥ १ ॥

तस्सोभयखंधेसुं आरोवतेण सुद्धचित्तेणं ॥

निस्संदेहं गुरुणा वत्तव्वं एरिसं वयणं ॥ २ ॥

भो भो सुलङ्घनिअजम्म निचिअअइगरुअपुन्नपप्भार ॥
 नारयतिरिअगईओ तुज्झावस्सं निरुद्धाओ ॥ ३ ॥
 नो बंधगोसि सुंदर तुममित्तो अयकनीअगुत्ताणं ॥
 नो दुल्लहो तुह जम्मंतरेवि एसो नमुक्कारो ॥ ४ ॥
 पंचनमुक्कारभावओ अ जम्मंतरेवि किर तुज्झ ॥
 जाईकुलरूवाग्गसंपयाओ पहाणाओ ॥ ५ ॥
 अन्नं च इमाओच्चिअ न हुंति मणुआ कयावि जीअलोए ॥
 दासा पेसा दुभगा नीआ विगलिंदिआ चेव ॥ ६ ॥
 किं बहुणा जे इमिणा विहिणा एअं सुअं अहिजित्ता ॥
 सुअभणि अविहाणेणं सुद्धे सीले अभिरमिज्जा ॥ ७ ॥
 नो ते जइ तेणंचिअ भवेण निव्वानमुत्तमं पत्ता ॥
 तोणुत्तर गेविजाइएसु सुइरं अन्निरमेउं ॥ ८ ॥
 उत्तभकुलम्मि उक्किट्ठलट्ठसव्वंगसुदरापयडा ॥
 सव्वकलापतट्ठा जणमणआणंदणां होउं ॥ ९ ॥
 देविंदोवमरिद्धी दयावरा दाणविनयसंपन्ना ॥
 निव्विणकामभोगा धम्मं सयलं अणुद्धेउं ॥ १० ॥
 सुहज्झाणानलनिदट्ठघाइरुम्मिधणा महासत्ता ॥
 उप्पन्नविमलनाणा विट्ठयमला ज्ञात्ति सिज्झंति ॥ ११ ॥

यह गाथा तीनवार गुरु कहे । इन गाथायोंका भावार्थ उपधानप्रकरणभावार्थमें लिख दिया है. ॥

तदपीछे तिसके स्कंधमें मालाप्रक्षेप करनी. ॥ पीछे श्राद्धवर्ग आरात्रिक (आरती) गीतनृत्यादि बहुत करे. । उपधानवाही श्रावकने तिस दिनमें आचाम्लादि तप करना; यदि पौषधशालामें मालारोपण होवे, तदा संघसाहित जिनमंदिरमें जावे, चैत्यवंदना करके फिर पौषधागारमें आयकर मंडलीपूजादि करे. ॥ इस उपधानविधिको निशीथ, महानिशीथ,

सिद्धांतके पढ़नेवालोंने श्रुतसामायिककरके माना है. और निशीथ महा-
निशीथके तिरस्कार करनेवालोंने नही अंगीकार करा है. तिनोंने तो
प्रतिमोद्वहनविधिकोही श्रुतसामायिककरके कथन करा है. ॥ माला भी
कितनेक कौशेयपट्टसुत्रमयी (रेशमी) स्वर्ण, पुष्प, मोति, माणिक्य गर्भित,
आरोपते हैं. और कितनेक श्वेत पुष्पमयी आरोपते हैं. तिसमें तो, अपनी
संपत्तिही प्रमाण है. ॥ इतिव्रतारोपसंस्कारे श्रुतसामायिकारोपणविधिः ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे

पंचदशव्रतारोपसंस्कारांतर्गतश्रुतसामायिकारोपणवि-

धिवर्णनोनामैकोनत्रिंशःस्तम्भः ॥ २९ ॥

॥ अथत्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ त्रिंशस्तम्भमें व्रतसंस्कारांतर्गत प्रसंगसे कथन करी श्रावकोंकी
दिनचर्या कहते हैं. दो मुहुर्त्त शेष रात्रि रहे श्रावक सूता ऊठे, मल-
मूत्रकी शंका दूर करे, और शुचि होकर पवित्र आसनऊपर स्थित हुआ
यथाविधिसे परमेष्ठि महामंत्रका जाप करे. पीछे कुलका, धर्मका, व्रतका,
श्रद्धाका, विचार करके, और स्तोत्रपाठसंयुक्त चैत्यवंदन करके, अपने
घरमें, वा धर्मघर (पौषधशालादि) में स्थित होकर, आवश्यक (प्रति-
क्रमणादि) करे. । तदपीछे प्रत्युष कालमें अपने घरमें स्नान करके,
शुचि होके, शुचि वस्त्र पहिरके, भोग संसारिक सुख, और मोक्ष देनेवाले,
ऐसें अरिहंतकी पूजा करे. । तिसवास्ते जिनार्चनविधि, अर्हत्कल्पके कथ-
नानुसारें कहते हैं. सोयथा ॥ श्राद्ध केवल दृढसम्यक्त्व, प्राप्तगुरुउपदेश,
निजघरमें, वा चैत्यमें अर्थात् बड़े मंदिरमें, धम्मिल (शिखा) बांधी,
शुचि वस्त्र पहिरि, उत्तरासंग करी, स्ववर्णानुसारकरके जिनोपवीत, उत्त-
रीय, उत्तरासंगधारी, मुखकोश बांधी, एकाग्रचित्त, एकांतमें जिनार्चन,
जिनपूजन, करे. । प्रथम जल, पत्र, पुष्प, अक्षत, फल, धूप, अग्नि, दीपक,
गंधादिकोंको निःपापता करे. ॥

“ ॥ ॐ आपोऽपकाया एकेंद्रिया जीवा निरवद्यार्हत्पूजायां निर्व्यथाः संतु निरपायाः संतु सद्गतयः संतु न मेस्तु संघट्टनार्हिसापापमर्हदूर्चने ॥ ” इति जलाभिमंत्रणम् ॥

“ ॥ ॐ वनस्पतयो वनस्पतिकाया जीवा एकेंद्रिया निरवद्यार्हत्पूजायां निर्व्यथाः संतु निरपायाः संतु सद्गतयः संतु न मेस्तु संघट्टनार्हिसापापमर्हदूर्चने ॥ ” इति पत्रपुष्पफलधूपचन्दनाद्यभिमंत्रणम् ॥

“ ॥ ॐ अग्नयोऽग्निकायाजीवा एकेंद्रिया निरवद्यार्हत्पूजायां निर्व्यथाः संतु निरपायाः संतु सद्गतयः संतु न मेस्तु संघट्टनार्हिसापापमर्हदूर्चने ॥ ” इति बन्हिदीपाद्यभिमंत्रणम् ॥

सर्वका अभिमंत्रण वासक्षेपसं तीन तीन बार करना ॥

तदपीछे । पुष्पगंधादि हाथमें लेके ।

“ ॥ ॐ त्रसरूपोहं संसारिजीवः सुवासनः सुमेध एकचित्तो निरवद्यार्हदूर्चने निर्व्यथो भूयासं निःपापो भूयासं निरुपद्रवो भूयासं मत्सं श्रिता अन्येपि संसारिजीवा निरवद्यार्हदूर्चने निर्व्यथा भूयासुः निःपापाभूयासुः ॥ ”

ऐसें कहके अपने आपको तिलक करना, पुष्पादिकरके अपना शिर अर्चन करना ।

फिर पुष्प अक्षतादि हाथमें लेके ।

“ ॥ ॐ पृथिव्यपूतेजोवायुवनस्पतित्रसकाया एकद्वित्रिचतुः पंचेंद्रियास्तिर्यङ्मनुष्यनारकदेवगतिगताश्चतुर्दशरज्ज्वात्मकलोकाकाशनिवासिनः इह जिनेर्चने कृतानुमोदनाः संतु निःपापाः संतु निरपायाः संतु सुखिनः संतु प्राप्तकामाः संतु मुक्ताः संतु बोधमाप्नुवंतुः ॥ ”

ऐसैं पढके दशों दिशायोंमें गंध, जल, अक्षतादि क्षेप करना.
तदपीछे ।

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवंतु भूतगणाः ॥
दोषा प्रयांतु नाशं सर्वत्र सुखीत्रवंतु लोकाः ॥ १ ॥
सर्वेपि संतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः ॥
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिदुःखभाग् भवेत् ॥ २ ॥

यह आर्या और अनुष्टुप् छंद पढने ।
तदपीछे ।

“ ॥ ॐ भूतधात्री पवित्रास्तु अधिवासितास्तु सुप्रोषितास्तु ॥ ”
ऐसैं पढके प्रथम लीपी हुई भूमिमें जलसैं प्रोक्षण (सेचन) करे ।
तदपीछे ।

“ ॥ ॐ स्थिराय शाश्वताय निश्चलाय पीठाय नमः ॥ ”

ऐसैं पढके धोयके चंदनसैं लेपन करके स्वस्तिक करके अंकित (चि-
न्हित) ऐसा पूजापट्टस्थालादि स्थापन करे, और चैत्यमें तो स्थिरबिंब
होनेसैं इन दोनों मंत्रोंकरी तिसके भूमिजलपट्टादिकोंको अधिवासन करने ।
तदपीछे ।

“ ॥ ॐ अत्र क्षेत्रे अत्र काले नामार्हतो रूपार्हतो द्र-
व्यार्हतो भावार्हतः समागताः सुस्थिताः सुनिष्ठिताः सुप्र-
तिष्ठिताः संतु ॥ ”

ऐसैं पढके अर्हत् प्रतिमाको स्थापन करे निश्चलबिंबके हुए, चरण
अधिवासन करे ॥

तदपीछे अंजलिके अग्रभागमें पुष्प लेके ।

“ ॥ ॐ नमोर्हद्भ्यः सिद्धेभ्यस्तीर्णेभ्यस्तारकेभ्यो बुद्धेभ्यो
बोधकेभ्यः सर्वजंतुहितेभ्यः इह कल्पनविंबे भगवंतोर्हतः
सुप्रतिष्ठिताः संतु ॥ ”

ऐसें मौन करके कहके भगवत्के चरणोपरि पुष्प स्थापन करे । फिर भी जलार्द्र फूलोंसें पूजापूर्वक कहे ॥

यथा ॥

“ ॥ स्वागतमस्तु सुस्थितमस्तु सुप्रतिष्ठास्तु ॥ ”

तदपीछे फिर पुष्पाभिषेक करके ।

“ ॥ अर्घ्यमस्तु पाद्यमस्तु आचमनीय मस्तु सर्वोपचारै पूजास्तु ॥ ”

इन वचनोंकरके बारंवार जिनप्रतिमाके ऊपर जलार्द्र पुष्पारोपण करे । तदपीछे जल लेके ।

ॐ अर्हं वं । जीवनं तर्पणं हृद्यं प्राणदं मलनाशनं ॥

जलं जिनाच्चर्चनेत्रैव जायतां सुखहेतवे ॥ १ ॥

यह मंत्र पढ़के जलकरके प्रतिमाको भिषेक और स्नान (स्नात्र) करे ॥

तदपीछे चंदन कुंकुम कर्पूर कस्तूरी आदि सुगंध हाथमें लेके ।

ॐ अर्हं लं । इदं गंधं महामोदं बृहणं प्रीणनं सदा ॥

जिनार्चने च सत्कर्मसंसिद्धयै जायतां मम ॥ १ ॥

यह मंत्र पढ़के विविध गंधकरी जिनप्रतिमाको विलेपन करे ॥

तदपीछे पुष्पपत्रादि हाथमें लेके ।

ॐ अर्हं क्षं । नानावर्णं महामोदं सर्वत्रिदशवल्लभं ॥

जिनार्चनेत्र संसिद्धयै पुष्पं भवतु मे सदा ॥ १ ॥

यह मंत्र पढ़के जिनप्रतिमाके ऊपर सुगंधमय विविध वर्णके पुष्प चढ़ावे ॥

तदपीछे अक्षत (चावल) हाथमें लेके ।

ॐ अर्हं तं । प्रीणनं निर्मलं बल्यं मांगल्यं सर्वसिद्धिदं ॥

जीवनं कार्यसंसिद्धयै भूयान्मे जिनपूजने ॥ १ ॥

यह मंत्र पढ़के जिनप्रतिमाके ऊपर अक्षत आरोपण करे ॥

तदपीछे पूग (सुपारी) जायफल आदि वा वर्त्तमान ऋतुके (मोसमी) फल हाथमें लेके ।

ॐ अर्हं फुं । जन्मफलं स्वर्गफलं पुण्यमोक्षफलं फलं ॥

दद्याज्जिनाच्चर्चनेत्रैव जिनपादाग्रसंस्थितम् ॥ १ ॥

यह मंत्र पढ़के जिनपादाग्रे फल ढोवे ॥

तदपीछे धूप लेके ।

ॐ अर्हं रं । श्रीखंडागरुकस्तूरीद्रुमनिर्याससंभवः ॥

प्रीणनः सर्व देवानां धूपोस्तु जिनपूजने ॥ १ ॥

यह पढ़के अग्निमें धूपक्षेप करे ॥

पीछे फूल लेके ।

ॐ अर्हं रं । पंचज्ञानमहाज्योतिर्मयाय ध्वांतघातिने ॥

द्योतनाय प्रतिमायादीपो भूयात्सदाहते ॥ १ ॥

यह पढ़के दीपमध्ये पुष्प स्थापन करे ॥

तदपीछे फूलोंको लेके ।

“॥ ॐ अर्हं भगवद्भ्योर्हद्भ्यो जलगंधपुष्पाक्षतफलधूपदीपैः

संप्रदानमस्तु ॐ पुण्याहं पुण्याहं प्रीयंतां प्रीयंतां भगवं-

तोर्हंतस्त्रिलोकस्थिताः नामाकृतिद्रव्यभावयुताः स्वाहा ॥ ” यह

पढ़के फिर जिनपूजन करे ॥

तदपीछे वासक्षेप लेके ।

“॥ ॐ सूर्यसोमांगारकबुधगुरुशुक्रशनैश्वरराहुकेतुमुखाग्रहाः

इह जिनपादाग्रे समायांतु पूजां प्रतीच्छंतु ॥ ” ऐसे पढ़के जि-

नपादसें नीचे स्थापित ग्रहोंके ऊपर, वा स्नानपढ़के ऊपर वासक्षेप करे ॥

तदपीछे ।

“॥ आचमनमस्तु गंधमस्तु पुष्पमस्तु अक्षतमस्तु फलमस्तु

धूपोस्तु दीपोस्तु ॥ ” ऐसे पढ़के क्रमसें जल, गंध, पुष्प, अक्षत,

फल, धूप, दीपसें ग्रहोंका पूजन करे. ॥

तदपीछे अंजलिअग्रमें फूल लेके ।

“॥ ॐ सूर्यसोमांगारकबुधगुरुशुक्रशनिैश्वरराहुकेतुमुखाग्रहाः

सुपूजिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु

मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु ॥ ” ऐसे कहके ग्रहोंके ऊपर

पुष्पारोप करे. ॥

फिर इसी रीतिकरके ।

“ ॥ ॐ इंद्राग्निमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरेशाननागब्रह्मणो

लोकपालाः सविनायकाः सक्षेत्रपालाः इह जिनपादाग्रे

समागच्छंतु पूजां प्रतीच्छंतु ॥ ” ऐसे कहके पूजापट्टोपरि लोक-

पालोंको वासक्षेप करे. ॥

तदपीछे ।

“॥ आचमनमस्तु गंधमस्तु पुष्पमस्तु अक्षतमस्तु फलमस्तु

धूपोस्तु दीपोस्तु ॥ ” ऐसे पढके क्रमसें जल, गंध, पुष्प, अक्षत,

फल, धूप, दीपसें लोकपालोंका पूजन करे. ॥

तदपीछे अंजलिमें पुष्प लेके ।

“ ॥ ॐ इंद्राग्निमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरेशाननागब्रह्मणो

लोकपालाः सविनायकाः सक्षेत्रपालाः सुपूजिताः संतु

सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः

संतु महोत्सवदाः संतु ॥ ” यह पढके लोकपालोपरि पुष्पारोपण करे. ॥

तदपीछे पुष्पांजलि लेके ।

“॥ अस्मत्पूर्वजा गोत्रसंभवा देवगतिगताः सुपूजिताः संतु

सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु

महोत्सवदाः संतु ॥ ” ऐसे कहके जिनपादाग्रे पुष्पांजलिक्षेप करे. ॥

तदपीछे फिर भी पुष्पांजलि लेके ।

“॥ ॐ अर्हं अर्हद्भक्ताष्टनवत्युत्तरशतदेवजातयः सदेव्यः
पूजां प्रतिच्छंतु सुपूजिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः
संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु ॥” ऐसे
कहके जिनपादाग्रे अंजलिक्षेप करे ॥

तदपीछे अंजलिके अग्रभागमें पुष्प धारण करके अर्हन्मंत्र स्मरण करके
तिस फूलसें जिनप्रतिमाको पूजे ।

अर्हन्मंत्रो यथा ॥

“॥ ॐ अर्हं नमो अरहंताणं ॐ अर्हं नमो सयंसंबुद्धाणं
ॐ अर्हं नमो पारगयाणं ॥”

यह त्रिपद मंत्र श्रीमत् अर्हन् भगवंतोंके आगे नित्य स्मरण करे.
कैसा है मंत्र? भोगदेवलोकादि सुख और मोक्षका देनेवाला है. तथा
सर्व पापोंका नाश करनेवाला है. । विशेष इतना है कि, यह मंत्र अप-
वित्र पुरुषोंने, अन्यचित्तवाले अर्थात् उपयोगरहित पुरुषोंने, नहीं स्मरण
करना. तथा सस्वर अर्थात् उच्चशब्दसें नहीं स्मरण करना, नास्तिकोंको
नहीं सुनावना, और मिथ्यादृष्टियोंको भी नहीं सुनावना. । यह पूर्वोक्त
अर्हन्मंत्र एकसौआठ (१०८) बार, वा तदर्द्ध अर्थात् ५४ बार जपे. ॥

तदपीछे दो पात्रोंकरके नैवेद्य ढौकन करे. पीछे एक पात्रमें जलका
चुलुक लेके ।

ॐ अर्हं । नानाषड्रससंपूर्णं नैवेद्यं सर्वमुत्तमं ॥

जिनाग्रे ढौकितं सर्वसंपदे मम जायतां ॥ १ ॥

यह पढ़के एकत्र नैवेद्यमें चुलुकक्षेप करे. ।

फिर दूसरा जलचुलुक लेके ।

“॥ ॐ सर्वे गणेशक्षेत्रपालाद्याः सर्वेग्रहाः सर्वे दिक्पालाः
सर्वेऽस्मत्पूर्वजोद्भवादेवाः सर्वे अष्टनवत्युत्तरशतं देवजातयः
सदेव्योऽर्हद्भक्ताः अनेन नैवेद्येन संतर्पिताः संतु सानुग्रहाः
संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महो-

त्सवदाः संतु ॥ ” ऐसे कहके दूसरे नैवद्यके ऊपर चुलुकक्षेप करे. ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

यो जन्मकाले पुरुषोत्तमस्य सुमेरुशृंगे कृतमज्जनैश्च ॥

देवैः प्रदत्तः कुसुमांजलिस्स ददातु सर्वाणि समीहितानि ॥१॥

॥ वसंततिलका ॥

राज्याभिषेकसमये त्रिदशाधिपेन ।

छत्रध्वजांक तलयोः पदयोजिनस्य ॥

क्षितोतिभक्तिभरतः कुसुमांजलिर्यः ।

स प्रीणयत्वनुदिनं सुधियां मनांसि ॥ २ ॥

॥ शार्दूल ॥

देवैर्द्रैः कृतकेवले जिनपतौ सानंदभक्त्यागतैः ।

संदेहव्यपरोपणक्षमशुभव्याख्यानबुद्ध्याशयैः ॥

आमोदान्वितपारिजातकुसुमैर्यः स्वामिपादाग्रतो ।

मुक्तस्स प्रतनोतु चिन्मयहृदां भद्राणि पुष्पांजलिः ॥३॥

इन तीनों वृत्तोंकरके तीन बार पुष्पांजलिक्षेप करे. ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

लावण्यपुण्यांगभृतोर्हतो यस्तद्वृष्टिभावं सहसैव धत्ते ॥

सविश्वभर्तुर्लवणावतारो गर्भावतारं सुधियां विहंतु ॥ १ ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

लावण्यैकनिधेर्विश्वभर्तुस्तद्वृद्धिहेतुकृत् ॥

लवणोत्तरणं कुर्याद्भवसागरतारणम् ॥ २ ॥

इन दो वृत्तोंकरके दो बार लवण उत्तारना. ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

सक्षारतां सदासक्तां निहंतुमिव सोद्यमः ॥

लवणाब्धिर्लवणांबुमिषात्ते सेवते पदैः ॥ १ ॥

यह पढके लवणमिश्र जल उत्तारना. ॥

॥ आर्या ॥

भुवनजनपवित्रिताप्रमोदप्रणयनजीवनकारणं गरीयः

जलमविकलमस्तु तीर्थनाथक्रमसंस्पर्शिसुखावहं जनानाम् ॥ १ ॥

यह पढके केवल जलक्षेप करे. ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

सप्तभीतिर्विघाताहं सप्तव्यसननाशकृत् ॥

यत् सप्तनरकद्वारसत्ताररितुलां गतम् ॥ १ ॥

॥ वसंततिलका ॥

सप्तांगराज्यफलदानकृतप्रमोदं । सत्सप्ततत्त्वविदनंतकृतप्रबोधम् ॥

तच्छक्रेहस्तधृतसंगतसप्तदीपमारात्रिकं भवतु सप्तमसद्गुणाय ॥ २ ॥

यह पढके आरात्रिकावतारण करे. ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

विश्वत्रयभवैर्जीवैः सदेवासुरमानवैः ॥

चिन्मंगलं श्रीजिनेन्द्रात् प्रार्थनीयं दिने दिने ॥ १ ॥

॥ वसंततिलका ॥

यन्मंगलं भगवतः प्रथमार्हतः श्री-

संयोजनैः प्रतिबभूव विवाहकाले ॥

सर्वासुरासुरवधूमुखगीयमानं ।

सर्वर्षिभिश्च सुमनोभिरुदीर्यमाणम् ॥ २ ॥

दास्यंगतेषु सकलेषु सुरासुरेषु ।

राज्येहतः प्रथमसृष्टिकृतो यदासीत् ॥

सन्मंगलं मिथुनपाणिगतीर्थवारि ।

पादाभिषेक विधिनात्युपचीयमानम् ॥ ३ ॥

॥ शार्दूल ॥

यद्विश्वाधिपतेः समस्ततनुभृत्संसारनिस्तारणे ।

तीर्थे पुष्टिमुपेयुषि प्रतिदिनं वृद्धिं गतं मंगलम् ॥

तत् संप्रत्युपनीतपूजनविधौ विश्वात्मनामर्हतां ।

भूयान्मंगलमक्षयं च जगते स्वस्त्यस्तु संघाय च ॥ ४ ॥

इन चारों वृत्तोंकरके मंगल प्रदीप करे । पीछे शक्रस्तव पढ़े ॥ इतिजि-
नार्चनविधिः ॥

अथ अतिशय करी अर्हद्भक्तिवाला कोईक श्रावक, नित्य, वा पर्वदिनमें,
वा किसी कार्यांतरमें, जिनस्नात्र करनेकी इच्छा करे, तिसका विधि यह है ।

प्रथम स्नात्रपीठके ऊपर, दिक्पालग्रह अन्य दैवतपूजन वर्जके, पूर्वो-
क्त प्रकारकरके जिनप्रतिमाको पूजके, मंगलदीप वर्जित आरात्रिक
करके, पूर्वोपचारयुक्त श्रावक, गुरुसमक्ष संघके मिले हुए, चार प्रकारके
गीतवाद्यादि उत्सवके हुए पुष्पांजलि हाथमें लेके ।

“॥ नमो अरहंताणं । नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः ॥”

यह पढ़के दो वृत्त (छंद) पढ़े ।

यथा ॥

॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

कल्याणं कुलवृद्धिकारि कुशलं श्लाघार्हमत्यद्भुतं ।

सर्वाघप्रतिघातनं गुणगणालंकारविभ्राजितम् ॥

कांतिश्रीपरिरंभणं प्रतिनिधिप्रख्यं जयत्यर्हतां ।

ध्यानं दानवमानवैर्विरचितं सर्वार्थसंसिद्धये ॥ १ ॥

॥ मालिनीवृत्तम् ॥

भुवनभाविकपापध्वांतदीपायमानं ।

परमतपरिघातप्रत्यनीकायमानम् ॥

धृतिकुवलयनेत्रावश्यमंत्रायमानं ।

जयति जिनपतीनां धानमत्युत्तमानाम् ॥ २ ॥

यह पदके पुष्पांजलिक्षेपण करे ॥ इतिपुष्पांजलिक्षेपः ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

कर्पूरसिल्हाधिककाकतुंडकस्तुरिकाचंदनवंदनीयः ॥

धूपो जिनाधीश्वरपूजनेऽत्र सर्वाणि पापानि दहत्वजस्रम् ॥ १ ॥

यह पदके सर्वपुष्पांजलियोंके बीचमें धूपोत्क्षेप करे ॥ और शक्रस्तव पढ़े ॥ तदपीछे जलपूर्ण कलश लेके, श्लोक और वसंततिलका पढ़े ॥

यथा ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

केवली भगवानेकः स्वाद्वादी मंडनैर्विना ॥

विनापि परिवारेण वंदितः प्रभुतोज्जितः ॥ १ ॥

॥ वसंततिलका ॥

तस्येशितुः प्रतिनिधिः सहजश्रियाढ्यः ।

पुष्पैर्विनापि हि विना वसनप्रतानैः ॥

गंधैर्विना मणिमयाभरणैर्विनापि ।

लोकोत्तरं किमपि दृष्टिसुखं ददाति ॥ २ ॥

यह पदके प्रतिमाको कलशाभिषेक करे ॥ इतिप्रतिमायाः कलशाभिषेकः ॥ पुष्प अलंकारादि उत्तारके, कलशाभिषेक करके, पीछे फिर पुष्पांजलि लेके, दो काव्य पढ़े ।

यथा ॥

॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

विश्वानंदकरी भवांबुधितरी सर्वापदां कर्तरी ।

मोक्षाध्वैकविलंघनाय विमला विद्या परा खेचरी ॥

दृष्ट्या भावितकल्मषापनयने बद्धाप्रतिज्ञा दृढा ।

रम्यार्हत्प्रतिमा तनोतु भविनां सर्वं मनोवाञ्छितम् ॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

परमतररमासमागमोत्थप्रसृमरहर्षविभासिसन्निकर्षा ॥

जयतिजगति जिनेशस्य दीप्तिः प्रतिमा कामितदायिनी जनानाम् २

यह पढके फिर पुष्पांजलिक्षेप करे. । पीछे पूर्वोक्त 'कर्पूरसिल्हा' वृत्तकरके धूपोत्क्षेप करे, और शक्रस्तव पढे. । पीछे फिर पुष्पांजलि हाथमें लेके, दो काव्य पढे. ॥

यथा ॥

॥ पृथिवीवृत्तम् ॥

न दुःखमतिमात्रकं न विपदां परिस्फूर्जितं ।
न चापि यशसां क्षितिर्न विषमा नृणां दुस्थता ॥
न चापि गुणहीनता न परमप्रमोद क्षयो ।
जिन्नाञ्चनकृतां भवे भवति चैव निःसंशयम् ॥ १ ॥

॥ मंदाक्रांता ॥

एतत्कृत्यं परममसमानंदसंपन्निदानं ।
पाताललोकः सुरनरहितं साधुभिः प्रार्थनीयम् ॥
सर्वारंभापचयकरणं श्रेयकां सं निधानं ।
साध्यं सर्वैर्विमलमनसा पूजनं विश्वभर्तुः ॥ २ ॥

यह पढके फिर पुष्पांजलिक्षेप करे. । तदपीछे धूप हाथमें लेके पढे. ।

यथा ॥

॥ शार्दूल ॥

कर्पूरागरुसिल्हचंदनबलामांसीशशैलेयक ।
श्रीवासद्रुमधूपरालघुसृणैरत्यंतमामोदितः ॥
व्योमस्थप्रसरच्छशांककिरणज्योतिःप्रतिच्छादको ।
धूपोत्क्षेपकृतो जगत्रयगुरोस्सौभाग्यमुत्तंसतु ॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

सिद्धाचार्यप्रभृतीन् पंच गुरुन् सर्वदेवगणमधिकम् ॥
क्षेत्रे काले धूपः प्रीणयतु जिनाञ्चने रचितः ॥ २ ॥

यह पढके धूपोत्क्षेप करे. । शक्रस्तव पढे. ॥ पीछे फिर पुष्पांजलि लेके ॥

व्योमस्थप्रसरच्छशांककिरणज्योतिःप्रतिच्छादको ॥

धूपोत्क्षेपकृतो जगत्रयगुरोस्सौभाग्यमुत्तंसतु ॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

सिद्धाचार्यप्रभृतीन् पंच गुरून् सर्वदेवगणमधिकम् ॥

क्षेत्रे काले धूपः प्रीणयतु जिनार्चने रचितः ॥ २ ॥

यह पढ़के धूपोत्क्षेप करे । शक्रस्तव पढ़े ॥ पीछे फिर पुष्पांजलि लेके ।

॥ वसंततिलका ॥

जन्मन्यनंतसुखदे भुवनेश्वरस्य ।

सुत्रामभिः कनकशैलशिरःशिलायाम् ॥

स्नात्रं व्यधायि विविधांबुधिकूपवापी ।

कासारपल्लवसरित्सलिलैः सुगंधैः ॥ १ ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

तां बुद्धिमाधाय हृदीहकाले स्नात्रं जिनेन्द्रप्रतिमागणस्य ॥

कुर्वीति लोकाः शुभभावभजो महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥ २ ॥

यह पढ़के पुष्पांजलिक्षेप करे ।

तदपीछे ॥

॥ वृत्तपाठः ॥

परिमलगुणसारसद्गुणाढया बहुसंसक्तपरिस्फुरद्द्विरेफा ॥

बहुविधबहुवर्णपुष्पमाला वपुषि जिनस्य भवत्वमोघयोगा ॥ १ ॥

यह वृत्त पढ़के पगोंसे लेके मस्तकपर्यंत जिनप्रतिमाको पुष्पारोपण करे । पीछे 'कर्पूरसिल्हाधि०' इसकरके धूपोत्क्षेप करे । पीछे शक्रस्तव पढ़े । पीछे फिर पुष्पांजलि हाथमें लेके ।

॥ शार्दूल ॥

साम्राज्यस्य पदोन्मुखे भगवति स्वर्गाधिपैर्गुफितो ।

मंत्रित्वं बलनाथतामधिकृतिं स्वर्णस्य कोशस्य च ॥

विभ्राद्भिः कुसुमांजलिर्विनिहितो भक्त्या प्रभोः पादयो-

दुःखौघस्य जलांजलिं सतनुतादालोकनादेव हि ॥ १ ॥

॥ इन्द्रवज्रा ॥

चेतः समाधातुमनिन्द्रियार्थं पुण्यं विधातुं गणनाद्व्यतीतम् ॥

निक्षिप्यतेर्हत्प्रतिमापदाग्ने पुष्पांजलिः प्रोद्वतभक्तिभावैः ॥ २ ॥

यह पढ़के पुष्पांजलिक्षेप करे । सर्व पुष्पांजलियोंके अंतमें धूपोत्क्षेप, और शक्रस्तवपाठ अवश्य करना ॥ तदनंतर पुष्पादिकरके प्रतिमा पूजे । तदपीछे मणि, स्वर्ण, रूप्य, ताम्र, मिश्रधातु, माटीमय, कलशे स्नात्रकी चौकीऊपरि स्थापन करना । तिनमें गंगोदकमिश्रित सर्व जलाशयोंके पानी स्थापन करे । चंदन, कुंकुम, कर्पूरादि सुगंध द्रव्योंकरके वासित करे । चंदनादि करके, और पुष्पमालायोंकरके, कलशोंको पूजे । जल पुष्पादिअभिमंत्रणमंत्र पूर्वे कहे हैं ते जानने । तदपीछे सो एक श्रावक, अथवा बहुत श्रावक, पूर्वोक्त वेष शौचवाले गंधसें हस्तको लेपन करके, मालाभूषित कंठवाले तिन कलशोंको हाथऊपरि रखे । तदपीछे स्वस्वबुद्धिअनुसारसें जिनजन्माभिषेकचिन्हित स्तोत्रोंको जिनस्तुतिगर्भित षट्पदादि (छप्पयआदि) को पढे । तदपीछे शार्दूलवृत्त पढे ।

यथा ॥

॥ शार्दूलवृत्त ॥

जाते जन्मनि सर्वविष्टपपतेरिन्द्रादयो निर्जरा ।

नीत्वा तं करसंपुटेन बहुभिः सार्द्धं विशिष्टोत्सवैः ॥

शृंगे मेरुमहीधरस्य मिलिते सानंददेवीगणे ।

स्नात्रारंभमुपानयंति बहुधा कुंभांबुगंधादिकम् ॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

योजनमुखान् रजतनिष्कमयान् मिश्रधातुमृद्रचितान् ॥

दधते कलशान् संख्या तेषां युगषट्खदंतिमिता ॥ २ ॥

वापीकूपन्हदांबुधितडागपल्वलनदीझरादिभ्यः ॥

आनीतैर्विमलजलैः स्नानाधिकं पूरयंति च ते ॥ ३ ॥

॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

कस्तूरीघनसारकुंकुममुराश्रीखंडकंकोल्लकै- ।
 न्हीबेरादिसुगंधवस्तुभिरलंकुर्वेति तत्संवरम् ॥
 देवेन्द्रा वरपारिजातवकुलश्रीपुष्पजातीजपा ।
 मालाभिः कलशाननानि दधते संप्राप्तहारस्रजः ॥ ४ ॥
 ईशानाधिपतेर्निजांकुहरे संस्थापितं स्वामिनं ।
 सौधर्माधिपतिर्मिताद्रुतचतुःप्रांशूक्षशृंगोद्गतैः ॥
 धारावारिभरैः शशांकविमलैः सिंचत्यनन्याशयः ।
 शेषाश्चैव सुराप्सरस्समुदयाः कुर्वतिकौतूहलम् ॥ ५ ॥

॥ वसंततिलका ॥

वीणामृदंगतिमिलार्द्रकटार्दनूर ।
 ढक्काहुडुकपणवस्फुटकाहलाभिः ॥
 सद्वेणुझर्झरकदुंदुभिषुंषुणीभि-
 र्वाद्यैः सृजंति सकलाप्सरसो विनोदम् ॥ ६ ॥

॥ श्लोकः ॥

शेषाः सुरेश्वरास्तत्र गृहीत्वा करसंपुटे ॥
 कलशांस्त्रिजगन्नाथं स्नपयन्ति महामुदः ॥ ७ ॥

॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

तस्मिंस्तादृशउत्सवे वयमपि स्वर्लोकसंवासिनो ।
 भ्रांता जन्मविवर्त्तनेन विहितश्रीतीर्थसेवाधियः ॥
 जातास्तेन विशुद्धबोधमधुना संप्राप्य तत्पूजनं ।
 स्मृत्यैतत्करवाम विष्टपविभोः स्नात्रं मुदामास्पदम् ॥ ८ ॥

॥ गाथा ॥

बालत्तणम्मि सामिअ सुमेरुसिहरम्मि कणयकलसेहिं ॥

तियसासुरेहिं ण्हविओ ते धन्ना जेहिं दिट्ठोसि ॥ ९ ॥

यह पढके कलशोंकरके जिनप्रतिमाको अभिषेक करे । तदपीछे बडे छोटेके क्रमकरके सर्व पुरुष स्त्रियां भी गंधोदकोंकरके स्नात्र करे । तदपीछे अभिषेकके अंतमें गंधोदकपूर्ण कलश लेके वसंततिलकावृत्त पढे ।

यथा ॥

॥ वसंततिलका ॥

संघे चतुर्विध इह प्रतिभासमाने श्रीतीर्थपूजनकृतप्रतिभासमाने ॥
गंधोदकैः पुनरपि प्रभवत्वजस्रं स्नात्रं जगत्रयगुरोरतिपूतधारैः ॥१॥

यह पढके जिनपादोपरि कलशाभिषेक करके स्नात्रनिवृत्ति करे । तदपीछे पुष्पांजलि लेके वृत्त पढे ।

यथा ॥

॥ प्रहर्षिणी ॥

इंद्राग्ने यम निर्ऋते जलेश वायो
वित्तेशेश्वर भुजगा विरंचिनाथ ॥
संघट्टाधिकतमभक्तिभारभाजः
स्नात्रेस्मिन् भुवनविभोः श्रीयं कुरुध्वम् ॥ १ ॥

यह पढके स्नात्रपीठके पास रहे कल्पित दिक्पालपीठऊपरि, पुष्पांजलिक्षेप करे । तदपीछे प्रत्येक दिशामें यथाक्रमकरके दिक्पालोंको स्थापन करे । पीछे एकैक दिक्पालका पूजन करे ।

यथा ॥

॥ शिखरिणी ॥

सुराधीश श्रीमन् सुदृढतरसम्यक्तववसते ।
शचीकांतोपांतस्थितविबुधकोट्यानतपद ॥
ज्वलद्वज्राघातक्षपितदनुजाधीशकटक ।
प्रभोः स्नात्रे विघ्नं हर हर हरे पुण्यजयिनाम् ॥ १ ॥

“॥ ॐ शक्र इह जिनस्नात्रमहोत्सवे आगच्छ २ । इदं जलं गृहाण २ । गंधं गृहाण २ । पुष्पं गृहाण २ । धूपं गृहाण २ ।

दिपं गृहण २ । नैवेद्यं गृहाण २ । विघ्नं हर २ । दुरितं हर २ ।
शांतिं कुरु २ । तुष्टिं कुरु २ । पुष्टिं कुरु २ । ऋद्धिं कुरु २ ।
वृद्धिं कुरु २ । स्वाहा ॥ ” इति पुष्पगंधादिभिर्निद्रपूजनम् ॥ १ ॥

॥ वपच्छंदसिकवृत्तपाठः ॥

बहिरंतरनंततेजसा विदधत्कारणकार्यसंगतिः ॥

जिनपूजनआशुशुक्षणे कुरु विघ्नप्रतिघातमंजसा ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ अग्ने इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” ॥ इत्यग्निपूजनम् ॥ २ ॥

॥ वसंततिलका ॥

दीप्तांजनप्रभतनो तनुसंनिकर्ष ।

वाहारिवाहनसमुद्भुरदंडपाणे ॥

सर्वत्र तुल्यकरणीयकरस्थधर्म ॥

कीनाश नाशय विपद्द्विसरं क्षणेत्र ॥ १ ॥

“ ॐ यम इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति यमपूजनम् ॥ ३ ॥

॥ आर्या ॥

राक्षसगणपरिवेष्टितचेष्टितमात्रप्रकाशहतशत्रो ॥

स्नात्रोत्सवेत्र निर्ऋते नाशय सर्वाणि दुःखानि ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ निर्ऋते इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति निर्ऋतिपूजनम् ॥ ४ ॥

॥ स्वग्धरा ॥

कल्लोलानीतलोलाधिककिरणगणस्फीतरत्नप्रपंच ।

प्रोद्भूतौर्वाग्निशोभं वरमकरमहापृष्ठदेशोक्तमानम् ॥

चंचच्चीरिल्लिशृंगिप्रभृतिद्वयगणैरंचितं वारुणं नो ।

वर्ष्मच्छिद्यादपायं त्रिजगदधिपतेः स्नात्रसत्रे पवित्रे ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ वरुण इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति वरुणपूजनम् ॥ ५ ॥

॥ मालिनी ॥

ध्वजपटकृतकीर्तिस्फूर्तिदीप्यद्विमान ।

प्रसृमरबहुवेगत्यक्तसर्वोपमान ॥

इह जिनपतिपूजासंनिधौ मातरिश्व-

न्नपनयसमुदायं मध्यबाह्यातपानाम् ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ वायो इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति वायुपूजनम् ॥ ६ ॥

॥ वसंततिलका ॥

कैलासवास विलसत्कमलाविलास ।

संशुद्धहासकृतदौस्थ्यकथानिरास ॥

श्रीमत्कुबेरभगवत्स्नपनेत्र सर्वे ।

विघ्नं विनाशय शुभाशय शीघ्रमेव ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ कुबेर इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति कुबेरपूजनम् ॥ ७ ॥

॥ वसंततिलका ॥

गंगातरंगपांरेखेलनकोर्णवारि प्रोद्यत्कपर्दपरिमंडितपार्श्वदेशम् ॥

नित्यं जिनस्नपनहृष्टहृदः स्मरारे विघ्नं निहंतु सकलस्य जगत्रयस्य १

“ ॥ ॐ ईशान इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इतीशानपूजनम् ॥ ८ ॥

॥ वृत्तपाठः ॥

फणमणिमहसा विभासमानाः । कृतयमुनाजलसंश्रयोपमानाः ॥

फणिन इह जिनाभिषेककाले । बलिभवनादमृतंसमानयंतु ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ नागा इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति नागपूजनम् ॥ ९ ॥

॥ द्रुतविलंबितपाठः ॥

विशदपुस्तकशस्तकरद्वयः । प्रथितवेदतया प्रमदप्रदः ॥

भगवतः स्नपनावसरे चिरं । हरतु विघ्नभरं द्रुहिणो विभुः ॥ १ ॥

“ ॐ ब्रह्मण इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति ब्रह्मणः पूजनम् ॥ १० ॥

ऐसें क्रमसें दिकपालपूजन करे । तदपीछे फिर भी हाथमें पुष्पांजलि लेकर आर्या पढे ॥

यथा ॥

॥ आर्या ॥

दिनकरहिमकरभूसुतशशिसुतबृहतीशकाव्यरवितनयाः ॥

राहो केतो क्षेत्रप जिनार्चने भवत सन्निहिताः ॥ १ ॥

यह पढके ग्रहपीठोपरि पुष्पांजलिक्षेप करे । तदपीछे पूर्वादिक्रमसें सूर्य, शुक्र, मंगल, राहु, शनि, चंद्र, बुध, बृहस्पति, इनको स्थापन करे. हेठ केतुको, और ऊपर क्षेत्रपालको स्थापन करे. । तदपीछे प्रत्येक ग्रहका पूजन करे. ।

तद्यथा ॥

॥ वसंततिलका ॥

विश्वप्रकाशकृतभव्यशुभावकाश ।

ध्वांतप्रतानपरिपातनसद्विकाश ॥

आदित्य नित्यमिह तीर्थकराभिषेके ।

कल्याणपङ्कवनमाकलय प्रयत्नात् ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ सूर्य इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति सूर्यपूजनम् ॥ १ ॥

॥ मालिनी ॥

स्फटिकधवलशुद्धध्यानविध्वस्तपाप ।

प्रमुदितदितिपुत्रोपास्यपादारविंद ॥

त्रिभुवनजनशश्वज्जंतुजीवानुविद्य ।

प्रथय भगवतोर्च्ची शुक्र हे वीतविघ्नाम् ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ शुक्र इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति शुक्रपूजनम् ॥ २ ॥

॥ आर्या ॥

प्रबलबलमिलितबहुकुशललालनाललितकलितविघ्नहते ।

भौमजिनस्नपनेऽस्मिन् विघटय विघ्नागमं सर्वम् ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ मंगल इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति मंगलपूजनम् ॥ ३ ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

अस्तांहः सिंहसंयुक्तरथ विक्रममंदिर ॥

सिंहिकासुत पूजायामत्र संनिहितो भव ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ राहो इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति राहु पूजनम् ॥ ४ ॥

॥ वृत्तम् ॥

फलिनीदलनील लीलयांतःस्थगितसमस्तवरिष्ठविघ्नजात॥

रवितनय प्रबोधमेतात् जिनपूजाकरणैकसावधानान् ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ शने इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति शनिपूजनम् ॥ ५ ॥

॥ द्रुतविलंबितपाठः ॥

अमृतवृष्टिविनाशितसर्वदोषचितविघ्नविषः शशलाञ्छनः ॥

वितनुतात्तनुतामिह देहिनां प्रसृततापभरस्य जिनाच्चने ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ चंद्र इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति चंद्रपूजनम् ॥ ६ ॥

॥ वृत्तम् ॥

बुधविवुधगणार्चितांध्रियुग्म प्रमथितदैत्य विनीतदुष्टशास्त्र ॥

जिनचरणसमीपगोधुनात्वं रचय मतिं भवघातनप्रकृष्टाम् ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ बुध इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति बुधपूजनम् ॥ ७ ॥

॥ वृत्तम् ॥

सुरपतिहृदयावतीर्णमंत्रप्रचुरकलाविकलप्रकाश भास्वनू ॥

जिनपरिचरणाभिषेककाले कुरु बृहतीवर विघ्नविप्रणाशम् ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ गुरो इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति गुरुपूजनम् ॥ ८ ॥

॥ द्रुतविलंबित ॥

निजनिजोदययोगजगत्रयीकुशलविस्तरकारणतां गतः ॥

भवतुकेतुरनश्वरसंपदां सततहेतुरवारितविक्रमः ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ केतो इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति केतुपूजनम् ॥ ९ ॥

॥ आर्या ॥

कृश्रसितकपिलवर्णप्रकीर्णकोपासितांघ्रियुग्मसदा ॥

श्रीक्षेत्रपाल पालय भविकजनं विघ्नहरणेन ॥ १ ॥

“ ॥ ॐ क्षेत्रपाल इह० शेषं पूर्ववत् ॥ ” इति क्षेत्रपालपूजनम् ॥१०॥

तदपीछे गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीपसैं पूर्व कहे मंत्रोंसैंही जिनप्रति-
माकी पूजा करे. तदपीछे हाथमें वस्त्र लेके वसंततिलकावृत्तपाठ पढे. ।

यथा ॥

॥ वसंततिलकावृत्त ॥

त्यक्त्वाखिलार्थवनितादिकभूरिराज्यं

निःसंगतामुपगतो जगतामधीशः ॥

भिक्षुर्भवन्नपि स वर्ष्मणि देवदूष्य-

मेकं दधाति वचनेन सुरेश्वराणाम् ॥ १ ॥

यह पढके वस्त्र चढावे. ॥ इति वस्त्रपूजा ॥

तदपीछे नानाविध खाद्य, पेय, भक्ष्य, लेह्यसंयुक्त नैवेद्य, दो स्थानमें
करके तिनमेंसैं एक पात्र जिनके आगे स्थापके, श्लोक पढे. ।

यथा ॥

॥ श्लोक ॥

सर्वप्रधानसद्भूतं देहिदेहिसुपुष्टिदम् ॥

अन्नं जिनाग्रे रचितं दुःखं हरतु नः सदा ॥ १ ॥

यह पढके जलचुलुककरके जिनप्रतिमाको नैवेद्य देवे. । तदपीछे दूसरे
पात्रमें चुलुककरकेही, ग्रहदिक्पालादिकोंको श्लोक पढके नैवेद्य देवे. ।

श्लोको यथा ॥

भोभो सर्वेग्रहालोकपालाः सम्यग्दशः सुराः ॥

नैवेद्यमेतद्गृह्णन्तु भवंतो भयहारिणः ॥ १ ॥

स्नान करायाविना भी पूजामें जिनप्रतिमाको इसही मंत्रकरके नैवेद्य
देना. ॥ तदपीछे आरात्रिक मंगलदीपक पूर्ववत् । और शक्रस्तव भी

पढना. ॥ जिस प्रतिमाका स्थानस्थितहीका लपन कराया जावे, तिसके वास्ते सर्वकुछ तहांही करना. ॥

श्रीखंडकर्णूरकूरंगनाभिप्रियंगुमांसीनखकाकतुंडैः ॥

जगत्रयस्याधिपतेः सपर्याविधौ विदध्यात्कुशलानि धूपः ॥ १ ॥

इस वृत्तकरके सर्वपूष्पांजलियोंके बिचाले धूपोत्क्षेप करना, और शक्रस्तवपाठ पढना. ॥

प्रतिमाविसर्जनं यथा ॥

“ ॥ ॐ अहं नमो भगवतेर्हते समये पुनः पूजां प्रतीच्छ स्वाहा ॥ ”

इति पुष्पन्यासेन प्रतिमाविसर्जनं ॥

“ ॥ ॐ न्हः इंद्रादयोलोकपालाः सूर्यादयो ग्रहाः सक्षेत्रपालाः सर्वदेवाः सर्वदेव्यः पुनरागमनाय स्वाहा ॥ ” इतिपूष्पादिभिर्दिक् पालग्रहविसर्जनम् ॥

तदपीछे ॥

आज्ञाहीनं क्रियाहीनं मंत्रहीनं च यत्कृतम् ॥

तत्सर्वं कृपया देवाः क्षमंतु परमेश्वराः ॥ १ ॥

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ॥

पूजां चैव न जानामि त्वमेव शरणं मम ॥ २ ॥

कीर्त्तिः श्रियो राज्यपदं सुरत्वं न प्रार्थये किंचन देवदेव ॥

मत्प्रार्थनीयं भगवत्प्रदेयं स्वदासतां मां नय सर्वदापि ॥ ३ ॥

इति सर्वकरणीयांते जिनप्रतिमादेवादिविसर्जनविधिः ॥

अर्हदर्चनाविधिमें भी ऐसैही विसर्जन जानना. ॥ इति लघुस्नानविधिः ॥

तदपीछे (गृहचैत्यपूजानंतर) बडे देवमंदिरमें जाकर, शक्रस्तवादि-स्तोत्रोंकरके जिनराजकी स्तवना करके, और जिनराजका पूजन करके,

प्रत्याख्यान चिंतवन करे । पीछे चैत्यको प्रदक्षिणा करके, पौषधशाला (उपाश्रय) में जाकर, देवकीतरें बड़े आनंदसे साधुओंको वंदन करे । सुंदरबुद्धिवाला होकर, पूजासत्कार करे । पीछे एकाग्रचित्त होकर साधुके मुखसे धर्मदेशना श्रवण करे । पीछे मनमें धारा हुआ प्रत्याख्यान करे । पीछे गुरुको नमस्कार करके कर्मादानको अच्छीतरें त्यागके, धन उपार्जन करे । यथायोग्य स्थानमें व्यापार समाचरे । कुत्सित बुरा कर्म प्राणोंके नाश हुए भी न करना । पीछे अपने घरदेहरामें अर्हत्की मध्याह्नपूजा करके, अन्नपानी समाचरे । भक्तिसे साधुओंको दान देके, अतिथियोंकी पूजा आदरसत्कार करके, और दीन अनाथ मार्गणगणको संतोषके, अपने व्रत और कुलके उचित भोज्य वस्तुका भोजन करे ॥ साधुको आमंत्रण ऐसे करे ॥

क्षमाश्रमण पूर्वक गृहस्थ कहें ।

“ ॥ हे भगवन् फासुएणं एसणिज्जेणं असणपाणखाइम-
साइमेणं वथ्थकंबलपायपुच्छणपडिग्गहेणं ओसहभेसज्जेणं
पाडिहेरूवेण सिज्जासंथारएणं भयवं मम गेहे अणुग्गहो
कायवो ॥ ”

तदपीछे (भोजनानंतर) गुरुके पास शास्त्रका विचार करे, पढ़े, सुने । पीछे धन उपार्जन करके घरको जाकर संध्यापूजा करके सूर्यके अस्त होनेसे दो घड़ी पहिले, निजवांछित भोजन करे । सायंकालमें धर्मा-
गारमें सामायिककरके षडावश्यक प्रतिक्रमण करे । पीछे अपने घरमें आके शांतबुद्धिवाला हुआ, जब एक पहर रात्रि जावे तब अर्हत्स्तवादिक पढ़के प्रायः ब्रह्मचर्यव्रतधारी होके सुखसे निद्रा लेवे । जब नींदका अंत आवे तब परमेष्ठिमंत्रस्मरणपूर्वक जिन, चक्री, अर्द्धचक्री, आदिके चरित्तोंको चिंतन करे । और व्रतादिकोंके मनोरथ अपनी इच्छासे करे, ऐसे अहोरात्रिकी चर्या अप्रमत्त होके समाचरता हुआ, और यथावत् कहे व्रतमें रहा हुआ, गृहस्थ भी शुद्ध अर्थात् कल्याणभागी होता है । इति व्रतारोपसंस्कारे गृहिणां दिनरात्रिचर्या ॥

वासनागुरुसामग्री विभवो देहपाटवम् ॥

संघश्चतुर्विधो हर्षो व्रतारोपे गवेष्यते ॥ १ ॥

वरकुसुमगंधअक्खयफलजलनेवजधूवदीवेहिं ॥

अट्ठविहकम्ममहणी जिणपूआ अट्ठहा होइ ॥ २ ॥

इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य ग्रहिधर्मप्रतिबद्धपंचदश-
मव्रतारोपसंस्कारस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचितोवालावबोधस्तमास-
स्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं त्रिंशः स्तंभः ॥ ३० ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरीश्वरविरचितेतत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथेपंच-
दशमव्रतारोपसंस्कारवर्णनोनामत्रिंशःस्तंभः ॥ ३० ॥

॥ अथैकत्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

पूर्वोक्त २७।२८।२९।३०।स्तंभोंमें पंचदशम (१५) व्रतारोपसंस्कारका
वर्णन किया, अब इस इकतीस (३१) स्तंभमें षोडशम (१६) अंत्यसं-
स्कारका वर्णन करते हैं. ॥

श्रावक यथावृत्त वृत्तोंकरके निज भवको पालके कालधर्मके प्राप्त
हुए, उत्कृष्ट प्रधान आराधना करे, तिसका विधि यह है. । जिन
अरिहंतोंके कल्याणक स्थानोंमें निर्जीव शुचि पवित्र स्थंडिल-जगामें, वा
अरण्यमें, वा अपने घरमें, विधिसे अनशन करना. । तहां शुभस्थानमें
ग्लानकोपर्यंत आराधना करावनी । तथा अवश्यमेव अमुकवेला निकट
मरण होवेगा ऐसे ज्ञानके हुए, तिथिवारनक्षत्रचंद्रबलादि न देखना ।
तहां संघका मीलना करना । गुरु, ग्लानको जैसे सभ्यत्ववारोपणमें तैसे-
ही नंदि करे. । नवरं इतना विशेष है. सर्व नंदि देववंदन कायोत्सर्गादि
पूर्वोक्त विधि 'संलेहणा आराहणा' इस अभिलापकरके करावणा.
और वैयावृत्य कर कायोत्सर्गानंतर ।

“ ॥ आराधना देवता आराधनार्थं करोमि काउस्सग्गं अन्न-
थ्यउससिएणं० जाव-अप्पाणं वोसिरामि ॥ ” कहके कायोत्सर्ग करे.
कायोत्सर्गमें चार लोगस्स चिंतवन करना, पारके आराधना स्तुति कहनी. ।

यथा ॥

यस्याः सान्निध्यतो भव्या वाञ्छितार्थप्रसाधकाः ॥

श्रीमदाराधना देवी विघ्नव्रातापहास्तु वः ॥ १ ॥ शेषं पूर्ववत् ॥

तदपीछे तिसही पूर्वोक्तविधिसँ सम्यक्त्वदंडकका उच्चारण, द्वादशव्र-
तोंका उच्चारण करावणा. । वासक्षेपकायोत्सर्गादि भी, 'संलेखना आ-
राधना' के आलापककरके तैसेही जाणना. । प्रदक्षिणा करनी, ग्लान-
की शक्तिके अनुसार होवे भी, और नही भी होवे. । दंडकादिमें 'जाव-
नियमंपज्जुवासामि' के स्थानमें 'जावजीवाए' ऐसे कहना. । तदपीछे
सर्व जीवोंकेसाथ अपराधकी क्षामणा करनी । पीछे श्रावक परमेष्ठिमं-
त्रोच्चारणपूर्वक गुरुके सन्मुख हाथ जोडके कहें ।

खामेमि सव्वजीवे सव्वे जीवा खमंतु मे ॥

मिन्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झ न केणइ ॥ १ ॥

गुरु कहें ।

“ ॥ खामेह जो खमइ तस्स अत्थी आराहणा जो न
खमइ तस्स नत्थि आराहणां ॥ ” तदपीछे श्रावक क्षमाश्रमणपूर्वक
कहें “ । भयवं अणुजाणह । ” गुरु कहें “ । अणुजाणामि । ” श्रा-
वक परमेष्ठिमंत्रपाठपूर्वक कहें ।

“ ॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं पुढावेकाइआ आउका-
इआ तेउकाइआ वाउकाइआ वणस्सइकाइआ एगिंदिआ
सुहमा वा बायरा वा पज्जत्ता वा अपज्जत्ता वा कोहेण वा
माणेण वा मायाए वा लोहेण पंचिदिअट्टेण वा रागेण
वा दोसेण वा घाइआ वा पीडिआ वा मणेणं वायाए
काएणं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

“ ॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं वेइंदिआ वा सुहमा वा
बायरा वा० शेषं पूर्ववत् ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

“॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं तेइंदिया सुहमा वा बायरा वा
शेषं पूर्ववत् ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पाठपूर्वक कहें ।

“ ॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं चउरिंदिआ सुहुमा वा
बायरा वा० शेषं पूर्ववत् ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पाठपूर्वक कहें ।

“ ॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं पंचिंदिआ देवा वा मणुआ
वा नेरइआ वा तिरक्खजोणिआ वा जलयरा वा थलयरा
वा खयर वा सन्निआ वा असन्निआ वा सुहमा वा बायरा वा०
शेषं पूर्ववत् ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पाठपूर्वक श्रावक कहें ।

“ ॥ जं मए अणंतेणं भयप्भमणेणं अलिअं भणिअं कोहेण
वा माणेण वा मायाए वा लोहेण वां पंचिंदिअट्टेण वा रागेण वा
दोसेण वा मणेणं वायाए काएणं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके कहें ।

“ ॥ जं मए अणंतेणं भवप्भमणेणं अदिन्नं गहिअं कोहेण
वा माणेण वा० शेषं पूर्ववत् ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

“ ॥ जं मए अणंतेणं भवप्भमणेणं दिव्वं माणुस्सं तिरिच्छं मेहुणं
सेविअं कोहेण वा माणेण वा० शेषं पूर्ववत् ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

“ ॥ जं मए अणंतेणं भवप्भमणेणं अट्टारस्स पावट्टाणाइं कयाइं
कोहेण वा माणेण वा० शेषं पूर्ववत् ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

“ ॥ जं मे पुढविकायगयस्स सिलालेदुसकरासन्हावालुआगेरिअ-
सुवन्नाइमहाधाउरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे
पाववट्टणे मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि
वोसिरामि ॥ ”

“ ॥ जं मे पुढविकायगयस्स सिलालेदुसकरासन्हावालुआगे-
रिअवसुन्नाइमहाधाउरूवं सरीरं अरिहंतचेइएसु अरिहंतविंबेसु धम्म-
ट्टाणेसु जंतुरक्खणट्टाणेसु धम्मोवगरणेसु संलग्गं तं अणुमोआमि
कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

“ ॥ जं मे आउकायगयस्स जलकरगमहिआओस्साहिमहरत-
णुरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववट्टणे मि-
च्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥ ”

“ ॥ जं मे आउकायगयस्स जलकरगमहिआओस्साहिमहरतणु-
रूवं सरीरं अरिहंतचेइएसु अरिहंतविंबेसु धम्मट्टाणेसु जंतुरक्ख-
णट्टाणेसु धम्मोवगरणेसु जिणन्हाणेसु तन्हदाहावहरणेसु संलग्गं
तं अणुमोआमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

“ ॥ जं मे तेउकायगयस्स अगणिइंगालमम्मुरजालाअलायविज्जु-
उक्कातेअरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववट्टणे
मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥ ”

“ ॥ जं मे तेउकायगयस्स अगणिइंगालमम्मुरजालाअलायवि-
ज्जुउक्कातेअरूवं सरीरं सीआवहारे जिणपूआधूवकरणे नेवेज्जपाए

छुहाहरणाहारपाए संलग्गं तं अणुमोएमि कल्लाणेणं अभिनं-
देमि ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

“ ॥ जं मे वाउकायगयस्स वाउझंझासासरूवं सरीरं पाणिवहे
पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववट्टणे मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं
तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥ ”

“ ॥ जं मे वाउकायगयस्स वाउझंझासासरूवं सरीरं पाणिर-
क्खणे पाणिजीवणे साहूण वेयावच्चे घम्मावहारे संलग्गं तं अणुमो-
एमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

“ ॥ जं मे वणस्सइकायगयस्स मूलकट्ठल्लिपत्तपुप्फफलबीअरस-
निज्जासरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववट्टणे
मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥ ”

“ ॥ जं मे वणस्सइकायगयस्स मूलकट्ठल्लिपत्तपुप्फफलबी-
अरसनिज्जासरूवं सरीरं छुहाहरणेसु अरिहंतचेइअपूयणेसु धम्म-
ट्टाणेसु नेवज्जकरणेसु जंतुरक्खणेसु संलग्गं तं अणुमोएमि कल्ला-
णेणं अभिनंदेमि ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

“ ॥ जं मे तसकायगयस्स रसरत्तमंसमेअअट्ठिमज्जासुक्कचम्मरो-
मनहनसारूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववट्टणे
मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥ ”

“ ॥ जं मे तसकायगयस्स रसरत्तमंसमेअअट्ठिमज्जासुक्कचम्मरो-
मनहनसारूवं सरीरं अरिहंतचेइएसु अरिहंतविंबेसु धम्मट्टाणेसु

जंतुरक्खणट्ठाणेसु धम्मोवगरणेसु संलग्गंतं अणुमोएमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

“ ॥ जं मए इत्थ भवे मणेणं वायाए काएणं दुट्ठं चिंतिअं दुट्ठं भासिअं दुट्ठं कयं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥ ”

“ ॥ जं मए इत्थ भवे मणेणं वायाए काएणं सुट्ठं चिंतिअं सुट्ठं भासिअं सुट्ठं कयं तं अणुमोएमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥ ”

यहां पहिलां समारोपितसम्यक्त्व व्रतको भी, फिर सम्यक्त्व व्रतारोप करना. और जिसको पहिले सम्यक्त्व व्रतारोप न करा होवे, तिसको भी अंतकालमें सम्यक्त्व व्रतारोप करना योग्य है. । जिसको पहिलां व्रतारोप करा होवे, तिसको इस अंतसमयमें एकसौचौवीस अतिचारोंकी आलोचना करनी. । वे अतिचार आवश्यकतादि सूत्रोंसे जान लेने. । तदपीछे आलोचनाविधि करना, सो प्रायश्चित्तविधिसे जानना. । तदपीछे गुरु सर्व संघसाहित वासअक्षतादि ग्लानके शिरमें निक्षेप करे. ॥ इत्यंतसंस्कारे आराधनाविधिः ॥

तदपीछे ग्लान (रोगी-बीमार) क्षमाश्रमण परमेष्ठिमंत्र पाठपूर्वक कहें ॥

आयरियउवज्झाए सीसे साहम्मिए कुलगणे अ ॥

जे मे कया कसाया सव्वे तिप्पिहेण खामेमि ॥ १ ॥

सव्वस्स समणसंघस्स भगवओ अंजलिं करिय सीसे ॥

सव्वं खमावइत्ता खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥ २ ॥

सव्वस्स जीवरासिस्स भावओ धम्मनिहियनियचित्तो ॥

सव्वं खमावइत्ता खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥ ३ ॥

“ ॥ भयवं जं मए चउगइगएणं देवा तिरिआमणुस्सा नेरइआ चउकसाओवगएणं पांचिंदिअवसट्ठेणं इहम्मि भवे अत्तेसु वा भवग्गहणेसु मणेणं वायाए काएणं दूमिआ संताविआ अभिताइया

तस्स मिच्छामि दुक्कडं तेहिं अहं अभिदूमिओ संताविओ अभि-
हओ तमहंपि खमामि ॥ ”

तदपीछे गुरु दंडकसहित इन तीनों गाथाका विस्तारसे व्याख्यान
करे । तदपीछे ग्लान, गुरु साधु साध्वी श्रावक श्राविकाओंको प्रत्येक-
क्षामणां करे । यहां गुरुओंको वस्त्रादि दान, और संघको पूजासत्कार
जानना ॥ इत्यंतसंस्कारे क्षामणाविधिः ॥

अथ मृत्युकालके निकट हुए, ग्लान, पुत्रादिकोंसे जिनचैत्योंमें
महापूजा स्नात्रमहोत्सव ध्वजारोपादि करवावे, चैत्यधर्मस्थानादिमें धन
लगवावे । तदपीछे परमेष्ठिमंत्रोच्चारपूर्वक पढ़े ।

यथा ॥

जे मे जाणंतु जिणा अवराहा जेसु २ ठाणेसु ॥

तेहं आलोएमि उवट्ठिओ सव्वकालंपि ॥ १ ॥

छउमत्थो मूढमणो कित्तिमिच्चंपि संभरइ जीवो ॥

जं च न सुमरामि अहं मिच्छामि दुक्कडं तस्स ॥ २ ॥

जं जं मणेण बद्धं जं जं वायाइ भासिअं किंचि जं जं ॥

काएण कयं मिच्छामि दुक्कडं तस्स ॥ ३ ॥

खामेमि सव्वजीवे सव्वे जीवा खमंतु मे ॥

मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झ न केणइ ॥ ४ ॥

इति ग्लानपाठः ॥

तदपीछे तीन नमस्कार पाठपूर्वक कहें ।

“ ॥ चत्तारि मंगलं अरिहंता मंगलं सिद्धा मंगलं साहू
मंगलं केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं । चत्तारि लोगुत्तमा
अरिहंता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केव-
लिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो । चत्तारि सरणं पवज्जामि
अरिहंते सरणं पवज्जामि सिद्धे सरणं पवज्जामि साहू
सरणं पवज्जामि केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ॥ ”

यह पाठ तीन बार पढ़े । पीछे गुरुके वचनसें अष्टादश (१८) पाप-स्थानकोंको वीसरावे व्युत्सर्जन करे ।

यथा ॥

“ ॥ सर्वं पाणाइवायं पञ्चक्खामि । सर्वं मुसावायं पच्च-
क्खामि । सर्वं अदिन्नादाणं प० । सर्वं मेहुणं प० । सर्वं
परिग्गहं प० । सर्वं राईभोअणं प० । सर्वं कोहं प० । सर्वं
माणं प० । सर्वं मायं प० । सर्वं लोहं प० । सर्वं पिज्जं
प० । सर्वं दोसं कलहं अप्पभव्खाणअरईरईपेसुन्नं परपरि-
वायं मायामोसं मिच्छादसंणसल्लं इच्चेइआइं अट्टारस
पावट्टाणाइं दुविहं तिविहेणं वोसिरामि अपच्छिमम्मि ऊ-
सासे तिविहं तिविहेणं वोसिरामि ॥ ”

तदपीछे गीतार्थगुरु, श्रीयोगशास्त्रके पांचमे प्रकाशके कथनसें, और कालप्रदीपादिशास्त्रके कथनसें, ग्लानके आयुका क्षय जानके * संघकी, ग्लानके संबंधियोंकी, तथा नगरके राजादिकी अनुमति लेके, अनशनका उच्चार करे । ग्लान, शक्रस्तव पढ़के तीनवार परमेष्ठिमंत्रको पढ़के गुरुके मुखसें उच्चरे ।

यथा ॥

“ ॥ भवचरिमं पञ्चक्खामि तिविहंपि आहारं असणं खाइमं
साइमं अन्नथ्यणाभोगेणं सहसागारेणं महत्तरागारेणं सर्वसमाहि-
वत्तियागारेणं वोसिरामि ॥ ” इति सागारानशनम् ॥

अंतर्मुहूर्त्त शेष रहे हूए, निरागार अनशन कराना ॥

* भक्तप्रत्याख्यानप्रकीर्णकशास्त्रमें लिखा है कि, यदि कोई तथ्यज्ञानी कहे, अथवा कोई सम्यग्दृष्टि देवता कहे कि, अमुकदिन तेरा अवश्य मरण है, तबतो अपना संहननभृतिबल जानके यावत् जीवका अन-शन करना, अन्यथा सागारिक अनशन करना । परंतु, जो कोई मरणदिनके निश्चयविना यावत् जीवका अनशन करे, करावे, सो आत्मघाती साधुश्रावकघाती पंचेन्द्रियघाती है; इससे प्रायः इस कालमें यावज्जीवका अनशन नहीं कराना सिद्ध होता है ॥

यथा ॥

“ ॥ भवचरिमं निरागारं पच्चक्खामि सव्वं असणं सव्वं पाणं सव्वं खाइमं सव्वं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं अईयं निंदामि पडिपुन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि अरिहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं देवसक्खियं अप्पसक्खियं वोसिरामि ॥”

जइ मे हुज्ज पमाओ इमस्स देहस्स इमाइ वेलाए ॥

आहारमुवहिदेहं तिविहं तिविहेण वोसिरिअं ॥ १ ॥

तब गुरु “निश्चयारगपारगो होहि” ऐसैं कहता हुआ संघसहित वा-
सअक्षतादि ग्लानके सन्मुख क्षेप करे। शांतिके वास्ते ‘अट्टावयंमि उसहो’
इत्यादि स्तुति पढनी। और, ‘चवणं जम्मणभूमी’ इत्यादि स्तव पढना।
गुरु निरंतर ग्लानके आगे तीनभुवनके चैत्योंका व्याख्यान करे, अनित्य-
तादि बारां भावनाका व्याख्यान करे, अनादिभवस्थितिका व्याख्यान करे,
अनशनके फलका व्याख्यान करे। और संघ गीतनृत्यादि उत्सव करे।
ग्लान जीवितमरणइच्छाको त्यागके समाधिसहित रहे। तदपीछे अंत-
र्मुहूर्त्तके आयां, ग्लान ‘सव्वं आहारं सव्वं देहं सव्वं उवहिं वोसिरामि’
ऐसैं कहें। पीछे ग्लान पंचपरमेष्ठिस्मरणश्रवणयुक्त शरीरको त्यागे ॥ इ-
त्यंतसंस्कारेऽनशनविधिः ॥

मरणकालमें ग्लानको कुशकी शय्याऊपर स्थापन करना । “जन्ममरणे
भूमावेव इति व्यवहारः ।”

अथ सर्वभावके भोक्ता कर्मके जोडनेवाले चेतनारूप जीवके गये हुए,
अजीव पुद्गलरूप तिसके शरीरको सनाथता ख्यापनार्थे, तिसके पुत्रादि-
कोंकेवास्ते, तीर्थसंस्कारविधि कहते हैं। सर्व ब्राह्मणको शिखा वर्जके शिर
दाढी मूँछ मुंडन कराना चाहिये, कितनेक क्षत्रियवैश्यको भी कहते हैं।
तथा शबका संस्कार सर्व स्ववर्णज्ञातियोंने करना, अन्यवर्ण ज्ञातिवालोंने
तिसका स्पर्श नहीं करना। तदपीछे गंधतैलादिसैं और भले गंधोदकक-
रके शबको स्नान करावे, गंधकुंकुमादिसैं विलेपन करे, मालाकरके अर्घ्य,

स्वस्वकुलोचित वस्त्राभरणेकरी विभूषित करे. शूद्र जातिका सर्वथा मुंडन नही. । तदपीछे नवीन काष्ठकी पगविनाकी कुश संधरी भले वस्त्रसे ढांकी हुई शय्याके ऊपर शय्याके उपकरणसहित शबको स्थापन करे. । यहां गृहस्थके मृत्युनक्षत्रके नक्षत्रपूतलेका विधान, कुशसूत्रादिसें यति-कीतरें जानना. नवरं कुशपुत्रक गृहस्थवेषधारी करणे । वर्णानुसार तिसके ऊपर नानाविध वस्त्र सुवर्ण मणि विचित्र वस्त्रका करा प्रासाद स्थापन करे. । तदपीछे स्वज्ञातीय चारजणे परिजनके साथ स्कंधऊपर उठाए शबको, स्मशानमें ले जावे. । तहां उत्तरभागमें शबका शिर रखके चितामें स्थापन करके, पुत्रादि अग्निसें संस्कार करे. । अन्न नही खानेवाले बालकोंको भूमिसंस्कार इच्छते हैं. । तहां प्रेतप्रतिग्राहियोंको दान देवे । तदपीछे सर्व स्नान करके, अन्यमार्गे होकर अपने घरको आवे. तीसरे दिनमें चिताभस्मका, पुत्रादि नदीमें प्रवाह करे. । तिसके हाड, तीर्थोंमें स्थापन करे. । तिसके अगले दिनमें स्नान करके शोक दूर करे. । जिनचैत्योंमें जाके, परिजनसहित, जिनबिंबको विनास्पर्श, चैत्यवंदन करे. । पीछे धर्मांगारमें आके गुरुको नमस्कार करे. गुरु भी संसारकी अनित्यतारूप धर्मदेशना करे. । तदपीछे स्वस्वकार्यमें सर्व तत्पर होवे. । अंत्य आराधनासें लेके, शोक दूर करनेतक मुहूर्त्तादि न देखना, अवश्य कर्त्तव्य होनेसें. । यमलयोगमें, त्रिपुष्करयो-गमें, आर्द्रा, मूल, अनुराधा, मिश्र, क्रूर और ध्रुव, इन नक्षत्रोंमें प्रेत-क्रिया नही करनी. । * धनिष्ठासें लेके पांच नक्षत्रोंमें तृणकाष्ठादि संग्रह नही करना । शय्या, दक्षिणदिशकी यात्रा, मृतककार्य, गृहोद्यम, घर ब-नाना आदि नही करना. । रेवती, श्रवण, अश्लेषा, अश्विनी, पुष्य, हस्त, स्वाति, मृगशिर, इन नक्षत्रोंमें, और सोम, गुरु, शनि, इन वारोंमें प्रेतकर्म करना बुद्धिमान् कहते हैं. । स्वस्ववर्णके अनुसार जन्ममरणका मृतक एकसदृश होता है, और गर्भपातमें तीन दिनका सुतक होवे है. ।

* मृगशिर । चित्रा । धनिष्ठा । मंगल । गुरु । शनि । २ । १२ । ७ । इति यात्राणां योगे यमलयोगः ॥
 कृतिका । पूर्वाफाल्गुनी । विशाखा । उत्तराषाढा । पूर्वाभाद्रपदा । पुनर्वसु । मंगल । गुरु । शनि । २ । १२ । ७ ।
 इति त्रिपुष्करयोगः ॥ कृतिका । विशाखा । भरणी । इति मिश्रनक्षत्राणि ॥ भरणी । मघा । पूर्वाफाल्गुनी । पूर्वाषाढा ।
 पूर्वाभाद्रपदा । इति क्रूरनक्षत्राणि ॥ रोहिणी । उत्तराफा० । उत्तराषा० । उत्तराभा० । इति ध्रुवनक्षत्राणि ॥

अन्य वंशवालेके मृत्यु हुए, वा जन्म हुए, विवाहित पुत्रिको सूतकवालेके अन्नके खानेसें, इन सर्वमें तीन दिनका सूतक होवे है। अन्न नहीं खानेवाले बालकका सूतक तीन दिनका होवे है। आठ वर्षसें कम ऐसे बालकका भी त्रिभागोन सूतक होवे है। स्वस्ववर्णानुसार सूतकके अंतमें जिनस्तव महोत्सवादि और साधर्मिकवात्सल्यादि करना, जिससें कल्याणप्राप्ति होवे. ॥

इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धस्य षोडशमांत्यसंस्कारस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविचितोवालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तमिदं षोडशसंस्कारविवरणम् ॥

इंदुबाणांकचंद्राहे (१९५१) श्रावणिकेसितच्छदे ॥

कृतोवालावबोधोयं विजयानंदसूरिणा ॥ १ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे

षोडशमांत्यसंस्कारवर्णनोनैकत्रिंशः स्तंभः ॥ ३१ ॥

॥ विज्ञापनम् ॥

यह पूर्वोक्त सोळां संस्कारका विधि श्रीआचारदिनकरके अनुसार लिखा है, इसके लिखनेका यह प्रयोजन है कि, यह सांसारिक व्यवहारोंके संस्कारोंका विधि, श्रीऋषभदेवसें प्रचलित हुआ है, और जैसा श्रीऋषभदेव जीने प्रचलित करा था, तैसेंही श्री जैनाचार्योंने लिख दिखलाया है। इनमें जो व्रतारोपसंस्कार है, सो तो गृहस्थका धर्मही जानना. शेष संस्कारोंमें धर्ममिश्रित जगद्व्यवहारकी रीति कथन करी है। इस कालमें कोई यह नियम नहीं है कि, सर्व श्रावकोंने यह विधि अवश्य कर्त्तव्यही है; तथापि यदि यह विधि प्रचलित होवे तो अच्छी बात है. क्योंकि, श्रीजैनाचार्योंको यही विधि सम्मत है, और इसी वास्ते मुंबाइके श्रीजैनयुनियनक्लबके मेंबरोंकी, भरुचवाले शेठ अनुपचंद मलूकचंदकी, भावनगरकी श्रीजैनधर्मप्रसारकसभाके शाह कुंवरजी आनंदजीकी, बडोदेवाले शेठ गोकलभाइ दुल्लभदासकी, और कितनेक साधुओंकी सम्मतिसें हम-

ने यह विधि इस ग्रंथमें गुंथन किया है. जिससे कि, लोकोकों मालुम होवे कि, जैनमतमें भी षोडशसंस्कारोंका वर्णन है. । तथा इस जैनसंस्कारविधिको, मिथ्यात्व भी नहीं जानना. क्योंकि यह लौकिकव्यवहाररूप प्रायः है, धर्मरूपही नहीं है. और आगममें चरितानुवादसें किसी किसी संस्कारविधिका संक्षेपसें कथन भी है. । श्रीभगवतीसूत्र, ज्ञातासूत्र, आचारांगसूत्र, दशाश्रुतस्कंधसूत्रादि शास्त्रानुसारें चरितानुवाद जानना.

अब मैं श्रीसंघसें नम्रतापूर्वक विनती करता हूं कि, यह विधि लिखनेके समयमें एकही ग्रंथ विद्यमान था, और नकल करनेके समय दूसरा मिला था, तिससें प्रायः स्वमत्यनुसार शुद्ध करके लिखा है, तथापि, किसी स्थानपर द्रष्ट्यादिदोषसें अशुद्ध लिखा गया होवे, वा जिनाज्ञा-विरुद्ध लिखा गया होवे, सो मुझे माफ करेंगे, और शुद्ध करके वांचेंगे. । इत्यलम् ॥

॥ अथद्वात्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

अब इस स्तंभमें जैनमतकी प्राचीनताका थोडासा खुलासा करते हैं. ॥

पूर्वपक्षः—जैनमत जेकर प्राचीन होवे तो, तिसका लेख, वा नाम, वेदोंमें होना चाहिये; परं है नहीं, इसवास्ते जैनमत नवीन है, प्राचीन नहीं है. ॥

उत्तरपक्षः—प्रियकर ! प्रथम तो वेदकाही कुछ ठिकाना नहीं है. क्योंकि, प्रथम ऋगवेदकी ८, कृष्णयजुर्वेदकी ८६, शुक्लयजुर्वेदकी १७, सामवेदकी १०००, और अथर्ववेदकी ९ शाखा. ये सर्व शाखायोंके वेदपाठमें परस्पर अन्यत्व है. जैसें जर्मनीके छपे शुक्लयजुर्वेदमें माध्य-दिनी, और काण्वशाखाके वेदपाठ पृथक् २ है. ऐसेंही सर्व शाखायोंमें जानना. इन शाखायोंमेंसें बहुत शाखा तो नष्ट होगइ हैं, तो फिर,

ऐसा ज्ञानी कौन है ? कि, जो कह देवे कि, किसी भी वेदकी शाखामें अर्हन्मतका नाम नहीं है !!

जब शंकराचार्य, जिसको हुए लगभग बारासौ वर्ष व्यतीत हुए हैं, तिसके समयमें वेदादि पुस्तकोंमें बहुत गड़बड़ करी गई, पुराणे पुस्तकोंमेंसे कितनेही हिस्से निकाले गए, और कितनेक हिस्से नवीन दाखल करे गए हैं, यह कथन इतिहास तिमिरनाशकमें है. और वेदोंके अर्थ करनेमें भी शंकर, माधव, सायणाचार्यादिकोंने अपने २ भाष्यमें बहुत अर्थ मनःकल्पित लिखे हैं. क्योंकि, प्राचीन वेदभाष्य इनको नहीं मिले हैं. इसवास्ते इनके करे अर्थ कितनेही अनन्वित है. और जो भाष्य इन्होंने रचे हैं, तिनमें भाष्यके लक्षण भी नहीं है. केवल टीकाका नामही भाष्य रख दिया है. भाष्य तो वह होता है कि, जिसमें मूलसूत्रकारका जो अभिप्राय होवे, सो सर्व प्रकट करा होवे “। सूत्रं सूचनकृत भाष्यं सूत्रोक्तार्थप्रपंचकम् ।” इति वचनात् । जैसे आवश्यक सूत्रके प्रथमाध्ययनके ८६ अक्षर है, तिसकी निर्युक्तिका भाष्य ५०००, श्लोकप्रमाण प्राकृतगाथाबद्ध है, और तिसकी टीका २८०००, श्लोकप्रमाण संस्कृतमें है. ऐसेही कल्पसूत्र (बृहत्) मूल ४७३, भाष्य १२०००, प्राकृतगाथाबद्ध, टीका ४२०००, श्लोकप्रमाण संस्कृतमें है. इत्यादि अनेक शास्त्रोंके इसीतिरके भाष्य है. तथा जैसे पाणिनीयसूत्रोपरि पतंजलिकृत भाष्य हैं, यह तो भाष्य है. परंतु जो नवीन भाष्य रचे गये हैं, वे तो अभिमानके उदयसे रचे मालुम होते हैं. जैसे दयानंदसरस्वतीजीने वेदोंपर नवीन भाष्य रचा है, यह भाष्य नहीं हैं, किंतु शास्त्रोंके सत्यार्थ बिगाड़नेसें चिटंबनारूप है. और दयानंदजीका भाष्य तो ऐसा है कि-

चार सुहाली सोले थाली, वांटणवाली अस्सी जणी;
सारे गाम ढंडोरा फेर्या, हंदि थोडी ने हलहल घणी. ।

और इस समयमें ऋग्वेदकी शाखा संख्यायनी १, शाकल २, वाष्कल ३, अश्वलायनी ४, मांडुक ५; कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय तिसकी

शाखा आपस्तम्ब १, हिरण्यकेशी २, मैत्राणि ३, सत्याषाढ ४, बौद्धायनी ५; शुक्लयजुर्वेद याज्ञवल्क्यने रचा तिसकी शाखा काण्व १, माध्यन्दिनी २, कात्यायनी ३, ये तीन हैं; सर्व यजुर्वेदकी शाखा ८; सामवेदकी शाखा कौथुमी १, राणायणी २, गोभील ३, ये तीन हैं. अथर्ववेदकी शाखा पिप्पलाद १, शौनकी २, ये दो हैं. इतनी शाखाके ब्राह्मण मालुम होते हैं. परंतु शाखासमान वेदपाठ, इतनेतरके मालुम नहीं होते हैं. माध्यन्दिनी काण्ववत्. अब कौन जाने कि, किस शाखामें, किस वेदपाठमें क्या कथन था? और इस समयमें भी, तैत्तिरीय आरण्यककी भाष्यमें सायणाचार्य लिखते हैं कि, इसमें द्रविडदेशके ब्राह्मणोंके चौसठ (६४) अनुवाकका पाठ है; अंध्रोंके ८०, कितनेक कर्णाटकोंके ७४, और कितनेकके नवाशी, (८९) अनुवाकका पाठ है. परंतु हम अस्सी (८०) पाठवालेका व्याख्यान, पाठांतर सूचनासहित, प्रधानताकरके करेंगे,

तथाच तत्पाठः ॥

“ ॥ तत्र द्रविडानां चतुःषष्ट्यनुवाकपाठः । आंध्राणामशीत्यनुवाकपाठः । कर्णाटकेषु केषांचिच्चतुःसप्ततिपाठः । अपरेषां नवाशीतिपाठः । तत्र वयं पाठांतराणि यथासंभवं सूचयंतोशीतिपाठं प्राधान्येन व्याख्यास्यामः ॥ ”

तथा कलकत्ताके छापेका पुस्तक तैत्तिरीय आरण्यकका जो हमारे पास है, तिसमें लिखा है कि, कितनेही पाठ भाष्यकारने त्यागे हैं, तिनका भाष्य नहीं करा है. और कितनेक पाठोंका भाष्य करा है, वे पाठ मूलपुस्तकमें नहीं हैं.

और तैत्तिरीय ब्राह्मण प्रथमाष्टक प्रथम प्रपाठक प्रथमानुवाकके प्रथम मंत्रके भाष्यमें भी सायणाचार्य लिखते हैं कि “ ॥ वाजसनेयिनश्च विज्ञानमानंदं ब्रह्म—इति ॥ ” परंतु यह श्रुति वाजसनेयसंहितामें मालुम नहीं होती है. इत्यादि अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि, वेदोंमें बहुत गड़बड़ हुई है; और बहुत हिस्से नष्ट हो गए हैं. और शेष रहे

हुएके भी अर्थोंमें, सायणाचार्य शंकराचार्यादिकोंने गडबड कर दीनी हैं।

अन्य एक यह भी प्रमाण है कि, जैनमतके आचार्य श्रीभद्रबाहु-स्वामी, शब्दांभेनिधि महाभाष्यके कर्त्ता श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमण, इत्यादिकोंने तथा आवश्यकवृत्तिकार श्रीहरिभद्रसूरि, श्रीमलयगिरिजीने, जे जे श्रुतियां वेदोंकी लिखी हैं, तथा कल्पलता टीका, विधिकंदली, और उत्तराध्ययनसूत्रके पच्चीसमे अध्ययनमें, जे जे श्रुतियां आरण्यकादिकोंकी लिखी हैं; तिन पूर्वोक्त श्रुतियोंमेंसें कितनीक श्रुतियां, ऋग्वेद, यजुर्वेद, तैत्तिरीयारण्यक, बृहदारण्यक उपनिषदादिकोंमें मिलति हैं; और कितनीक श्रुतियां तिन पुस्तकोंमें नहीं मिलती हैं. इससें भी यही सिद्ध होता है कि, वे मंत्र श्रुतियां व्यवच्छेद होगइ होवेगी, वा ब्राह्मणोंने जानबूझके निकाल दीनी होवेगी, वे सर्व श्रुतियां आगे लिख दिखाते हैं. ॥

१ ॥ विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थायतान्येवानुविनश्य-
ति न प्रेत्य संज्ञास्ति ॥

२ ॥ सवै अयमात्मा ज्ञानमयः ॥

३ ॥ नहवै सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वा
वसंतं प्रियाप्रिये न स्पृशत इति ॥

४ ॥ अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः ॥

५ ॥ अस्तमिते आदित्ये याज्ञवल्क्यः चंद्रमस्यस्तमिते शां-
तेग्नौ शांतायां वाचि किं ज्योतिरेवायं पुरुषः आत्मा
ज्योतिः साम्नाडितीहोवाच ॥

६ ॥ पुरुष एवेदंभिं सर्वं यद्वृतं यच्च भाव्यं उतामृतत्वस्ये-
शानो यदन्नेनातिरोहति यदेजति यन्नेजति यदूरे यदु
अंतिके यदंतरस्य सर्वस्य यदु सर्वस्यास्य बाह्यत इत्यादि ॥

- ७ ॥ ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् । छन्दांसि यस्य
पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥
- ८ ॥ तत्र स सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष
व्योम्नात्मा सुप्रतिष्ठितस्तमक्षरं वेदयतेथ यस्तु स सर्वज्ञः
सर्ववित् सर्वमेवाविवेश ॥
- ९ ॥ एकया पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानवाप्नोति ॥
- १० ॥ प्रथमो यज्ञो योऽग्निष्टोमः योनेनानिष्पान्येन यजते स
गर्त्तमभ्यपतत् ॥
- ११ ॥ द्वादश मासाः संवत्सरोऽग्निरुश्रोऽग्निर्हिमस्य भेषजमि-
त्यादि ॥
- १२ ॥ पुण्यः पुण्येन कर्मणा पापः पापेनेत्यादि ॥
- १३ ॥ सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो
हि शुद्धोऽयं पश्यन्ति धीरा यतयः संयतात्मान इत्यादि ॥
- १४ ॥ स्वप्नोपमं वै सकलमित्येष ब्रह्मविधिरंजसा विज्ञेय
इत्यादि ॥
- १५ ॥ द्यावापृथिवी इत्यादि ॥
- १६ ॥ पृथिवी देवता आपो देवता इत्यादि ॥
- १७ ॥ पुरुषो वै पुरुषत्वमश्रुते पशवः पशुत्वमित्यादि ॥
- १८ ॥ शृगालो वै एष जायते यः सपुत्रीषो दह्यते इत्यादि ॥
- १९ ॥ अग्निष्टोमेन यमराज्यमभिजयत इत्यादि ॥
- २० ॥ स एष विगुणो विभुर्न बध्यते संसरति वा न मुच्यते
मोचयति वा न वा एष बाह्यमाभ्यन्तरं वा वेद इत्यादि ॥
- २१ ॥ स एष यज्ञायुधी यजमानोऽंजसा स्वर्गलोकं गच्छतीत्यादि ॥

- २२ ॥ अपामसोमं अमृता अभूम अगमामज्योतिरविदाम-
देवान् किं नूनमस्मात्तृणवदरातिः किमुधूर्तिरमृतमर्त्यस्ये-
त्यादि ॥
- २३ ॥ को जानाति मायोपमान देवानिन्द्रयमवरुणकुबेरादी-
नित्यादि ॥
- २४ ॥ सोमसूर्यसुरगुरुस्वाराज्यानि जयतीत्यादि ॥
- २५ ॥ इंद्र आगच्छ मेधातिथे मेषवृषणेत्यादि ॥
- २६ ॥ नारको वै एष जायते यः शूद्रान्नमश्नाति इत्यादि ॥
- २७ ॥ न ह वै प्रेत्य नरके नारकाः संति ॥
- २८ ॥ जरामर्थं वा एतत्सर्वं यदग्निहोत्रम् ॥
- २९ ॥ द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च तत्र परं सत्यं ज्ञान-
मनंतं ब्रह्मेति ॥
- ३० ॥ सैषा गुहा दुरवगाहा ॥
- ३१ ॥ मधिरपि न प्रज्ञायत इति ॥
- ३२ ॥ ॐ लोकश्रीप्रतिष्ठान् चतुर्विंशतितीर्थकरान् ऋषभादि-
वर्द्धमानांतान् सिद्धांतान् शरणं प्रपद्यामहे । ॐ पवित्र-
मग्निमुपस्पृशामहे येषां जातं सुप्रजातं येषां धीरं सुधीरं येषां
नम्रं सुनम्रं ब्रह्मसुब्रह्मचारिणं उदितेन मनसा अनुदि-
तेन मनसा देवस्य महर्षयो महर्षिभिर्जहेति याजकस्य
यजंतस्य च सा एषा रक्षा भवतु शांतिर्भवतु तुष्टिर्भवतु
वृद्धिर्भवतु शक्तिर्भवतु स्वस्तिर्भवतु श्रद्धा भवतु निर्व्याजं
भवतु ॥ [यज्ञेषु मूलमंत्र एष इति विधिकंदल्याम्]
- ३३ ॥ जिनप्रमाणांगुलादवीति ॥

३४ ॥ ऋषभं पवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु यज्ञपरमं पवित्रं
श्रुतधरं यज्ञं प्रति प्रधानं ऋतुयजनपशुमिन्द्रमाहवे-
तिस्वाहा ॥

३५ ॥ त्रातारमिन्द्रं ऋषभं वदन्ति अतिचारमिन्द्रं तमरिष्टनेमिं
भवे भवे सुभवं सुपार्श्वमिन्द्रं हवे तु शक्रं अजितं जिनेन्द्रं
तद्वर्द्धमानं पुरुहूतमिन्द्रं स्वाहा ॥

३६ ॥ नमं सुवीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनम् ॥

३७ ॥ उपैति वीरं पुरुषमरुहंतमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात् ॥

३८ ॥ नैन्द्रं तद्वर्द्धमानं स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः
पुरुषा विश्ववेदाः स्वस्ति नस्ताक्ष्योरिष्टनेमिः स्वस्तिनः ॥

[यजुर्वेदे वैश्वदेवऋचौ]

३९ ॥ दधातु दीर्घायुस्त्वायवलायवर्चसे सुप्रजास्त्वाय रक्ष-
रक्षरिष्टनेमिस्वाहा ॥ [बृहदारण्यके]

४० ॥ ऋषभएव भगवान् ब्रह्मा तेन भगवता ब्रह्मणा स्वय-
मेवाचीर्णानि ब्रह्माणि तपसा च प्राप्तः परं पदम् ॥

[आरण्यके]

और भी कइ एसी श्रुतियां जैनाचार्योंने लिखी हैं, जो कितनीक मिलती हैं, और कितनीक नहीं मिलती हैं.

अब जैनाचार्योंने जे जे पाठ पुराणादिके लिखे हैं, तिनमेसें थोडेकसें पाठ लिख दिखाते हैं. इनमेसें भी कितनेक पाठ सांप्रतकालके विद्यमान पुस्तकोंमें मालुम नहीं होते हैं. पुराणोंके पाठ लिखनेका प्रयोजन यह है कि, पुराण भी वेदव्यासजीके बनाये कहे जाते हैं.

१ ॥ नाभिस्तुजनयेत्पुत्रं मरुदेव्यां महाद्युतिं ॥

ऋषभं क्षत्रियज्येष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजं ॥ १ ॥

ऋषभाङ्गरतो जज्ञे वीरपुत्रशताग्रजः ॥

अभिषिच्य भरतं राज्ये महाप्रव्रज्यमाश्रितः ॥ २ ॥

२ ॥ इह हि इक्ष्वाकुकुलवंशोद्भवेन नाभिसुतेन मरुदेव्यानन्दने,
महादेवेन ऋषभेण दशप्रकारो धर्मः स्वयमेवार्चार्णः केवल
ज्ञानलाभाच्च प्रवर्त्तितः ॥ [ब्रह्मांडपुराणे]

३ ॥ युगेयुगे महापुण्या दृश्यते द्वारिका पुरि ॥

अवतीर्णो हरिर्यत्र प्रभासे शशिभूषणं ॥ १ ॥

रेवताद्रौ जिनो नेमिर्युगादिर्विमलाचले ॥

ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥ २ ॥

पद्मासनसमासीनः श्याममूर्तिर्दिगंबरः ॥

नेमिनाथ शिवेत्याख्या नाम चक्रेस्य वामनः ॥ ३ ॥

४ ॥ वामनावतारो हि—“ वामनेन रैवते श्रीनेमिनाथाग्रे बलिबंधन-
सामर्थ्यार्थं तपस्तेपे ॥ ” इतितत्रकथास्ति ॥

५ ॥ ईशो गौरीप्रति—

कलिकाले महाघोरे सर्वकल्मषनाशनः ॥

दर्शनात् स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रदः ॥ १ ॥

उज्जयंतगिरौ रम्ये माघे कृष्णचतुर्दशी ॥

तस्यां जागरणं कृत्वा संजातो निर्मलो हरिः ॥ २ ॥ इत्यादि ॥

[प्रभासपुराणे]

६ ॥ कैलासे पर्वते रम्ये वृषभोयं जिनेश्वरः ॥

चकार स्वावतारं यः सर्वज्ञः सर्वगः शिवः ॥ १ ॥ [शिवपुराणे]

७ ॥ स्कंदपुराणे १८ सहस्रसंख्ये नगरपुराणे अतिप्रसिद्धनगरस्थापना-
दिवक्तव्यताधिकारे भवावताररहस्ये षट्सहस्रैः श्रीऋषभचरित्र समग्रम
स्ति तत्र ॥

स्पृष्ट्वा शत्रुं जयं तीर्थं नत्वा रैवतकाचलम् ॥

स्नात्वा गजपदे कुण्डे पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १ ॥

पंचाशदादौ किल मूलभूमेर्दशोर्द्धभूमेरपि विस्तरोस्य ॥

उच्चत्वमष्टैव तु योजनानि मानं वदंतीह जिनेश्वराद्रेः ॥ २ ॥

सर्वज्ञः सर्वदर्शी च सर्वदेवनमस्कृतः ॥

छत्रत्रयाभिसंयुक्तां पूज्या मूर्तिमसौ वहन् ॥ ३ ॥

आदित्यप्रमुखाः सर्वे बद्धांजलय इदृशं ॥

ध्यायन्ति भावतो नित्यं यदंग्रियुगनरिजं ॥ ४ ॥

परमात्मानमात्मनं लसत्केवलनिर्मलम् ॥

निरंजनं निराकारं ऋषभं तु महाक्रपिम् ॥ ५ ॥ [स्कंदपुराणे]

८ ॥ अष्टषष्टिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत् ॥

आदिनाथस्य देवस्य स्मरणेनापि तद्भवेत् ॥ १ ॥ [नागपुराणे]

इत्यादि अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि, वेदादिशास्त्रोंमें बहुत गड़बड़ हो गई है. तथा इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसे जैनमत वेदसे पहिलेका सिद्ध होता है, वेदमें जैनतीर्थकरादिकोंके लेख होनेसे.

और ब्राह्मणोंके माननेमूजब, तथा इतिहास लिखनेवालोंकी मति-मूजब, श्रीकृष्णवासुदेवजीको हुए पांचसहस्र (५०००) वर्ष माने जाते हैं. तिनके समयमें व्यासजी, वैशंपायन, याज्ञवल्क्यादि, वेदसंहिताके बांधने-वाले, और शुक्लयजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मणादि शास्त्रोंके कर्ता हुए हैं. तिन सर्व ऋषियोंमें मुख्य व्यासजी हैं, तिनोंने वेदांतमतके ब्रह्मसूत्र रचे हैं. तिसके दूसरे अध्यायके दूसरे पादके तेतीसमे सूत्रमें जैनमतकी स्याद्वाद-सत्तभंगीका खंडन लिखा है, सो सूत्र यह है. “नैकस्मिन्नसंभवात् ” इस सूत्रका भाष्यमें शंकरस्वामीने, सत्तभंगीका खंडन लिखा है, सो, आगे लिखेंगे. जब व्यासजीके समयमें जैनमत विद्यमान था, तो फिर व्यास-

स्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, शुक्लयजुर्वेद, शतपथब्राह्मणादिकोंमें जैनमतका नाम नहीं लिखा; ऐसैही अन्यवेदोंके बनानेके समयमें भी वेदोंमें जैनमतका नाम विद्यमान था, तो भी नहीं लिखा. इससे जैनमत, क्या नवीन सिद्ध हो सकता है? कदापि नहीं.

तथा व्यासजीसे पहिलें तो चारों वेदोंकी संहितायोंही नहीं थी, किंतु ऋषियोंपास यजन याजन करनेकी हिंसक श्रुतियां थी; वे श्रुतियां, और ऋग्वेदके दश (१०) मंडल, जिन जिन ऋषियोंने श्रुतियां रचि हैं, और जिन २ ऋषियोंने तिन श्रुतियांके मंडल बांधे हैं, तिनके नाम ऋग्वेदभाष्यमें प्रकट लिखे हैं. तिन प्रार्थना अश्वमेधादि यज्ञवाली सर्व श्रुतियांकी, चार संहिता, व्यासजीने बांधी और तिनके नाम ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, रक्खे. तिन हिंसक श्रुतियोंमें, वा पुस्तकोंमें अहिंसक जैनधर्मके लिखनेका क्या प्रयोजन था? कदापि लिखा होवेगा तो, निंदारूप लिखा होगा. जैसे यज्ञविध्वंसकारक, राक्षस, वेदबाह्य, दैत्य, इत्यादि ।

पूर्वोक्त व्यासजीके कथन करे सूत्रोंसे तो, जैनमत, चारों वेदोंकी संहिता बांधनेसे पहिलें विद्यमान था. क्योंकि, ग्रंथकार जिस मतका खंडन लिखता है, सो मत, तिसके समयमें प्रबल विद्यमान होता है, और ग्रंथकारके मतका विरोधि होता है, तब लिखता है. इससे भी यही सिद्ध होता है कि, जैनधर्म, सर्व मतोंसे पहिला सच्चा मत है.

पूर्वपक्ष:—अनेक व्यासजी हो गए हैं, क्या जाने किस व्यासजीने, किस समयमें येह ब्रह्मसूत्र रचे हैं?

उत्तरपक्ष:—आर्यावर्तके सर्व प्राचीन वैदिकमतवाले तो, जे कृष्ण-महाराजके समयमें कृष्णद्वैपायन बादरायण नामसे प्रसिद्ध थे, तिन व्यासजीकोही ब्रह्मसूत्रोंके कर्त्ता मानते हैं, अन्यको नहीं. और शंकरदिग्विजयमें तो प्रकटपणें वेदव्यासजीकोही ब्रह्मसूत्रोंके कर्त्ता लिखे हैं.

पूर्वपक्ष:—व्याससूत्रोंमें यह सप्तभंगीके खंडनेवाला सूत्र, किसीने पीछेसे दाखल करा है.

उत्तरपक्षः—यह कथन तुम्हारा मिथ्या है. क्योंकि, इस कथनके सच्चे करनेवाला तुम्हारे पास कोई भी प्रमाण नहीं है.

पूर्वपक्षः—‘नैकस्मिन्नसंभवात्’ इस सूत्रके अर्थमें जो शंकरस्वामीने सप्तभंगीका खंडन लिखा है, सो अर्थ, इस सूत्रका नहीं, किंतु अन्य है.

उत्तरपक्षः—वाहजीवाह!! इस कथनसे तो तुमने शंकरस्वामीको अज्ञानी सिद्ध करे कि, जिनोंने अन्यार्थके स्थानमें अन्यार्थ समझा, और लिख दिया. इससे अधिक अन्य अज्ञान क्या होता है? और ऋग्वेदादि चारों वेदोंऊपरी भाष्यकर्ता, सायणमाधवाचार्य, अपने रचे शंकरदिग्विजयमें लिखते हैं कि, शंकरस्वामी, मतोंका खंडन करके, और व्याससूत्रोपरि शारीरक भाष्य रचके, बद्रीनाथ केदारनाथ हिमालयके शृंगोपरि गए. तहां व्यासजी आप आए, और शंकरस्वामीको सम्मति दीनी कि, जो तुमने मेरे रचे सूत्रोपरि भाष्य रचा है, सो मेरे अभिप्रायकेसमान है. तथा यह भी व्यासजीने कहा कि, मेरे इन सूत्रोंऊपर कइ जनोंने भाष्य पीछे रचे, और आगेको कइ जन रचेंगे, परंतु तुमारे भाष्यसदृश कोई भी नहीं. क्योंकि, तुम सर्वज्ञ हो. इत्यादि—इस लेखसे भी, सप्तभंगीका खंडन, व्यासजीनेही करा सिद्ध होता है, इसवास्ते वेदसंहितासे पहिलेही, जैनमत विद्यमान था.

तथा महाभारतके आदिपर्वके तीसरे अध्यायमें यह पाठ है. ॥

“साधयामस्तावदित्युत्काप्रातिष्ठतोत्तंकस्ते कुंडले गृहीत्वा सोपश्यदथ पथिनघ्नं क्षपणकमागच्छंतं मुहुर्मुहुर्दृश्यमानमदृश्यमानं च॥१२६॥”

भावार्थः—इसका यह है कि, उत्तंकनामा विद्यार्थी, उपाध्यायकी स्त्रीके वास्ते कुंडल लेनेको गया; रस्तेमें पौष्यके साथ वार्त्तालाप हुआ, अन्ननिमित्त उत्तंकने पौष्यको अंधा होनेका शाप दिया, पौष्यने बदलेका शाप दिया कि, तू अनपत्य (संतानरहित) होवेगा—अंतमें, हम शापाभावका निश्चय करते हैं. ऐसा कहके, कुंडलोंको लेके, उत्तंक चलता भया. तिस अवसरमें मार्गमें, उत्तंक, बारंवार दृश्यमान अदृश्यमान, ऐसे, नग्न क्षपणकको आता हुआ, देखता भया.

इस लेखसें भी यही सिद्ध होता है कि, जैनमत वेदसंहितासें भी पूर्व विद्यमान था. क्योंकि 'नग्नक्षपणक' इस शब्दका यह अर्थ है—क्षपणक नाम साधुका है, साथमें 'नग्न' इस विशेषणसें जैनमतका साधु सिद्ध होता है. जैनमतमें दो प्रकारके साधु होते हैं, स्थविरकल्पी, और जिनकल्पी. जिनकल्पी आठ प्रकारके होते हैं. जिनमें केइ जिनकल्पी, ऐसे होते हैं, जे, रजोहरण, मुखवास्त्रिकाके बिना, अन्यकोइ वस्त्र नहीं रखते हैं, और प्रायः जंगलमेंही रहते हैं. तथा टीकाकार नीलकण्ठजीने भी, क्षपणकपदका अर्थ, पाषंड भिक्षु करा है.

पूर्वपक्षः—आपने जो नग्न क्षपणक पदका अर्थ, जिनकल्पी साधु, ऐसा करके जैनमतकी सिद्धि वेदव्यासजीसें, और वेदसंहितासें पहिलें करी, सो ठीक नहीं है. क्योंकि, वास्तविकमें वह साधु नहीं था, किंतु पातालभुवननिवासी नागदेवता था. और यही वर्णन, आगले पाठमें लिखा है.

उत्तरपक्षः—आपका कहना सत्य है, परंतु उस नागदेवताने जो नग्न क्षपणकका रूप धारण किया, सो तिस रूपधारी साधुयोंके विद्यमान हुए बिना, कैसे धारण किया ? और नग्न क्षपणक यह शब्द भी कैसे प्रवृत्त हुआ ? तो सिद्ध हुआ कि, जैनमत वेदव्यासजीके समयमें तो विद्यमान थाही, परंतु वेदव्यासजीके, और वेदसंहितासें पहिलें भी, विद्यमान था, उत्तंकके देखनेसें.

तथा महाभारतके शांतिपर्वके २१८ अध्यायमें बौद्धमतका खंडन लिखा है, और जैनमत, बौद्धमतसें प्राचीन है, यह आगे सिद्ध करेंगे. तो इससें भी जैनमत वेदसंहिता, और वेदव्यासजीसें पहिलेंका सिद्ध होता है.

तथा मत्स्यपुराणके २४ अध्यायमें ऐसा पाठ है.

गत्वाथ मोहयामास रजिपुत्रान् बृहस्पतिः ।

जिनधर्मं समास्थाय वेदवाह्यं स वेदवित् ॥

भाषाटीका:—और उन राजिके पुत्रोंको भी बृहस्पतिजीने उनके पास जाकर मोहा, और आज्ञा दी कि, तुम सब जैनधर्मके आश्रय हो जाओ. ऐसा कह कर बृहस्पतिजी भी, वेदसें बाह्य मतको चलाते भये, और वेदसेंरहित वेदत्रयी भी बनाते भये.

अब विचारना चाहिये कि, वेदव्यासजीसें प्रथम जैनमतके होनेमें कुछ भी शंका है? तथा इस पाठसें तो, जैनमत, वेदसंहितासें तो क्या, परंतु वेद श्रुतियोंसें भी, पूर्वका सिद्ध हो गया. क्योंकि, बृहस्पतिजीने राजिके पुत्रोंको कहा कि, तुम जैनधर्मके आश्रय हो जाओ. और वेदकी श्रुतियोंमें बृहस्पतिजीकी स्तुति है, तो सिद्ध हुआ कि, वेदकी श्रुतियोंसें बृहस्पतिजी प्रथम हुए. और, जैनधर्म बृहस्पतिजीसें भी, प्रथम हुआ.

पूर्वपक्ष:—युक्ति प्रमाणोंसें, और स्वमतपरमतके पुस्तकोंसें तो, तुमने जैनमतको प्राचीन सिद्ध करा. परंतु वर्त्तमानमें जो वेदसंहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदादि विद्यमान है, तिनमें भी, कोई ऐसा लेख है जिससें हम जैनमतको प्राचीन माने ?

उत्तरपक्ष:—प्रियवर! लेख तो इनमें भी जैनमतबावतके बहुत मालुम होते हैं, परंतु भाष्यकारोंने कुछ अन्यके अन्यही अर्थ लिख दीए हैं. जैसें दयानंदसरस्वतिस्वामीने वेदोंके स्वकपोलकल्पित अर्थ, अपने वेदभाष्यमें लिखे हैं. तिनमेसें कितनेक पाठ संहिता आरण्यकके लिख दिखाते हैं.

यजुर्वेदसंहिता अध्याय ९ श्रुति ॥ २५ ॥

“॥ वाजस्य नु प्रसव आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः स नेमिराजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्द्धमानो अस्मे स्वाहा ॥”

नुइत्यादिमहीधरकृतभाष्यकी भाषा:—‘नु’ ऐसा विस्मयार्थक अव्यय है, ‘वाजस्य’ अन्नका ‘प्रसवः’ उत्पादक प्रजापति ईश्वर ‘इमा’ इमानि ‘विश्वा’ विश्वानि भुवनानि—सर्वभूतप्राणी सर्वतः सर्वओरसें रहे

हुए, हिरण्यगर्भसें लेके स्तंभ (सरकडे) पर्यंत सर्वको जो उत्पन्न करता हुआ है, 'सनेमि' चिरंतन राजा दीपता हुआ, सर्व स्थानोंमें अपनी इच्छासें जाता है. कैसा नेमि राजा? 'विद्वान्' अपने अधिकारको जानता हुआ, तथा हमारेविषे पुत्रादिसंततिको, और धनपोषको वृद्धि करता हुआ, सनेमि सुहुतमस्तु, तिसको आहूति होवे. ॥

अब इसही श्रुतिके भाष्यमें दयानंदसरस्वतिस्वामी ऐसा अर्थ लिखते हैं. ॥

(वाजस्य) वेदादिशास्त्रोंसें उत्पन्न हुए बोधको (नु) शीघ्र (प्रसवः) जो उत्पन्न करता है सो (आ) सर्वओरसें (बभूव) होवे (इमा) यह (च) (विश्वा) सर्व (भुवनानि) मांडलिकराजायोंके निवास करनेके स्थानक (सर्वतः) (सनेमि) सनातननेमिना धर्मेण धर्मकरके सहित वर्त्तमान जो होवे राज्यमंडल (राजा) वेदोक्त राजगुणोंकरके प्रकाशमान (परि) (याति) प्राप्त होता है (विद्वान्) सकल विद्याका जानकार (प्रजाम्) पालने योग्य (पुष्टिम्) पोषणको (वर्धयमानः) (अस्मे) हमारा (स्वाहा) सत्यनीतिकरके ॥

अब पक्षपातरहित होकर पाठक जनोंको विचार करना चाहिये कि, महीधरजीने इसही अध्यायकी सोलमी श्रुतिमें 'सनेमि' शब्दका अर्थ क्षिप्र करा है, और पच्चीसमी श्रुतिमें 'सनेमि' शब्दका अर्थ निघंटुके प्रमाणसें पुराणनाम तिसका अर्थ चिरंतन राजा करा है. दयानंदसरस्वतिजीने इस 'नेमि' शब्दका अर्थ सनातन धर्म करा है. अब इनमेंसें कौनसा अर्थ सत्य है? और कौनसा मिथ्या है? यह निश्चय, कदापि न होवेगा. क्योंकि, नेमिशब्दकी व्युत्पत्तिसें पूर्वोक्त तीनों अर्थोंमेंसें एक भी, नहीं निकलता है. इसवास्ते वेदोंकी श्रुतियोंके अर्थ, ठीकठीक प्रायः नहीं मालुम होते हैं. सो, प्रायः लिखही आये हैं. विशेषतः इस श्रुतिका अर्थ, जैसा पूर्वे लिखा है, वैसा घटमान भी नहीं लगता है, यथार्थ अभिप्रायके न ज्ञात होनेसें.

पूर्वपक्षः—आपके अभिप्रायमुजब इस श्रुतिका कैसा अर्थ होना चाहिये?

उत्तरपक्षः—हमारे अभिप्रायसुजब तो, इस श्रुतिका अर्थ, श्रीनेमि (२२) बावीसमे तीर्थकरकी स्तुतिकरके तिनको आहुति दीनी है। यथा— (नु) विस्मयार्थमें है (वाजस्य) भावयज्ञस्य—भावयज्ञका * (प्रसवः) उत्पत्तिकारक, जिनकी प्ररूपणासे भावयज्ञ उत्पन्न हुआ है। क्योंकि, जो भावयज्ञ है, सोही पारमार्थिक यज्ञ है। भावयज्ञका स्वरूप ऐसा है।

“॥ अग्निहोत्रमग्निकारिका सा चेह । कर्मधनं समाश्रित्य दृढासद्भावनाहुतिः । कर्मध्यानाग्निना कार्या दीक्षितेनाग्निकारिका ॥१॥”

भावार्थः—कर्मरूप इंधनको आश्रित्य अर्थात् कर्मरूप इंधनकरके दृढ-निश्चलसत् अच्छीभावनारूप आहुति, धर्मध्यानरूप अग्निकरके करणी। ऐसी अग्निकारिका, दीक्षित ब्राह्मणने करणी। इत्यादि भावयज्ञका कथन, आरण्यकमें है।

तथा ॥

इंद्रियाणी पशून् कृत्वा वेदीं कृत्वा तपोमयीम् ॥

अहिंसामाहुतिं कृत्वा आत्मयज्ञं यजाम्यहम् ॥ १ ॥

ध्यानाग्निकुंडजीवस्थे दममारुतदीपिते ॥

असत्कर्मसमितक्षेपे अग्निहोत्रं कुरुत्तमम् ॥ २ ॥

यूपं कृत्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ॥

यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥ ३ ॥

भावार्थः—इंद्रियोंको पशूकरके, तपोमयी वेदीकरके, अहिंसाको आहुतिकरके, आत्मयज्ञको, मैं करता हूं। वास्तविक यज्ञ तो यही है; बाकी, अनाथ पशुकों मारके यज्ञ करना, यह मोक्षार्थी पुरुषोंका काम नहीं है। महाभारतके शांतिपर्वके २६६ अध्यायमें भी, हिंसक

* श्रीमत्हेमचंद्रसूरिने नानार्थद्वितीयकांडमें वाजनाम यज्ञका लिखा है। तथा पंडित भानुदत्तविशारदने शब्दार्थभानुके २८४ पृष्ठोपरि वाजशब्दका अर्थ यज्ञ लिखा है। तथा तारानाथतर्कवाचस्पतिभट्टाचार्यविरचितशब्दस्तोममहानिधिमें भी १०११ पत्रोपरि लिखा है ॥

यज्ञको धूर्तनिर्मित कहा है। ध्यानरूप अग्नि है जिसमें, ऐसे जीवरूपकुंडमें, दमरूप पवनकरके दीपित अग्निमें, असत्कर्मरूप काष्ठके क्षेपन करे हुए, उत्तम अग्निहोत्र कर। यूप करके, पशु-योंको मारके, रुधिरका कर्दम (चिकण्ड) करके, यदि स्वर्गमें जाइए-गमन करिये, तो नरकमें किस कर्मकरके गमन करिये !!! ॥ तथा जैनसिद्धांतमें भावयज्ञका स्वरूप, ऐसा कहा है। यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंको, हरिकेशबलमुनि यज्ञका स्वरूप कहते हैं। हिंसा १, मृषा-वाद २, अदत्तादान ३, मैथुन ४, परिग्रह ५, ये पांचो आश्रवद्वारोंको, पांच संवर, प्राणातिपातविरत्यादिव्रतोंकरके, इस नरभवमें आच्छादन करे-रोके; असंयमजीवितव्यकी इच्छा न करे, देहका ममत्व त्यागे, शुचि महाव्रतोंमें मलीनता न होवे, यह भावयज्ञ है। इसको यतिजन करते हैं।

ब्राह्मण पूछते हैं कि, हे मुने! इस भावयज्ञके करनेके उपकरण कौनसे हैं? यज्ञ करनेका विधि क्या है? भावयज्ञ जो तेरे मतमें है, तिसमें अग्नि कैसा है? अग्निके रहनेका स्थान कौनसा है? शुचः घृतादिप्रक्षेप करनेवाली कडच्छी-चाटुआ कौनसा है? करीषांग कौनसा है? अग्निका उद्दीपक जिसकरके अग्निको संधु खाते हैं, सो क्या है? इंधन कौनसे हैं? जिनोंकरके अग्नि प्रज्वालिये हैं। दुरितके उपशमन करनेका हेतु, ऐसा शांतिपाठ अध्ययनपद्धतिरूप कौनसा है? और हे मुने! तू किस विधिसे आहुतियोंकरके अग्निको तर्पण करता है?

मुनि उत्तर देते हैं ॥

“॥ तवो जोई जीवो जोईठाणं जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ।
कम्मं संजमजोगसंति होमं हुणाभि इसिणं पसथ्यं ॥”

भावार्थः—बाह्य अभ्यंतरभेदभिन्न बारां प्रकारका जो तप है, सो अग्नि है, भावेंधन कर्म दाहक होनेसें। जीव है, सो अग्निके रहनेका स्थान है; तपरूप अग्निका आश्रय जीव होनेसें। मन, वचन, कायारूप तीनों योग जे हैं, वे शुच है; तिन्होंकरकेही, घृतस्थानीय शुभव्यापार होते हैं।

शरीर करीषांग है, तिसकरकेही तपरूप अग्निको दीपन करिये हैं, तद्भावभावित होनेसें तिसको. ज्ञानावरणीयादि आठ कर्म, इंधन है, तिस कर्मकोही तप करके भस्मीभाव करनेसें. जे संयम योग हैं, संयमके व्यापार हैं, वेही शांतिपाठ अध्ययनपद्धतिरूप हैं, सर्व प्राणियोंके विघ्नोंको दूर करनेवाले होनेसें. जीवहिंसाराहित होनेसें, जो होम, सर्वऋषियोंको प्रशस्त है, तिस होमकरके तपरूप अग्निको, मैं तर्पण करता हूं. यह भावयज्ञ अरिहंतके उपदेशसेंही प्रकट हुआ है, अन्यसें नहीं. यह आश्चर्य है. । (इमा) इमानि (विश्वा) विश्वानि सर्वाणि (भुवनानि) भूतानि और जो इन सर्वभूतजीवोंको (सर्वतः) सर्वओरसें (आवभूव) यथार्थस्वरूप कथन करनेसें प्रकट करता हुआ (सनेमि) सो नेमि बावीसमा जिनतीर्थकर * (राजा) अपने घातिकर्मचारके नष्ट करनेसें, और केवलज्ञानादि शुद्ध स्वरूपसें दीपता हुआ (परियाति) सर्वओरसें अप्रतिबद्ध विहारी होके जाता है—देशोमें विचरता है. कैसा है नेमि (विद्वान्) सर्वज्ञ है, मेरे कथन करे धर्मका यह रहस्य है, और इस हेतुसें मैंने जगतको उपदेश करना है, ऐसे अपने अधिकारको जानता है. तथा (प्रजां—पोषं—वर्धयमानः) प्रकर्षेण जायंते कर्मवशवर्तिनः प्राणिनोऽस्मिन् जगति इति प्रजा जीवसंघात इत्यर्थः तिसकी दयाके उपदेशसें, और धर्मकी पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला (अस्मे) अस्मै नेमये—इस नेमिको हुत होवे अर्थात् आहुति होवे । इति ॥

तथा तैत्तिरीय आरण्यकके प्रथम प्रपाठकके प्रथमानुवाककी आदिमें शांतिकेवास्ते भंगलाचरण करा है, तिसमें ऐसा पाठ है । 'स्वस्तिनस्ताक्षर्योऽरिष्टनेमिः ।' इसका भाष्यकारने ऐसा अर्थ करा है. । अरिष्टम् अहिंसा तिसको नेमीस्थानीयः नेमिसमान, जैसें लोहमयी नेमि काष्ठमय चक्रके भंगाभावकेवास्ते होती है, अर्थात् चक्रकी रक्षा करती है; ऐसेंही यह ताक्षर्यः—गरुड भी सर्पादिकोंकी करी हुई हिंसाको निवारण करके, तिस-

* नमिर्नेमिः पार्श्वो वीरः इति श्रीमद्भेमचंद्रविरचितायामभिधानचिंतामणिनाममालायाम् ॥ तथा शब्दार्थमानुके १९९ पत्रोपरि । नेमिः (पु.) जिनविशेष, एक जिनका नाम ॥

का पालक होनेसें, अरिष्टनेमि है। ऐसा गरुड हमको कल्याण निरुपद्रव करो। यह भाष्यकी व्याख्या, असमंजस मालुम होती है। क्योंकि, प्रथम तो, गरुड पक्षी, तिर्यचजाति है; सो कल्याण, शांति, निरुपद्रव, कैसें कर सकता है?

पूर्वपक्षः—गरुड विष्णुका वाहन है, इसवास्ते बड़ा सामर्थ्यवाला है; सो कल्याण शांति कर सकता है।

उत्तरपक्षः—तब तो वाहनकी स्तुतिसें विष्णुकीही स्तुति करनी उचित थी। क्योंकि, वो तो, कदापि सर्व सामर्थ्यवाला होनेसें कल्याण शांति कर सकता है, परंतु पक्षी नहीं। तथा अरिष्टनेमिरूप विशेषण रखके जो अर्थ चक्रकी नेमिका करा है, सो भी, अघटितही मालुम होता है। क्योंकि, विष्णुआदि अनेक पुरुष रक्षक माने हैं, तिन सर्वको छोड़के उपमामें लोहमय नेमिको जा पकड़ा ! जैसें कोई कहें कि, सुवर्ण कैसा पीत है, जैसा सरसव शणका पुष्प तैसा है। यह तो उपमा ठीक है। परंतु जो कोई कहे कि, सुवर्ण ऐसा पीत है, जैसा निःकेवल स्तनपान करनेवाले बालकका पुरीष पीत होता है, यह उपमा अघटित है। ऐसाही चक्रकी नेमिका विशेषण है; इसवास्ते यह सत्यार्थ नहीं मालुम होता है।

पूर्वपक्षः—आप इसका अर्थ कैसें कर सकते हैं ?

उत्तरपक्षः—अरिष्टनेमिः यह विशेष्य है, और ताक्ष्यः यह विशेषण है; कहीं कहीं विशेष्य, विशेषण, आगे पीछे भी होते हैं। तब तो, ताक्ष्यःसमान अरिष्टनेमि, हमको कल्याण—शांति करो। तहां अरिष्टनेमिपदका यह अर्थ है। 'धर्मचक्रस्य नेमिवन्नेमिः।' धर्मरूप चक्रकी नेमिसमान, जैसें नेमि चक्रकी रक्षा करे हैं—विगडने नहीं देवे हैं, तैसेंही भगवान् बावीसमे—धर्म अरिष्ट अहिंसा निरुपद्रवरूप तिसके पालनेवास्ते नेमिसमान, सो कहिये अरिष्टनेमिः; सो अरिष्टनेमि, ताक्ष्यो—गरुडसमान है। जहां जहां गरुड संचार करता है, तहां तहां सर्पादिकोंके विषादि उपद्रवोंका नाश होता है, तैसेंही अरिष्टनेमि बावीसमा अरिहंत विचरता है, तहां इति

उपद्रवादि नाश हो जाते हैं; इसवास्ते तार्क्ष्य अरिष्टनेमि भगवान् हमको कल्याण-शांति करो. । इति ।

दूसरा अर्थ रिष्टनाम पाप उपद्रवका है, तिसके काटनेवास्ते नेमि चक्रकी धारासामान, सो कहिये रिष्टनेमि; अकार, रिष्टशब्द अमंगलवाचक होनेसे लगाया है. । यथा अपच्छिमा मारणंतिसंलेहणा । तथा तित्थयराणं अपच्छिमो इत्यादिवत् । शेषार्थ पूर्ववत् जानना ॥ येह दोनों अर्थ सम्यक् प्रकारसे घट सकते हैं. इसतरैकी अनेक श्रुतियां सामवेदादि संहिताओंमें हैं, तहां भी, इसी रीतिसें अर्थोंकी घटना करलेनी ।

पूर्वपक्षः—अन्य सर्व तीर्थकरोंको छोड़के, 'श्रीनेमि' और 'अरिष्टनेमि' इन दोनों नामोंसें बावीसमे अर्हन् अरिष्टनेमिकी स्तुति वेदमें करनेका क्या प्रयोजन है ?

उत्तरपक्षः—जिस समयमें वेदोंकी संहिता बांधी गई थी, शुक्ल यजुर्वेद और यजुर्वेदके ब्राह्मण, आरण्यक, रचे गये थे, तिस समयमें श्री अरिष्टनेमि २२ मे अरिहंत विद्यमान थे. और श्रीकृष्ण वासुदेवके ताए समुद्र-विजयके पुत्र थे. तिनोंने संसार त्यागके दीक्षा लेके, केवलज्ञान उत्पन्न करके, धर्मतीर्थ प्रवर्तन करा. और श्रीकृष्ण वासुदेवजीने जिनकी भक्ति और मुनियोंको वंदना करनेसें तीर्थकर गोत्र उपार्जन करा, जिसके प्रभावसें आगामि उत्सर्पिणीकालमें अमम नामा अरिहंत होके निर्वाणपदको प्राप्त होवेंगे. ऐसे अरिष्टनेमि भगवान्की तिन वेदोंमें स्तुति करनी असंभव नहीं है.

तथा तैत्तिरीय आरण्यक प्र० ४, अ० ५, मंत्र १७ मेंमें प्रकटकरके अरिहंतकी स्तुति करी है.

यथा ॥

अर्हन् विभर्षि सायकानिधन्व अर्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपं ।

अर्हन्निदं दयसे विश्वमव्भुवं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥

व्याख्या:-हे अर्हन् ! हे रुद्र ! रोदयत्यसुरावतारभूतान् नृपान् वैदिक-यज्ञादिकर्म्मनुष्ठानभ्रंसनेनेति रुद्रः । सो हे रुद्र ! तुम (अर्हन्) योग्यतासें विमोहनात्मक शास्त्ररूपी (सायकान्) बाणोंको (विभर्षि) धारण करते हो तथा (धन्व) अर्थात् पुरुषार्थरूप धनुषको भी धारण करते हो और (हे अर्हन्) अपनी योग्यताहीसें (यजतं) अर्थात् पूजाके साधन (विश्व-रूपम्) नानाप्रकारके मंत्रयंत्रादि धारण करते हो तथा (निष्कम्) नानाप्रकारके स्वर्णमय भूषणोंको (विभर्षि) धारण करते हो और तैसैंही (विश्वम् अब्रुवम्) संपूर्ण जल और पृथिवीमें जो जीतने जीव हैं तिनको (दयसे-मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि) इत्यादि वेदवाक्यानुकूल दयाकरके पालन करते हो इसीकारणसें (हे रुद्र) (त्वत्) तुम्हारे समान (ओजीयो) बलवान् (नवै अस्ति) कोई नहीं है, इससें आप हमारी भी रक्षा कीजिये-यहां जो कोई यह शंका करे कि मंत्रमें तो (अर्हन् विभर्षि सायकानिधन्व) इससें मोहनादि शास्त्रोंका धारण नहीं पाया जाता (सायक) पदसें तो बाणोंकाही धारण पाया जाता है सो कहना ठीक नहीं. क्योंकि, बुद्ध अर्हन्मतानुयायी आजकल भी बड़े यत्नसें जीवरक्षा करते हैं, तो फिर, उनमें धनुषबाणका धारण करना कैसें घट सकता है? कदापि नहीं. इससें यह जानना चाहिये कि, फिर जो इनको सायक और धनुषका धारण लिखा है, सो केवल प्रशंसार्थक है, वास्तवमें नहीं. सो इसी आरण्यकके प्र० ५, अनु० ४ में लिखा है ।

यथा ॥

“॥ अर्हन् विभर्षिसायकानिधन्वेत्याह स्तौत्येवैनमेतत् ॥”

यह अर्हन् भगवान्में जो (विभर्षिसायकानिधन्व) यह लिखा है, सो (स्तौत्येवैनमेतत्) यह केवल स्तुतिमात्रही है, वास्तवमें नहीं. इससें विमोहनात्मक शास्त्रास्त्रोंका धारण अर्थ करनाही उचित है, अन्य नहीं. इति ॥ इस मंत्रमें रुद्र, शिव, महावीर (हनुमान्), आदि किसीका भी अर्थ नहीं घट सकता है. क्योंकि, वे तो, सर्व शस्त्रधारीही है, और इस मंत्रमें तो, जो शस्त्रधारी नहीं है, तिसको शस्त्रधारी कहा है; जिसका

शंकासमाधान लिख आए हैं. तथा तैत्तिरीय आरण्यकके १० मे प्रपाठकके अनुवाक ६३ में सायनाचार्य लिखते हैं. ।

यथा ॥

“ ॥ कंथाकौपीनोत्तरासंगादीनां त्यागिनो यथाजातरूपधरा निर्ग्रंथा निष्परिग्रहाः ॥ ” इति संवर्तश्रुतिः ॥

भावार्थः—शीतनिवारणकंथा, कौपीन, उत्तरासंगादिकोंके त्यागि, और यथा जातरूपके धारण करनेवाले, जे हैं, वे, निर्ग्रंथ, और निष्परिग्रह, अर्थात् ममत्वकरके रहित होते हैं. यह लक्षण उत्कृष्ट जिनकल्पिका है. क्योंकि निर्ग्रंथ जो शब्द है, सो जैनमतके शास्त्रोंमेंहि साधुपदका बोधक है, अन्यत्र नहीं. और अंग्रेज लोकोंने भी, यह सिद्ध करा है कि, ‘निर्ग्रंथ’ शब्द जैनमतके साधुओंकाही वाचक है. बौद्धलोकोंके शास्त्रमें भी ‘निग्गंथनातपुत्त’ अर्थात् निर्ग्रंथज्ञातपुत्र इस नामसे जैनमतके २४ मे वर्द्धमान महावीरस्वामिको कथन करे हैं. और जैनमतके शास्त्रमें तो, ठिकाने २ ‘नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा—कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा—निग्गंथाण महेसीणि’—इत्यादि पाठ आवे हैं. तथा प्रायः करके पूर्वकालमें जैनमतके साधुओंको निर्ग्रंथही कहते थे, और सुधर्मास्वामी, जो श्रीमहावीरस्वामीके पांचमे गणधर हुए, उनोंकी शिष्यपरंपरामें जे साधु हुए, वे कितनेक कालपर्यंत निर्ग्रंथगच्छके साधु कहाते थे; पीछे कारण प्राप्त होकर तिस निर्ग्रंथगच्छका और नाम प्रसिद्ध हुआ, यावत् अद्यतन कालमें तपगच्छादि गच्छोंके नामसे कहे जातै हैं. तथा सिद्धांतसारमें मणिलाल नभुभाइ द्विवेदी भी लिखते हैं कि, ब्राह्मणोंके प्राचीन ग्रंथोंमें ‘जैन’ ऐसा नाम नहीं आता है; परंतु, विवसन, निर्ग्रंथ, दिगंबर, ऐसा नाम बारंवार आता है. इससे भी निर्ग्रंथशब्द, जैनमतानुयायी सिद्ध होता है. तब तो सिद्ध हुआ कि, जैनमत, श्रुतिस्मृतिसें भी प्राचीन है. तथा पूर्वोक्त हमारा लेख, “क्या जाने, कौनसी शाखामें क्या लिखा है?” इत्यादि सत्य हुआ. तबतो, कोइ भी कहनेको सामर्थ्य नहीं है कि, जैनमत नूतन है, वा जैनमतका वेदादिकोंमें नाम भी नहीं है.

पूर्वपक्षः—कितनेक सुज्ञजन कहते और लिखते हैं कि, जैनमतवालोंके, जे जे, वेदबाबत लेख हैं, वे सर्व, द्वेषबुद्धिपूर्वक मालुम होते हैं, सो कैसे हैं ?

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर ! जो जो वेदोंमें निवृत्तिमार्गका कथन है, सो सर्व जैनमतवालोंको सम्मत है. क्योंकि, जो जो युक्तिप्रमाणसे सिद्ध, संसारसे निवृत्तिजनक, और वैराग्यउत्पादक वाक्य, वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक, स्मृति, पुराणदिकोंमें हैं, वे सर्व सर्वज्ञ भगवान्के वचन हैं. इस कथनमें श्रीसिद्धसेनदिवाकर, और श्रीभोजराजाका पंडित श्रीधनपालजी लिखते हैं ।

यथा ॥

सुनिश्चितं नः परतंत्रयुक्तिषु स्फुरन्ति याः कश्चन सूक्तिसंपदः ॥

तवैव ताः पूर्वमहार्णवोत्थिता जगत्प्रमाणं जिनवाक्यविप्रुषः ॥१॥

उदधाविव सर्वसिंधवः समुदीरणास्त्वयि नाथ दृष्टयः ॥

न च तासु भवान् दृश्यते प्रविभक्तसरित्स्विवोदधिः ॥ २ ॥

पावन्ति जसं असमंजसावि वयणेहिं जेहिं परसमया ॥

तुहसमयमहोअहिणो ते मंदा बिंदुनिस्संदा ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे नाथ ! हमने यह निश्चित किया है कि, परतंत्रयुक्तियोंमें अर्थात् परमतके शास्त्रोंमें जे केई सूक्तिसंपदा, श्रेष्ठ वचन रचना हैं, वे सर्व, हे जिन ! तुमारेहि चतुर्दशपूर्वरूप महासमुद्रसें ऊठे हुए, वाक्यबिंदु हैं. । तथा हे नाथ ! जैसें समुद्रमें सर्व नदीयें प्रवेश करती हैं, तैसें तुमारेविषे सर्व दृष्टियें प्रवेश करती हैं, परंतु तिन दृष्टियोंकेविषे आप नहीं दीखते हो. जैसें पृथक् २ हुई नदीयोंकेविषे समुद्र नही दीखता है. अर्थात् समुद्रमें सर्व नदीयें समा सकती हैं, परंतु समुद्र किसी भी एक नदीमें नहीं समा सक्ता है; ऐसेंही सर्व मत नदीयेंसमान है, वे सर्व तो, स्याद्वादसमुद्ररूप तेरे मतमें समा सक्ते हैं; परंतु हे नाथ ! तेरा स्याद्वादसमुद्ररूप मत, किसी मतमें भी संपूर्ण नहीं समा सक्ता है. । हे नाथ ! असमंजस भी जे परसमय, जैनमतके विना अन्यमतके शास्त्र, जगत्में जिन

वचनोंसें यशको प्राप्त करे हैं, वे सर्व वचन, तुमारे स्याद्वादसिद्धांतरूप समुद्रके मंद थोड़ेसें बिंदुनिस्संद बिंदुओंसें झरे हुए पाणीसदृश है; अर्थात् वे सर्व वचन स्याद्वादरूप महोदधिके बिंदु उडके गए हैं. ॥ इस-वास्ते पूर्वोक्त वेदादिवचन जैनोंको सर्व प्रमाण हैं; परंतु जे हिंसक, और अप्रमाणिक वचन हैं, वे सर्व, जैनोंको सम्मत नहीं हैं, असर्वज्ञ मूलक होनेसें. ।

यथा मनुस्मृतौ पंचमाध्याये ॥

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥

यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे बधोऽवधः ॥ ३९ ॥

मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि ॥

अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥ ४१ ॥

एष्वर्थेषु पशून् हिंसन् वेदतत्त्वार्थविद् द्विजः ॥

आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥ ४२ ॥

या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे ॥

अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्वर्भौ ॥ ४४ ॥

भावार्थः—स्वयंभु परमात्माने आप यज्ञकेवास्ते पशुओंको उत्पन्न करे हैं, सर्व यज्ञकी भूतिकेवास्ते, तिसवास्ते, यज्ञमें जो बध है, सो, अबध है, अर्थात् बध नहीं है. । ३९ । मधुपर्कमें, यज्ञमें, पितृकर्ममें, दैवतकर्ममें, इनमेंही पशुओंको मारने; अन्यत्र नहीं. ऐसें मनुजी कहते हैं. । ४१ । इन पूर्वोक्त कार्योंमें पशुओंको मारता हुआ, वेदतत्त्वार्थका जानकार ब्राह्मण, आत्माको, और पशुको, उत्तम गतिमें प्राप्त करता है. । ४२ । जो वेद-कथित हिंसा इस चराचर जगत्में नियत करी है, तिसको अहिंसाही जानो. क्योंकि, वेदसेंही धर्म दीपता है. । ४४ । इत्यादि हिंसक श्रुति-यांऊपरही जैनोंका आक्षेपहै; इन आक्षेप वचनोंकोही, कितनेक वैदिक-मतवाले द्वेषयुक्त वचन कहते हैं. क्योंकि, उनको वैदिकमतके पक्ष-पातसें यथार्थ वचन भी, द्वेषयुक्त मालुम होते हैं. परंतु पक्षपात छोडके

विचार करे तो सर्व सत्य २ वचन प्रतीत होते हैं, योगजीवानंदसरस्वति स्वामीवत्.

पूर्वपक्ष:—ऐसे महात्मा योगजीवानंदसरस्वतिस्वामीजी कौन है ?

उत्तरपक्ष:—संवत् १९४८ आषाढ सुदि १० मीका लिखा, एक पत्र, गुजरांवाले होके हमारे पास माझापट्टीमें पहुंचा. तिस पत्रको वांचके हमने तिस लिखनेवाले निःपक्षपाती और सत्यके ग्रहण करनेवाले, महात्माकी बुद्धिको, कोटिशः धन्यवाद दीया, और तिसके जन्मको सफल माना. सो असलीपत्र तो, हमारे पास है; तिसकी नकल, अक्षर २, हम यहां भव्यजन पाठकोंके वाचनेवास्ते दाखिल करते हैं. ॥

“॥ स्वस्ति श्रीमज्जैनैन्द्रचरणकमलमधुपायितमनस्क श्रीलश्रीयुक्तपरिव्राजकाचार्य परमधर्मप्रतिपालक श्रीआत्मारामजी तपगच्छीय श्रीन्मुनिराज । बुद्धिविजयशिष्यश्रीमुखजीको परिव्राजकयोगजीवानंदस्वामीपरमहंसका प्रदक्षिणत्रयपूर्वक क्षमाप्रार्थनमेतत् ॥ भगवन् व्याकरणादि नानाशास्त्रोंके अध्ययनाध्यापनद्वारा वेदमत गलेमें बांध मैं अनेक राजा प्रजाके सभाविजय करे देखा व्यर्थ मगज मारना है । इतनाही फल साधनांश होता है कि राजेलोग जानते समझते हैं फलाना पुरुष बड़ा भारी विद्वान् है परंतु आत्माको क्या लाभ हो सकता देखा तो कुछ भी नहीं । आज प्रसंगवस रेलगाडीसें उतरके बठिंडा राधाकृष्णमंदिरमें बहुत दूरसें आनके डेरा कीया था सो एक जैनशिष्यके हाथ दो पुस्तक देखे तो जो लोग (दो चार अच्छे विद्वान् जो मुझसे मिलने आये) थे कहने लगे कि ये नास्तिक (जैन)ग्रंथ है इसे नही देखना चाहिये अंत उनका मूर्खपणा उनके गले उतारके निरपेक्ष बुद्धिके द्वारा विचारपूर्वक जो देखा तो वो लेख इतना सत्य वो निष्पक्षपाती लेख मुझे देख पडा कि मानो एक जगत् छोडके दूसरे जगत्में आन खडे हो गये ओ आबाल्यकाल आज ७० वर्षसें जो कुछ अध्ययन करा वो वैदिक धर्म बांधे फिरा सो व्यर्थसा मालूम होने लगा जैनतत्त्वादर्श वो अज्ञानतिमिरभास्कर इन दोनों ग्रंथोंको तमामरात्रिदिव मनन करता बैठा वो ग्रंथकारकी प्रशंसा बखानता बठिंडेमें बैठा हूं । सेतुबंधरामेश्वर-

यात्रासे अब मैं नैपालदेश चला हूँ परंतु अब मेरी ऐसी असामान्य महती इच्छा मुझे सताय रही है कि किसी प्रकारसे भी एकवार आपका मेरा समागम वो परस्परसंदर्शन हो जावे तो मैं कृतकर्मा होजाऊँ ॥ महात्मन् हम संन्यासी है । आजतक जो पांडित्यकीर्तिलाभद्वारा जो सभाविजयी होके राजा महाराजोंमें ख्यातिप्रतिपत्ति कमायके एकनाम पंडिताईका हांसल करा है । आज हम यदि एकदम आपसे मिले तो वो कमायी कीर्ति जाती रहेगी ये हम खूब समझते वो जानते है परंतु हठधर्म भी शुभ परिणाम शुभ आत्माका धर्म नहीं । आज मैं आपके पास इतनामात्र स्वीकार कर सकता हूँ कि प्राचीन धर्म परम धर्म अगर कोई सत्य धर्म रहा हो तो जैनधर्म था जिसकी प्रभा नाश करनेको वैदिक धर्म वो षट् शास्त्र वो ग्रंथकार खड़े भये थे परंतु पक्षपातशून्य होके कोई यदि वैदिक शास्त्रोंपर दृष्टि देवे तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि वैदिक बातें कही वो लीई गई सो सब जैनशास्त्रोंसे नमूना इकठी करी है । इसमें संदेह नहीं कितनीक बातें ऐसी है कि जो प्रत्यक्ष विचार करेविना सिद्ध नहीं होती हैं । संवत् १९४८ मिति आषाढ सुदि १० ॥

पुनर्निवेदन यह है कि यदि आपकी कृपापत्री पाई तो एकदफा मिलनेका उद्यम करूंगा । इति योगानंदस्वामी । किंवा योगजीवानंदस्वस्वतिस्वामि ॥

मालाबंधश्लोकोयथा ॥

योगाभोगानुगामी द्विजभजनजनिः शारदारक्तिरक्तो ।

दिग्जेता जेतृजेता मतिनुतिगतिभिः पूजितो जिष्णुजिह्वैः ॥

जीयादायादयात्री खलबलदलनो लोललीलस्वलजः ।

केदारौदास्यदारी विमलमधुमदोदामधामप्रमत्तः ॥ १ ॥

इस श्लोकके सब अर्थ जैनप्रशंसा वो श्रीआत्मारामजीकी विभूतिकी प्रशंसा निकले है, प्रत्येक पुष्पोंके बीचका जो अक्षर है वो तीनवार एक अक्षरको कहना चाहिये ऐसा काव्य दश बीस श्लोक बनायके जरूर

॥ ॐ ॥

॥ मालाबंध काव्य ॥

—००:००—

मुनि आत्मारामजीकी स्तुतिका
वर्णन है.

॥ मालाबंध श्लोकोयथा ॥

योगाभोगानुगाभी द्विजभजनजनिः शारदा-
रक्तिरक्तो । दिग्जेता जेतृजेता मतिनुति-
गतिभिः पूजितोजिष्णुजिह्वैः ॥ जीयादा-
यादयात्रीखलबलदलनो लोललीलखलज्जः ।
केदारौदास्यदारी विमलमधुमदोदामधामप्र-
मत्तः ॥ १ ॥

इस श्लोकके ५१ अर्थ है.

—~~~~~—

यह लेख उनका एक कागजके टुकड़ेमें अलग था ॥ यह सर्व लेख पूर्वोक्त महात्माका है ॥ अब विचार करना चाहिये कि, इस कालमें

वैदिकमतवाले जैनमतको द्वेषबुद्धिसँ नास्तिक कहते हैं, और महाविद्वान् परमहंस परिव्राजकजी निःपक्षपाती सद्बुद्धिवाले जैनमतकी बाबत कैसा विचार रखते हैं!! इससँ हे प्रियवरो ! जैनाचार्योंने जो जो वेदबाबत लेख लिखे हैं, वे सर्व यथार्थ तत्त्वके बोधवास्ते लिखे हैं, न तु द्वेषबुद्धिसँ. और द्वेषयुक्त भी, मताग्रही पुरुषोंकोही मालुम होते हैं, नतु पक्षपा-तरहित पुरुषोंको. ॥

पूर्वपक्षः—जैनमतमें प्राचीन व्याकरण तर्कशास्त्र नहीं है, इससँ जैन-मत प्राचीन नहीं है. ऐसे कितनेक कहते हैं तिसका क्या उत्तर है?

उत्तरपक्षः—संप्रतिकालमें जो पाणिनीय अष्टाध्यायी व्याकरण है, तिससँ तो जैनके व्याकरण प्राचीन है. क्योंकि, पाणिनीय व्याकरणके कर्त्ता पाणिनी, नवमे नंदके समयमें हुए हैं. सो पाणिनी, अपने रचे व्याकरणमें कहते हैं, यथा—“ त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य” और शाकटायनके कर्त्ता, तथा न्यासके कर्त्ता, शाकटायन और न्यासकी आदिमें मंगलाचरणमें ऐसँ लिखते हैं.

“ ॥ शाकटायनोपि यपयापनाय यतिग्रामाग्रणीः स्वोपज्ञ-
शब्दानुशासनवृत्तावादौ भगवतः स्तुतिमेवमाह । श्रीवीर-
ममृतं ज्योतिर्नत्वादिसर्ववेदसाम् । अत्र च न्यासकृता व्या-
ख्या । सर्ववेदसां सर्वज्ञानानां स्वपरदर्शनसंबंधिसकलशा-
स्त्रानुगतपरिज्ञानानामादिप्रभवमुत्पत्तिकारणमिति ॥ ”

यह पाठ नंदिसूत्रवृत्तिमें है।

न्यासकी भाषाः—(सर्ववेदसाम्) सर्वप्रकारके ज्ञानोंका स्वपरदर्शन-संबंधी सकलशास्त्रानुगत परिज्ञानोंका (आदिप्रभवम्—प्रथमम्) पहिला उत्पत्तिकारण, ऐसे श्रीवीरं अर्थात् श्रीमहावीरको नमस्कार करके, कैसँ श्रीमहावीरको (अमृतज्योतिम्) ।

इससँ सिद्ध होता है कि, पाणिनीसँ पहिलेके शाकटायन और न्यासकर्त्ता जैनमसी थे. । * तथा जैनैन्द्र व्याकरण और इंद्रव्याकरण, येभी पाणिनीसँ

* प्रसिद्धकर्त्ताकी प्रस्तावना देखो.

पहिले रचे गये हैं. और चतुर्दशपूर्वमें शब्दप्राभृत १, नाट्यप्राभृत २, वाद्य-प्राभृत ३, संगीतप्राभृत ४, स्वरप्राभृत ५, योनिप्राभृत ६, इत्यादि सर्वजगत्की विद्याके प्राभृत थे. तिनमेंसें शब्दप्राभृतमें सर्व शब्दोंके रूपोंकी सिद्धि थी, नाट्यप्राभृतमें सर्व नाटकोंके विधिका कथन था, और प्रमाणनयप्राभृतमें सप्तशतार नयचक्रकी सवालक्ष कारिका थी, तिसकी एक कारिका ऊपरसें श्रीमल्लवादि आचार्यने द्वादशारनयचक्रतुंब नामक तर्कशास्त्र रचा, सो वृत्तिसहित अष्टादश सहस्र (१८०००,) श्लोकसंख्या है. तिसकी प्रथम कारिका यह है. ॥

विधिनिममभंगवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादन्वर्थकमबोधं ।

जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्यम् ॥ १ ॥

तथा सम्मतितर्क मूल १६८, कारिका वृत्तिसहित २५००० श्लोक प्रमाण हैं. यह भी, पूर्वके प्रमाणनयप्राभृतसें उद्धार करके विक्रमादित्य राजाके समयमें वीरात् (वीर-महावीरका संवत्) ४७० वर्षके लगभग श्री सिद्धसेनदिवाकरने रचा है. । तथा शब्दांभोनिधिगंधहस्तिमहाभाष्य १, अनेकांतजय पताका २, धर्मसंग्रहणी ३, शास्त्रवार्त्तासमुच्चय ४, न्यायावतार ५, न्यायप्रवेश ६, सर्वज्ञसिद्धि ७, प्रमाणसमुच्चय ८, तत्त्वार्थ ९, षट्दर्शनसमुच्चय १०, इत्यादि अनेक प्रमाणग्रंथ पूर्वधारीयोंके समयमें रचे गए हैं. । तथा प्रमाणनय तत्त्वालोकालंकारसूत्र तिसकी ८४००० श्लोकप्रमाण स्याद्वादरत्नाकरनामा-वृत्ति १, लघुवृत्ति ५००० श्लोकप्रमाण रत्नाकरावतारिकानामा २, प्रमेयरत्न-कोश ३, लक्ष्मलक्षण ४, खंडनतर्क ५, नयप्रदीप ६, स्याद्वादकल्पलता ७, नयरहस्योपदेश ८, खंडखाद्य ९, स्याद्वादमंजरी १०, प्रमाणमीमांसा ११, प्रमाणसुंदर १२, इत्यादि सैंकड़ो प्रमाणग्रंथ पूर्वोक्त ग्रंथानुयायी रचे गए हैं. । और व्याकरणके ग्रंथ, जैनैन्द्र इंद्रादि व्याकरणानुसारे बुद्धिसागर व्याकरण, और तिसका न्यास श्रीबुद्धिसागरसूरिने रचा है. और विद्या-नंदसूरिने विद्यानंदव्याकरण रचा है, श्रीमलयगिरिजीने शब्दानुशासन-व्याकरण रचा है, और श्रीसिद्धहेमव्याकरण श्रीहेमचंद्रसूरिजीने रचा है. तिसकी बाबत किसी कविने तिस व्याकरणको देखके यह श्लोक कहा है।

वृथा ॥

भ्रातः संवृणु पाणिनिप्रलपितं कातंत्रकंथा वृथा ।

माकार्षीः कटुशाकटायनवचः क्षुद्रेण चांद्रेण किम् ॥

कः कंठाभरणादिभिर्बठरयत्यात्मानमन्यैरपि ।

श्रूयन्ते यदि तावदर्थमधुराः श्रीहेमचंद्रोक्तयः ॥ १ ॥

भावार्थः—हे भाइ ! जबतक अर्थोंकरके मधुर, ऐसी श्रीहेमचंद्रजीकी उक्तियों सुणते हैं, तबतक पाणिनिके प्रलापको बंद कर, कातंत्रको वृथा कंथा (गोदडी) समान जान, कौडे (कटुक) शाकटायनके वचन मत कर अर्थात् उच्चारण न कर, तुच्छ चांद्रकरके क्या है ? कुछ भी नहीं, तथा कंठाभरणादि अन्य व्याकरणोंसे भी कौन पुरुष अपने आत्माको पीडित करे ? कोई भी नहीं. ॥ तथा शिशुपालबन्धके सर्ग २ के श्लोक ११२ में माघकवि, न्यासग्रंथका स्मरण करते हैं; इसवास्ते माघकवि, न्यासके प्रणेता जिनेंद्र, और बुद्धिपाद बुद्धिसागर आचार्योंसे पीछे हुए हैं.

ऐसे माघकाव्यके उपोद्घातके षष्ठ (६) पत्रोपरि जयपुरमहाराजाभित पंडित ब्रजलालजीके पुत्र पंडित दुर्गाप्रसादजीने लिखा है, ।

इस लेखसे भी जैनव्याकरणोंके न्यास अतिचमत्कारी है, और प्राचीन पंडितोंको सम्मत है. नहीं तो, माघसरिखे महाकवि, न्यासका स्मरण किसवास्ते करते ?

पाणिनिकी उत्पत्तिका स्वरूप, सोमदेवभट्टविरचित कथासरित्सागर, तथा तारानाथतर्कवाचस्पतिभट्टाचार्यविरचित कौमुदीकी सरला नाम टीका, और इतिहासतिमिरनाशकके तीसरे खंडके अनुसारसे लिखते हैं.॥—पाटलिपुत्रनगरके नवमे नंदके वखतमें वर्ष उपवर्षनामा पंडित थे, तिनके तीन मुख्य विद्यार्थी थे, वररुचि (कात्यायन), व्याडी इंद्रदत्त, और एक जडबुद्धि पाणिनिनामा छात्र था. सो तहांसे हिमालयपर्वतमें जाके तप करता हुआ, तिसके तपसे तुष्टमान होके किसी शिवनामा देवताने

तिसकी इच्छानुसार नवीन व्याकरण रचनेका वर दीया, तब तिसने व्याकरणकी अष्टाध्यायी रची. और वररुचि आदिकोंको कहने लगा कि, मेरे साथ व्याकरणविषयमें शास्त्रार्थ करो. तब वररुचि आदिकोंने तिस-केसाथ शास्त्रार्थ करके सात दिनमें पाणिनिका पराजय करा; तब तिस-कालमें महादेवने आकाशमें आके हुंकारशब्द करा, तब तिन पंडितोंका इंद्रव्याकरण नष्ट हो गया; तब पाणिनिने तिन सर्वपंडितोंको जीत लीये. तब पीछे वररुचिने हिमालय पर्वतमें जाके, शिवकी आराधनासें वर पाके, तिस अष्टाध्यायीकी न्यूनता पूरणेवास्ते वार्तिक रचा. ॥

इससें सिद्ध हुआ कि, पाणिनि नंदराजाके समय होनेसें श्रीवीरात् १५५ वर्ष पीछे लगभग हुआ. तो, क्या, पाणिनिसें पहिलें पंडितजन व्याकरणसें शून्य थे ? शून्य नहीं थे, किंतु जैनैन्द्र, इंद्र, शाकटायनादि जैनव्याकरण प्रचलित थे, तो फिर, जैनमत व्याकरणशून्य कैसें सिद्ध होवे ? कदापि न होवे. तथा पातंजलिने जो अष्टाध्यायीके ऊपर भाष्य रचा है, सो भी प्रायः जैनैन्द्र इंद्र शाकटायनादिव्याकरणानुसार रचा है.

पूर्वपक्षः—आपने कितनेही प्रमाणोंद्वारा जैनमतको प्राचीन ठहराया सो ठीक है; परंतु 'जैन' शब्द जिनशब्दसें तद्धित होके बनता है, और 'जिन' शब्द 'जि जये' धातुका बनता है, और 'जि' धातु प्राचीन नहीं है. क्योंकि, श्री बाबु शिवप्रसादजी सितारेहिंद अपने रचे इतिहासतिमिरनाश-कके तीसरे खंडके पृष्ठ १७ में लिखते हैं कि, 'जि जय' धातु प्रमाणिक नहीं है. क्योंकि सायन और नृसिंहने अपने रचे उणादि और स्वरमंजरीमें इस धातुको छोड़ दिया है. यह धातु किसी प्रमाणिक ग्रंथमें नहीं मिलता है.

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर ! बाबुसाहबने जो लिखा है, सो, क्या जाने किस अनुभवज्ञानसें लिखा है !! क्या बाबुजी सितारेहिंद वेदोंको प्रमाणिकग्रंथ नहीं मानते हैं ? क्योंकि, यजुर्वेद अध्याय १९ मंत्र ४२। ५७ में जि जयधातुके प्रयोग है. जिसको शंका होवे सो, यजुर्वेद देख लेवे. वेदोंके अप्रमाणिक होनेसें, फिर वो ऐसा वेदोंसें पुराना पुस्तक कौनसा है, जिसने जि जयधातुको अप्रमाणिक जानके छोड़ दिया है ? यह लेख

तो, किसीने जैनमतोपरि द्वेषबुद्धिसँ लिखा मालुम होता है. किसी मत्ताग्रहीको यह सूझा कि, जिस जि जयधातुसँ जिन सिद्ध होता है. तिसधातुकोही उडा दो. इसीतरें द्वेषबुद्धिसँ वेदोंमेंसँ कितनीही ऋचा, मंत्र और शाखायोंको गुम्म करदी हैं. तो विचारा जि जयधातु तो किस गिणतीमें है ?

पूर्वपक्षः—जैनमत वेदमतकी बातें लेकर रचा गया है, ऐसे कितनेक कहते हैं, तिसका क्या उत्तर है ?

उत्तरपक्षः—हे प्रेक्षावानो ! तुमको विचारना चाहिये कि, जेकर जैन-मत वेदकी कितनीक बातें लेकर रचा गया होवे, तब तो जो कथन, जैनमतमें है, सो सर्व वेदोंमें होना चाहिये. परंतु, कर्मकी ८ मूलप्रकृति, और १४८ उत्तरप्रकृतियोंके स्वरूपके कथन करनेवाले षट्कर्मग्रंथ, पंचसंग्रह, कर्मप्रकृति, प्राभृतकी संग्रहणी, प्राचीन पांच कर्मग्रंथ, शतक, षडशीति कर्मग्रंथ, प्रज्ञापना उपांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, आदिमें लगभग अशीतिसहस्र (८००००) श्लोकोंका प्रमाण है. तिनको कथनका गंधभी, चार वेदसंहिता, ब्राह्मण, उपनिषत्, कल्पादिमें नहीं है, और साधुकी पद-विभागसमाचारी, जिसके कथन करनेवाले सवालक्ष (१२५०००) श्लोक लगभग हैं; और जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष, इन पदार्थोंका जैसा स्वरूप, जैन मतके शास्त्रोंमें कथन करा है, तैसा स्वरूप वेदोंमें स्वप्नमें भी कदी नहीं दीख पड़ेगा. इसवास्ते प्रेक्षावानोंको चाहिये कि, वेद और जैनमतके शास्त्र पढ़के तिनका मुकाबला करें और विचारें, तब यथार्थ मालुम हो जावेगा कि, जैनमत वेदमेंसँ रचा गया है, वा, वेदोंमें जे जे अच्छी बातें हैं, वे जैनमतमेंसँ लेके रची गई हैं ? जो पूर्वोक्त ग्रंथोंका मुकाबला करके तत्त्व निश्चय करके धारेगा, तिसका कल्याण होवेगा.

तथा जैनमतके प्राचीन होनेमें एक अन्य भी प्रमाण मिला है सो ऐसे हैं. । श्रीकांतानामा नगरीका रहनेवाला धनेशनामा श्रावक यानपात्रकरके समुद्रमें जाता था; तिनके अधिष्ठायक देवताने तिस जहाजको

स्थंभन कर दीया. तदपीछे धनेशने तिस व्यंतरदेवताकी पूजा करी, तब तिस समुद्रकी भूमिसे तिस व्यंतरके उपदेशसे स्यामवर्णकी तीन प्रतिमा निकाली; तिनमेसे एक प्रतिमा तो चारूपग्राममें तीर्थप्रतिष्ठित करी, अन्य श्रीपत्तनमें आमलीके वृक्षके हैठ प्रासादमें श्रीअरिष्टनेमिकी प्रतिमा प्रतिष्ठित करी, और तीसरी प्रतिमा श्रीपार्श्वनाथकी स्थंभन ग्रामके पास सेढिकानदीके कांटे ऊपर तरुजाल्यांतरभूमिमें स्थापन करी.

पुरा गये कालमें शालिवाहनराजाके राज्यसे पहिले वा लगभग, नागार्जुन विद्यारससिद्धिवाला, बुद्धिका निधान, भूमिमें रहे हुए बिंबके प्रभावसे रसको स्थंभन करता हुआ; तदपीछे तिसने तहां स्थंभनक ग्राम निवेशन करा. । और तिस श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमाके, जो खंभातबंदरमें संप्रतिकालमें विद्यमान है, बिंवासनके पीछेके भागमें ऐसी अक्षरोंकी पंक्ति लिखी हुई परंपरायसे हम सुनते हैं; और यह बात लोकोंमें भी प्रायः प्रसिद्ध है. । सो लेख यह है ॥

नमेस्तीर्थकृतस्तीर्थे वर्षे द्विकचतुष्टये २२२२

आषाडश्रावको गौडोकारयत्प्रतिमात्रयम् ॥ १ ॥

अर्थ:—जैनमतमें ऐसी दंतकथा चलती है कि, गत चौवीसीके सत्ता रमे नमिनामा तीर्थकरके शासन चला पीछे २२२२ इतने वर्ष गए आषाडनामा श्रावक, गौडदेशका वासी, तिसने तीन प्रतिमा बनवाई थीं, तिसमें यह रत्नमयी प्रतिमा भी, तिसनेही बनवाई थी.

जेकर इस चौवीसीके २१ के नमिनाथके शासन चला पीछे २२२२, इतने वर्ष गए बनवाई होवे, तो भी, ५८६६५० वर्षके लगभग व्यतीत हुए हैं.

यह लेखसंबंधि कथन प्रभावकचरित्र, और प्रवचनपरीक्षा, अपरनाग कुमतिमत कौशिक सहस्रकिरणनामक ग्रंथोंमें है. इससे भी सिद्ध होत है कि, जैनमत अतीव प्राचीन है. इत्यलं विद्वज्जनपर्वत्सु ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे

जैनमतप्राचीनतावर्णनो नाम द्वात्रिंशः स्तम्भः ॥ ३२ ॥

॥ अथत्रयस्त्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

बत्तीसमें स्तंभमें जैनमतकी प्राचीनता सिद्ध करी, अब इस तेतीसमें स्तंभमें जैनमत, बौद्धमतसें भिन्न, और प्राचीन है, सो सिद्ध करते हैं ।

पूर्वपक्षः—कितनेक मानते हैं कि, जैनमत बौद्धमतमेंसें निकला है, वा, बौद्धमतकी एक शुद्ध शाखा है; तिसका क्या उत्तर है ?

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर ! इस बातका निश्चय, पाश्चात्य विद्वानोंने अच्छी तरेसें करा है कि, जैनमत, बौद्धमतसें पुराना और अलग मत है. आचारंग सूत्रका तरजुमा जर्मन देशके वासी हरमनजाकोबी विद्वान (Hermann Jacobi) ने करा है, सो पुस्तक प्रोफेसर मेक्समुल्लर भट्टजी (Professor F. Max Müller) ने छपवाया है, तिसकी प्रस्तावनामें अनेक प्रमाणोंसें जैनमतको, बौद्धमतसें प्राचीन और भिन्नमत सिद्ध करा है. तिसमेंसें थोड़ीसी बातें नमूनेमात्र लिख दिखाते हैं.

वे लिखते हैं कि, जैनमतका मूल, और तिसकी वृद्धि, इन दोनों बातोंमें जो कितनेक यूरोपीयन विद्वान् वहेम (शंका) रखते हैं, सो ठीक नहीं. क्योंकि, बडाभारी, और प्राचीन, ऐसा जैन पुस्तकोंका जथा (समूह) हमारे हाथमें आया है; और तिनमेंसें जैनमतके प्राचीन इतिहासके पूरेपूरे साधन, जो कोइ एकट्ठे करनेको चाहे तो तिसको मिल सकते हैं और ये साधन ऐसे भी नहीं हैं कि, जिनके ऊपर अपनेको प्रतीत न आवे. हम जानते हैं कि, जैनोंके पवित्र पुस्तक प्राचीन हैं, और जिन संस्कृतग्रंथोंको तुम हम प्राचीन कहते हैं, तिन ग्रंथोंसें भी येह ग्रंथ अधिक प्राचीन, यूरोपीयन विद्वानोंमें कबूल हुए हैं. इन पुस्तकोंमेंसें बहुते प्राचीन होनेकी बाबतमें उत्तरके बुद्धलोकोंके प्राचीनोंमें प्राचीन पुस्तकोंसें अधिकता करें ऐसे हैं, बुद्धमत और बुद्धमतके इतिहासके साधनोवास्ते उत्तरके बुद्धलोकोंके प्राचीन ग्रंथोंका उपयोग फतेहमंदीसें करमें आया है; तैसेंही जैनीयोंके इतिहासवास्ते प्रमाण करने योग्य मूलतरीके तिनके पवित्र पुस्तकों ऊपर हम तुम किसवास्ते अविश्वास रखते हैं ? तिसका कारण अपनेको कुछ भी मालुम नही होता है.

जेकर जैनग्रंथोंका लेख संपूर्ण विरोधी होवे, अथवा इसमें लिखे संवत् मिति ऊपरसे विरोधि अनुमान होता होवे तो, ऐसे साधनों ऊपर आधार राखनेवाली सर्व कल्पनाओंको शंकासहित माननी अपनेको ठीक है; परंतु फिर बुद्धलोकोंके बलकि उत्तरके बुद्धलोकोंके ग्रंथोंसे इस बाबतमें जैनग्रंथोंका वर्ताव कुछ भी विशेष नहीं मालुम होता है, तब तो किसवास्ते खुद जैनमतके शास्त्रोंकी बातें अनुमानसे माननेमें आतीं हैं? तिससे जैनमतके पुस्तकोंके कथनसे जुदा (अन्यही) समय-काल और मूल जैनमतको अर्पित (आरोप) करनेको इतने सर्व ग्रंथकारोंकी प्रवृत्ति हुई है. इस प्रवृत्तिका प्रकट कारण तो यूरोपीयन पंडितोंको यह मालुम होता है कि, जैन और बुद्धमतमें कितनीक ऊपरऊपरकी व्यवहारिक बातोंका मिलतापणा देखके ऐसा धारण करनेमें आया है कि, जो ये दोनों पंथोंमें इतना मिलतापणा है, तो एकपंथ दूसरेसे स्वतंत्र (अन्य) होना नहीं चाहिये; परंतु एकपंथको अवश्य दूसरे पंथमेंसे निकलना चाहिये. इस आनुमानिक अभिप्रायसे बहुत यूरोपीयन परीक्षकोंकी बुद्धि लुप्त होगई है, अब भी लुप्तही होरही है. ऐसे भूलसे भरे हुए अभिप्रायको असत्य करनेवास्ते, और जैनोके पवित्र पुस्तक जे सत्यता और प्रतिष्ठाके पात्र हैं, तिनकी सत्यता और प्रतिष्ठा स्थापन करनेवास्ते, मैं, अगले पत्रोंमें प्रयत्न करुंगा. जैनसंप्रदायका प्रवर्त्तावनेवाला, अथवा सर्वसे पीछेका तीर्थंकर महावीर (स्वामी), तिस विषयतक हकीकातसे लेके हम अपनी चरचाका प्रारंभ करते हैं—इत्यादि बहुत लेख लिखके पीछे लिखते हैं कि—बुद्ध तहांसे वैशालीमें गया, जहां लच्छवीयोंका अग्रेस्वरी जो निर्ग्रंथोंका (जैनके साधुओंका) श्रावक था, तिसको बुद्धने प्रतिबोध करा—इत्यादि लिखके फेर लिखते हैं कि—बुद्धमतकेही शास्त्रमें लिखा है कि, बुद्धका प्रतिस्पर्द्धि (शत्रु), और जैनसाधु अथवा निर्ग्रंथोंके अग्रेस्वरीतरीके महावीर (स्वामी) को तिनका प्रसिद्ध नाम नातपुत्तकरके लिखा है. इनका गोत्र बुद्धलोकोंने अभिवैशायन लिखा है, सो तिनका लिखना असत्य है. क्योंकि, यह गोत्र तो, इनके मुख्य गणधर सुधर्मा स्वामीके साथ संबंध रखता है, महावीर (स्वामी) के सर्व गणधरमेंसे यह सुधर्मा

स्वामी, एकलेही महावीरस्वामीके पीछे जीते रहे थे; और अपने गुरुके निर्वाणपीछे इनोहीने अग्रेश्वरीपणा धारण करा था.

महावीरस्वामी बुद्धके सहकाली होनेसे, इन दोनोंके एकसदृशही सहकालिक थे, तिनका व्योरा (खुलासा) बिंबीसार, और तिसका पुत्र अभयकुमार, और अजातशत्रु लच्छवी और मल्लि, और मंखलिपुत्र गोशालक, इन पुरुषोंके नाम, दोनों मतोंके पवित्र पुस्तकोंमें हम तुम देखते हैं. अपनेको पीछेसे खबर हुई है, तैसेही बुद्धलोककी पीठिकामें ऐसा मालुम होता है कि, वैशालीमें महावीरस्वामीके भक्त श्रावक बहुत थे. यह बात जैनलोक कहते हैं कि, इस नगरके पासही महावीरस्वामीका जन्म हुआ था, तिसके साथ संपूर्ण, और फिर इस नगरीके मुख्य अधिकारीके साथ महावीरका संबंध था, सो पीठिकाके कथनके साथ अच्छीतरें मिलता आता है; इसके बिना भी पीठिकामें निर्ग्रथोंका मत, जैसे क्रियावाद, (आत्मा नित्य है, तिसको अपने करे कर्मका फल इसलोक परलोकमें भोगना पडता है.) और पाणीमें जीव है, ऐसा मानना बुद्धलोकोंके शास्त्रोंमें लिखा है, सो जैनमतके साथ संपूर्ण मिलता आता है. सबसे पीछे नातपुत्तके निर्वाणका स्थल बुद्धलोक पापापुरमें मानते हैं, सो सच्च है—इत्यादि अनेक बुद्धके, और महावीरके वृत्तांतका परस्परविशेष दिखलाके, बुद्ध पुरुष बौद्धमतके चलानेवाला, और महावीर जैनमतका चलानेवाला, ये दोनों पुरुष अलग अलग थे. और बुद्धके मतसे जैनमत पहिलेंका है, ऐसा सिद्ध करा है. इससे जैनमत बुद्धमतसे नहीं निकला है, और न बुद्धमतकी शाखा है; किंतु बुद्धमतसे पहिलेंका प्राचीन मत है.

तथा “सेक्रेडबुक्स आफ धी इस्ट” के ४५ मे भागतरीके उत्तराध्ययन, और सूत्रकृतांगके भाषांतर करनार प्रोफेसर हरमैन जाकोबी, प्रसिद्ध करनार प्रोफेसर मैक्ष मुल्लर, तिस पुस्तककी भूमिकामें लिखते हैं कि—बौद्धासिद्धांतका लिखान, नातपुत्तके पूर्वे निर्ग्रथोंके अस्तित्वसंबंधी अपने विचारोंसे विरुद्ध नहीं है; क्योंकि, जब बुद्धधर्म सुरु हुआ, तिस वखतमें

निर्ग्रथ एक अगत्यकी कोम होनी चाहिये. इस अनुमानका हेतु यह है कि, बौद्धोंके पिटकोंके बीच वारंवार कथन करनेमें आया है कि, निर्ग्रथ बुद्धके, वा तिसके शिष्योंके विरुद्ध पक्षवाले हैं. अथवा तिनमेंसें कितने-कको बौद्धमतमें लेनेमें आए. तथा निर्ग्रथ एक नवीन स्थापन करी हुई कोम है, ऐसा किसी जगे भी कहनेमें आया नहीं है; और अनुमान भी करनेमें नहीं आया है. तिससें हम तुम निश्चय कर सकते हैं कि, बुद्धके जन्म पहिलें बहुत वखत हुए निर्ग्रथ होने चाहिये. इस निर्णयको दूसरी एक बातका आधार मिलता है. बुद्ध, और महावीरस्वामीके वखतमें हुए मंखलिगोशालेका कहना ऐसा है कि, मनुष्यजातिके छ (६) विभाग हैं. (देखो बौद्धोंका दीर्घनिकायका सामान्यफलसूत्र) इस सूत्रके ऊपर बुद्धघोषने सुमंगलविलासिनी इस नामकी टीका रची है, तिसके अनुसारें मनुष्यजातिके छ विभागमेंसें तीसरे विभागमें निर्ग्रथोंका समावेश करनेमें आया है. निर्ग्रथ, तिसही समयकी नवीन उत्पन्न हुई कोम होती तो, तिनको गोशाला मनुष्यजातिका एक पृथक् जुदा अर्थात् अगत्यका विभाग गिणे, ऐसा संभव नहीं होता है.

मेरे मत (मानने) मूजब जैसें प्राचीन बौद्ध, निर्ग्रथोंको, एक अगत्यकी, और पुरानी कोमतरीके जानते थे, तैसेंही गोशालेने भी निर्ग्रथोंको बहुत अगत्यकी, और पुरानी कोमतरीके जानी हुई होनी चाहिये. इस मेरे मतकी तरफेणमें आखिर दलील यह है कि, बौद्धोंके मज्झिम (मध्यम) निकायके ३५ मे प्रकरणमें बुद्ध, और निर्ग्रथके पुत्र सच्चकके साथ हुई चर्चाकी बात लिखि हुई है. सच्चक आप निर्ग्रथ नहीं है. क्योंकि, वो आप बादमें नातपुत्र (ज्ञातपुत्र महावीर) को हरानेका अभिमान जनाता है. और जिन तत्त्वोंका आप बचाव करता है, वे तत्त्व जैनोंके नहीं हैं. जब एक नामांकितवादी, जिसका पिता निर्ग्रथ था, सो बुद्धके वखतमें हुआ, तब निर्ग्रथोंकी कोम बुद्धकी जिंदगीकी अंदर स्थापनेमें आई होवे. यह बन सकता नहीं है.

तथा पूर्वोक्त पुस्तकमेंही लिखा है कि—उत्तराध्ययनके २३ मे अध्ययनकी १३ मी गाथामें कहा है कि, पार्श्वनाथकी सामाचारीमूजब साधु ऊपरका और नीचेका कपडा पहारते थे; परंतु महावीरस्वामीकी सामाचारीमें कपडेकी मनाइ थी. जैनसूत्रोंमें नग्नसाधुका नाम बारंवार अचेलक लिखा है, जिसका अक्षरार्थ कपडेविनाके ऐसा होता है.

बौद्धलोक अचेलक, और निर्ग्रंथके बीचमें कुछक तफावत रखते हैं. बौद्धोंके धम्मपद (धर्मपद) नामके पुस्तकऊपर बुद्धघोषकी करी हुई टीकामें कितनेक भिक्षुसंबंधि ऐसैं कहनेमें आया है कि, वे, अचेलकसैं निर्ग्रंथोंको विशेष पसंद करते हैं. क्योंकि, अचेलक तदन नग्न होते हैं, (सव्वासोअपटिच्छन्ना) परंतु निर्ग्रंथ एक जातका कपडा नीतिमर्यादाके वास्ते रखते हैं.

कपडा रखनेका कारण बौद्धभिक्षुयोंने यह दिया है कि, नीतिमर्यादा सचवाती है—रहती है. यह कारण खोटा है; बौद्ध अचेलक, अर्थात् मंख-लिगोशालेके और तिसके पहिलें हुए किस संकिच्च तथा नंदवच्छके अनुयायी समझने, ऐसैं जानते हैं. और तिनके मज्झिमनिकायके ३६ मे प्रकरणमें अचेलकोंकी धर्मसंबंधीं क्रियाओंका वर्णन भी लिखा है.

इस ऊपरके लेखसैं यह सिद्ध हुआ कि, निर्ग्रंथमत, अर्थात् जैनमत, बौद्धमतसैं पृथक् भिन्न मत है, और बौद्धमतसैं प्राचीन है.

अब हम प्रोफेसर हरमैन जाकोबीके करे उत्तराध्ययनके २३ मे अध्ययनकी १३ मी गाथाके तरजुमेकी समालोचना करते हैं. । क्योंकि, उन्होंने जो अर्थ करा है, सो अपनी बुद्धीसैं करा है, न तु जैनसंप्रदायानुसार; क्योंकि, जैनमतमें निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीकादिके अनुसार अर्थ करा हुआ मान्य है, नतु स्वबुद्धिउत्प्रेक्षित. जेकर स्वबुद्धिकी कल्पनासैं अर्थ करे जावें, तब तो, अन्यमतोंके शास्त्रोंकीतरें जैनमतके शास्त्रोंके अर्थ भी, नाना पुरुषोंकी नाना कल्पनासैं नाना प्रकारके हो जावेंगे; तब तो असली सर्व सच्चे अर्थ व्यवच्छेद हो जावेंगे; और उत्सूत्रार्थकी प्रवृत्ति होनेसैं जैनमतही नष्ट हो जावेगा.

इसेवास्ते अव्यवच्छिन्नसंप्रदायसें पंचांगी अनुसारही, अर्थ सुज्ञ जनोंको मानना चाहिये, परंतु अन्य प्रकारसें नहीं. *

उपर लिखि गाथाका यथार्थ अर्थ ऐसा है. “अचेलगो य जे धम्मो” इत्यादि—अचेलकश्चाविद्यमानचेलकः । परिजुन्नमप्पमुल्लं इत्यागमान्नजः कुत्सार्थत्वात् कुत्सितचेलको वा यो धर्मो वर्द्धमानेन देशित इत्यपेक्षते । जो इमोत्ति । यश्चायं सांतराणि वर्द्धमानशिष्यवस्त्रापेक्षया कस्यचित् कदाचित् मानवर्णविशेषितानि उत्तराणि च बहुमूल्यतया प्रधानानि वस्त्राणि यस्मिन्नसौ सांतरोत्तरोधर्मः पार्श्वेन देशितः । इतिटीका ।

भाषार्थः—अचेलक कहिये, अविद्यामानचेलक, अर्थात् वस्त्ररहित; अथवा पक्षांतरमें दूसरा अर्थ, परिजीर्ण सर्वथा पुराने वस्त्र, अल्पमोलके, इस आगमके वचनसें नकारको कुत्सार्थवाचक होनेसें कुत्सितवस्त्रवाला जो धर्म, तिसको अचेलक धर्म कहिये; ऐसा अचेलक धर्म, वर्द्धमान महावीर-स्वामीने उपदेश्या है. और यह, जो, सांतर, वर्द्धमानस्वामीके शिष्योंकी अपेक्षासें किसीको किसी वखत मान, वर्ण, विशेषसहित; उत्तर बहुमोल होनेकरके प्रधानवस्त्र है जिसमें, ऐसा सांतरोत्तर धर्म, पार्श्वनाथने उपदेश्या है.

भावार्थः—इसका यह है कि, मुखवस्त्रिका रजोहरण वर्जके पहिरनेके सर्ववस्त्ररहित सर्वोत्कृष्ट जिनकल्पीकी अपेक्षा अचेल धर्म है; और जीर्ण अल्पमोलके वस्त्र रखने यह भी अचेल धर्मही है, परंतु एकांत वस्त्ररहितकाही नाम अचेलधर्म है, ऐसा जैनमतके शास्त्रोंका अभिप्राय नहीं है. क्योंकि, जैनमतके शास्त्रोंमें ठिकाने ठिकाने वस्त्रादि ग्रहण करनेका विधि कथन करा है, यदि अचेल शब्दका अर्थ नग्न ऐसाही जैनमतके शास्त्रोंको सम्मत होवे तो, वस्त्रग्रहणविधि क्यों लिखते हैं ? इसवास्ते अचेल शब्दसें कुत्सित अर्थात् जीर्णप्रायः वस्त्रकाही अर्थ करना उचित है. क्योंकि, नञ् (नकार) को षट् (६) अर्थमें सर्व विद्वानोंने माना है. इसवास्ते यूरोपीयन (पाश्चात्य) पंडित जो स्वकल्पनासें जैनमतादि शास्त्रोंका

* जैसे कल्पसूत्र, आचारांग, उपासकदशांग उपोद्घातादिमें केइ पाश्चात्यविद्वानोंने करे हैं.

तरजुमा करते हैं, सो बड़ी भूल करते हैं; इसवास्ते उनको चाहिये कि टीकाके अनुसारही तरजुमा करें.

अब यहां प्रसंगोपात हम बहुत नम्रतासे दिगंबर जैनमतके मानने वालोंसे विनती करते हैं कि, हे प्रियबांधवो ! तुम भी अपने मतके कदाग्रहको छोडके पक्षपातसे रहित होकर जरा विचार करो कि, जैन-मतकी बड़ी भारी दो शाखायें हो रही हैं; श्वेतांबर १, दिगंबर २, इन दोनोंमेंसे यथार्थ जैनमत कौनसा है ?

दिगंबरः—यह जो श्वेतांबर मत है, सो तो विक्रम राजाके मरे पीछे एकसोछत्तीस (१३६) वर्षपीछे सौराष्ट्रदेशकी वल्लभीनगरीमें उत्पन्न हुआ है. ऐसा कथन हमारे देवसेनाचार्य दर्शनसार ग्रंथमें कर गए हैं.

तथाहि ॥

छत्तीसे वरिससए, विक्रमरायस्स मरणपत्तस्स ॥

सोरठे वलहीए, सेवडसंघो समुप्पण्णो. ॥ ११ ॥

सिरिभद्रबाहुगणिणो, सीसो णामेण संतिआयरिओ ॥

तस्स य सीसो दुट्ठो; जिणचंदो मंदचारित्तो. ॥ १२ ॥

तेण कियं मदमेदं इत्थीणं अत्थि तप्भवे मोरको ॥

केवलाणाणीण पुणो, अट्ठक्खाणं तहा रोओ. ॥ १३ ॥

अंबरसहिओवि जइ, सिज्झइ वीरस्स गप्भचारित्तं ॥

परलिंगेवि य मुत्ती, पासुयभोज्जं च सव्वत्थ ॥ १४ ॥

अण्णं च एवमाई, आगमउट्ठाइ मिच्छसत्थाइ ॥

विरइत्ता अप्पाणं, पडिठवियं पढमए णिरए. ॥ १५ ॥

भाषार्थः—विक्रमराजाके मरण प्राप्त हुएपीछे १३६ वर्षे सौरठदेशमें वल्लभीनगरीमें श्वेतपट श्वेतांबरसंघ उत्पन्न हुआ, श्रीभद्रबाहुगणिका शांतिसूरिनामा शिष्य हुआ, तिसका मंदचारित्रवाला जिनचंद्रनामा दुष्ट शिष्य हुआ, तिसने यह मत उत्पन्न किया. स्त्रीको तिसही भवमें मोक्ष-प्राप्ति १, केवलज्ञानिको आहार तथा रोग २, वस्त्रसहित ऐसा भी यति

सिद्ध होता है ३, वीर भगवानका गर्भपरावर्त्तन ४, परलिंगमें भी मुक्ति ५, प्रासुकभोजन ऊंच नीच सर्व कुलोंका साधुको कल्पे ६, इत्यादि और भी आगमको उत्थापके मिथ्याशास्त्र बनायके अपने आत्माको प्रथम नरकमें स्थापन करा. इति—तथा मुनि वस्त्र रक्खे १, केवली आहार करे २, स्त्रीकी मुक्ति होवे ३, इत्यादि श्वेतांबरमतके माने कितनेही पदार्थोंका खंडन हमारे अकलंक देवविरचित लघुत्रयी वृद्धत्रयीमें, तथा प्रमेयकमलमार्तंड, षट्पाहुडादि अनेक ग्रंथोंमें प्रमाण युक्तिसें करा है, तो फिर हम श्वेतांबरमतको असली सच्चा जैनमत कैसे माने ?

श्वेतांबरः—प्रियवर ! जैसे तुम्हारे देवसेनाचार्य, जो कि विक्रमसंवत् ९९० के लगभगमें हुए हैं, तिनोंने दर्शनसारमें—जो कि विक्रमसंवत् ९९० में बनाया है—श्वेतांबरमतकी उत्पत्ति विक्रमके मृत्युपीछे १३६ वर्ष लिखि है; तैसेही पूर्वोक्त ज्ञानधारी श्वेतांबरीयोंने आवश्यकनिर्युक्ति, भाष्य, चूर्णिमें दिगंबरमतकी उत्पत्ति लिखि है, सो ऐसे हैं.

छव्वाससयाइं नवुत्तराइं तईया सिद्धि गयस्स वीरस्स ॥

तो बोडियाण दिट्ठी, रहवीरपुरे समुप्पण्णा ॥ ९२ ॥

रहवीरपुरं नगरं, दीवगमुज्जाणमज्जकण्हेय ॥

सिवभूईस्सुवहिम्मि, पुच्छा थेराण कहणा य ॥ ९३ ॥

ऊहाएपन्नत्तं, बोडियसिवभूईउत्तराहि इमं ॥

मिच्छादंसणमिणमो, रहवीरपुरे समुप्पण्णं ॥ ९४ ॥

बोडियसिवभूईओ, बोडियलिंगस्स होइ उप्पत्ती ॥

कोडिन्नकोट्टवीरा, परंपराफासमुप्पन्ना ॥ ९५ ॥

भाषार्थः—श्रीमहावीर भगवंतके निर्वाण हुआ पीछे ६०९ वर्षे बोटिकोंके मतकी दृष्टि अर्थात् दिगंबरमतकी श्रद्धा रथवीरपुर नगरमें उत्पन्न हुई । अब जैसे बोटिकोंकी दृष्टि उत्पन्न हुई है तैसे संग्रह-गाथाकरके दिखलाते हैं । रहवीर—रथवीरपुर नगर तहां दीपकनामा उद्धाने तहां कृष्णनामा आचार्य समोसरे, तहां रथवीरपुर नगरमें

एक सहस्रमल्लशिवभूतिनामकरके पुरुष था, तिसकी भार्या तिसकी माताकेसाथ (सासुकेसाथ) लडती थी कि, तेरा पुत्र दिन २ प्रति आधी रात्रिको आता है; मैं, जागती, और भूखी पियासी तबतक बैठी रहती हूं. तब तिसकी माताने अपनी बहुसे कहा कि, आज तू दरवाजा बंद करके सो रहे, और मैं जागुंगी. बहु दरवाजा बंद करके सो गई, माता जागती रही; सो अर्द्धरात्रि गए आया, दरवाजा खोलनेको कहा, तब तिसकी माताने तिरस्कारसे कहा कि, इस वखतमें जहां उघाडे दरवाजे हैं, तहां तू जा. सो वहांसे चल निकला, फिरते फिरते साधुओंका उपाश्रय उघाडे दरवाजेवाला देखा, तिसमें गया. नमस्कार करके कहने लगा, मुझको प्रव्रजा (दीक्षा) देओ. आचार्योंने ना कही, तब आपही लोच करलिया, तब आचार्योंने तिसको जैनमुनिका वेष दे दीया. तहांसे सर्व विहार कर गए. कितनेक कालपीछे फिर तिसी नगरमें आए, राजाने शिवभूतिको रत्नकंबल दीया, तब आचार्योंने कहा, ऐसा वस्त्र यतिको लेना उचित नहीं; तुमने किसवास्ते ऐसा वस्त्र ले लीना? ऐसा कहके तिसको विनाहीपूछे आचार्योंने तिस वस्त्रके टुकड़े करके रजोहरणके निशीथिये कर दीने. तब, सो गुरुओंके साथ कषाय करता हुआ.

एकदा प्रस्तावे गुरुने जिनकल्पका स्वरूप कथन करा, जैसें जिनकल्प साधु दो प्रकारके होते हैं; एक तो पाणिपात्र, और ओढनेके वस्त्रोंरहित होता है; दूसरा पात्रधारी, और वस्त्रोंकरके सहित होता है. जे वस्त्रधारी होता है, सो आठ तरेंका होता है. रजोहरण, मुखवस्त्रिका एवं दो उपकरणधारी । १। दो पीछले और एक पछेवडी (चादर) एवं तीन उपकरणधारी । २। दो पछेवडी होवे तो चार । ३। तीन पछेवडी होवे तो पांच । ४। रजोहरण मुखवस्त्रिका २, पात्र ३ पात्रबंधन ४, पात्रस्थापन ५, पात्रकेसरिका ६, तीन पडले ७, रजस्त्रा ८, गोच्छक ९, एवं नव उपकरणधारी । ५। पूर्वोक्त नव, और एक पछेवडी एवं दश उपकरणधारी । ६। दो पछेवडी और पूर्वोक्त नव, एवं इग्यार उपकरणधारी । ७। तीन पछेवडी और पूर्वोक्त नव, एवं बारा उपकरण

धारी । ८ । एवं सर्व आठ विकल्प होते हैं. पहिला भेद जो पाणिपात्र, और वस्त्ररहित कहा है, सोही आठ विकल्पोंमेंसे प्रथम विकल्पवाला जानना.

जब आचार्योंने जिनकल्पका ऐसा स्वरूप कथन करा, तब शिवभूतिने पूछा कि, किसवास्ते आप अब इतनी उपाधि रखते हों ? जिनकल्प क्यों नहीं धारण करते हो ? तब गुरुने कहा कि, इस कालमें जिनकल्पकी सामाचारी नहीं कर सकते हैं. क्योंकि, जंबूस्वामिके मुक्ति गमनपीछे जिनकल्प व्यवच्छेद हो गया है. तब शिवभूति कहने लगा कि, जिनकल्प व्यवच्छेद हो गया क्यों कहते हो ? मैं करके दिखाता हूं. जिनकल्पही परलोकार्थीको करना चाहिये. तीर्थंकर भी अचेल थे, इसवास्ते अचेलताही अच्छी है. तब गुरुयोंने कहा, देहके सद्भाव हुए भी कषायमूच्छादि किसीको होते हैं, तिसवास्ते देह भी तेरेको त्यागने योग्य है. और जो अपरिग्रहपणा मुनिको सूत्रमें कहा है, सो धर्मोपकरणोंमें भी मूच्छा न करनी; और तीर्थंकर भी एकांत अचेल नहीं थे. क्योंकि, कहा है कि, सर्व तीर्थंकर एक देव दूष्यवस्त्र लेके संसारसे निकले हैं; यह आगमका वचन है. ऐसे स्थविरोंने तिसको कथन करा, यह गाथाका अर्थ हुआ. १९३। ऐसे गुरुयोंने तिसको समझाया भी, तो भी, कर्मोदयकरके वस्त्र छोडके नग्न होके जाता रहा. तिस शिवभूतिकी उत्तरा नामा बहिन जो आर्या हुई थी, उद्यानमें रहे शिवभूतिको वंदना करनेको गई. तिसको नग्न देखके तिसने भी वस्त्र उतार दीने, और नग्न हो गई, और नगरमें भिक्षाको गई, तब गणिकाने देखी, तब विचारा कि, इसका कुत्सिताकार देखके लोक हमारे ऊपर विरक्त न हो जावें, इसवास्ते तिसकी उर: (छाती) ऊपर वस्त्र बांधा. * वो तो वस्त्र नहीं चाहती है; तब शिवभूतिने कहा कि, यह वस्त्र तूं रहने दे, देवताने तुझको यह वस्त्र दीना है, इसवास्ते. । तिस शिवभूतिने दो चेले करे. कौडिन्य १, कोष्टवीर २, इन दोनोंकी शिष्यपरंपरासे कालांतरमें मतकी वृद्धि होगई. ऐसे दिगंबरमत उत्पन्न हुआ.

* किसी जगह ऐसे भी लिखा है कि तिसके ऊपर झरोखेसे एक वस्त्र ऐसे गिरा जिसे उसका नग्नपणा झांका गया.

यह अर्थ मैंने श्रीहरिभद्रसूरिकृत टीकासें लिखा है. ऐसाही अर्थ, मूलभाष्यकारने करा है. विशेषार्थ देखना होवे तो, श्रीजिनभद्राणिक्षमाश्रमणकृतशब्दांभोनिधिगंधहस्तिमहाभाष्य, और तिसकी वृत्तिसें देखना.

तथा दिगंबरीय मूलसंघ नंद्याम्नाय सरस्वातिगच्छ बलात्कारगणकी पट्टावलीमें, और श्रीइंद्रनंदिसिद्धांतीकृत नीतिसारकाव्यमें ऐसें लिखा है ।

यथा ॥

पूर्वं श्रीमूलसंघस्तदनुसितपटः काष्ठसंघस्ततोहि ।

तत्राभूद्वाविडाख्यः पुनरजनि ततो यापुलीसंघ एकः ॥

तस्मिन् श्रीमूलसंघे मुनिजनविमले सेननंदी च संघौ ।

स्यातां सिंहाख्यसंघोभवदुरुमहिमा देवसंघश्चतुर्थः ॥ १ ॥

भाषार्थः—पहिले श्रीमूलसंघविषे प्रथम दूसरा श्वेतपटीगच्छ हुआ । १ । तिसपीछे काष्ठसंघ हुआ । २ । तिस पीछे द्राविडगच्छ हुआ । ३ । तिसके पीछे यापुलीयगच्छ हुआ ॥ ४ ॥ इन गच्छोंके कितनेक कालपीछे श्वेतांबरमत हुआ । ५ । और यापनीय गच्छ । १ । केकिपिच्छ । २ । श्वेत-बास । ३ । निःपिच्छ । ४ । द्राकिड । ५ । येह पांच संघ जैनाभास कहे हैं. जैनसमान चिन्हभास दीखे हैं, सो इन पांचोंने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसारें सिद्धांतोंका व्यभिचार कथन करा है. श्रीजिनेंद्रके मार्गको व्यभिचाररूप करा. यह कथन श्रीइंद्रनंदिसिद्धांतीकृत नीतिसारमें है.

तथाहि श्लोकाः ॥

कियत्यपि ततोतीते काले श्वेतांबरोभवत् १ ॥

द्राविडो २ यापनीयश्च ३ केकिसंघश्च नामतः ॥ १ ॥

केकिपिच्छः १ श्वेतवासाः २ द्राविडो ३ यापुलीयकः ४ ॥

निःपिच्छश्चेति ५ पंचैते जैनभासाः प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥

स्वस्वमत्यानुसारेण सिद्धांतव्यभिचारिणं ॥

विरचय्य जिनेंद्रस्य मार्गं निर्भेदयन्ति ते ॥ ३ ॥

इन तीनों श्लोकोंका भावार्थ ऊपर लिख आए हैं.

तिस मूलसंघमेंही चार संघ उत्पन्न हुए, सेनसंघ । १ । नंदिसंघ । २ । सिंहसंघ । ३ । देवसंघ । ४ । दूसरे भद्रबाहुके शिष्य अर्हद्वलि, तिसके चार शिष्योंने चार संघ स्थापन करे. प्रथम शिष्य माघनंदि, तिसने नंदिवृक्षके नीचे चतुर्मास करा, तिसने नंदिसंघ स्थापन करा । १ । दूसरा शिष्य चंद्र, तिसने तृणके नीचे चतुर्मास करा, तिसने सेनसंघ स्थापन करा । २ । तीसरा कीर्ति, तिसने सिंहकी गुफामें चतुर्मास करा, तिसने सिंहसंघ स्थापन करा । ३ । चौथा भूषण, तिसने देवदत्ता वेद्याके घरमें वर्षायोग धारा सो देवसंघ हुआ । ४ ।

तथा च नीतिसारका श्लोक ॥

अर्हद्वलिगुरुश्रक्त्रे संघसंघट्टनं परं ॥

सिंहसंघो नंदिसंघः सेनसंघो महाप्रभः ॥ १ ॥

देवसंघ इतिस्पष्टं स्थानस्थितिविशेषतः ॥

इसका भावार्थ उपर लिख आए हैं.

अब विचार करना चाहिये कि, पूर्वोक्त लेखमें श्वेतांबरोत्पत्तिका संवत् नहीं लिखा है. तथा इस मूलसंघकी पट्टावलिमें, और नीतिसारमें प्रथम श्वेतपटीगच्छ । १ । पीछे काष्ठसंघ । २ । पीछे द्राविडगच्छ । ३ । पीछे यापुलीयगच्छ । ४ । इन गच्छोंके कितनेक कालपीछे श्वेतांबर मत हुआ, ऐसों लिखा है. यह कथन देवसेनाचार्यकृत दर्शनसारके कथनसें विरोधि है. क्योंकि, दर्शनसारमें प्रथम श्वेतांबर । १ । पीछे यापुलीय । २ । पीछे श्वेतपट । ३ । पीछे द्राविड । ४ । पीछे काष्ठसंघ, ऐसों लिखा है.

तथा च तत्पाठः ॥

छत्तीसे वरीससए विक्रमरायस्स मरणपत्तस्स ॥

सोरट्टे वलहीए सेवडसंघो समुप्पण्णो ॥ ११ ॥

कल्लाणे वरणयरे दुण्णिसए पंच उत्तरे जादो ॥

जाउलियसंघमेओ सिरिकलसादोहु सेवडदो ॥ २९ ॥

पंचसए छव्वीसे विक्रमरायस्स मरणपत्तस्स ॥
 दक्खिणमहुरा जादो दाविडसंघो महामोहो ॥ २८ ॥
 सत्तसये तेवण्णे विक्रमरायस्स मरणपत्तस्स ॥
 णंदियडेवरगामे कट्ठो संघो मुणेयव्वो ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—एकादश (११) गाथाका अर्थ प्रथम लिख आए हैं, दिगंबरके पक्षमें. कल्याणी नगरीमें २०५ वर्षे यापुलीय संघका भेद हुआ, और श्रीकलशसे श्वेतपट हुआ. ॥ २९ ॥ विक्रमराजाके मरण प्राप्त हुए पीछे ५२६ वर्षे दक्षिणमथुरामें महामोहसे द्राविडनामा संघ उत्पन्न हुआ. ॥ २८ ॥ विक्रमराजाके मरण पीछे ७५३ वर्षे नंदियडेवरगाममें काष्ठसंघ उत्पन्न हुआ जानना. ॥ ३८ ॥

इस काष्ठसंघकी मूलसंघकी पट्टावलिमें तथा नीतिसारमें निंदा नहीं लिखि है, परंतु देवसेनने काष्ठसंघकी दर्शनसारमें बहुत निंदा लिखि है।
 तथाहि ॥

सिरिवीरसेणसीसो जिणसेणो सयलसत्थविन्नाणी ॥
 सिरिपउमनंदि पच्छा चउसंघसमुद्धरो धीरो ॥ ३० ॥
 तस्स य सीसो गुणवं गुणभदो दिव्वणाणपरिपुण्णो ॥
 परकव्वसयहमद्दी महातवो भावलिंगो य ॥ ३१ ॥
 तेणप्पणोवि मच्चुं णाऊण मुणिस्स विणयसेणस्स ॥
 सिद्धंते घोसित्ता सयं गयं सग्गलोयस्स ॥ ३२ ॥
 आसी कुमारसेणो णंदियरे विणयसेणमुणिसीसे ॥
 सण्णासभंजणेण य अगहियपुणुदिक्खओ जादो ॥ ३३ ॥
 परिवज्जिऊण पिच्छं चमरं धित्तूण मोहकलिदेण ॥
 उम्मग्गं संकलियं वागडविसएसु सव्वेसु ॥ ३४ ॥
 इत्थीणं पुण दिक्खा खुल्लयलोमस्स वीरचरियत्तं ॥
 कक्कसकेसग्गहणं छट्ठं गुणवृद्धं णाम ॥ ३५ ॥

आयमसत्थपुराणं पायच्छित्तं च अण्णहा किंपि ॥
 विरइत्ता मिच्छत्तं पवत्तियं मूढलोएसु ॥ ३६ ॥
 सो सवणसंघवज्झो कुमारसेणो हु समयमिच्छत्तो ॥
 चत्तोवसमो रुद्धो कट्ठं संघं पवत्तवेदि ॥ ३७ ॥
 सत्तसए तेवण्णे विक्रमरायस्स मरणपत्तस्स ॥
 णंदियडेवरगामे कट्ठो संघोमुणेयवो ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—श्रीवीरसेनका शिष्य सकल शास्त्रका ज्ञाता जिनसेन हुआ, तिसके पीछे चार संघका उच्चार करनेवाला धीर पुरुष श्री पद्मनंदि हुआ, तिसका गुणवान् दिव्यज्ञानपरिपूर्ण परकाव्यको मर्दन करनेवाला महातपस्वी भावलिंगी गुणभद्र नामा शिष्य हुआ, तिसने अपना मृत्यु जानके विनयसेन मुनिको सिद्धांत पढाके स्वयं स्वर्गलोकको गमन किया. विनयसेन मुनिका शिष्य कुमारसेन हुआ, तिसने संन्यास भांग दीया, फिर विनाही गुरुके ग्रहण करे दीक्षित हुआ, पिच्छको त्यागके चामर ग्रहण करके मोहसंयुक्त होके तिसने सर्ववागडदेशमें उन्मार्ग चलाया; स्त्रीको दीक्षा क्षुल्लकलोमको वीरचारियत्त कर्कशकेशग्रहण छट्ठागुणव्रत आगमशास्त्रपुराणप्रायश्चित्त इत्यादि कितनीक अन्यथा रचना करके मूढलोकोंमें मिथ्यात्व प्रवर्त्ताया, सो सर्वसंघसें बाह्य ऐसा कुमारसेन रुद्र उपशमको त्यागके मिथ्यासिद्धांत, और काष्ठसंघको प्रवर्त्तावता हुआ. विक्रमराजाके मरण पीछे सातसौ त्रेपन (७५३) वर्षे नंदियडेवरगाममें काष्ठसंघ उत्पन्न हुआ जानना. इति ॥

तथा अन्य दिगंबर ग्रंथोंमें लोहाचार्यसें काष्ठसंघकी उत्पत्ति लिखि है, और दर्शनसारमें कुमारसेनसें काष्ठसंघकी उत्पत्ति लिखि है.

मूलसंघकी बलात्कारगणकी पट्टावल्लिमें भद्रबाहु श्रीवीरनिर्वाणसें ४९८ वर्षे पट्टस्थ हुए लिखा है. तथाहि । बहुरि श्रीवीरस्वामीकूं मुक्ति गये पीछें च्यारिसैं सत्तरि (४७०) वर्ष गये पीछें श्रीमन्महाराज विक्रमराजाका जन्म भया, बहुरि पूर्वोक्त सुभद्राचार्यतैं विक्रमराजाको जन्म है.

बहुरि विक्रमके राज्यपदसैं वर्षचत्वारि (४) पीछैं पूर्वोक्त दूसरा भद्रबाहुकूं आचार्यका पट्ट हुवा । बहुरि श्रीमहावीरस्वामी पीछैं च्यारिसैं बाणवैं (४९२) वर्ष गये सुभद्राचार्यका वर्त्तमान वर्ष चोईस (२४) सो विक्रमजन्मतैं बावीस (२२) वर्ष, बहुरि ताका राज्यतैं वर्ष च्यार (४) दूसरा भद्रबाहु हुवा जाणना. बहुरि श्रीमहावीरतैं च्यारसैंसत्तरि (४७०), वर्ष पीछैं विक्रम राजा भयो, ताके पीछैं आठ वर्षपर्यंत बालक्रीडा करि, ताके पीछैं सोलह वर्षताई देशांतरविषैं भ्रमण करि, ताके पीछैं छप्पनवर्षताई राज कीयो नानाप्रकार मिथ्यात्वके उपदेश करि संयुक्त रह्यौ, बहुरि ताके पीछैं चालीसवर्षताई पूर्वमिथ्यात्वको छोडि जिनधर्मकूं पालिकरि देवपदवी पाई, ऐसैं विक्रमराजाकी उत्पत्ति आदि है.

तदुक्तं विक्रमप्रबंधे गाथा ॥

सत्तरिचदुसदजुत्तो तिणकाले विक्रमो हवइ जम्मो ॥

अठवरसबाललीला सोडसवासेहिं भम्मिए देसे ॥ १ ॥

रसपणवासारजं कुणंति मिच्छोपदेससंजुत्तो ॥

चालीसवासजिणवरधम्मं पालेय सुरपयं लहियं ॥ २ ॥

इससैं सिद्ध होता है कि, दूसरे भद्रबाहु श्रीवीरनिर्वाणसैं ४९८ वर्ष पट्टपर हुए. क्योंकि, श्रीवीरनिर्वाणसैं ४७० वर्ष विक्रमराजाका जन्म हुआ, ८ वर्ष विक्रमराजाने बालक्रीडा करी, १६ वर्ष देशाटन करा, एवं सर्व मिलाके ४९४ वर्ष हुए; पीछे विक्रमका राज्यपद हुआ, तिसके राज्यके ४ संवत्में भद्रबाहुका पट्टपर होना, एवं ४९८ वर्ष हुए. और सर्वार्थसिद्धिकी भाषाटीकामें श्रीवीरनिर्वाणसैं ६४३ वर्ष भद्रबाहु हुए लिखे हैं.

पूर्वोक्त पट्टावलिमें प्रथम ऐसैं लिखा है, बहुरि श्रीमहावीरस्वामीपीछैं च्यारसैं अडसठि (४६८) वर्ष गए सुभद्राचार्य भया, ताके वर्त्तमान कालके वर्ष छह (६) बहुरि ताके पीछैं तथा श्रीमहावीरस्वामीपीछैं च्यारसैं चहोत्तरि (४७४) वर्ष गये यशोभद्राचार्य भये, ताका वर्त्तमानकालके वर्ष अठारह (१८) है. और आगे जाके लिखा है कि, बहुरि श्रीमहावीरस्वामीपीछैं च्यारिसैं बाणवैं (४९२) वर्ष गये सुभद्राचार्यका वर्त्तमान वर्ष चोईस (२४).

तथा “बहुरि ताकै पीछें तथा श्रीवीरनाथकूं मुक्ति हुवां पीछें च्यारसैं बाणवैं (४९२) वर्ष गये दूसरा भद्रबाहु नामा आचार्य भये, याका वर्त्तमान कालका वर्ष तेईस(२३) का हैं.” ऐसैं प्रथम लिखा है. पीछे “विक्रम राजकूं राज्यपदस्थके दिनतैं संवत् केवल ४ के चैत्रशुक्ल १४ चतुर्दशीदिने श्रीभद्रबाहुआचार्य भये ” ऐसैं लिखा है, सो भी पूर्वापरविरोधवाला है. इसकी गिणती पूर्वे लिख आए हैं.

पूर्वोक्त पट्टावलिमेंही “बहुरि ताके पीछें तथा श्रीवीरस्वामीपीछें पांचसैं पंदरह (५१५) वर्ष गयें लोहाचार्य भये ताका वर्त्तमान काल पच्चास (५०) वर्षका है”—ऐसैं लिखके फिर लिखा है कि—“श्रीवर्द्धमानस्वामीको मुक्ति हुये पांचसैं पैसठि (५६५) वर्ष गयें अर्हद्वलिआचार्य भये ताका वर्त्तमान काल वर्ष अष्टाविंशति (२८) का है ” प्रथम ऐसैं लिखके फिर आगे जाके भद्रबाहुस्वामीसैं पाटानुक्रम लिखा है, तिसमें ऐसैं लिखा है, “बहुरि ताके पीछें संवत् केवल छहवीस (२६)का फाल्गुनशुक्ल १४ दिनमें गुप्तगुप्तिनामा आचार्य जातिपरवार भये” यह लेख भी विरोधी है, क्योंकि, प्रथमके लेखमें भद्रबाहुके पीछें लोहाचार्य, और पीछे अर्हद्वलिको कथन करा; और पिछले लेखमें भद्रबाहुके पीछेही अर्हद्वलिको कथन करा.—गुप्तगुप्तिकाही नाम अर्हद्वलि है, विशाखाचार्य भी इसहीका नाम है.—तथा पूर्वोक्त लेखमें अर्हद्वलिको श्रीवीरनिर्वाणसैं ५६५ में पट्टपर हुआ लिखा है, और पिछले लेखसैं श्रीवीरनिर्वाणसैं ५२० वर्षे अर्हद्वलिपट्टऊपर हुआ सिद्ध होता है.

तथा प्रश्नचरचा समाधानमें लिखा है कि “महावीर भगवान्के निर्वाणपीछे संवत् ६८३ वर्षे धरसेनमुनि गिरनारकी गुफामें बैठे थे, तिस कालमें ग्यारां (११) अंग विच्छेद गये थे ” यह लेख विक्रमप्रबंध, और पूर्वोक्त मूलसंघकी पट्टावलिसैं विरोधी है. क्योंकि, पट्टावलिसैं ऐसैं लिखा है “बहुरि ताकै पीछें तथा श्रीसन्मतिनाथ (महावीर) पीछें छहसैं चउदह (६१४) वर्ष गयें धरसेनाचार्य भये, ताका वर्त्तमान वर्ष इकईसका है ” तथा पूर्वोक्त पट्टावलिसैंही भूतबलि आचार्यतक एक अंगके धारी मुनि लिखे हैं, सो आगे लिख दिखावेंगे.

पुनः पूर्वोक्त चरचासमाधानमें लिखा है, “धरसेनमुनि ज्ञानवान रहै कर्मप्राभूत दूसरे पूर्वकी कंठाग्रथा, तिनके अल्पायु अपनी जानकर ज्ञानके भविवच्छेद होनेके कारणते जिनयात्रा करने संघ आया था, तिनपास पत्नी ब्रह्मचारीके हाथ भेजकर, तिक्ष्ण बुद्धिमान् भूतबलि, पुष्पदंत, नामे दो मुनि बुलवाये, तिनकूं ज्ञान सिखाया, तिनकूं विदाय करा.” यह लेख भी पूर्वोक्त ग्रंथोंसे विसंवादी है. क्योंकि, पूर्वोक्त ग्रंथोंमें ऐसे लिखा है. बहुरि ताकै पीछें तथा श्रीवीर भगवान्कूं निर्वाण भये पीछें छहसै तेतीस वर्ष भुक्ते पुष्पदंताचार्य भये, ताका वर्त्तमान काल वर्ष तीस (३०) का भया, बहुरि ताकै पीछें तथा श्रीमहावीरपीछें छहसैं तिरेसठि (६६३) वर्ष गये भूतबल्याचार्य भये, ताका वर्त्तमान काल बीस (२०) वर्षका भया, ऐसे अनुक्रमसे अनुक्रमतै भये बहुरि श्रीमहावीरस्वामीकूं मुक्ति गये पीछें छहसैं तियांसी (६८३) वर्ष तांई पूर्व अंगकी परिपाटी चाली, फिरि अनुक्रमकरि घटती रही. और पूर्वोक्त अर्हद्वल्याचार्यादि पांच आचार्यका वर्त्तमान काल एकसो अठारह (११८) वर्षका है, इहांतांई एकांगके धारी मुनि भये हैं, बहुरि ताकै पीछें श्रुतिज्ञानी मुनि भये, ऐसे आचार्यनिकी परिपाटी हैं.

तथा च विक्रमप्रबंधे ॥

पंचसये पण्णट्ठे अंतिमजिणसमयजादेसु ॥

उप्पण्णा पंचजणा इयंगधारी मुणेयव्वा ॥ १२ ॥

अहवलि माहणांदि य धरसेणं पुप्फयंत भूतबली ॥

अडवीसं इगवीसं उगणीसं तीस बीस पुण वासा ॥ १३ ॥

इगसयअठारवासे इगंगधारी य मुणिवरा जादा ॥

छस्सयतिगसियवासे णिव्वाणा अंगछित्ति कहिय जिणे ॥ १४ ॥

इसका भावार्थ ऊपर लिख आए हैं.

अब विचार करो कि श्रीवीरनिर्वाणसे ६८३ वर्ष धरसेन मुनि कहांसें आए? भूतबलि पुष्पदंतको किसने बुलवाया? भूतबलि पुष्पदंत कहांसें

आए? किसने पढाये? कौन पढे? क्योंकि, धरसेनका मृत्यु ६३३ में हुआ, पुष्पदंतका मृत्यु ६६३ में हुआ, और भूतबलिका मृत्यु ६८३ में हुआ, पूर्वोक्त लेखसे सिद्ध होता है, तो फिर, चरचासमाधान बनाने-वालेने श्रीवीरनिर्वाणसे ६८३ वर्षे तीनोंका मिलाप कैसें कराया दिया? और तिन दोनों भूतबलिपुष्पदंतने जेष्ठसुदि ५ को तीन सिद्धांत बनाये यह कैसें लिख दिया? यह तो ऐसें हुआ, जैसें कोई कहे—“मम मुखे रसना नास्ति, वा मम माता वंध्या वर्त्तते”—इसवास्तेही श्वेतांबरमतोत्पत्तिकी बाबत जो लेख लिखा है, सो स्वकपोलकल्पित है; सत्य नहीं है. तथा मथुराके पुराने टीलेमेंसें खोदनेसें स्तंभ तथा महावीरस्वामीकी मूर्ति ऊपर शिलालेख निकले हैं, तिन लेखोंके वाचनेसें जो कल्पना दिगंबरवाच्योंने श्वेतांबरमतकी उत्पत्तिबाबत लिखी है, सो सर्व मिथ्या सिद्ध होती है; वे सर्व लेख आगे चलकर लिखेंगे.

दिगंबरः—तत्त्वार्थसूत्रकी सर्वार्थसिद्धिभाषाटीकाके प्रारंभमेंही श्वेतांबरमतकी बाबत ऐसा लेख लिखा है—तथाहि—श्रीवर्द्धमान अंतिम तीर्थकरके निर्वाण भया पीछे तीन केवली तथा पांच श्रुतकेवली इस पंचमकालविषे भये, तिनमें अंतके श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामीके देवलोक गया पीछे कालदोषतें केतेइक मुनि शिथलाचारी भये, तिनका संप्रदाय चल्या, तिनमें केतेइक वर्षपीछे एकदेवर्षिगणि नामा साधु भया, तिन विचारी जो हमारा संप्रदाय तो बहुत वंध्या, परंतु शिथलाचारी कहावे है, सो यहु शक्ति नहीं, तथा आगामी हमतें भी हीनाचारी होयगे, सो ऐसा करीये जो इस शिथलाचारकूं कोई बुद्धिकल्पित न कहे. तब तिसके साधनेनिमित्त सूत्र रचना करी, चौरासी सूत्र रचे, तिनमें श्रीवर्द्धमानस्वामी और गौतमस्वामी गणधरका प्रश्नोत्तरका प्रसंग ल्याय शिथलाचारपोषणके हेतु दृष्टांतयुक्ति बनाय प्रवृत्ति करी, तिन सूत्रनिके आचारांगादि नाम धरे, तिनमें केतेइक विपरीत कथन कीये; केवली कवलाहार करे, स्त्रीकूं मोक्ष होय, स्त्री तीर्थकर भया, परीग्रहसहितकूं मोक्ष होय, साधु उपकरण वस्त्र पात्र आदि चौदह राषे, तथा रोगग्लान आदि वेदनाकरी

पीडित साधु होय तो मद्यमांससहितका आहार करे तो दोष नहीं, इत्यादि लिखा. तथा तिनकी साधककल्पित कथा वनाय लिखी. एक साधुको मोदक-का भोजन करताही आत्मनिंदा करी तब केवलज्ञान उपज्या, एक कन्या-को उपाश्रयमें बुहारी देतेही केवलज्ञान उपज्या, एक साधु रोगी गुरुको कांधे लेचल्या आखडता चाल्या गुरु लाठीकी दई तब आत्मनिंदा करी ताको केवलज्ञान उपज्या तब गुरु वाके पग पड्या; मरुदेवीको हस्तीपरी चढेही केवलज्ञान उपज्या, इत्यादिक विरुद्ध कथा, तथा श्रीवर्द्धमानस्वामी ब्राह्मणीके गर्भमें आये, तब इंद्र वहांते काढि सिद्धार्थ राजाकी राणीके गर्भमें थापे, तथा तिनकूं केवल उपजे पीछै गोसालानाम गरूड्याकूं दिख्या दइ, सो वाने तप बहुत किया, वाके ज्ञान बध्या, रिद्ध फुरी, तब भगवानसूं वाद किया, तब वादमें हास्या, सो भगवानसूं कषाय करि तेजूले-श्या चलाइ सो भगवानके पेचसका रोग हुवा, तब भगवानके खेद बहुत हुवा, तब साधानें कही एक राजाकी राणी विलाके निमित्त कूकडा कबूतर मारि भुतलस्याहै, सो वै महारेंताई ल्यावो, तब यहु रोग मिट जासी, तब एक साधु वह ल्याया, भगवान खाया, तब रोग मिट्या; इत्यादि अनेक कल्पित कथा लिखी. अर स्वेतवस्त्र पात्रा दंडआदि भेषधारी स्वेतंबर कहाये, पीछै तिनकी संप्रदायमें केइ समझवार भये, तिननैं विचारी ऐसे विरुद्ध कथनते लोक प्रमाण करसी नहीं, तब तिनके साध-नेकूं प्रमाणनयकी युक्ति वणाय नयविवक्षा खडी करी. ऐसे जैसे तैसे साधी, तथापि कहांताइ साथै, तब केइ संप्रदायी तिन सूत्रनमें अत्यंत विरुद्ध देखे, तिनकूं तो अप्रमाण ठहराय गोपि कीये, कमि राखें, तिनमें भी केइकने पैतालीस राखे, केइकने बत्तीस राखे, ऐसे परस्पर विरोध बध्या तब अनेक गच्छ भये, सो अवताई प्रसिद्ध है. इनिके आचार विचारका कलू ठिकाणा नहीं. इनहींमें ढूंढिये भयें है, तिने निपटही निंद्य आचरण धार्या है, सो कालदोष है, किलू अचिरज नांही, जैनमतकी गोणता इसकालमें होणी है ताके निमित्त ऐसे वणे.

श्वेतांबरः—यह सर्वार्थसिद्धिभाषाटीकामें जो लेख लिखा है, प्रायः द्वेषबुद्धिसैं लिखा मालुम होता है. जैसे देवसेनाचार्य दर्शनसारमें लिखते

हैं कि, श्वेतांबरमत चलानेवाला जिनचंद्र प्रथम नरकमें गया. अब विचार करो कि, देवसेनने संवत् ९९० में दर्शनसार बनाया तो, क्या उस वखत देवसेनको कोई अवधिज्ञान हुआ था कि, जिससे उसने जाना कि, जिनचंद्र पहिली नरकमें गया ? इस देवसेनके लेखसेही सिद्ध होता है कि, श्वेतांबरमतकी बाबत जो कल्पना करी है सर्व असत्य और द्वेष-संयुक्त है. ऐसैही सर्व दिगंबरपट्टाचार्योंकी कल्पनाबाबत जान लेना चाहिये. तथापि सर्वार्थसिद्धिभाषाटीकाके पाठकी समालोचना दिङ्मात्र करते हैं. इस लेखमें बहुत मुनि शिथिलाचारी हो गए, तिनका संप्रदाय चला लिखा है, और अंतके श्रुतकेवली प्रथम भद्रबाहुस्वामीके पीछे चला लिखा है, यह श्वेतांबरमतकी मूल उत्पत्ति लिखी है. परंतु जिनचंद्रका नाम, वा उत्पत्तिका संवत् यह कुछ भी नहीं लिखा है. तथा दिगंबरपट्टाचार्योंमें, और विक्रमप्रबंधादि ग्रंथोंमें श्रीवीरनिर्वाणसें १६२ वर्षे प्रथम भद्रबाहु अंतिम श्रुतकेवलीको स्वर्गवासी लिखे हैं; और देवसेनने श्वेतांबरमत चलानेवाले जिनचंद्रको श्रीवीरनिर्वाणसें ७२६ वर्षे हुआ लिखा है, इसवास्ते यह लेख भी परस्पर विरोधी है, इसीवास्ते स्वकपोलकल्पित है.

तथा देवर्षिगणिने शिथिलाचारके पाषणवास्ते श्वेतांबरोंके माने आचारांगदि सूत्र रचे, यह कथन भी अज्ञानविजृम्भितही है. क्योंकि, प्रथम तो देवर्षिगणिनामा श्वेतांबरोंका कोई साधुही नहीं हुआ है तो, रचना दूरही रही !! परंतु प्रथम सर्वपुस्तक ताडपत्रोपरि लिखने लिखानेवाले श्री-देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण पूर्वके ज्ञानके धारक हुए हैं, वे तो श्रीवीरनिर्वाणसें ९८० वर्ष पीछे हुए हैं, तो, क्या श्वेतांबरोंका मत बिनाही शास्त्रके ८१८ वर्षतक चलता रहा ? लिखनेवालेकी कैसी अज्ञानता थी कि, बिनाही शोचे विचारे असमंजस लेख लिख दीया !! तथा देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने तो, शास्त्र पुस्तकारूढ करे हैं, परंतु रचे नहीं हैं. जैनश्वेतांबर आगमोंकी रचना तो, यूरोपीयन सर्व विद्वान मंडलने २२ सौ वर्षसें भी अधिक पुराणी सिद्ध करी है, * तो फिर किसी अज्ञाने देवर्षिगणिवे

* देखो सेक्रेडबुकके अंतर्गत आचारांगसूत्रके अंग्रेजी तरजूमेकी उपोद्धात (प्रस्तावना) में और बृहत्कृत मथुराके शिलालेखोंके भाषणोंमें ॥

रखे लिखे हैं तो, क्या विद्वान् तिस अप्रमाणिक लेखको सत्य मान लेवें ? कदापि नहीं.

और जो लिखा है कि, कितनेक विपरीत कथन किये. केवली कवल आहार करे १, स्त्रीको मोक्ष २, स्त्री तीर्थकर भया ३, परिग्रहसहितको मोक्ष होय ४, साधु वस्त्रपात्रादि चतुर्दश (१४) उपकरण राखे ५, तथा रोगग्लानादिपीडित साधु होय तो मद्यमांससहितका आहार करे तो दोष नहीं ६, इत्यादि लिखा, इनका उत्तर—प्रथम तीन बातें तो सत्य हैं. क्योंकि, केवलीका कवल आहार और स्त्रीको मोक्ष ये दोनों तो प्रमाणयुक्तीसैंही सिद्ध हैं, जो आगे लिखेंगे. परंतु दिगंबरार्च्य लौकिकव्यवहारके भी अनभिज्ञ थे क्योंकि, लौकिकमतवालोंने अपने मतके आदिदेवते बुद्ध, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, ईसादिकोंको सर्वज्ञ माने हैं, परंतु वे आहार नहीं करते थे ऐसा किसीने भी नहीं माना है, और सर्वज्ञ आहार करे तो दूषण है, ऐसा भी किसीने नहीं माना है. और जगत् व्यवहारमें भी यह बात मान्य नहीं है कि, देहधारी आहार न करे, और शरीरकी वृद्धि होवे. क्योंकि, विदेहक्षेत्रमें तथा यहां चतुर्थ आरेकी आदिमें नव वर्षके मुनिको केवलज्ञान होवे, तब तिसकी विना कवल आहारके किये पांचसौ धनुष्यकी अवगाहना कैसे वृद्धि होवे ? इसवास्ते दिगंबरोंका कथन असमंजस है. और स्त्री तीर्थकर हुआ यह तो श्वेतांबरही आश्चर्यभूत मानते हैं तो, इसमें तर्कही क्या है ? । ३ ।

और परिग्रहधारीको जो मोक्ष लिखी है, सो तो मृषावादही है. क्योंकि, श्वेतांबर तो परिग्रहधारीमें साधुपणा भी नहीं मानते हैं तो, मुक्तिका होना तो कहां रहा ? श्वेतांबरी तो, मूर्च्छाको परिग्रह मानते हैं, नतु धर्मोपकरणको.

यदुक्तं श्रीदशवैकालिकसूत्रे श्रीशय्यंभवसूरिपादैः ॥

जंपि वत्थं च पायं वा कंबलं पायपुच्छणं ॥

तंपि संजमलज्जट्टा धारंति परिहंति य ॥

न सो परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा ॥

मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इइ वुत्तं महेसिणा ॥

भाषार्थः—जो वस्त्र प्रच्छादकादि शीतनिवारणवास्ते और भिक्षा अन्न-जलादि लेनेवास्ते पात्र, और कंबल वर्षाकल्प पादपुंछन रजोहरणादि, ये सर्व उपकरण संयम और लज्जाकेवास्ते मुनि धारण करते हैं, और पहिरते हैं. अर्थात् संयमकेवास्ते पात्रादि धारण करते हैं, और लज्जाके वास्ते चोलपट्टकादि वस्त्र पहिरते हैं. इसवास्ते इसको षट्कायके जीवोंके रक्षक ज्ञातपुत्र अर्थात् श्रीमहावीर तीर्थकरने परिग्रह नहीं कहा है, परंतु मूर्च्छाको परिग्रह कहा है. अर्थात् जिस वस्तु शरीरादि ऊपर मूर्च्छा ममत्व करना है, सोही परिग्रह कहा है, नतु धर्मसाधनके उपकरणोंको; महाऋषि गौतम सुधर्मादिकोंका ऐसा कथन है.

तथा दिगंबरार्च्य शुभचंद्रकृत ज्ञानार्णवके षोडश (१६) प्रकरणमें भी लिखा है ।

यतः ॥

निःसंगोपि मुनिर्न स्यात् समूर्च्छन् संगवर्जितः ॥

यतो मूर्च्छैव तत्त्वज्ञैः संगसूतिः प्रकीर्तिता ॥ ५ ॥

भाषार्थः—जो मुनि निःसंग होय, बाह्य परिग्रहरहित होय, और ममत्व करता होय तो, निःपरिग्रही न होय, जातै तत्त्वज्ञानिनने मूर्च्छा ममत्व परिणामहीकूं परिग्रहकी उत्पत्ति कही है ॥ ५ ॥ इसवास्ते धर्मोपकरण धर्मसाधनकेतांड़ रखने, तिनऊपर मूर्च्छा नहीं करनी, इसवास्ते परिग्रह नहीं है. तिस धर्मोपकरणधारी मुनिको केवलज्ञान, और मुक्ति दोनोंही सिद्ध है.

दिगंबरः—जब धर्मोपकरण रखेगा, तब तो मूर्च्छा अवश्यमेवही होवेगी तो फिर, तिसको परिग्रहका त्यागी कैसें माना जावे ?

श्वेतांबरः—अहो देवानांप्रिय ! तूं तो अपने मतके शास्त्रोंका भी जानने-वाला नहीं है, क्योंकि, ज्ञानार्णवके अष्टादश (१८) प्रकरणमें यह पाठ है। तथाहि ॥

शय्यासनोपधानानि शास्त्रोपकरणानि च ॥

पूर्वं सम्यक् समालोक्य प्रतिलिख्य पुनः पुनः ॥१५॥

गृह्णतोस्य प्रयत्नेन क्षिपतो वा धरातले ॥

भवत्यविकला साधोरादानसमितिः स्फुटम् ॥१६॥

भाषार्थः—शय्या आसन उपधान शास्त्र उपकरण इनकूँ पहिलै नीकै देख अर फेरिफेरि प्रतिलेषण कर अर ग्रहण करै, ताकै अर बडा यत्न कर पृथ्वीतलमें धरै, ताकै संपूर्ण आदाननिक्षेपणसमित प्रगट कही है, तथा योगेंद्रदेवकृत परमात्मप्रकाशकी टीकामें दिगंबरमुनिको तृणके अर्थात् घासके प्रावरण—प्रच्छादन रखने कहे हैं, और मोरपीछी कमंडलु तो प्रसिद्धही है। जब दिगंबरमुनि शय्या १, आसन २, उपधान—गिंदुक तकिया ३, शास्त्र ४, शास्त्रके उपकरण पाटी ५, बंधन ६, दोरा ७, टिट्टिका ८, तृणके प्रावरण ९, पीछी १०, कमंडलु ११, इत्यादि उपकरण रखते थे, वा दिगंबर मुनिको रखनेकी आज्ञा है, तब तो वे भी तुम्हारे कहनेसे तिन उपर मूर्च्छा समत्व करते होवेंगे; तब तो दिगंबर मुनियोंको परिग्रह धारी होनेसे कदापि साधुपणा, केवलज्ञान, मुक्ति न होवेगी, तब तो दिगंबरमत प्रेक्षावानोंको उपादेय नही होवेगा। इससे तो तुमने श्वेतांबरो की हानि करते हुयोंने, अपनेही पगमें कुठार मारा सिद्ध होवेगा। ४।

पांचमे अंकमें लिखा है साधु उपकरण चौदह राखे, सो सत्य है क्योंकि, उपकरणोंके बिना राखे प्रायः संयमका पालना नही होता है। इसवास्तेही तो दिगंबर साधु सर्व व्यवच्छेद होगए। हां कल्पित साधु कहांतक रह सकते हैं !

दिगंबरः—हमारे मतके नग्नमुनि कर्णाटक आदि देशोंमें जैनबद्री मूलबद्री आदि नगरोंमें अब भी हैं।

श्वेतांबरः—यह तुम्हारा कहना महामिथ्या है। क्योंकि, कर्णाटक देशके रहनेवाले नागराज नामा जैन ब्राह्मणको, तथा मारवाडी, कच्छी, गुजराती, श्वेतांबर तथा दिगंबर जे कर्णाटकादि देशोंके जैनबद्री मूलबद्री आदि नगरोंमें यात्रा करके आए हैं, तिनसे हमने अच्छीतरेसे पूछा है कि, तुमने यथोक्त मुनिवृत्तिका पालनेवाला दिगंबरमतका नग्न साधु, कोई देखा, वा सुना है ? तब तिन्होंने कहा कि, नग्न

दिगंबरमुनि हमने कोई भी देखा, वा सुना नहीं है. परंतु भट्टारक परिग्रहधारी, और भट्टारककी आज्ञासें श्रावकोंके पाससें रूपड़ा उग्राह करके भट्टारकोंको ल्यादेनेवाले, ऐसे 'क्षुल्लक' नामसें प्रसिद्ध, वे तो हैं. † इसवास्ते यथोक्तवृत्ति पालनेवाला नम्र दिगंबरसाधु अद्यतनकालमें कोई भी नहीं है. जेकर अंग्रेजी राज्यमें रेल तारके हुए भी, श्रावगीलोग (दिगंबरमतावलंबी) अपने सच्चे गुरुकी शोध नहीं करेंगे तो, कब करेंगे!!! सत्य तो यह है कि, ऐसे गुरु हैही नहीं. क्योंकि, ऐसी अनुचितवृत्ति तो कथन कर दीनी, परंतु तिसको पाले कोन? इसवास्ते चउदह उपकरणधारी श्वेतांबरीही साधु है, अन्य नहीं.* १५।

छठे अंकका उत्तर—रोगी ग्लानी साधु मद्यमांससहितका आहार करे तो दोष नहीं, ऐसा पाठ श्वेतांबरके किसी भी आगममें नहीं है. १६।

और जो लिखा है कि, तिनीकी साधक कल्पित कथा बणाय लिखी, एक साधुको मोदकका भोजन करताही आत्मनिंदा करी, तब केवलज्ञान उपज्या,

उत्तर यह लेख मिथ्या है श्वेतांबरशास्त्रमें ऐसा लेख नहीं है.

एक कन्याको उपाश्रयमें बुहारी देतेही केवलज्ञान उपज्या, यह लेख भी मिथ्या है, शास्त्रमें न होनेसें। गुरुचेलेकी बाबत लिखा है, सो भी मिथ्या है, ऐसा लेख न होनेसें. महावीरजीको गर्भसें बदला, यह अच्छेरा हुआ माना है. फिर इसमें तर्क क्या है? और जो गोसालेने श्रीमहावीरजीके ऊपर तेजोलेइया फैकी सो सत्य है. और तिस तेजोलेइयाकी गरमीसें भगवंतके शरीरमें पित्तज्वर और पेचसका रोग उत्पन्न हुआ, यह कथन तो सत्य है, परंतु यह तो सर्व श्वेतांबरोंके शास्त्रमें अच्छेराभूत माना है. और असातावेदनीयकर्मका

† फर्रुखनगरनिवासी चौधरी जियालालजीने जैनबद्री मूलबद्रीके वर्णनका पुस्तक प्रसिद्ध करा है, तिसमें मूलबद्रीमें ३० घर लिखे हैं, और जैनबद्रीमें १०० घर जैनीयोंके लिखे हैं, परंतु ऐसा कहीं नहीं लिखा है कि, हम यात्रा करते हुए फलाने नगरमें गए, और हमने मुनमहाराजके दर्शन पाए, पाप कटाए; दिगंबर जैनबद्री बंगलूरकों कहते हैं, और मूलबद्री मूडबद्रीको कहते हैं. ॥

* चतुर्दश (१४) उपकरण औधिकउपधिकी अपेक्षा जाणने. क्योंकि, जैनमतके शास्त्रोंमें दो प्रकारकी उपधि कही है. औधिक और औपग्राहिक. ॥

उदय केवलीके दिगंबरोंने भी माना है. पार्श्वपुराण भूदरकृत भाषाग्रंथमें दिगंबरोंने भी कितनेक अच्छे माने हैं. तो फिर, अच्छेभूत कथनको नहीं मानना, यह क्या प्रेक्षावानोंका काम है ? नहीं कदापि नहीं. । तुम्हारे बड़ोंने तो, जब अपने ग्रंथ अलग रचे तब जो जो कथन उनको अच्छा न लगा, सो सो उन्होंने न लिखा. जैसें केवलीको कवल आहार १, स्त्री तीर्थकर २, स्त्रीको मोक्ष ३, भगवान्का गर्भपरावर्त्तन ४, गोसालेका उपसर्ग ५, केवलीकोरोग ६, इत्यादि । और श्वेतांबराचार्य तो भवभीरु थे, इसवास्ते उन्होंने सिद्धांतोंका पाठ जैसा था, वैसाही रहने दीया. जेकर श्वेतांबराचार्य तिन वस्तुयोंको न मानते तो, तिनके मतकी कुछ भी हानि नहीं थी. और माननेसें कुछ मतकी पुष्टि भी नहीं है. परंतु अरिहंतका कथन अन्यथा करनेसें, वा माननेसें मिथ्यादृष्टिपणा, और अनंत-संसारीपणा होजाता है. इसवास्तेही तुम्हारीतरें आगमका कथन अन्यथा नहीं कर सके हैं. और तुम्हारे सर्वग्रंथोंकी रचनासें श्वेतांबरोंके आगम प्राचीन रचनाके हैं; ऐसी गवाही (साक्षी) सूत्ररचनाके कालके जानने-वाले सर्व यूरोपीयन विद्वानोंने दीनी है. इसवास्ते श्वेतांबरोंके आगम-दिमें जो कथन है, सो सर्वज्ञ अरिहंतका कथन करा हुआ है; और तुम्हारे सर्व ग्रंथ पीछेसें रचे गये हैं, इसवास्ते तिनमें मनःकल्पित बातें भी बहुत लिखी गई हैं.

और जो यह लिखा है कि, भगवान्ने साधाने कहा एक राजाकी राणी बिलाके निमित्त कूकडा कबूतर मारि भुतलस्या है, सो वै माहरें ताई ल्यावो, तब यह रोग मिट जासी, तब एक साधु वह ल्याया, भगवान् खाया, तब रोग मिट्या.

उत्तरः—यह लेख किसी अज्ञानीका लिखा मालुम होता है, क्योंकि, श्वेतांबरके शास्त्रोंमें ऐसा लेखही नहीं है.

और जो यह लिखा है कि, प्रथम चौरासी (८४) सूत्र रचे, पीछे तिनमें विरोध देखके कितनेकनें पैंतालीस माने, राखे, कितनेकनें बत्तीस माने, ऐसें परस्पर विरोध बध्या, तब अनेक गच्छ भए, सो अबतांइ प्रसिद्ध है. इनके आचार विचारका कछू ठिकाणा नाही.

उत्तर:—प्रथम तो यह लेखही मिथ्या है. क्योंकि, हमारे (श्वेतांबरोंके) शास्त्रमें ऐसा लेखही नहीं है कि, हमारे मतके चौरासी आगम हैं. परंतु श्रीनं-दिसूत्रमें द्वादशांगोंसें पृथक् चौदह हजार (१४०००) प्रकीर्ण शास्त्र लिखे हैं. तिनमेंसें कालदोषकरके जितने व्यवच्छेद हो गए हैं, वे तो गए, जो बाकी शेष रहे हैं, तिन सर्वको हम मानते हैं. परंतु हमारे मतमें एवकार नहीं है कि, चौरासी, वा पैतालीस, वा बत्तीसही मानने. जे मानते हैं, वे सर्व, मिथ्यादृष्टि, और जिनमतसें बाह्य हैं. और जो गच्छोंके भेदका दूषण दीया है, सो तो तुम्हारे मतमें भी समान है. तुम्हारे आचर्योंनेही दिगं-वरमतमें अनेक गच्छोंके भेद लिखे हैं, जिनमेंसें कितनेक ऊपर लिख आए हैं. परंतु इतना विशेष है कि, श्वेतांबरोंमें जितने गच्छ, वा मत कहे जाते हैं, वे सर्व, स्त्रीको मोक्ष १, केवलीको कवलाहार २, स्त्री तीर्थ-कर ३, गोसालेने तेजोलेइया चलाई ४, केवलीको रोग ५, साधुको चतु-र्वंशादि उपकरण ६, इत्यादि सर्व बातें मानते हैं.

और यह जो सर्वार्थसिद्धिवालेनें लिखा है कि “ तिनकों (वर्द्धमान स्वामीको) केवल उपजे पीछे गोसालानाम गरूड्याकूं दिखा दइ ” सो यह लेख भी, असत्य है. क्योंकि, गोसाला गरूड्या नहीं था, किंतु मंखलीपुत्र था. तथा भगवानने तिसको दीक्षा नहीं दीनी थी, किंतु उसने आपही शिर मुंडन करवायके शिष्यबुद्धि धारण करी थी. वास्त-विकमें वो शिष्य नहीं था. क्योंकि, श्वेतांबरोंके शास्त्रोंमें इसको शिष्या-भास लिखा है. तथा यह वृत्तांत भगवान् जब छद्मस्थ अवस्थामें विच-रते थे, तिस वखतका है; परंतु केवलज्ञान हुए पीछेका नहीं है.

और जो दूढ़ियोंकी बाबत लिखा है, सो भी मिथ्या है. क्योंकि, दूढ़-कपंथ जैन श्वेतांबरमतमें नहीं है. यह तो, सन्मूर्च्छिमपंथ है. संवत् १७०९ में सुरतके वासी लवजीने निकाला है. जैसे दिगवरोंमें तेरापंथी, गुमान-पंथी, आदि. तथा कितनेक बिना गुरुके नग्न दिगंवर मुन, भोले श्रावगी-योंसें धन लेनेकेवास्ते बने फिरते हैं, और झुल्लक बने फिरते हैं, ऐसेही श्वेतांबर मतके नामको कलंकित करनेवाला, आचार विचारसें भ्रष्ट,

ढूँढकमत उत्पन्न हुआ है. इनका निच आचरण, इनकोंही दुःखदायी होवेगा, न तु श्वेतांबरमतवालोंको. इसवास्ते इनकेसाथ हमारा कुछ भी संबंध नहीं है; वीसपंथी, तेरापंथी, गुमानपंथी आदिवत् . ॥

और तुम अपनी तर्फ नहीं देखते हो कि, हमारा पंथ नवीनही निकाला है, और सर्व शास्त्र नवीनही रचे हुए हैं. क्योंकि, प्रश्नचर्चा-समाधाननामाग्रंथके १३५ मे प्रश्नमें लिखा है कि, “महा-वीर भगवान्के नीर्वाणपीछे संवत् ६८३ वर्षे, धरसेन मुनि, गिरनारकी गुफामें बैठे थे, तिस कालमें ग्यारा अंग विच्छेद गए थे, धरसेन मुनि ज्ञानवान् रहे. कर्मप्राभृत दूसरे पूर्वकी कंठाग्र था, तिनके अपनी अल्पायु जान कर, ज्ञानके अव्यवच्छेद होनेके कारणतें, जिनयात्रा करने संघ आया था, तिनपास पत्री ब्रह्मचारीके हाथ भेज कर, तीक्ष्ण बुद्धिमान् भूतबलि १, पुष्पदंत २, नामे दो मुनि बुलवाये; तिनको ज्ञान सिखाया, तिनको विदा करा, आप मृतु हुई. पीछे तिन दोनों मुनिओंने, ज्येष्ठ शुदि ५ कूं तीन सिद्धांत बनाये. सित्तरहजार (७००००) श्लोकप्रमाण धवल १, साठहजार (६००००) श्लोकप्रमाण जयधवल २, चालीस-हजार (४००००) श्लोकप्रमाण महाधवल ३, इनकों पढे, सो सिद्धांती कहलाये. इन शास्त्रोंमेंसूं नेमिचंद्रसिद्धांतिने चामुंडरायकेवास्ते गोमट्टसार रचा.” तथा आचार्य श्रीसकलकीर्तिविरचित प्रश्नोत्तरोपासकाचारके दूसरे अध्यायमें

श्रीसुधर्ममुनींद्रेण चोक्तं श्रीजंबुस्वामिना ॥

केवलज्ञाननेत्रेण ज्ञानं गार्हस्थ्यगोचरम् ॥ ३३ ॥

त्रिषादिमुनिभिः सर्वैर्द्वादशांगश्रुतांतगैः ॥

प्रणीतं भव्यसत्वानामुपकाराय तच्छ्रुतम् ॥ ३४ ॥

ततः कालादि दोषेण प्रायुर्मेधांगहानितः ॥

हीयते प्रांगपूर्वादिश्रुतं श्रीधर्मकारणम् ॥ ३५ ॥

ततः श्रीकुंदकुंदाचार्यादिमुख्या यतीश्वराः ॥

प्रकाशयन्ति सज्ज्ञानं सद्वृहाधिष्ठितात्मनाम् ॥ ३६ ॥

क्रमात्तद्धि समायातं परिज्ञाय महाश्रुतम् ॥

वक्ष्ये सद्धर्मबीजं हि ज्ञानं भव्यसुखप्रदम् ॥ ३७ ॥

तथा तत्त्वार्थसूत्रकी भाषाटीका सर्वार्थसिद्धिमें लिखा है “ बहु-
रि भद्रबाहुस्वामीपीछे दिगंबरसंप्रदाय, केतेक वर्ष तौ अंगज्ञानकी व्यु-
च्छित्ति भई, अर आचार यथावत् रहवोही कीयो. पीछे दिगंबर-
निका आचार कठिन, सो कालदोषते तथावत् आचारी विरले रहि
गए. तथापि, संप्रदायमें अन्यथा परूपणा तो न भई. तहां श्रीवर्द्धमान
स्वामिकूं निर्वाण गये पीछे छहसैतियालीस (६४३) वर्ष पीछे दूसरे
भद्रबाहु नामा आचार्य भये, तिनके पीछे केतेइक वर्षपीछे दिगंबरनिके
गुरुके नाम धारक च्यार साखा भई. नंदि १, सेन २, देव ३, सिंह ४, ऐसैं
इनमें नंदिसंप्रदायमें श्रीकुंदकुंदमुनि, तथा उमास्वामीमुनि, तथा नेमि-
चंद्र, पूज्यपाद विद्यानंदि, वसुनंदि, आदि बडे बडे आचार्य भये. तिनने
विचारी जो, सिथलाचारी श्वेतांबरनिका संप्रदाय तौ, बहुत बध्या, सौ
तौ कालदोष है; परंतु यथार्थ मोक्षमार्गकी प्ररूपणा चली जाय, ऐसे
ग्रंथ रचीए तौ, केई निकटभव्य होय, ते यथार्थ समझि श्रद्धा करे.
यथाशक्ति चारित्र ग्रहण करें तौ, यह बडा उपकार है, ऐसैं विचारके
ग्रंथ रचे. ” इत्यादि लेखोंसैं यह सिद्ध होता है कि, दिगंबरोंके मतके
सर्व ग्रंथ नवीन रचे हुए हैं; प्राचीन पुस्तक कोइ नहीं. जेकर दिगंबरमत
सच्चा होता तो, गणधरादि मुनियोंका रचा कोइ ग्रंथ, प्रकरण, अध्याय,
वस्तु, प्राभृतादि अवश्य होता, सो है नहीं; इसवास्ते यही सिद्ध होता है
कि, अपना मत चलानेवास्ते दिगंबरोंने स्वकल्पनाके ग्रंथ नवीन रच लीने
हैं. और दिगंबरमतके तत्त्वार्थादिग्रंथोंकी वार्तिकाटीकादिमें श्रीदशवैका-
लिक, उत्तराध्ययनादि कितनेही पुस्तकोंके नाम लिखे हैं. इसमें हम यह
पूछते हैं कि, अंग और पूर्वोंका प्रमाण तो, तुम्हारे मतमें बहुत बडा

लिखा है; इसवास्ते तुम उनका तो, व्यवच्छेद मानते हो; परंतु दशवैकालिक, उत्तराध्ययनादि, कहां गए ?

दिगंबरः—वे भी व्यवच्छेद होगए.

श्वेतांबरः—बड़े आश्चर्यकी बात है कि, धरसेनमुनिके कंठाग्र समुद्रसमान दूसरे पूर्वका कर्मप्राभृत तो रह गया, और एकादशांग, और दशवैकालिक, उत्तराध्ययनादि, अल्पग्रंथवाले प्रकीर्णक ग्रंथ व्यवच्छेद हो गए!! ऐसा कथन प्रेक्षावान् तो, कदापि नहीं मानेंगे, परंतु मत कदाग्रहीही मानेंगे. तथा पूर्वोक्त लेखोंसे यह भी सिद्ध होता है कि, कुंदकुंदादिकोंने, श्वेतांबरमतकी वृद्धि देखके, श्वेतांबरकी महिमा घटानेवास्ते, स्पर्द्धासैं, अनुचित कठिन व्रतिके कथन करनेवाले शास्त्र रचे हैं. रागद्वेषके वशीभूत हुआ जीव, क्या क्या उत्सूत्र नहीं रच सकता है ? इन उत्सूत्ररूप ग्रंथोंके चलानेवास्तेही, पिछले अंग प्रकीर्णादि ग्रंथ छोड़ दीये सिद्ध होते हैं. क्योंकि, अकलंकदेवने राजवार्तिकमें पांचमे अंगव्याख्याप्रज्ञप्तिके कितनेक अधिकार लिखे हैं, वे सर्व, वर्तमान श्वेतांबरोंके माने व्याख्याप्रज्ञप्ति पांचमें अंगमें विद्यमान है; तो फिर, अकलंकदेवने किस व्याख्याप्रज्ञप्तिको देखके यह लेख लिखा ? जेकर कहो कि, गुरुपरंपरायसैं कंठ थे तो, व्याख्याप्रज्ञप्ति व्यवच्छेद कैसें हो गई ?

तथा प्रश्नचर्चासमाधानके १६ मे प्रश्नमें ऐसे लिखा है “ विद्यमान भरतक्षेत्रमें पंचमकालमें सम्यग्वृष्टी जीव केते पाइए—

समाधानः—जिनपंचलब्धिरूप परिणामकी परणतविषे सम्यक्त्व उपजे है, ते परिणाम इस कलिकालमें महादुर्लभ, तिसतें दोय, तथा तीन, अथवा चार कहै हैं; पांच छह तो दुर्लभ है. इस कथनकी साख स्वामी कार्तिकेय टीकाविषे है.

तथाहि ॥

विद्यन्ते कति नात्मबोधविमुखाः संदेहिनो देहिनः

प्राप्यन्ते कतिचित् कदाचन पुनर्जिज्ञासमानाः क्वचित् ॥

आत्मज्ञाः परमप्रमोदसुखिनः प्रोन्मीलवृंतदर्शो

द्वित्राः स्युर्बहवो यदि त्रिचतुरास्ते पंचषा दुर्लभाः ॥

ते संति द्वित्रा यदि इति कथनात् ज्ञानार्णवेप्युक्तम् ॥

इस कालमें घने जीव आपकू सम्यग्दृष्टि माने हैं तो, मानो; परंतु शास्त्रविषे तीनचारही कहै हैं. और पंचलब्धिका स्वरूप भलीभांति जाना होइ तो, आपको सम्यग्दृष्टिका अनुमान भी न करै. कोई ऐसे भी कहै हैं, निश्चयकरी भगवान् जाने, अनुमानसों मेरे सम्यक्त है यह भी श्रद्धान, मिथ्या है. जाते सम्यक्त अनुमानका विषय नहीं. ॥ ” इस लेखका समालोचन—जब भरतखंडमें दो तीन जघन्य, और उत्कृष्ट पांच, वा छह (६) सम्यक्त्वधारी जीव वर्तमानकालमें लाभे हैं, वे भी गृहस्थ हैं, वा साधु हैं, यह निश्चय नहीं. तब तो, सर्व भरतखंडमें दो, वा छ (६) तक वर्जके, जितने दिगंबर श्रावक, श्राविका, नग्नसाधु, भट्टारक, पांडे, और क्षुल्लक, ये सर्व मिथ्यादृष्टि सिद्ध होवेंगे. प्रथम तो, साधु, साध्वीके व्यवच्छेद हो जानेसे, श्रावक श्राविकारूप दोही संघ रह गए हैं. स्वामी-कार्तिकेयादिने तो, दिगंबरोंको सम्यग्दृष्टि होनेकी भी, नहींही लिख दीनी. ग्रंथकारोंने भूल करके तो, नहीं दो तीन सम्यग्दृष्टि लिख दीए होवेंगे ! क्योंकि, दो संधियोंमें तो, सम्यग्दर्शनका संभवही नहीं है.

प्रश्न:—दो संधिये कौन है ?

उत्तर:—प्रियवर ! संप्रतिकालमें, जो भरतखंडमें दिगंबरमत चलता है, सो दो संधिया है. क्योंकि, इनके मतमें साधु साध्वी तो हैही नहीं. श्रावक श्राविका नाममात्र दो संघ है, इसवास्ते ये दो संधिये हैं; और इसीवास्ते ये मिथ्यादृष्टि हैं. क्योंकि, तीर्थंकर भगवान्के शासनमें तो चतुर्विध संघ कहा है; इसवास्ते ये जिनराजके शासनमें नहीं मालुम होते हैं, दो संधिये होनेसे.

प्रश्न:—इनके दो संघ, किसवास्ते व्यवच्छेद होगए ?

उत्तर:—प्रथम तो श्रीवीरनिर्वाणसें ६०९ वर्षे, इनका मत चला था, तब-सेही इनके तीन संघ चले हैं. क्योंकि, पंचमहाव्रतधारणवाली साध्वी तो इनके मतमें होही नहीं सकती है, ब्रह्म रखनेसे. तिसको तो ये

उत्कृष्टी श्राविकाही मानते हैं. शेष रहा नग्नमुनि, तिनके वास्ते जे अनुचित कठिन वृत्ति लिख दीनी है, सो तिसका पालना पंचमकालमें अशक्य है; और दिगंबरमत चलानेवाले इनके आचार्य भी दीर्घदर्शी नहीं थे. क्योंकि, जो कठिनवृत्ति, वज्रऋषभनाराचसंहननवालोंके वास्ते थी, वोही वृत्ति सेवार्त्तसंहननवालोंके वास्ते लिख मारी. क्या हाथिका बोझ, गर्दभ ऊठा सकता है ?

प्रथम तो दिगंबराचार्योंको पांच प्रकारके निर्ग्रंथोंके स्वरूपहीका यथार्थ बोध नहीं मालूम होता है. क्योंकि, उन्होंने राजवार्त्तिकादिग्रंथोंमें जैसा पांच निर्ग्रंथोंका स्वरूप लिखा है, तिस स्वरूपवाले बुक्कस १, प्रतिसेवना निर्ग्रंथ २, ये दोनों जे इस पंचमकालमें पाईये हैं, तैसैं स्वरूपवाले इस भरतखंडमें दीख नहीं पडते हैं. जब प्रत्यक्षप्रमाणसेही तुम्हारा (दिगंबर) मत बाधित है, तो फिर अन्यप्रमाणकी क्या आवश्यकता है? और श्वेतांबरमतके व्याख्याप्रज्ञप्ति, उत्तराध्ययननिर्गुक्ति, पंचनिर्ग्रंथी संग्रहणी, उमास्वातिकृत तत्त्वार्थसूत्र, और तत्त्वार्थसूत्रकी भाष्य, तथा सिद्धसेनगणिकृत तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति प्रमुख शास्त्रोंमें जो पांच निर्ग्रंथोंका स्वरूप लिखा है, तिनमेंसे बुक्कस १, प्रतिसेवनानिर्ग्रंथ २, जैसैं स्वरूपवाले लिखे हैं, तैसैं स्वरूपवाले साधु, साध्वी, इस पंचमकालमें प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी सिद्ध है. तो फिर श्वेतांबरमतही असली जैनमत, और दिगंबरमत पीछेसे निकला क्यों नहीं होवेगा? अपितु होवेहीगा.

एक बात याद रखनी चाहिये कि, जो जो कथन जिनेन्द्रदेवके कथनानुसार दिगंबरमतके शास्त्रोंमें है, तिस कथनको हम बहुमान देते, और अनंतवार नमस्कार करते हैं; परंतु जो जो दिगंबरोंने स्वकपोलकल्पनासे रचना करी है; तिसकाही हम समालोचन करते हैं.

और जो दिगंबर कहते हैं कि, श्वेतांबरोंने केवलीको कवल आहार १, स्त्रीको तद्भवे मोक्ष २, साधुको चउदह (१४) उपकरण राखने, इत्यादि विरुद्ध कथन लिखे हैं.

उत्तर:-प्रथम तो श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायजी, जो के स्याद्वादकल्पलता १, वैराग्यकल्पलता २, अध्यात्मोपनिषद् ३, अध्यात्मसार ४, अध्यात्मरहस्योपदेश ५, ज्ञानसार, ६, ज्ञानविंदु ७, नयोपदेश ८, नयप्रदीप ९, अमृततरंगिणी १०, समाचारी ११, खंडखाद्य १२, धर्मपरीक्षा १३, अध्यात्ममतपरीक्षा १४, पातंजलचतुर्थपादवृत्ति १५, कर्मप्रकृतिवृत्ति १६, अनेकांतजैनमतव्यवस्था १७, देवतत्त्वनिर्णय १८, गुरुतत्त्वनिर्णय १९, धर्मतत्त्वनिर्णय २०, तर्कभाषा २१, द्वात्रिंशत्द्वात्रिंशिका २२, अष्टक २३, षोडशकवृत्ति २४, इत्यादि शत (१००) ग्रंथके कर्ता, और षट्दर्शनतर्कके वेत्ता, तथा काशीमें सर्वपंडितोंने जिनको जयपताका, और न्यायविशारदकी पदवी दीनी थी, ऐसे श्रीयशोविजयोपाध्यायजी लिखते हैं कि, जितने दिगंबरोंके तर्कशास्त्र हैं, वे सर्व, श्वेतांबरोंके तर्कशास्त्रोंने दले हुए, अर्थात् खंडन करे हुए हैं; तिनमेंसें नमूनामात्र यहां लिख दिखाते हैं-

अहं । केवलीको कवल आहारके हुए, सर्वज्ञपणेके साथ विरोध होता है, ऐसे मानते हुए दिगंबरोंका खंडन करते हैं।

नच कवलाहारवत्त्वेन तस्यासर्वज्ञत्वम् ॥

कवलाहारसर्वज्ञत्वयोरविरोधात् ॥

व्याख्या:-केवलीको कवलाहारी होनेकरके, सर्वज्ञपणेकेसाथ विरोध नहीं है सोही दिखाते हैं. कवलाहार, और सर्वज्ञपणेका जो विरोध, दिगंबर मानते हैं सो साक्षात् मानते हैं, वा परंपराकरके मानते हैं ? यदि आदि पक्ष दिगंबर मानेंगे, सो ठीक नहीं. क्योंकि, सर्वज्ञपणेके हुए केवलीको कवलाहार प्राप्ति नहीं होता है, यह बात नहीं है. और कवलाहार मिल तो सकता है, परंतु केवली खा नहीं सकता है, यह भी नहीं है. अथवा केवली खा तो सकता है, परंतु खानेसें केवलज्ञान दौड जायगा, इस शंकासें नहीं खा सकता है यह बात भी नहीं है; इन पूर्वोक्त तीनों बातोंमें हेतु कहते हैं; अंतराय कर्म, और केवलावरण कर्मोंका समूल नाश करनेसें, पूर्वोक्त तीनों बातें नहीं हो सकती है. जेकर दिगंबर दूसरे परंपराविरोधपक्षको अंगीकार करके विरोध कहे तो, सो भी बालकोंकी

क्रीडाभात्र है. क्या ऐसों हुए, कवल आहारका, व्यापक १, कारण २, कार्य ३, सहचरादिका सर्वज्ञताके साथ विरोध है? और सो विरोध परस्पर परिहाररूप है, या सहानवस्थानरूप है? यदि प्रथम पक्ष मानोगे तब तो, तुम्हारे भी ज्ञानके साथ कवल आहारके व्यापकादिकोंका परस्पर परिहारस्वरूप विरोधके सद्भाव होनेसे, तुम (दिगंबरों) को भी कवल आहारका अभाव होवेगा. अहो तुमारा पुरुषकार !! जिसवास्ते अपने कहनेसेही पराभवको प्राप्त हुए हों. और दूसरे पक्षको माने तब तो, कवल आहारका व्यापक, हानिको नहीं प्राप्त होता है. क्योंकि, कवल आहारका व्यापक तो, शक्तिविशेषके वससे उदरकंदरारूप कोनेमें प्रक्षेप करना है, सो तो, सर्वज्ञके हुए अतिशयकरके संभव करिये हैं. क्योंकि, वीर्यातिरायकर्म समूल उन्मूलन करनेसे; तहां तिस आहारके क्षेप करने-वाली शक्तिविशेषका संभव होनेसे.

और आहारका कारण भी बाह्यरूप, विरोधको प्राप्त होता है? वा अभ्यंतररूप कारण, विरोधको प्राप्त होता है? बाह्यरूपकारण भी खाने-योग्य वस्तु १, वा तिस वस्तुके उपहारहेतु पात्रादिक २, वा औदारिक शरीर ३? प्रथम तो नहीं. क्योंकि, जो, केवलज्ञान, खानेयोग्य पुद्गलोंके साथ विरोधि होवे, तब तो, अस्मदादिकोंका ज्ञान भी तैसाही होना चाहिये. ऐसा नहीं होता है कि, सूर्यकी किरणोंके साथ जो अंधकारका समूह, विरोधी है; सो, प्रदीपालोककेसाथ विरोधी न होवे. तैसें हुए, हमारे भी, खानेकी वस्तु हाथमें लेनेसे, तिसके ज्ञानके उत्पन्न होतेही, तिसका अभाव होना चाहिए. बहुत आश्चर्यकारि नूतनही तुम्हारा कोई तत्त्वालोक कौशल है, अपने आपकोभी आहारकी अपेक्षा नहीं है !!

पात्रादिपक्ष भी ठीक नहीं है. अर्हतभगवंतोंको पाणि (हस्त) पात्र होनेसे; और इतर केवलियोंको स्वरूपसेही पात्रविरोध है? वा, ममताका कारण होनेसे है? तहां प्रथम पक्ष तो अनंतरपक्षके उत्तरसेही खंडित हो गया. और दूसरा पक्ष भी है नहीं, केवलीको निर्मोह होने करके, तिनको (केवलीको) पात्रादिविषे ममकारके न होनेसे. ऐसे भी न कहना कि, पात्रादिकके हुए, अवश्य ममकार होना चाहिये. क्योंकि,

ऐसा अवश्यभाव है नहीं. जेकर इसीतरें मानोगे, तब तो, केवलीको शरीरके हुए, अवश्य ममकार होना चाहिये, सो है नहीं, इतर जनोंमें शरीरपात्रादिके होए भी ममकार देखनेसें.

और औदारिक शरीर भी, सर्वज्ञपणेके साथ विरोध नहीं धरता है. यदि विरोध धारण करे तो, केवलज्ञानकी उत्पत्तिके अनंतरही, औदारिक शरीरका अभाव होना चाहिये. और अभ्यंतर भी, आहारका विरोधि, कारण, शरीर है ? वा, कर्म है ? तिनमेंसें प्रथम कारण तो विरुद्ध नहीं है. क्योंकि, मुक्तिका हेतु, तैजसशरीरका सर्वज्ञकेसाथ रहना तुमने भी माना है. । दूसरे पक्षमें कर्म भी, घाति, वा अघाति ? घाति भी मोहरूप है, वा इतर है ? इतर भी ज्ञानदर्शनावरण है, वा, अंतराय है ? आदिके ज्ञानदर्शनावरण तो नहीं है. क्योंकि, तिनको तो ज्ञानदर्शनावरणमात्रमेंही चरितार्थ होनेसें, केवल आहारके कारणकी अनुपपत्ति है. । दूसरा पक्ष भी नहीं है. अंतरायके नाश होनेसेंही, आहारकी प्राप्ति होनेसें, और अंतरायकर्मका संपूर्ण नाश केवलीके तो तुमने भी माना है. । और मोह भी, खानेकी इच्छा लक्षण जो है, सो तिसका कारण है, वा सामान्य प्रकार करके कारण है ? प्रथम पक्ष (बुभुक्षालक्षण) में सर्व जगे खानेकी इच्छारूप मोह कारण है, वा अस्मदादिकोंविषे (हमारेतुम्हारेमें) ही है ? प्रथमपक्ष तो प्रमाणमुद्राकरके दरिद्र है, अर्थात् प्रथम पक्षको सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण नहीं है.

दिगंबर:—हमारेपास प्रमाण है, सो यह है. जो चेतनक्रिया है, सो इच्छापूर्वकही है, जैसें अंगीकार करी हुई (क्रिया), तैसीही भुजिक्रिया है, सोही दिखाते हैं. प्रथम तो, प्रमाता, वस्तुको जानता है. तदपीछे तिसकी इच्छा करता है, पीछे उद्यम करता है, और तदपीछे करता है.

श्वेतांबर:—जैसें तुम कहते हों, तैसें नहीं है; सुप्तमत्तमूर्च्छितादिकोंकी क्रियाकरके व्यभिचार होनेसें.

दिगंबर:—हम, स्ववशचेतनक्रिया, ऐसा विशेषणवाला हेतु, अंगीकार करेंगे, तब पूर्वोक्त व्यभिचार न रहेगा.

श्वेतांबरः—ऐसें विशेषणवाला भी हेतु, केवलीगतगतिस्थितिनिषद्यादि क्रियायोंके साथ व्यभिचारी है ।

दूसरे पक्षमें तो तुमने हमारे सिद्धकोंही साध्या है, केवलीविषे वेदनीयादिकारणोंकरके भुक्तिके सिद्ध होनेसें. और सामान्यप्रकारसें भी, मोह, कवल करनेका कारण नहीं है. जेकर होवे, तब तो, गतिस्थितिनिषद्यादिकोंका भी मोहही कारण सिद्ध होवेगा. जेकर तैसें होवेगा, तब तो केवलीमें मोहके अभाव हुए, केवलीको गतिस्थित्यादिकोंका भी अभाव होवेगा. तब तो, तीर्थकी प्रवृत्ति कदापि नहीं होवेगी. जेकर कहोगे, गति आदि कर्मही, तिन गत्यादिकोंका कारण है, परं मोह नहीं है. तब तो, वेदनीयादि कर्मही, कवल आहारका कारण है, परं मोह नहीं; ऐसें भी मान लेवो.

दिगंबरः—अघाति कर्म, तिस कवल आहारका कारण है.

श्वेतांबरः—अघातिकर्म तिस कवल आहारका कारण है तो, क्या आहारपर्याप्ति, नामकर्मका भेद, तिसका कारण है; वा वेदनीय कर्म? येह दोनोंही भिन्नभिन्न कारण नहीं है. क्योंकि, तथाविध आहारपर्याप्ति नामकर्मोदयके हुए, वेदनीयोदयकरके प्रबल ज्वलत् जठराग्निकरके उपतप्यमानही पुरुष, आहार करता है. ऐसें हुए, दोनोंही एकठे हुए, तिस कवल आहारके कारण होते हैं. किंतु सर्वज्ञपणेके साथ विरोधी नहीं है. क्योंकि, सर्वज्ञविषे तुमने भी तो तिन दोनोंको माने हैं.

दिगंबरः—मोहकरके संयुक्तही, पूर्वोक्त दोनों कवलाहारके कारण हैं.

श्वेतांबरः—यह तुमारा कथन असंगत है. गतिस्थित्यादिकर्मोंकीतरें कवलाहारको भी, मोह साहायकरहितकोही, तिसके कारित्व होनेके अविरोधी होनेसें.

दिगंबरः—अशुभ कर्म प्रकृतियांही, मोहकी सहायताकी अपेक्षा करती है, नहीं अन्यगत्यादिक. और यह असातावेदनीय, अशुभप्रकृति है; इसवास्ते मोहकी सहायता चाहती है.

श्वेतांबरः—क्या यह परिभाषा, अस्मदादिकोंमें तैसें देखनेसें कल्पना करते हो ?

दिगंबर:-हां. ऐसैंही करते हैं.

श्वेतांबर:-शुभ प्रकृतियां भी, अस्मदादिकोंमें, मोहसहकृतही अपने कार्यको करती देखनेमें आती हैं. तब तो, केवलीकी गतिस्थितिआदि शुभ प्रकृतियां भी, मोहसहकृतही होनी चाहिये. इसवास्ते पूर्वोक्त दोनों प्रकृतियोंको मोहापेक्ष होकरके कवलाहारका कारणपणा नहीं है, किंतु स्वतंत्रकोही कारणपणा है. सो कारण केवलीमें अविकल अर्थात् संपूर्ण विद्यमानही है, तिसवास्ते कवलाहारका कारण, केवलीकेसाथ विरोधी नहीं है. यदि कार्यका विरोध मानो तो जो कार्य केवलज्ञानके साथ विरोधी है सो कवलाहारका कार्य, केवलिमें मत उत्पन्न हो. परंतु अविकल कारणवाला उत्पद्यमान कवलाहार तो, अनिवार्य है; अर्थात् कवलाहारको कोई निवारण नहीं कर सकता है.

एक अन्यवात है कि, सो कौनसा कार्य है ? जो, केवलज्ञानकेसाथ विरोधी है. क्या रसनेंद्रियसें उत्पन्न हुआ मतिज्ञान ? (१) ध्यानमें विघ्न ? (२) परोपकार करनेमें अंतराय ? (३) विसूचिकादि व्याधि ? (४) ईर्यापथ ? (५) पुरीषादि जुगप्सितकर्म ? (६) धातुउपचयादिसें मैथुनेच्छा ? (७) निद्रा ? (८) आद्य पक्ष तो नहीं है. क्योंकि, रसनेंद्रियकेसाथ आहारका संबंध होनेमात्रसेंही जेकर मतिज्ञान उत्पन्न होता होवे तब तो, देवतायोंके समूहने जो करी है, महासुगंधित फूलोंकी निरंतर वर्षा, तिनकी सुगंधी नासिकामें आनेसें घ्राणेंद्रियजन्य मतिज्ञान भी होना चाहिये ॥ १ ॥ दूसरा पक्ष भी नहीं है. क्योंकि, केवलीका ध्यान शाश्वत है; अन्यथा तो, केवलीको चलते हुए भी, ध्यानका विघ्न होना चाहिये. ॥ २ ॥ तीसरा पक्ष भी नहीं है, क्योंकि, दिनकी तीसरी पौरुषीमें एक मुहूर्त्तमात्रमेंही भगवंतके आहार करनेका काल है, बाकी शेषकाल परोपकारकेवास्तेही है. ॥ ३ ॥ चौथा पक्ष भी नहीं है, जानकरके, हित मित आहार करनेसें. ॥ ४ ॥ पांचमा भी नहीं. अन्यथा, गमनादि करनेसें भी ईर्यापथका प्रसंग होवेगा. ॥ ५ ॥ छठा भी नहीं. पुरीषादि करते हुए, केवलीको आपही जुगप्सा होती है,

वा, अन्यजनोंको ? तिनकों तो, नहीं होती है. क्योंकि, भगवंतको निर्मोह होनेसे, जुगुप्साका अभाव है. जेकर अन्य जनोंकों होती है, तो क्या, मनुष्य, अमर, इंद्र, इंद्राणि, इत्यादि सहस्र जनोंकरके सकुल सभाके-विषे, वस्त्ररहित भगवंतके बैठे हुए, तिनोंकों जुगुप्सा नहीं होती है ?

दिगंबरः—भगवंतको अतिशयवंत होनेसे, तिनका नक्षपणा नहीं दीखता है.

श्वेतांबरः—अतिशयके प्रभावसे भगवंतका निहार भी मांसचक्षुवालोंके अदृश्य होनेसे, दोष नहीं है. और सामान्यकेवलियोंने तो, विविक्तदेशमें मलोत्सर्ग करनेसे दोषका अभाव है. ॥ ६ ॥ सातमा और आठमा पक्ष भी ठीक नहीं है. मैथुनेच्छा, और निद्रा, इनको मोहनीकर्म और दर्शनावरणकर्मके कार्य होनेसे; और भगवंतमें ये दोनोंही कर्म, नहीं है. तिसवास्ते कवलाहारका कार्य भी केवलज्ञानके साथ विरोधी नहीं है. ॥ ७ ॥ ८ ॥ और सहचरादि भी विरुद्ध नहीं है. जिसवास्ते, सो सहचर, छद्मस्थपणा है, वा अन्य कोई ? आदि पक्ष तो नहीं है. क्योंकि, दोनोंही वादियोंने (श्वेतांबर दिगंबर दोनोंहीने) केवलीमें छद्मस्थपणा माना नहीं है. जेकर अस्मदादिकोंमें तैसें देखनेसे, छद्मस्थपणेके साहचर्यका नियम माना जावे, तब तो, गमनादिकोंको भी, छद्मस्थपणेके सहचर मानने पड़ेंगे. और अन्य, जो कर, मुख, चालनादि, तिसके सहचारी हैं, वे भी केवलज्ञानके साथ विरोधी नहीं है. ऐसैही उत्तरचरादि भी केवलज्ञानके साथ विरोधी नहीं है. इसवास्ते यह सिद्ध हुआ कि, कवलाहार सर्वज्ञपणेके साथ विरोधी नहीं है. इससें केवलिके कवलाहारका करना सिद्ध हुआ. ॥ इति केवलीभुक्तिव्यवस्था ॥

दिगंबरः—स्त्रीको तद्भवमें मोक्ष नहीं होवे है. ।

तथा च प्रभाचंद्रः ॥

“॥ स्त्रीणां न मोक्षः पुरुषेभ्यो हीनत्वान्नपुंसकादिवदिति ॥”

भाषार्थः—स्त्रियोंको मोक्ष नहीं है; पुरुषोंसेही न होनेसे, नपुंसकादिवत्. ।

श्वेतांबरः—यहां तुमने सामान्यकरके धर्मिपणे स्त्रियां ग्रहण करी हैं, वा विवादास्पदीभूत स्त्रियां ग्रहण करी हैं ? प्रथम पक्षमें पक्षके एकदेशमें

सिद्धसाध्यता है. क्योंकि, असंख्यात वर्षायुवाली दुषमादि कालमें उत्पन्न हुई तिर्यचस्त्री, देवस्त्री, अभव्य स्त्री, इत्यादि बहुत स्त्रियोंको हम भी मोक्ष नहीं कहते हैं. १. १. और दूसरे पक्षमें पक्षकी न्यूनता है. विवादास्पदीभूता, ऐसे विशेषण विना, नियतस्त्री के लाभके अभाव होनेसे. १. २.

दिगंबरः—विवादास्पदीभूता स्त्रीही, हमारा पक्ष है.

श्वेतांबरः—हेतुकृत पुरुषापकर्ष, पुरुषोंसे हीनपणा, स्त्रियोंमें किसतरें है?

(१) सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयके अभावसें? (२) विशिष्टसामर्थ्यके न होनेसें? (३) पुरुषोंकरके अनभिवांध्य होनेसें? (४) स्मारणादि न करनेसें? महर्द्धिक न होनेसें? (६) मायादिप्रकर्ष होनेसें? प्रथम पक्षमें किसवास्ते स्त्रियोंको रत्नत्रयका अभाव है?

दिगंबरः—वस्त्ररूपपरिग्रहके होनेसें, चारित्रका अभाव है, इसवास्ते.

श्वेतांबरः—यह कहना ठीक नहीं है. परिग्रहरूपता, वस्त्रको, शरीरके संबंधमात्रसें है? वस्त्रके भोग करनेसें? मूर्च्छा हेतु होनेसें? वा जीव-संस्पर्शहेतुत्वसें? प्रथम पक्षमें तो, भूमिआदिका सदा स्पर्श शरीरकेसाथ होनेसें, परिग्रहरहित, कोई भी सिद्ध नहीं होवेगा; तब तो तीर्थकरा-दिकोंको भी मोक्ष मिलना नहीं चाहिये. एतावता लाभ प्राप्त करते हुए तुमने तो, मूलकाही नाश करा! दूसरे पक्षमें वस्त्रका परिभोग, तिनको, अशक्य त्याग करके है, वा गुरुउपदेशसें है? प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं. क्योंकि, प्राणोंसें अधिक और कुछ भी प्रिय नहीं है, तिनको भी धर्मआदिकेवास्ते स्त्रीयां त्यागती दीखती हैं. तो तिनको वस्त्र त्यागने क्या बड़ी बात है? दूसरा पक्ष भी ठीक नहीं. क्योंकि, विश्वदर्शी परमगुरु भगवंतने, मोक्षार्थी स्त्रियोंको, जो संयमका उपकारि है, सोही वस्त्रोपकरण, “जो कप्पदि निर्गन्धीए अवेलाए होतए” निर्गन्धी (साध्वी) को नहीं कल्पे हैं, वस्त्ररहित होना. इत्यादि कथनसें, उपदिशा है, अर्थात् ऐसा उपदेश दिया है; प्रतिलेखन (मोरपीछी) कमंडलु इत्यादिवत्. इसवास्ते कैसें तिसके परिभोगसें परिग्रहरूपता होवे? अन्यथा प्रतिलेखन आदि धर्मोपकरणों भी, परिग्रह होनेका प्रसंग होवेगा।

तथाचार्या ॥

यत्संयमोपकाराय वर्तते प्रोक्तमेतदुपकरणम् ॥

धर्मस्य हि तत्साधनमतोन्यदधिकरणमाहार्हन् ॥

अर्थः—जो संयमके उपकारकेतांइ वर्ते, सो उपकरण कहा है. और सो उपकरण धर्मकाही साधन है, ‘उपकारकं हि करणमुपकरणमिति वचनात्’ और इससें भिन्न सर्व अधिकरण* है, ऐसें अर्हन् भगवान् कहते हैं.

दिगंबरः—प्रतिलेखन कमंडलु तो, संयम पालनेअर्थे भगवंतने कहे हैं; परंतु वस्त्र किसवास्ते ?

श्वेतांबरः—वस्त्र भी भगवंतने संयम पालनेवास्तेही कथन करे हैं. क्योंकि, प्रायः अल्पसत्व होनेकरके, उघाडे अंगोपांगके देखनेसें उत्पन्न हुआ है, चित्तभेद (विकार) जिनोंको, ऐसें पुरुषोंकरके स्त्रियां, अभिभवको प्राप्त होती हैं; जैसें उघाड़ी घोड़ीयां घोडायोंसें. इसवास्ते वस्त्र संयमके साधक है, परंतु बाधक नहीं है. तथा स्त्रियां अबला होती हैं, तिनोंका पुरुष बलात्कारसें भी उपभोग करते हैं, इसवास्ते तिनको वस्त्रविना संयमबाधाका संभव आता है. पुरुषोंको तैसें नहीं आता है, ऐसें कहो तो, सो ठीक है. परंतु, एतावता वस्त्रसें चारित्राभाव सिद्ध नहीं हुआ; किंतु आहारादिकीतरें, वस्त्र भी चारित्रके उपकारक हुए.

दिगंबरः—जिन अल्पसत्ववाली स्त्रियोंको, प्राणीमात्र भी अभिभव कर सकते हैं तो, ऐसी स्त्रियां, महासत्ववानोंकरके साध्य जो मोक्षमार्ग, तिसको कैसें साध सकती हैं ?

श्वेतांबरः—यह कहना अयुक्त है. क्योंकि, यहां मोक्षसाधनमें, जिसके शरीरका सामर्थ्य अधिक होवे, सोही जीव मोक्ष साधनेके योग्य

* अभिक्रियते घाताय प्राणिनोस्मिन्नित्यधिकरणमिति ॥

होना चाहिये, ऐसा नियम नहीं है। अन्यथा, पंगु, वामन, अत्यंत रोगी पुरुषोंको, स्त्रियांकरके अभिभव होते देखीए हैं, तब तो, वे भी, तुच्छ शरीरसत्त्ववाले पुरुष, कैसे मुक्तिके साधनेवाले सत्त्वके भागी होंगे ? जैसे तिनके शरीरसामर्थ्यके न हुए भी, मोक्षसाधनसामर्थ्य अविरुद्ध है, तैसें स्त्रियांको भी जानना।

दिगंबरः—जेकर वस्त्रोंके हुए भी, मोक्ष मानते हो तो, गृहस्थको मोक्ष क्यों नहीं मानते हो ?

श्वेतांबरः—गृहस्थको ममत्व होनेसे, मोक्ष नहीं होवे है। क्योंकि, ऐसा नहीं हो सकता है कि, गृहस्थी वस्त्रमें ममत्व न करे। और जो ममत्व है, सोही परिग्रह है; ममत्वके हुए, नग्न भी परिग्रहवान् होता है; और शरीरमें भी ममत्वके होनेसे परिग्रहवान् होता है। और आर्थिका (साध्वी) को तो, ममत्वके अभावसे, उपसर्गादि सहनेकेवास्ते, वस्त्र परिग्रह नहीं है। यतिमुनिको भी ग्राम घर वनादिमें रहनेवालेको, ममत्वके अभावसे परिग्रह नहीं है। और जिन महात्मा स्त्रियोंने अपने आत्माको वश करा है, तिनको किसी वस्तुमें भी मूर्च्छा नहीं है।

यतः ॥

निर्वाणश्रीप्रभवपरमप्रीतितीव्रस्पृहाणां ।

मूर्च्छा तासां कथमिव भवेत् कापि संसारभागे ॥

भोगे रोगे रहसि सजने सज्जने दुर्जने वा ।

यासां स्वांतं किमपि भजते नैव वैषम्यमुद्राम् ॥ १ ॥

भावार्थः—निर्वाणरूप लक्ष्मीके उत्पन्न करनेमें परमप्रीतिकरके तीव्र उत्कट स्पृहा अभिलाषा है जिनोंकी, और जिनोंका स्वांत—अंतःकरण—मन भोगमें रोगमें एकांतमें समुदायमें सज्जनमें वा दुर्जनमें इत्यादि किसीभी संसारक भागमें वैषम्यमुद्रा—अशांतताविकारादिको नहीं भजता है, तैसी महात्मा स्त्रियोंको मूर्च्छा कैसे होवे ? कदापि न होवे इत्यर्थः ॥

तथा चागमेप्युक्तम् ॥

“॥ अवि अप्पणोवि देहंमि नायरंति ममाइयम् ॥” इति ॥

महात्माजन अपनी देहमें भी ममत्व नहीं आचरण करते हैं. इस कहनेसें मूर्च्छा हेतु होनेसें, यह भी पक्ष, खंडित होगया. शरीरवत् वस्त्रको भी, किसीको मूर्च्छाहेतुत्वके अभाव होनेसें, परिग्रहरूपत्वका अभाव है.

अपिच । शरीर भी मूर्च्छाका हेतु है, वा नहीं ? नहीं, ऐसा तो, नहीं कह सकते हो. क्योंकि, शरीरके बिना मूर्च्छा होतीही नहीं है. यदि हेतु है, तो वस्त्रकीतरें किसवास्ते त्याज्य नहीं है ? दुस्त्याज्य है इसवास्ते ? वा मुक्तिका अंग है इसवास्ते ? दुस्त्याज्य है इसवास्ते, ऐसे कहो तो, सो सर्वपुरुषोंको, वा किसी किसीको ? सर्वकों कहो तो ठीक नहीं. क्योंकि, बहुत बन्धिप्रवेशादिकसें शरीर त्यागते हुए दीखते हैं. किसी किसीको कहो तो, सो ठीक है; जैसें किसीको शरीर दुस्त्याज्य है, तैसेंही वस्त्र भी हो. और मुक्तिअंग कहो तो, वस्त्र भी अशक्तको स्वाध्यायादि उपष्टंभरूप होकर, मुक्तिका अंग है, इसवास्ते त्याज्य नहीं है. यदि जीवसंसक्तिहेतुत्वसें कहो तो, शरीरको भी जीवसंसक्तिहेतुसें परिग्रहरूप मानना चाहिये. क्योंकि, कृमि गंडुक (गंडोये) आदिकी उत्पत्ति तिसमें भी प्रतिप्राणीको विदित है. यदि कहो कि, शरीरप्रति तो, परम यत्न होनेसें सो अदुष्ट है तो, यही न्याय वस्त्रको लगानेमें क्या बाध है ? तिसवखत क्या तिस न्यायको वायस (काग) भक्षण कर गये हैं ? वस्त्रका भी सीवन, क्षालन, इत्यादि यत्नसेंही होता है, इसवास्ते तिसमें भी जीवसंसक्तिका संभव कहाँ रहा ? इसवास्ते वस्त्रसद्भावके हुए चारित्राभाव सिद्ध नहीं हुआ. तिसवास्ते सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयके अभावकरके स्त्रियोंको पुरुषोंसें हीनता नहीं है. ॥ १ ॥

और विशिष्टसामर्थ्यके न होनेसें स्त्रीको मोक्ष नहीं, यह भी कथन, ठीक नहीं है; क्या सप्तम नरकमें जानेके अभावसें विशिष्टसामर्थ्य नहीं है ? वादादिलब्धियोंसें रहित होनेसें ? अल्पश्रुतवाली होनेसें ?

वा अनुपस्थाप्यता, पारांचितकप्रायश्चित्तोंसे रहित होनेसे ? प्रथम पक्ष ठीक नहीं. जिसवास्ते यहां सप्तम पृथ्वीगमनाभाव, जिस जन्ममें स्त्रियोंको मुक्तिगामीपणा है, तिसही जन्ममें कहते हो, वा सामान्यतः कहते हो ? प्रथम पक्षमें तो, चरमशरीरियोंके साथ अनेकांत है, अर्थात् यदि आद्य पक्ष मानो, तब तो पुरुषोंको भी, जिस जन्ममें मोक्ष मिलता है, तिसही जन्ममें सप्तम पृथ्वीगमनयोग्यत्व होता नहीं है, इसवास्ते तिनको भी मुक्तिके अभावका प्रसंग मानना पड़ेगा.

यदि दूसरा पक्ष कहते हो तो, तुमारा यह आशय होगा. सर्वोत्कृष्ट पदकी प्राप्ति, सो सर्वोत्कृष्ट अध्यवसायसें होवे. और सर्वोत्कृष्ट ऐसों दोही पद हैं. सर्वदुःखस्थानरूप सप्तमी नरकपृथ्वी, और सर्वसुखस्थान ऐसा मोक्ष. तब तो जैसे स्त्रियोंको तिसके गमन योग्य मनोवीर्याभावके हुए, सप्तम पृथ्वीगमन आगममें निषिद्ध है, तैसें मोक्ष भी, तथाविध शुभमनोवीर्याभावके हुए, नहीं होना चाहिये. प्रयोग भी इसतरें है. । मुक्तिका कारणरूप, ऐसा शुभ-मनोवीर्य परम प्रकर्ष, स्त्रियोंमें है नहीं, क्योंकि, सो प्रकर्ष है इसवास्ते, सप्तम पृथ्वीगमनकारणरूप, अशुभमनोवीर्य प्रकर्षकीतरें. । इति पूर्वपक्षः।

उत्तरपक्षः—यह सर्व अयुक्त है; क्योंकि, व्याप्तिही नहीं है. बहिर्व्याप्तिमात्रसें हेतुका गमकत्व नहीं हो सकता है; अंतर्व्याप्ति भी चाहिये; अन्यथा, तत्पुत्रत्वात् यह हेतु भी गमकत्व होगा. अंतर्व्याप्ति है सो प्रतिबंधबलसेंही सिद्ध होती है; और यहां तो प्रतिबंध है नहीं, इसवास्ते यह हेतु संदिग्धविपक्षव्यावृत्तिवाला है, सो चरम शरीरीसें निश्चित व्यभिचारवाला है, क्योंकि, तिनको सप्तम पृथ्वीगमनहेतुरूप मनोवीर्य-प्रकर्षके अभाव हुए भी, मुक्ति हेतुरूप मनोवीर्यप्रकर्षका सद्भाव है. तैसेंही मत्स्य, इस उदाहरणमें भी व्यभिचार आवेगा; तिनको सप्तम पृथ्वीगमन-हेतु मनोवीर्यप्रकर्षके हुए भी, मोक्षहेतु शुभमनोवीर्य प्रकर्ष नहीं होता है. तथा जिनको अधोगमनशक्ति थोड़ी है, तिनकों उर्ध्वगमनप्रति भी थोड़ी-ही शक्ति है, ऐसा नियम नहीं है. क्योंकि, भुजपरिसर्पादिमें व्यभिचार

आता है. देखो ! भुजपरिसर्प नीचे दूसरी पृथ्वीतक जाता है, तिससें नीचे न ही जाता है; पक्षी तीसरीतक; चतुष्पद चतुर्थीतक; उरग पांचमीतक; और सर्व उत्कृष्टसें उर्ध्व सहस्रारपर्यंत जाते हैं. और यह भी नियम नहीं है कि, उत्कृष्ट अशुभ गति उपार्जन सामर्थ्याभावके हुए, उत्कृष्ट शुभ गति उपार्जनसामर्थ्य भी नहीं होना चाहिये; अन्यथा तो, प्रकृष्टशुभगति उपार्जनसामर्थ्याभावके हुए, प्रकृष्ट अशुभ गति उपार्जनसामर्थ्य भी नहीं है, ऐसे क्यों न होजावे ? और तैसें हुए, अभव्य जीवोंको सप्तम नरकगमन नहीं होवेगा, इस वास्ते सप्तम पृथ्वीगमनायोग्यत्वको लेके, विशिष्टसामर्थ्यासत्त्व, स्त्रियोंको नहीं कह सकते हो.

अथ । वादादिलब्धिरहित होनेसें, स्त्रियोंको विशिष्टसामर्थ्याभाव है; जिसमें निश्चित इस लोकसंबंधी, वाद, विक्रिया, चारणादिलब्धियोंका भी हेतु, संयमविशेषरूप सामर्थ्य नहीं है, तिसमें मोक्षहेतु संयमविशेषरूप सामर्थ्य होवेगा, ऐसा कौन बुद्धिमान् मानेगा ?

श्वेतांबरः—यह कहना शोभानिक नहीं है, व्यभिचार होनेसें; माषतुषादिमुनियोंको तिन लब्धियोंके अभाव हुए भी, विशिष्टसामर्थ्यकी उपलब्धि होनेसें. और लब्धियोंको संयमविशेषहेतुकत्व आगमिक नहीं है. क्योंकि, आगममें लब्धियोंका हेतु, कर्मका उदय, क्षय, क्षयोपशम, और उपशम कहा है. तथा चक्रवर्त्ति, बलदेव, वासुदेव, आदि लब्धियां, संयमहेतुक नहीं है. होवे संयमहेतुक लब्धियां, तो भी स्त्रियोंमें तिन सर्व लब्धियोंका अभाव कहते हो, वा कितनीक लब्धियोंका ? आद्य पक्ष तो नहीं. क्योंकि, चक्रवर्त्यादि कितनीक लब्धियोंका तिनमें अभाव है; परंतु आमर्षौषध्यादि बहुतसी लब्धियां तो तिनमें है. और दूसरे पक्षमें व्यभिचार है; पुरुषोंको सर्व वादादि लब्धियोंके अभाव हुए भी, विशिष्टसामर्थ्य अंगीकार करनेसें, वासुदेवरहित, अतीर्थकरचक्रवर्त्यादिकोंको भी मोक्षका संभव होनेसें.

और अल्पश्रुतपणा भी, मुक्तिकी प्राप्तिकरके, अनुमित विशिष्टसामर्थ्यवाले माषतुषादिकोंके साथ अनेकांत होनेसें, कहनेयोग्यही नहीं है.

अनुपस्थाप्यतापारांचितककरके शून्य होनेसें स्त्रियोंमें विशिष्टसामर्थ्याभाव है, यह भी कहना अयुक्त है. क्योंकि, तिनके निषेधसें विशिष्टसामर्थ्यका अभाव नहीं होता है. क्योंकि, योग्यताकी अपेक्षाहीसें शास्त्रोंमें नानाप्रकारका विशुद्धिका उपदेश है. ।

उक्तं च ॥

संवरनिर्जररूपो, बहुप्रकारस्तपोविधिः शास्त्रे ॥

रोगचिकित्साविधिरिव, कस्यापि कथंचिदुपकारी ॥

भावार्थः—जैसें रोग चिकित्साका विधि, किसीको किसीतरें, और किसीको किसीतरें, उपकारी होता है, तैसेंही शास्त्रमें कहा हुआ, संवरनिर्जरारूप, बहुप्रकारवाला तपका विधि उपकारी है. ॥ २ ॥

पुरुष वंदन नहीं करते हैं, इसकरके भी, स्त्रियोंमें हीनता सिद्ध नहीं होती है. क्योंकि, तैसा अनभिबंद्यत्व, सो भी सामान्यतः मानते हो, वा गुणाधिक पुरुषकी अपेक्षासें मानते हो? आद्यपक्ष असिद्ध है. क्योंकि, तीर्थंकरकी माता आदिको, पुरंदरादि, इंद्रादि भी पूजते हैं, नमस्कार करते हैं तो, शेषपुरुषोंका तो कहनाही क्या है? और दूसरे पक्षमें आचार्य अपने शिष्योंको वंदना नहीं करते हैं, तब तो, आचार्यसें हीन होनेसें, शिष्योंको मुक्ति न होनी चाहिये; परंतु ऐसे हैं नहीं क्योंकि, चंद्ररुद्रादिके शिष्योंको मुक्ति हुई शास्त्रोंमें सुननेमें आती है तथा गणधरोंको भी तीर्थंकर नमस्कार नहीं करते हैं; तब तो, तिनको भी हीन गिणने चाहिये, और तिनको मोक्ष न होना चाहिये! इसवास्ते मूल हेतु व्यभिचारी है. अपरं च । चतुर्वर्णसंघ, सो तीर्थंकरोंको बंध है; और स्त्रियों भी संघमेंही है, इसवास्ते जे संयमवती हैं, तिनको तीर्थंकरबंधत्व सिद्ध हुआ; तब तो, स्त्रियोंको हीनत्व कहां रहा! ॥ ३ ॥

स्मारणादिके न करनेसें. यह पक्ष अंगीकार करोगे, तब तो, केवल आचार्यकोही मुक्ति होनी चाहिये; शिष्योंको नहीं. क्योंकि, वे स्मारणादि करते नहीं हैं.

दिगंबरः—पुरुषविषे स्मारणादि अकर्तृत्व यहां विवक्षित है, नतु स्मारणादि अकर्तृत्वमात्र; और नहीं, स्त्रियां कदापि पुरुषोंको स्मारणादि करती हैं.

श्वेतांबरः—तब तो ‘पुरुषविषे’ ऐसैं कहना योग्य था. यदि ऐसैं कहो, तो भी असिद्धता दोष है. क्योंकि, कितनीक सर्वज्ञके आगमके रहस्यकरके वासित है सप्तधातु जिनोंकी, ऐसी स्त्रियोंको किसी जगें तथाविध अवसरमें स्वलायमान वृत्तिवाले साधुको स्मारणादिका करना, विरोध नहीं है. ॥ ४ ॥

अथ अमहर्द्धिक होनेसैं स्त्रियां पुरुषोंसैं हीन हैं. यह पक्ष भी ठीक नहीं है. क्या आध्यात्मिक समृद्धिकी अपेक्षा अमहर्द्धिकत्व है, वा बाह्य-समृद्धिकी अपेक्षा? प्रथम पक्ष तो नहीं. क्योंकि, आध्यात्मिकसमृद्धि, सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय है; तिसका तो, स्त्रियोंमें भी सद्भाव है. बाह्य-समृद्धिवाला पक्ष भी ठीक नहीं. क्योंकि, तीर्थंकरकी ऋद्धिकी अपेक्षा गणधरादि, और चक्रधरादिकी अपेक्षा अन्य क्षत्रियादि, सर्व अमहर्द्धिक हैं; तब तो, गणधरादिकोंको भी मोक्ष न होना चाहिये.

दिगंबरः—पुरुषवर्गकी तीर्थंकररूप जो महती समृद्धि है, सो स्त्रियोंमें नहीं है; इसवास्ते स्त्रियोंको अहमर्द्धिकपणेकी हम विवक्षा करते हैं.

श्वेतांबरः—इस तुम्हारे कथनमें भी असिद्धता दोष है. कितनीक परम पुण्यपात्रभूत स्त्रियोंको भी, तीर्थंकरत्वके अविरोधसैं; तिसके विरोधसाधक किसी भी प्रमाणके अभावसैं, तुम्हारे कहे अनुमानको अद्यापि विवादास्पद होनेसैं, और अनुमानांतरके अभावसैं. ॥ ५ ॥

मायादि प्रकर्षवत्त्वसैं मोक्ष नहीं. यह भी कथन श्रेष्ठ नहीं है. मायादि प्रकर्षवत्त्वको, स्त्रीपुरुष दोनोंमें तुल्य देखनेसैं, और आगममें सुननेसैं; तथा नारदादि चरमशरीरीको भी मायादि प्रकर्षवत्त्व सुनते हैं. तिस-वास्ते स्त्रियोंको, पुरुषोंसैं हीनत्व होनेसैं निर्वाण नहीं है, यह कहना अच्छा नहीं है. ॥ ६ ॥

दिगंबरः—निर्वाणकारण ज्ञानादि परम प्रकर्ष, स्त्रियोंमें नहीं है; परम प्रकर्ष होनेसे, सप्तम पृथ्वीगमनकारण पाप परमप्रकर्षवत्.

श्वेतांबरः—यह कहना ठीक नहीं है. क्योंकि, “ परम प्रकर्ष होनेसे ” यह तुमारा हेतु व्यभिचारी है; स्त्रियोंमें मोहनीय स्थिति परम प्रकर्ष, और स्त्रीवेदादि परम प्रकर्षके बांधनेके अशुभ अध्यवसायके होनेसे.

दिगंबरः—स्त्रियोंको मोक्ष नहीं है, परिग्रहवत्त्व होनेसे, यहस्थवत्.

श्वेतांबरः—यह कहना भी अच्छा नहीं है; वस्त्रादि धर्मोपकरणोंको अपरिग्रहपणे अच्छीतरेंसे सिद्ध करनेसे. ॥ इति स्त्रीनिर्वाणे संक्षेपेण बाध-कोद्धारः ॥

और साधक प्रमाणोंका उपन्यास ऐसे है । कितनीक मनुष्यस्त्रिया निर्वाणवाली है, अविकलनिर्वाणके कारण होनेसे, पुरुषवत्. निर्वाणका अविकलसंपूर्णकारण तो सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय है, वे तो स्त्रियांविषे हैही. और नपुंसकादिविपक्षसे अत्यंतव्यावृत्त होनेसे, यह हेतु, विरुद्ध अनेकांतिक भी नहीं है. तथा मनुष्यस्त्रीजाति, किसी व्यक्तिकरके मुक्तिके अविकल कारणवाली है, प्रव्रज्याकी अधिकारित्व होनेसे, पुरुषवत्. और यह असिद्धसाधन भी नहीं है. “ गुर्विणी बालवच्छा य पद्मावेतं न क-प्पइ ” गुर्विणी—गर्भवती, और बालकवाली स्त्री, प्रव्रज्या देनेको नहीं कल्पती है. इस सिद्धांतकरके तिनको अधिकारीपणा कथन करनेसे विशेष प्रतिषेध (निषेध) को शेष स्त्रियोंको अनुज्ञा होनेसे. ॥ इति स्त्री-मुक्तिव्यवस्था ॥

यह पूर्वोक्त कथन (केवलिभुक्ति, और स्त्रीमुक्ति) प्रमाणनय तत्त्वा लोकालंकारसूत्रकी रत्नाकरावतारिका नामा लघुवृत्तिसे दिग्दर्शनमात्र करा है; और अन्यग्रंथोंमें तो, बहुत विस्तारसे खंडन लिखा हुआ है, सो भी काम पड़ेगा तो लिखेंगे. इसवास्ते दिगंबरोंके सर्व तर्कशास्त्र, श्वेतांबरोंके तर्कशास्त्रोंने दले हुए हैं; यदि कोई विनादली तर्क दिगंबरोंपास है तो प्रकट करें; तिसको भी श्वेतांबर दलेंगे.

अथ कुछक दिगंबरश्वेतांबरके मतका स्वरूप, प्रश्नोत्तररूप करके लिखते हैं. क्योंकि, पूर्वोक्त कथन प्रायः चर्चाचंचूही समझ सकेंगे, और यह प्रश्नोत्तररूपकथन तो, थोड़ी समझवाले भी समझेंगे. ॥ “प्रश्न—दिगंबर” ॥
“ उत्तर—श्वेतांबर ” ॥

प्रश्नः—भगवान् तो भुवनतिलकरूप है, इसवास्ते तिनको तिलक नहीं करना चाहिये.

उत्तरः—यह कहना अनभिज्ञोंका है. क्योंकि, जैसे भगवान् तीन लोकके छत्ररूप है, तो भी, तिनके मस्तकोपरि छत्र धारण करनेमें आवे हैं; तैसेही तिलक भी जाणना. तथा तुमारे संस्कृत हरिवंशपुराणमें भी, भगवंतको तिलक करना लिखा है.

तथाहि ॥

त्रैलोक्यतिलकस्यास्य ललाटे तिलकं महत् ॥

अचीकरन्मुद्गेंद्राणी शुभाचारप्रसिद्धये ॥ १ ॥

भावार्थः—तीन लोकके तिलक इस भगवंतके ललाटमें खुशी होके इंद्राणी शुभाचारकी प्रसिद्धिवास्ते तिलक करती हुई. १ ।

प्रश्नः—लेपरहित, और रागद्वेषरहित, अरिहंतको विलेपन किसवास्ते करते हो ?

उत्तरः—हरिवंशपुराणमेंही लिखा है.

यतः ॥

जिनेंद्रांगमथेंद्राणी दिव्यामोदिविलेपनैः ॥

अन्वलिप्यत भक्त्यासौ कर्मलेपविघातनम् ॥ १ ॥

भावार्थः—जिनेंद्रके अंगको अथ इंद्राणी प्रधान आनंद देनेवाले विलेपनोंकरके भक्तिसें लेपन करती हुई. कैसा विलेपन ? कर्मलेपका घातक । १ ।

और पाहुडवृत्तिमें पंचामृतस्नात्र करना भी लिखा है. और जिनवर तो, त्रिभुवनके छत्र है तो, तुम तिनके ऊपर छत्र क्यों करते हो ? जैसे भगवान् त्रिभुवनतिलक है, तैसेही त्रिभुवनछत्र भी है; तब तिलक नहीं करना, और छत्र करना, यह कैसा अन्याय है !

प्रश्नः—भगवंतको तुम आभरण किसवास्ते चडाते हो ?

उत्तर:-हमारे तो पूर्वधर श्रीसंघदासगणिक्षमाश्रमणजीने, व्यवहार-सूत्रकी भाष्यमें कहा है कि, जिनराजके बिंबको बहुत आभरणोंसे शृंगार करना; जिसको देखके भव्यजनोंके चित्तमें बहुत आनंद उत्पन्न होवे. और तत्त्वार्थसूत्रादि पांचसौ (५००) ग्रंथके कर्ता श्रीउमास्वातिवाचकने, पूजापटलनामा ग्रंथमें २१ प्रकारकी जिन-राजकी पूजा कही है; जिसमें भी आभरणपूजा कही है. तथा अन्य आगमोंमें भी, आभरण चढानेका पाठ है. इसवास्ते चढाते हैं. परंतु तुमारे मतके घत्ताबंध हरिवंशपुराणमें ऐसा पाठ है. ।

यतः ॥

“॥ एण्हविउण खीरसायरजलेण भूसिओ आहरणउज्जलेण ॥”

इत्यादि

भाषार्थ:-क्षीरसारगके जलकरके स्नान करवाके देदीप्यमान आभरणोंकरके भूषित करा । इत्यादि-तो फिर तुम, प्रतिमाको आभरण क्यों नहीं पहिराते हो ?

दिगंबर:-ऊपरके तीन उत्तरमें जो हमारे ग्रंथोंकी साक्षी दिनी है, सो तो ठीक है; परंतु हम तो ग्रंथोक्तवातें जन्मकल्याणककी अपेक्षा मानते हैं.

श्वेतांबर:-तुम जो भगवंतको नित्य स्नान कराते हो, और यात्राकरके शुद्ध जल ल्याके तिस यात्राजलसे स्नान कराते हो, सो किस कल्याण-ककी अपेक्षा कराते हो ? जेकर कहोगे जन्मकल्याणककी अपेक्षा कराते हैं, तब तो, साथही वस्त्राभरण कटक कुंडल मुकुटादि भी पहिराने चाहिये, ग्रंथोक्त होनेसे. जेकर कहोगे, योगावस्थाकी अपेक्षा कराते हैं, तब तो, पानीसे स्नान करानेसे तुम लोक अपराधी ठहरोगे. तथा जब तुम लोक भगवंतके बिंबको रथ, वा पालकी, वा तामझाममें आरोहण करते हो, तब कौनसी अवस्था मानते हो ? जेकर कहोगे जन्मकल्याणक, वा, गृहस्थावस्था मानके करते हैं, तब तो, वस्त्राभरणकटककुंडलमुकुटादि भी पहिराने चाहिये. जेकर कहोगे, योगावस्थाकी अपेक्षा करते हैं, तब तो, बहुत अनुचित काम करते हो !! क्योंकि, भगवंत तो योग लीयां-

पीछे किसी भी सवारीमें नहीं चढ़े हैं; तो, तुम किसवास्ते लोकोंमें भगवंतको योग लीयांपीछे सवारीमें चढ़नेवाले सिद्ध करते हो ?

दिगंबरः—यह तो हम, हमारी भक्तिसें करते हैं.

श्वेतांबरः—तब तो भक्तिसें कटककुंडलादि क्यों नहीं पहिराते हो ?

दिगंबरः—कटककुंडलमुकुटादि पहिरानेसैं जिनमुद्रा बिगड जाती है.

श्वेतांबरः—रथमें वा पालकीमें बैठे हुए भगवंतकी मुद्रा भी, बिगड जाती है. क्योंकि, चाहो नग्न होवे, चाहो वस्त्रादिसहित होवे; जब रथ, वा पालकीमें बैठा होवेगा, तब तिसको कोइ भी त्यागी, वा योगी, वा योगमुद्राका धारक, नहीं कहेगा. जैसें तुमारे मतके नग्न मुनिको रथमें, वा पालकीमें, वा हाथी, घोडे, ऊंट, ऊपर चढाके लिये फिरे तो, तिसको कोइ भी दिगंबरी वंदन नहीं करेगा; और न उसको मुनिअवस्था, वा योगमुद्रा, मानेगा. इसवास्ते हठ छोडके श्वेतांबरोंकीतरें पूजा भक्ति, चंदन, पुष्प, धूप, दीपाभरणारोहणसैं करो, जिससैं तुम्हारा कल्याण होवे. और श्वेतांबरमतमें तो, जिनप्रतिमाका अचिंत्य स्वरूप माना है; इसवास्ते सर्व अवस्था जिनप्रतिमामें विराजमान है. भक्तजन जैसी अवस्था कल्पन करे हैं, तैसीही अवस्था तिनको भान होती है. और भगवंतकी सर्व अवस्था सम्यग्दृष्टिको आनंदोत्पादक है. इसी हेतुसैं जिनमतमें पंच-कल्याणक कहे हैं. और कल्याणक शब्दका यह अर्थ है कि, पांच वस्तु गर्भ १, जन्म, २, दीक्षा ३, केवल ४, और निर्वाण ५, में उत्सवभक्ति करनेसैं, जो, भक्तजनोंको कल्याण अर्थात् मोक्षका हेतु होवे, सो कल्याणक. । हम दिगंबरोंको पूछते हैं कि, तुम जिन जन्मकल्याणककी भक्ति करते हो, सो धर्म मोक्षका मानके करते हो, वा पाप जानके? जेकर धर्म मोक्षका हेतु जानकर करते हो, तब तो, चिरंजीवी रहो; तुमारी भक्ति ठीक है, सदैव कर्त्तव्य है. जेकर पाप मानते हो, तब तो अल्पबुद्धि हो. क्योंकि, लाखों द्रव्य खरचके, पापोपार्जन करके, दुर्गति जाना, यह मूर्खोंहीका काम है; दोनों हानियें करनेसैं, दूढकवत्. जैसें दूढकमतवाले दीक्षामहोत्सव करते हैं, साधुसाध्वीके दर्शनोंको जाते हैं, साधुसाध्वीयोंके

बिमार हुए दवाइ आदि करते हैं, पर्युषणादिकोंमें मोदकादिकी प्राभवना करते हैं, तपस्या करनेवालेको पारणा कराते हैं, इत्यादि अनेक कामोंमें हजारों द्रव्य खरचते हैं; और फिर कहते हैं कि, यह तो संसार खाता है. वाहरे वाह !!! बल्लडेके भाइयोंने बहुतही ज्ञान संपादन करा !

प्रश्नः—भगवंतकी प्रतिमाके शरीरमें अन्यवस्तु कुछ भी जडनी न चाहिये, निःकेवल जिस दल, वा धातुकी प्रतिमा होवे, सोही होना चाहिये.

उत्तरः—तुम्हारे मतकी द्रव्यसंग्रहकी वृत्तिमेंही लिखा है कि, जिनप्रतिमाका उपगूहन (आलिंगन) जिनदासनामा श्रावकने करा. और पार्श्वनाथकी प्रतिमाको लगा हुआ रत्न, माया ब्रह्माचारीने अपहरण कराचुराया.

तथा च तत्पाठः ॥

“॥ मायाब्रह्मचारिणा पार्श्वभट्टारकप्रतिमालभरत्नहरणं कृतमिति ॥”

प्रश्नः—जिनप्रतिमाके किसी भी अंगमें चंदनादि सुगंधका लेपन, न करना चाहिये.

उत्तरः—तुम्हारे मतके भावसंग्रहमें जिनप्रतिमाके चरणोंमें चंदनका सुगंध लेपन करना लिखा है.

तथाहि । गाथा ॥

चंदणसुअंधलेओ जिणवरचलणेसु कुणइ जो भविओ ॥

लहइ तणु विक्किरियं सहावससुअंधयं विमलं ॥ १ ॥

भावार्थः—जिनवरके चरणोंमें जो भव्यजीव चंदनसुगंधका लेप करे, सो स्वाभाविक सुगंधसहित निर्मल वैक्रिय शरीर पामे, अर्थात् देवता होवे. ॥ तथा पद्मनंदिकृत अष्टकमें लिखा है.

यतः ॥

“॥ कर्पूरचंदनमितीव मयार्पितं सत्
त्वत्पादपंकजसमाश्रयणं करोतीत्यादि ॥”

भाषार्थः—मेरा अर्पण करा हुआ कर्पूरचंदन, हे जिनेंद्र! तुमारे चरण-कमलमें सम्यक् आश्रय करता है. इत्यादि* ॥

तथा त्रैलोक्यसारमें लिखा है. ।

यतः ॥

“॥ चंदणाहिसेषणञ्चणसंगीयवलोयमंदिरेहिंजुदा
कीडणगुणणगिहहिअविसालवरपट्टसालाहिं ॥”

भाषार्थः—चंदनकरके अभिषेक नृत्य संगीत अवलोकन मंदिरमें युक्त क्रीडाकरण गुणणा गृहस्थोंने विशालप्रधान पट्टशालांकरके ॥

तथा तत्त्वार्थसूत्रकी राजवार्त्तिक नामा अकलंकदेवकृत टीकामें लिखा है कि, मंदिरका गंधमाल्य (पुष्पशाला) धूपादि जो चुरावे, सो अशुभ-नाम कर्म उपार्जन करे.

तथाहि ॥

“॥ निध्यादर्शनपिशुनतास्थिरचित्तस्वभावताकूटमानतुलाक-
रणसुवर्णमणिरत्नाद्यनुकृतिकुटिलसाक्षित्वांगोपांगच्यावनव-
र्णगंधरसस्पर्शान्यथाभावनयंत्रपंजरक्रियाद्रव्यांतरविषयसं-
बंधनिकृतिभूयिष्ठतापरनिंदात्मप्रशंसानृतवचनपरद्रव्यादान-
महारंभपरिग्रहोज्ज्वलवेषरूपमदपरूषासत्यप्रलापाक्रोशमौख-
र्यसौभाग्योपयोगवशीकरणप्रयोगपरकुतूहलोत्पादनालंकारा-
दरचैत्यप्रदेशगंधमाल्यधूपादिमोषणविलंबनोपहासेष्टकापा-
कदवाग्निप्रयोगप्रतिमायतनप्रतिश्रयारामोद्यानविनाशतीव्र-
क्रोधमानमायालोभपापकर्णोपजीवनादिलक्षणः स एष स-
र्वोशुभस्य नात्मनः ॥ ”

अब विचार करना चाहिये कि, गंध पुष्प मालादि चढावनेही नहीं; ऐसा होवे तो, मंदिरमें गंधमाल्यधूपादि कहाँसे आवेंगे ? और तिनके वि-

* पूर्वोक्त काव्यकी टीकामें ऐसे लिखा है—अनेन वृत्तेन चंदनं प्रक्षिप्यते टीपकां च दीयते—इस वृत्तको पढके चंदनप्रक्षेप करिये और चरणोपरि टिपिका (तिउक) करिय. ॥

यमान न हुए, चुरावेगा क्या ? और अशुभनाम कर्मका आश्रव (आग-मन) किसको हावेगा ? तब तो, स्वामी अकलंकदेवका लिखना तुमारी श्रद्धा मूजिब मिथ्या ठहरेगा ! इसवास्ते सिद्ध होता है कि, दिगंबरोंको अपने चलाये—माने मतका आप्रहही है, न तु न्यायबुद्धि. ॥

प्रश्नः—जिनवरकी प्रतिमाको लिंगका आकार करना चाहिये. क्योंकि, भगवान् तो, दिनरात्र वस्त्ररहितही होते हैं. इसवास्ते जिस जिनप्रतिमाको लिंगका आकार न होवे, सो जिनप्रतिमाही नहीं है. क्योंकि जिनवरके रूपसमानही जिनबिंब बनाना चाहिये; अन्यथा ध्यानमें विलंब होता है. इसवास्ते वस्त्रादिककी शोभा करे, स्थिर ध्यान नहीं हो सकता है.

उत्तरः—जिनेंद्रके तो अतिशयके प्रभावसें लिंगादि नहीं दीखते हैं, और प्रतिमाके तो अतिशय नहीं है, इसवास्ते तिसके लिंगादि दीख पडते हैं; तो फिर, जिनवरसमान तुमारा माना जिनबिंब कैसे सिद्ध हुआ? अपितु नहीं सिद्ध हुआ. और तुमारे मतके खडे योगासन लिंगवाली प्रतिमाके देखनेसें, स्त्रियोंके मनमें विकृति (विकार) होनेका भी संभव है; जैसें सुंदर भग कुचादि आकारवाली स्त्रीकी मूर्ति देखनेसें पुरुषके मनमें विकृति होवे है. और लिंग देखनेसें जिनप्रतिमा, सुभग भी नहीं दीखती है. और उदयपुरके जिलेमें बागडदेशमें तुमारे मतके लिंगाकार प्रकट वाले नेमीश्वरादिके खडे योगके ऐसें बिंब हैं कि जिनके दर्शन करने-वास्ते सगे बहिनभाइ भी प्रायः साथ एककालमें नहीं जाते हैं. और अन्यमतवाले भी, ऐसे बिंबको देखके उपहास्य करते हैं. यद्यपि महादेवका केवल लिंगही अन्यमतवाले पूजते हैं, परंतु जिसने यह शिवजीका लिंग है, ऐसा नहीं सुना है, वो लिंगको प्रथमही देखनेसें नहीं जान सकता है कि, यह किसीका लिंग है. क्योंकि, उसमें लिंगकी पूरी पूरी आकृति नहीं है; किंतु केवल अव्यक्त एक पत्थरकी लंबीसी पिंडी दीखती है. तथापि, प्रायः संन्यासी लोक, नग्न होनेसें तिसके दर्शन नहीं करते हैं; ऐसा सुनते हैं.

और तुमने तो पुरुषाकार प्रतिमाके वृषणोंके ऊपर ऐसा लिंगाकार बनाया है कि, जिसको जो कोई देखेगा, तिसकोही अच्छा नहीं लगेगा; तो फिर, जिनवरसमान तुमारा जिनबिंब किसतरें सिद्ध हुआ ?

और जो तुम जिनसमान जिनका बिंब मानते हो, तब तो, जिनबिंबके भ्रमूह (भाफण) श्याम करने चाहिये; आंखें खुणसें लाल, डौले श्वेत, आना काला, कीकी अतिकाली, ऐसी बनानी चाहिये; दाडीमूँछ काली बनानी चाहिये; हाथपगके तले रक्त (लाल) करने चाहिये; जेकर ऐसैं न करोगे, तब तो, जिनवरसमान तुमारा जिनबिंब कदापि सिद्ध नहीं होवेगा.

तथा जैसा समवसरणमें जिनेश्वरका आकार है, तैसाही आकार तुम प्रतिमाका मानते हो; तब तो, पार्श्वनाथ भगवंतके शिरपर करा हुआ धरणेंद्रका सपर्पाकार छत्र क्यों बनाते, और मानते हों ? क्योंकि, धरणेंद्रने तो छद्मस्थावस्थामें खडे पार्श्वनाथ भगवंतके शिरपर छत्र फणाकारका करा था, नतु समवसरणमें बैठोंके. और जिस जिनेंद्रको बैठें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, तिसका बिंब खडे योग क्यों बनाते हो ? और जिनवरका रूप तो, लक्षभूषणोंके आकारवाला देदीप्यमान था; और तुमारी प्रतिमाका तो, तैसा रूप है नहीं. तो फिर, जिनस्वरूपका स्मरण तुमको कैसे हो सकता है ? और पार्श्वनाथ भगवंतका वर्ण तो, प्रियंगुवर्ण—मोरकी ग्रीवासमान था; और तुम तो श्याम, रक्त, पीत, श्वेतवर्णकी प्रतिमा बनाते हो. तो फिर, तदनुरूप कैसे सिद्ध हुई ? इसवास्ते कटक कुंडल मुकुटादि आभरणोंसंयुक्त, और धूप दीप नैवेद्य पुष्प फलादिसें जिनराजका पूजन करना चाहिये. क्योंकि दिगंबराम्नायके शास्त्रोंमें भी ऐसेही पूजाविधान लिखा है; सो यत्किंचित् लिखते हैं.

श्रीउमास्वामीने श्रावकाचार किया है, तिसमें पूजा प्रकरणमें ऐसैं लिखा है. ॥

रुानैर्वेलेपनविभूषितपुष्पवासदीपैः प्रधूपफलतंदुलपत्रपूगैः ॥
नैवेद्यवारिवसनैश्चमरातपत्रवादित्रगीतनृतस्वस्तिककोषदूर्वा ॥ १ ॥

इत्येकविंशतिविधा जिनराजपूजा चान्यत्
प्रियं तदिह भाववशेन योज्यम् ॥

भावार्थः—स्नान १, विलेपन २, पुष्प ३, वास ४, दीप ५, धूप ६, फल ७, तंदुल ८, पत्र ९, सुपारी १०, नैवेद्य ११, जल १२, वस्त्र १३, चामर १४, छत्र १५, वादित्र १६, गीत १७, नाटक १८, स्वस्तिक १९, कोष (भंडार) २०, और दूर्वा २१, यह इकवीस प्रकारकी श्रीजिनराजकी पूजा जाणनी, तथा और भी, जो प्रिय होवे, सो शुद्ध भावोंसे पूजनमें योजन करना.

तथा भगवदेकसंधिविरचित श्रीजिनसंहितामें ऐसे लिखा है. ॥

नित्यपूजाविधाने तु त्रिजगत्स्वामिनः प्रभोः ॥

कलशेनैककेनापि स्नापनं न विग्रह्यते ॥ १ ॥

विदध्यात्कलहमित्यादि—॥

भावार्थः—नित्यपूजाविधानमें त्रिजगत्स्वामी भगवान्को एक कलशसें भी स्नान जो नहीं कराते हैं, तिनको कलह कुलका नाश आदि प्राप्त होवे हैं, ऐसे जाणना.

तथा श्रीउमास्वामिविरचित श्रावकाचारमें ऐसे कहा है. ॥

प्रभाते घनसारस्य पूजा कुर्याज्जिनेशिनाम् ॥

तथा ॥

चंदनेन विना नैव पूजा कुर्यात्किदाचन ॥

भावार्थः—प्रभातके समय घनसार (वरास) से श्रीजिनराजकी पूजा करनी. । तथा—चंदनके विना कदापि पूजा नहीं करनी.

तथा वसुनंदीजिनसंहितामें ऐसे लिखा है. ॥

अनर्चितपदद्वंद्वं कुंकुमादिविलेपनैः ॥

बिंबं पश्यति जैर्नद्वं ज्ञानहीनः स उच्यते ॥ १ ॥

भावार्थः—कुंकुम (केसर) आदि सुगंधित द्रव्योंके लेपसें रहित चरण है जिसके, ऐसे जिनबिंबका जो दर्शन करता है, तिसको ज्ञानहीन पुरुष कहिये हैं.

तथा आराधना कथाकोषमें ऐसे लिखा है ॥

अहिछत्रपुरे राजा वसुपालो विचक्षणः ॥
 श्रीमज्जैनमते भक्तो वसुमत्यभिधा प्रिया ॥ १ ॥
 तेन श्रीवसुपालेन कारितं भुरनोत्तमम् ॥
 लसत्सहस्रकूटे श्रीजिनेन्द्रमदने शुभे ॥ २ ॥
 श्रीमत्पार्श्वजिनेन्द्रस्य प्रतिष्ठापापनाशिनी ॥
 तत्रास्ति चैकदा तस्या भूपतेर्वचनेन च ॥ ३ ॥
 दिने लेपं दधत्युज्ज्वैलेपशराः कलान्विताः
 मांसादिसेवकास्ते तु ततो राज्ञौ सलेपकः ॥ ४ ॥
 पतत्येव क्षितौ शीघ्रं कथ्यन्ते खिला भृशम् ॥
 एवं च कतिचिद्द्वारैः खेडाखिले नृपादिके ॥ ५ ॥
 तदैकेन परिज्ञात्वा लेपकारेण धीमता ॥
 देवताधिष्ठितां दिव्यां जिनेन्द्रप्रतिमां हि ताम् ॥ ६ ॥
 कार्यसिद्धिर्भवेद्यावत्तावत्कालं मुनिश्चलम् ॥
 अवग्रहं समादाय मांसादेर्मुनिपार्श्वतः ॥ ७ ॥
 तस्यां लेपः कृतस्तेन सलेपः संस्थितस्तदा ॥
 कार्यसिद्धिर्भवत्येवं प्राणिनां व्रतशालिनाम् ॥ ८ ॥
 तदासौ वसुपालेन भूभुजा परया मुदा ॥
 नानावस्त्रसुवर्णाद्यैः पूजितो लेपकारकः ॥ ८ ॥

भावार्थः—अहिछत्रपुरनामा नगरका राजा वसुपालनामा हुआ, जो विचक्षण और श्रीजैनधर्मका भक्त था, तिसकी राणीका नाम वसुमती था, तिस वसुपाल राजाने अपने वनवाये सहस्रकूट नामा श्रीपार्श्वनाथके मंदिरमें पापोंके नाश करनेवाली श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमा स्थापन करी; एकदा प्रस्तावे तिस राजाने लेपकारोंको श्रीपार्श्वनाथजीकी प्रतिमाके ऊपर लेप करनेकी आज्ञा करी, तब कलावान् लेपकार, दिनमें अतिशय

मेहनत करके लेप करते हैं, परंतु लेपकार मांसादिके सेबनेवाले होनेसे सो लेप रात्रिकेविषे जलदी भूमिऊपर गिर पड़ता है, जिससे लेपकारादि बहुत कदर्थनाको प्राप्त होते हैं. कितनेहीवार ऐसे करते रहें, परंतु लेप ठहरता नहीं है, और राजादि खेदको प्राप्त हुए; तब बुद्धिमान् एक लेपकारने तिस जिनेंद्रकी दिव्यप्रतिमाको देवताधिष्ठित जानके, जबतक कार्यसिद्धि न होवे, तबतक, अर्थात् तितने कालका मांसादि नहीं खानेका मुनिके पाससे नियम लेके, तिस प्रतिमाके ऊपर लेप करा; तब सो लेप ठहर गया. ऐसे व्रतशालि प्राणियोंको कार्यसिद्धि होवे हैं. तब वसपाल राजाने परमहर्षसे अनेक प्रकारके वस्त्रसुवर्णादिकोंकरके तिस लेपकारका पूजन करा.

वुनंदीकृत प्रतिष्ठापाठमें ऐसे लिखा है. ॥

कर्पूरैलालदंगादिद्रव्यमिश्रितचंदनैः ॥

सौगंधवासिताशेषदिङ्मुखैश्चयोजिनम् ॥ १ ॥

भावार्थः—सुगंधकरके वासित करी है संपूर्ण दिशायें जिनोंने, ऐसे कर्पूर, एलाफल (इलायची), लवंग, आदि द्रव्योंकरके मिश्रित चंदनसे जिनको चंच अर्थात् लेप करें.

तथा धर्मकीर्तिकृत नंदीश्वरस्थ जिनबिंबकी पूजामें ऐसे लिखा है. ॥

कर्पूरकुंकुमरसेन सुचंदनेन

येजैनपादयुगलं परिलेपयंति ॥

तिष्ठंति ते भविजनाः सुसुगंधगंधा-

दिव्यांगनापरिवृताः सततं वसंति ॥ १ ॥

भावार्थः—जे भव्यप्राणि कर्पूरकुंकुमके रसकरी, और भले चंदन-करके, जिनपादयुगलको लेप करते हैं, वे भविजन सुसुगंध शरीरवाले होके, दिव्यरूपवाली देवांगनाओंके साथ परिवरे हुए निरंतर सागरोंतक वसते हैं.

तथा पूजासारनामा जिनसंहितामें ऐसे लिखा है ॥

समृद्धिभक्त्या परया विशुद्ध्या कर्पूरसंमिश्रितचंदनेन ॥

जिनस्य देवासुरपूजितस्य सुलेपनं चारु करोमि मुत्तयै ॥ १ ॥

भावार्थः—अपनी समृद्धिपूर्वक परमविशुद्ध भक्तिसें मिश्रितचंदनकरके देवअसुरादिकोंसे पूजित ऐसे जिनको मुक्तिकेवास्ते भला लेपन करता हूं-

तथा त्रिवर्णाचारमें ऐसे लिखा है ॥

जिनांध्रिचंदनैः स्वस्य शरीरे लेपमाचरेत् ॥

यज्ञोपवीतसूत्रं च कटिमेखलया युतम् ॥ १ ॥

जिनांध्रिस्पर्शितां मालां निर्मले कंठदेशके ॥

ललाटे तिलकं कार्यं तेनैव चंदनेन च ॥ २ ॥

भावार्थः—जिनमूर्तिके चरणकमलके चंदनसें अपने शरीरको लेप करे, और कटिमेखला (कंदोरा—तरागडी) संयुक्त यज्ञोपवीत अपने शरीर-ऊपर धारण करे; । तथा जिनमूर्तिके चरणोंको स्पर्शी हुई मालाको अपने कंठमें धारण करे, तथा अपने ललाटऊपर तिसही चंदनसें तिलक करे ॥

तथा पूजासारमें ऐसे लिखा है ॥

ब्रह्मघ्नोथवा गोघ्नो वा तस्करः सर्वपापकृन् ॥

जिनांध्रिगंधसंपर्कान्मुक्तो भवति तत्क्षणम् ॥ १ ॥

भावार्थः—जो ब्रह्मघाती, तथा गोघाती, तथा तस्कर—चौर, तथा सर्व पापोंके करनेवाला पुरुष है, सो भी, जिनेंद्रके चरणोपरि लगे हुए गंधके स्पर्शसें, अर्थात् तिस गंधको भक्तिपूर्वक अपने शरीरको लगानेसें, तत्क्षण शीघ्रही पूर्वोक्त पापोंसें मुक्त होता है—छूट जाता है ॥

तथा श्रीपालचरित्रमें ऐसे लिखा है-

दिवसाष्टकपर्यंतं प्रपूजय निरंतरम् ॥

पूजाद्रव्यैर्जगत्सारैरष्टभेदैर्जलादिकैः ॥ १ ॥

तच्चंदनसुगंध्यंबुसज्जोव्याधिहराः स्फुटम् ॥

प्रत्यहं त्वत्पतेर्भक्त्या प्रयच्छ रोगहानये ॥ २ ॥

भावार्थः—मदनसुंदरीको महामुनिने कहा कि, श्रीसिद्धचक्रका आठ दिनपर्यंत निरंतर जगत्में सारभूत ऐसों जलादि आठ प्रकारके पूजाके द्रव्यसें, अर्थात् अष्टद्रव्यसें पूजन कर; और निरंतर व्याधिको हरनेवाले, ऐसों सिद्धचक्रको स्पर्श हुय, चंदन, सुगंध, जल, और माला, रोगके दूर करने वास्ते भक्तिसें अपने पतिको लगाव.

तथा निर्वाणकांडमें ऐसों लिखा है. ॥

गोमट्टदेवं वंदामि पंच सयंधगुहदेहउच्चंतं ॥

देवा कुणंति विट्ठिं केसरकुसुमाण तस्सउवरिम्मि ॥ १ ॥

भावार्थः—गोमट्टदेव (बाहुवल) को मैं वंदना करता हूं, कैसे हैं गोमट्टदेव ? जिसका पांचसौ धनुष्य प्रमाण उच्चदेह है, और तिसके ऊपर देवता केसर और पुष्पोंकी वर्षा करते हैं.

तथा षट्कर्मोपदेशरत्नमालामें ऐसों लिखा है. ॥

इतीमं निश्चयं कृत्वा विज्ञानां सप्तकं सती ॥

श्रीजिनप्रतिबिम्बानां रूपनं समकारयत् ॥ १ ॥

चंदनागरुकर्पूरसुगंधैश्च विलेपनम् ॥

सा राज्ञी विदधे प्रीत्या जिनेन्द्राणां त्रिसंध्यकम् ॥ २ ॥

भावार्थः—यह (पूर्वोक्त) निश्चय करके मदनावलीनामा राज्ञी, श्री-जिनेन्द्रप्रतिमाको सात दिन स्नान कराती भई; और प्रीतिसें त्रिसंध्यामें जिनेन्द्रको चंदन अगरकर्पूरादि सुगंध द्रव्योंसें विलेपन करती भई.

तथा प्रतिष्ठापाठमें ऐसों लिखा है. ॥

जिनांग्रिस्पर्शमात्रेण त्रैलोक्यानुप्रहक्षमाम् ॥

इमां स्वर्गरमादूर्तो धारयामि वरस्वजम् ॥ १ ॥

भावार्थः—मैं प्रधानमालाको धारण करता हूं, कैसी माला ? जिनेन्द्रके चरणके स्पर्शमात्रसें तीनों लोकोंको अनुग्रह करनेमें समर्थ, और स्वर्गकी लक्ष्मीकी प्राप्तिमें दूतीस्मान.

तथा आराधनाकथाकोषमें करकंडुके चरित्रमें ऐसैं लिखा है ॥

तदा गोपालकः सोपि स्थित्वा श्रीमज्जिनाग्रतः ॥

भो सर्वोत्कृष्ट ते पद्मं ग्रहाणेदमिति स्फुटम् ॥ १ ॥

उक्त्वा जिनेन्द्रपादाब्जोपरि क्षिप्त्वाशु पंकजम् ॥

गतो मुग्धजनानां च भवेत्सत्कर्मशर्मदम् ॥ २ ॥

भावार्थः—तब सो गोपाल भी श्रीजिनमूर्तिके आगे स्थित होके, भो सर्वोत्कृष्ट! यह कमल ग्रहण कर, ऐसा कहके श्रीजिनेन्द्रके चरणकमलोपरि कमलको शीघ्र क्षेपन करके, गया; इत्यादि.

तथा श्रीजिनयज्ञकल्पप्रतिष्ठाशास्त्रमें ऐसैं लिखा है ॥

“ ॥ श्रीजिनेश्वरचरणस्पर्शादनर्घ्या पूजा जाता सा माला
महाभिषेकावसाने बहुधनेन ग्राह्या भव्यश्रावकेनेति ॥ ”

भावार्थः—श्रीजिनेश्वरके चरणस्पर्शसें अमूल्य पूजा हुई, सो महाभिषेक अंतमें भव्य श्रावकने बहुत धनकरके ग्रहण करनी.

तथा व्रतकथाकोषमें ऐसे लिखा है ॥

क्षत्रप्रश्नाच्छ्रेष्ठिपुत्रीति प्राह भद्रे शृणु ब्रुवे ॥

व्रतं ते दुर्लभं येनेहामुत्र प्राप्यते सुखम् ॥ १ ॥

शुक्लश्रावणमासस्य सप्तमीदिवसेर्हताम् ॥

स्नापनं पूजनं कृत्वा भक्त्याष्टविधमूर्जितम् ॥ २ ॥

धीयते मुकुटं मूर्ध्नि रचितं कुसुमोत्करैः ॥

कंठे श्रीवृषभेशस्य पुष्पमाला च धीयते ॥ ३ ॥

भावार्थः—तिसके प्रश्नसें आर्यिकाजी कहती भई, हे भद्रे श्रेष्ठिपुत्रि ! सुण, मैं तुजको व्रत कहती हूं; जिस व्रतके प्रभावसें इसलोकमें, और परलोकमें दुर्लभ सुख प्राप्त करिये हैं;। सोही व्रत दिखावे हैं. शुक्लश्रावण-मासकी सप्तमीके दिन अर्हन् भगवान्की मूर्तियोंको भक्तिसें स्नान करायके, अष्टद्रव्यकरके जिनेन्द्रका पूजन करके, कुसुमोंके (पुष्पोंके) समूहसें रचे

हुए मुकुटको जिनेंद्रके मस्तक ऊपर धारण करिये, और श्रीऋषभदेवके कंठमें पुष्पमाला धारण करिये. इत्यादि ॥

तथा श्रीपाल चरित्रमें ऐसे लिखा है. ॥

तत्र नंदीश्वराष्टम्यां सिद्धचक्रस्य पूजनम् ॥

चक्रे सा विधिना दिव्यैर्जलैः कर्पूरचंदनैः ॥ १ ॥

अक्षतैश्चंपकाद्यैश्च पक्वान्नैर्वरदीपकैः ॥

धूपैः सुगंधिभिर्भक्त्या नालिकेरादिसत्फलैः ॥ २ ॥

तद्विलेपनगंधांबुपुष्पाणि सा ददौ मुदा ॥

श्रीपालायांगरक्षेभ्यः पाणिभ्यां रुग्णविहानये ॥ ३ ॥

भावार्थः—तब मदनसुंदरी, अष्टान्हिकाविषे सिद्धचक्रका विधिसे, दिव्य जल, कर्पूर, चंदन, अक्षत, चंपकादि पुष्प, पक्वान्न, दीपक, सुगंधिधूप, और नालिकेरादि सुंदर फल, इत्यादि विविध द्रव्योंकरके पूजन करती भई; और तिस पूजनके विलेपन गंधोदक पुष्पोंको (अर्थात् नैर्माल्यको) श्रीपालकेतांड, तथा अंगरक्षकोंकेतांड रोगहानिके वास्ते, अर्थात् रोगके दूर करनेवास्ते अपने हाथोंसे देती भई. ॥

तथा भय्या भगवतीदासकृत ब्रह्मविलासमें ऐसा कवित्त कही है ॥

जगतकै जीव तिन्है, जीतिकै गुमानी भयो ।

ऐसो कामदेव एक, जोधा यो कहायो है ॥

ताकै सर जानी यत, फूलनीके वृंद बहु ।

केतकी कमल कुंद, केवरा सुहायो है ॥

मालती महासुगंध, वेलकी अनेक जाती ।

चंपक गुलाब जिन, चरनन चढायो है ॥

तेरीही सरन जिन, जोर न वसाय याको ।

सुमनसुं पूजो तोही, मोहि ऐसो भायो है ॥ १ ॥

तथा योगीन्द्रदेवकृत श्रावकाचारमें ऐसे लिखा है. ॥

“ ॥ दीवंदइ दिणइ जिणवरहं मोहहं होइ णट्ठाइ ॥ ”

भावार्थः—जो श्रीजिनेन्द्रकी दीपकसे पूजा करता है, तिसका मोह अर्थात् अज्ञान नष्ट होता है. ॥

तथा जिनसंहिताविषे ऐसा लिखा है. ॥

ॐकैवलयावबोधाक्को द्योतयत्यखिलं जगत् ॥

यस्य तत्पादपीठाग्रे दीपान् प्रद्योतयाम्यहम् ॥ १ ॥

भावार्थः—जिसका केवलज्ञानरूपी सूर्य संपूर्ण जगत्को प्रकाश करता है, तिस जिनेन्द्रके पादपीठके आगे मैं दीपकोंको प्रकाशता हूं. ॥

तथा भय्या भगवतीदासकृत ब्रह्मविलासमें ऐसे लिखा है. ॥

दीपक अनाये चहुं गतिमें न आवे कहूं ।

वर्त्तिके बनाये कर्मवर्त्ति न बनतु हैं ॥

आरती उतारतही आरत सब टर जाय ।

पाय ढिंग धरै पापपंकति हरतु हैं ॥

* * * * *

वीतराग देवजुकी कीजे दीपकसों चित्त लाय ।

दीपत प्रताप शिवगामी यों भनतु हैं ॥ १ ॥

तथा श्रीउमास्वामिविरचितश्रावकाचारमें ऐसे लिखा है. ॥

मध्याह्ने कुसुमैः पूजा संध्यायां दीपधूपयुक् ॥

वामांगे धूपदाहश्च दीपं कुर्याच्च सन्मुखम् ॥ १ ॥

अर्हतो दक्षिणे भागे दीपस्य च निवेशनम् ॥

भावार्थः—मध्याह्नमें कुसुम (फूलों) से पूजा करनी, संध्यामें दीप-धूपसंयुक्त पूजा करनी, भगवानके वामपासे धूपदाह करना, और सन्मुख दीपक करना, और अर्हन्के दक्षिण पासे दीपकको स्थापन करना. ॥

तथा बणारसीदासजीने कहा है. ॥

॥ दोहा. ॥ पावक दहे सुगंधकूं, धूप कहावत सोय ॥

खेवत धूप जिनेशकुं, अष्टकर्म क्षय होय ॥ १ ॥

तथा षड्विधपूजाप्रकरणमें ऐसे लिखा है. ॥

एवं काऊण रओ खुहियसमुद्दोव गजमाणेहिं ॥
 वरभेरीकरडकाहलजयघंटासंखणिवहेहिं ॥ १ ॥
 गुलगुलंति तिविलेहिं कंसतालेहिं झमझमंतेहिं ॥
 धुमंतफडहमदलहुडकमुखेहिं विविहेहिं ॥ २ ॥
 चिठ्ठेज्ज जिणगुणारोवणं कुणंतो जिणंदपडिबिंबे ॥
 इठ्ठविलग्गसुदणइ चंदणतिलयं तओ दिज्जइ ॥ १ ॥
 सव्वावयवेषु पुणो मत्तण्णासं कुणिज्ज पडिमाए ॥
 विविहच्चणं च कुजा कुसुमेहिं बहुप्पयारेहिं ॥ २ ॥
 वलिवत्तिएहिं जुवारेहिय सिद्धत्थपण्णरुक्खेहिं ॥
 पुव्वुत्तुवयरणेहि य रइज्ज पूयं सविहवेण ॥ १ ॥
 गहिऊण सिसिरकरकिरणणियरधवलरयणभिगारं ॥
 मोत्तिपवालमरगयसुवण्णमणिखचियवरकंठं ॥ १ ॥
 सुयवुत्तकुसुमकुवलयरजपिंजरसुराहिविमलजलभारियं ॥
 जिणचलणकमलपुरओ खेविज्जउ तिण्णधाराओ ॥ २ ॥
 कप्पूरकुंकुमायरुतरुक्कमिस्सेण चंदणरसेण ॥
 वरबहुलपरिमलामोयवासियासासमूहेण ॥ ३ ॥
 वासाणुमग्गसंपत्तामयमत्तालिराक्खमुहलेणं ॥
 सुरमउडघडियचलणं भत्तिए समल्लहिज्ज जिणं ॥ ४ ॥
 ससिकंतखंडविमलेहि विमलजलोहं सित्तअइसुअंधेहिं ॥
 जिणपडिमपइट्ठिए जिय विसुद्धपुण्णंकुरेहिं च ॥ ५ ॥
 वरकलमसालितंदुलचणिहसुछंडियदीहसयलेहिं ॥
 मणुयसुरासुरमहियं पूजिज्ज जिणिंदपयजुयलं ॥ ६ ॥

मालियकयंबकणयारियंपयासोयबउलतिलएहिं ॥
 मंदारणायचंपयपउमुप्पलसिंदुवारेहिं ॥ ७ ॥
 कणवीरमल्लियाइं कचणारमयकुंदकिंकराएहिं ॥
 सुरवणजजुहियापारिजासवणढगरेहिं ॥ ८ ॥
 सौवण्णरूवमेहिं य मुत्तादामेहिं बहुवियप्पेहिं ॥
 जिणपयसंकयजुयलं पूजिज्ज सुरिंदसयमहियं ॥ ९ ॥
 दहिदुद्धसप्पिमिस्सेहिं कमलमत्तएहिं बहुप्पयारेहिं ॥
 तेवट्ठिवंजणेहिं य बहुविहपक्कणभेएहिं ॥ १० ॥
 रूपसुवण्णकंसाइथालणिहिंएहिं विविहभरिणहिं ॥
 पूयं वित्थारिज्जा भत्तिए जिणंदपयपुरओ ॥ ११ ॥
 दीवेहिं णियपहोहामियक्कतेएहिं धूमरहिणहिं ॥
 मंदमंदाणिलवसेण णच्चंतहिं अच्चणं कुज्जा ॥ १२ ॥
 घणपडलकम्मणिचयवू दूरमवसारियंधयारेहिं ॥
 जिणचलणकमलपुरओ कुणिज्ज रयणं सुभत्तिए ॥ १३ ॥
 कालायरुणहचंदणक्कप्पूरसिल्हारसाइद्वेहिं ॥
 णिप्पण्णधूमवत्तिहिं परिमलापंतियालीहिं ॥ १४ ॥
 उग्गासिहादेसिएहिं सग्गमोक्खमग्गाहिं बहुलधूमेहिं ॥
 ध्रुविज्ज जिणिंदपायारविंदजुयलं सुरिंदणुयं ॥ १५ ॥
 जंबीरमोयदाडिमकवित्थपणसूयनालिणरेहिं ॥
 हिंतालतालखज्जुरबिंबणारंगचारेहिं ॥ १६ ॥
 पुइफलतिंदुआमलयजंबूबिल्लाइ सुरहिमिडेहिं ॥
 जिणपयपुरओ रयणं फलेहिं कुज्जा सुपक्केहिं ॥ १७ ॥
 अट्ठविहमंगलाणि य बहुविहपूजोवयरणदव्वाणि ॥
 धूवदहणाइ तहा जिणपूयत्थं वितीरिज्जइ ॥ १८ ॥

भावार्थः—ऐसें पूर्वोक्त प्रकार शब्द करी, कैसा शब्द ? क्षोभकों प्राप्त हुआ समुद्र तिसका जो गरजारव तिसकी उपमा योग्य श्रेष्ठ, भेरी १, करड २, काहल ३, जयघंटा ४, शंख ५, इन वाजित्रके समूहके शब्द-करी गुलगुल अर्थात् अव्यक्तशब्द होय है; तथा तिविल १, और कांसी, ताल, मंजीरे, आदि वाजित्रोंके झमझम शब्द होय है; तथा पटहढोल १, मृदंग २, आदि वाजित्रके शब्दोंकरी एकधूस मची रही है;। इत्यादि ॥ नाटक करनेका विधि है.

तथा—जिनेंद्रके गुणोंका आरोपण, जिनप्रतिमामें स्थापन करता हुआ बैठे; और इष्टलक्षोदयके हुए, जिनप्रतिमाको तिलक देवें । पीछे प्रतिमाके सर्व अवयवोंमें मंत्रन्यास करें; पीछे बहुप्रकारके कुसुम—पुष्पोंकरके अनेक प्रकारकी पूजा करें.

तथा—वारनाकरी, तथा जवारेके हरित अंकुरोंकरी, तथा सरसवपत्र, और वृक्षोंकरी, तथा पूर्वोक्त उपकरणोंकरी, अपने विभवानुसार जिन-प्रतिमाका पूजन करें. ॥

अथ पूजाविधिरुच्यते—अब आगे पूजाका विधि कहते हैं ॥ चंद्रमाके किरणसमान उज्ज्वल रत्नोंसें जडी हुई झारीको ग्रहण करी, जिनप्रतिमाके चरणकमलके आगे तीन धारा जलकी दीजे; (जिनप्रतिमाको न्हवण करानेका विधि प्रथमकी गाथायोंमें है—एवं चत्तारिदिणा—इत्यादि) कैसी है झारी ? मोती, प्रवाल, (गुलीयां), मर-कत, स्वर्ण, मणि, इनोकरके खचित—जडा हुआ है कंठ, अर्थात् सुंदर मणिमोतीसुवर्ण आदिकोंसें जडी हुई प्रनालिका—जल नीकलनेकी टूटी है जिसकी, तथा सूत्रोक्त पुष्प और कमलादिकोंकी रजकरी पीत, और सुगंधित, ऐसा निर्मल जल भरा है जिसमें. ॥ इतिजलपूजा—॥

कर्पूर, केसर, अगर, मलयागिरमिश्रित चंदनरसकरके घसनेसें प्रचुर सुगंधकरके वासित करा है दिशासमूह जिसने, तथा सुगंध द्रव्यके अनुमार्गकरके प्राप्त हुए, भ्रमरोंकी जो मदोन्मत्त पंक्ति तिसकरके वाचालकृत अर्थात् जिस गंधके प्रचुर सुगंधसें चारों तर्फ भ्रमर फिर रहे हैं

तथा अव्यक्त ध्वन्युच्चार कर रहे हैं. ऐसी सुंदर सुगंधसें देवताके मुकुटकरके घटित स्पर्शित चरणकमल है जिसके, ऐसैं श्रीजिनेश्वरदेवको विलेपन करें. ॥ इतिगंधपूजा—॥

चंद्रमाकी चांदनीसमान अतिउज्ज्वल अखंडित निर्मल अतिसुगंधित, तथा निर्मल जलकरके धोए हुए, ऐसैं अक्षत (चावलों) करके जिन-प्रतिमाके प्रतिष्ठित हुए पूजन करना; कैसें पूर्वोक्त चावल ? मानुं पुण्यके अंकुर है; । अति मिष्ट कलमशाली और तंदुलके समूहको स्वच्छ करके तिन चावलोंकरके, मनुष्य सुरासुरकरके पूजित ऐसैं श्रीजिनैंद्रके पदयुगलों पूजें. ॥ इत्यक्षतपूजा—॥

मालती, कदंब, सूर्यमुखी, अशोक, बकुल, (बोलसिरी) तिलकवृक्षके पुष्प, मंदारनामा पुष्प, नागचंपेके पुष्प, उत्पल—कमल, निर्गुंडीके, कण-वीर (कंडीर) के, मल्लिकानामा, कचनारके, मचकुंदके, किंकर, कल्पवृक्षके, जूईके, पारिजातिकके, जासूसके पुष्प, डमरेके पत्र, सोनेके पुष्प, चांदीके पुष्प, इत्यादि अनेक प्रकारके पुष्पोंकरके, तथा मोतीकी माला आदि अनेक प्रकारकी मालायोंकरी, देवेंद्रादिकोंकरके पूजित ऐसे श्रीजिनैंद्रके चरणयुगलोंका पुजन करे. ॥ इतिपुष्पपूजा—॥

दहिदुग्धघृतकरी मिश्रित मिष्टतंदुलका भात करी, तथा नानाप्रकारके शाक आदि व्यंजन (तीमन) करी, तथा नानाप्रकारके पकान्नकरी सोना चांदी कांसी आदिके थालोंमें मोदकादि अनेकप्रकारके भक्ष्यको स्थापन करी, श्रीजिनवरके चरणकमलके आगे भक्तिसें पूजाका विस्तार करें. ॥ इतिनैवैद्यपूजा—॥

तथा भगवान्के चरणकमलके आगे भक्तिसें दीपककी रचना करें. कैसें दीपककी ? अपनी प्रभाके समूहकरके सूर्यके सदृश प्रताप धारण करा है जिनोंने, तथा धूमकरके रहित शिखा है जिनकी, तथा मंदमंद पवनके वशसें नृत्यकेसमान नृत्य करते संते, तथा अतिसघनकर्मके प्रटलके समूहके समान जो अंधकार तिसको अपने प्रकाशके अतिशय-

करके दूर करते संते, ऐसैं दीपकोंकी रचना, भक्तिसें प्रभुके चरण-कमलके आगे करनी. ॥ इति दीपकपूजा-॥

कालागुरु (अगर), अंबर, चंदन, कर्पूर, सिल्हारसादि सुगंध द्रव्योंकरके उपनी जो वर्तियां, तिनोंकरके सुरेंद्रकरके स्तवे हुए श्रीजिनेंद्रके चरणकमलको धूपित करे. कैसी वर्तियां? सुगंधकी पंक्ति, और धूमकी उग्र शिखा, तिनोंकरके दिखाया है स्वर्ग और मोक्षका मार्ग जिनोंने. ॥ इति धूपपूजा- ॥

जंवीरफल, कदलीफल (केला), दाडिम (अनार), कपिय्य (कौठ), पनस, तूत, नालिएर, हिंताल, ताल, खर्जूर, किंदूरी (गोल्हफल), नारंगी, सुपारी, तिंदुक, आमला, जांबू, बिल्व, इत्यादि अनेक प्रकारके आगे सुगंधित, और मिष्ट पक्क हुए फलोंकरके जिनेंद्रके चरणकमलके आगे रचना करनी. ॥ इति फलपूजा- ॥

अष्टविध मंगल द्रव्य झारी १, कलश २, चामर ३, छत्र ४, ध्वजा ५, तालवींजना ६, स्वास्तिक ७, दर्पण ८, तथा बहुविध पूजाके उपकरण, तथा धूपदहन आदि, भगवानकी पूजाके अर्थे विस्त्वारना. ॥ इति पूजाविधानम्-॥

इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें, तथा और भी मुक्तावलिपूजा, नरेंद्रसेनभट्टारककृत प्रतिष्ठापाठ, प्रभाकरसेनकृत प्रतिष्ठापाठ, आशाधरकृत प्रतिष्ठापाठ, योगींद्रदेवकृत श्रावकाचार, भगवदेकसंधिकृतजिनसंहितादि शास्त्रोंमें नानाप्रकारका पूजाविधान कथन करा है. ॥ तथा भगवज्जिनसेनाचार्यकृत आदिपुराणमें लिखाहै कि, उत्तमकुलके मनुष्यको जैसें गुरुजनकी माला, अपने शिरपर धारण करने योग्य है, तैसेंही जिनपदस्पर्शितपुष्पकी माला, अपने शिरऊपरि धारण योग्य है. । तथा श्रीअजितनाथ तीर्थंकरकी माता जयसेनाने बाल्यावस्थामें अट्टाईमहोत्सव करके, अर्हन्के शरीरको विलेपन करा, पुष्पमाला चढाई. पीछे जिनप्रतिमाके चरणकों स्पर्शी हुई तिस मालाको लेके अपने पिताको देई, पिताने भी खुशीसें लेके पुत्रीको पारणा करनेकों विदाय करी. इत्यादि कथन श्रीअजितनाथ पुराणमें है. तथा सुलोचनाने ऐसेंही गंधोदक, और पुष्पमाला, अपने पिता अकंपनामा राजाको दीनी.

जो कथन श्रीआदिपुराणमें है. तथा पद्मनंदिआचार्यने, पद्मनंदिपञ्चीसीमें दीपकोंकी श्रेणिकरके प्रभुको आरती करनी कही है. । तथा जिनसंहितामें, कार्तिकमासमें कृत्तिकानक्षत्रके संध्यासमयमें श्रीजिनमंदिरमें कार्त्तिकोत्सव करनेका विधि लिखा है; जिसमें लिखा है कि, यथोक्त विधिकरके नानाप्रकारके नैवेद्य जिनाग्रे धारण करने, और पूजास्थानादि कितनेक स्थानोंमें घृत पूरित कर्पूरकी बत्ती आदिके दीपक करने, और मंडप, दरवाजा, परिवारगृह, प्राकारतट, तोरणादि ऊर्ध्व अधःस्थानोंमें तैलादि पूरित दीपक करने, इत्यादि. । तथा षट्कर्मोपदेशपरत्नमालामें, कर्पूरघृतादिकसें त्रिकाल दीपकपूजन लिखा है. इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें पूजासंबंधि वर्णन है. इन सर्व लेखोंसें मालुम होता है कि, भगवान्की प्रतिमाको अंगीयांकी रचना नहीं करनी, यह केवल दिगंबर भाइयोंका हठही है; क्योंकि, चांदीकी, सुवर्णकी, मोतीकी, इत्यादि माला, और पुष्पका मुकुट, तथा सर्व शरीरकों विलेपन, इत्यादि करने तो ऊपर हम दिगंबरीय शास्त्रानुसारही लिख आए हैं. तो, श्वेतांबरकी अंगरचना, आभूषण पूजादिकोपरि क्यों संदेह करना चाहिये ? क्योंकि, जिसवास्ते श्वेतांबर पूर्वोक्त कार्य करते हैं, तिसहीवास्ते दिगंबरी भी करते हैं; सोही दिगंबरीय पुस्तकका पाठ थोडासा लिखते हैं. । तथाहि । “ बहुरि सोनारूपाके पुष्प, तथा मोतीनिकी मालाका चढावना कह्या हैं, सो जिनमंदिरमें बहुद्रव्योपार्जनकै अर्थ, बहुरि अतिशोभाकै अर्थ, तथा प्रभावनाकी वृद्धिकै अर्थ, तथा उत्कर्षभावकी वृद्धिकै अर्थ, तथा बहुधनत्यागनेकै अर्थ, कृपणाई हरिवैकै अर्थ, तथा अतिउपमाकै अर्थ, इत्यादि. ॥ ” परंतु मालाको चरणोपरि चढावनी, और गलेमें नहीं पहिरावनी, यह भी मनःकल्पित वृत्ति है. क्योंकि, माला गलेमेंही पहरी जाती है, सो आबालगोपालांगनामें प्रसिद्ध है. यदि गलेमें पहिरावनेसें आभरण हो आवे हैं, इसवास्ते नहीं पहिरावनी चाहिए, ऐसें कहो तो, मुकुट भी तो आभरणही है, और मुकुटको मस्तकोपरि स्थापन करना दिगंबरीय शास्त्रमेंही लिखा है; जो पाठ पूर्व लिख आए हैं.

दिगंबरिः—यह पूर्वोक्त पूजा विषयिक आपका श्रम, प्रायः व्यर्थ है. क्योंकि, हमारेही शास्त्रोंके पाठ हैं, और इन सर्वपाठोंको हम मानते हैं, और इन सर्वपाठानुसार हम करते भी हैं.

श्वेतांबरिः—यह आपका कथन सत्य है, परंतु हमारे पूर्वोक्त लेखोंमें कितनाक श्रम, बीसपंथी दिगंबरि आदि सर्व दिगंबराम्नायके वास्तेही है; जिसमें भी, पूजाविषयिक श्रम तो, प्रायः तेरापंथी दिगंबरियोंकेवास्ते हैं

तेरापंथी दिगंबरिः—पुष्पादिकसें पूजन करनाहि पाप है. क्योंकि, इसमें बड़ी हिंसा होती है. और धर्म तो, अहिंसामय है. अभिषेकमें और पुष्पादिके चढावनेमें बहुत सावधारंभ होता है, इसवास्ते हम पूर्वोक्त विधान नहीं करते हैं.

उत्तरः—वाहजी वाह !! आपको भी दुंदकमतका स्पर्श हुआ मालुम होता है. क्योंकि, ऐसी जैनागमविरुद्ध श्रद्धा तो, अपठित दुंदकमता-वलंबीयोंकी है; परंतु दिगंबराम्नायकी तो ऐसी श्रद्धा नहीं है. बल्कि, दिगंबराम्नायके श्रीयोगीन्द्रदेवकृत श्रावकाचारमें, तथा सारसंग्रहमें, तथा आराधनाकथाकोशादि शास्त्रोंमें लिखा है कि, श्रीजिनाभिषेकमें, पुष्पादिकसें जिनपूजा करनेमें, और तीर्थयात्रा, जिनबिंब, प्रतिष्ठा आदि कार्योंमें, जो आरंभ कहता है, और सावद्ययोग कहता है, तथा हिंसा-रंभ कथन करता है, सो मिथ्यादृष्टि है, दर्शनभ्रष्ट है, पापी है, सम्यग्-दर्शनका घातक है, और श्रीजिनधर्मका द्रोही है.

तथाहि ॥

आरंभे जिणण्हावियए जो सावज्जं भणंति दंसणं तेण ॥

जिमइमलियो इच्छुण कांइओभंति ॥ १ ॥

जिनाभिषेके जिनवैप्रतिष्ठाजिनालये जैनखुयात्रयायां ॥

सावद्यलेशो वदते स पापी स निंदको दर्शनघातकश्च ॥ १ ॥

श्रीमज्जिनेन्द्रचंद्राणां पूजा पापप्रणाशिनी ॥

स्वर्गमोक्षप्रदा प्रोक्ता प्रत्यक्षं परमागमे ॥ १ ॥

यः करोति सुधीर्भक्त्या पवित्रो धर्महेतवे ॥

स एकदर्शने शुद्धो महाभव्यो न संशयः ॥ २ ॥

यस्तस्या निंदकः पापी स निन्द्यो जगति ध्रुवम् ॥

दुःखदारिद्र्यरोगादिदुर्गतिभाजनं भवेत् ॥ ३ ॥ इत्यादि.

भावार्थ ऊपरही कह दिया है. ॥ इसवास्ते शास्त्रोक्त श्रद्धान करके कर्त्तव्यता युक्त है. क्योंकि, पुष्पादिकोंकरके जिनोंने श्रीजिनराजका पूजन करा है, तिनोंने तिसका फल स्वर्गलोकादि यावत् क्रमसे मोक्ष पाया है; तिसका कथायुक्त पुण्याश्रव, तथा व्रतकथाकोश, तथा आराधनाकथाकोश, तथा षट्कर्मोपदेशरत्नमालादि अनेक दिगंबरिय शास्त्रोंमें विस्तारसे वर्णन करा है. परंतु, किसी भी जैनमतके शास्त्रमें, ऐसा नहीं लिखा है कि, फलाने पुरुषने, वा अमुक स्त्रीने पुष्पादिकोंसे श्रीजिनराजकी पूजा करी, और तिस पूजाके प्रभावसे नरक प्राप्त करी!!! और श्वेतांबरमतके श्रीराजप्रभ्रीय (रायपसेणी) सूत्रमें तो, पूजाके पांच फल लिखे हैं:-

तथाहि ॥

“॥हियाए सुहाए खमाए निसेयसाए अणुगामित्ताए भविस्सइ ॥”

भावार्थ:-श्री जिनप्रतिमा पूजनेका फल पूजनेवालोंको हितकेवास्ते, सुखकेवास्ते, योग्यताके वास्ते, मोक्षके वास्ते, और जन्मांतरमें भी साथही आनेवाला है. ॥ इसवास्ते हठकदाग्रहको छोडके, शास्त्रोक्त-ही श्रद्धान करना योग्य है. यदि पूर्वोक्त फूल आदि द्रव्योंमें हिंसा मानके पूजन करना छोड देवोगे, तब तो, जिनप्रतिमा, जिनमंदिर, और गुलालवाडा, आदिका बनावना भी तुमकों छोड देना पडेगा, पूर्वोक्त कार्योंसे अधिकतर (तुमारी श्रद्धासुजिब) सावधारंभ होनेसे. तथा प्रतिष्ठा भी, नहीं करनी चाहियेगी, सावधारंभ होनेसे. वाहजी वाह!! दिगंबर नाम धरायके भी, दिगंबराचार्यकाही कथन यथार्थ नहीं मानते हो, तो औरोंके कथनका तो क्याहि कहना है?

और जिनप्रतिमा, जिनमंदिरके बनवानेका फल दिगंबरचार्योंनेही ऐसे कहा है.

तथाहि पूजाप्रकरणे ॥

कुंथुभरिदलमेत्ते जिणभवणे जो ठवेइ जिणपडिमं ॥

सरिसवमेत्तंपि लहइ सो णरो तित्थयरपुण्णं ॥ १ ॥

जो पुण जिणिंदभवनं समुण्णयं परिहितोरणसमग्गं ॥

णिम्मावइ तस्स फलं को सकइ वणिणउं सयलं ॥ २ ॥

भावार्थः—कुंथुभरि (कुटुंबर) वृक्षके पत्रप्रमाण जिनभवनमें सरसव-
मात्र जिनप्रतिमाको जो स्थापन करे, सो भव्यप्राणी तीर्थकर पूण्यप्रकृ-
तिकों प्राप्त करे हैं. । और जो प्राणी भावोंसहित बड़ा ऊंचा शिखरबंध
प्रदक्षिणा तोरणसहित जिनभवन बनवावे है, तिसके संपूर्ण फलका वर्णन
करनेको कौन समर्थ है ? अपितु कोई नहीं. ॥ तथा पूजाके फलका भी
वर्णन पृथक् २ दिगंबरचार्योंने कहा है.

तथाहि षड्विधपूजाप्रकरणे ॥

जलधाराणिक्खवणे पावमलं सोहणं हवे णियमा ॥

चंदणलेवेण णरो जायइ सोहग्गसंपण्णो ॥ १ ॥

जायइ अक्खयणिहिरयणसामिओ अक्खएहि अक्खोहो ॥

अक्खीणलद्धिजुत्तो अक्खयसोक्खं च पावेइ ॥ २ ॥

कुसुमहिं कुसेसयवयणतरुणिजणणयणकुसुमवरमाला ॥

वलयेणच्चिय देहो जायइ कुसुमाउहो चेव ॥ ३ ॥

जायइ णिविज्जदाणेण सत्तिगो कंतितेयसंपण्णो ॥

लावण्णजलहिवेलातरंगसंपावीयसरीरो ॥ ४ ॥

दीवेहिं दीविया सेसजीवदव्वाइं तच्च सभ्पावो ॥

सभ्पावजणियकेवलपदीवतेएण होइ णरो ॥ ५ ॥

धूवेण सिसिरयरधवलकित्तिधवलीयजयत्तओपुरिसो ॥
जायइ फलेहिं संपत्तपरमणिवाणसोक्खफलो ॥ ६ ॥
घंटाहिं घंटसद्दाऊलेसु पवरच्छराणमज्जम्मि ॥
संकीडइ सुरसंघायसहिओ वरविमाणेसु ॥ ७ ॥
छत्तेहि एस छत्तं भुंजइ पुहवीं च सत्तुपरिहीणो
चामरदाणेण तहा विजिज्जइ चमरणिवदोहिं ॥ ८ ॥
अहिसेयफलेण णरो अहिसिंचिज्जइ सुदंसणस्सुवरिं ॥
खीरोयजलेणसुरिंदपमुहदेवेहि भत्तीए ॥ ९ ॥
विजयपडाणहिं णरो संगाममुहेसु विजइओ होइ ॥
छक्खंडंविजयणाहो णिप्पडिवक्खो जसस्सी य ॥ १० ॥
किं जंपिण्ण बहुणा तीसुवि लोयेसु किंपि जं ॥
सोक्खं पूजाफलेण सव्वं पाविज्जइ णत्थि संदेहो ॥ ११ ॥

भावार्थः—जो नर, जिनेंद्रदेवके आगे जलधारा निक्षेप करे है, तिस-
का निश्चयकरी तिस जलधाराके प्रभावकरके पापमलका शोधन होवे
हैं; और जिनेंद्रको चंदनलेपन करनेसें नर, सौभाग्यसंयुक्त होता है।
जो प्राणी, भक्तिसें जिनेंद्रके अक्षतके पुंजकरी अक्षतपूजा करता है, सो
अक्षय निधिवाला होता है, रत्नोंका स्वामी होता है, अर्थात् षट्खंडस्वामी-
चक्रवर्ती होता है, क्षोभकरकेरहित होता है, अक्षीणलाब्धियुक्त होता है,
और यावत् अक्षय सुख मोक्षको प्राप्त होता है। प्रभूकी पुष्पोंसें पूजा
करनेसें कमलवदनी तरुणीजनके नेत्ररूप पुष्पोंकी वरमालाकरके आवृत
देहका धारी होता है, और कामदेवसमान रूपवान् होता है। प्रभुके
आगे नैवेद्यप्रदान करनेसें पुरुष शक्तिमान् होता है, कांतिमान् होता है,
तेजस्वी होता है, तथा लावण्यताके समुद्रकी बेला तरंगसमान शरीरको
प्राप्त करता है। दीपकपूजा करनेसें जैसें दीपक अंधकारको दूर करके
वस्तुको प्रकाश करता है, तैसेंही तिस प्राणिको अज्ञानांधकार दूर होकर

केवलज्ञानरूप दीपकके तेजसें जीवाजीवादितत्वोंका प्रकाश होता है; अर्थात् वो प्राणी, भावांधकार अज्ञानको दूर करके स्वात्मप्रकाश केवल-ज्ञानको प्राप्त करता है, जिसके प्रभावसें सर्व तीनलोकके चराचर पदा-र्थोंको आपही देखता है. । प्रभुके आगे धूपको प्रज्वलीत करके जो प्राणी धूपपूजा करता है, सो प्राणी धूपपूजाके प्रभावसें चंद्रमासमान अति उज्ज्वल कीर्तिकरके धवलित करा है जगन्नय जिसने, ऐसा पुरुष होता है; और फलपूजाके प्रभावसें प्राणी मोक्षके सुखफलको प्राप्त होता है. । जो प्राणी प्रभुके मंदिरमें घंट देता है, सो प्राणी तिसके फलसें घंटोंके शब्दोंकरके व्याप्त ऐसे प्रधान देवविमानोंमें सुंदर अप्सरायोंके वृंदोंमें देव-तायोंके समूहसहित क्रीडा करता है. । छत्रदानकरके अर्थात् भगवान्के ऊपर छत्र चढावनेसें प्राणी शत्रुरहित एकछत्र पृथ्वीका राज्य प्राप्त करता है; और जो भगवान्को चामर करता है, तिसके प्रभावसें उस प्राणिको राजाआदि चामर करते हैं. यहां चामर चमरीगायके केशोंका जाणना, अन्य नहीं. क्योंकि, भगवज्जिनसेनाचार्यने श्रीआदिपुराणमें चमरीगायके केशोंकेही चामर लिखे हैं.

“॥स्वकीर्त्तिनिर्मलैर्वीज्यमानं चमरिजन्मभिः ॥” इतिवचनात् ॥

तथा श्रीजिनेंद्रको जलादिपंचामृतकरके अभिषेक करनेके फलसें प्राणी मेरुपर्वतके ऊपर देवता, और इंद्रादिकोंकरके भक्तिपूर्वक क्षीरसा-गरके जलकरके करे हुए अभिषेकको प्राप्त करता है. । भगवान्के मंदिर-के ऊपर विजयपताका (ध्वजा) चढावनेसें प्राणी संग्रामादिकोंके विषे विजयकों प्राप्त करता है, षट्खंडस्वामी-चक्रवर्त्ती होता है, निःप्रति-पक्ष (शत्रुरहित) होता है, और यशस्वी होता है. । बहुता क्या कहना ? तीनों लोकोंमें जो जो सुख है, सो सर्व पूजाके फलसें प्राप्त होता है; इसमें संदेह नहीं है. ॥ इतिपूजाफलम्— ॥

तेरापंथी दिगंबरिः—तुमने कहा सो तो सत्य है, परंतु शास्त्रोंमें जलपूजाविषे तो गंगाजल, अक्षतपूजामें मोतीके अक्षत, पुष्पपूजामें कल्पवृक्षके पुष्प, और दीपकपूजामें रत्नके दीपकादि लिखा है, सो यह

भी नहीं करनेसें आज्ञाका भंग होता है; इसवास्ते गंगाजलादि पूर्वोक्त द्रव्यविना और सामान्य जल, शालिके तंदुल आदि नहीं चढावने चाहिये.

उत्तर:—हे भ्रातः ! शास्त्रोंमें तो सर्वही प्रकारकी वस्तु कही हैं, जो प्रथम लिखही आए हैं; इसवास्ते जिसको जैसी मिले, तैसी पवित्र सार वस्तुसें पूजादि करनी; और श्रद्धान सर्वहीका करना. क्योंकि, श्रीउमा-स्वामीने श्रद्धानवान्कोही उत्कृष्ट फल लिखा है.

तदुक्तम् ॥

जं सकृद् जं करिद् जं च ण सकृद् जं च सदहृद् ॥

सदहृद्मागो जीवो पावद् अजरामरं ठाणं ॥ १ ॥

भावार्थ:—जो करशकीए तिसको करना, और जो न करशकीए तिसका श्रद्धान करना. क्योंकि, श्रद्धावान् जीव, अजरामरस्थानको प्राप्त करता है. । इसवास्ते शास्त्रोक्त आचरणही यथार्थ है, अन्य नहीं. ।

तेरापंथी दिगंबरी:—तुमने प्रथम जो जो लेख लिखे हैं, वे सर्व प्रतिष्ठादिनकेवास्ते हैं, अन्य दिनोंकेवास्ते नहीं.

उत्तर:—यह तुमारा कथन ठीक नहीं है. क्योंकि, पूर्वोक्त पाठ प्रतिष्ठादिनाश्रित नहीं है; किंतु, कोइ मुकुटसप्तमी, कोइ मुक्तावलीतपोद्यापन, कोइ नवपदमाहिमा, कोइ नंदीश्वरपूजा इत्यादि आश्रित है. तथा षड्विधपूजाप्रकरणमें चार प्रकार पूजाका वर्णन करा है; तिसमें क्षेत्रपूजा, और कालपूजाका वर्णन करा है;

तथाहि ॥

जिणजम्मण णिक्खवणं णाणुपत्ती य मोक्खसंपत्ती ॥

णिसिहिसु खेत्तपूजा पुव्वविहाणेण कायव्वा ॥ १ ॥

गम्भावयारजम्माहिसेयणिक्खवणणाणणिव्वाणं ॥

जम्हि दिणे संजाइयं जिण्हवणं तद्दिणे कुज्जा ॥ २ ॥

इरखुरससप्पिदहिखीरगं वजलपुण्णविविहकलसेहिं ॥

णिसिजागरं च संगीयणाडयाइहिं कायवं ॥ ३ ॥

णंदीसरअट्टदिवसेसु तहा अण्णेसु उच्चियपव्वेसु ॥

जं कीरइ जिणमहिमा वण्णेया कालपूजा सा ॥ ४ ॥

भावार्थः—तीर्थकरोकी जन्मभूमिकाकी, तीर्थकरोकी तपभूमिकाकी, केवल-ज्ञानप्राप्तिकी भूमिकाकी, और निर्वाणकल्याणकी भूमिकाकी, पूर्वोक्त विधान-करके जो पूजा करनी, सो क्षेत्रपूजा है. भावार्थ यह है कि, अयोध्यापुरी आदि चतुर्विंशति तीर्थकरोकी जन्मपुरी, तपोवन अर्थात् दीक्षाभूमी, ज्ञानोत्पत्तिक्षेत्र, तथा अष्टापद, सम्मेत शिखर, गिरनार, चंपापुरी, पावा-पुरी, आदि निर्वाणक्षेत्र, इन स्थानोंमें जायके जलादिद्रव्योंसे पूर्वोक्त विधिकरके तत्रस्थ चैत्यालयस्थ जिनप्रतिमाकी, वा जिनचरणयुगलकी पूजा करनी, सो क्षेत्रपूजा है. ॥ तीर्थकरके गर्भावतारका दिन, जन्म-भिषेकका दिन, दीक्षाका दिन, ज्ञानका दिन, और निर्वाणका दिन, अर्थात् जिनेंद्रके पांचकल्याणक, पूर्वे जिन दिनोंमें हुए, तिन दिनोंमें पूर्वोक्त विधिसे पूजा करनी; और विशेषतः इक्षुरस, घृत, दहि, दुग्ध, और सुगंध जलके भरे हुए पवित्र विविध प्रकारके कलशोंकरके जिन-मूर्तिको अभिषेक करना; तथा रात्रिकेविषे संगीत, नाटक, जिनगुण-गायनादिकोंकरके रात्रिजागरण करना; तथा नंदीश्वरादि अष्टदिनोंमें और अन्य भी षोडश कारण, दश लाक्षण, पुष्पांजलिसुगंध दशमी, अनंतव्रत, रत्नत्रय आदि धर्मोचित पर्वके दिनोंमें श्रीजिनमंदिरमें जिनपूजा प्रभावनादि कार्य करने; सो कालपूजा जाणनी. ॥ इत्यलमतिप्रपंचेन ॥

प्रश्नः—मुनिको पीछी कमंडलूविना अन्य कुछ भी रखना न चाहिये.

उत्तरः—यह तुमारा कथन अयोग्य, और स्वशास्त्रानभिज्ञताका सूचक है. क्योंकि, ब्रह्मचारिपांचाख्यकृत तत्त्वार्थसूत्रावचूरी, जो कि ब्रह्मचारिश्रुत-सागरकृत तत्त्वार्थटीकासे उद्धार करी हुई है, तिसमें पांचसमितियोंके अधिकारमें आदाननिक्षेपसमितिका ऐसा स्वरूप लिखा है.

तथाहि ॥

“ ॥ पिच्छादिना धर्मोपकरणानि प्रतिलिख्य स्वीकरणं
विसर्जनं सम्यगादाननिक्षेपसमितिः ॥ ”

भाषार्थः—पिच्छादिकोंकरके धर्मोपकरणोंको प्रतिलेखके अंगीकार करने, और रखने, सो सम्यग् आदानसमिति है. । यहां पीछी आदि लिखा है, सो आदिशब्दसें क्या क्या ग्रहण करना ? और प्रतिलेखके ग्रहण करने, रखने वे धर्मोपकरण, कौनकौनसें हैं ?

तथा पूर्वोक्त तत्त्वार्थसूत्रावचूरिमेंही ॥

“॥ संयम^१श्रुत^२प्रतिसेवना^३तीर्थलिंग^४लेश्योपपाद^५प्रस्थान^६विक-
ल्पतः^७ साध्याः^८ ॥ ”

इस सूत्रके अधिकारमें लिखा है. । तथाहि ॥

“॥ लिंगं द्विभेदं द्रव्यभावलिंगभेदात् तत्र भावलिंगिनः
पंचप्रकारा अपि निर्ग्रथा भवन्ति द्रव्यलिंगिनः असमर्था
महर्षयः शीतकालादौ कंबलादिकं गृह्णत्वा न प्रक्षालयन्ते
न सीवन्ति न प्रयत्नादिकं कुर्वन्ति अपरकाले परिहरन्तीति
भगवत्याराधना प्रोक्ताभिप्रायेणोपकरणकुशीलापेक्षया व-
क्तव्यम् ॥ ”

भाषार्थः—लिंग दो प्रकारके हैं, द्रव्यलिंग और भावलिंग; तिनमें भाव-
लिंगी पांचप्रकारके निर्ग्रथ होते हैं, और द्रव्यलिंगी असमर्थ महाक्लृषि हैं. जे
शीतकालादिमें कंबलादिकों ग्रहण करके धोवे नहीं हैं, सीवते नहीं हैं, प्रय-
त्नादि करते नहीं हैं, और शीतकालके दूर हुए त्याग करते हैं; इति ।
यह कथन, भगवत्याराधनामें कथन करे हुए अभिप्रायकरके उपकरण
कुशीलकी अपेक्षा जाणना. ॥

तथा प्रवचनसारवृत्तिमें उपधिका भेद कहा है. । यतः ॥

छेदो जेण ण विज्जदि गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स ॥

समणो तेणिह वट्ठदि दुक्कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥

भाषार्थः—जिसके करनेसें न होवे छेद, लेने और छोडनेमें, इसरीतिसें
उपधि आहार निहार कारणे सेवना करतेको, तिस्सें तिसमें श्रमणपणा
वर्त्ते हैं, दुषमकालको, और क्षेत्रको जानके. ॥

तथा प्रवचनसारकी वृत्तिमें जिनेश्वरके अधिकारमें साधुकी उपाधि धर्मध्वजकरके कही है। तथाहि ॥

“॥ न विद्यते लिंगानां धर्मध्वजानां ग्रहणं यस्येति बहिरंगयतिलिंगाभावस्येति ॥”

भाषार्थः—नहीं है लिंग धर्मध्वजोंका ग्रहण जिस जिनेश्वरके, अर्थात् बहिरंगयतिलिंगका अभाव है. ॥

भावसंग्रहमें भी उपकरण विशेष कहे हैं। तथा च तत्पाठः ॥

उवयरणं तं गहियं जेण ण भंगो हवेइ चरियस्स ॥
गहियं पुत्थयवाणं जोगं जं जस्स तं तेण ॥

भाषार्थः—उपकरण सो ग्रहण करिये हैं, जिसके ग्रहण करनेसे चारित्रका भंग नहीं होता है; और ग्रहण करा पुस्तक पाना पुस्तकोपकरणादि-भी, चारित्रका भंग नहीं करे हैं. क्योंकि, जो जिसके योग्य उपकरण हैं, सो तिसकेवास्ते ग्रहण करना है. ॥

कुंदकुंदमुनिवृत्त मूलाचारमें साधुकी उपाधि प्रकटपणे कथन करी है. । तथाहि ॥

णाणुवाहिं संजमुवाहिं तउवुवहिमण्णमविउवहिं वा ॥

पयदं गहणिक्खेवो समिटी आदाणनिक्खेवा ॥

भाषार्थः—ज्ञानोपधि, पुस्तकपट्टिकाबंधनादि; संयमोपधि, जिसके रखनेसे संयम पाल सकें; और तपोपधि, तथा अन्य प्रकारकी भी उपाधि, इन पूर्वोक्त सर्व उपधियोंको प्रयत्नसे ग्रहण निक्षेप करना, तब संपूर्ण आदान निक्षेपसमिति होती है. ॥

और बोधपाहुडकी वृत्तिमें जिनमुद्राका कथन है. । यतः ॥

शिरःकूर्चश्मश्रुलोचोमयूरपिच्छधरः कमंडलूकरः ।

अधःकेशरक्षणं जिनमुद्रा सामान्यत इति ॥

भाषार्थः—मस्तक दाढी मूँछका तो लोच करा हुआ, मोर पीछी धारण करी हुई, और कमंडलू हाथमें, अधःकेशोंका रखना, यह जिनमुद्रा सामान्य प्रकारसें है. बाहरे ! दिनमें राह भूलेहुये मेरे दिगंबर भाइयो ! क्या तीर्थकर भी शिरदाढीमूँछका लोच करते थे ? और पीछी कमंडलू रखते थे, जिससें तुमने जिनमुद्राका ऐसा स्वरूप लिखा है ? इससें यह सिद्ध होता है कि, तुम जिनमुद्राका स्वरूप भी यथार्थ नहीं जानते हो. तथा प्रवचनसारकी वृत्तिसें, और बोधपाहुडकी वृत्तिसें सिद्ध होता है कि, पीछी कमंडलूसें अन्य भी उपधि साधु रख लेवें. क्योंकि, बोध पाहुडवृत्तिमें पीछी कमंडलू रखना जिनमुद्रा कही है, और प्रवचनसार-वृत्तिमें बहिरंगयतिलिंगका जिनेश्वरकों अभाव कहा है; तो, वो बहिरंगयतिलिंग कौनसा है, जो जिनेश्वरमें नहीं है ? ॥

तथा योगेंद्रदेवविरचित परमात्मप्रकाशकी टीकामें भी साधुको उपकरण ग्रहण करने लिखे हैं. । तथा च तत्पाठो यथा ॥

“॥परमोपेक्षासंयमाभावे तु वीतरागशुद्धात्मानुभूतिभावसंय-
मरक्षणार्थं विशिष्टसंहननादिशक्त्यभावे सति यद्यपि
तपःपर्यायशरीरसहकारिभूतमन्नपानसंयमशौचज्ञानोपकर-
णतृणमयप्रावरणादिकं किमपि गृह्णाति तथापि ममत्वं न
करोतीति ॥”

तथाचोक्तं ॥

रम्येषु वस्तुवनितादिषु वीतमोहो ।

मुह्येदृथा किमिति संयमसाधनेषु ॥

धीमान् किमामयभयात् परिहृत्य भुक्तिं ।

पीत्वौषधं व्रजति जातुचिदप्यजीर्णम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—परमोपेक्षासंयमके अभाव हुए, वीतराग शुद्ध आत्माके अनुभव भाव संयमकी रक्षा करनेवास्ते, विशिष्टसंहननआदि शक्तिके अभाव हुए, यद्यपि तप, पर्याय, और शरीरके सहकारिभूत, अर्थात् साहाय्य देनेवाले,

अन्न, पाणी, और संयम, शौच, ज्ञान, इनके उपकरण, तथा तृणमय प्रावरण, घांसका उत्तरीय वस्त्र, इत्यादि कुछ भी ग्रहण करता है; तथापि तिनमें ममत्व नहीं करता है. इति । सोही कहा है. । रमणीय धनधान्यादि वस्तु, और वनिता-स्त्री, आदिशब्दसें माता, पिता, पुत्र, पुत्री, भाइ, बहिन, इत्यादिकोंमें जिसने मोह त्याग दिया है, सो निर्मोही, क्या, संयमके साधनोंमें वृथाही मोह करेगा ? अपितु कभी भी नहीं. इसबातके दृढ करनेवास्ते दृष्टांत कहे हैं. बुद्धिमान् रोगके भयसें भोजनको त्यागके और औषधको पीके. क्या कभी भी अजीर्णकों प्राप्त होता है ? कदापि नहीं. ऐसैही जन्ममरणादिदुःखरूप रोगके भयसें संसारके मोहरूप भोजनको त्यागके, निःसंग होके, जिनवचनमृतरूप औषधको पीके, संयमके साधनोंमें अजीर्णरूप मोहकों प्राप्त नहीं होता है. ॥

तथा । राजवार्त्तिकमें भी उपकरणविषयक लेख है. । तथाहि ॥

“॥ अतिथिसंविभागश्चतुर्विधो भिक्षोपकरणौषधप्रतिश्रयभेदात् ॥ २८ ॥” अतिथिसंविभागश्चतुर्धाभिद्यते । कुतः । भिक्षोपकरणौषधप्रतिश्रयभेदात् । मोक्षार्थमभ्युत्थितायातिथये संयमपरायणाय शुद्धाय शुद्धचेतसा निरवद्या भिक्षा देया धर्मोपकरणानि च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रोपबृंहणानि दातव्यानि औषधं प्रायोग्यमुपयोजनीयं प्रतिश्रयश्च परमधर्मश्रद्धया प्रतिपादयितव्यइति । च शब्दोवक्ष्यमाणगृहस्थधर्मसमुच्चयार्थः ॥

भाषार्थः—अतिथिसंविभागनामा चारमे (१२) व्रतके चार (४) भेद होते हैं; भिक्षा १, उपकरण २, औषध ३, और उपाश्रय ४; मोक्षकेवास्ते उद्यत संयममें तत्पर ऐसै शुद्ध अतिथि साधुकेतांइ शुद्धचित्तसें निरवद्य-दूषणरहित भिक्षा देनी १, और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, इनकी वृद्धि करनेवाले उपकरण देने २, योग्य औषध प्राप्त कर देना ३, और परम धर्म

श्रद्धाकरके उपाश्रय प्राप्त कर देना ४; च शब्द वक्ष्यमाण गृहस्थधर्मके समुच्चय वास्ते है. ॥

तथा । राजवार्त्तिकमेंही । यतः ॥

“॥ धर्मोपकरणानां ग्रहणविसर्जनं प्रति यतनमादाननिक्षेपणासमितिः ॥ ७ ॥” धर्माविरोधिनां परानुपरोधिनां द्रव्याणां ज्ञानादिसाधनानां ग्रहणे विसर्जने च निरीक्ष्य प्रपूज्य प्रवर्त्तनमादाननिक्षेपणासमितिः ॥

भाषार्थः—धर्मके अविरोधी, परके अनुपरोधी, ज्ञानादिके साधन, ऐसें द्रव्योंके ग्रहणमें और त्यागमें देखके और प्रमार्जन करके प्रवर्त्तना, सो आदाननिक्षेपणासमिति है. ॥

तथा राजवार्त्तिकमेंही । यतः ॥

“॥ संसक्तान्नपानोपकरणादिविभजनं विवेकः ॥ ” संसक्तानामन्नपानोपकरणादीनां विभजनं विवेक इत्युच्यते ॥

भाषार्थः—संसक्त जीवोत्पत्तिवाले अन्न, पाणी, उपकरणादिकोंका त्याग करना (परठना), सो विवेक कहिये हैं. ॥

तथा राजवार्त्तिकमेंही पांच प्रकारके निर्ग्रथोंका स्वरूप लिखा है, तिनमें बकुशका स्वरूप ऐसें लिखा है. । यतः ॥

“ ॥ बकुशो द्विविधः उपकरणबकुशः शरीरबकुशश्चेति ॥ ”

तत्र उपकरणाभिष्वक्तचित्तो विविधविचित्रपरिग्रहयुक्तः बहु विशेषयुक्तोपकरणकांक्षी तत्संस्कारप्रतीकारसेवी भिक्षुरूप-करणबकुशो भवति शरीरसंस्कारसेवी शरीरबकुशः ॥

भाषार्थः—बकुश दोप्रकारका होता है, उपकरणबकुश १, और शरीर-बकुश २; तिनमें जो उपकरणोंमें रक्त चित्तवाला नाना प्रकारके विचित्र परिग्रहयुक्त, बहुत सुंदर उपकरणोंका इच्छक, और तिन उपकरणोंका संस्कार प्रतिकार करनेवाला, भिक्षु साध, सो उपकरणबकुश होता है; और शरीरका संस्कार करनेवाला, शरीरबकुश होता है. ॥

तथा वकुशनिर्ग्रथमें सामायिक, और च्छेदोपस्थापन, यह दो संयम दिगंबरशाखाओंने माने हैं। तथाहि ॥

“॥पुलाकवकुशप्रतिसेवनाकुशीलाःद्वयोः संयमयोः सामायिकच्छेदोपस्थापनयोर्भवन्ति ॥” इतिराजवार्त्तिकटीकायाम् ॥

तथा ज्ञानार्णवमें शय्या, आसन, उपधान (तकीया) आदि, मुनिकी उपधि कही है; जो पाठ ऊपर लिख आए हैं। इत्यादि कितनेही दिगंबरशास्त्रोंमें मुनिकी अनेक प्रकारकी उपधि कही है। ऐसों उपकरण रखनेसे दिगंबरमतका मुनि तो, परिग्रहधारी नहीं हुआ, और श्वेतांबरमतका मुनि, चतुर्दशादि उपकरण रखे, तिसको परिग्रहधारी मानना, यह मतांधपणा नहीं तो, अन्य क्या है ?

और दिगंबरशाखाओंको द्रव्यक्षेत्रकालभावकी अनभिज्ञता होनेसे, और अनुचित कठिन मुनिवृत्तिके कथन करनेसे, प्रथम तो मुननी, अर्थात् साध्वी व्यवच्छेद होगई; पीछे साधु व्यवच्छेद होगए। आचार्योंपाध्यायका तो कहनाही क्या है!!! और श्वेतांबरमतमें तो, श्रीमहावीरजीसें लेके आजतांइ अव्यवच्छिन्न चतुर्विध संघ चला आता है। और वकुशकुशील इस कालमें जे पाइये हैं, तिनका आचार, व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवतीसूत्र) आदि शास्त्रोंमें कथन करा है, तैसों आचारके पालनेवाले साधु साध्वी सांप्रतिकालमें भी उपलब्ध होते हैं। इस हेतुसे दिगंबरशास्त्रोंकी असत्यता, और श्वेतांबरके शास्त्रोंकी सत्यता, प्रत्यक्ष प्रमाणसेंही देख लो; अन्यप्रमाणकी कुछ आवश्यकता नहीं है।

प्रश्नः—केवली कंवलाहार नहीं करता है, और तुम केवलीको कंवलाहार मानते हो, सो, किस प्रमाणसें मानते हो ?

उत्तरः—आगमप्रमाणसें मानते हैं। क्योंकि, श्रीतत्त्वार्थसूत्रमें परिषहोंका अधिकार चला है, तहां केवली—जिनके क्षुधापिपासादि इग्यारें परिषह कहे हैं, और तुमारे मतकी द्रव्यसंग्रहकी वृत्तिमें चारित्रिके अधिकारमें कहा है कि, तीन योगोंका व्यापार जिन-

केवलीके चारित्रको मलिन करे हैं, जिसको प्रदेशोंका चंचलभाव है, तिसकोंही यह योगत्रयव्यापार है; और कर्मग्रंथोंमें बैतालीस (४२) कर्मप्रकृतियां उदयमें केवलीको कही है, वे, अपना अपना नाना-प्रकारका रस दिखाती हैं। अवयवोंका जो प्रकर्षसे चलाना है, सो प्रवचनसारमें क्रियाविशेष कहनेकरके केवलीकों कहा है; समय-सारमें भी अंगसंचालन कहा है, भक्तामरस्तोत्रमें भगवंतको चरणोंसे चलना कहा है, एकीभावस्तवनमें जिनवरचरणोंका न्यास कहा है, भावपाहुडकी वृत्तिमें तीर्थकरके चरणोंका न्यास कहा है, वीरनंदिकृत श्रीचंद्रप्रभवचरित्रमें और हरिश्चंद्रकायस्थविरचित धर्मशर्माभ्युदयमें भी, भगवान्का विचरना लिखा है।

अब पूर्वोक्त शास्त्रोंके पाठ, अर्थसहित, अनुक्रमसें लिखते हैं। तत्रादौ तत्त्वार्थसूत्रपाठो यथा ॥

“॥ सूक्ष्मसंपरायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दशएकादशजिने ॥”

भाषार्थः—सूक्ष्मसंपराय, और छद्मस्थ वीतरागमें अर्थात् दशमे इग्यारमे बारमे (१० । ११ । १२ ।) गुणस्थानमें चौदह (१४) परीषह हैं; और जिन-के-वलीमें इग्यारह (११) परीषह हैं. तब तो, क्षुधापरीषहके हुए, केवलीको कवलाहार सिद्ध हुआ. परंतु कितनेक दिगंबरटीकाकारोंने, टीकामें नकार ग्रहण करा है, सो महाउत्सूत्र है. “एकादशजिने न संतीतिशेषः” ऐसी मिथ्याकल्पना सिद्ध करी है. क्योंकि, दिगंबरटीकाकार सूत्रशैलीके अनभिज्ञ मालुम होते हैं. जब सूत्रमें नकार कहाही नहीं है, तो टीकाकारने नकार कहांसें काढ मारा ? जेकर नकार माना जावे, तब तो, संलग्न सर्वसूत्रके साथ ‘न संति’ क्रियाका संबंध मानना चाहिये. तब तो, ऐसा अर्थ होवेगा, सूक्ष्मसंपराय, और छद्मस्थ वीतरागके चतुर्दश परीषह नहीं है; परंतु मतांधपुरुष मिथ्यात्वके उदयसें क्या क्या झूठी कल्पना नहीं करसकता है ? अपितु सर्व करसकता है. जब केवलीमें वेदनीय कर्मके उदयसें इग्यारह परीषह हैं, तो फिर, क्षुधाके लक्षणोंसे

केवली कवलाहार क्यों नहीं करें ? क्योंकि, औदारिकशरीरकी स्थिति कवलाहारविना नहीं हो सकती है. ॥ १ ॥

द्रव्यसंग्रहवृत्तिपाठो यथा ॥

“ ॥ सयोगिकेवलिनो यथाख्यातं चारित्रं न तु परमयथा-
ख्यातं चारित्रं चौराभावेपि चौरसंसर्गिवत् मोहोदयाभावेपि
योगत्रयव्यापारश्चारित्रमलं जनयतीति ॥ ”

भाषार्थ:-सयोगिकेवलीके यथाख्यात चारित्र है, परंतु परमयथाख्यात चारित्र नहीं है. जैसे चोरके अभावसे भी, चोरकी संगतिवाला चोर है; तैसेही मोहोदयके अभाव हुए भी, योगत्रयका व्यापार चारित्रमें मल उत्पन्न करता है. ॥ २ ॥

प्रवचनसारपाठो यथा ॥

ठाणनिसेज्जविहारा धम्मवदेसो अ णिअदवो तेसिं ॥
अरहंताणं काले मायाचारोवू इत्थीणं ॥

भाषार्थ:-स्थान, निषध्या, विहार, धर्मोपदेश, यह सर्व तिन अरिहंतों-को स्वाभाविक है. स्त्रियोंको मायाचारकीतरें. ॥ ३ ॥

उन्निद्रहेम-इत्यादि भक्तामरके काव्यमें भगवान् कमलोपरि पाद न्यास, स्थापन करते हैं.

“ ॥ पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः ॥ ” ॥ इति वचनात् ॥ ४ ॥

एकीभावस्तोत्रमें भी पादन्यास लिखा है. ॥

“ ॥ पादन्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीमित्यादि ॥ ” ॥ ५ ॥

तीर्थकरकमलऊपर पादन्यास करते हैं. ॥

“ ॥ तीर्थकराः कमलोपरि पादौ न्यसंतीति ” भावपाहुडवृत्तिवचनात् ॥ ६ ॥

चंद्रप्रभचरित्रमें भगवान्का विहार लिखा है. ॥

“ ॥ इत्थं विहृत्य भगवान् सकलां धरित्रीमित्यादिवचनात् ॥ ” ॥ ७ ॥

भक्तनाभचरित्रमें भी भगवान्का विचरना लिखा है. ॥

अथ पुण्यैः समाकृष्टो भव्यानां निःस्पृहः प्रभुः ॥
देशे देशे तमश्चेत्तुं व्यचरद्भानुमानिव ॥

भाषार्थः—भव्यप्राणियोंके पुण्योंसे खिचा हुआ, निःस्पृह भी भगवान्, देशोदेशमें मिथ्यात्वरूप अंधकारको छेदनेवास्ते, सूर्यकीतरें विचरता भया. ॥ ८ ॥

तथा जिन, जो अंग न चलावे तो, शुभ विहायगति, और अशुभ विहायगतिका उदय किसतरें होवे? नहीं होवे. और जिनके सात योग, कैसे होवे? और जो कल्पनाकुयुक्तियों कहते हैं कि, देवते तीर्थकरको उठाते, बिठलाते हैं, और चलाते हैं; सो कहना महा मिथ्या है. क्योंकि, प्राचीन दिगंबरमतके शास्त्रोंमें, ऐसा लेख किसी जगमें नहीं है. तो फिर, केवलीको देवते, उठना, बैठना, चलना, कराते हैं; ऐसा कलंक-रूपकथन, मिथ्यादृष्टिदीर्घसंसारिविना कौन कर सकता है ?

और जो तीर्थकरकेवलीके, परम औदारिक शरीर कहते हैं, सो भी इनके ग्रंथोंसे विरुद्ध है. क्योंकि, कायाबोधपाहुडमें औदारिकही कहा है. सो पाठ यह है. ॥

एरिसगुणाहिं सहियं अइसयवंतं सुपरिमलामोअं ॥
ओरालीयं च कायं णायवुं अरुहपुरुसस्स ॥ ९ ॥

भाषार्थः—इन पूर्वोक्त गुणसहित, अतिशयवंत, सुपरिमलआमोदसंयुक्त, औदारिककाया, अरिहंतपुरुषोंकी जाननी.

प्रश्नः—स्त्रीको सर्वचारित्र और मोक्ष नहीं है.

उत्तरः—तुमारे मतके शास्त्रोंमेंही, स्त्रीको चारित्र, और मोक्ष होना लिखा है.

यतः ॥

जइ दंसणेण सुद्धा उत्तामग्गेण सगवि संजुत्ता ॥
घोरं चरियं चरित्ता—इत्यादि

भाषार्थः—यदि दर्शनसम्यक्त्व करके स्त्री, शुद्ध है, उक्तमार्गकरके सो भी, संयुक्त है, घोर दुरनुचरचारित्र आचरणकरके—इत्यादि ॥ और इस पाठकी वृत्तिमेंही महाव्रतका उच्चार कहा है; अन्यथा चतुर्विध संघ कैसें होवे?

और त्रैलोक्यसारमें स्त्रीको मोक्ष कहा है. । तथा च तत्पाठः ॥

वीस नपुंसकवेआ इत्थीवेया य हुंति चालीसा ॥

पुंवेआ अडयाला सिद्धा इकंमि समयंमि ॥ १ ॥

भाषार्थः—नपुंसकवेद वीस (२०) स्त्रीवेद चालीस (४०), पुरुषवेद अष्टतालीस (४८), ये सर्व, एकसौ आठ (१०८) एक समयमें सिद्ध हुए हैं.

प्रश्नः—नग्न दिगंबरमुनिके चिन्हविना, किसीको भी केवल ज्ञान नहीं होता है.

उत्तरः—ब्रह्मदेवकृत समयपाहुडकी वृत्तिमें लिखा है कि, भरतराजाने भावसें परिग्रह छोड़ा है. । तथा प्राकृतबंध हरिवंशपुराणमें लिखा है कि, शिरमें कर-हाथ डालतेही भरतनृपतिने केवलज्ञान लब्ध. । और द्रव्यालिंगराहित पांडवोंने, कर्मोंका अंत किया. ॥

“॥ जा चिहुरुप्पालण खिवइ हत्थु ता केवल उप्पण्णो पसत्थु॥”-
इतिहरिवंशपुराणे ॥

प्रश्नः—आप प्रथम लिख आए हैं कि, वे सर्व लेख आगे चलके लिखेंगे तो, अब बतलाइए, वे लेख कौनसें हैं?

उत्तरः—वे लेख सर ए. कनिंगहाम (STR A. CUNNINGHAM) वे ‘आर्चीओलोजिकल रीपोर्ट’ (ARCHAEOLOGICAL REPORT) के तीसरे वोल्युममें (१३-१६५) छपाए हुए मथुराके प्रख्यात शिलालेख हैं; जिनकी नकल नीचे लिखते हैं

“॥ सिद्धंसं २० ग्रमा १ दि १०+५ को द्वियतो गणतो वाणि-
यतो कुलतो वैरितो शाखातो शिरिकातो भत्तितो वाचकस्य
अर्यसंघसिंहस्य निर्वर्त्तनं दत्तिलस्य.....वि.....लस्य
कोटुंबिकिये जयवालस्य देवदासस्य नागदिनस्य च नाग-
दिनाये च मातुये श्राविकाये दिनाये दानं-इ (श्री) वर्द्ध-
मानप्रतिमा ॥ ”

भाषांतरः—“॥ जय !* संवत् २० का उष्णकालकामास पहिला (१) मिति
१५, श्रीवर्द्धमानकी प्रतिमा, दत्तिलकी बेटी वि .. लकी स्त्री जयवाल जयपाल
देवदास और नागदिन अर्थात् नागदिन वा नागदत्त और नागदिना
अर्थात् नागदिना वा नागदत्ताकी माता दिना अर्थात् दिना वा दत्ता घरकी
मालिकिणी गृहस्थ शिष्यणी श्राविका तिसने अर्पण करी—यह प्रतिमा—
कौटिकगच्छमेंसे वाणिजनामा कुलमेंसे वैरीशाखाके भागके आर्य—संघ-
सिंहकी निर्वर्त्तन है अर्थात् प्रतिष्ठित है॥” ॥ १ ॥

“ ॥ सिद्धं महाराजस्य कनिष्कस्य राज्ये संवत्सरे नवमे ९.
मासे प्रथ १ दिवसे ५ अस्यां पूर्वाये कोटियतो गणतो
वाणियतो कुलतो वैरितो शाखातो वाचकस्य नागनंदिस
निर्वरतनं ब्रह्मधूतुये भट्टिमितसकुटुंबिनिये विकटायै श्रीव-
र्द्धमानस्य प्रतिमा कारिता सर्वसत्त्वानं हितसुखाये ॥ ”

यह लेख श्री महावीरकी प्रतिमाऊपर है.

भावार्थः—जय ! कनिष्कमहाराजाके राज्यमें नव (९) मे वर्षमें पहिले
(१) महिनेमें मिति पांचमी (५)में—इसदिनमें सर्व प्राणियोंके कल्याण

* “ सिद्ध ” इस शब्दका ‘ जय ’ अर्थ यूरोपीयन पंडितोंने किया है, सो यथार्थ नहीं है. क्योंकि, जैन-
मतमें प्रायः ‘ ॐ ’ ‘ अहि ’ ‘ सिद्ध ’ इत्यादि शब्द मंगलार्थ, और नमस्कारार्थ वाचक मानके, आदिमें लिखे
जाते हैं. ॥

तथा सुखकेवास्ते भट्टिमित्रकी स्त्री और ब्रह्मकी विकटा नामा पुत्रीने श्रीवर्द्धमानकी प्रतिमा बनवाई है—यह प्रतिमा—कोटिगणके वाणिज कुलके और वड़री शाखाके आचार्य नागनंदिकी निर्वर्त्तन प्रतिष्ठित है. ॥२॥

“॥ संवत्सरे ९० व.....स्य कुटुंबनि. व. दानस्य वोधुय कोटियतो गणतो प्रश्नवाहनकतो कुलतो मज्झमातो शाखातो....सनिकायभतिगालाए थवानि..... ॥”

इस लेखकेवास्ते डा० बुल्हर कहते हैं कि, इस लेखकी ली हुई नकल मेरे वसमें नहीं है, इसवास्ते इसका पूर्णरूप मैं स्थापन नहीं कर सकता हूं, परंतु पहिली पंक्तिके एक टुकड़ेके देखनेसे ऐसा अनुमान हो सकता है कि, यह प्रतिमा किसी स्त्रीने अर्पण करी है (बनवाई है) और सो स्त्री एक पुरुषकी मालकणी (कुटुंबिनी) और दूसरे पुत्रकी स्त्री (वधु) थी, ऐसे लिखा है।—संघमें कोटियगच्छके प्रश्नवाहन कुलकी मध्यमशाखाके—इत्यादि—॥ ३ ॥

“ ॥ स० ४७ ग्र. २ दि २० एतस्या पूर्व्याये चारणे गणेपेतिधमिककुलवाचकस्य रोहनदिस्य शिसस्य सेनस्य निवन्तनसावक—इत्यादि ॥ ”

संवत् ४७ उष्णकालका महिना दूसरा (२) मिति २० इस मितिमें यह संसारी शिष्यका देवार्पण किया हुआ पाणी पीनेका एक ठाम है यह रोहनंदिका शिष्य चारणगणके प्रैतिधर्मिककुलका आचार्यसेन तिसका प्रतिष्ठित है. ॥ ४ ॥

“ ॥ सिद्धं नमो अरहतो महावीरस्य देवनाशस्य राज्ञा वासु-देवस्य संवत्सरे ९८ वर्ष मासे ४ दिवसे ११ एतस्या पूर्व्याये

अर्यरोहनियतो गणतो परिहासककुलतो पौर्णपत्रिकातो
शाखातो गणिस्य अर्यदेवदत्तस्य न.....॥ ”

यह भी एक शिलालेखका उतारा है.

भाषांतरः—फतेह ! देवतायोंका नाशकर्त्ता ऐसे अरहतमहावीरको नमस्कार. वासुदेव राजाके संवत्के ९८ मे वर्षमें वर्षाऋतुके चौथे महिनेमें एकादशीके दिन इस मितिमें गणोंके मुख्य गणी अर्यदेवदत्त आर्यरोहणके स्थापे हुए, गणके परिहासककुलके पौर्णपत्रिकाशाखाके. ॥

अब इन ऊपर लिखे मथुराके पुराने शिलालेखोंके वांचनेसें दिगंबराम्नाय माननेवाले पक्षपातरहित सुज्ञजन प्रियबांधव दिगंबरलोकोंको विचार करना चाहिये कि, दिगंबरीय पट्टावलीयोंमें तथा दर्शनसारादि दिगंबरीय ग्रंथोंमें, जे लेख श्वेतांबरमतकी बाबत लिखे हैं, वे सत्य हैं, वा नही हैं ? और येह शिलालेख श्वेतांबरोंके कथनको सिद्ध करते हैं, वा, दिगंबरोंके कथनको ? क्योंकि, श्वेतांबरमतके दशाश्रुतस्कंधसूत्रके आठमे कल्पाध्ययनमें लिखा है कि, श्रीमहावीर स्वामीके आठ (८)मे पाटपर श्रीवीरात् संवत् २१५ में श्रीस्थूलभद्र स्वामी स्वर्गवासी हुए, उनके पाटपर ९ में पट्टधर श्रीसुहस्तिनूरि हुए, उनके षट् (६) शिष्योंसें षट् (६) गच्छ उत्पन्न हुए.

तथाहि ॥

“ । स्थविर आर्यरोहणसें उद्देह गण, जिसकी चार शाखायें हुइ, और छ कुल हुए. । स्थविर भद्रयशसें ऋतुवाटिका गच्छ, तिसकी चार शाखा, और तीन कुल हुए. । स्थविर कामर्द्धिसें वेसवाडियागण, (गच्छ) तिसकी चार शाखा, और चार कुल. । स्थविर सुप्रतिबुद्धसें कौटिकगण, तिसकी चार शाखा और चार कुल. । स्थविर ऋषिगुप्तसें माणवकगण, तिसकी चार शाखा, और चार कुल. । स्थविर श्रीगुप्तसें चारण गच्छ, तिसकी चार शाखा, और सात कुल. । ”

ये गच्छ, शाखा, कुलके नामका कोठा इसमाफक है.

गच्छ.	शाखा.	कुल.	
॥ १ ॥ उद्देहगण. गच्छ.	१ इंद्रवज्रिका, ॥ २ मासपुरिका, ॥ ३ मतिपत्रिका, ॥ ४ पूर्णपत्रिका, ॥	१ नागभूत, ॥ २ सोमभूत, ॥ ३ उल्लगच्छ, ॥ ४ हत्थलिज्ज, ॥	५ नंदिज्ज, ॥ ६ पारिहासक,
॥ २ ॥ ऋतुवाटिका गच्छ.	१ चंपिडिझिया, ॥ २ भद्रिका, ॥ ३ काकंदिया, ॥ ४ मेहलिज्जिया, ॥	१ भद्रजसियं, ॥ २ भद्रगुत्तियं, ॥ ३ यशोभद्रिकं, ॥	
॥ ३ ॥ वेसवाटिका गच्छ.	१ सावत्थिया, ॥ २ रज्जपालिया, ॥ ३ अंतरिज्जिया, ॥ ४ खेमलिज्जिया, ॥	१ गणियं, ॥ २ महियं, ॥ ३ कामद्वियं, ॥ ४ इंद्रपुरगं, ॥	
॥ ४ ॥ कौटिक गच्छ.	१ उच्चनागरी, ॥ २ विद्याधरी, ॥ ३ वयरी, ॥ ४ मज्झिमेल्ला, ॥	१ बंभलिज्ज, ॥ २ वत्थलिज्ज, ॥ ३ वाणिज्ज, ॥ ४ पणहवाहणयं, ॥	
॥ ५ ॥ माणवक गच्छ.	१ कासवज्जिया, ॥ २ गोयमज्जिया, ॥ ३ वासट्टिया, ॥ ४ सोरट्टिया, ॥	१ ऋषिगुप्तक, ॥ २ ऋषिदत्तक, ॥ ३ अभिजयंत, ॥	
॥ ६ ॥ चारण गच्छ.	१ हारियमालागारी, २ संकासिया, ॥ ३ गवेद्धुआ, ॥ ४ विज्जनागरी, ॥	१ वत्थलिज्जं, ॥ २ पीडधम्मियं, ॥ ३ हालिज्जं, ॥ ४ पुप्फमित्तिज्जं, ॥	५ मालिज्जं, ॥ ६ अज्जवेडियं, ॥ ७ कणहसहं, ॥

इन पूर्वोक्त षट् (६) गणोंमेंसे १ । ४ । ६ गणोंके, उनके कुलोंके, और उनकी शाखायोंके नाम, मथुराके शिलालेखोंमें लिखे हैं. और देवसेन भट्टारक अपने रचे दर्शनसारग्रंथमें लिखते हैं कि, विक्रमराजाके मरण-पीछे एक सौ छत्तीस वर्ष गए सोरठदेशके बलभी नगरमें श्वेतांबर संघ उत्पन्न हुआ; तथा मूलसंघ, नंद्याम्राय, सरस्वतिगच्छ, बलात्कारगण, इन चारों नामोंकी मथुराके शिलालेखोंमें गंध भी नहीं है; जेकर श्वेतांबरीय शास्त्रोंके पूर्वोक्त गणोंके लेख कल्पित मानें, तो भूमिमेंसे वे लेख कैसे निकलते ? इसवास्ते श्वेतांबरीय शास्त्रोंके लेख सत्य सिद्ध होते हैं. और दिगंबरोंके लेख मिथ्या सिद्ध होते हैं. क्योंकि, श्वेतांबर बाबत देवसेनके लेखसे मथुराके शिलालेख प्राचीनतर है; इसवास्ते श्वेतांबरीय शास्त्रोंमें जे जे गण कुल शाखाके नाम लिखे हैं, वे सत्य हैं. और जे जे दिगंबरोंने मूलसंघ १, नंद्याम्राय २, सरस्वतिगच्छ ३, बलात्कारगण ४, लिखे हैं, वे नवीन कल्पित सिद्ध होते हैं. जब श्वेतांबरमतकी सत्यताकी गवाही भूमिके शिलालेखही देते हैं, तब तो, प्रेक्षावान्को तिसकोही सत्यकरके मानना चाहिये. ॥

॥ इति प्रसंगतः संक्षेपतो दिगंबरमतसमालोचनं समाप्तम् ॥

॥ इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे जैनमतस्य प्राचीनताबौद्धमतान्यतावर्णनो नाम त्रयस्त्रिंशः स्तम्भः ॥ ३३ ॥

॥ अथचतुस्त्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

तेतीसमे स्तंभमें जैनमतकी प्राचीनताका, और बौद्धमतसे पृथक्ताका वर्णन कीया; अब इस चौतीसमे स्तंभमें जैनमत कितनी बातेंपर आधुनिक कितनेक पंडिताभिमानी शंका करते हैं, उनके उत्तर लिखते हैं.

प्रश्नः—जैनमतमें ऋषभदेव अरिहंतकी जो पांचसौ (५००,) धनुषप्रमाण अवगाहना लिखि है, ओर चौरासी लक्ष (८४०००००) पूर्वकी आयु

लिखी है, ऐसों लेखको वांचके कितनेक लोक, जो अंग्रेजी फारसी पढ़े हुए हैं, वे उपहास्य करते हैं; सो ऐसी अवगाहना, और आयुको जैन-मतवाले क्योंकर सत्य मानते हैं ?

उत्तर:—हे भव्य! जबतक पक्षपात छोड़के सूक्ष्मबुद्धिसे विचार नहीं करते हैं, तबतक वस्तुके तत्त्वकों नहीं प्राप्त होते हैं. क्योंकि, पृथिवीमें अधिक रस होनेसे तिस पृथिवीकी वनस्पतिमें भी अधिक रसवीर्य होता है, और तिस वनस्पतिके खानेवाले पुरुषादिकोंमें अधिक बल होता है, और तिनके शरीरमें वीर्य-धातु भी अधिक होता है, और जिसका वीर्य अधिक होता है, तिसका संतान भी कदावर (बड़ी अवगाहनावाला) होता है, हाथीवत्. । तथा पंजाबकी भूमिसे गुजरात देशकी भूमि रसमें न्यून है, इसवास्ते पंजाबकी वनस्पति खानेवाले पंजाबीयोंका शरीर गुजरातीयोंकी अपेक्षा कदावर और बलवान् है; और पंजाबसे काबुलकी भूमि अधिक रसवीर्यवाली है, इसवास्ते वहांकी मेवादि वनस्पति हिंदु-स्थानकी अपेक्षा बहुत रसवीर्यवाली होनेसे, वहांके पुरुष भी कदावर, और अधिक बलवान् है. इस लिखनेका यह प्रयोजन है कि, जैनमतके सिद्धांतानुसार वर्त्तमानकाल ' अवसर्पिणी ' चलता है, अर्थात् जिस कालमें समय समय भूमि आदि पदार्थोंका अच्छा वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, घटता जावे तिसको अवसर्पिणी काल कहते हैं.

यदुक्तं पंचकल्पभाष्ये ॥

भणियं च दुसमाए गामा होहिंति ऊमसाणसमा ॥

इय खेत्तगुणा हाणी कालेवि उ होहि इमा हाणि ॥ १ ॥

समये २ णंतं परिहायंते उ वण्णमाईया ॥

दव्वाई पज्जाया होरत्तं तत्तियं चेव ॥ २ ॥

दूसमअणुभावेणं साहूजोग्गा उ दुल्लहा खेत्ता ॥

कालेवि य दुप्पिक्खा अभिक्खणं हुंति डमरा य ॥ ३ ॥

दूसमअणुभावेण य परिहाणी होहि ओसहिबलाणं ॥

तेणं मणुयाणंपि उ आउगमेहादिपरिहाणी ॥ ४ ॥ इत्यादि ॥

भाषार्थः—कहा है दूसमनामा अवसर्पिणीकालके पांचमे आरे (हिस्से)-में गाम प्रायः मसाणसरिखे होवेंगे, येह क्षेत्रके गुणोंकी हानी जाननी. और कालमें भी यह वक्ष्यमाण हानी होवेगी, सोही बतावे हैं. समय समयमें अनंते अनंते द्रव्यपर्यायोंके वर्ण आदिशब्दसे रस, गंध, स्पर्श, जे जे शुभ शुभतर हैं उन्नोंकी हानी होवेगी, परंतु अहो-रात्र तावन्मात्रही रहेगा, दूसमकालके प्रभावसे साधुओंके योग्य क्षेत्र प्रायः दुर्लभ होवेंगे, और सुकालमें भी साधुओंके योग्य भिक्षा दुर्लभ होवेगी, दुर्भिक्ष और राज्यादि उपद्रव बारंबार होवेंगे, तथा दूसमकालके प्रभावसे औषधि अन्नादिकोंके बलकी तथा रसादिककी हानी होवेगी, और तिसकरके मनुष्योंके आयु बुद्धि, आदिशब्दसे अवगाहना बलपराक्रमादिकोंकी भी हानी होवेगी, इत्यादि अवसर्पिणीका वर्णन किया है; सो अवसर्पिणीकाल प्रथम आरेसे प्रारंभ हुआ है, तबसे भूमिआदि पदार्थोंके रस-वीर्य घटनेसे पुरुषादिकोंकी अवगाहना आयु भी घटने लगी; सो अवतक, तथा आगे कितनेक कालतांड घटती जायगी. क्रमसे घटते घटते हमारे समयतक असंख्य वर्ष गुजर चुके हैं; लाखों करोड़ों वर्षोंके व्यतीत होनेसे थोड़ी २ घटते २ हमारे समयमें थोड़ी अवगाहना आयु-रह गई है; इसवास्ते असंख्य काल पहिले बड़ी अवगाहनाका होना संभवे है. इस कालमें जो नहीं मानते हैं, वे क्या, असंख्य काल असंख्य वर्ष अतीतकालका पूरा पूरा स्वरूप देख आए हैं, जो नहीं मानते हैं?

अब अतीतकालमें पुरुषादिकोंके शरीर बड़े २ कहावर थे, इस कथन ऊपर हम थोडासा प्रमाण भी लिखते हैं. । सन १८५० ई० में मारुआं नजदीक, भूमिमें खोदते हुए, राक्षसी कदके मनुष्यके हाड भूमिसे निकलेथे; उनमें जवाड़ेका हाड, आदमीके पगजितना लंबा था, और एक बुशल अर्थात् चौबीस (२४) सेर पक्के गेहूं तिसकी खोपरीमें समा सकेथे, एक २ दांतका वजन पउणा आउस (कुछक न्यून दो तोले)

प्रमाण था। और कीनटोलोकस नामका राक्षस पंदरा (१५) फुट ६ ईंच ऊंचा था, उसके खंभेकी चौड़ाई १० फुटकी थी; और सारलामेनके वख-तमें मालुम हुआ फरटीगस नामका सखस २८ फुट ऊंचा था; यह कथन गुजरातमित्रके ३० मे पुस्तकके तारीख १८ सप्टेंबर सन १८९२ के अंकमें लिखा है।

तथा तारीख १२ नवेंबर सन १८९३ के बुंबईका गुजराती पत्रमें लिखा है कि, हंगरीमें राक्षसीकदके एक मेंडक (दुर्दर-देडका) का हाडपिंजर मिला है; इस मेंडकको ' लेव्हीरीनथोडोन ' के नामसे पिछाननेमें आते हैं। प्राचीन शोधोंके करनेसे मालुम होता है कि, ऐसी जातके मेंडक तिस अतीतकालमें बहुत अस्ति धराते थे, परंतु आजकालमें ऐसे मेंडककी अस्ति है नहीं। इस मेंडककी खोपरी इतनी बड़ी है कि, उसकी दोनों आंखोंके खाडोंके बीचमें १८ ईंचका अंतर है; इस खोपरीका वजन ३१२ रतल प्रमाण है, और सर्व हाडोंके पिंजरका वजन १८६० रतल प्रमाण, अर्थात् लगभग एक टन प्रमाण होता है। तथा प्रोफेसर थी-ओडोर कुक अपने बनाए भूस्तर विद्याके ग्रंथमें लिखते हैं कि, पूर्वकालमें उडते गिरोली (छपकली-किरली) जातके प्राणी ऐसे बड़े थे, जिसकी पांख २७ फुट लंबी थी। जब ऐसे प्राणी पूर्व कालमें इतने बड़े थे, तो फिर मनुष्योंकी अवगाहना बहुत बड़ी होवे तो, इसमें क्या आश्चर्य है? ये पूर्वोक्त सर्व शोधें अंग्रेजोंने करी है। अब जो कोई कहे कि, इतने बड़े शरीरवाले मनुष्य, मेंडक, गिरोलीको हम नहीं मानते हैं, तो फिर हम उनको क्या प्रमाण देवे? क्योंकि, ऐसे अकलके पुतलों (बारदानों) को तो सर्वज्ञ भी नहीं समझा सकते हैं। और जो कोई भूस्तर विद्याकी शोधको सत्यकरके मानते हैं, उनकेवास्ते तो पूर्वोक्त प्रमाण बहुत बलवत् है कि, पिछले जमानेमें मनुष्योंके शरीर बहुत बड़े कदावर थे; इससे बहुत प्राचीनतर कालमें जो अवगाहना जैन सिद्धांतमें लिखी है, सो भी सत्य सिद्ध होसकती है। तथा मनुस्मृतिकी टीकामें श्रीराम-चंद्रजीकी आयु दशसहस्र (१००००) वर्षकी लिखी है। तथा महाभार-

तके षोडश (१६) अध्यायमें ब्रह्माकी बेटी कश्यपकी स्त्री कद्रूके अंडेको पक्कनेका काल पांचसौ (५००) वर्ष लिखा है, और वनिताके अंडेको पक्कनेका काल एक सहस्र (१०००) वर्ष लिखा है. । तथा महाभारतके एकोनविंश (१९) अध्यायमें राहुका शिर, पर्वतके शिखर जितना बड़ा लिखा है. । तथा एकोनत्रिंश (२९) अध्यायमें षट् (६) योजन ऊंचा, और बारां योजन लंबा, हाथी लिखा है.* तथा तीन योजन ऊंचा, और दश योजनका परिघ (घेरा), ऐसा कुर्म (कच्छु-काचवा) लिखा है. । तथा तौरेतग्रंथमें नुह आदि कितनेक मनुष्योंकी ९००, वा ८००, सौ वर्षकी आयु लिखी है. इससें मालुम होता है कि इससें पहिले प्राचीनतर जमानेमें मनुष्योंमें बहुत बड़ी आयुवाले मनुष्य थे. इस समयमें भी हिंदुस्थानकी अपेक्षा कितनेक देशोंमें अधिक आयुवाले मनुष्य विद्यमान है; तो फिर, असंख्यकालके पहिले मनुष्योंकी सर्व देशोंमें शत (१००) वर्ष प्रमाणही आयु माननी, यह बुद्धिमानोंको उचित है ? नहीं. इसवास्ते सर्वज्ञोक्त पुस्तकोंमें जो जो लेख है, सो सर्व सत्यही है. परंतु जो तुमारी समझमें नहीं आता है, सो तुमारी बुद्धिकी दुर्बलता है. क्योंकि, जो कोई इससमयमें किसी नवीन पुस्तकमें लिख जावे कि, एक पुरुष सौ (१००) मण बोजा उठा सकता है, और एक पुरुष २७ मणकी लोहमयी मूंगली (मुद्गर-मोगरी) उठा सकता है, तो क्या तिस लेखको आजसें ५० वर्ष पीछेतुच्छबुद्धिवाले मान सकते हैं ? नहीं. परंतु यह वार्त्ता हमारे प्रत्यक्ष है. पंजाब देशके लाहोर जिलेमें बलटोहे गामका रहनेवाला, फत्तेसिंह नामका एक सिख ४०, वा, ५०, वा १००, मणके बोजेवाले अरहट (रेंट) को उठा लेता है; और पूर्वोक्त जिलेमें चयांवाला गामका रहनेवाला, हीरासिंह नामका एक पुरुष २७ मण लोहेकी मूंगली (मुद्गर-मोगरी) उठाता है, यह हमारे प्रत्यक्ष देखनेमें आया है. इसीतरें सर्वज्ञके कथन किये प्राचीन लेख, कालांतरमें अल्पबुद्धिवालोंकी समझमें आने कठिन है.

* बानु शिवप्रसाद सितारे हिंद (स्टार आफ इंडिया) ने लिखा है कि, बड़े कद्रूके आदमीको चढ़नेकेवास्ते इतना बड़ा घोड़ा कहासे मिलता होगा ? सो इसका उत्तर भी जानना कि, यदि इतना बड़ा हस्ती उस जमानेमें होता था, तो क्या बोडे नहीं होते होंगे ! ! !

प्रश्नः—कितनेक कहते हैं कि, जैनमतमें पृथिवी स्थिर, और सूर्य चलता है, ऐसा लेख है; और विद्यमान कालमें तो, कितनेक पाश्चात्यादि विद्वान् कहते हैं कि, पृथिवी चलती है, और सूर्य स्थिर है; और कितनेक कहते हैं कि, पृथिवी भी चलती है, और सूर्य भी अपनी मध्यरेखापर चलता है; यह क्यों कर है ?

उत्तरः—प्रथम तो हे भव्य ! जैनमतके चौदहपूर्व, एकादशांग, उपांग, प्रकीर्णक, निर्युक्ति, वार्त्तिक, भाष्य, चूर्णी, आदि जैसे सुधर्म स्वामी गणधर आदिकोंने रचे थे, और जैसे वज्रस्वामी दशपूर्वधारीने उनका उद्धार करके नवीन रचना करी, सो ज्ञान प्रायः सर्व, स्कंदिलाचार्यके समयमें व्यवच्छेद हो गया है; उनमेंसे जो शेष किंचित्मात्र रहा, सो नाममात्र रह गया. फिर उस ज्ञानको स्कंदिलादि आचार्य साधुयोंने नाममात्र आचारांगादिको एकत्र करके रचना करी, परंतु स्कंदिलादि आचार्य साधुयोंने स्वस्तिकल्पनासे कुछ भी नहीं रचा है; जो शेष रह गया था, उसकोही तिस तिस अध्ययन उद्देशमें स्थापन किया. फिर देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणआदिकोंने ताडपत्रोंपर मूलपाठ, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, आदि और अन्यप्रकरणप्रमुख एक कोटि (१०००००००,) पुस्तक लिखे. वे पुस्तक भी, जैनोकी गफलत, मतोंके झगडे, मुसलमानोंके जुलमसें, और गुर्जर देशमें अग्नि आदिके उपद्रवसें, बहुतसें नष्ट होगए; और कितनेक भंडारोंमें बंद रहनेसें गल गए; जैसे पाटणमें फोफलियावाडेके भंडारमें एक कोठडीमें ताडपत्रोंके पुस्तकोंका चूर्ण हुआ भुसकीतरे पड़ा है. और जैसलमेरमें तो, प्राचीन पुस्तकोंका भंडार कहाँ है, सो स्थानही श्रावकलोक भूल गए हैं. तो भी, डॉक्टर बुल्लर साहिबने, मुंबई हातेमें डेढ लाख (१५००००) जैनमतके पुस्तकोंका पता लगाया है; और उनका सूचीपत्र भी अंग्रेजीमें छपवाया है, ऐसा हमने सुना है. जब इतने पुस्तक जैनमतके नष्ट होगए हैं तो, हम लोक क्यों कर जैनमतके पुस्तकोंके लेखानुसार सर्व प्रश्नोंका समाधान कर सके कि, इस अभिप्रायसें यह कथन किया है !

और इस कालमें जो बुद्धिमानोंने पृथिवी सूर्य आदिके चलनेका स्वरूप प्रकट किया है, सो अनुमान बांधके प्रकट करा है; परंतु सर्वस्वरूप किसीने आंखोंसें नहीं देखा है. क्योंकि, दक्षिण उत्तर ध्रुव बतलाते हैं, और उनका स्वरूप लिखते हैं, और यह भी कहते हैं कि, दक्षिण उत्तर ध्रुवोंतक कोई भी पुरुष नहीं जा सकता है. और ध्रुवकी तरफ जानेका प्रयत्न करनेवाली कई भंडालियोंका पता भी वरफके पहाड़ोंमें लगा नहीं है. जब ऐसैं है, तो फिर, उनके लिखे कल्पित-आनुमानिक स्वरूपकी सत्यता कैसे मानी जावे? क्योंकि, पृथिवीके कितनेही हिस्से ऐसैं हैं कि, वे अभितक जाननेमें नहीं आये हैं. थोड़े अरसेकी बात है, एक अखबार (न्युसपेपर) में हमने बांचा है कि, अमेरिकन शोधकोंने यह विचार किया कि, यह धूमस (धूवां) कहाँसे आती है? तलाश करते हुए उनको ऐसा मालुम हुआ कि, दूर फांस-लेपर एक शहर तीसहजार (३००००) घर, वा मनुष्योंकी वस्तीवाला दीख पडा; उस विषयमें वे लिखते हैं कि, हम नहीं जानते है कि, इस शहरका क्या नाम, और किस बादशाहकी हुकुमत इसपर है? ऐसैंही पृथिवीके अनेक विभाग, बिना जाने पडे हैं. तो फिर, हम कैसें सर्व कल्पित-आनुमानिक बातोंको सत्यकरके मान लेवें? तथा मि० वीरचंद राघवजी गांधी, वी. ए. के पास एक अमेरिकन विद्वानका बनाया हुआ 'अर्थनॉट एग्लोब' (EARTH NOT A GLOBE) नामका पुस्तक हमने देखा, जिसमें ऐसा लिखा सुना है, कि पृथिवी गोल नहीं, किंतु चपटी (सपाट) है, और पृथिवी फिरती नहीं है, किंतु सूर्य फिरता है, ऐसैं सिद्ध किया है. तथा आकाशमें ऐसैं तारे हैं, उनको देख हम ऐसा अनुमान करसकते हैं कि, पृथिवी स्थिर है, और सूर्य चलता है, और जो कोई हमारे पास आके यह बात देखना चाहे तो, उसको हथ दिसला सकते भी हैं. तथा वेदोंमें भी सूर्य चलता है, ऐसैं लिखा है.

तथाहि प्रथम ऋग्वेदे ॥

तुरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसिसूर्य ॥ विश्वमाभासिरोचनं ॥४॥

ऋ० अ० १ अ० ४ व० ७ ।

भाष्यका भाषार्थः—हे सूर्य! तू तरणि—तरिता है, अन्य कोई न जासके ऐसे बड़े अध्व मार्गमें जानेवाला है; ॥

तथा च स्मर्यते ॥

योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने ॥

एकेन निमिषार्द्धेन क्रममाण नमोस्तु ते ॥ १ ॥ इति ॥

भाषार्थः—दो सहस्र दो सौ और दो (२२०२), इतने योजन सूर्य आंख मीचके खोले तिसकालसें आधे कालमें चलता है, इत्यादि—। तथा ऋग्-वेद अ० १ अ० ३ व० ६ में लिखा है कि, सुवर्णमय रथमें बैठके जगत्को प्रकाश करता हुआ, और देखता हुआ, सूर्य आजाता है। तथा देव दी-पता हुआ सूर्य, प्रवणवत मार्गकरके जाता है, तथा उर्ध्वदेशयुक्त मार्ग-करके जाता है, उदयानंतर आमध्यान्हतांड़ उर्ध्व मार्ग है, तिसके उपरात आसायंकाल प्रवणमार्ग है, यह भेद है; और यजन करनेके देशमें सूर्य श्वेतवर्णके अश्वोंकरके जाता है, और दूर आकाश देशसें यहां आता है।

तथा ऋ० अ० २ अ० १ व० ५ में लिखा है। यथा ॥

“॥ सूर्योहि प्रतिदिनं एकोनषष्ट्याधिकपंचसहस्रयोजना-
निमेरुं प्रादक्षिण्येन परिभ्राम्यतीत्यादि ॥”

भाषार्थः—सूर्य प्रतिदिन ५०५९ योजन मेरुको प्रदक्षिणा करके परि-भ्रमण करता है। इत्यादि।

तथा ऋ० अ० २ अ० ५ व० २ में लिखा है। यथा ॥

“॥ अचरंती अविचले द्वे एवैते द्यावापृथिव्यौ॥” इत्यादि।

अविचल अचल अर्थात् स्थिर दोही है स्वर्ग १, और पृथिवी २, इत्यादि ऋचायोंसें सूर्यका चलना, और पृथिवीका स्थिर रहना कथन किया है। ऐसैही यजुर्वेदादिसंहिता, और ब्राह्मणभागोंमें सूर्यके चलनेका कथन है। बौबलके हिस्से तौरेतमें भी लिखा है कि यहसुया जब लडा-

इमें लडता था, तब सूर्य कितनेक घंटेतक चलनेमें थम गया था; इत्यादि सर्व धर्मपुस्ककोंमें प्रायः सूर्यका चलनाही लिखा है।

प्रश्नः—कितनेक कहते हैं कि, जैनमतमें जो भरतखंडकी लंबाई, और चौड़ाई, कही है, सो बहुत है; और देखनेमें हिंदुस्तान थोडासा है, इसका क्या सबब है?

उत्तरः—जैनमतमें हिंदुस्तानका नाम कुच्छ भरतखंड नहीं लिखा है; किंतु आर्य, अनार्य, सर्व देश मिलाके ३२००० देश जिसमें वसते थे, उसका नाम जैनमतमें भरतखंड लिखा है। वे अनार्य, आर्य देश जौनसें हैं, उनके नाम श्रीप्रज्ञापना उपांग सूत्रसें लिखते हैं। प्रथम अनार्य देशोंके नाम लिखते हैं। शक १, यवन २, चिलात ३, शबर ४, बर्बर ५, काय ६, मुरुंड ७, ओड्ड ८, भडग ९, तीर्णक १०, पक्रण ११, नीक १२, कुलक्ष १३, गौड १४, सीहल १५, पारस १६, गोध १७, अंध्र १८, दमिल १९, चिल्लल २०, पुलिंद २१, हारोस २२, दोव २३, वोक्कण २४, गंधहार २५, बहलि २६, अर्जल २७, रोम २८, पास २९, बकुश ३०, मलका ३१, बंधकाय (चूंचुका) ३२, सूकलि (चूलिक) ३३, कुंकण ३४, मेद ३५, पल्हव ३६, मालव ३७, मग्गर (महुर) ३८, आभासिक ३९, कण (अणक) ४०, वीरण (चीन) ४१, ल्हासिक ४२, खस ४३, खासिक ४४, नेदूर ४५, मढ ४६, डोंविलग ४७, लकुस ४८, खकुस ४९, केकेय ५०, अरब ५१, दूणक ५२, रोमक ५३, भमरु ५४, इत्यादि। और शक १, यवन २, शबर ३, बर्बर ४, काय ५, मुरुंड ६, उड्ड ७, भंडड ८, भित्तिक ९, पक्रणिक १०, कुलाक्ष ११, गौड १२, सिंहल १३, पारस १४, क्रौंच १५, अंध्र १६, द्रविड १७, चिल्वल १८, पुलिंद १९, आरोषा २०, डोवा २१, पोक्काणा २२, गंधहारका २३, बहलीका २४, जल्ला २५, रोसा २६, माषा २७, बकुशा २८, मलया २९, चूंचुका ३०, चूलिका ३१, कोंकणगा ३२, मेदा ३३, पल्हवा ३४, मालवा ३५, महुरा ३६, आभाषिका ३७, अणका ३८, चीना ३९, लासिका ४०, खसा ४१, खासिका ४२, नेदरा ४३, महाराष्ट्रा ४४, मुढा ४५, मौष्ट्रिका ४६, आरब ४७, डोंविकल ४८, कु-

हुणा ४९, केकया ५०, हूणा ५१, रोमका ५२, रुक्खा ५३, मरुका ५४, इत्यादि अनार्यदेशके वासी मनुष्योंके नाम, प्रश्नव्याकरण सूत्रमें लिखे हैं। और शक १, यवन २, शबर ३, बर्बर ४, काय ५, मुरुंड ६, दुगोण ७, पकण ८, अक्खाग ९, हूण १०, रोमस ११, पारस १२, खस १३, खासिक १४, दुविल १५, यल १६, वोस १७, वोक्स १८, भिलिंद १९, पुलिंद २०, क्रौंच २१, अमर २२, रुका २३, क्रौंचाक २४, चीन २५, चंचूक २६, मालंग २७, दमिल २८, कुलक्षय २९, केकय ३०, किरात ३१, हयमुख ३२, खरमुख ३३, तुरगमुख ३४, मेंढकमुख ३५, हयकर्ण ३६, गजकर्ण ३७, इत्यादि अनार्यदेशोंके नाम, सूत्रकृतांगकी निर्युक्तिमें कहे हैं। इत्यादि एकतीस सहस्र नवस्तौ साठेचुहत्तर (३१९७४॥) अनार्य देश जिसमें वसते हैं, और साठे पच्चीस (२५॥) आर्यदेश हैं, उनके नाम प्रज्ञापना सूत्रसें लिखते हैं। राजवृहन्नगर-यगधजनपद १, अंगदेश-चंपानगरी २, बंगदेश-ताम्रलिप्तीनगरी ३, कलिंगदेश-कांचनपुरनगर ४, काशीदेश-बाणारसीनगरी ५, कोशलदेश-साकेतपुर अपर नाम अयोध्यानगर ६, कुरुदेश-गजपुर (हस्तिनापुर) नगर ७, कुशावर्तदेश-सौरिकपुरनगर ८, पंचालदेश-कापिलपुरनगर ९, जंगलदेश-अहिच्छत्तानगरी १०, सुराष्ट्रदेश-द्वारावती (द्वारिका) नगरी ११, विदेहदेश-मिथिलानगरी १२, वत्सदेश-कौशांबीनगरी १३, शांडिल्यदेश-नंदिपुरनगर १४, मलयदेश-भद्रिलपुरनगर १५, वच्छदेश-वैराटनगर १६, वरणदेश-अच्छापुरीनगरी १७, दशार्णदेश-मृत्तिकावतीनगरी १८, चेदिदेश-शौक्तिकावतीनगरी १९, सिंधुदेश-वीतभयनगर २०, सौवीरदेश-मथुरानगरी २१, सूरसेनदेश-पापानगरी २२, भंगदेश-भासपुरिवटानगरी २३, कुणालदेश-श्रावस्तीनगरी २४, लाढदेश-कोटिवर्षनगर २५, श्वेतंबिकानगरी केकय आधा (०॥) देश, येह साठे पच्चीस (२५॥) आर्यदेश हैं, क्योंकि, इन देशोंमेंही जिन-तीर्थकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेवादि आर्य-श्रेष्ठ पुरुषोंका जन्म होता है, इसवास्ते इनको आर्यदेश कहते हैं, येह सर्व आर्यदेश विंध्याचल, और हिमालयके बीचमें हैं, हैम, अमरा-

दिकोशोंमें भी ऐसैही आर्यदेश कहा है. ऐसे अनार्य आर्य सर्व देश मिलाके बत्तीस हजार (३२०००) देश जिसमें वास करते हैं, तिसको जैनमतमें भरतखंड कहा है; नतु हिंदुस्तानमात्रको. । ऐसे पूर्वोक्त भरत-खंडकी भूमिपर बहुत जगोंपर समुद्रका पानी फिरनेसें खुली भूमि थोड़ी रह गइ है; यह बात जैन ग्रंथोंसें, और परमतके ग्रंथोंसें भी सिद्ध होती है. और अनुमानसें भी कितनेक बुद्धिमान सिद्ध करते हैं. जैसें सन १८९२ सप्टेंबर मास तारीख ५ को 'नवमी ओरीएंटल कांग्रेस' (NINTH ORIENTAL CONGRESS) जो लंडनशहरमें भरी थी, तिसमें पंडित मोक्षमुल्लरने अपने भाषणमें ऐसा सिद्ध करा है कि, एसीयासें लेके अमेरिकातांइ किसीसमयमें समुद्रका पानी बीचमें नहीं था; किंतु केवल एकही भूमिका सपाट थी. पीछे समुद्रके जलके आजानेसें बीचमें देशोंके टापु बन गए हैं. और ईसा (इसु खीस्तसें) पहिले १५०००, तथा २००००, वर्षके लगभग सामान्य भाषाके बोलनेवाले प्राचीन लोक, पृथिवीके किसी भागमें वसते थे.* तथा डॉक्टर बुल्हर साहिबने अपने भाषणमें जैन लोकोंके संबन्धमें एक निबन्ध वांचके सुनाया था कि, जैनलोकोंकी शिल्प विद्या कितनेक दरजे (कितनीक बाब-तोंमें) बुद्ध लोकोंकी शिल्पविद्याके साथ मिलती आती हैं, तो भी, जैन लोकोंने, वे सर्व बुद्धलोकोंके पाससें नहीं ली है; किंतु वो विद्या, जैन लोकोंके घरकीही है, ऐसा सबूत कर दीया था.—यह समाचार, गुजराती पत्रके १३ मे पुस्तकके अक्टोबर सन १८९२ के ४० मे और ४१ मे अंकमें है. यह यहां प्रसंगसें लिखा है. इसवास्ते चीन, रूस, अमेरिकादि सर्व भरतखंडमेंही जानने. ॥ पूर्वोक्त साडेपच्चीस आर्यदेशोंको, जैनमतमें क्षेत्र आर्य कहते हैं.

प्रश्नः—यदि क्षेत्रकी अपेक्षा येह २५॥ देश आर्य है, और शेष ३१९७४॥ देश अनार्य है तो, क्या आर्य अन्य तरेंके भी है, जिसवास्ते इनको क्षेत्रापेक्षा आर्य कहते हो ?

* इस कथनसें जो इसाई लोक मानते हैं कि, इस पृथिवीके रचेको, वा मनुष्य रचेको छ सहस्र (६०००) वर्ष हुए हैं, सो मिथ्या ठहरता है.

उत्तर:-हां. अन्यतरेके भी आर्य है, जैनमतके प्रज्ञापना सूत्रमें नव-प्रकारके आर्य कहे हैं. । तथाहि ॥ क्षेत्रार्य १, जाति आर्य २, कुलार्य ३, कर्मार्य ४, शिल्पार्य ५, भाषार्य ६, ज्ञानार्य ७, दर्शनार्य ८, चारित्रार्य ९. ।

अब प्रथम आर्य पदका अर्थ लिखते हैं. ।

“॥तत्रारात् हेयधर्मेभ्यो याताः प्राप्ता उपादेयधर्मेरित्यार्याः
पृषोदरादय इति रूपनिष्पत्तिः ॥”

तहां आरात् त्यागने योग्य धर्मोंसें जाते रहे हैं, और प्राप्त है अंगीकार करने योग्य धर्मोंकरके वे कहिये, आर्य. ॥

१. क्षेत्रार्य-क्षेत्रार्यका स्वरूप तो, ऊपर लिख आए हैं. ॥ १ ॥

२. जातिआर्य-अम्बष्ठ १, कलिंद २, वैदेह ३, वेदंग ४, हरित ५, चुञ्चुण ६, रूप ये इभ्यजातियां प्रसिद्ध हैं, तिसवास्ते इन जातियोंकरके जे संयुक्त है, वे जातिके आर्य हैं, शेष नहीं. यद्यपि शास्त्रांतरोंमें अनेक जातियें कथन करी हैं, तो भी, लोकोंमें येही जातियें पूजने योग्य प्रसिद्ध हैं. ॥ २ ॥

३. कुलार्य-उग्रकुल १, भोगकुल २, राजन्यकुल ३, इक्ष्वाकुकुल ४, ज्ञातकुल ५, कौरवकुल ६. । जिनको श्रीऋषभदेवजीने कोतवालका पद दिया था, उनका जो वंश चला, तिसका नाम उग्रकुल १, जिनको श्रीऋषभदेवजीने पूज्य बडाकरके माना, उनका वंश भोगकुल २, जो श्रीऋषभदेवके मित्रस्थानीये थे, उनका वंश राजन्यकुल ३, जो श्रीमहावीरजीका वंश, सो ज्ञात (न्यात) कुल ४, जो श्रीऋषभदेवजीका वंश, सो इक्ष्वाकुकुल ५, जो श्रीऋषभदेवजीके कुरुनामा पुत्रसें वंश चला, सो कौरव वंश ६. चंद्रवंश, और सूर्यवंश, जो श्रीऋषभदेवके पोते चंद्रयश, और सूर्ययशके नामसें प्रसिद्ध हुए हैं, इक्ष्वाकुवंशके अंतरभूतही गिने हैं न्यारे नहीं. ॥ ३ ॥

४. कर्मार्य-इनके अनेक भेद हैं । दोसिका जातिविशेष १, सौत्तिका २, कर्प्पासिका ३, मुक्तिवैतालिका जातिविशेष ४, भंडवेतालुका जाति-

विशेष ५, कोलादिक ६, नरवाहीनिका ७, इत्यादि अनेक प्रकारके हैं ॥ ४ ॥

५. शिल्पार्य—इनके भी अनेक प्रकार हैं। दरजीका काम करनेवाले १, तंतु-वायाकुर्विदा २, पट्टकारा पट्टकूलकुर्विदा ३, दृतिकारा ४, विच्छिका ५, जठ्विका ६, कठादिकारा ७, काष्ठपादुकाकारा ८, छत्रकारा ९, बभारा १०, पम्भारा ११, पोत्थारा १२, लेप्पारा १३, चित्तारा १४, संखारा १५, दंतारा १६, भंडारा १७, जिप्भगारा १८, सेल्लारा १९, कोडिगारा २०, इत्यादि अनेक प्रकारके शिल्पार्य जानने ॥ ५ ॥

६. भाषार्य—जहां अर्द्धमागधी भाषाकरी बोलते हैं, और जहां ब्राह्मी लिपिके अठारह (१८) भेद प्रवर्तते हैं, अर्थात् लिखते हैं, सो भाषार्य । ब्राह्मी लिपिके भेद ऊपर लिख आए हैं, और अठारह देशकी भाषा एकत्र मिली हुई बोली जाती है, सो अर्द्धमागधी भाषा, ऐसैं निशीथ चूर्णिणमें लिखा है ॥ ६ ॥

७. ज्ञानार्य—इनके पांच भेद हैं. मतिज्ञानार्य १, श्रुतज्ञानार्य २, अवधिज्ञानार्य ३, मनःपर्यवज्ञानार्य ४, केवलज्ञानार्य ५. इन पांचों ज्ञानोमेंसे जिसको ज्ञान होवे, सो ज्ञानार्य. इन पांचों ज्ञानोंका स्वरूप नंदिसूत्रसे जान लेना ॥ ७ ॥

८. दर्शनार्य—इनके दो भेद हैं. सरागदर्शनार्य १, वीतरागदर्शनार्य २; सरागदर्शनार्य, कारणभेद होनेसे कार्यभेद नयके मतसे दश प्रकारके हैं। निसर्गरुचि १, उपदेशरुचि २, आज्ञारुचि ३, सूत्ररुचि ४, बीजरुचि ५, अभिगमरुचि ६, विस्ताररुचि ७, क्रियारुचि ८, संक्षेपरुचि ९, धर्मरुचि १०. इनका स्वरूप ऐसैं है. भूतार्थत्वेन सद्भूता सबे हैं येह पदार्थ, ऐसैं रूपसे जिसने जीव १, अजीव २, पुण्य ३, पाप ४, आश्रव ५, संवर ६, बंध ७, निर्जरा ८, मोक्षरूप ९, नव पदार्थ* जाने हैं; कैसे जाने

* श्रीमेवधियजयी उपाध्यायविरचित “तत्त्वगीता” में जीवका प्रतिपक्षी अजीव, पुण्यका पाप, आश्रवका संवर, बंधका मोक्ष, और निर्जराकी प्रतिपक्षिणी वेदना, ऐसैं दश पदार्थ लिखे हैं; और श्री भगवती सूत्रमें भी नवपदार्थोंका वर्णन करके अनंतरही वेदनाका वर्णन किया है ॥

हैं ? परोपदेशविना, जातिस्मरणप्रतिभारूप अपनी मतिकरके जाने हैं, और उनके सत्य होनेकी रुचि आत्माके साथ तत्त्वरूपकरके परिणाम जो करता है, तिसको निसर्गरुचि जाननी। इस कथनकोही स्पष्टतर कहते हैं। जो पुरुष जिनेन्द्र देवके देखे हुए पदार्थोंको द्रव्य १, क्षेत्र २, काल ३, भाव ४ सें, वा नाम १, स्थापना २, द्रव्य ३, भाव ४ भेदसें, चार प्रकारसें स्वयमेव आपही परके उपदेशविना जाने, और श्रद्धे; किस उल्लेखकरके ? ऐसैही है, येह जीवादिपदार्थ, जैसें जिनेन्द्र देवोंने देखे हैं, अन्यथा नहीं है, यह निसर्गरुचि है। १। इनही जीवादि नव पदार्थोंको, जो, छद्मस्थके उपदेशसें, वा जिन-तीर्थकर-सर्वज्ञके उपदेशसें श्रद्धे, उसको उपदेशरुचि जाननी। २। जो हेतु विवक्षितार्थगमकों नहीं जानता है, केवल जो प्रवचनकी आज्ञा है, तिसको सत्यकरके मानता है, जो प्रवचनोक्त है, सोही सत्य है, अन्य नहीं, यह आज्ञारुचि जाननी। ३। जो अंगप्रविष्ट, वा अंगबाह्य सूत्रको पढता हुआ, तिस श्रुतकरकेही सम्यक्त्वको अवगाहन करे, सो सूत्ररुचि जाननी। ४। जीवादि किसी एक पदकरके जीवादि अनेकपदोंमें सम्यक्त्ववान् आत्मा पसरेही है; कैसें पसरे है ? जैसें पानीके एकदेशगत तैलका बिंदु समस्त जलको आक्रमण करता है, तैसें एकदेशउत्पन्नरुचि भी, तथाविध क्षयोपशम भावसें शेषतत्त्वोंमें भी रुचिमान् होता है; ऐसें बीजरुचि जाननी। ५। जिसने आचारादि एकादश (११) अंग, उत्तराध्ययनादि प्रकीर्णक, दृष्टिवाद बारमा अंग, और उपांगरूप श्रुतज्ञान, अर्थसें देखा है, और तत्त्वरुचि प्राप्त करी है, तिसको अधिगमरुचि कहते हैं। ६। धर्मास्तिकायादि सर्व द्रव्योंके भाव (पर्यायों) को यथायोग्य प्रत्यक्षादि सर्व प्रमाणोंकरके, और सर्व नैगमादि नयोंके भेदोंकरके जिसने जाना है, सो विस्ताररुचि जाननी; सर्व वस्तुपर्याय प्रपंचके जाननेकरके तिस रुचिको अतिविमल होनेसें। ७। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तपमें विनय, तथा ईर्यादि सर्व समितियोंविषे, और मनोगुप्तिप्रमुख सर्व गुप्तियोंविषे, जो क्रियाभावरुचि, अर्थात् जिसको भावसें ज्ञानादि आचारोंमें अनुष्ठान

करनेकी रुचि है, उसका नाम क्रियारुचि है, ।८। जिसने कुदृष्टि मिथ्यामत ग्रहण नहीं करा है, और जो जिनप्रवचनमें कुशल नहीं है, और जिसने कपिलादि मत उपादेयकरके ग्रहण नहीं करे हैं, तथा जिसको परदर्शनमात्रका भी ज्ञान नहीं है, ऐसों संक्षेपरुचिवाला जानना. ।९। जो जीव धर्मास्तिकायादिके धर्म, गत्युपष्टंभकादि स्वभावको और श्रीजिनेंद्रके कहे श्रुतधर्म और चारित्रधर्मको श्रद्धे, सो धर्मरुचिवाला जानना. ।१०। ऐसों निसर्गादि दशप्रकारका रुचिरूप दर्शन कहा. ॥ अब जिनलिंगचिन्होंकरके, सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ जानीये, निश्चय करीए, वे लिंगचिन्ह दिखाते हैं. ॥ बहुमानपुरस्सर जीवादि पदार्थोंके जाननेवास्ते अभ्यास करना; जिनोंने जीवादि पदार्थोंका स्वरूप अच्छीतरेंसे जाना है, उनकी सेवा करनी, अर्थात् यथाशक्ति उनकी वैयावृत करनी; जिनकी जैनैद्र मार्गकी श्रद्धा भ्रष्ट हो गई है, ऐसे जो निम्हवादि, और कुदर्शन मिथ्या श्रद्धावाले शाक्यादिक, उनको बर्जना, अर्थात् उनोंका संग परिचय न करना; इन लिंगोंकरके सम्यक्त्व है, ऐसा श्रद्धीये. ॥ इस दर्शनके आठ आचार है, वे सम्यक्प्रकारसे पालने योग्य है. यदि उनका उल्लंघन करे तो, दर्शन (सम्यक्त्व)का भी अतिक्रम उल्लंघन होवे हैं; वे आठ आचार येह है. । निःशंकित शंकारहित होवे. शंका दो तरेंकी है; एक देशशंका, और दूसरी सर्वशंका; देशशंका जैसें सर्व जीवके समान जीवत्वके हुए भी, फिर कैसें एक भव्य है, और दूसरा अभव्य है? और सर्व शंका, प्राकृतनिबद्ध होनेसें सकलही यह प्रवचनकल्पित होवेगा. । यह देश और सर्वशंका करनी उचित नहीं है; जिस कारणसें यहां शास्त्रोंमें दो प्रकारके पदार्थ कहे हैं. एक हेतुसें ग्रहण होते हैं, और दूसरे विनाहेतुके ग्रहण होते हैं. जीवास्तित्वादि जे हैं, उनके सिद्ध करनेवाले प्रमाणके सद्भाव होनेसें, वे हेतुग्राह्य हैं. और अभव्यत्वादि अहेतुग्राह्य हैं, अस्मदादिकोंकी अपेक्षाकरके उनके साधक हेतुयोंके अभाव होनेसें, उनके हेतु प्रकृष्ट ज्ञानगोचर होनेसें; और प्राकृतमें जो प्रवचनका निबन्ध है, सो वालादिकोंके अनुग्रहार्थ है. ॥

उक्तं च ॥

बालस्त्रीमूढमुख्याणां नृणां चारिकांक्षिणाम् ॥

अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः सिद्धांतः प्राकृतः कृतः ॥ १ ॥

एक अन्यवात भी है कि, प्राकृतमें भी प्रवचनका निबंध दृष्टेष्ट अविरोधी है, तो फिर, कैसे अवांतर परिकल्पनाकी शंका उत्पन्न होवे ? क्योंकि, सर्वज्ञके बिना अन्य कोई भी दृष्टेष्ट अविरोधवचन, नहीं कह सकता है. यह निःशंकित नामा प्रथम आचार है. । १ । निःकांक्षित, वांछा करनेका नाम कांक्षा है, सो कांक्षा जिसथकी नीकल गइ है, सो कहिये निःकांक्षित, अर्थात् देश, सर्व कांक्षारहित होवे; तहां देशकांक्षा, एक दिगंबरदि दर्शनकी वांछा करे; और सर्वकांक्षा, सर्वही दर्शन अच्छे हैं, ऐसैं चिंतन करना; येह दोनों प्रकारकी कांक्षा करनी ठीक नहीं है. क्योंकि, शेष दर्शनोंमें षट् जीवनिकायपीडासैं, और असत् प्ररूपणाके होनेसैं; इति निःकांक्षितनामा दूसरा आचार. । २ । विचिकित्सा, मतिभ्रम फलप्रति संशय करना, जिनशासनतो अच्छा है, किंतु प्रवृत्त हुए मुझको इस कर्तव्यसैं फल होवेगा, वा नहीं ? क्योंकि, कृषी-कर्मादिक्रियामें दोनोंही देखनेमें आते हैं, इत्यादि विकल्परहित होवे. क्योंकि, नहीं अविकल उपायके हुए उपेयकी प्राप्ति नहीं होती है, अपितु होवेही है; ऐसा निश्चय जो होना, सो निर्विचिकित्स नामा तीसरा आचार जानना. । ३ । अमूढदृष्टि, बाल तपस्वीके तप, विद्या, अतिशयको देखनेसैं मूढस्वभावसैं चलचित्त न होवे; सुलसां श्राविकावत्, सो अमूढदृष्टिनामा चौथा आचार. । ४ । समानधार्मिक जनोंके गुणोंकी प्रशंसा करके उनकी वृद्धि करनी, सो उपबृंहणानामा पांचमा आचार. । ५ । धर्मसैं सीदाते (डोलतेहूए) को फिर धर्ममेंही स्थापन करना, सो स्थिरीकरणनामा छटा आचार. । ६ । समानधार्मिक जनोंको अन्नपाणी वस्त्रादिकोंसैं उपकार करना, सो वात्सल्यतानामा सातमा आचार. । ७ । प्रभावना, धर्मकथा, धर्ममहोत्सवादिकोंकरके तीर्थका प्रकाश करना, उन्नति करनी, सो प्रभावना नामा आठमा आचार. । ८ । इन आठों आचारोंसहित सम्यग्दर्शनसंयुक्त जो होवे सो दर्शनार्थ. ॥ ८ ॥

९. चारित्रार्थ—इनके भेद श्रीप्रज्ञापनासूत्रमें अनेक प्रकारके करे हैं. परंतु सामान्य प्रकारसें जो आर्हिंसा १, अनृत २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अकिंचिन्य ५, इन पांचों महाव्रतोंका पालक होवे, सो चारित्रार्थ जानना ॥१॥

येह नवभेद आर्योंके हैं. यह आर्यपद जैनमतके शास्त्रोंमें हजारों जगे उच्चारनेमें आताहै.

जैसैं ॥

“ ॥ अजसुहम्मे अजजंबू अजपप्भव इत्यादि ॥ ”

एक कल्पाध्ययनमेंही सैंकड़ों जगे उच्चार हैं. और जैनमतकी साध्वी-योंका नाम भी, आर्या है; इसवास्ते यह आर्य शब्द श्रेष्ठताका वाचक है. सांप्रतिकालमें दयानंदिये (दयानंदमतानुयायी) भी, अपने आपको आर्य समाजी कहलाते हैं. परंतु जो अर्थ, आर्यपदका हम ऊपर लिख आए हैं, सो जिसमें घटे सोही आर्यपदवाच्य है, अन्य नहीं है. । इति संक्षेपतः कतिपय शंकानिराकरणं समाप्तम् ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्ण-

यप्रासादे चतुस्त्रिंशः स्तम्भः ॥ ३४ ॥

॥ अथ पंचत्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

विदित होवे कि, व्यास सूत्रोंमें जैनमतके कहे तत्त्वोंका तीन सूत्रोंमें खंडन किया है, उन सूत्रोंपर शंकरस्वामीने भाष्य रचके तिसमें विस्तारसें पूर्वोक्त तत्त्वोंका खंडन लिखा है. बहुतसें जैनमती यह भी नहीं जानते हैं कि, शंकरस्वामी कौन थे ? कब हुए हैं ? और उनोंने हमारे मतका किस रीतिसें खंडन किया है ? और बहुत ब्राह्मण लोक शंकरस्वामीने जैनीयोंके बेडे जहाज भरवाके डुबवा दिये थे, इत्यादि अनेक मिथ्या बातें कर रहे हैं, वे सर्व मालुम हो जावेंगी. इसवास्ते इस पंचत्रिंश (३५) स्तंभमें हम शंकरस्वामीकी उत्पत्ति, शंकरस्वामीके शिष्य अनंतानंदगिरिकृत शंकरविजय, और माधवाचार्यकृत दूसरी शंकर-विजय ग्रंथानुसार लिखते हैं. और जिन जैनमतके तत्त्वोंका खंडन जिस-

तरे व्यासजी, शंकरस्वामी आदिकोंने लिखा है, वैसाही खंडनपूर्वक, छत्तीस (३६) में स्तंभमें लिखेंगे.

केरलदेशके एक नगरमें सर्वज्ञनामा ब्राह्मण, और कामाक्षी नामा तिसकी भार्या रहते थे; उन्हींकी एक विशिष्टानामा पुत्री, जब आठवर्षकी हुई, तब तिसके पिताने विश्वजित्नामा ब्राह्मणके पुत्रको विवाह दी. विशिष्टा, शिवके आराधनमें तत्पर, और विवेकवाली थी. ऐसी विशिष्टाको त्यागके तिसका पति विश्वजित्, अरण्यमें तप करनेकेवास्ते निश्चय करता हुआ; तबसे विशिष्टा अकेली रह गई. और महादेवको पूजाभक्तिसें अतिप्रसन्न करती भई. तब महादेव सर्वव्यापी है, तो भी, उसके वदनकमलमें प्रवेश करके उसके उदरमें पुत्ररूप गर्भपणे उत्पन्न हुआ. गर्भकालसे पीछे जन्म हुआ, पुत्रका नाम शंकर रखवा. ॥ इतिशंकरस्वामीजन्मवर्णनम् ॥

बाल्यावस्थामेंही शंकरने गुरुमुखसें सर्व विद्या पढली. पीछे शंकरस्वामी माताकी आज्ञा लेके नर्मदा नदीके किनारेपर वनमें जाकर गोविन्दनाथ संन्यासीके शिष्य हुए; तहांसें चलके शंकरस्वामीने काशीमें आके कितनेक दिन निवास किया, और अपनी ब्रह्मविद्याका, सुननेवालोंको उपदेश करते रहे; तहां उनके कितनेही शिष्य होते भये. तहांसें चलके हिमालयपर्वतके बदरीआश्रममें जा रहे; तहां वेदांत, उपनिषद्, गीतादिका भाष्य रचते हुए, और शिष्योंको अपने रचे हुए भाष्यका पठन कराते हुए. तदपीछे शारीरिकसूत्रोंका भाष्य रचा, तदपीछे कुमारिलभट्टपाससें वार्त्तिक करवानेकी इच्छा उत्पन्न भई, तब हिमालयसें दक्षिण दिशाको चले. प्रथम कुमारिलभट्टके जीतनेवास्ते प्रयाग आये, तहां त्रिवेणीस्नान करके शिष्योंसहित किनारेपर बैठे. तब लोकोंके मुखसें ऐसी वार्त्ता सुनी, "जिसने पर्वतसें छलांक(फलांग)मारके वेदवाणीकों प्रामाण्य सिद्ध करी, सो यह कुमारिल, सर्व वेदार्थोंका जाननेवाला, अपना दोष दूरकरनेकेवास्ते तुषाग्निकरके दग्ध होता है. सर्व शरीर तो जल गया है, एक मुख शेष रहता है."—यह सुनके शंकरस्वामी तुरत वहां गए, और तुषराशिमें बैठे, कुमारिल

को देखा, और प्रभाकरादि शिष्यवर्ग रुदन कर रहे हैं. कुमारिलने अदृष्ट, अश्रुतपूर्व, शंकरस्वामीको देखके बड़ा आनंद पाया. तब शंकर-स्वामीने उसको अपना भाष्य दिखलाया, तब कुमारिलने कहा तुमारा भाष्य तो ठीक है, परंतु इस भाष्यके प्रथमाध्यायमें अष्टसहस्र (८०००) वार्त्तिका चाहिये. जेकर मैने दीक्षा नहीं लि होती तो, मैं इसकी वार्त्तिका करता; परंतु प्रथम तो मैं, बौद्धोंसे वादमें हारा, और उनकाही शरण मैंने लिया; तब मैं उनका सिद्धांत सुनता रहा. कुशाग्रवीरबुद्धि-वाले बौद्धोंने वैदिकमत खंडन करा, तब मेरी आंखोंसे आंसु गिरे, और पासवालोंने मुझे देखा. तबसें उनोंने मेरेपरसें विश्वास छोड़ दीया कि, यह अपने मतके माननेवाला नहीं है, हमने विरोधीमतवाले ब्राह्मणको पढ़ाया, और इसने हमारे मतका तत्त्व जान लिया, इसवास्ते इसको उपद्रव करना चाहिये. ऐसी सलाह करके बौद्धोंने मुझको उच्चप्रासादसें नीचे गिराया, तब मैं ऊपर चढ़ आया, और मुखसें कहा कि, यदि श्रुतियां सत्य है तो, मैं, गिरता हुआ भी, जीता रहूं. मेरे जीते रहनेसें श्रुतियां सत्य हो गई, परंतु गिरनेसें मेरी एक आंख फुट गई, सो तो, विधिकी कल्पना है. एक अक्षरका प्रदाता गुरु होता है, शास्त्र पढ़ाने-वालेका तो क्याही कहना है ? मैंने सर्वज्ञ बुद्धगुरुपाससें शास्त्र पढ़के उ-सकाही बुरा किया, उसके कुलकाही प्रथम नाश किया, और जैमनिमत माननेसें मैंने ईश्वरका खंडन किया, अर्थात् ईश्वर जगत्कर्त्ता सर्वज्ञ नहीं है, ऐसा सिद्ध किया. इन दोनों दूषणोंके वास्ते, यह प्रायश्चित्त मैंने किया है, परंतु, तूं, मेरे बहनोई, माहिष्मतिनगरनिवासी, मंडन-मिश्रको जीत लेवेगा तो, तेरा मत सर्वजगे प्रचलित होवेगा. इतना कहकर भट्ट मृत्युको प्राप्त हुआ.*

* आनंदगिरिकृत शंकरविजयके ५५ प्रकरणमें लिखा है । तब परमगुरु, भट्टाचार्यको देखके कहता हुआ, हे द्विज ! तूने अज्ञानकरके यह अवस्था प्राप्त करी है, हे मूढ़ ! तूं गूढ़ अर्थवाले व्याख्यानोको नहीं जानता है. यतः ।

हंताचेन्मन्यते हंतुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ॥

उभौ तौ न विजानीतौ नायं हंति न हन्यते ॥*

इतिश्रुतेः । मारनेवालेको जो हंता—हिंसक मानता है, और हतको मरा मानता है, वे दोनोंही अज्ञ हैं.

शंकरस्वामीने माहिष्मति नगरीमें जाके मंडनमिश्रको पराजय करा, तब उसकी भार्याने शंकरस्वामीको कामशास्त्रकी बातें पूछी, शंकरस्वामीको उनका उत्तर नहीं आया. तब शंकरस्वामी वहांसे चले गये, किसी देशमें अमरक नामा राजेका मुरदा देखा, तब एक पर्वतकी गुफा-में जाके अपने शिष्योंको कहा कि, जबतक मैं पीछा इस शरीरमें न आऊं तबतक तुमने इसकी रक्षा करनी; ऐसा कहकर योग महात्मसें शंकरके शरीरको छोड़के शंकरका जीव, उस राजाके शरीरमें प्रवेश कर गया; तब राजाका शरीर धीरे धीरे अंग हिलाके जीता होगया. तब सर्व राणीयां मंत्री आदि आनंदित हुए, बड़े उत्सवसें राजमंदिरमें ले गए; मंत्रियोंने परस्पर विचार किया कि, यह किसी योगीका जीव राजाके शरीरमें प्रवेश कर गया है, नहीं तो, राज्य करनेकी ऐसी कुशलता कहांसे होवे? यह गुण समुद्र, फिर तिस शरीरमें न चला जावे, इस-वास्ते, जो मृतक शरीर होवें, वे सर्व, जला दो, ऐसी अपने नोकरोंको आज्ञा दे दी.*

इधर परम निपुण शंकरस्वामी, अपने मंत्रियोंको राज्य चलाना सौंपके, आप, राजाकी राणीयोंसें भोग करने लगे. कैसें भोग? जो अन्य राजाओंको मिलने दुर्लभ हैं, बहुत सुंदर महेलोंमें राणीयोंके साथ पासाओंकरी द्यूतक्रीडा करते हुए, अधरदशन, बाहुउद्धहन, कमलसें ताडना, रतिविपर्यय ग्लहपण करते हुए, अधरसें उत्पन्न हुआ सुधा-अमृतके श्लेषसें मनोहर मुखके पवनके संबंधसें सुगंधी कांता-स्त्रियोंके हाथसें प्राप्त हुआ इसवास्तेही अतिप्रिय मदका करनेहारा, ऐसा मदिरा

क्योंकि, न यह किसीको मारता है, और न किसीसें मरता है. ऐसे कहा हुआ भट्टाचार्य, परम गुरुको कहता हुआ; जाग्रतकालानागत नूतन बौद्धतर, किसवास्ते यहां आकरके, तूं, मुझको तपाता है? तब गुरुने कहा, मैं, बौद्ध नहीं हूं; किंतु, शंकराचार्य, शुद्धाद्वैतमार्गदाता, प्रसंगार्थे यहां आया हूं. यह वचन सुनके अदग्धशेषशरीर भट्टाचार्यने कहा, मेरी बहिनका पति, मंडनमिश्र, सर्वज्ञसदृश, सकलविद्यामें पितामह-समान है, उसके साथ, तूं, बाद करनेकी खाजकी निवृत्तिपर्यंत, प्रसंग कर. इत्यादि ॥

* आनंदगिरिकृत शंकरदिग्विजयमें राणीने शरीर जला देनेकी आज्ञा नौकरोंको दी इत्यादि लिखा है, तद्विषयिक वर्णन हमारे बनाए “जैनतत्त्वादृश” से जान लेना.

(शराब) यथा इच्छासं आप पीपीकर, कांतायोंको भी पिलाते हुए; मंदाक्षर थोड़ेसं पसीनेयुक्त मनोहर भाषण है जिसमें, निभृतरोमांचित सीत्कारयुक्त कमलकीतरें सुगंधित प्रसरणशील मन्मथ है जहां, ऐसे कांतामुखको पीके शंकर राजा, कृत्यकृत्य होते हुये; आवरणरहित जघन है जिसमें, दश्या है तले (नीचे)का होठ जिसमें, अतिशयकरके मर्दन करे हैं स्तनयुगल जिसमें, रतिकूजितशब्द है जिसमें, पाया है उत्साह जिसमें, पाया है क्रियाभेद संवेशन वा जिसमें, नृत्य कर रहे हैं गात्र जिसमें, गड़ है इतरकी भावना जिसमें, ऐसा वचनके अगोचर, अतिशायिक सुख, उत्पन्न हुआ है; वहां भी, ब्रह्मानंदही, अनुभव करते रहें, सोही दिखाते हैं। श्रद्धा प्रीति रति धृति कीर्ति कामसं उत्पन्न हुई विमलामोदिनी घोरा मदनोत्पादिनी मदामोहिनी दीपनी वशकरी रंजनी इतनी कामकी कला स्त्रीके अंगोंमें सर्व है, और स्त्रीके अंगोंमें अमुक २ तिथिमें मदन वास करता है, ऐसी कामकी कलामें जानकार मनोज्ञ है चेष्टा जिसकी, सकल विषयोंमें व्यापारयुक्त इंद्रियां है जिसकी, सदा प्रमदा उत्तम करी है जो कुचलक्षणगुरुकी उपासना तिसकरके अत्यंत भला निर्वृत है अंतःकरण जिसका, सो निरर्गल निराबाध निधुवनमैथुन तिसमें जो प्रधान ब्रह्मानंद तिसको भोगते हुए. सो शंकररूप राजा पूर्वकीतरें राणीयोंके साथ भोगोंको भोगता हुआ, जैसे वात्स्यायनने कामशास्त्रमें मैथुन सेवनेकी विधि लिखी है, तैसें शंकरस्वामी मैथुन सेवते हुए. सो कामशास्त्र स्वयमेव साक्षात् देखते हुये, वात्स्यायनके कहे सूत्र, और उनकी भाष्यको सम्यग् देखके, एक अभिनवार्थ गर्भित निबंध कामशास्त्र, नृपवेशधारी शंकरस्वामीने रचा. शंकरस्वामी तो, विलासिनीयोंसं उक्त रीतिसं भोग करते रहे.

इधर शंकरस्वामीके शिष्य, आपसमें कहने लगे कि, गुरुजीने एक मासकी अवधि कीथी, सो भी पांच छ दिन अधिक हो गये हैं. तो भी, गुरु अपने शरीरमें आकर हमारी अनुकंपा नहीं करते हैं. हम क्या करे ? कहां दूढ़ें ? कहां जावें ? ऐसी चिंता करके किसी एकको शरीरका रक्षक

ठहराके, आप सर्व दूढ़नेको गये; वे पर्वतादि देखते हुए अमरकनृपके देशमें आए। उन्होंने वहां श्रवण किया कि, यहांका राजा मरके फिर जी उठा है। तब शिष्योंको धैर्यता आइ, और जाना कि, यही हमारा गुरु है। और जाना कि, यह राजा गीतका लोभी, और स्त्रीयोंमें आसक्त है, तब उन्होंने गानेवालोंका वेष किया, तब नगरमें उनके गानेकी प्रसिद्धि हुई, तब राजाने उनको गान सुननेकेवास्ते बुलवाये, तब उन्होंने गानमें “तत्त्वमसि” का उपदेश किया, जो आनंदगिरिकृत विजयमें, और माधवकृत विजयमें प्रकट है। उनका उपदेश सुनके शंकरस्वामी होशमें आये, और राजाका शरीरको छोड़कर अपने शरीरमें प्रवेश करगये। परंतु तिस अवसरमें राजाके चाकर, शंकरस्वामीके शरीरको अग्निसें दाह कर रहेथे, तब शरीरमें प्रवेश करके शंकरस्वामीने अग्निको शांत करनेकेवास्ते नरसिंहका स्तोत्र पढा, जो टोकामें लिखा है। अग्नि शांत हुआ, तब शंकरस्वामी वहांसे चलके शिष्योंके साथ जा मिले। वहांसे मंडनमिश्रके घरमें आये, और तिसकी भार्याके प्रश्नोके उत्तर देके उनको जीते। मंडनको अपना शिष्य किया, वहांसे दक्षिण दिशाको चले, महाराष्ट्रादि देशोंमें अपने रचे ग्रंथोंका प्रचार करते हुए; और अपने शिष्योंसे पाशुपत, वैष्णव, वीर, शैव, माहेश्वरादि मतोंको खंडन करवाते हुए; अनेक तीर्थोंकी यात्रा की, अपनी मातासे मिलने गये, तिसका अंत्यसंस्कार किया, पीछे दक्षिणादि देशोंमें फिरे। वहांसे चलके विदर्भ देशके सुधन्वा नामा राजाको अपना शिष्य किया; सुधन्वाने मना भी किया तो भी, शंकरस्वामीने कर्णादिदेशोंमें कापालियोंका पराजय किया; वहांसे विचरते हुए, उज्जयनी नगरीमें आये। सर्व जगें दिग्विजय करके जिन २ मतवालोंको जीते, तिन सर्वके नाम आनंदगिरिने अपने रचे शंकरविजयमें लिखा है। जैनमतका खंडन शंकरने जैसा किया है, सो आनंदगिरिने ऐसा लिखा है।

तिस लेखकी भाषा:—तदपीछे शंकरस्वामीके पास ‘जैन’ आया, कैसा है जैन? कौपीनमात्रधारी है, मलकरके जिसका अंग भरा

है, सदा 'अर्हन्' ऐसा बारवार उच्चारन करता हुआ, शून्यांकशून्यपुंङ्गु धृतविंदु पुंङ्गु, शिष्योंसहित पिशाचवत्, सर्व जनको भयंकर, आकरके सकल लोकगुरु शंकरस्वामीको यह कहता हुआ; भो स्वामिन् ! मेरा मत अत्यंत सुगम है, तुम श्रवण करो. जिनदेव सर्वज्ञ सर्वका मुक्तिदाता है; 'जि' इस पदके वाच्य 'जीव' को 'न' इति पदकरके 'पुनर्भव' ऐसा, सोही दिव्यत इति 'देव' है. सर्व प्राणियोंके हृदयकमलोंमें जीवरूपसे व्यवस्थित है ऐसे ज्ञानमात्रसे, देहके पात होनेसे अनंतर मुक्ति है, जीवको नित्य मुक्तिरूप होनेसे, तिससे करचरणादि साधनद्वारा जो जो कर्म किया है, सो सत्य है, तिसको तिसके आधीन होनेसे. इसवास्ते जीव शुद्ध है, और देह मलपिंड है, स्नानादिकरके तिसकी शुद्धिका अभाव होनेसे वृथा प्रयोजन है, इसवास्ते स्नानादि कर्म करने योग्य नहीं हैं. ऐसे प्राप्त हुआ सिद्ध हुआ. । इति जैनमतपूर्वपक्षः ॥

श्रीपरमगुरु कहते हैं, भो जैन ! तूने अति मूढने क्या कहा ? जीवकी जो देहकी निवृत्ति सोही मुक्ति है ? और निःप्रयोजन होनेसे स्नानादिकर्म करना योग्य नहीं, यह तेरा कथन अयुक्त है. क्योंकि, जीवके तीन तरेंके देह हैं. स्थूल १, सूक्ष्म २, कारण ३, भेदसे. और स्थूलका लक्षण, पंचीकृतपंचमहाभूतस्वरूप है, सो, चौवीस (२४) तत्त्वात्मक है. । १ । सूक्ष्मका सतारें (१७) तत्त्वात्मक लक्षण है, एकादश (११) इंद्रिय, पंचमहाभूत ५, और बुद्धि १, एवं सप्तदश (१७). । २ । और कारण अज्ञानमात्र है. । ३ । और स्थूलका सूक्ष्ममें, सूक्ष्मका कारणमें, कारणका सगुणमें, सगुणका निर्गुणपरमात्मामें, तिस तिस अधिपतिविशिष्ट देहोंका ऐसे लय हुए, सत्चिदानंदलक्षणलक्षित परमात्माही, जीव होता है. और जीव है, सोही, परमात्मा है. तैसें भेदभ्रमकी निवृत्ति हुए, मुक्ति है, ऐसे निरवय है.

पूर्वपक्षः—प्रत्यक्ष देखे शरीरसें शरीरांतर कल्पना निरर्थक है, तिसके होनेमें प्रमाणका अभाव होनेसे. यदि है तो, जीवका तीनो शरीरोंमें संचार कथन करना चाहिये, मनःकल्पित स्वप्नमें मैंने गंगा देखी है, हिमवान् देखा है, ऐसा ज्ञान तो है. क्योंकि, देहसें आत्माके निर्गमनको युक्त होनेसे, कारण शरीरत्वके हुये मनके कल्पित जीवका भी निर्गम

नहीं कहना चाहिये, जीवके निर्गमके हुये फिर प्राप्तिके अभावसें स्वप्ना-
तरमेंही मरण प्रसक्ति है, चौबीस तत्त्वोंमेंही लिंगशरीरका अंतर्भाव होनेसें
उसकी कल्पना व्यर्थ है. भूतजाति इंद्रियोंको तद्रूप होनेसें. इसवास्ते
इस क्लिष्ट कल्पनाके करनेसें कोई प्रयोजन नहीं है, तिसवास्ते एकही
देह भिन्न २ जीवोंके है, तिसके पातानंतर जीवकी मुक्ति है.

उत्तर:—तब शंकरस्वामीने कहा. हे जैन! तूं मूढतर है, तूने तत्त्व
नहीं सूना है, पंचीकृतभूतोंकरके पच्चीस (२५) संख्या हुई है, तिसकरके
चौबीस (२४) तत्त्व हुए हैं, पंचविंशति (२५) संख्याको ज्ञानरूप होनेसें,
चौबीसी (२४) करकेही देह सिद्धि होवेगी, ऐसें नहीं है. अपंचीकृतपंचभूतके
अभावसें, इस कारणसें, पंचीकृत और अपंचीकृत भूतोंकरके देहकी
सिद्धि कहनी चाहिये, इसवास्ते स्थूल अपेक्षाकरके लिंगशरीर अंगीकार
किया है. स्थूलशरीरके पातानंतर, जीव, सूक्ष्मशरीर आसक्त हुआ, परलोक
गमनारंभ होता है, और अरूढ पुरुषके लिंगशरीरके नाश हुए, सर्व
मनमेंही अध्यस्त होवे है. और सो शुद्ध मन तो जाग्रदादि अवस्था
स्वामीयोंसें विश्व तैजस प्राज्ञोंसें भी ऊपरि विराजमान, अंगुष्ठमात्र सर्व
जगत् प्रभु मनोन्माख्यको प्राप्त होता है, सोही कारण शरीरका लय
है, ऐसा प्रसिद्ध है. ऐसें तीनों शरीरोंके नष्ट हुए, सगुण, निर्गुण, उभ-
यात्मक, मनोन्मनपरमात्मामें लीन होता है; सोही मोक्ष है. ऐसें सर्व
अतीतेंद्रिय ज्ञानवानोंने कहा है. ऐसा अत्यंत दुःसाध्य मोक्षकी प्राप्ति
देहपातके अनंतर नहीं संभव होती है, ऐसा सिद्धांत है; ऐसा शंकर-
स्वामीने कहा हुआ, जैन, शिष्योंके साथ स्ववेषभाषासें रहित होया
हुआ शंकरस्वामीका दिनप्रति चावलादि वस्तु आकर्षणशील वाणिगूजन
(मोदी) होता भया. ॥ इत्यनंतानंदगिरिकृतौ जैनमत निर्वर्हणं नाम
सप्तविंशं प्रकरणम् ॥

और जो माधवने द्वादश (१२) श्लोकोंमें जैनमतके सप्ततत्त्व, और
सप्तभंगीका खंडन, अपने रचे विजयमें लिखा है, सो व्यासकृत सूत्रकी
शंकररचित भाष्यके अनुसार लिखा है, तिसका उत्तर आगे चलके स्व-

स्थानमें लिखेंगे, वहांसे जानलेना. तदनंतर नैमिश, दरद, भरत, सूरसेन, कुरु, पंचालादि देशोंको जीतता हुआ, गुरु भट्ट उदयनादिसें अजीत, ऐसे खंडनकार श्री हर्षको शंकरस्वामीने जीता. पीछे कामरूप देशविशेषोंमें जाके शंकरस्वामी शाक्तभाष्यके कर्त्ता, अभिनवगुप्तको जीतते हुये. तब अभिनवगुप्तने शंकरको कर्मण करनेका विचार किया तब शिष्योंसहित शंकरस्वामीके साथ शिष्यकीतरे वत्तने लगा, और शंकरके वध करनेका उद्यम करने लगा, सो अभिनवगुप्त, शंकरस्वामीको अभिचारिक कर्म करता हुआ. कैसा अभिचारिक कर्म ? जिसकी वैद्य भी चिकित्सा न कर सके, ऐसा. तिससें भगंदरनामा रोग उत्पन्न हुआ, तिस रोगसें झरते हुए लोहीके कीचडसें शंकरकी धोती भीज गई. अजुगुप्सपरिशोधनादिरूप सेवा, तोटकाचार्यनामा शंकरस्वामीका शिष्य करता हुआ.* शंकरस्वामीको रोगकी उपेक्षा करते देखके शिष्योंने बहुत

* शंकरस्वामीका मृत्यु भी इसी रोगसें हुआ है, तथापि सन् १८८४ के सत्यार्थप्रकाशके २८७ पृष्ठपरि स्वामिदयानंदसरस्वतिजीने लिखा है. “जब वेदमतका स्थापन हो चुका और विद्या प्रचार करनेका विचार करतेही थे इतनेमें दो जैन ऊपरसें कथनमात्रवेदमत और भीतरसें कद्दरजैन अर्थात् कपटमुनि थे, शंकराचार्य उनपर अति प्रसन्न थे, उन दोनोंने अवसर पाकर शंकराचार्यको ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधा मंद होगई, पश्चात् शरीरमें फोडे, फुन्सी होकर छ महीनेके भीतर शरीर झूट गया.” इस लेखसें सिद्ध होता है कि, स्वामिजीने स्वमतकी प्रसिद्धिकेवास्ते असत्य २ लेख लिखके और निंदा करके भोले लोकोंको फसानेकेवास्ते जाळ खड़ा किया है. तथा दयानंदसरस्वतिको जैनमतका ज्ञातपणा भी नहीं था, यदि होता तो, पूर्वोक्त पुस्तकमेंही ४४७ पत्रोपरि ऐसे क्यो लिखते ? कि “दिगंबरोंका श्वेतांबरोंके साथ इतनाही भेद है कि दिगंबरलोग स्त्रीका संसर्ग नहीं करते और श्वेतांबर करते हैं.” अफसोस स्वामिजीके लिखनेपर कि जिसको इतना भी ज्ञात नहीं ! जब जैनमतका यथार्थ ज्ञातपणाही नहीं था तो, उसका करा खंडन किसको प्रमाण होगा ? किसीको भी नहीं. जगत्में कहलावत भी है ‘आहारसदृशोद्धारः’ जैसा आहार भोजन होवे वैसाही उद्धार (डकार) आता है. सो स्वामिजीके चित्तमें तो, एक स्त्रीके कइ पति करने ऐसा निश्चय बसा था, तो फिर, ब्रह्मचर्यके तरफ ख्याल कहाँसे होवे ? अथवा स्वामिजीने जानबूझकेही जैनियोंकी निंदा करनेकेवास्ते ऐसा गपोडा ठोक दिया होगा ! क्योंकि, स्वामिजीके लेखसेंही सिद्ध होता है कि, झूठ लिखके किसीका मत खंडन होवे तो, अच्छा है. देखो सत्यार्थप्रकाश पत्र २८५ पंक्ति २९. “अब इसमें विचारना चाहिये कि जो जीवब्रह्मकी एकता जगत् मिथ्या शंकराचार्यका निजमत था तो वह अच्छामत नहीं और जो जैनियोंके खंडनके लिये उस मतका स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छ है.” वाहजी वाह ! क्या सुंदर श्रद्धान है ! यह कपट नहीं तो अन्य क्या है ? यह तो ऐसे हुआ कि दूसरेको अपशकुन करनेकेवास्ते अपना नाक कटवाना ! ! !

समझाया कि, तुम रोगकी चिकित्सा करो. तब शंकरस्वामीने कहा कि, रोग, जन्मांतरके पापोंसे होता है, सो भोगनेसेही नाश होता है, इस-वास्ते भोगनेसेही नाश करने योग्य है. जेकर न भोगा जावे तो, जन्मांतरमें भोगना पडता है, यह शास्त्रका कहना है. शिष्योंके अतिआग्रहसे शंकरस्वामीने चिकित्सा करानी मान्य की, तब शिष्योंने हजारों वैद्योंसे चिकित्सा करवाइ, परंतु भगंदर तो बढ गया. तब सर्व वैद्य, अपने २ घरोंको चले गए. तब शंकरस्वामीने महादेवका स्मरण किया, तब अश्विनीकुमार वैद्यको ब्राह्मणके वेषमें महादेवने भेजे, अश्विनीकुमार भी हाथमें पुस्तक लेके शंकरस्वामीके पास आके बैठ गये, और कहने लगे कि, भो यतिवर ! यह तेरा रोग, दूर नहीं हो सकता है. क्योंकि, अभिचारकरके यह उत्पन्न हुआ है, ऐसा कहके वे निजस्थानमें जाते रहे. तब शंकरस्वामीके शिष्य पद्मपादने क्रोधमें आके ऐसा मंत्र जपा, जिससे अभिनवगुप्त मर गया. शंकरस्वामी पीछे काश्मीरमें गये, वहां सरस्वतिका मंदिर चतुर्द्वारवाला, जिसके मध्यमें सर्वज्ञपीठ नामा चौतरा है, तिसपर जो चढे, सो सज्जनोंमें सर्वज्ञ होता है, और सोही उस मंदिरमें प्रवेश करनेमें समर्थ होता है, अन्य नहीं. शंकरस्वामी उस मंदिरके दक्षिण दरवाजेको खोलनेवास्ते वहां आये, और दक्षिणका दरवाजा खोला, अनेक वादीयोंके प्रश्नोंके उत्तर दीए, जब अभ्यंतर (अंदर) जानेको उत्सुक हुए, तब सरस्वतिने कहा कि, केवल इस पीठिका ऊपर चढनेवालाही सर्वज्ञ नहीं होता है, परंतु चढनेवालेमें शुद्धता भी होनी चाहिये. सो शुद्धता तुमारेमें है, वा नहीं ? क्योंकि, यतिधर्ममें निष्ठ ऐसे तुमने सम्यक्प्रकारसे स्त्री भोगी है. और काम-कलारहस्यप्रवीणताके तुम पात्र हुए हो. इसवास्ते ऐसे पदपर चढनेकी तुमारेमें किसी प्रकारसे भी, योग्यता नहीं है.

यह सुनकर शंकरस्वामीने कहा, हे अंबे ! जो तूने कहा कि, अंगना (स्त्री) भोगी, सो इसका उत्तर यह है कि, जिस देहांतरमें कर्म किया है, तिससे यह देह अन्य है; इसवास्ते इस देहको पाप नहीं लगता है. यह

सुनकर सरस्वतिने शंकरस्वामीका पूजन करा. शंकरस्वामीने भी शार-
दापीठमें कितनेक काल वास किया, वहांसे केदार गये, और मृत्युको
प्राप्त हुए. ॥ इति संक्षेपतः शंकरविजयानुसारिशंकरस्वामिस्वरूपकथनम् ॥

अब हमको जो कलुष कहना है, सो लिखते हैं. जो ब्राह्मणादि लोक
कहते हैं कि, शंकरस्वामीने जैन बौद्धोंके बेडे भरके डुबवा दीए थे, सो
कहना मिथ्या है. क्योंकि, जब भगंदर हुआ पीछे शारदामठमें वास
किया है, और मरनेके थोड़ेसे दिन बाकी (शेष) थे, तब तो, ' जैन '
' बौद्ध ' ' पतंजलि ' आदि वादी, विद्यमान लिखे हैं. और शंकरविजयों-
में भी, पूर्वोक्त लेख नहीं है. इसवास्ते पूर्वोक्त ब्राह्मणादिकोंका कहना,
महामिथ्या है. निःकेवल मिथ्यामतको मिथ्या बोलके सच्चा करा चाहते
हैं, स्वामी दयानंदसरस्वतिवत्.

और पतिकेसंगमविना, आनंदगिरिने शंकरस्वामीकी माताजीके
गर्भमें शंकरस्वामीकी उत्पत्ति लिखी है, सो प्रमाण बाधित है.
क्योंकि पुरुषवीर्यको स्त्रीकी योनिमें प्रवेश करेविना, कदापि गर्भकी
उत्पत्ति नहीं होती है; यह कहना प्रमाणसिद्ध है. इस कालमें
पाश्चात्य विद्वानोंने सायन्स (SCIENCE) विद्याके बलसे अनेक
वस्तुओंके संयोगसे अनेक कार्यकी उत्पत्ति कर दिखलाइ है, परंतु किसी
भी पदार्थोंके मिलापसे मनवाले मनुष्यकी उत्पत्ति, स्त्री पुरुषके संयोग,
वा पुरुषवीर्यको स्त्रीकी योनिमें प्रवेश करेविना, नहीं कर सकते हैं.
ऐसा तो किसी कालमें भी नहीं हो सकता है कि, स्त्री पुरुषके
संगमविना, वा पुरुषवीर्य स्त्रीकी योनिमें प्रवेश करेविना, स्त्रीको गर्भकी
उत्पत्ति होवे. परंतु मतानुरागी पुरुष, अपने मताध्यक्षपुरुषको, विना पि-
ताके वीर्यसे उत्पन्न होना लिखते हैं, सो, मूढ़ोंको आश्चर्य करनेकेवास्ते,
वा व्यभिचार छिपानेकेवास्ते, और अपने मताध्यक्षकी अन्य मनुष्योंसे
उत्तमता जनानेकेवास्ते, और ईश्वरकी अत्यद्भुत शक्ति प्रसिद्ध करनेके
वास्ते, लिखते हैं. परंतु यह नहीं जानते थे कि, ऐसे अप्रमाणिक ले-
खको प्रेक्षावान् कदापि नहीं मानेंगे, और ऐसे लेखसे उनकी मातुश्रीको

व्यभिचारका कलंक उत्पन्न होवेगा. क्योंकि, जब ईश्वरीय शक्तिसँ उनका उत्पन्न होना मानते हैं तो, क्या ईश्वर स्त्रीके गर्भविना अपने आपको मनुष्यरूप नहीं बना सकता था ? इसवास्ते प्रत्यक्ष अनुमान आसागमसँ विरुद्ध ऐसा लेख, प्रेक्षावान् तो कोई भी नहीं लिख सकता है. यद्यपि परमासागममें ऐसा लेख है कि, पांच कारणोंसँ, स्त्री, पुरुषके संगमविना भी, गर्भ धारण कर सकती है. वे कारण यह हैं. ॥

“ ॥ पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं असंवसमाणी-
वि गप्भं धरेजा तंजहा दुव्वियडा दुन्निसन्ना सुक्कपोग्गले
अहिट्टेजा ॥ १ ॥ सुक्कपोग्गलसंसिट्ठे से वत्थे अंतो
जोणीए अणुपविसेजा ॥ २ ॥ सयं वा से सुक्कपोग्गले
अणुपविसेजा ॥ ३ ॥ परो वा से सुक्कपोग्गले अणुपवि-
सेजा ॥ ४ ॥ सीओदगवियडेण वा से आयममाणीए सु-
क्कपोग्गले अणुपविसेजा ॥ ५ ॥

भाषार्थः—वस्त्ररहित विरूपताकरके गुह्यप्रदेशकरके कथंचित् पुरुषनि-
सृष्ट शुक्र (वीर्य) पुद्गलवाले भूमिपट्टादिक आसनको आक्रमण करके
बैठी हुई, तिस आसनपर स्थित हुए पुरुषनिसृष्ट शुक्रपुद्गलोंको कथंचित्
योनिसें आकर्षण करके ग्रहण करे. ॥१॥ तथा शुक्रपुद्गलसें लिबडा (भीजा)
हुआ वस्त्र, उपलक्षणसें तथाविध और भी केशादि, स्त्रिकी योनिमें प्रवेश
करे, अथवा अनजानपने तथाविध वस्त्रको पहिन्ना हुआ योनिमें प्रवेश
करे, और शुक्रपुद्गलको ग्रहण करे. ॥ २ ॥ तथा आपही पुत्रार्थिनी होनेसें
और शीतलरक्षकत्व होनेसें शुक्रपुद्गलोंको योनिमें प्रवेश करवावे. ॥ ३ ॥
तथा पर, सासुआदि पुत्रकेवास्ते वहुके गुह्यप्रदेशमें वीर्यपुद्गलोंको प्रवेश
करवावे. ॥ ४ ॥ पल्लव द्रव्यप्रमुखगत जो शीतल जल, तिसमें स्नान
करती हुई स्त्रीकी योनिमें कथंचित् पूर्वपतित उदकमध्यवर्ती शुक्रपुद्गल
प्रवेश करे. ॥ ५ ॥ इन पांच कारणोंसें स्त्री पुरुषसंगमविना भी गर्भ-
धारण कर सकती है.

इन पूर्वोक्त पांचों कारणोंमें भी, स्त्रीकी योनिमें पुरुषवीर्यके प्रवेश होनेसेही, गर्भोत्पत्ति कही है. इसीतरें अन्य किसी स्त्रीकी योनिमें पूर्वोक्त पांच कारणोंसें वीर्य प्रवेश करजावे, और तिससें उसके गर्भोत्पन्न हो जावे तो, विरुद्ध नहीं. परंतु इन पूर्वोक्त पांचों कारणोंविना, और अपने पतिकेसंगमविना, जेकर गर्भोत्पत्ति हो जावे तो, अवश्यमेव तिस स्त्रीने व्यभिचारसें गर्भ धारण किया, ऐसा सिद्ध होवेगा. इसवास्ते पुरुषका वीर्य, जबतक योनिद्वारा स्त्रीके गर्भाशयमें नहीं जावेगा, तबतक कदापि गर्भोत्पत्ति नहीं होवेगी. इसवास्ते आनंदगिरिका लेख, युक्तिप्रमाणसें बाधित है.

और जो शंकरस्वामीको महादेवका अवतार, और सर्वज्ञ लिखा है, सो भी मिथ्या है. क्योंकि, जब शंकरस्वामी मंडनमिश्रकेसाथ वाद करनेको गए हैं, तब मंडनमिश्रकी दासीको मंडनमिश्रका घर पूछा ! क्या सर्वज्ञ ऐसेको कहते हैं कि, जिसको मंडनमिश्रके घरकी भी खबर नहीं थी कि, कहां है ? मंडनकी भार्याके पूछे प्रश्नोंका उत्तर नहीं आया, क्या सर्वज्ञसें भी कोई बात छिपी है ? मंडनमिश्रके घरमें व्यासजी, और जैमनीने श्राद्धका भोजन करा, क्या वेदांतियोंके मतका यही पर्यवसान फल है, कि मरे पीछे, वा वेदांतियोंकी मुक्ति हुए पीछे, वा ब्रह्म हुए पीछे भी, लोकोंके घरमें श्राद्ध जीमते फिरते हैं ? क्या सर्व वेदांती भी, इसीतरें लोकोंके घरमें श्राद्ध जीमते फिरेंगे ? जब व्यासजीही भूखे, और भोजन जीमते फिरते हैं तो, यह जगत्ही सबके काममें आता है, फिर जगत्को मिथ्या कहते हैं तो, क्या मिथ्या कहनेवालेही मिथ्यावादी नहीं हैं ? बलहारि है वेदांतियों ! तुमारे सिद्धांतका कैसा रहस्य है कि, मरे पीछे भी वेदांती, लोकोंके घरमें रोटीयां खाते फिरते हैं!!!

पूर्वपक्षः—मंडनकी भार्याके प्रश्नोंका उत्तर शंकरस्वामीने यह विचारके नहीं दिया कि, मेरे उत्तर देनेसें मेरे यतिधर्मका क्षय हो जावेगा.

उत्तरपक्षः—जब राजाके मृतक शरीरमें प्रवेश करके मदिरापान किया, सैंकड़ों राणीयोंसें वात्स्यायनोक्त चौरासी (८४) आसनोंसें मैथुन सेवन

किया, और एकमाससे अधिक कालपर्यंत उन राणीयोंके मुखके थूक—लालाको अमृतसमान मनोहर मानके चूसा—चाटा, और कामशास्त्र सीखा, तिस थूक चाटनेमें भी ब्रह्मानंदही भोगा ! क्या ऐसा काम करनेसे तो यतिधर्म क्षय नहीं हुआ, और कामप्रश्नोंके उत्तर देनेसे यतिधर्म क्षय होता था ? हा ! इसके उपरांत अन्य बड़ा आश्चर्य कौनसा है ? और शंकर तो ' ऊर्द्धरेतः ' था, राणीयोंकेसाथ भोग करनेसे ' अ-धोरेतः ' किसतरें हो गया ?

पूर्वपक्षः—शंकरस्वामीके शरीरमें यह व्यवस्था थी, परंतु देहांतरमें यह नहीं. इसीवास्ते तो शंकरस्वामीने काश्मीरवासिनी सरस्वतीके प्रश्नोत्तरमें कहा है कि, देहांतरका किण्व पाप, इस देहको नहीं लगता है.

उत्तरपक्षः—हमारी समझमूजब तो, तुमारी मानी सरस्वती, तुमारे कहनेसेही अज्ञानिनी सिद्ध होती है. क्योंकि, पहिले तो उसने शंकरस्वामीको परस्त्रीयोंसे भोग करनेवाले जानके निर्दोष पुरुष नहीं जाने, और फिर शंकरस्वामीका उत्तर सुनके चुपकी होके शंकरस्वामीकी पूजा करने लग गई !! अब हम यहां यह प्रश्न पूछते हैं कि, पाप करने और पापके फल भोगनेवाला वोही देह है, वा अन्यदेह ? जेकर वोही देह है, तब तो जन्मांतरमें पापका फल भोगनेवाला देह नहीं है, तो फिर शंकरस्वामीकी देहने जन्मांतरके देहके किये पापसे भगंदरका भारी दुःख क्योंकर भोगा ? और जब देहही पापका करने और भोगनेवाला है, तब तो, जीव, सदा मुक्त होना चाहिये, पुण्यपापसे रहित होनेसे, और देहके साथ संबंध न होनेसे. जेकर कहोगे, जीवही पुण्यपापका कर्त्ता, और भोक्ता है, तब तो, शंकरस्वामीही परस्त्रीगमनरूप पापके कर्त्ता और भोक्ता, सिद्ध होवेंगे; और कामशास्त्र पढनेसे असर्वज्ञ सिद्ध होवेंगे. तथा देहांतरमें प्रवेश करनेसे जैसे उनकी ब्रह्मविद्या जाती रही, तैसेही सर्व वेदांतीयोके मरे पीछे, ब्रह्मविद्या नष्ट हो जावेगी. क्योंकि, वेदांती-योंके कहने मूजब ब्रह्मविद्या, देहके साथही संबंधवाली है; नहीं तो, देह छोडनेसे शंकरस्वामीकी ब्रह्मविद्या, नष्ट क्यों होती ? जेकर शंकरस्वामीकी

ब्रह्मविद्या नष्ट न होती तो, उनके शिष्य उनको 'तत्त्वमसि' का उपदेश क्यों करते ? और शंकरस्वामी यदि सर्वज्ञ होते तो, अपनी करी मासकी अवधिको क्यों भूल जाते ? और देहांतरमें कामशास्त्र सीखनेको क्यों जाते ? क्या सर्वज्ञसे कोई शास्त्र छीपा है ? और उत्तर देनेसे मेरा यतिधर्म क्षय हो जायगा ऐसा विचार क्यों करते ? क्योंकि, फिर भी तो उसीही शरीरमें प्रवेश करके मंडनमिश्रकी भार्याको उत्तर दिये; क्या उस वखत उत्तर देनेसे यतिधर्म क्षय न हुआ ? और शंकरस्वामीको साक्षात् महादेव माने हैं तो, क्या पार्वतीजीसे भोग करनेसे तृप्त न हुए ? जिससे मृतक शरीरमें प्रवेश करके परस्त्रीयोंसे भोग करके उनके ओष्ठपुटोंको चूसके ब्रह्मानंदका स्वाद लिया !!! और महादेवको तो, तुमने सर्वव्यापी माना है तो, राजाके मृतक शरीरमें अन्य कौन प्रवेश कर गया ? और कौन निकल आया ? क्योंकि, शंकर तो, आगेही सर्व जगें व्यापक है. और शंकरस्वामीको जो भगंदरका रोग हुआ, सो पूर्व जन्मांतरके पापोंके फलसे लिखा है तो, क्या पूर्वजन्मांतरोंमें शंकरस्वामीने पाप करे मानते हो ? तथा तुम तो, पुण्यपापके फलका प्रदाता, ईश्वरको मानते हो तो, फिर क्या शंकरने अपने किये पापके फल भोगनेवास्ते, आपही अपनी गुदामें भगंदररूप फोडा करलिया ? और अभिनवगुप्तने, जो अभिचारक कर्म करके शंकरको भगंदर फोडा किया तो, क्या अभिनवगुप्त शंकरसे अधिक सामर्थ्यवान् था ? वा, शंकर अपने बदलेके मंत्रसे उसको दूर नहीं कर सकता था ? क्योंकि, शंकरको तो, तुम सर्वशक्तिमान् मानते हो.

और शंकरस्वामीके शिष्य पद्मपादने नरसिंहरूप करके, और मंत्र-जाप करके, भैरव, कपाली, और अभिनवगुप्तको मार डाला. क्या पद्मपाद अज्ञानी, रागी, द्वेषी था, जो ऐसा काम किया ? क्या ब्रह्मवित् नहीं था ? यदि था तो, शंकरकीतरें समभाव क्यों नहीं किया ? इसवास्ते यही सिद्ध होता है कि, शंकर, और शंकरके शिष्योंमेंसे कोई भी, रागद्वेष अज्ञान मोहसे रहित, और सर्वज्ञ, नहीं था. और जो जो कल्पना करके,

आनंदगिरि, और माधवने अपने २ रचे विजयोंमें शंकरकी बाबत अधिक बड़ाइ लिखी है, सो अपने गुरु, और अपने मतके आचार्यके अनुरागसें लिखी है. जैसें दयानंदसरस्वतिके शिष्योंने इस कालमें “ दयानंददिग्विजयार्क ” रचा है. परंतु जैसी दयानंदसरस्वतिने मतोंकी विजय करीहै, और जैसी उसके मतकी धूल अन्यमतोंवाले लोक उड़ा रहे हैं, सो हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं. संवत् १९४७ में सरकारी गिनती मुजब चालीस हजार (४००००) के लगभग दयानंदसरस्वतिके मतके माननेवाले आर्यसमाजी गिने गए हैं, उनमें भी प्रायः बड़ा भाग पंजाबीयोंका है. ऐसीही शंकरविजय होवेगी. क्योंकि, थोड़ेसेही वर्ष हुए हैं, पंजाबदेशमें उदासी और निर्मले साधुओंने, वृत्तिप्रभाकर, विचारसागर, निश्चलदासकृत भाषावेदांतके पुस्तक, और उपनिषदादिकोंके अनुसारे, वेदांतमत, प्रचलित किया है. और वेदांतमत माननेवाले जितने पंजाबी हैं, इतने अन्य लोक नहीं मालुम होते हैं, और दक्षिणमें प्रायः रामानुजके मतवालोंने, मध्वर्क, निंबार्क आदि वैष्णवमतवालोंने, और तुकारामादि भक्तिमार्गवालोंने, शंकरस्वामीके चलाये शुद्धाद्वैतमतकी बहुत हानि करी. और गुजरात, कच्छ, मालवा, मेदपाट, हडौती, हुंढाड (जयपुर), अजमेर, मारवाड, दिल्ली मंडलादि देशोंमें प्रायः शंकरस्वामीका मत, प्रचलित नहीं हुआ मालुम होता है, क्योंकि, पूर्वोक्त देशोंमें प्रायः जैनमतकाही प्रबल बहुत था. और शंकरस्वामीके मतके असली रहस्य, अंतमें नास्तिकोंके समान महा अज्ञान, और मिथ्यात्व मोहसें उन्मत्तता, और प्रायः सत्कर्मोंसें भ्रष्टता, आदि कुचलन देखनेमें आते हैं.

और जो शंकरस्वामीका शिष्य आनंदगिरि, जिसने शंकरविजय पुस्तक रचा है, उसको तो, जैनमतकी किंचित् भी, खबर नहीं थी. क्योंकि उसने लिखा है कि, कौपीन (लंगोटी) मात्रधारी, मस्तकमें बिंदु-तिलकका धरनेवाला, मलदिग्ध अंग, ऐसा जैनमती, शंकरस्वामीके पास शिष्योंसहित आया. यह लेख तो, आनंदगिरिने अवश्यमेव किसी भंगा-

दिके नशे चढेमें लिखा मालुम होता है. क्योंकि, ऐसे वेषका धारक तो श्वेतांबर, दिगंबर, दोनों मतोंमें नहीं लिखा है. श्वेतांबरमतमें तो, रजोहरण, मुखवस्त्रिका, चौलपट्टक, आदि चतुर्दश (१४) औधिक उपकरण, और कितनेही औपग्राहिक उपकरणधारी मुनि लिखा है. और दिगंबरमतमें पीछी कमंडलू आदिका धारी मुनि लिखा है. परंतु मस्तकमें बिंदु-तिलक करना, दोनों जगे, मुनिको निषेध है. इसवास्ते जैनमतका साधु तो, शंकरके पास गया, कोइ भी सिद्ध नहीं होता है. और श्रावक भी, नहीं. क्योंकि, जैन-श्रावक तो, नित्य त्रिकाल जिनेंद्रकी स्नान-पूर्वक पूजा करनेवाला, स्फटिकरत्नसमान, अभ्यंतर बाहिरसें निर्मल लिखा है. उसके शरीरमें तो, मलका होना, कौपीनमात्र धारन करना, संभवही नहीं है. और शिष्योंका होना असंभव है. और दिगंबरमतका क्षुल्लक भी, नहीं था. क्योंकि, उसका भी वेष उक्त प्रकारका नहीं है. और सांप्रतिकालमें (आजकल) जे स्नानरहित, मलदिग्धांग, परमेश्वरकी पूजारहित, दुंदकमतके माननेवाले प्रसिद्ध हैं, वे तो शंकरस्वामीके समयमें थेही नहीं, तो फिर, आनंदगिरिका लिखना भंगादिके नशेके बशसें नहीं तो, अन्य क्या है ?

और जो आनंदगिरिने, ' जिनदेव ' शब्दकी व्युत्पत्ति आदि पूर्वपक्ष लिखा है, सो सर्व, स्वकपोलकल्पित महामिथ्या लिखा है. क्योंकि, वैसा पक्ष जैनीयोंको सम्मतही नहीं है. और शंकरस्वामीने उसका खंडन किया लिखा है, सो ऐसा है, जैसा बंध्यासुतका शृंगार वर्णन करना. इस हेतुसें शंकरविजयोंमें जो कथन जैन बौद्धमतकी बाबत लिखा है, सो सर्व, स्वकपोलकल्पित होनेसें मिथ्या है.

वाचकवर्ग ! ऐसे न समझें कि, यह ग्रंथ लिखनेवालेने द्वेष बुद्धिसें शंकरस्वामीविषयक, और दोनों शंकरविजयोंविषयक लेख, लिखे हैं. परंतु जब तुम सर्व मतोंका पक्षपात छोडके मध्यस्थ होके विचारोगे, तब तुमको ग्रंथकारका लेख सत्य २ प्रतीत होजावेगा.

और कुमारिलभट्ट, और शंकरस्वामीकी बाबत, हिंदुस्थानका संक्षिप्त इतिहास लिखनेवाले डॉक्टर हंटर, सि, आई, इ; एल एल, डी.

(DR. SIR WILLIAM HUNTER, C. I. E., LL. D.) ने लिखा है; उसका तरजूमा गुजराती भाषामें सरकारकी तरफसें हुआ है. उसके सन १८८६ के छपे पुस्तकके पृष्ठ १०९ में लिखा है कि, ईसवी सन ८०० में विहारका वासी कुमारिल ब्राह्मण हुआ, और उक्त सन ९०० में, शंकरस्वामी हुआ लिखा है. और पृष्ठ १०३ में लिखा है कि, ईसवी सनके ८०० में सैकेमें कुमारिलने उपदेश करनेका प्रारंभ किया, वेदानुसार पुराना मत यह है कि, सगुणस्वप्ता, और ईश्वर है. ऐसे मतका उसने बोध किया. बौद्धधर्ममें सगुण ईश्वर नहीं था; पीछेकी एक कथामें ऐसा लिखा है कि, कुमारिलने बौद्धमतके विरुद्ध उपदेश किया, इतनाही नहीं, बल्कि, उनके ऊपर बहुत जुलम करनेके वास्ते किसी दक्षिण हिंदके राजाके मनमें ऐसा निश्चय करवाया कि, उस राजाने अपने सेवकोंको आज्ञा दी कि, बौद्धमत माननेवाले बृद्ध, और बालकपर्यंत, सेतुबंधरामेश्वरसें लेके हिमालयपर्यंत, जहां होवे, तहां सर्वको मार दो, और जो न मारे, उसको भी मार दो. तथापि, हिमालयसें लेके कन्याकुमारीतक, जुलम करनेकी सत्ता जिसके हाथमें होवे, सो उक्त काम कर सके; परंतु ऐसा भारी राजा, उसकालमें हिंदमें नहीं था. हां, दक्षिणहिंदके बहुतसे राजाओंमेंसें किसीएक राजाने अपने राज्यमें ऐसा जुलम गुजारा होवे तो, होवे. परंतु यह तो, एक छोटीसी बातको बड़ी करके दिखलाइ है.

तथा प्रो० मणिलाल नभुभाई द्विवेदी, अपने बनाये सिद्धांतसारमें ऐसे लिखते हैं—सातमे आठमे सैकेमें शंकराचार्यकुमारिल विगेरेने, इस (बौद्ध) धर्मके सामने बहुत प्रयत्न किया है. कदापि किसी स्थलमें लड़ाई झगडा भी हुआ होगा, तो भी बौद्धधर्मको ब्राह्मणोंने, राजाओंके पास निकलवा दिये और बौद्धधर्मके अनुयायी (माननेवालों) को कतल करवा दिये यह बात तो, केवल पुराणकल्पनाही लगती है. [स्वर्गवासी पंडित भगवान-लालजीका भी यही मत था.] तो बौद्धधर्म हिंदुस्थानमेंसें कैसें लोप हो गया ? तिसवास्ते उस धर्मका बंधारणही जवाबदार है. प्रथमसेंही इस धर्मकी नीति बहुत सखत थी, इसमें साधु होके रहना बहुत मुश्किल था;

और सर्वोपरि यह कसर (खामी) थी कि, यह धर्म, केवल अभावरूप था. तिससे सामान्य लोकोंको एकवार इसपर जो रुचि हुई थी, तिसको कायम रखनेके साधन—अच्छे ग्रंथ—सामान्य लोकोंको, और विद्वान लोकोंको रुचे, ऐसे संग्रह इत्यादि—इस धर्ममें नहीं थे. इसवास्ते कालांतरमें लोकोंने वेदांतादि धर्मका सार, शंकरद्वारा स्पष्ट होनेसे, इसको (बौद्धधर्मको) छोड़ दीया; आपही इस धर्मका नाश हो गया.

तथा सन १८९५ अक्टोबर तारिख १३ मीके छपे गुजराती पत्रमें “प्राचीन गुजरातका एक चित्र (२१)” इस विषयमें लिखा है कि, बाह्यणोऊपरांत अन्नसत्रके निर्वाहवास्ते, देवालयके निर्वाहवास्ते, टूटे फूटेके बनानेवास्ते, मठोंके निर्वाहवास्ते, इत्यादि भी दानपत्र मिलते हैं, उसमें बल्लभीके वखतमें बौद्धविहारको दान दीयेका भी प्रमाण मिलता है, ताम्रपत्रोंके दान बहुतकरके स्मार्तधर्मके प्रवर्तनवास्ते मालुम होते हैं, परंतु बौद्धधर्म चलता था, उसका ऊपर लिखा प्रमाण मिलता है. इसके सिवाय हीवेनथ्संगके पुस्तकोंसे भी भरुच, खेडा, बल्लभी, सुराष्ट्र, मालवादिकोंमें बौद्धधर्मका प्रचार देखनेमें आता है. प्राचीन समयमें उसका जो राजकीय, और दूसरा प्राबल्य था, सो देखनेमें नहीं आता है. और वो शनैः शनैः (धीमे धीमे) निर्वल होगया होना चाहिये. तो भी, धारवाड जिल्लेके डंवलगाममें एक शिलालेख, इ. स. १०९५ का है. उसमें बुद्धके विहारको, और आर्यतारादेवीके विहारको दान दीये हैं. जिससे देखनेमें आता है कि, कर्नाटकतरफ, बौद्धधर्म, यावत् इग्यार (११) मे सैकेतक चलता था, और उसको दानादिकोंसे आश्रय मिलता था. कन्हेरीकी गुफामें शक ७७५, और ७९९, के लेख हैं. येह राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्षके खंडणी (मातहत) कोंकणके शिलारराजा कपर्दीके वखतके हैं. तिसमें भी, बौद्धगुफाको दान कियेका लेख मिलता है. अर्थात् पौराणिक, स्मार्तधर्म, और कापालिकमतका शैवधर्म, बहुत प्रबल था; तथापि, बौद्धमत, यावत् बारमे (१२) सैकेतक चालु—विद्यमान रहनेके प्रमाण मिलते हैं.

इन पूर्वोक्त लेखोंसे माधवरचित शंकरविजयका जो यह लेख है।

आसेतुरातुसाद्रिश्च बौद्धानां वृद्धबालकं ।

न हन्ति यः स हन्तव्यो भृत्यानित्यवदनृपाः ॥

भावार्थः—सेतुबंधरामश्वरसें लेकर, हिमालयतक, बौद्धोंके वृद्धसें लेकर बालकपर्यंतको, जो न हणे, (न मारे) उसको मार देना; ऐसे अपने नोकरोंप्रति राजे लोक कथन करते हुए. सो मिथ्या सिद्ध होता है.

और माधवने जहां बौद्ध लिखा है, वहां भी, आनंदगिरीने जैन लिखा है. माधवकृत विजयके सर्ग ७ के पृष्ठ ११-१२ में, और आनंद-गिरिकृत विजयके पृष्ठ २३६ में देखो. क्या जाने, आनंदगिरिको जैनी-योंने बहुत सताया होगा, इसवास्ते, बौद्धोंकी जगे भी, जैनमतीही लिख दिये !!! परंतु हमारी समझमूजब तो, आनंदगिरिको जैन और बौद्धमतके पृथक् २ जाननेकी भी, बुद्धि नहीं थी. और शंकरने, जैन-मतोपरि कुमारिलवत्, जुलम गुजारा, ऐसा तो, दोनोंही विजयग्रंथोंमें नहीं लिखा है.

ऐसे पूर्वोक्त स्वरूपवाले शंकरस्वामीने, वेदांतमतके व्याससूत्रोपरि, भाष्य रचा है. उसमें व्यासजीके कथनानुसार, जैनमतका खंडन, लिखा है. सो खंडन खंडनपूर्वक, आगेके स्तंभमें लिखेंगे. । इत्यलम् ।

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे

शंकरस्वामिस्वरूपवर्णनोनामपंचत्रिंशःस्तम्भः ॥ ३५ ॥

॥ अथ षट्त्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

पंचत्रिंश (३५) स्तम्भमें शंकरस्वामीका स्वरूप कथन किया, अथ इस छत्तीस (३६) मे स्तम्भमें शंकरस्वामीने जैसे जैनमतकी सप्तभंगीका खंडन किया है सो, और उसके खंडनका खंडन लिखते हैं. तर्हा प्रथम जैनमतवाले जैसा सप्तभंगीका स्वरूप मानते हैं, तैसा भाषामें लिखते हैं, जिससे वाचकवर्गको मालुम हो जायगा कि, शंकरस्वामीने,

जो सप्तभंगीका खंडन लिखा है, सो, जैनमतानुसार है, वा अन्यथा है ? और शंकरस्वामीको जैनमतकी सप्तभंगीका बोध, यथार्थ था, वा अय-
थार्थ था ?

जैनमत माननेवालोंको प्रथम सप्तभंगीका स्वरूप जानना चाहिये। क्योंकि, सप्तभंगीही, जैनीयोंके प्रमाणकी भूमिकाको रचती है। दुर्दम जो परवादीयोंके वादरूप हाथी है, उनके पकडने अर्थात् पराजय करनेवास्ते, और अपने सिद्धांतके रहस्य जाननेवास्ते, श्रेष्ठ जे वादी है, वे सम्यक् प्रकारसे सप्तभंगीका अभ्यास करते हैं। ।

यदुक्तं ॥

या प्रश्नाद्विधिपर्युदासभिदया बाधच्युता सप्तधा ।

धर्मं धर्ममपेक्ष्य वाक्यरचना नैकात्मके वस्तुनि ॥

निर्दोषा निरदेशि देव भवता सा सप्तभंगी यथा ।

जल्पन् जल्परणांगणे विजयते वादी विपक्षं क्षणात् ॥१॥

भावार्थः—प्रश्नवशसें विधि, और पर्युदास, भेदकरके अनेकात्मक वस्तुमें, एक एक धर्मकी अपेक्षा, सातप्रकारकी सर्वप्रमाणोंसे अ-
बाधित, और निर्दोष, जो वचनकी रचना है, सो सप्तभंगी है। हे अर्हन् ! देव ! ईश्वर ! ऐसी सप्तभंगी, तुमने कथन करी है, जिस सप्त-
भंगीकरके, वादरूपी ये संग्राममें, वादी, प्रतिवादीयोंको एकक्षणमें जीत लेते हैं. ॥ १ ॥ तथा यह जो शब्द है, सो यत् किंचित् सदंश, असदंश, भंगकरके अपने अर्थको प्रतिपादन करता हुआ, सप्तभंगहीको प्राप्त होता है। सर्वजगे यह ध्वनि विधिनिषेधकरके अपने अर्थको कहता हुआ, सप्तभंगीको प्राप्त होता है; यह तात्पर्यार्थ है। सो सप्तभंगी, कैसे स्वरूपवाली है ? उसका लक्षण कहते हैं।

“ ॥ एकत्र वस्तुनि एकैकधर्मपर्यनुयोगवशात् अविरोधेन व्यस्तयोः समस्तयोश्च विधिनिषेधयोः कल्पनया स्यात्कारां-
कितः सप्तधा वाक्प्रयोगः सप्तभंगीति ॥”

अर्थ:-जीव, अजीव आदि एक पदार्थकेविषे, एक एक धर्ममें प्रश्नके करनेसे, सकल प्रमाणोंसे अबाधित, भिन्न भिन्न विधि प्रतिषेध और अभिन्न विधि प्रतिषेधके विभागकरके, कहा हुआ, 'स्यात्' शब्दकरके लांछित, जो सातप्रकारके वचनका उपन्यास, सो सप्तभंगी जाननी. 'विधिःसदंशः' विधि जो है, सो सत्अंश है. 'प्रतिषेधो सदंशः' और प्रतिषेध, निषेध जो है, सो, असत् अंश है. पदार्थसमूहके सदंश असदंश धर्मादि अनेक प्रकारके विभाग करनेसे अनंतभंगीका प्रसंग होता है, जिसके दूर करनेकेवास्ते सूत्रकारने एकपद (एकत्र) का ग्रहण किया है. अनंतधर्मसंयुक्त जीव अजीवादि एक एक वस्तुमें भी विधि निषेधकरके, अनंतधर्मके परिप्रश्नकालमें अनंतभंगका संभव है; उसकी व्यावृत्तिकेवास्ते एक एक धर्ममें पर्यनुयोग ऐसे पदका ग्रहण करा है. इस कहनेसे अनंतधर्मसंयुक्त अनंत पदार्थोंके हुए भी, प्रतिपदार्थके प्रतिधर्मके परिप्रश्नकालमें एक एक धर्ममें एक एकही सप्तभंगी होती है, यह नियम कथन किया है. और अनंतधर्मकी विवक्षाकरके सप्तभंगीयोंका भी, नाना कल्पना करना हमको अभीष्टही है. यह बात सूत्रकारनेही कही है. ।

तथाहि ॥

“ ॥ विधिनिषेधप्रकारापेक्षया प्रतिपर्यायं वस्तुन्यनंतानाम-
पि सप्तभंगीनां संभवात् प्रतिपर्यायं प्रतिपाद्यपर्यनुयोगानां
सप्तानामेव संभवादिति ॥ ”

भावार्थ:-विधिनिषेधप्रकारकी अपेक्षाकरके वस्तुके प्रतिपर्यायमें सातही भंगोंका संभव है, किंतु अनंतोंका नहीं. क्योंकि, एक एक पर्यायप्रति, शिष्यके सातही प्रश्न होनेसे. ऐसे हुए, अनंत पर्यायात्मक पूर्ण वस्तुमें, अनंत सप्तभंगीयोंका भी संभव होनेसे, अनंतसप्तभंगी हो सकती है, किंतु अनंतभंगी नहीं.

अथ सप्तभंगी स्वरूपसे दिखाते हैं. ।

तथाहि ॥

“ ॥ स्यादस्त्येव सर्वमिति सदंश कल्पनाविभजनेन प्रथ-
मो भंगः ॥ १ ॥ ”

“ ॥ स्यान्नास्त्येव सर्वमिति पर्युदासकल्पना विभजनेन द्वि-
तीयो भंगः ॥ २ ॥ ”

“ ॥ स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति क्रमेण सदंशासदंशक-
ल्पनाविभजनेन तृतीयो भंगः ॥ ३ ॥ ”

“ ॥ स्यादवक्तव्यमेवेति समसमये विधिनिषेधयोरनिर्वच-
नीयकल्पनाविभजनया चतुर्थो भंगः ॥ ४ ॥ ”

“ ॥ स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति विधिप्राधान्येन युग-
पद्विधिनिषेधानिर्वचनीयख्यापनाकल्पनाविभजनया पं-
चमो भंगः ॥ ५ ॥ ”

“ ॥ स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति निषेधप्राधान्येन युगपन्नि-
षेधविध्यनिर्वचनीयकल्पनाविभजनया षष्ठो भंगः ॥ ६ ॥ ”

“ ॥ स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति क्रमात् सदं-
शासदंशप्राधान्यकल्पनया युगपद्विधिनिषेधानिर्वच-
नीयख्यापनाकल्पनाविभजनया च सप्तमो भंगः ॥ ७ ॥ ”

अथ अर्थसं प्रथमभंग प्रगट करते हैं:-प्रथमभंग विधिकी प्रधानतामें है.
'स्यात्' ऐसा अनेकांतका द्योतक, अर्थात् अनेकांतका प्रकाशक, अव्यय है.
स्यात् इस कहनेकरके कथंचित् किसीप्रकारसे अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भा-
वरूप चतुष्टयकरके घटादिवस्तु, अस्तिरूपही है; और अन्यवस्तुसंबंधी द्रव्य,
क्षेत्र, काल, भाव चतुष्टयरूपकरके घटादिवस्तु, नास्तिरूपही है.-तथाहि-
घट जो है, सो, द्रव्यसे पृथिवीरूपकरके तो है, जलादिरूपकरके नहीं;
क्षेत्रसे पाटलिपुत्रके क्षेत्रसे है, कान्यकुब्जके क्षेत्रसे नहीं; कालसे शिशरऋ-
तुका बना हुआ है, वसंतऋतुका नहीं; भावसे रक्तरंगसे है, पीतरंगसे नहीं.
ऐसेही अन्यपदार्थ भी जानने. कथंचित् अर्थात् अपने द्रव्यादिचारोंकी अ-
पेक्षाकरके, विद्यमान होनेसे, कथंचित् अस्तिरूप, घट है, और परद्रव्या-
दिचारोंकी अपेक्षाकरके, अविद्यमान होनेसे कथंचित् नास्तिरूप, घट है, ऐ-

सा उल्लेख अर्थात् स्वरूप है, जेकर अन्यपदार्थको अन्यपदार्थके रूपकी प्राप्ति होवे तो, पदार्थके स्वरूपकी हानिकी प्रसक्ति होवे. एवकारके पठन करनेसे ऐसे स्वरूपवाला भंग है, ऐसा एवकारसे अवधारण होता है. और अवधारण तो, अवश्य करना चाहिये. नहीं तो, किसीजगे कथन करा हुआ भी नाकथनसरीखा होवेगा. तथा जेकर 'अस्त्येव कुंभः' इतनाही कथन करीये तबतो, कुंभको स्तंभादिकपणे अस्तित्वकी प्राप्ति होनेसे प्रतिनियत स्वरूपकी अनुपपत्ति होवेगी, इसवास्ते उसके प्रतिनियत स्वरूपकी प्रतिपत्तिके वास्ते 'स्यात्' ऐसा अव्यय, जोड़ा जाता है. कथंचित् रूपकरके स्वद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा अस्ति, और परद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा नास्ति है; ऐसे प्रयोगकी प्रतिपत्तिकेवास्ते तथा तिस 'स्यात्' अव्ययको 'वच्छेदफल 'एवकार' कीतरें जहांकहीं शास्त्रमें 'स्यात्' पद प्रकट नहीं कहा है, वहां भी, 'स्यात्' पद अवश्यमेव जानना.

तदुक्तम् ॥

सोप्यप्रयुक्तो वा तज्ज्ञैः सर्वत्रार्थात् प्रतीयते ।

यथैवकारो योगादिव्यवच्छेदप्रयोजनः ॥ १ ॥

अर्थः—जिसजगे 'स्यात्' पद, नहीं कहा है, तहां भी, तिस स्यात् अव्ययके जानने वालोंनेअर्थसें जान लेना; अयोगव्ययवच्छेदादि प्रयोजनवाले एवकारवत्. तिसवास्ये एवकार, और स्यात्कार ये दोनों सातोंही भंगमें ग्रहण करना. विधिप्रधान होनेसें विधिरूपही प्रथम भंग है. ॥ १ ॥

अथ अर्थसें दूसरा भंग दिखाते हैंः—स्यान्नास्त्येवेति निषेधप्रधानकल्पन-यायं भंगः ॥ कथंचित् यह नहीं है, ऐसे निषेधप्रधानकल्पनाकरके यह दूसरा भंग है. जो नियमकरके साध्यके सद्भावसें अस्तित्व है, सोही साध्यके अभावमें नास्तित्व कथन करीये हैं; जैसें, घट, स्वद्रव्यचतुष्टयकरके अस्तिरूप सिद्ध है, तैसें मुद्रादिके संयोगसें नष्ट हुआ थका, वोही घट, नास्तित्वरूपकरके सिद्ध होता है; अस्तित्वको नास्तित्वके अविनाभावि होनेसें; तथाच क्षणविनश्वरभावोंकी उत्पत्तिही, विनाशमें कारण मानते हैं.

तदुक्तम् ॥

उत्पत्तिरेव भावानां विनाशे हेतुरिष्यते ॥

यो जातश्च न च ध्वस्तो नश्येत् पश्चात् स केन च ॥१॥

अर्थः—उत्पत्तिही, भावोंके विनाशमें हेतु है, जो उत्पन्न हुआ और नाश नहीं हुआ, सो पीछे किसकरके नाश होवेगा ? उत्पत्ति अस्तित्वकी सिद्धिको करती है, सोही उत्पत्ति, विनाश अपरपर्याय नास्तित्वका मूल-कारण होनेसें अविनाभाव सिद्ध करती है.

पूर्वपक्षः—जिस स्वरूपसें अस्ति है, जेकर तिसही स्वरूपसें नास्ति है, तब अस्तिनास्ति दोनोंको एकजगे होनेसें भाव, अभाव, दोनोंकी एकतापत्तिरूप अनिष्टका प्रसंग होवेगा.

उत्तरपक्षः—अस्तिनास्ति दोनोंकी भिन्नभिन्न समयमें प्ररूपणा होनेसें पूर्वोक्त दूषण नहीं, पदार्थोंका प्रतिसमय नाश होनेसें. तथा हम ऐसें नहीं मानते हैं कि, जिस समयमें जिसका उत्पाद है, तिसही समयमें उसका विनाश है; तिसवास्ते अस्तित्वके अविनाभावि नास्तित्व सिद्ध हुआ. ऐसें सर्ववस्तु, स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा अस्तिनास्तिरूपसें सिद्ध है. अस्तित्वकी प्रधानदशामें प्रथमभंग है और निषेधदशामें दूसरा भंग है. ॥ २ ॥

अथ अर्थसें तीसरा भंग प्रकट करते हैंः—स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति ॥ सर्ववस्तु, क्रमकरकेही, स्वपरद्रव्यादि चतुष्टयके आधार अनाधारकी विवक्षासें, प्राप्त अप्राप्त पूर्वअपर भावोंकरके, विधि और प्रतिषेध-प्रधानकरके विशेषित तीसरे भंगको भजनेवाला होता है, घटवत्. जैसें, घट, अपने द्रव्यादिचारकी अपेक्षा कथंचित् अस्तिरूपही है, और कथंचित् परद्रव्यादिचारकी अपेक्षा नास्तिरूपही है. विधिप्रतिषेध दोनोंकी प्रधानता कथन करनेवाला, यह तीसरा भंग है. ॥ ३ ॥

अथ अर्थसें चौथा भंग प्रकट करते हैंः—स्यादवक्तव्यं युगपद्विधि-निषेधकल्पनया चतुर्थ इति ॥ सदंश असदंश इन दोनोंका समकाल प्ररूपणानिषेधप्रधान यह भंग है.

तथाहि ॥ विधिप्रतिषेध युगपत् प्रधानभूत दोनों धर्मोंको एक पदार्थमें युगपत् विधिनिषेध दोनोंकी प्रधानविवक्षामें तैसैं शब्दको अनिर्वचनीय होनेसैं घटादिवस्तु अवक्तव्य है, विधिप्रतिषेध दोनों धर्मोंकरके आक्रांत भी तिस पदार्थको युगपत् दो धर्मोंको अवक्तव्यरूप होनेसैं, युगपत् विरुद्ध दो धर्मका प्रयोग नहीं हो सकता है; शीतउष्णकीतरें, सुख-दुःखकीतरें. क्रमकरकेही शब्दमें अर्थ कथन करनेका सामर्थ्य होनेसैं, युगपत् एककालमें नहीं. क्तवतुकरके संकेतित निष्ठाशब्दवत्, अथवा पुष्पदंत शब्दकरके संकेतित सूर्यचंद्रवत्. निष्ठाशब्दकरके, वा, पुष्पदंतशब्दकरके क्रमसैंही क्तवतुका, और सूर्यचंद्रका अर्थ प्रत्यय होता है, अर्थात् निश्चय होता है. तिसकरके द्रव्यादिपदोंका भी, युगपत् अर्थ-प्रत्यायकपणा, खंडन किया. 'धवस्वदिरौ स्त इति' यहां भी क्रमकरकेही ज्ञान होता है, युगपत् नहीं. क्योंकि, तैसैंही ज्ञान प्रत्यय होनेसैं, और समकालमें शब्दको अवाचकपणा होनेसैं, अवक्तव्य है. जीवादिवस्तु, युगपत् विधिप्रतिषेध विकल्पनाकरके संक्रांतही स्थित होता है; यद्यपि वस्तु, अस्तित्वनास्तित्वधर्मोंकरके संयुक्त भी है, तो भी, अस्तित्वनास्तित्वधर्मोंकरके एककालमें कहा नहीं जाता है, इसवास्ते अवक्तव्य, अर्थात् अनिर्वचनीय घट है. ऐसैं फलितार्थ चतुर्थ भंग हुआ. ॥ ४ ॥

अथ अर्थसैं पांचमा भंग लिखते हैं:-स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमिति ॥ सदंशपूर्वक युगपत् सदंश असदंशकरके अनिर्वचनीय कल्पनाप्रधानरूप यह भंग है. अपने २ द्रव्यादिचतुष्टयकरके विद्यमान हुआं भी, सदंश असदंशकरके प्ररूपणा इस भंगमें करनेकी सामर्थ्यता नहीं है, जीवादि सर्ववस्तु स्वद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षाकरके है, परंतु विधिप्रतिषेधरूपोंकरके कहनेको अनिर्वचनीय है. 'अस्त्यत्र प्रदेशे घटः' है, इस प्रदेशमें, घट सत्-रूप असत्-रूप दोनोंकरके एककालमें उन दोनोंका स्वरूप कथन करनेकी सामर्थ्यता न होनेसैं, विधिरूप हुआं भी, अवक्तव्य है. ऐसैं फलितार्थ पांचमा भंग हुआ. ॥ ५ ॥

अथ अर्थसैं छठा भंग प्रकट करते हैं:-स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमिति ॥ निषेधपूर्वक युगपत् विधिनिषेधकरके अनिर्वचनीय प्रधान यह

भंग है. परद्रव्यादिचतुष्टयके अविद्यमानत्वके हुए भी, सदंश असदंश ऐसी प्ररूपणा करनेको यह भंग असमर्थ है. इस भंगमें सर्ववस्तु जीवादि, परद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षाकरके नास्ति भी है, तो भी विधि-प्रतिषेधरूपोंकरके कहनेको अनिर्वचनीय है. 'नास्त्यत्र प्रदेशो घटः' नहीं है, इस प्रदेशमें, घट, सत्स्वरूप असत्स्वरूपकरके युगपत्स्वरूपके कथन करनेमें असामर्थ्य होनेसे नास्तित्वके हुए भी, अवक्तव्य है. इतिफलितार्थः षष्ठो भंगः ॥ ६ ॥

अथ अर्थसे सातमा भंग प्रकट करते हैं:-स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमिति ॥ अनुक्रमकरके अस्तित्वनास्तित्वपूर्वक युगपत् विधि-निषेध प्ररूपणानिषेधप्रधान यह भंग है. इति शब्द सप्तभंगीकी समा-प्तिमें है; स्वद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षाकरके अस्तित्वके हुए भी, परद्रव्या-दिचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तित्वके हुए भी, विधि वा प्रतिषेध कथन करनेको असमर्थ है. इस भंगमें सर्वजीवादिवस्तु, स्वद्रव्यादि अपेक्षा अस्ति है, परद्रव्यादि अपेक्षा नास्ति है, तो भी, एककालमें विधिनिषेध-रूपोंके साथ युगपत् प्रतिपादन करनेको असमर्थ है. जैसे स्वद्रव्यादि अपेक्षासे है, इसप्रदेशमें, घट, परद्रव्यादि अपेक्षासे, नहीं है; यहां घट, विधिप्रतिषेधरूपोंकरके युगपत्स्वरूप कथन करनेको असमर्थ होनेसे अवक्तव्य है. इति प्रकटार्थ है. इसवास्ते स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्याद-वक्तव्यं कथंचित् है, कथंचित् नहीं, और कथंचित् अवक्तव्य, इसभंग-करके दिखलाया है. इतिसप्तमभंगः ॥ ७ ॥

तथा यह जो सप्तभंगी है, सो सकलादेश, विकलादेश, दोतरैके भंगवाली है.

तदुक्तं प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारे. ॥

“॥ इयं सप्तभंगी प्रतिभंगं सकलादेशस्वभावा विकलादे-
शस्वभावा च ॥ ४३ ॥ प्रमाणप्रतिपन्नानंतधर्मात्मकवस्तुनः
कालादिभिरभेदवृत्तिप्राधान्यादभेदोपचाराद्वा यौगपद्येन
प्रतिपादकं वचः सकलादेशः ॥ ४४ ॥ तद्विपरीतस्तु विक-
लादेशः ॥ ४५ ॥ इतिचतुर्थपरिच्छेदे. ॥

अर्थः—यह सप्तभंगी, प्रतिभंगसकलादेशस्वभाववाली, और विकलादेशस्वभाववाली है. तिनमें प्रमाणकरके अंगीकार करा, जो अनंतधर्मात्मक वस्तु, उसको कालादि आठोंकरके अभेदकी प्राधान्यतासें अर्थात् धर्मधर्मीके अभेदकी मुख्यतासें, अथवा कालादि अष्टकरके भिन्नाभिन्न स्वरूपवाले भी, धर्मधर्मी है, तो भी, अभेदके उपचारसें, एककालमें कथन करे, ऐसा जो वाक्य, सो सकलादेश है. और इसीका नाम प्रमाणवाक्य है. भावार्थ यह है कि, युगपत् अर्थात् एकहीवार संपूर्ण धर्मोंकरके युक्त वस्तुको कालादि अष्टकरके अभेदकी मुख्यता, अथवा अभेदके उपचारकरके प्रतिपादन करता है, सो सकलादेश प्रमाणके आधीन होनेसें है; और सकलादेशसें जो विपरीत है, सो विकलादेश है; अर्थात् क्रमकरके भेदके उपचारसें, अथवा भेदकी मुख्यतासें भेदहीको कहे, सो नयके आधीन होनेसें विकलादेश है.

प्रश्नः—क्रम क्या है ? और युगपत् क्या है ?

उत्तरः—जब अस्तित्वादि धर्मोंकी, कालादि अष्टकरके भेदसें कथन करनेकी इच्छा होवे, तब एक शब्दको अनेक अर्थके बोधन करानेकी शक्ति न होनेसें क्रम होता है; और जब तिनही धर्मोंका कालादि अष्टकरके अभेदस्वरूप माने, तब एकही शब्दकरके एक धर्मके बोधन करानेद्वारा तिस धर्मसें अभेदरूप संपूर्णधर्मस्वरूप वस्तुका प्रतिपादन होनेसें, यौगपद्य होता है.

अथ कालादि अष्ट येह हैं. काल १, आत्मरूप २, अर्थ ३, संबंध ४, उपकार ५, गुणिदेश ६, संसर्ग ७, और शब्द ८. ।

तदुक्तम् ॥

कालात्मरूपसंबंधाः संसर्गोपक्रिये तथा ॥

गुणिदेशार्थशब्दाश्चेत्यष्टौ कालादयः स्मृताः ॥ १ ॥

इसका अर्थ ऊपर लिख आये हैंः—तत्र स्याज्जीवादिवस्त्वस्त्येवेति—कथंचित् जीवादिवस्तु अस्तिरूपही है. यहां जिस कालमें अस्तित्व है, तिसही कालमें

अपर अनंत धर्म भी वस्तुमें है, इसवास्ते उन धर्मोंकी कालकरके अभेदवृत्ति है. ॥ १ ॥ जौनसा अस्तित्वको वस्तुका गुण होना यह आत्मरूप है, वोही अन्य अनंत गुणोंका भी है, इति आत्मरूपकरके अभेदवृत्ति. ॥ २ ॥ जो अर्थ (द्रव्याख्य), अस्तित्वका आधार आश्रय है, वोही अर्थ द्रव्य, अन्य धर्मोंका आधार है, इत्यर्थकरके अभेदवृत्ति. ॥ ३ ॥ जो अविष्वग्भाव अर्थात् कथंचित् वस्तुरूपसंबंध अस्तित्वका है, वोही अपर धर्मोंका है इतिसंबंधकरके अभेदवृत्ति. ॥ ४ ॥ जो उपकार स्वानुरक्तकरण अपनाकरके खचित करना अस्तित्वको करते हैं, वोही उपकार अपर संपूर्णधर्मोंको करा जाता है, इति उपकारके अभेदवृत्ति. ॥ ५ ॥ जो गुणिके संबंधी क्षेत्ररूप देश अस्तित्वका है, वोही गुणिदेश अपर धर्मोंका है, इतिगुणिदेशकरके अभेदवृत्ति. ॥ ६ ॥ जो एकवस्तुरूपकरके अस्तित्वका संसर्ग है, वोही संसर्ग अशेष धर्मोंका है, इति संसर्गकरके अभेदवृत्ति. ॥

प्रश्नः—पीछे कहे संबंधसें संसर्गका क्या विशेष है ?

उत्तरः—अभेदकी मुख्यता और भेदकी गौणताकरके पीछे संबंध कहा, भेदकी मुख्यता और अभेदकी गौणताकरके यह संसर्ग कहा. इति. ॥७॥ जो अस्तिशब्द अस्तित्व धर्मवाले वस्तुका वाचक है, वोही अस्तिशब्द शेष अनंत धर्मात्मक वस्तुका वाचक है, इतिशब्दकरके अभेदवृत्ति. ॥ ८ ॥

पर्यायार्थिक नयके गौण हुए, और द्रव्यार्थिकके प्राधान्य हुए, अभेद होता है. द्रव्यार्थिकके गौण हुए, और पर्यायार्थिकके प्राधान्य हुए, एककालमें एकवस्तुमें नाना गुण न होनेसें गुणोंका अभेद नहीं होता है, यदि होवें भी तो, उसके आश्रय भिन्नभिन्न होजावेंगे. ॥ १ ॥ नानी गुणसंबंधी आत्मरूपको भिन्न २ होनेसें; यदि आत्मरूपका अभेद होवे, तो, उनका भेद विरुद्ध होजावेगा. ॥ २ ॥ अपने अपने धर्मके आश्रयभूत अर्थको भी नाना होनेसें; यदि नाना, न होवे तो, नाना गुणोंका आश्रय होना विरुद्ध है. ॥ ३ ॥ संबंधका भी संबंधियोंके भेदसें भेद देखनेसें; नानासंबंधियोंने एकवस्तुमें एकसंबंध नहीं रचनेसें. ॥ ४ ॥ नानासंबंधियोंने करा जो भिन्न २ स्वरूपवाला उपकार तिसको नाना होनेसें; अनेक

उपकारियोंने एक उपकार करना विरोध है. ॥ ५ ॥ गुणिके देशको एक एक गुणप्रति, भिन्नभिन्न होनेसें; यदि गुणिदेश भिन्नभिन्न, न होवे तो, पृथक् २ (जुदे २) अर्थोंके गुणोंका भी गुणिदेश एक होना चाहिये. ॥६॥ संसर्गको भी एक एक संसर्गवाले साथ जूदाजूदा होनेसें; यदि संसर्ग एक होवे तो, संसर्गवालोंका भेद न होना चाहिये. ॥ ७ ॥ शब्दको भी विषयविषयप्रति भिन्नभिन्न होनेसें; यदि सर्वगुण एकशब्दके वाच्य होवे तो, सर्व अर्थोंको एकशब्दके वाच्य होने चाहिये. और अन्य सर्वशब्द निष्फल होने चाहिये. ॥ ८ ॥ वास्तवसें अस्तित्वादिधर्मोंका एक वस्तुमें इस पूर्वोक्त रीतिसें अभेद न होनेसें कालादिकोंकरके भिन्न २ स्वरूपवाले धर्मोंका अभेदोपचार होवे है. सो पूर्वोक्त अभेद अथवा अभेदोपचार, इन दोनोंकरके प्रमाणसिद्ध अनंतधर्मात्मक वस्तुको एककालमें कथन करे, ऐसा जो वाक्य सो सकलादेश है. प्रमाणवाक्य यह इसीका दूसरा नाम है. ॥ इतिसप्तभंगीस्वरूपवर्णनम् ॥

अथ इस पूर्वोक्त सप्तभंगीका खंडन, चार वेदके संग्रहकर्ता व्यास-जीने, अपने रचे व्याससूत्रके दूसरे अध्यायके दूसरे पादके ३३, ३४, ३५, ३६ में सूत्रोंमें जैनमतका खंडन किया है, तिनमें तेतीसमें सूत्रमें “सप्तभंगी” का खंडन लिखा है, सो दिखाते हैं.

तथाहि सूत्रम् ॥ “ ॥ नैकस्मिन्नसंभवात् ॥ ३३ ॥ ”

अर्थ:-एकवस्तुमें सप्तभंग नहीं हो सकते हैं, असंभव होनेसें. ॥ इस व्याससूत्रका भाष्य शंकरस्वामीने किया है, तिसका खुलासा भाषामें लिखते हैं.

शंकरस्वामी लिखते हैं:-जैनी सात पदार्थ मानते हैं; जीव १, अजीव २, आस्रव ३, संवर ४, निर्जरा ५, बंध ६, मोक्ष ७, और संक्षेपसें, जैनी, दोही पदार्थ मानते हैं. जीव १, अजीव २. पूर्वोक्त सातों पदार्थोंको इन जीव अजीव दोनोंहीके अंतर्भाव मानते हैं. और पूर्वोक्त दोनोंका प्रपंच पंचास्तिकायनाम मानते हैं; जीवास्तिकाय १, पुद्गलास्तिकाय २, धर्मा-

स्तिकाय ३, अधर्मास्तिकाय ४, आकाशास्तिकाय ५. और इनके मतिकल्पनासे अनेक भेद कहते हैं. और सर्व पदार्थोंमें इस सप्तभंगीका सम-वतार करते हैं. स्यादस्ति, स्यान्नास्ति २, स्यादस्ति च नास्ति ३, स्यादव-क्तव्यः ४, स्यादस्ति चावक्तव्यश्च ४, स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च ६, स्याद-स्तिच नास्तिचावक्तव्यश्च ७. ऐसेही एकत्वनित्यत्वादिकोंमें भी सप्तभंगी जोड़ लेनी.

शंकरस्वामी:—यह पूर्वोक्त जैनीयोंका मानना ठीक नहीं है. क्योंकि, एक धर्ममें युगपत् अर्थात् समकालमें सत् असत् आदि विरुद्ध धर्मोंका समावेश नहीं हो सकता है, शीतउष्णकीतरें. और जो येह सात पदार्थ निश्चित करे हैं, येह इतनेही हैं, और ऐसेही स्वरूपवाले हैं, वे पदार्थ तथा अतथारूपकरके होने चाहिये. तब तो, अनिश्चयरूप ज्ञानके होनेसे संशयज्ञानवत् अप्रमाणरूप हुआ.

पूर्वपक्षी जैनी:—अनेकात्मक जो वस्तु है, सो निश्चितरूपही है; और उत्पद्यमानज्ञान, संशयज्ञानवत् अप्रमाणिक भी नहीं होसकता है.

उत्तरपक्षी शंकरस्वामी:—पूर्वोक्त कहना ठीक नहीं है. क्योंकि, निरंकुशही अनेकांतपणे सर्व वस्तु माननेसे जो निश्चय करना है, सो भी, वस्तुसे बाहिर न होनेसे स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति इत्यादि विकल्पोंके होनेसे अनिर्धारितरूपही होजावेगा. ऐसेही निर्धारण करनेवाला, और निर्धारण करनेका फल भी होजावेगा. पक्षमें अस्ति और पक्षमें नास्ति होजावेगी. जब ऐसे हुआ, तब, कैसे प्रमाणभूत वो तीर्थकर अनिर्धारित प्रमाण प्रमेय प्रमाता प्रमिति विषय उपदेशक होसकता है ? और कैसे तीर्थकरके अभिप्रायानुसारी पुरुष तिसके कहे अनिश्चितरूप अर्थमें प्रवर्तमान होवे ? क्योंकि, एकांतिक फलके निश्चित होनेसेही तिसके साधनोंके अनुष्ठानोंमें सर्व लोक अनाकुल प्रवर्तते हैं, अन्यथा नहीं. इसवास्ते अनिश्चितार्थ शास्त्रका कहना उन्मत्तके वचनकीतरें उपादेय नहीं है. तथा पंचास्ति-कायका संख्यारूप पंचत्व है, वा नहीं ? एकपक्षमें है, दूसरेमें नहीं; तब तो, संख्या भी हीन वा, अधिक हो जावेगी. तथा पूर्वोक्त पदार्थ अवक्त-व्य नहीं; जेकर अवक्तव्य होवे तब तो, कहने न चाहिये, परंतु कहते हैं.

तब अवक्तव्य कैसें हुए? और कहता था कि तिसही तरें अवधारते हैं, वा नही भी अवधारते हैं? तथा तिनके अवधारणका फल सम्यग्दर्शन, है, वा नही? ऐसेही उससे विपरीत असम्यग्दर्शन भी है, वा नही? ऐसे कहता हुआ मत्तोन्मत्तपक्षकीतरें होवेगा, परंतु प्रवृत्तियोग्य नही होवेगा. स्वर्गमोक्षपक्षमें भी भावपक्षमें अभाव, नित्यपक्षमें अनित्य, ऐसे अनवधारित वस्तुओंमें प्रवृत्ति नही हो सकती है. अनादिसिद्ध जीवादिपदार्थोंके निश्चितरूपोंको अनिश्चितरूपका प्रसंग है. ऐसे जीवादिपदार्थोंमें एकधर्मीमें सत्त्व असत्त्व विरुद्ध धर्मोंका संभव नही. क्योंकि, जेकर असत् है तो, सत् नही होवेंगे. इसवास्ते आर्हतमत ठीक नही. इस कहनेसे एक अनेक, नित्य अनित्य, व्यतिरिक्त अव्यतिरिक्तादि अनेकांतका खंडन जानना.

॥ इतिव्यासाभिप्रायानुसारिशंकरकृतसप्तभंगीखंडनम् ॥

अथ व्यासजी, और शंकरस्वामीके खंडनका खंडन लिखते हैं:-व्यासजी, और शंकरस्वामी, जैनमतके तत्त्वके जाननेवाले नही थे; नही तो, ऐसे अयौक्तिक असमंजस वचनोंसे सप्तभंगीअनेकांतवादका खंडन कदापि नही लिखते; इन्हींके पूर्वोक्त खंडनको देखके, सर्व विद्वान् जैनी, उपहास्य करते हैं, और करेंगे. क्योंकि, जिसतरें जैनी पदार्थोंका स्वरूप स्याद्वाद सप्तभंगीसे मानते हैं, उनके माननेमुजब जेकर खंडन करते, तब तो, जैनीयोंके मनमें भी चमत्कार उत्पन्न होता; परंतु व्यासजी, और शंकरस्वामीने तो, भैसकी जगे, भैसे (झोटे-पाडे)को दोह गेरा! इस खंडनसे तो, जैनीयोंका मत किंचित्मात्र भी खंडन नही होता है. क्योंकि, जिसतरें जैनी सप्तभंगीका स्वरूप मानते हैं, सो उपर लिख आये हैं उससे जानना.

अथ भव्य जीवोंके बोधवास्ते किंचित्मात्र, शंकरस्वामीकी उन्मत्तता, प्रकट करते हैं. शंकरस्वामी लिखते हैं कि, “जैनी जीवादि सात पदार्थ मानते हैं. तथा संक्षेपसे जीव, और अजीव, दो पदार्थ मानते हैं. और पूर्वोक्त सात पदार्थोंको जीवाजीवके अंतर्भूत मानते हैं. और पूर्वोक्त जीव अजीवकाही

प्रपंचरूप पंचास्तिकाय मानते हैं, इन पांचोंके अनेक भेद मानते हैं; और सर्व पदार्थोंमें सप्तभंगीका समवतार करते हैं. स्यादस्तिइत्यादि सप्तभंगी एकत्वनित्यत्वादिकोंमें भी जोड़लेनी. ” यहां तक तो शंकरस्वामीका कहना ठीक है. क्योंकि, जैनी भी इसीतरें मानते हैं. परंतु जो शंकर कहता है, कि एकधर्मीमें युगपत् सत् असत् आदिधर्मोंका समावेश नहीं हो सकता है, सो कहना महामिथ्यात्वके उदयसें झूठ है. क्योंकि, जैसे जैनी मानते हैं, तैसें तो सत्य है. यथा घट, अपने मृत्तिकाद्रव्यका १, क्षेत्रसें पाटलिपुत्रक क्षेत्रका २, कालसें वसंतऋतुका बना हुआ ३, और भावसें जलधारणजलहरणक्रियाका करनेवाला ४, इन अपने स्वचतुष्टयकी अपेक्षा, घट, ‘ अस्ति ’ और ‘ सत् रूप ’ है. और पटके द्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षा, घट, ‘ नास्ति ’ और ‘ असत् रूप ’ है. पटके स्वरूपकी नास्तिरूप घट है, और घटके स्वरूपकी नास्तिरूप पट है. सर्व पदार्थ अपने स्वरूपकरके अस्तिरूप है, और परस्वरूपकी अपेक्षा नास्तिरूप है. जेकर सर्व पदार्थ स्वपरस्वरूपकरके अस्तिरूप होवें, तब तो, सर्व जगत् एकरूप हो जावेगा. तब तो, विद्या, अविद्या, जड, चैतन्य, द्वैत, सत्, असत्, एक, अनेक, नित्य, अनित्य, समल, विमल, साध्य, साधन, प्रमाण, प्रमेय, प्रमुख सर्व पदार्थ एकरूप होजावेंगे. यह तो, महाप्रत्यक्षरूपविरोधकरके ग्रस्त है. क्योंकि, जब शंकरस्वामी ब्रह्मको ‘ सत् रूप ’ मानेगा, तब तो, ब्रह्मको पररूपकरके ‘ असत् ’ माननाही पड़ेगा. जेकर पररूपकरके ब्रह्मको असत् नहीं मानेंगे. तब तो पर जो अविद्या माया तिसके स्वरूपकी ब्रह्मको प्राप्ति हुई, तब तो ब्रह्महीके स्वरूपका नाश हो जावेगा. वाह रे शंकरस्वामी ! आपने तो अपनीही आंखमें कंकर मारा !!!

तथा शंकरस्वामी लिखते हैं, ‘ जो येह सातपदार्थ निश्चित करे हैं, ये इतनेही हैं, और ऐसे स्वरूपवाले हैं, वे पदार्थ तथा अतथारूपकरके होने चाहिये. तब तो, अनिश्चितरूप ज्ञानके होनेसें संशयज्ञानवत् अप्रमाणरूप हुए. ’

इसका उत्तर:-सातों पदार्थ स्वस्वरूपकरके तथा रूपवाले हैं, और परस्वरूपकरके अतथारूप हैं। जेकर ऐसे न माने, तब तो, ब्रह्म स्वस्वरूपकरके तथारूप है, सो परमायारूपकरके जेकर अतथारूप न माने, तब तो, ब्रह्म मायारूपकरके भी तथारूप सिद्ध हुआ; तब तो, वेदांतकी जड़ही सड़ गई। परंतु विचारे शंकरस्वामीको ऐसा स्वमतका नाश होना कहांसे दीख पड़े? अतत्त्ववित् होनेसे। इसवास्ते जैनीयोंका माननाही ठीक है। इसीवास्ते संशय ज्ञानकीतरें अप्रमाणिक ज्ञान भी, नहीं होता है।

पुनः शंकरस्वामी लिखते हैं, 'निरंकुश अनेकांतपणे सर्व वस्तुके माननेसे जो निश्चय करना है, सो भी वस्तुसे बाहिर न होनेसे अनिर्धारितरूपही होजावेगा। ऐसेही निर्धारण करनेवाला, और निर्धारण करनेका फल भी होजावेगा; पक्षमें अस्ति, और पक्षमें नास्ति होजावेगा। जब ऐसे हुआ तब कैसे प्रमाणभूत वो तीर्थकर अनिर्धारित प्रमाण प्रमेय प्रमाता प्रमितिविषय उपदेशक होसकता है? और कैसे तिस तीर्थकरके अभिप्रायानुसारि पुरुषके कहे अनिश्चितरूप अर्थमें प्रवर्तमान होवे? क्योंकि, ऐकांतिक फलके निश्चित होनेसे तिसके साधन अनुष्ठानोंमें सर्वलोक अनाकुल प्रवर्तते हैं, अन्यथा नहीं। इसवास्ते अनिश्चितार्थशास्त्रका कहना उन्मत्तके वचनकीतरें उपादेय नहीं।

इसका उत्तर:-हमने जो निश्चय किया है, सो, अनिर्धारितरूप नहीं है। क्योंकि, हमने (जैनीयोंने) जो वस्तु माना है, सो, स्वस्वरूपकरके सत् है, और परस्वरूपकरके असत् है; और यह जो हमने निश्चय किया है, सो निश्चय भी, अपने स्वरूपकरके निश्चित है, और परस्वरूपकरके नहीं है; तथा निर्धारण करनेवाला, और निर्धारणका फल भी, अपने स्वरूपपक्षमें अस्तिरूपही है, और परस्वरूपकरके नास्तिरूपही है। जैसे ब्रह्म, स्वस्वरूपकरके अस्तिरूप है, और परस्वरूपकरके नास्तिरूप है; जेकर ऐसा न माने, तब तो, ब्रह्मको स्वस्वरूप परस्वरूपदोनोंही करके अस्तिरूपही होनेसे, सत् असत् ज्ञान अज्ञानादि सर्व एकरूपही होजावेंगे, तब तो, ब्रह्मके स्वरूपकाही नाश होजावेगा। इसवास्ते ऊपर लिखेमूजब

माननेसें अर्हन् तीर्थंकर, यथार्थ वक्ता सिद्ध हुआ. उनके कथनमें पुरुषोंको निःशंक प्रवर्तना चाहिये. उनके साधन अनुष्ठानोंमें भी अनाकुल प्रवृत्ति सिद्ध होगई. इसवास्ते तीर्थंकरोंका कहनाही, सत्य और उपादेय है, नतु अन्योका, अयौक्तिक होनेसें.

पुनरपि शंकरस्वामी लिखते हैं, “पंचास्तिकायके संख्यारूप पंचत्व है वा नहीं ? इत्यादि समाप्तिपर्यंत.”

इसका उत्तर:—पचत्वसंख्या पंचत्वरूपकरके अस्तिरूप है, और अन्य संख्यायोंके स्वरूपकरके नास्तिरूप है; इसवास्ते संख्या, हीनाधिकरूपवाली नहीं है. तथा पूर्वोक्त सात पदार्थ एकांत अवक्तव्यरूप नहीं है, किंतु कथंचित् अवक्तव्यरूप है. युगपत् उच्चारणकी अपेक्षा अवक्तव्य है, परंतु क्रमकी अपेक्षा अवक्तव्य नहीं है. इसवास्ते पूर्वोक्त लिखना शंकरस्वामीकी बेसमझीसें है. तथा जो पदार्थ स्वचतुष्टय और परचतुष्टयकी अपेक्षा जैसा है, तिसको वैसाही अस्तिनास्तिरूपसें कथन करना, और मानना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है; और इससें विपरीत असम्यग्दर्शन है. सम्यग्दर्शन, अपने स्वरूपकरके अस्तिरूप है; मिथ्यारूपकरके नहीं. और असम्यग्दर्शन भी, अपने स्वरूपकरके अस्तिरूप है, परस्वरूपकरके नहीं. स्वर्ग मोक्ष भी, अपने २ स्वरूपकरके अस्तिरूप है, और नरकादिरूपकी अपेक्षा नास्तिरूप है. तथा नित्य जो है, सो द्रव्यकी अपेक्षा है; और अनित्य जो है, सो पर्यायरूपकी अपेक्षा है. इसवास्ते हमारे जैनमतमें अवधारितही वस्तु है, इसवास्ते प्रवृत्ति है. अनादिसिद्ध-जीवादिपदार्थ भी अपने २ स्वचतुष्टयकी अपेक्षा अस्तिरूप है, और परचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तिरूप है. इसवास्ते अनिश्रितरूपका प्रसंग नहीं है, ऐसैही एकधर्मीमें स्वरूप अपेक्षा सत्, पररूप अपेक्षा असत् धर्मोंका संभव है. स्वरूपकरके वस्तुमात्र सत् है, और पररूपकरके असत् है. इसवास्ते आर्हतमत ठीक सत्य है. इसकहनेकरके एक अनेक, नित्य अनित्य, व्यतिरिक्त अव्यतिरिक्तादि धर्मधर्मीमें द्रव्यपर्याय भेदाभेदनयमतसें सर्व सत्य है. परंतु शंकरस्वामीने जो कुछ जैनमतके खंडनवास्ते खंडन

लिखा है, तिससें जैनमत तो खंडन नहीं होता है, परंतु वेदांतमत खंडन होता है, सोही दिखाते हैं.

शंकरस्वामी कहते हैं, “ तुमने (जैनोने) जे सात पदार्थ माने हैं, वे अनेकांत माननेसें निश्चित अनिश्चित होजावेंगे. ”

इसका उत्तर:-तुमने वेदांतीयोंने जो ब्रह्म माना है, सो एकांतनिश्चित है, वा अनिश्चित है? जेकर एकांतनिश्चित है तो, जैसें सत्स्वरूपकरके निश्चित है, तैसें असत्स्वरूपकरके भी, निश्चित होना चाहिये; तिसको सर्वप्रकारसें निश्चित होनेसें. जेकर अनिश्चित है, तो जैसें असत्स्वरूपकरके अनिश्चित है, वैसेंही सत्स्वरूपकरके भी, अनिश्चित होना चाहिये; तिसको सर्वथाप्रकार अनिश्चित होनेसें. जब ऐसें हुआ, तब तो, ब्रह्मका नियतरूप न रहा, सत् असत्का संकर होनेसें. जेकर कहोगे सत्करके निश्चित है, और असत्करके अनिश्चित है, तब तो, तुमने अपनेही हाथसें अपने शिरमें प्रहार दीया, अनेकांतवादके सिद्ध होनेसें. तथा जैसें ब्रह्म सत्स्वरूपकरके निश्चित है, और असत्स्वरूपकरके अनिश्चित है, ऐसेंही सात पदार्थ, अपने स्वरूपकरके निश्चित है, और परस्वरूपकरके अनिश्चित है.

पुनः शंकरस्वामी कहते हैं, “ निरंकुश अनेकांतके माननेसें जो निश्चय करना है, सो भी, वस्तुसें बाहिर न होनेसें स्यात् अस्ति, नास्ति, होना चाहिये. इत्यादि.”

इसका उत्तर:-निश्चयस्वरूपकरके अस्ति है, संशय विपर्ययरूपकरके नास्ति है. जेकर एकांत अस्ति होवे, तब तो संशय विपर्ययरूपकरके भी, अस्ति होना चाहिये; जेकर एकांत नास्ति होवे, तब निश्चयरूपकरके भी नास्ति होना चाहिये; इससें सिद्ध हुआ कि, कोई भी वस्तु एकांत नहीं है. ऐसेंही निर्धारण करनेवाला, और निर्धारणके फलको भी, स्वपर-रूपकरके अस्तिनास्तिरूप जानना. जेकर स्वपररूपकरके अस्तिनास्तिरूप वस्तु न मानीये, तब वस्तुके नियतरूपके नाश होनेसें सर्व जगत् सर्वरूप होजावेगा. तब तो, ब्रह्मका भी, नियतरूप नहीं रहेगा. बाहरे ! शंकरस्वामी ! अच्छा अनेकांतका खंडन किया, अनेकांत तो खंडन नहीं हुआ, परंतु ब्रह्मके स्वरूपका नाश कर दिया !!! इतिशंकरकृतखंडनस्य खंडनम् ॥

ज्ञानं प्रदातुं प्रवणा ममातिशयालुनाना भवपातकानि ॥
 त्वं नेमुषां भारति पुंडरीकशयालुनाना भवपातकानि ॥ ५ ॥
 प्रौढप्रभावा समपुस्तकेन ध्यातासि येनांवि विराजीहस्ता ॥
 प्रौढप्रभावा समपुस्तकेन विद्यासुधापूरमदूरदुःखाः ॥ ६ ॥
 तुभ्यं प्रणामः क्रियते मयेन मरालयेन प्रमदेन गातः ॥
 कीर्तिप्रतापौ शुवि तस्य नम्रमरालयेन प्रमदेन वातः ॥ ७ ॥
 रुच्यारविंदभ्रमदं करोति वेलं यदीयोऽर्चति तेंऽहियुग्मं ॥
 रुच्यारविंदभ्रमदं करोति स स्वस्य गोष्ठीं विदुषां प्रविश्य ॥ ८ ॥
 पादप्रसादात्तव रूपसंपत् लेखाभिरामोदितमानवेशः ॥
 अवेकरः सूक्तिभिरंब चित्रोल्लेखाभिरामोदितमानवेश ॥ ९ ॥
 सितांशुकांति नयनाभिरामां मूर्तिं समाराध्य भवेन् मनुष्यः ।
 सितांशुकांति नयनाभिरामांधकारसूर्यं क्षितिपावतंसः ॥ १० ॥
 येन स्थितं त्वामनु सर्वतीर्थैः सभाजितामानतमस्तकेन ॥
 दुर्वादिनां निर्दलितं नरेन्द्र-सभाजितामानतमस्तकेन ॥ ११ ॥
 सर्वज्ञवक्रवरतामरसांकलीना मालींघ्रती प्रथमंथरया दशैव ॥
 सर्वज्ञवक्रवरतामसमंकलीना प्राणाक्षि विश्रुतयशाः श्रुतदेवता नः ॥ १२ ॥
 कृत्स्नुतिनिविडभक्तिजडपृक्तैर्गुणैर्गिरामितिगिरामधिदेवता सा ॥
 ज्वालोल्लुंकप्य इतिरोपयतु प्रसादस्मेरां दृशं मयि जिनप्रभसूरिवर्ण्यो ॥ १३ ॥
 त्पारपल्ली आशत्रिक (आशती) उत्तरपल्ली. अने पल्ली नीचे प्रभाळु गीतभाष्टक व्याखी दाने हेतुः
 श्रीइंद्रभूतिं वसुभूतिपुत्रं । पृथ्वीभवं गौतमगोत्ररत्नं ॥
 स्तुवंति देवासुरमानवेन्द्रा । स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥ १ ॥
 श्री वज्रमानात् त्रिपदामवाप्य । मुहुर्त्तमात्रेण कृतानि येन ॥
 अंगानि पूर्वाणि चतुर्दशापि । स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥ २ ॥
 श्रीवीरनाथेन पुरा प्रणीतं । मंत्रं महानंदसुखाय यस्य ॥
 ध्यायंत्यमी सूरिवराः समग्राः । स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥ ३ ॥
 यस्याभिधानं मुनयोऽपि सर्वे । गृह्णन्ति भिक्षा भ्रमणस्य काले ॥
 मिष्टान्नपानांबरपूर्णकामाः । स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥ ४ ॥
 अष्टापदादौ गगने स्वशक्त्या । ययौ जिनानां पदवंदनाय ॥
 निशम्य तिर्थातिशयं सुरेभ्यः । स गौतमो यच्छतु वाञ्छितं मे ॥ ५ ॥

ત્રિપંચસંખ્યાશતતાપસાનાં । તપઃકૃશાનામપુનર્ભવાય ॥
 અક્ષીણલઘ્યા પરમાન્નદાતા ॥ સ ગૌતમો યચ્છતુ વાંછિતં મે ॥ ૬ ॥
 સૈંદલિણં મોજનમેવ દેયં । સાર્થમિકં સંઘસપર્થયેતિ ॥
 કેવલ્યવસ્ત્રં પ્રદદૌ મુનીનાં । સ ગૌતમો યચ્છતુ વાંછિતં મે ॥ ૭ ॥
 શિવં ગતે ભર્તરિ વીરનાથે । યુગપ્રધાનત્વમિહૈવ મત્વા ॥
 મદ્દામિષેકો વિદ્યે સુરેદૈઃ । સ ગૌતમો યચ્છતુ વાંછિતં મે ॥ ૮ ॥
 ત્રૈલોક્યવીજં પરમેષ્ઠીવીજં । સજ્ઞાનવીજં જિનરાજવીજં ।
 યથામ ચોક્તં વિદધાતિ સિદ્ધિં । સ ગૌતમો યચ્છતુ વાંછિતં મે ॥ ૯ ॥
 શ્રી ગોતમસ્યાષ્ટકમાદરેણ । પ્રબોધકાલે મુનિપુંગવા યે ॥
 પઠંતિ તે સૂરિપદૈ સદૈવાનંદં લભંતે સુતરાં ક્રમેણ ॥ ૧૦ ॥
॥ ઇતિ શ્રી ગૌતમાષ્ટકં સંપૂર્ણમ્ ॥



*અથવા નીચે પ્રમાણે કહેવું;—

અથ દીવાળી યુગ્મન

અંકુદે અમૃત વસે, લલિત તણા બંધાર; તે ગુર ગૌતમ સમરીએ, વંછીત ફળ દાતાર. ૧
 પ્રભુ વચને ત્રી પદી લહી, સુત રથે તેણીવાર; ચઉદે પુરવમાં રથે, લોકલોક વિચાર. ૨
 ભગવતી સુતે કર નમી, બંબી લીપી જયકાર; લોક લોકોત્તર સુખ બણી, બાપો લીપી અદાર. ૩
 વીર પ્રભુ સુખીયા થયા, દીવાળી દીન સાર; અંતર મહુરત તતક્ષીણે, સુખીઓ મહુ સંસાર. ૪
 કેવળજ્ઞાન લહે તદા, શ્રી ગૌતમ ગણધાર; સુતનર હરખ ધરી પ્રભુ, કર અબીષેક ઉદાર. ૫
 સુતનર પરપદા આગળે, બાપે શ્રીસુત જાણુ; નાણુ થકી જગ જાણીએ, દ્રવ્યાદિક ચાકાણુ. ૬
 તે શ્રુત જ્ઞાનને પૂજીએ, દીપ દુપ મનોહાર, વીર આગમ અવીચળ રહે, વરસ અકવીશહાર ૭

ટપાલખાતાને લગતી જાણવાબજ અમરો.

—હિંદુસ્થાન, અરમા-સિલોન—

હિંદુસ્થાનના કાગળો, પોસ્ટકાર્ડ, રજીસ્ટર્ડ કાગળો, સંમ્પલ પોસ્ટ બેગી, પોસ્ટ અથવા વ
 ત્તમાન પત્રો: હિંદુસ્થાનના રાષ્ટ્રીય વગેરેના દર નીચે પ્રમાણે.

આ. પા.

આ. પા.

પોસ્ટકાર્ડ.....	૦-૩	રજીસ્ટર્ડ વર્તમાન પત્રો ૬ છ	
પોસ્ટકાર્ડ રિસાઇલ સાથે.....	૦-૬	તોલા સુધી.....	૦-૩
કાગળ એક તોલા વજનનું.....	૦-૬	રજીસ્ટર્ડ વર્તમાન પત્રો દર ૨૦ તોલા	
કાગળ દસ તોલા આ તેની અંદર ૧-૦		સુધી.....	૧૦-૬
કાગળ ૧૦ તોલાથી ઉપર અથવા		રજીસ્ટર્ડ કાગળની ફી.....	૨-૦
તેના કાઠ અથવા આટો વધુ... ૧-૦		પારસલ અથવા બેગી પોસ્ટ દર ૨૦	
સંમ્પલ પોસ્ટ દર ૧૦ તોલા પર ૦-૬		તોલાપર..	૨-૦
હિંદુસ્થાન તથા વર્તમાન પત્રોપર દર		પારસલ દર ૨૦ તોલાથી ૪૦ તોલા સુધીનાર-૦	
૧૦ તોલા સુધી.....	૦-૬	અ તે ઉપર રાત દર ૪૦ તોલા... ૨-૦	
જો પારસલ ૪૪૦ તોલાથી વધારે વજનમાં હોય તે રજીસ્ટર્ડ કરાવવા પડશે. રજીસ્ટર્ડ			
કરેલાં પારસલ માટે આગળથી લવાજમ નહીં લેવામાં આવે તો આલશે.			

अथ प्रसंगसें व्याससूत्रके ३४ मे सूत्रके भाष्यका खंडन लिखते हैं ॥
तथाहि सूत्रम् ॥ “ ॥ एवञ्चात्माऽकात्स्न्यम् ॥ ३४ ॥ ”

शंकरभाष्यकी भाषा:—जैसें एकधर्मविषे, विरुद्धधर्मका असंभवरूप दोष, स्याद्वादमें प्राप्त है, ऐसें आत्माको भी अर्थात् जीवको असर्वव्यापी मानना, यह अपर दोषका प्रसंग है. कैसें? शरीरपरिमाणही जीव है, ऐसें आर्हतमतके माननेवाले मानते हैं. और शरीरपरिमाण आत्माके हुए, आत्मा, अकृत्स्न असर्वगत है; जब मध्यमपरिमाणवाला आत्मा हुआ, तब घटादिवत्, अनित्यता आत्माको प्राप्त होवेगी; और शरीरोंको अनवस्थित-परिमाणवाले होनेसें मनुष्यजीव मनुष्यशरीरपरिमाण होके फिर किसी कर्मविपाक करके हाथीका जन्म प्राप्त हुए, संपूर्णहस्तिके शरीरमें व्याप्त नहीं होवेगा; और सूक्ष्म मक्खीका जन्म प्राप्त हुए संपूर्ण सूक्ष्म मक्खीके शरीरमें मावेगा नहीं. जेकर समानही यह जीव है, तब तो एकही जन्मविषे कुमारयौवनवृद्धअवस्थाओंविषे दोष होवेगा; शरीरकी सर्व अवस्थाओंमें शरीर व्यापक नहीं होवेगा, यह दोष होवेगा. जेकर कहोगे अनंत अवयव जीवके हैं, तिसके बेही अवयव अल्पशरीरमें संकुचित होजाते हैं, और महान् शरीरमें विकाश होजाते हैं.

उत्तर:—उन अनंतजीवअवयवोंका समानदेशत्व प्रतिहन्यत है, वा नहीं? जेकर प्रतिघात है, तब तो परिच्छिन्नदेशमें अनंतअवयव नहीं मावेंगे; जेकर अप्रतिघात है, तब तो अप्रतिघातके हुए एकअवयवदेशत्वकी उपपत्तिसें, सर्वअवयव विस्तारवाले न होनेसें, जीवको अणु-मात्रका प्रसंग होवेगा. अपिच शरीरपरिच्छिन्न जीवके अनंत अवयवोंकी अनंतता भी, नहीं होसकती है. इति ॥ ३४ ॥

इस पूर्वोक्त व्याससूत्रकी भाष्यका उत्तर लिखते हैं. ॥

तथाहि सूत्रम् ॥

“ ॥ चैतन्यस्वरूपः परिणामी कर्त्ता साक्षाद्भोक्ता स्वदेहपरिमाणः
प्रतिक्षेत्रं भिन्नः पौद्गलिकादृष्टवांश्चायमितिः ॥ ”

श्रीवादिदेवसूरिकृत प्रमाणनयतत्त्वालौकालकारं ॥

इस सूत्रके 'स्वदेहपरिमाणः' इस पदकी और 'प्रतिक्षेत्रं भिन्नः' इस पदकी टीकाकी भाषामें व्याख्या लिखते हैं। स्वदेहपरिमाण, इसकरके, आत्माका नैयायिकादि परिकल्पित सर्वगतपणा, निषेध करते हैं। आत्माको सर्वगत मानिये, तब तो, जीवतत्त्वके प्रभेद, जे प्रत्यक्ष दिखलाइ देते हैं, उनकी प्रसिद्धि न होनेका प्रसंग आवेगा; सर्वगत एकही आत्माविषे नानात्मकार्योंकी समाप्ति होनेसें. एककालमें नाना मनोका संयोग जो है, सो नानात्मकार्य है. सो नानात्मकार्य एक आत्मामें भी होसकता है. आकाशमें नानाघटादिसंयोगवत्. इसकरके युगपत्, नानाशरीर इंद्रियोंका संयोग कथन किया.

पूर्वपक्षः—युगपत् नानाशरीरोंविषे, आत्मसमवायिसुखदुःखादिकोंकी उपपत्ति नही होवेगी, विरोध होनेसें.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहना ठीक नही है. क्योंकि, युगपत् नाना भेरीआदिकोंविषे, आकाशसमवायि विततादिशब्दोंकी अनुपपत्ति होनेके प्रसंगसें; पूर्वोक्त विरोधको अविशेष होनेसें.

पूर्वपक्षः—तथाविध शब्दोंके कारणभेद होनेसें, विततादि नानाशब्दोंकी अनुपपत्ति नही है.

उत्तरपक्षः—सुखादिकारणभेदसें, उस सुखादिकी अनुपपत्ति भी, एक आत्माविषे न होनी चाहिये, विशेषके अभाव होनेसें.

पूर्वपक्षः—विरुद्धधर्मके अध्याससें, आत्माका नानात्व है.

उत्तरपक्षः—तिस विरुद्धधर्मके अध्याससेंही, आकाशका भी नानात्व होवे.

पूर्वपक्षः—उपचारसें आकाशके प्रदेशोंका भेद माननेसें पूर्वोक्त दोष नही है.

उत्तरपक्षः—प्रदेशभेद उपचारसेंही, आत्माविषे भी, दोष नही है. और जन्ममरणादि प्रतिनियम भी सर्वगत आत्मवादीयोंके मतमें आत्मबहुत्वको नही साधेगा; एक आत्मामें भी, जन्ममरणादिकी उपपत्ति होनेसें. घटाकाशादिके उत्पत्ति विनाशादिवत्. नही घटाकाशकी

उत्पत्तिके हुए, पटादि आकाशकी उत्पत्तिही है, तिस समयमें विनाशके भी देखनेसें. और ऐसा भी नहीं है कि, विनाशके हुए, विनाशही है, उत्पत्तिका भी तिस समयमें उपलंभ होनेसें. और स्थितिके हुए, स्थितिही है, ऐसा भी नहीं है, विनाश, उत्पाद, दोनोंको भी तिस कालमें देखनेसें.

पूर्वपक्षः—बंधके हुए मोक्ष नहीं, और मोक्षके हुए बंध नहीं होवेगा, एक आत्मामें बंध मोक्ष दोनोंका विरोध होनेसें.

उत्तरपक्षः—ऐसा मानना ठीक नहीं है. क्योंकि, आकाशमें भी एक घटके संबंध हुए, घटांतरके मोक्षके अभावका प्रसंग होनेसें. और एक घटके विश्लेष हुए, घटांतरके विश्लेषका प्रसंग होनेसें.

पूर्वपक्षः—प्रदेशभेदउपचारसें, पूर्वोक्त प्रसंग नहीं है.

उत्तरपक्षः—तब तो आत्मामें भी तिसका प्रसंग नहीं है. आकाशके प्रदेशभेद माने हुए, एक जीवका भी प्रदेशभेद होवो; ऐसें कहांसें जीव-तत्त्व प्रदेशभेद व्यवस्था, जिससें आत्मा व्यापक होवे ?

पूर्वपक्षः—आत्माके व्यापकत्वके अभाव हुए, दिग्देशांतरवर्त्ति परमाणु-ओंके साथ युगपत्संयोगके अभावसें, आद्यकर्मका अभाव है; तिसके अभावसें अंत्यसंयोगका अभाव है, तिस निमित्तक शरीरका अभाव और तिसकरके उसके संबंधका अभाव है. तब तो विनाही उपायके सिद्ध हुआ, सर्वदा सर्व जीवोको मोक्ष होवे. अथवा होवे जैसें तैसें करी शरीरकी उत्पत्ति, तो भी, सावयव शरीरके प्रतिअवयवमें प्रवेश करता हुआ आत्मा, सावयव होवेगा; तैसें हुए इस आत्माको पटादिवत् कार्य-त्वका प्रसंग है. और कार्यत्वके हुए, इस आत्माके विजातिकारण आरंभ-क है, वा सजातिकारण आरंभक है ? पूर्वपक्ष तो नहीं. क्योंकि, विजा-तियोंको अनारंभक होनेसें. दूसरा पक्ष भी नहीं. जिसवास्ते सजातिपणा, उनको आत्मत्वअभिसंबंधसेंही होवे हैं, तैसें हुए एक आत्माके अनेक आत्मा, आरंभक ऐसें सिद्ध हुआ, यह तो, अयुक्त है. क्योंकि, एक शरी-रमें आत्माके आरंभक, अनेक आत्माका असंभव होनेसें. और संभवके हुए भी स्मरणकी अनुपपत्ति है. क्योंकि, नहीं अन्यने देखा हुआ,

अन्य स्मरण करनेको समर्थ होता है, अतिप्रसंग होनेसें. तिसकरके आर-भ्यत्वके हुए, इस आत्माका, घटवत्, अवयवक्रियासें विभाग होनेसें संयोगविनाशसें विनाश होवेगा. और शरीरपरिमाणत्व आत्माके हुए, आत्माको मूर्त्तत्वकी प्राप्ति होनेसें आत्माका शरीरमें प्रवेश नहीं होवेगा, मूर्त्तमें मूर्त्तके प्रवेशका विरोध होनेसें. तब तो, निरात्मकही, संपूर्ण शरीर, होवेगा. अथवा आत्माको शरीरपरिमाणत्वके हुए, बालशरीर-परिमाणवाले आत्माको, युवशरीरपरिमाण अंगीकार कैसें होवे? बाल-परिमाणको त्यागके, वा न त्यागके? जेकर त्यागके, तब तो, शरीरवत्, आत्माको अनित्यत्वका प्रसंग होनेसें, परलोकादिकके अभावका प्रसंग होवेगा. जेकर विनाही त्यागनेसें, तब तो, पूर्वपरिमाणके न त्यागनेसें, शरीरवत्, आत्माको उत्तरपरिमाणकी उपपत्ति नहीं होवेगी. तथा हे जैन! तू आत्माको शरीरपरिमाण कहता है, तब तो, शरीरके खंडन करनेसें, तिस आत्माका खंडन, क्यों नहीं होता है? सो कहो.

उत्तरपक्ष:—हे वादिन्! जो तूने कहा कि, आत्माके सर्वव्यापीके अभावसं इत्यादि—सो असत्य है. क्योंकि, जो जिसकरके संयुक्त है, सोही तिसप्रति उपसर्पण करता है, ऐसा नियम नहीं है. चमकपाषाणकरके, लोहा संयुक्त नहीं भी है, तो भी तिसके आकर्षण करनेकी उपलब्धिसें.

पूर्वपक्ष:—जेकर असंयुक्तका भी आकर्षण होवे, तब तो, तिसके शरीरारंभप्रति, एकमुखी हुए, त्रिभुवन उदरविवरवर्त्ति परमाणुओंका उपसर्पण प्रसंग होनेसें, न जाने कितने परिमाणवाला तिसका शरीर होवेगा?

उत्तरपक्ष:—संयुक्तके भी, आकर्षणमें यही दोष, क्यों नहीं होवेगा? आत्माको व्यापक होनेकरके, सकलपरमाणुओंका तिस आत्माके मग्न संयोग होनेसें.

पूर्वपक्ष:—संयोगके अविशेषसें, अदृष्टके वशसें विवक्षितशरीरके उत्पादन करनेमें, योग्य नियतही परमाणु, उपसर्पण करते हैं.

उत्तरपक्ष:—तब तो हमारे पक्षमें भी तुल्य है. और जो कहा कि, सावयवशरीरके, प्रतिअवयवमें, प्रवेश करता आत्मा इत्यादि. सो भी,

कथनमात्रही है. क्योंकि, सावयवपणा, और कार्यपणा, कथंचित् आत्मा-विषे हम मानतेही हैं. परंतु ऐसे माननेसें, घटादिवत्, पहिले प्रसिद्ध समानजातीयअवयवोंकरके आरभ्यत्वकी प्रसक्ति नहीं है. क्योंकि, नहीं निश्चयसें, घटादिकोंविषे भी, कार्यसें प्रथम प्रसिद्ध समानजातीय कपालसंयोगकरके आरभ्यत्व देखा है. कुंभकारादि व्यापारसंयुक्त माटीके पिंडसें, प्रथमही, घटके पृथुबुधोदरादि आकारकी उत्पत्ति प्रतीत होनेसें. द्रव्यकाही, पूर्वाकार परित्यागनेसें, उत्तराकार परिणाम होना, सोही, कार्यत्व है. सो कार्यत्व, बाहिरकीतरें अभ्यंतर भी अनुभूतही है. और पटादिकोंविषे स्वअवयवसंयोगपूर्वक कार्यत्वके देखनेसें सर्वजगे तैसें होना चाहिये, यह युक्त नहीं है. क्योंकि, नहीं तो, काष्ठविषे लोहलेख्यत्वके उपलंभ होनेसें, वज्रमें भी लोहलेख्यत्वका प्रसंग होवेगा. और प्रमाणबाधन तो दोनोंजगे तुल्य है. और उक्तलक्षणकार्यत्व अंगीकार करें भी, आत्माको, अनित्यत्वके प्रसंगसें, प्रतिसंधान (स्मरण)के अभावकी प्राप्ति नहीं होती है. क्योंकि, कथंचित् अनित्यत्वके हुएही, इस संधानको, उपपद्यमान होनेसें. और जो यह कहा कि, शरीरपरिमाण आत्माके हुए, आत्माको मूर्त्तत्वकी प्राप्ति होवेगी इत्यादि—तहां मूर्त्तत्व किसको कहते हो ? असर्वगतद्रव्यपरिमाणको, वा रूपादिमत्त्वको ? तिनमें आद्य पक्ष तो, दोषपोषकेतांइ नहीं है, संमत होनेसें. और दूसरा पक्ष तो, अयुक्त है, व्याप्तिके अभावसें. क्योंकि, जो असर्वगत है, सो नियमकरके रूपादिमत् है, ऐसा अविनाभाव नहीं है. क्योंकि, मनको असर्वगत होनेसें भी, रूपादिमत्त्वके अभावसें. इसवास्ते आत्माकी, शरीरविषे अनुप्रवेशकी अनुपपत्ति नहीं है, जिसवास्ते शरीर निरात्मक होजावे. असर्वगत द्रव्यपरिमाणलक्षणमूर्त्तत्वको, मनोवत् प्रवेशका अप्रतिबंधक होनेसें, रूपादिमत्त्वलक्षण मूर्त्तत्वसहित जलादिकोंका भी, भस्मादिविषे अनुप्रवेश नहीं निषेधीये हैं, और मूर्त्तत्वसें रहित भी आत्माका प्रवेश शरीरमें प्रतिषेध करते हो तो, इससें अधिक और कौनसा आश्चर्य है ?

और जो यह कहा कि, देहपरिमाणत्वके हुए, आत्माको बालशरीर-परिमाण त्यागके, इत्यादि—सो भी, अयुक्त है. क्योंकि, युवशरीरपरिमाण-अवस्थाके विषे, आत्माको बालशरीरपरिमाणके परित्यागे हुए, आत्माका सर्वथा विनाशके असंभव होनेसे; विफण अवस्थाके उत्पाद हुए सर्पवत्. तब तो, कैसे परलोकके अभावका अनुषंग होवे? पर्यायसे आत्माके अनित्यत्वके हुए भी, द्रव्यसे नित्यत्व होनेसे. । और जो यह कहा कि, यदि आत्माको शरीरपरिमाणता है, तब तो शरीरके खंडन करनेसे इत्यादि—सो भी, ठीक नहीं है. क्योंकि, शरीरके खंडनेसे कथंचित् आत्माका खंडन भी इष्ट होनेसे. शरीरसंबद्ध आत्मप्रदेशोंसेही, कितनेक आत्मप्रदेशोंका खंडितशरीरप्रदेशविषे अवस्थान है, सोही, आत्माका किसी प्रकारसे खंडन है; नतु सर्व प्रकारसे. सो यहां विद्यमानही है. अन्यथा तो, शरीरसे पृथग्भूत अवयवके कंपनकी उपलाब्धि नहीं होवेगी. और यह भी नहीं है कि, खंडित अवयव प्रविष्टआत्मप्रदेशको पृथग् आत्मतत्वका प्रसंग है; उन आत्मप्रदेशोंका खंडित अवयवसे निकलके पुनः तिसही शरीरमें प्रवेश होनेसे. और यह भी नहीं है कि, एकत्र संतानविषे अनेकआत्माका प्रसंग होवेगा. क्योंकि, अनेकार्थप्रतिभासि ज्ञानोंका एक प्रमाताके आधारकरके प्रतिभासके अभावका प्रसंग होनेसे, शरीरांतर रहे हुए, अनेक ज्ञानावसेय अर्थ संवित्तिवत्.

पूर्वपक्षः—किसतरें खंडिताखंडित अवयवोंका पीछेसे फिर संघटन होवे है?

उत्तरपक्षः—एकांत सर्वथाछेदके अनंगीकारसे, पद्मनालतंतुवत्, कथंचित् अछेदके भी स्वीकारसे. और तथाविध अदृष्टके वशसे उनका संघटन भी फिर अविरोद्धही है. इसवास्ते शरीरपरिमाणही आत्मा अंगीकार करनेयोग्य है, नतु सर्वव्यापक. प्रयोग ऐसे है. आत्मा व्यापक नहीं है, चेतनत्व होनेसे, जो सर्वव्यापक है, सो चेतन नहीं है, जैसे आकाश, और आत्मा चेतन है, तिसवास्ते व्यापक नहीं. आत्माके अव्यक्त

पक्त्वका होना, आत्माके गुणोंका शरीरमेंही उपलभ्यमान होनेसे सिद्ध हुआ, आत्माका शरीरपरिमाणवणा.*

तथा शंकरभाष्यमें और टीकामें जो लिखा है कि, देहपरिमाण परिच्छिन्न आत्माके माने, आत्मा अनित्य सिद्ध होता है,

तथाचानुमानं—“॥देहपरिमाणपरिच्छिन्न आत्मा अनित्यः
मध्यमपरिमाणवत्त्वात् घटवत् ॥”

देहपरिमाणपरिच्छिन्न आत्मा अनित्य है, मध्यमपरिमाणवाला होनेसे, घटकीतरें. और जो नित्य है, सो, मध्यमपरिमाणवाला भी नहीं; यथा आकाश, वा अणुपरिमाणवाला परमाणु. इसवास्ते आत्मा, देहपरिमाणव्यापक नहीं, किंतु सर्वव्यापक है. इत्यादि—यह पूर्वोक्त कहना ठीक नहीं है. क्योंकि, पूर्वोक्त अनुमान तो, नैयायिकोंका है, परंतु वेदांतियोंका नहीं है. वेदांतियोंके मतमें तो, ऐसे अनुमानका उत्थानही नहीं होता है. क्योंकि, वेदांतियोंने सर्वसे अणुप्रमाणवाले परमाणु, और सर्वसे महाप्रमाणवाला आकाश, यह दोनों मानेही नहीं है, द्वैतापत्ति होनेसे. तो फिर पूर्वोक्त अनुमान, उनके मतमें कैसे संभवे? अपितु नहीं संभवे. जब कल्पितवस्तु अनुमानका विषयही नहीं है, तो फिर, ऐसा अनुमान, वेदांती आत्माकी अनित्यता सिद्ध करनेवास्ते कैसे कह सकते हैं? इसवास्ते व्यासजी, और शंकरस्वामीका जो कथन है, सो स्वमतविरुद्ध, और प्रमाणयुक्तिसें बाधित है. तथा पूर्वोक्त अनुमान भी, व्यभिचारि है.

यथा ॥

“॥ वल्मीकं कुंभकारकर्तृजन्यं मृद्विकारत्वात् घटवत् ॥”

जैसे यह अनुमान व्यभिचारि है, जो जो मृद्विकार है, सो सर्व कुंभकारकर्तृजन्य, न होनेसे. ऐसेही ‘मध्यमपरिमाणवत्त्वात्’ यह भी हेतु असिद्ध है. क्योंकि, मध्यमपरिमाणवाले चंद्रसूर्यादि, कथंचित् नित्य है; और ‘मध्यमपरिमाणवत्त्वात्’ यह हेतु, प्रतिवादिजैनोंके मतमें सम्मत

* तैत्तिरीय आरण्यकके दशमे प्रपाठकके अडतीसमे अनुवाकमें भी, ‘आपादमस्तकव्यापी’ पैरसें लेके मस्तकपर्यंत व्यापी जीव लिखा है.

नहीं है. और तो हेतु, वादीप्रतिवादी दोनोंको सम्मत होना चाहिये, सो तो, हैही नहीं. इसवास्ते व्यासजी और शंकरस्वामीका कहना, असमंजस है.

और जो शंकरस्वामी लिखते हैं कि, शरीरोंको अनवस्थितपरिमाणवाले इत्यादि.

तिसका उत्तर:—जीवमें संकोच विकाश होनेकी शक्ति है; कर्मोदयसे जब जीव, स्थूलशरीरको छोडके सूक्ष्मशरीरको धारण करता है, तब जीवके असंख्य प्रदेश संकुचित होके सूक्ष्मशरीरमें समा जाते हैं; जैसे एक कोठेमेंसे प्रकाशक दीपकको लेके एक प्यालेके नीचे रख दिया जावे तो, उस दीपकका प्रकाश उस प्यालेमेंही प्रकाश करेगा; ऐसेही सूक्ष्मशरीर छोडके महान् शरीरमें जान लेना. और जो शंकरस्वामीने लिखा है, जीवके अनंत अवयव, सो लेख, मिथ्या है. अनंत अवयव नहीं, किंतु, असंख्य प्रदेश हैं. प्रदेश उसको कहते हैं, जो, आत्माका निरंश अंश होवे; और आत्माके, वे सर्वप्रदेश एकसरीखे हैं; इसवास्ते आत्माकाही संकोच विकाश होता है, प्रदेशोंका नहीं. जैसे वस्त्रकी तह लगानेसे वस्त्रकाही संकोच है, परंतु तिसके तंतुयोंमें न्युनाधिक्यता नहीं है. इसवास्ते आत्माही, संकोच विकाश धर्मके होनेसे सुक्ष्मसे स्थूल, और स्थूलसे सूक्ष्मशरीरमें व्यापक होता है. इसवास्ते शंकरस्वामीकी कल्पनामें शंकरस्वामीकी जैनमतकी अनभिज्ञताही, कारण है. इति।

अथ प्रसंगमें ‘प्रतिक्षेत्रं भिन्नः’ सूत्रके इस अवयवरूप विशेषणकरके आत्मअद्वैतवाद खंडन किया, सो ऐसे है.

वेदांती कहते हैं कि, हम तो एकही परमब्रह्म पारमार्थिक सद्रूप मानते हैं.

उत्तरपक्ष:—जेकर एकही परमब्रह्म सद्रूप है, तो फिर, यह जो सरल रसाल प्रियाल हंताल ताल तमाल प्रवाल प्रमुख पदार्थ अग्रगामिपणेकरके प्रतीत होते हैं, वे, क्योंकर सत्स्वरूप नहीं हैं?

पूर्वपक्ष:—येह पूर्वोक्त जे पदार्थ प्रतीत होते हैं, वे सर्व मिथ्या है. तथाचानुमानं—‘प्रपंचो मिथ्या’ प्रपंच मिथ्या है, प्रतीयमान होनेसे, जो ऐसा है, सो ऐसा है, यथा सीपके टुकडेमें, चांदी. तैसाही यह प्रपंच है,

तिसवास्ते मिथ्या है. इस अनुमानसें प्रपंचमिथ्यारूप है, और एक ब्रह्म-ही, पारमार्थिक सद्रूप है.

उत्तरपक्षः—हे पूर्वपक्षिन् ! इस अनुमानके कहनेसें तुमारा तर्कवितर्क-कार्कश्यसूचन नहीं होता है । तथाहि । यह जो प्रपंच तुमने मिथ्यारूप माना है, सो मिथ्या, तीन तरेंका होता है. अत्यंत असद्रूप (१) है तो, कुच्छ और और प्रतीत होवे और तरें (२) और तीसरा अनिर्वाच्य (३) इन तीनोंमेंसें कौनसा मिथ्यारूप प्रपंचको माना है ?

पूर्वपक्षः—इन पूर्वोक्त तीनों पक्षोंमेंसें प्रथमके दो पक्ष तो हमको स्वी-कारही नहीं है, इसवास्ते हम तो तीसरा अनिर्वाच्य पक्ष मानते हैं, सो यह प्रपंच अनिर्वाच्य मिथ्यारूप है.

उत्तरपक्षः—प्रथम तो तुम यह कहो कि, अनिर्वाच्य क्या वस्तु है ? एतावता तुम अनिर्वाच्य किसको कहते हो ? क्या वस्तुका कहनेवाला शब्द नहीं है ? वा शब्दका निमित्त नहीं है ? वा निःस्वभावत्व है ? प्रथम विकल्प तो कल्पनाकरनेयोग्यही नहीं है. क्योंकि, यह सरल है, यह रसाल है, ऐसा शब्द तो प्रत्यक्ष सिद्ध है. अथ दूसरा पक्ष है तो, शब्दका निमित्तज्ञान नहीं है ? वा पदार्थ नहीं है ? प्रथम पक्ष तो समीचीन नहीं है, सरल रसाल ताल तमाल प्रमुखका ज्ञान प्राणीप्राणी प्रति प्रतीत होनेसें, देखनेवाले सर्व जीव जानते हैं; जो सरल रसाल ताल तमाल प्रमुखका ज्ञान हमको है. अथ दूसरा पक्ष तो, पदार्थ, भावरूप नहीं है ? वा अभावरूप नहीं है ? प्रथम कल्पनामें तो, असत्ख्याति अभ्युप-गमप्रसंग है, अर्थात् जेकर कहोगे पदार्थ भावरूप नहीं है, और प्रतीत होता है तो, तुमको असत्ख्याति माननी पड़ी; और अद्वैतवादीयोंके म-तमें असत्ख्याति माननी महादूषण है. अथ दूसरा पक्ष, जो पदार्थ, अभावरूप नहीं तो भावरूप सिद्ध हुआ. तब तो, सत्ख्याति माननी पड़ी. और जब अद्वैतवादमत अंगीकार कीया, और सत्ख्याति माननी पड़ी, तब तो सत्ख्यातिके माननेसें अद्वैतमतकी जड़को कूहाड़ेसें काटा. कदापि अद्वैतमत नहीं सिद्ध होगा.

पूर्वपक्षः—भावरूप, तथा अभावरूप, येह दोनोंही प्रकारें वस्तु नहीं.

उत्तरपक्षः—हम तुमको पूछते हैं कि, भाव, और अभाव, इन दोनों-का अर्थ, जो लौकिकमें प्रसिद्ध है, वोही, तुमने माना है ? वा इससे विपरीत और तरेंका माना है ? जेकर प्रथम पक्ष मानोगे तो, जहां भाव-का निषेध करोगे, तहां अवश्यमेव अभाव कहना पड़ेगा; और जहां अभावका निषेध करोगे तहां अवश्यमेव भाव कहना पड़ेगा. जो परस्पर विरोधी है, उनमें एकका निषेध करोगे तो, दूसरेका विधि, अवश्य कहना ही पड़ेगा. अथ दूसरा पक्ष मानोगे, तब तो हमारी कुछ हानी नहीं है. क्योंकि, अलौकिक एतावता तुमारे मनःकल्पित शब्द, और शब्दका निमित्त, जेकर नष्ट होजावेगा तो, लौकिकशब्द, और लौकिकशब्दका निमित्त, कदापि नष्ट नहीं होगा; तो फिर, अनिर्वाच्य प्रपंच किसतरें सिद्ध होगा ? जब अनिर्वाच्यही सिद्ध नहीं होगा तो, प्रपंच मिथ्या कैसे सिद्ध होगा ? और एकही अद्वैत ब्रह्म कैसे सिद्ध होवेगा ? निःस्वभावत्व-पक्षमें भी, निस् शब्दको निषेधार्थके हुए, और स्वभावशब्दको भी भाव अभाव दोनोंमेंसे अन्यतर किसी एक अर्थके अर्थात् भावके, वा अभावके वाचक हुए, पूर्ववत् प्रसंग होवेगा.

पूर्वपक्षः—हम तो जो प्रतीत न होवे, उसको निःस्वभावत्व कहते हैं.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेमें विरोध आता है; जेकर प्रपंच प्रतीत नहीं होता तो, तुमने अपने प्रथम अनुमानमें प्रपंचको प्रतीयमान हेतु-स्वरूपपणे क्योंकि ग्रहण किया ? और प्रपंचको अनुमान करनेके समय धर्मीपणे क्योंकि ग्रहण किया ? तथा धर्मीपणे ग्रहण करे हुए, वो कैसे प्रतीत नहीं होता है ?

पूर्वपक्षः—जैसा प्रतीत होता है, तैसा है नहीं.

उत्तरपक्षः—तब तो यह, विपरीतख्याति, तुमने अंगीकार करी सिद्ध होवेगी. तथा हम तुमको पूछते हैं कि, यह जो तुम इस प्रपंचको अनिर्वाच्य मानते हो, सो प्रत्यक्षप्रमाणसे मानते हो ? वा अनुमानप्रमाणसे मानते हो ? प्रत्यक्षप्रमाण तो, इस प्रपंचको सत्स्वरूपही सिद्ध करता है.

जैसा जैसा पदार्थ है, तैसा तैसाही प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होनेसें. और प्रपंच जो है, सो परस्पर, न्यासी न्यासी, जो वस्तु है, सो अपने अपने स्वरूपमें भावरूप है; और दूसरे पदार्थके स्वरूपकी अपेक्षा अभावरूप है. इस इतरेतरविविक्त वस्तुओंकोही प्रपंचरूप माना है. तो फिर, प्रत्यक्षप्रमाण, प्रपंचको अनिर्वाच्य कैसें सिद्ध कर सकता है?

पूर्वपक्षः—यह प्रत्यक्ष, हमारे पक्षको प्रतिक्षेप नहीं कर सकता है. क्योंकि, प्रत्यक्ष तो विधायकही है, तैसें तैसें प्रत्यक्ष ब्रह्मकोही कथन करता है, न कि, प्रपंच सत्यताको कथन करता है; प्रपंच सत्यता तो, तब कथन करी सिद्ध होवे, जेकर प्रत्यक्ष इतर वस्तुमें इतर वस्तुओंके स्वरूपका निषेध करे; परंतु प्रत्यक्षप्रमाण तो ऐसा है नहीं, प्रत्यक्षको निषेध करनेमें कुंठ होनेसें.

उत्तरपक्षः—प्रथम तुम विधायक किसको कहते हो?

पूर्वपक्षः—यह ऐसे वस्तुस्वरूपको ग्रहण करे, और अन्यस्वरूपको निषेध न करे, ऐसा प्रत्यक्षही विधायक है.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहना असत्य है. अन्यवस्तुके स्वरूपके विना निषेध्यां, वस्तुके यथार्थ स्वरूपका कदापि बोध न होनेसें; पीतादिक वर्णोंकरी रहित जब बोध होगा, तबही नील ऐसे रूपका बोध होवेगा, अन्यथा नहीं. तथा जब प्रत्यक्षप्रमाणकरके यथार्थ वस्तुस्वरूप ग्रहण किया जायगा, तब तो अवश्य अपर वस्तुका निषेध भी तहां जाना जायगा. जेकर प्रत्यक्ष, अन्यवस्तुमें अन्यवस्तुके निषेधको नहीं जानेगा तो, तिसवस्तुके इदमिति यह ऐसे विधिस्वरूपको भी जान सकेगा. क्योंकि, केवल जो वस्तुके स्वरूपको ग्रहण करना है, सोही अन्यवस्तुके स्वरूपका निषेध करना है. जब प्रत्यक्षप्रमाणविधि, और निषेध, दोनोंही. को ग्रहण करता है, तब तो, प्रपंच, मिथ्यारूप कदापि सिद्ध न होगा. जब प्रत्यक्षप्रमाणसें प्रपंचही मिथ्यारूप सिद्ध न हुआ तो, परम ब्रह्मरूप एकही अद्वैत तत्त्व कैसें सिद्ध होगा? तथा जो तुम प्रत्यक्षको नियमकरके विधायकही मानोगे, तब तो, विद्यावत् अविद्याका भी विधान तुमको मानना पड़ेगा; सो यह ब्रह्म, अविद्यारहित होनेकरके सन्मात्र

है, प्रत्यक्ष प्रमाणसें ऐसे जानते हुए भी, फिर, प्रत्यक्ष, निषेधक नहीं है; ऐसे कथन करनेवालेको क्यों नहीं उन्मत्त कहने चाहिये ? इति सिद्ध हुआ प्रत्यक्षबाधित तुमारा पक्ष. । और अनुमानकरके बाधित, ऐसे है. प्रपंच मिथ्या नहीं है, असत्सें विलक्षण होनेसें; जो असत्सें विलक्षण है, सो, मिथ्या नहीं है. यथा आत्मा. तैसाही यह प्रपंच है, तिसवास्ते, प्रपंच, मिथ्या नहीं. । तथा प्रतीयमान जो तुमारा हेतु है, सो ब्रह्मात्माके साथ व्यभिचारी है, क्यों-कि, ब्रह्मात्मा प्रतीयमान तो है, परंतु मिथ्यारूप नहीं है. जेकर कहोगे ब्रह्मात्मा अप्रतीयमान है, तब तो, ब्रह्मात्मा वचनोंका गोचर न होगा; जब वचनगोचर नहीं, तबतो, तुमको गुंगे बननाही ठीक है. क्योंकि, ब्रह्माविना अपर तो कुछ हैही नहीं, और जो ब्रह्मात्मा है, सो प्रतीयमान नहीं है; तो फिर तुमको हम गुंगेके बिना और क्या कहें ? और प्रथम अनुमानमें जो तुमने सीपका दृष्टांत दिया, सो साध्य विकल है. क्योंकि, जो सीप है, सो भी प्रपंचके अंतर्गतही है; और तुम तो, प्रपंचको मिथ्यारूप सिद्ध करा चाहते हो !. यह कदापि नहीं हो सकता है कि, जो साध्य होवे, सोही, दृष्टांतमें कहा जावे. जब सीपकाही अबतक सत्असत्पणा सिद्ध नहीं तो, उसको दृष्टांतमें कैसें ग्रहण किया ?

तथा प्रथम जो तुमने प्रपंचको मिथ्या सिद्ध करनेवास्ते अनुमान किया था, सो अनुमान, इस प्रपंचसें भिन्न है ? वा अभिन्न है ? जेकर कहोगे भिन्न है, तो फिर सत्य है ? वा असत्य है ? जेकर कहोगे सत्य है तो, तिस सत्य अनुमानकीतरें प्रपंचको भी सत्यपणा होवे. जेकर कहोगे असत्य है, तो फिर क्या शून्य है ? वा अन्यथा ख्यात है ? वा अनिर्वचनीय है ? प्रथम दोनों पक्ष तो, कदापि साध्यके साधक नहीं है. मनुष्यके शृंगकीतरें (१) तथा सीपके रूपेकीतरें (२) और तीसरा जो अनिर्वचनीय पक्ष है, सो भी, असमर्थ है; अर्थात् साध्यको साध नहीं सका है. अनिर्वचनीयको असंभविपणेकरके कथन करनेसें.

पूर्वपक्षः—हमारा जो अनुमान है, सो व्यवहारसत्य है; इसवास्ते असत्यत्वके अभावसें अपने साध्यका साधकही है !

उत्तरपक्षः—हम तुमसें पूछते हैं कि, यह 'व्यवहारसत्य' क्या है ? व्यवहृतिर्व्यवहारः तब तो, ज्ञानकाही नाम व्यवहार ठहरा. जेकर तिस ज्ञानरूप व्यवहारकरके सत्य है, तब तो, सो अनुमान, पारमार्थिकही है. यदि व्यवहारसत्यकरके अनुमान सत्य है, तब तो व्यवहारसत्यकरके प्रपंच भी सत्य होवे. ऐसे इस पक्षमें सत्ख्यातिरूप प्रपंच सिद्ध हुआ, जब प्रपंच सत् सिद्ध हुआ, तब तो, एकही परमब्रह्म सद्रूप अद्वैततत्त्व किसीतरह भी सिद्ध नहीं हो सकता है. जेकर कहोगे, व्यवहार नाम शब्दका है, तिसकरके जो सत्य, सो व्यवहार सत्य है; तो, हम पूछते हैं कि शब्द सत्यस्वरूप है ? वा असत्य है ? जेकर कहोगे, शब्द सत्यस्वरूप है, तब तिसकरके जो सत्य है, सो पारमार्थिकही है. तब तो, अनुमा-कीतरें प्रपंच भी सत्य सिद्ध हुआ. जेकर कहोगे शब्द असत्यस्वरूप है, तो तिस शब्दसें अनुमानको सत्यपणा कैसें होवेगा ? तथा शब्दसें कहे हुए ब्रह्मादि कैसें सत्स्वरूप हो सकेंगे ? क्योंकि, जो आपही असत्य-स्वरूप है, सो परकी व्यवस्था करने, वा कहनेका हेतु कदापि नहीं हो सकता है, आतिप्रसंग होनेसें.

पूर्वपक्षः—जैसें खोटा रूप्यक, सत्यरूप्यकके क्रयविक्रयादिक व्यवहारका जनक होनेसें सत्यरूप्यक माना जाता है, तैसेंही हमारा अनुमान, यद्यपि असत्यस्वरूप है, तोभी जगतमें सत्व्यवहारकरके प्रवर्तक होनेसें, व्यवहार सत्य है; इसवास्ते अपने साध्यका साधक है.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेसें तो, तुमारा अनुमान, असत्यस्वरूपही सिद्ध हुआ. तब तो, जो दूषण, असत्य पक्षमें कथन करे, सो सर्व, यहां पड़ेंगे. इसवास्ते प्रपंचसें भिन्न, अनुमान, उपपत्ति पदवीको नहीं प्राप्त होता है. जेकर कहोगे कि, हम अनुमानको प्रपंचसें अभेद मानते हैं, तब तो, प्रपंचकीतरें अनुमान भी, मिथ्यारूप ठहरा. तब तो, अपने साध्य को कैसें साध सकेगा ? इस पूर्वोक्त विचारसें प्रपंच मिथ्यारूप नहीं, किंतु

आत्माकीतरे सद्रूप है; तो फिर, एकही ब्रह्म अद्वैततत्त्व है, यह तुमारा कहना क्योंकि सत्य हो सकता है? कदापि नहीं हो सकता है.

पूर्वपक्ष:-हमारी उपनिषदोंमें, तथा शंकरस्वामिके शिष्य आनंदगिरिकृत शंकरदिग्विजयके तीसरे प्रकरणमें लिखा है कि, “परमात्मा जगदुपादानकारणमिति” परमात्माही, इस सर्व जगत्का उपादान कारण है. उपादान कारण उसको कहते हैं कि, जो कारण होवे, सोही कार्यरूप होजावे. इस कहनेसें यह सिद्ध हुआ कि, जो कुछ जगत्में है सो सर्व, परमात्माही आप बन गया है; इसवास्ते जगत् परमात्मारूपही है.

उत्तरपक्ष:-वाहरे नास्तिकशिरोमणे! तुम अपने वचनको कभी शोच विचार कर कहते हो, वा नहीं? क्योंकि, इस तुमारे कहनेसें तो, पूर्ण नास्तिकपणा, तुमारे मतमें सिद्ध होता है. यथा, जब सर्व कुछ जगत्स्वरूप परमात्मारूपही है, तब तो, न कोई पापी है, न कोई धर्मी है, न कोई ज्ञानी है, न कोई अज्ञानी है, न तो नरक है, न तो स्वर्ग है, न कोई साधु है, न कोई चोर है, सत् शास्त्र भी नहीं, असत् शास्त्र भी नहीं, तथा जैसा गोमांसभक्षी, तैसाही अन्नभक्षी, जैसा स्वभार्यासें कामभोग सेवन किया, तैसाही माता बहिन बेटीसें किया, जैसा ब्रह्मचारी, तैसा कामी, जैसा चंडाल, तैसा ब्राह्मण, जैसा गर्दभ, तैसा संन्यासी; क्योंकि, जब सर्व वस्तुका कारण ईश्वर परमात्माही ठहरा, तब तो सर्व जगत् एकरस एकस्वरूप है, दूसरा तो कोई हैही नहीं.

पूर्वपक्ष:-हम एक ब्रह्म मानते हैं, और एक माया मानते हैं, सो, तुमने जो ऊपर बहुतसें आलजंजाल लिखे हैं, सो सर्व, मायाजन्य है, ब्रह्म तो, सच्चिदानंद एकही शुद्ध स्वरूप है.

उत्तरपक्ष:-हे अद्वैतवादिन्! यह जो तुमने पक्ष माना है, सो बहुत असमीचीन है. यथा-माया जो है, सो ब्रह्मसें भेद है, वा अभेद है? जेकर भेद है तो, जड है, वा चेतन है? जेकर जड है तो फिर, नित्य है, वा अनित्य है? जेकर कहोगे नित्य है, तब तो, अद्वैतमतके मूलहीको

दाह करती है. क्योंकि, जब माया, ब्रह्मसें भेदरूप हुई, और जडरूप भई, और नित्य हुई, फिर तो, तुमने आपही अपने कहनेसें द्वैतपंथ सिद्ध करा; और अद्वैतपंथको जड मूलसें काट गेरा. जेकर कहोगे, माया, ब्रह्मसें भेद, जडरूप, और अनित्य है, तो भी, द्वैतता तो कदापि दूर नहीं होवेगी. क्योंकि, जो नाश होनेवाला है, सो कार्यरूप है; और जो कार्य है, सो कारणजन्य है. तो फिर, उस मायाका उपादानकारण कौन है? सो कहना चाहिये. जेकर कहोगे, अपरमाया, तब तो अनवस्थादूषण है; और अद्वैत तीनों कालोंमें कदापि सिद्ध नहीं होगा. जेकर ब्रह्महीको उपादानकारण मानोगे, तब तो ब्रह्मही आप सर्वकुछ बन गया; तब तो पूर्वोक्त दूषण आया. जेकर मायाको चैतन्य मानोगे, तो भी, यही पूर्वोक्त दूषण होगा. जेकर कहोगे, माया ब्रह्मसें अभेद है. तब तो ब्रह्मही कहना चाहिये, माया नहीं कहनी चाहिये.

पूर्वपक्षः—हम तो मायाको अनिर्वचनीय मानते हैं.

उत्तरपक्षः—इस अनिर्वचनीय पक्षको ऊपर खंडन कर आये हैं, इसवास्ते अनिर्वचनीय जो शब्द है, सो, दंभी पुरुषोंने छलरूप रचा प्रतीत होता है; तो भी, द्वैतही सिद्ध होता है, अद्वैत नहीं.

पूर्वपक्षः—यह जो अद्वैतमत है, इसके मुख्य आचार्य शंकरस्वामी है, जिनोंने सर्व मतोंको खंडन करके अद्वैतमत सिद्ध किया है; तो फिर ऐसे शंकरस्वामी, साक्षात् शिवका अवतार, सर्वज्ञ, ब्रह्मज्ञानी, शीलवान्, सर्वसामर्थ्ययुक्त, उन्हींके अद्वैत मतको खंडनेवाला कौन है?

उत्तरपक्षः—हे बल्लभमित्र ? तुमारी समझमूजब तो जरूर जैसें तुम कहते हो, तैसेंही है; परंतु शंकरस्वामीके शिष्य आनंदगिरिकृत शंकरदिग्विजयमें जो शंकरस्वामीका वृत्तांत लिखा है, उसके पढ़नेसें तो ऐसा प्रतीत होता है कि, शंकरस्वामी असर्वज्ञ, कामी, अज्ञानी, और असमर्थ थे. तथा तिस वृत्तांतसें ऐसा भी प्रतीत होता है कि, वेदांतियोंका अद्वैत ब्रह्मज्ञान, जबतक यह स्थूल शरीर रहेगा, तबतकही रहेगा; परंतु इस शरीरके पात हुए पीछे वेदांतियोंका ब्रह्मज्ञान, नहीं रहेगा. जो कि,

पैंतीसमें स्तंभमें संक्षेपमें हम लिखही आये हैं. इसवास्ते हे भव्य! जब शंकरस्वामीका चरित्रही असमंजस है, तो फिर, उनके कहे हुए मतको सयौक्तिक कौन समझ सकता है?

पूर्वपक्ष:-“पुरुषएवेदं ” इत्यादि श्रुतियोंसे अद्वैतही सिद्ध होता है.

उत्तरपक्ष:-यह भी तुमारा कहना असत् है. क्योंकि, जो पुरुषमात्र-रूप अद्वैततत्त्व होवे, तब तो, यह जो दिखलाइ देता है, कोई सुखी, कोई दुःखी, इत्यादि सर्व परमार्थसे असत् होजावेंगे; जब ऐसे होगा, तब तो, यह जो कहना है,

“॥ प्रमाणतोधिगम्य संसारनैर्गुण्यं तद्विमुखया प्र-
ज्ञया तदुच्छेदाय प्रवृत्तिरित्यादि ॥”

इसका अर्थ संसारका निर्गुणपणा प्रमाणसे जानकर तिस संसारसे विमुखबुद्धि होकरके तिस संसारके उच्छेदवास्ते प्रवृत्ति करे इत्यादि-सो आकाशके फूलकी सुगंधिका वर्णन करनेसरीखा है. क्योंकि, जब अद्वैत-रूपही तत्त्व है, तब नरकतिर्यचादिभवभ्रमणरूप संसार कहाँ रहा ? जिस संसारको निर्गुण जानकर तिसके उच्छेद करनेकी प्रवृत्ति होवे !

पूर्वपक्ष:-तत्त्वसे पुरुष अद्वैतमात्रही है, और यह जो संसार निर्गुण वर्णन किया है, और पदार्थोंके भेदका दर्शन, सदा सर्व जीवोंका जो प्रतिभासन हो रहा है सो, सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उच्चनीचकीतरें, भ्रांतिरूप है.

उत्तरपक्ष:-यह जो तुमारा कहना है, सो असत् है. क्योंकि, इस बातमें कोई यथार्थ प्रमाण नहीं है. तद्यथा-जेकर अद्वैत सिद्ध करनेवास्ते कोई पृथग्भूत प्रमाण मानोगे, तब तो, द्वैतापत्ति होवे-गी; और प्रमाणके बिना किसीका भी मत सिद्ध नहीं हो सकता है. यदि प्रमाणके बिनाही सिद्ध मानोगे, तब तो, सर्ववादी अपने अपने अभिमतको सिद्ध कर लेवेंगे. तथा भ्रांति भी, तुमको प्रमाणभूत अद्वैतसे भिन्नही माननी चाहिये; अन्यथा तो, प्रमाणभूत अद्वैतही अप्रमाण होजावेगा. जब भ्रांति अद्वैतकाही रूप हुई, तब तो,

पुरुषकाही रूप हुई. जब भ्रांतिस्वरूपवाला पुरुषही है, तब तो तत्त्व-व्यवस्था कुछ भी सिद्ध न हुई. जेकर भ्रांति भिन्न मानोगे, तब तो द्वैतापत्ति हो जावेगी; और अद्वैतमतकी हानी होजावेगी. तथा जो यह स्तंभ, इभ कुंभ, अंभोरुह आदि पदार्थोंका भेद दिखता है, सो भ्रांत है, ऐसे कहो तो, नियमसें सोही पदार्थभेददर्शन, किसी जगे सत्य मानना चाहिये, अभ्रांतिके देखे विना कदापि भ्रांति देखनेमें नही आनेसें. पूर्वे जिसने सच्चा सर्प नहीं देखा है, तिसको रज्जुमें सर्पकी भ्रांति कदापि नहीं होवेगी.

तदुक्तम् ॥

नादृष्टपूर्वसर्पस्य रज्ज्वां सर्पमतिः क्वचित् ॥

ततः पूर्वानुसारित्वाद् भ्रांतिरभ्रांतिपूर्विका ॥ १ ॥

इस कहनेसें भी, भेद सिद्ध होगया. तथा पुरुष अद्वैतरूपतत्त्व, अवश्य-करके दूसरेको निवेदन करने योग्य है, अपने आपको नहीं, अपनेमें व्यामोहना होनेसें. जेकर कहनेवालेमें व्यामोह होवे, तब तो अद्वैतकी प्रतिपत्ति कभी भी नहीं होवेगी.

पूर्वपक्षः—जिसवास्ते अपने आपको व्यामोह है, इसीवास्ते तिस व्यामोहकी निवृत्तिवास्ते, अपने आपको, अद्वैतकी प्रतिपत्ति, करने योग्य है.

उत्तरपक्षः—यह कहना अयुक्त है. क्योंकि, ऐसे हुए, अद्वैतकी प्रतिपत्ति होनेकरके, अपने आपके व्यामोहके दूर होयाहुआ, अवश्यमेव पूर्वरूपका त्याग, और अमूढतालक्षण उत्तररूपकी उत्पत्ति कहनी पडेगी. तब तो अवश्य द्वैतापत्ति होजावेगी. तथा जब अद्वैततत्त्वका उपदेशक पुरुष परको उपदेश करेगा, तब तो, परका अवश्य मानेगा; फिर अद्वैततत्त्वपरको निवेदन करना, और अद्वैततत्त्व मानना, यह तो ऐसे हुआ जैसें मेरा पिता, कुमारब्रह्मचारी है. इसवचनके कहनेसें जरूर वो पुरुष उन्मत्त है; जेकर अपनेको और परको, इन दोनोंको मानेगा, तब तो अवश्य द्वैतापत्ति होवेगी; इसवास्ते जो अद्वैत मानना है, सो युक्तिविकल है.

पूर्वपक्षः—परब्रह्मरूपकी सिद्धिही, सकलभेदज्ञान प्रत्ययोंके निरालंबन-पणेकी सिद्धि है.

उत्तरपक्षः—यह कथन भी तुमारा ठीक नहीं है, परम ब्रह्महीकी सिद्धि न होनेसे; जेकर है तो, स्वतःसिद्धि है, वा परतःसिद्धि है? तहां स्वतः-सिद्धि तो है नहीं, जेकर होवे, तब तो, किसीका भी विवाद न रहे; जेकर कहोगे परतःसिद्धि है तो, क्या अनुमानसें है, वा आगमसें है? जेकर कहोगे, अनुमानसें है तो, वो अनुमान कौनसा है?

पूर्वपक्षः—सो अनुमान यह है. विवादरूप जो अर्थ है, सो प्रतिभासांतःप्रविष्ट है, अर्थात् ब्रह्मभासके अंदर है, प्रतिभासमान होनेसें; जो जो प्रतिभासमान है, सो सो प्रतिभासांतःप्रविष्टही देखा है. जैसे ब्रह्म प्रतिभास स्वरूप प्रतिभासमान है, सकल अर्थ सचेतनअचेतन विवादरूप, तिसकारणसें प्रतिभासांतःप्रविष्ट है.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा अनुमान, सम्यक् नहीं है. (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, इन तीनोंके प्रतिभासांतःप्रविष्ट होनेसें, साध्यरूपही हुए. तब तो (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, इन तीनोंके न होनेसें, अनुमानही नहीं बनसकता है. जेकर कहोगे कि (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, येह तीनों, प्रतिभासांतःप्रविष्ट नहीं है; तब तो इनोंहीके साथ हेतु व्यभिचारी होगा.

पूर्वपक्षः—अनादि अविद्यावासनाके बलसें, हेतु दृष्टांत जो है, सो प्रतिभासके बाहिरकीतरें निश्चय करते हैं; जैसे प्रतिपाद्य, प्रतिपादक, सभा, सभापतिजनकीतरें. तिस कारणसें अनुमान भी, होसकता है; और जब सकल अनादि अविद्याका विलास दूर होजावेगा, तब तो प्रतिभासांतःप्रविष्टही, प्रतिभास होगा; विवाद भी न रहेगा. प्रतिपाद्य, प्रतिपादक, साध्य, साधन भाव भी नहीं रहेगा, तब तो अनुमान करनेका भी कुछ फल नहीं. आपही अनुभवमान परमब्रह्मके होते हुए, देश-काल अव्यवाच्छिन्न स्वरूपके हुएथके, निर्व्यभिचार सकल अवस्था व्यापकपणेवालेमें, अनुमानका कुछ प्रयोग भी नहीं चाहिये हैं.

उत्तरपक्षः—जो अनादि अविद्या, प्रतिभासांतःप्रविष्ट है, तब तो विद्याही होगई; तब तो असद्रूप (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, आदिक भेद, कैसें दिखा सके? जेकर कहोगे, प्रतिभासके बाहिरभूत है, तब तो अविद्या प्रतिभासमान है, वा अप्रतिभासमान है? तिस अविद्याको प्रतिभासमानरूप होनेसें, अप्रतिभासमान तो नहीं; जेकर कहोगे, प्रतिभासमान है तो, तिसहीके साथ हेतु व्यभिचारी है. तथा प्रतिभासके बाहिरभूत होनेसें, तिसके प्रतिभासमान होनेसें जेकर तुमारे मनमें ऐसा होवे कि, अविद्या जो है, सो न तो प्रतिभासमान है, न अप्रतिभासमान है, न प्रतिभासके बाहिर है, न प्रतिभासांतःप्रविष्ट है, न एक है, न अनेक है, न नित्य है, न अनित्य है, न व्यभिचारिणी है, न अव्यभिचारीणी है, सर्वथा विचारके योग्य नहीं, सकल विचारांतर अतिक्रांतस्वरूप है, रूपांतरके अभावसें, अविद्या, जो है, सो निरूपतालक्षण है. यह भी तुमारी बड़ी अज्ञानताका विस्तार है. तैसी निरूपतास्वभाववालीको यह अविद्या है, यह अप्रतिभासमान है, ऐसें कथन करनेको कौन समर्थ है? जेकर कहोगे, यह अविद्या प्रतिभासमान है, तो फिर, क्योंकर अविद्या, नीरूप सिद्ध होगी? क्योंकि, जो वस्तु जिस स्वरूपकरके प्रतिभासमान है, सो तिसही वस्तुका रूप है. तथा अविद्या जो है, सो विचारगोचर है, वा विचारगोचररहित है? जेकर कहोगे, विचारगोचर है, तब तो नीरूप नहीं; जेकर विचारगोचर नहीं, तब तो तिसके माननेवाले महामूर्ख सिद्ध होवेंगे. जब विद्या, अविद्या, दोनोंही सिद्ध है, तब तो, एक परमब्रह्म, अनुमानसें कैसें सिद्ध हुआ ? इस कहनेसें जो उपनिषद्में एकब्रह्मके कहनेवाली श्रुति है, सो भी खंडन होगई. तथा “सर्वं वै खल्विदं ब्रह्मेत्यादि” वचनको परमात्मासें अर्थांतर होनेसें, द्वैतापत्ति होजावेगी. जेकर कहोगे, अनादि अविद्यासें ऐसा प्रतीत होता है, तब तो पूर्वोक्त दूषणोंका प्रसंग होगा; तिसवास्ते अद्वैतकी सिद्धि बंध्याके पुत्रकी शोभावत् है. इस कारणसें अद्वैतमत, युक्तिविकल है; इसवास्ते सुज्ञजनोंको अनुपादेय है. । इत्यद्वैतमतखंडनम् ॥

तथा (३५) और (३६) इन सूत्रोंमें, और भाष्यमें, जो पक्ष जैनीयोंके तर्फसे किया है, तैसें जैनी मानते नहीं है, इसवास्ते, अनभ्युपगमसेही निरस्त है. ॥ ३३॥३४॥३५॥३६॥

इति वेदव्यासशंकरस्वामिकृत जैनमतखंडनस्य खंडनं अद्वैतमतखंडनं जैनमतमंडनं च समाप्तं तत्समाप्तौ च समाप्तेयं वेदव्यासशंकरस्वामिलीला ॥ ॐसत् ॥

अथ इससे आगे जैनमतका संक्षेपसे किंचिन्मात्र स्वरूप लिखते हैं. प्रथम तो आत्माका स्वरूप जानना चाहिये; यह जो आत्मा है, सोही जीव है, यह आत्मा स्वयंभू है, परंतु किसीका रचा हुआ नहीं, अनादि अनंत है, (५) वर्ण, (५) रस, (२) गंध, (८) स्पर्श, इनकरके रहित है, अरूपी है, आकाशवत्, असंख्यप्रदेशी है. प्रदेश उसको कहते हैं, जो, आत्माका अत्यंत सूक्ष्म अंश, जिसका फिर अन्य अंश न होवे, ऐसे असंख्य अंश कथंचित् भेदाभेदरूपकरके एकस्वरूपमें रहे हैं, तिसका नाम आत्मा है. सर्व आत्मप्रदेश ज्ञानस्वरूप है, परंतु आत्माके एकएक प्रदेशउपर (१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) सुखदुःखरूपवेदनीय, (४) मोहनीय (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र, (८) अंतराय, इन आठ कर्मकी अनंत अनंत कर्मवर्गणा आच्छादित है, जैसें दर्पणकेउपर छाया आजाती है. जब ज्ञानावरणादि कर्मोंका क्षयोपशम होता है, तब इंद्रिय, और मनोद्वारा आत्माको शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्शका ज्ञान, और मानसिक ज्ञान उत्पन्न होता है. कर्मोंका क्षय, और क्षयोपशमका स्वरूप देखना होवे तो, कर्मग्रंथ, कर्मप्रकृति, और नंदिकी बृहद्दीकादिसें देखलेना. इस आत्माके एकएक प्रदेशमें अनंत अनंत शक्तियां हैं, कोई ज्ञानरूप, कोई दर्शनरूप, कोई अव्याबाधरूप, कोई चारित्ररूप, कोई स्थिररूप, कोई अटलअवगाहनारूप, कोई अनंतशक्तिसामर्थ्यरूप, परंतु कर्मके आवरणसें सर्व शक्तियां लुप्त होरही हैं; जब सर्व कर्म, आत्माके साधनद्वारा दूर होते हैं, तब यही आत्मा, परमात्मा, सर्वज्ञ, सिद्ध, बुद्ध, ईश, निरंजन, परमब्रह्मादिरूप होजाता है; तिसहीका नाम मुक्ति है. और जो कुछ

आत्मामें नर, नारक, तिर्यग्, अमर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, ऊंच, नीच, रंक, राजा, धनी, निर्धन, दुःखी, सुखी, इत्यादि जो जो अवस्था संसारमें जीवोंकी पीछे हुई है, जो अब होरही है, और आगेको होवेगी, सो सर्व, मुख्यकरके कर्मोंके निमित्तसें है; वास्तवमें शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें तो आत्मामें लोक तीन, थापना, उच्छेद, पाप, पुण्य, क्रिया, करणीय, राग, द्वेष, बंध, मोक्ष, स्वामी, दास, पृथिवीरूप, अप्कायरूप, तेजस्कायरूप, वायुकायरूप, वनस्पतिकायरूप, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, कुलधर्मकी रीति, शिष्य, गुरु, हार, जीत, सेव्य, सेवक, इत्यादि उपाधी नहीं हैं; परंतु इस कथनको एकांत वेदांतियोंकीतरें माननेसें पुरुष अतिपरिणामी होके सत्स्वरूपसें भ्रष्ट होकर मिथ्यादृष्टि होजाता है, इसवास्ते पुरुषको चाहिये, अंतरंग वृत्तिमें तो शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतको मानें, और व्यवहारमें जो साधन, अष्टादश दूषणवर्जित परमेश्वरने कर्मोपाधि दूर करनेवास्ते कहे हैं, तिनमे प्रवर्त्ते. यही स्याद्वादमतका सार है.

तथा यह जो आत्मा है, सो शरीरमात्रव्यापक है; और गिणतीमें आत्मा भिन्न भिन्न अनंत है, परंतु स्वरूपमें सर्व चैतन्यस्वरूपादिककरके एकसदृश है; परंतु एकही आत्मा नहीं तथा सर्वव्यापी भी नहीं. जो आत्माको सर्वव्यापी, और एक मानते हैं, वे प्रमाणके अनभिज्ञ हैं. क्योंकि, ऐसे आत्माके माननेसें बंध मोक्ष क्रियादिकोंका अभाव सिद्ध होता है, जो, प्रथम लिखही आये हैं, और जैनमतवाले तो, आत्माका लक्षण ऐसें मानते हैं.

तदुक्तम् ॥

यः कर्त्ता कर्मभेदानां भोक्ता कर्मफलस्य च ॥

संसर्त्ता परिनिर्वाता सह्याऽऽत्मा नान्यलक्षणः ॥ १ ॥

अर्थः—जो शुभाशुभ कर्मभेदोंका कर्त्ता है, जो करे कर्मका फल भोगनेवाला है, जो कर्माधिन होके नानागतिमें भ्रमण करनेवाला है, और जो साधनद्वारा सर्व उपाधियां दग्धकरके निर्वाण मोक्षको प्राप्त होता है, सोही

आत्मा है; अन्यलक्षणवाला नहीं. यदि इन पूर्वोक्त बातोंमेंसे एक बात भी, न माने तो, सर्व शास्त्र, झूठे ठहरेंगे, और शास्त्रोंके कथन करनेवाले अज्ञानी सिद्ध होवेंगे. तथा पूर्वोक्त आत्मा पुण्यपापकेसाथ प्रवाहसे अनादिसंबंधवाला है, जेकर आत्माकेसाथ पुण्यपापका प्रवाहसे अनादिसंबंध, न माने, तब तो, बहुत दूषण मतधारीयोंके मतमें आते हैं; वे येह हैं. जेकर आत्माको पहिला माने, और पुण्यपापकी उत्पत्ति आत्मामें पीछे माने, तब तो, पुण्यपापसे रहित निर्मल आत्मा प्रथम सिद्ध हुआ. (१) निर्मल आत्मा संसारमें उत्पन्न नहीं होसकता है. (२) विनाकरे पुण्यपापका फल भोगना असंभव है. (३) जेकर विनाकरे पुण्यपापका फल भोगनेमें आवे, तब तो, सिद्ध मुक्तरूप परमात्मा भी पुण्यपापका फल भोगेंगे. (४) करेका नाश, और विनाकरेका आगमन, यह दूषण होवेगा. (५) निर्मल आत्माके शरीर उत्पन्न नहीं होवेगा. (६) जेकर विनापुण्यपापके करे ईश्वर जीवको अच्छी बुरी शरीरादिककी सामग्री देवेगा, तब तो, ईश्वर अज्ञानी, अन्यायी, पूर्वापरविचाररहित, निर्दयी, पक्षपाती, इत्यादि दूषणोंसहित सिद्ध होवेगा; तब ईश्वर काहेका ? (७) इत्यादि अनेक दूषणोंके होनेसे प्रथम पक्ष असिद्ध है. ॥ १ ॥

अथ दूसरा पक्ष:—कर्म पहिले उत्पन्न हुए, और जीव पीछे बना, यह भी पक्ष मिथ्या है. क्योंकि, प्रथम तो जीवका उपादानकारण कोई नहीं. (१) अरूपी वस्तुके बनानेमें कर्त्ताका व्यापार नहीं. (२) जीवने कर्म करे नहीं, इसवास्ते जीवको फल न होना चाहिये. (३) जीवकर्त्ताके विना कर्म उत्पन्न नहीं होसकते हैं (४) जेकर कर्म ईश्वरने करे हैं, तब तो, उनका फल भी ईश्वरको भोगना चाहिये (५) जब कर्मका फल भोगेगा, तब ईश्वर नहीं (६) जेकर ईश्वर कर्मकरके अन्य जीवोंको लगावेगा तब तो ईश्वर निर्दयी, अन्यायी, पक्षपाती, अज्ञानी, इत्यादि दूषणयुक्त सिद्ध होवेगा (७) तथाहि—जब बुरे कर्म जीवके विनाकरे जीवको लगाए, तब जो जो नरकगतिके दुःख, तिर्यचगतिके दुःख, दुर्भग, दुःस्वर, अयशः, अकीर्ति, अनादेय, दुःख, रोग, सोग, धनहीन, भूख, प्यास, शीत, उष्णा-

दि नानाप्रकारके दुःख जीवने भोगे हैं, वे सर्व, ईश्वरकी निर्दयतासें हुए. (१) बिना अपराधके दुःख देनेसें अन्यायी, (२) एकको सुखी, एकको दुःखी करनेसें पक्षपाती, (३) पीछे, पुण्यपापके दूर करनेका उपदेश देनेसें अज्ञानी, (४). इत्यादि अनेक दूषण होनेसें दूसरा पक्ष भी असिद्ध है. ॥ २ ॥

अथ तीसरा पक्षः—जीव, और कर्म, एकही कालमें उत्पन्न हुए; यह भी पक्ष मिथ्या है. क्योंकि, जो वस्तु साथ उत्पन्न होती है, उनमें कर्त्ता कर्म नहीं होते हैं. (१) उस कर्मका फल जीवको न होना चाहिये. (२) जीव और कर्मोंका, उपादानकारण नहीं. (३) जेकर एक ईश्वरही, जीव और कर्मका उपादानकारण मानीये तो, असिद्ध है. क्योंकि, एक ईश्वर जड चेतनका उपादानकारण नहीं होसकता है. (४) ईश्वरको जगत् रचनेसें कुछ लाभ नहीं. (५) न रचनेसें कुछ हानि नहीं. (६) जब जीव, और जड, नहीं थे तब ईश्वर किसका था? (७) जीव कर्म स्वयमेव उत्पन्न नहीं होसकते हैं. (८) इसवास्ते तीसरा पक्ष भी मिथ्या है. ॥ ३ ॥

अथ चौथा पक्षः—जीवही सञ्चिदानंदरूप अकेला है, पुण्यपाप नहीं; यह भी पक्ष मिथ्या है. क्योंकि, बिनापुण्यपापके जगत्की विचित्रता कदापि सिद्ध नहीं होवेगी. इसवास्ते चौथा पक्ष भी मिथ्या है. ॥ ४ ॥

अथ पांचमा पक्षः—जीव, और पुण्य पाप, येह हैही नहीं; यह भी कहना मिथ्या है. क्योंकि, जब जीवही नहीं है, तब यह ज्ञान किसको हुआ? कि कुछ हैही नहीं! इसवास्ते पांचमा पक्ष भी असिद्ध है. ॥ ५ ॥

इन पूर्वोक्त पांचों पक्षोंके असिद्ध होनेसें, छद्म यही पक्ष सिद्ध हुआ कि, जीव और कर्मोंका संयोगसंबंध, प्रवाहसें अनादि है. तथा यह आत्मा कर्मोंके संबंधसें त्रसथावररूप होरहा है. थावरके पांच भेद हैं. पृथिवी (१), जल (२), अग्नि (३), पवन (४), और वनस्पति (५). इन पांचों थावरोंको एकेंद्रिय जीव कहते हैं. त्रसके चार भेद हैं. द्वींद्रिय (१), त्रींद्रिय (२), चतुरिंद्रिय (३), पंचेंद्रिय (४), तथा नारक,

तिर्यच, मनुष्य, देवता; उनमें नरकवासीयोंके (१४) भेद, तिर्यचगतिके (४८) भेद, मनुष्यगतिके (३०३) भेद, और देवगतिके (१९८) भेद हैं. येह सर्व मिलाके जीवोंके (५६३) भेद हैं.

तथा यह आत्मा कथंचित् रूपी, और कथंचित् अरूपी है. जबतक संसारीआत्मा कर्मकर संयुक्त है, तबतक कथंचित् रूपी है; और कर्मरहित शुद्ध आत्माकी विवक्षा करीये, तब कथंचित् अरूपी है. जेकर आत्माको एकांत रूपी मानीये, तब तो, आत्मा जडरूप सिद्ध होवेगा, और काट-नेसें कट जावेगा; और जेकर आत्माको एकांत अरूपी मानीये, तब तो, आत्मा, क्रियारहित सिद्ध होवेगा; तब तो बंध मोक्ष दोनोंका अभाव होवेगा; जब बंध मोक्षका अभाव होवेगा, तब शास्त्र, और शास्त्रके वक्ता झूठे ठहरेंगे; और दीक्षा दानादि सर्व निष्फल होवेंगे. इसवास्ते आत्मा कथंचित् रूपी, कथंचित् अरूपी है. ।

तथा प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारसूत्रमें आत्माका स्वरूप ऐसा लिखा है. ।

“ ॥ चैतन्यस्वरूपः परिणामी कर्त्ता भोक्ताद्भोक्ता स्वदेहपरिमाणः । प्रतिक्षेत्रं भिन्नः पौद्गलिकादृष्टवांश्चायमिति ॥ ”

भावार्थः—साकार निराकार उपयोगस्वरूप है जिसका, सो चैतन्यस्वरूप (१). समयसमयप्रति, पर अपर पर्यायोंमें गमन करना, अर्थात् प्राप्त होना, सो परिणाम, सो नित्य है इसके, सो परिणामी (२). इन दोनों विशेषणोंकरके आत्माको जडस्वरूप कूटस्थ नित्य माननेवाले नैयायिकादिकोंका खंडन किया, सो देखना होवे तो, प्रमाणनयत्त्वालोकालंकारकी लघुवृत्ति स्याद्वादरत्नाकरावतारिकासें देख लेना. कर्त्ता, अदृष्टादिकका (३). साक्षात् उपचाररहित, सुखादिकका भोक्ता, सो साक्षाद्भोक्ता (४). इन दोनों विशेषणोंकरके कापिलमतका निराकरण किया, सो भी, पूर्वोक्त ग्रंथसें जानलेना. स्वदेहपरिमाण, अपने ग्रहण करे शरीरमात्रमें व्यापक (५). इस विशेषणकरके नैयायिकादि परिकल्पित आत्माका सर्वव्यापिपणा निषेध किया, जो पूर्वसंक्षेपसें लिख आये हैं. शरीरशरीरप्रति भिन्न

भिन्न (६). इस विशेषणकरके आत्माद्वैतवाद परास्त किया, सो भी संक्षे-
पसें पूर्व लिख आये हैं. और अलग अलग अपने अपने करे कर्मोंके अधीन
(७). इस विशेषणकरके नास्तिकमतका पराजय किया, सो पूर्वोक्त
ग्रंथसें जान लेना. इन पूर्वोक्त विशेषणविशिष्ट यह आत्मा है. तथा
यह आत्मा, संख्यामें अनंतानंत है. जितने तीनकालके समय, तथा
आकाशके सर्व प्रदेश हैं, उतने हैं. इसवास्ते मुक्ति होनेसें संसार, सर्वथा
कदापि खाली नहीं होवेगा. जैसें आकाशके मापनेसें कदापि अंत नहीं
आवेगा. तथा येह अनंतानंत आत्मा, जिस लोकमें रहते हैं, सो लोक,
असंख्यासंख्य कोडाकोडी योजनप्रमाण लंबा चौड़ा उंचा नीचा है.

तथा इन आत्माके तीन भेद है. बहिरात्मा (१), अंतरात्मा (२),
और परमात्मा (३). तहां जो जीव, मिथ्यात्वके उदयसें तनु, धन, स्त्री,
पुत्र, पुत्र्यादि परिवार, मंदिर (महलयहादि), नगर, देश, शत्रु, मित्रादि
इष्ट अनिष्ट वस्तुओंमें रागद्वेषरूप बुद्धि धारण करता है, सो बहिरात्मा
है; अर्थात् वो पुरुष भवाभिनंदी है. सांसारिक वस्तुओंमेंही आनंद मानता
है. तथा स्त्री, धन, यौवन, विषयभोगादि जो असार वस्तु है, उन सर्वको
सार पदार्थ समझता है; तबतकही पंडिताईसें वैराग्यरस घोंटता है, और
परमब्रह्मका स्वरूप बताता है, और संत महंत योगी ऋषि बना फिरता
है, जबतक सुंदर उद्भटयौवनवंती स्त्री नहीं मिलती है, और धन नहीं
मिलता है. जब येह दोनों मिले, तत्काल अद्वैतब्रह्मका द्वैतब्रह्म बन जाता
है, और अन्य लोकोंको कहने लगजाता है कि, भइया ! हम जो स्त्री
भोगते हैं, इंद्रियोंके रसमें मगन रहते हैं, धन रखते हैं, डेरा बांधते हैं,
इत्यादि काम करते हैं, वे सर्व मायाका प्रपंच है; हम तो सदाही अलिस
हैं. ऐसे २ ब्रह्मज्ञानीयोंका मुंह काला करके, गर्दभपर चढाके देशनि-
काला करदेना चाहिये !!! क्योंकि, ऐसे ऐसे भ्रष्टाचारी ब्रह्मज्ञानी, कित-
नेक मूर्ख लोकोंको ऐसे भ्रष्ट करते हैं कि, उनका चित्त कदापि सन्मार्गमें
नहीं लगसकता है. और कितनीक कुलवंती स्त्रियोंको ऐसे बिगाडते हैं
कि, वे कुलमर्यादाको भी लोप कर, इन भंगीजंगी फकीरोंकेसाथ दुराचार

करती हैं. और येह जो विषयके भिखारी, धनके लोभी, संतमहंत भंगी-जंगी ब्रह्मज्ञानी बने रहते हैं, वे सर्व, दुर्गतिके अधिकारी होते हैं. क्योंकि, इनके मनमें स्त्री, धन, कामभोग, सुंदरशय्या, आसन, स्नान, पानादि-पर अत्यंत राग रहता है; और दुःखके आये हीनदीन होके विलाप करते हैं; जैसे कंगाल बनीषा धनवानोंको देखके झूरता है, तैसें येह पंडित संतमहंत भंगीजंगी लोकोंकी सुंदर स्त्रियोंको और धनादिसाम-ग्रीको देखकर झूरते हैं; मनमें चाहते हैं, येह हमको मिले तो ठीक है. इस बातमें इनोंका मनही साक्षीदाता है. इसवास्ते जो जीव बाह्यवस्तु-कोही तत्त्व समझता है, और तिसहीके भोगविलासमें आनंद मानता है, सो प्रथम गुणस्थानवाला जीव, बाह्यदृष्टि होनेसें बहिरात्मा कहा-जाता है. ॥ १ ॥

अथ जो पुरुष, तत्त्वश्रद्धानकरके संशुक्त होता है, और कर्मोंके बंधन होनेका हेतु अच्छतरें जानता है; जिसवास्ते यह जो जीव इस संसारा-वस्थामें है, सो जीव, मिथ्यात्व (१), अविरति (२), कषाय (३), प्रमाद (४), और योग (५), इन पांचों कर्मबंधके हेतुओंकरके निरंतर कर्मोंको बांधता है; जब वे कर्मउदयमें आते हैं, तब यह जीव, स्वयमेवही भोगता है; अन्य जन कोई भी तिसमें साहाय्य नहीं करसकता है. इत्यादि जो जानता है, तथा किंचित् किसी द्रव्यादिवस्तुके नष्ट हुए मनमें ऐसें विचारता है कि, इस परवस्तुके साथ मेरा संबंध नष्ट होगया है, परंतु मेरा द्रव्य तो, आत्मप्रदेशमें अविष्वग्भावसंबंधकरके समवेत, ज्ञानादिलक्षण है, सो तो कहीं भी नहीं जासकता है. तथा किंचित् द्रव्यादि वस्तुके लाभ होनेसें ऐसें मानता है कि, मेरा इस पौद्गलिकवस्तुके साथ संबंध हुआ है, इससें मुझको इसपर क्या प्रमोद करना चाहिये ! और वेदनीय कर्मके उदयसें जब कष्ट प्राप्त होवे, तब समभाव धारण करे, आत्माको परभावोंसें भिन्न मानके उनके त्यागनेका उपाय करे, चित्तमें परमात्माके स्वरूपका ध्यान करे, आवश्यकादि धर्मकृत्योंमें विशेष उद्यम करे, सो चौथे गुणस्थानसें लेके बारमे गुणस्थानपर्यंतवर्ती जीव, अंतर्दृष्टिमान् होनेसें अंतरात्मा कहे जाते हैं. ॥ २ ॥

अथ पुनः, जे शुद्धात्मस्वभावके प्रतिबंधक कर्मशत्रुओंको हणके निरुपमोत्तम केवलज्ञानादि स्वसंपत् पाकरके करतलामलकवत् समस्त वस्तुके समूहको विशेष जानते, और देखते हैं, और परमानंदसंदोह-संपन्न होते हैं, वे तेरमे चौदमे गुणस्थानवर्ती जीव, और सिद्धात्मा, शुद्ध स्वरूपमें रहनेसें परमात्मा कहे जाते हैं. ॥ ३ ॥

अथ बहिरात्मपणा छोटके अंतरात्माके होनेवास्ते तत्त्वज्ञान करना चाहिये; वे तत्त्व जीवाजीवादि नदतरके हैं. अथवा देव, गुरु, और धर्म येह तीन तत्त्व हैं. इनका स्वरूप जैनतत्त्वादर्थमें लिखा है, इसवास्ते यहां नहीं लिखते हैं. * अथवा धर्मास्तिकाय (१), अधर्मास्तिकाय (२), आकाशास्तिकाय (३), काल (४), पुद्गलास्तिकाय (५), और जीवास्तिकाय (६), येह षट् द्रव्यतत्त्व हैं. इन छहोंही द्रव्योंको जैनमतमें द्रव्य कहते हैं. जेजे अवस्था द्रव्यकी पीछे होगइ है, जेजे वर्तमानमें होरही है, और जेजे आगेकों होवेगी, उनहीको जैनमतमें द्रव्यत्वशक्ति कहते हैं. यह द्रव्यत्वशक्ति, द्रव्यसें कथंचित् भेदाभेदरूप है. जैसें सुवर्णमें कटक कुंडलादि हैं. इस द्रव्यत्वशक्तिहीको, लोकोंने ईश्वर, जगत्स्रष्टा, कल्पन किया है; इसवास्ते भव्यजीवोंके बोधार्थ, किंचिन्मात्र, द्रव्यगुण-पर्यायका स्वरूप, लिखते हैं. इस कथनमें जो आवेगी, सोही द्रव्यत्वशक्ति जान लेनी.

तहां प्रथम द्रव्यका स्वरूप लिखते हैं.

“ ॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ ” “ सत् ’ जो है, सोही द्रव्यका लक्षण है. ‘ सत् ’ किसको कहते हैं ? “ ॥ सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत् ॥ ” अपने गुणपर्यायको, जो व्याप्तहोवे, सो ‘ सत् ’ है. अथवा “ ॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ” जो उत्पत्ति, विनाश और स्थिरता, इन तीनोंकरी संयुक्त होवे, सो ‘ सत् ’ है. अथवा “ ॥ अर्थक्रियाकारि सत् ॥ ” जो अर्थक्रिया करनेवाला है, सो ‘ सत् ’ है.

* देखो जैनतत्त्वादर्थके १ । ३ । ५ । में परिच्छेदमें.

तदुक्तम् ॥

यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थसत् ॥

यच्च नार्थक्रियाकारि तदेव परतोप्यसत् ॥ १ ॥

भावार्थः—जो अर्थक्रियाकारि है, सोही, परमार्थसे सत् है; और जो अर्थक्रियाकारि नहीं है, सो परतः भी असत् है. इति. ॥

अथवा अन्यप्रकारसे द्रव्यका लक्षण कहते हैं. ।

“॥ निज निज प्रदेशसमूहैरखंडवृत्त्या । स्वभाववि-
भावपर्यायान् द्रवति द्रोष्यति अदुद्रुवदितिद्रव्यम् ॥ ”

भावार्थः—अपने अपने प्रदेशसमूहोंकरके अखंडवृत्तिसे स्वभाववि-
भावपर्यायोंको प्राप्त होता है, होगा, और पीछे हुआ, सो द्रव्य है.

अथवा “ ॥ गुणपर्यायवद् द्रव्यम् ॥ ” गुणपर्यायवाला द्रव्य होता है.

यदुक्तं विशेषावश्यकवृत्तौ ॥

दवए दुयए दोरवयवो विगारो गुणाण संदावो ॥

दव्वं भव्वं भावस्स भूयभावं च जं जोग्गं ॥ १ ॥

व्याख्याः—तिनतिन पर्यायोंको प्राप्त होता है, वा छोड़ता है; अथवा अपने पर्यायोंकरकेही प्राप्त होवे, वा छूटे, अथवा दुसत्ता तिसकाही अव-
यव, वा विकार, सो द्रव्य; अवांतरसत्तारूपद्रव्य, महासत्ताके अवयव, वा विकारही होते हैं. अथवा रूपरसादि गुण तिनोंका संद्रावसमूह, घटादि-
रूप, सो द्रव्य. तथा भाविपर्यायके योग्य जो होनेवाला, सो भी, द्रव्य;
राज्यपर्याययोग्य कुमारवत्. तथा पश्चात्कृतभावपर्याय जिसका, सो भी,
द्रव्य; अनुभूतघृताधारत्वपर्यायरहित घृतघटवत्. च शब्दसे भूतभविष्यत्-
पर्याय द्रव्य, भूतभविष्यत् घृताधारत्वपर्यायरहित घृतघटवत्. भूतभावके,
भाविभावके, और भूतभविष्यत् भावोंके, इस समय न हुए भी, उन
भावोंके जो योग्य है, सोही, द्रव्य है, अन्य नहीं. अन्यथा तो, सर्वपर्या-
योंको भी, अनुभूतत्व होनेसे, और अनुभविष्यमाणत्व होनेसे, पुद्गलादि
सर्वको भी द्रव्यत्वका प्रसंग होवेगा. इति गार्थार्थः । इतिद्रव्याधिकारः ॥

अथ प्रसंगप्राप्त स्वभावविभावपर्याय, कथन करते हैं. तहां अगुरुलघु-द्रव्यके जे विकार हैं, वे स्वभावपर्याय हैं; उससें विपरीत, अर्थात् स्वभावसें अन्यथा होनेवाले, विभाव हैं. तहां अगुरुलघुद्रव्य स्थिर है, यथा सिद्धिक्षेत्रं, जो कहा है समवायांगवृत्तिमें. गुरुलघुद्रव्य सो है, जो तिर्यग्गामि, तिरछा चलनेवाला है, यथा वायु आदि. अगुरुलघु सो है, जो स्थिर है; यथा सिद्धिक्षेत्र, तथा घंटाकारव्यवस्थित ज्योतिष्कविमानादि. गुणके जे विकार हैं, वे पर्याय हैं; और वे बारां प्रकारके हैं. अनंतभागवृद्धि (१), असंख्यातभागवृद्धि (२), संख्यातभागवृद्धि (३), अनंतगुणवृद्धि (४), असंख्यातगुणवृद्धि (५), संख्यातगुणवृद्धि (६), अनंतभागहानि (७), असंख्यातभागहानि (८), संख्यातभागहानि (९), अनंतगुणहानि (१०), असंख्यातगुणहानि (११), संख्यातगुणहानि (१२), इति. । नरनारकादि चतुर्गतिरूप, अथवा चौराशी लक्ष (८४०००००) योनिरूप, विभावपर्याय है. इति. ॥

अथ गुण लिखते हैं. अस्तित्व (१), वस्तुत्व (२), द्रव्यत्व (३), प्रमेयत्व (४), अगुरुलघुत्व (५), प्रदेशत्व (६), चेतनत्व (७), अचेतनत्व (८), मूर्त्तत्व (९), अमूर्त्तत्व (१०). येह द्रव्योंके सामान्य गुण हैं. प्रत्येक द्रव्यमें आठ आठ गुण, पाते हैं. अब इनका अर्थ लिखते हैं. अस्तित्व, सद्रूप-पणा, नित्यत्वादितत्त्वसामान्योका, और विशेषस्वभावोंका आधारभूत. । १ । वस्तुत्व, सामान्यविशेषात्मकपणा. । २ । द्रव्यत्व, द्रव्याधिकारोक्त 'सत्' और सत् द्रव्यका लक्षण है. । ३ । प्रमाणकरके, जो मापनेयोग्य है, सो प्रमेय है. । ४ । अगुरुलघुत्व, जो सूक्ष्म, और वचनके अगोचर है; और प्रतिसमय षट्पदगुणी हानि, और वृद्धि, जो द्रव्यमें होरही है, जो केवल आगमप्रमाणसेंही ग्राह्य है, सो अगुरुलघुगुण है. ।

यतः ॥

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते ॥

आज्ञासिद्धं तु तद् ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः ॥ १ ॥

भावार्थः—सूक्ष्म, जिनोक्त तत्त्व, जो हेतुओंसें खंडित नहीं होता है,

सो तो जिनाज्ञासैंही माननेयोग्य है. क्योंकि, जे रागद्वेषसैं रहित हैं, वे जिन, भगवान्, सर्वज्ञ, अन्यथा नहीं कहते हैं. । ५। प्रदेशत्व, क्षेत्रपणा, जो अविभागीपरमाणुपुद्गल जितना है. । ६। चेतनत्व, जिससैं वस्तुका अनुभव होता है. ।

यतः ॥

चैतन्यमनुभूतिः स्यात् सत्क्रियारूपमेव च ॥

क्रिया मनोवचःकायेष्वन्विता वर्तते ध्रुवम् ॥ १ ॥

भावार्थः—चैतन्य जो है, सो अनुभूति है, और सत्क्रियारूप है, और क्रिया निश्चयकरके मनवचनकायामें अन्वित होके वर्तते है. । ७। अचेतनत्व, ज्ञानरहितवस्तु. । ८। मूर्त्तत्व, रूपरसगंधस्पर्शवाला. । ९। अमूर्त्तत्व, रूपादिरहित. । १०।

अथ द्रव्योंके विशेष गुण लिखते हैं. ज्ञान (१), दर्शन (२), सुख (३), वीर्य (४), स्पर्श (५), रस (६), गंध (७), वर्ण (८), गतिहेतुत्व (९), स्थितिहेतुत्व (१०), अवगाहनहेतुत्व (११), वर्त्तनाहेतुत्व (१२), चेतनत्व (१३), अचेतनत्व (१४), मूर्त्तत्व (१५), अमूर्त्तत्व (१६). येह सोलां विशेष गुण हैं. इनमेंसैं जीवके १।२।३।४।१३।१६। येह ६ गुण है. पुद्गलके ५।६।७।८।१४।१५। येह ६ गुण है. धर्मास्तिकायके ९।१४।१६। येह ३ गुण है. अधर्मास्तिकायके १०।१४।१६। येह ३ गुण है. आकाशास्तिकायके ११।१४।१६। येह ३ गुण है. कालके १२।१४।१६। येह ३ गुण है. अंतके जे चार गुण है, वे स्वजातिकी अपेक्षा तो सामान्य गुण है, और विजातिकी अपेक्षा विशेष गुण हैं. इनका अर्थ प्रकट है, इस-वास्ते नहीं लिखा है.

अथ प्रसंगसैं जीवादि द्रव्योंके स्वभाव लिखते हैं. अस्तिस्वभाव (१), नास्तिस्वभाव (२), नित्यस्वभाव (३), अनित्यस्वभाव (४), एकस्वभाव (५), अनेकस्वभाव (६), भेदस्वभाव (७), अभेदस्वभाव (८), भव्यस्वभाव (९), अभव्यस्वभाव (१०), परमस्वभाव (११), यह इग्यारें

(११) द्रव्योंके सामान्य स्वभाव है. तथा चेतनस्वभाव (१), अचेतनस्वभाव (२), मूर्त्तस्वभाव (३), अमूर्त्तस्वभाव (४), एकप्रदेशस्वभाव (५), अनेकप्रदेशस्वभाव (६), विभावस्वभाव (७), शुद्धस्वभाव (८), अशुद्ध स्वभाव (९), उपचरितस्वभाव (१०), येह दश द्रव्योंके विशेषस्वभाव है. एतावता दोनों मिलाके एकवीस (२१) स्वभाव हुए. तिनमें जीवपुद्गलके एकवीस (२१) स्वभाव; धर्मास्तिकाय १, अधर्मास्तिकाय २, आकाशास्तिकाय ३, इन तीनोंके चेतनस्वभाव १, मूर्त्तस्वभाव २, विभावस्वभाव ३, अशुद्धस्वभाव ४, उपचरितस्वभाव [प्रत्यंतरमें—एकप्रदेशस्वभाव—द्रव्य-गुणपर्यायके रासमें शुद्धस्वभाव] ५, इन पांचोंको वर्जके सोला स्वभाव. कालके पूर्वोक्त पांच, और बहुप्रदेशस्वभाव, एवं छ (६) स्वभावको वर्जके पंचदश (१५), स्वभाव जानने.

तदुक्तम् ॥

एकविंशति भावाः स्युजर्विपुद्गलयोर्मताः ॥

धर्मादीनां षोडश स्युः काले पञ्चदश स्मृताः ॥ १ ॥

इति स्वभाव भी, गुणपर्यायके अंतर्भूतही जानने; पृथक् नहीं. परंतु इतना विशेष है कि, 'गुण' तो गुणीमेंही रहता है, और 'स्वभाव' गुण गुणी दोनोंमें रहता है. क्योंकि, गुण गुणी अपनी अपनी परिणतिको परिणमता है; और जो परिणति है, सो ही, स्वभाव है.

अथ स्वभावोंके अर्थ लिखते हैं. अस्तित्वस्वभाव, स्वभावलाभसें कदापि दूर न होना. । १ । नास्तित्वस्वभाव, पररूपकरके न होना. । २ । अपने अपने क्रमभावी नानाप्रकारके पर्याय, श्यामत्वरक्तत्वादिक, वे, भेदक हैं; उनके हुए भी, यह द्रव्य, वोही है, जो पूर्व अनुभव किया था; ऐसा ज्ञान जिससें होता है, सो नित्यस्वभाव. । ३ । द्रव्यका जो पर्याय परिणामीपणा, सो अनित्यस्वभाव. अर्थात् जिस रूपसें उत्पादव्यय है, तिस रूपसें अनित्यस्वभाव है. । ४ । सहभावीस्वभावोंका जो एकरूपकरके आधार होवे, सो एकस्वभाव. जैसें रूपरसगंधस्पर्शका एक आधार, घट है, तैसें नानाप्रकारके धर्माधारत्वकरके एकस्वभावता. । ५ ।

एकमें जो अनेक स्वभाव उपलंभ होवे, सो अनेकस्वभाव. अर्थात् मृदादिद्रव्यका स्थास कोस कुशूलादिक अनेक द्रव्य प्रवाह है, तिससैं अनेकस्वभाव कहीये; पर्यायपणे आदिष्ट द्रव्य करिये, तब आकाशादिक द्रव्यमें भी, घटाकाशादिक भेदकरके यह स्वभाव दुर्लभ नहीं है. । ६ । गुणगुणी, पर्यायपर्यायी, आदिका संज्ञासंख्यालक्षणादिक भेदकरके सातमा भेदस्वभाव जानना. । ७ । संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजन गुणगुणी-आदिका एक स्वभाव होनेसैं, अभेदवृत्तिद्वारा अभेदस्वभाव. । ८ । अनेक कार्यकारणशक्तिक जो अवस्थित द्रव्य है, तिसको क्रमिकविशेषता आविर्भावकरके अतिव्यंग्य होना, अर्थात् आगामिकालमें परस्वरूपाकार होना, सो भव्यस्वभाव. । ९ । तीनों कालमें परद्रव्यमें मिले हुए भी, परस्वरूपाकार न होना, सो अभव्यस्वभाव. ॥

यदुक्तम् ॥

अन्नोन्नं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णस्स ॥

मेलंताविय णिच्चं सगसगभावं णविजहंति ॥१॥ इति. ॥१०॥

स्वलक्षणीभूत परिणामिक भावप्रधानताकरके परम भावस्वभाव कहिये; तात्पर्य यह है कि, जिस जिस द्रव्यमें जो जो परिणामिकभाव प्रधान है, सो सो, परमभावस्वभाव है. यथा ज्ञानस्वरूप आत्मा. । ११ । यह सामान्यस्वभावोंका संक्षेपार्थ है. विशेषार्थ देखना होवे तो, बृहतूनय-चक्रसैं देखलेना.

जिससैं चेतनपणाका व्यवहार होवे, सो चेतनस्वभाव. । १ । चेतन-स्वभावसैं उलटा, अचेतनस्वभाव. । २ । रूपरसगंधस्पर्शादिक जिससैं धारण करिये, सो मूर्त्तस्वभाव. । ३ । मूर्त्तस्वभावसैं उलटा, अमूर्त्तस्वभाव. । ४ । एकत्वपरिणति अखंडाकारसन्निवेशका जो भाजनपणा, सो एकप्रदेशस्वभाव. । ५ । जो भिन्नप्रदेशयोगकरके तथा भिन्नप्रदेशकल्पनाकरके अनेकप्रदेशव्यवहारयोग्यपणा होवे, सो अनेकप्रदेशस्वभाव. । ६ । स्वभावसैं अन्यथा जो होवे, सो विभावस्वभाव. । ७ । जो केवल शुद्ध होवे, अर्थात् उपाधिभावरहित अंतर्भावपरिणमन, सो शुद्धस्वभाव. । ८ ।

इससे विपरीत, अर्थात् उपाधिजनित बहिर्भावपरिणमन योग्यता, सो अशु-
द्धस्वभाव. । ९ । नियमितस्वभावका जो अन्यत्र अपरस्थानमें उपचार
करना सो, उपचरितस्वभाव. । १० । उपचरितस्वभाव दो प्रकारका है;
एक कर्मजन्य, और दूसरा स्वाभाविक. तहां पुद्गलसंबंधसे जीवको मूर्त-
पणा, और अचेतनपणा, जो कहते हैं, सो 'गौर्वाहीकः' इसतरें उपचार
है, सो कर्मजनित है; इसवास्ते कर्म, सोही उपचरितस्वभाव है. और
दूसरा जैसे सिद्धात्माको परज्ञातृत्व, परदर्शकत्व, मानना.

अब जो कोई वादी इन पूर्वोक्त स्वभावोंको न माने, तिसके मतमें
जो दूषण आवे है सो, लिखते हैं. जेकर एकांत अस्तिस्वभावही माने,
तब तो, नास्तिस्वभाव, न मानेगा, तब तो, सर्वपदार्थकी भिन्नभिन्न
नियत स्वरूपावस्था नहीं होवेगी; तब संकरादि दूषण होवेंगे; जगत्
एकरूप होजायगा. और सो तो, नर्वशास्त्रव्यवहारविरुद्ध है. इसवास्ते
परपदार्थकी अपेक्षा, नास्तिस्वभाव भी, माननाही पड़ेगा; । १ ।

जेकर एकांत नास्तिस्वभाव माने, तब सर्व जगत् शून्य सिद्ध होवेगा. । २ ।

जेकर एकांत नित्यही मानेगा, तब नित्यको एकरूप होनेसे
अर्थक्रियाकारित्वका अभाव होवेगा, अर्थक्रियाकारित्वके अभावसे
द्रव्यकाही अभाव होवेगा. । ३ ।

जेकर एकांत अनित्य मानेगा, तब द्रव्य निरन्वय नाश होवेगा;
तब तो, पूर्वोक्तही दूषण होगा. । ४ ।

जेकर एकांत एक स्वभाव माने, तब विशेषका अभाव होवेगा; जब
विशेषका अभाव होवेगा, तब अनेकस्वभावविना मूलसत्तारूप सामा-
न्यका भी अभाव होवेगा.

तदुक्तं ॥

निर्विशेषं सामान्यं भवेत् खरविषाणवत् ॥

सामान्यरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेवहि ॥ १ ॥

भाषार्थः—विशेषविना सामान्य गर्दभके सींगसमान असद्रूप है, और
सामान्यविना विशेष भी असद्रूप है, खरशृंगवत्. ॥ ५ ॥ जेकर एकांत

अनेकरूप माने, तब द्रव्यका अभाव होवेगा, निराधार होनेसे; और आधाराधेयके अभावसे वस्तुकाही अभाव होवेगा. । ६।

जेकर एकांत भेदही माने, तब विशेषोंके निराधार होनेसे, निःकेवल गुणपर्यायका बोध न होना चाहिये. क्योंकि, आधाराधेयके अभेदविना दूसरा संबंध, घटही नहीं सकता है; ऐसे हुए अर्थक्रियाकारित्वका अभाव होवेगा, और तिसके अभावसे द्रव्यका भी अभाव होवेगा. । ७।

जेकर एकांत अभेदपक्ष माने, तब सर्व पदार्थ एकरूप होजावेंगे; तिसकरके 'इदं द्रव्यं' यह द्रव्य 'अयं गुणः' यह गुण 'अयं पर्यायः' यह पर्याय, इत्यादि व्यवहारका विरोध होवेगा; और अर्थक्रियाका अभाव होवेगा, अर्थक्रियाके अभावसे द्रव्यकाभी अभाव होवेगा. । ८।

जेकर एकांत भव्यस्वभावही माने, तब सर्वद्रव्य परिणामी होके द्रव्यांतरके रूपको प्राप्त होवेंगे, तब संकरादि दूषण होवेंगे. संकरादि दूषण येह हैं. संकर (१), व्यतिकर (२), विरोध (३), वैयधिकरण (४), अनवस्था (५), संशय (६), अप्रतिपत्ति (७), अभाव (८).

इनका अर्थः—सर्ववस्तुकी एकवस्तु होजावे, तब संकरदूषण होवें. १. जिस वस्तुकी किसीप्रकारसे भी स्थिति न होवे, सो व्यतिकरदूषण. २. जडका स्वभाव चेतन होवे, और चेतनका स्वभाव जड होवे, सो विरोध-दूषण. ३. जो अनेकवस्तुकी एककेविषे विषमताकरके स्थिति होवे, सो वैयधिकरणदूषण. ४. एकसे दूसरा उत्पन्न होगा, दूसरेसे तीसरा, तीसरेसे चौथा उत्पन्न होगा, इसतरे जडसे चेतन, चेतनसे जड, सो अनवस्थादूषण. ५. इसको चेतन कहें कि, जड कहें? ऐसा जो संदेह, सो संशयदूषण. ६. जिसका किसही कालमें निश्चय न होवे कि, यह जड है कि चेतन है सो अप्रतिपत्तिदूषण. ७. सर्वथा वस्तुका नाशही होवे, सो अभावदूषण. ८. इसवास्ते इन पूर्वोक्त दूषणोंके दूर करने-वास्ते, कथंचित् अभव्यपक्ष भी माननाही योग्य है. । ९।

जेकर एकांत अभव्यस्वभावही माने, तब सर्वथा शून्यताकाही प्रसंग होवेगा. । १०।

यादि परमभावस्वभाव न माने तो, द्रव्यमें प्रसिद्धरूप कैसे दिया जाय ? क्योंकि, अनंतधर्मात्मक वस्तुको एकधर्मपुरुषकारकरके बुलाना कथन करना, सोही परमभावस्वभावका लक्षण है । ११ ।

जेकर एकांतचैतन्यस्वभाव माने तो, सर्व वस्तु चैतन्यरूप होजावेगी; तब ध्यान, ध्येय, ज्ञान, ज्ञेय, गुरु, शिष्यादिकका अभाव होवेगा। क्योंकि, जब जीवको सर्वथा चेतनस्वभावही कहें, अचेतनस्वभाव न कहें तो, अचेतनकर्मका जो कर्मद्रव्योपश्लेष तिसकरके जनित चेतनके विकार विना, जीवको शुद्ध सिद्धसदृशपणा होगा; तब तो, ध्यान ध्येय गुरु शिष्य इनकी क्या जरूर है ? ऐसे तो सर्वशास्त्रव्यवहार निष्फल होजायगा। शुद्धको अविद्यानिवृत्तिपणे, क्या उपकार होवे ? इसवास्ते 'अलवणा यवागूः' इस वचनवत्, अचेतन आत्मा, ऐसा भी कथंचित् कहना योग्य है । १२ ।

जेकर एकांत अचेतनस्वभाव माने, तब सकलचैतन्यका उच्छेद होवेगा । १३ ।

जेकर एकांत मूर्त्त माने, तब आत्माकी मुक्तिकेसाथ व्याप्ति न होवेगी । १४ ।

जेकर एकांत अमूर्त्त माने, तब आत्मा संसारी कदापि न होवेगा । १५ ।

जेकर एकांत एकप्रदेशस्वभाव माने, तब अखंड परिपूर्ण आत्माको अनेककार्यकारित्वकी हानि होवेगी। जैसे घटादिक अवयवी, देशसें सकंप, और देशसें निष्कंप देखते हैं; सो द्रव्यको अनेकप्रदेशी न माननेसें कैसे सिद्ध होवेगा ? यदि अवयव कंपते हुए भी, अवयवी निष्कंप है, ऐसे कहो तो 'चलती' यह प्रयोग कैसे सिद्ध होगा ? प्रदेशवृत्तिकंपका जैसे परंपरासंबंध है, तैसें देशवृत्तिकंपाभावका भी परंपरासंबंध है, तिसवास्ते देशसें चलता है, और देशसें नहीं चलता है, इस अस्खलित व्यवहारमें अनेक प्रदेश मानना; तथा अनेक प्रदेश स्वभाव न मानीये तो, आकाशादि द्रव्यमें परमाणुसंयोग कैसे घट सके ? क्योंकि, एकवृत्ति तो देशसें है, जैसे कुंडल इंद्रको, यहाँ

कुंडल तो कानमें प्रसृत है, और कान इंद्रका एक देश है, तो भी, इंद्र कहके बुलाया जाता है. और दूसरी वृत्ति सर्वसें है, जैसे सामान्य वस्त्र-द्रव्यकी, अर्थात् जामा अंगरखा सर्वअंगमें पहिरा है, सो देवदत्त, यह सर्वसें वृत्ति जाननी. तिहां प्रत्येकमें दूषण, सम्मति वृत्तिमें कहे हैं. यथा—परमाणुकी आकाशादिकके साथ देशसें वृत्ति माने तो, आकाशादिकके प्रदेश नहीं इच्छते भी मानने पड़ेंगे; और सर्वसें वृत्ति माने तो, परमाणु, आकाशादि प्रमाण होजायगा; और उभयाभाव माने तो, परमाणुको अवृत्तिपणा होजायगा; इसवास्ते द्रव्यको कथंचित् अनेक प्रदेशस्वभाव भी मानना ठीक है. । १६ ।

जेकर एकांत अनेक प्रदेशस्वभाव माने तो, अर्थ क्रियाकारित्वाभाव, और स्वस्वभावशून्यताका प्रसंग होवेगा. । १७ ।

जेकर एकांत विभावस्वभाव माने, तो मुक्तिका अभाव होजावेगा. । १८ ।

जेकर एकांत शुद्धस्वभाव माने, तब तो, आत्माको कर्मलेप न लगेगा और संसारकी विचित्रताका अभाव होवेगा. । १९ ।

जेकर एकांत अशुद्धस्वभाव माने तो, आत्मा कदापि शुद्ध न होवेगा. । २० ।

जेकर एकांत उपचरितस्वभाव माने, तब आत्मा कदापि ज्ञाता नहीं होवेगा. जेकर एकांत अनुपचरित माने तो, स्वपरव्यवसायीज्ञानवत आत्मा नहीं होसकेगा. क्योंकि, ज्ञानको स्वविषयत्व तो अनुपचरित है, परंतु परविषयत्व परापेक्षासें प्रतीयमानपणे, तथा परनिरूपित संबंधपणे उपचरित है. । २१ ।

इसवास्ते स्याद्वादमतकरके सर्वही स्वभाव, कथंचित् द्रव्यमें मानने चाहिये.

उक्तंच ॥

नानास्वभावसंयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः ॥

तच्च सापेक्षसिद्ध्यर्थं स्यान्नयैर्मिश्रितं कुरु ॥ १ ॥

भाषार्थः—नानास्वभावसंयुक्त द्रव्यको प्रमाणसें जानके, तिस द्रव्यको सापेक्ष स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षा अस्तिरूप, परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षा नास्तिरूप, इत्यादि सिद्धिकेवास्ते ‘स्यात्’ शब्द और ‘नय’ इनसें मिश्रित करो. ॥

इसवास्ते नयके मतद्वारा स्वभावोंका अधिगम संक्षेपमात्रसें द्रव्योंमें दिखाते हैं.

द्रव्यका जो अस्तिस्वभाव है, सो, स्वद्रव्यादिचतुष्टयके ग्रहणसें, द्रव्यार्थिक नयके मतसें, जानना. । १ ।

परद्रव्यादिचतुष्टयके ग्रहणसें, द्रव्यार्थिक नयके मतसें, नास्तिस्वभाव है. । २ ।

उक्तंच ॥

“ ॥ सर्वमस्तिस्वरूपेण पररूपेण नास्ति च ॥ ”

उत्पादव्ययकी गौणताकरके सत्तामात्रके ग्रहणसें, द्रव्यार्थिकनयके मतसें, नित्यस्वभाव है. । ३ ।

उत्पादव्ययकी मुख्यतासें; और सत्ताकी गौणतासें, ऐसें पर्यायार्थिक नयके मतसें अनित्यस्वभाव है. । ४ ।

भेदकल्पनाकी निरपेक्षतासें, शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, एक स्वभाव है. । ५ ।

अन्वयद्रव्यार्थिकसें, अनेकस्वभाव है. कालान्वयमें सत्ताग्राहक, और देशान्वयमें अन्वयग्राहक नय, प्रवर्त्तता है. । ६ ।

सद्भुतव्यवहारनयसें, गुणगुणी, पर्यायपर्यायीका भेदस्वभाव है. । ७ ।

गुणगुण्यादिभेदनिरपेक्षतासें, शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, अभेदस्वभाव है. । ८ ।

परमभावग्राहकनयके मतसें, भव्य, अभव्य, स्वभाव जानने, भव्यता, सो स्वभावनिरूपित है; और अभव्यता, सो उत्पन्नस्वभावकी तथा परमावकी साधारण है; इसवास्ते यहां अस्तिनास्तिस्वभावकीतरें स्वपरद्रव्यादिग्राहकनयोंकी प्रवृत्ति, नहीं होसकती है. । ९ । १० ।

परिणामिक प्राधान्यतासें, परमस्वभाव, द्रव्योंमें है. परिणामका स्वरूप ऐसा है.

सर्वथा न गमो यस्मात् सर्वथा न च आगमः ॥

परिणामः प्रमासिद्ध इष्टश्च खलु पंडितैः ॥ १ ॥

भाषार्थः—सर्वथा जिससें जाना न होवे, और सर्वथा आगमन, न होवे, सो परिणाम, प्रमाणसिद्ध है; ऐसा पंडितोंको इष्ट है. जैसें सुवर्णके कटक कुंडल कंकणादि. । ११ ।

शुद्धाशुद्धपरमभावग्राहक नयके मतस, चेतनस्वभाव जीवको; और असंभूतव्यवहारनयसें, ज्ञानावरणादि कर्म, तथा नोकर्म मनवचनकायापणा, इनको चेतन कहिये. चेतनसंयोगकृतपर्याय वहां है, इसवास्ते 'इदं शरीरमावश्यकं जानाति' यह शरीर आवश्यक जानता है, इत्यादि व्यवहार इसीवास्ते होता है. घृतं दहतीतिवत्. । १२ ।

परमभावग्राहकनयके मतसें कर्म नोकर्मको, अचेतनस्वभाव; यथा घृत अनुष्णस्वभाव. और असंभूतव्यवहारनयसें जीवको भी, अचेतनस्वभाव. इसीवास्ते 'जडोयमचेतनोयम्' इत्यादि व्यवहार है. । १३ ।

परमभावग्राहकनयके मतसें कर्म नोकर्मको मूर्त्तस्वभाव असंभूतव्यवहारनयसें जीवको भी मूर्त्तस्वभाव; इसीवास्ते 'अयमात्मा दृश्यते' यह आत्मा दिखता है, 'अमुमात्मानं पश्यामि' इस आत्माको मैं देखता हूं, इत्यादि व्यवहार है. तथा 'रक्तौ च पद्मप्रभवासुपूज्यौ' इत्यादि वचन भी इसी स्वभावसें है. । १४ ।

परमभावग्राहकनयसें, पुद्गलवर्जके अन्योको अमूर्त्त स्वभाव; और पुद्गलको उपचारसें भी, अमूर्त्तस्वभाव नहीं, तो एकवीसमा भाव नहीं होगा; तब तो, 'एकविंशतिभावाः स्युर्जाविपुद्गलयोर्मताः' इस वचनके व्याघातसें अपसिद्धांत होवेगा, तिसको दूर करनेवास्ते, असंभूतव्यवहारनयसें परोक्ष, पुद्गलपरमाणु है, तिसको अमूर्त्त कहिये. व्यवहारिकप्रत्यक्षके अगोचरपणा, सोही, परमाणुका अमूर्त्तपणा, अंगिकार करिये हैं.

तदुक्तम् ॥

“॥ व्यावहारिकप्रत्यक्षागोचरत्वममूर्तत्वं परमाणोर्भाक्तं स्वी-
क्रियतइत्यर्थः ॥” । १५ ।

कालाणु, और पुद्गलाणुको परमभावग्राहकनयके मतसे, एकप्रदेशस्व-
भाव; और भेदकल्पनानिरपेक्षतासे शुद्धद्रव्यार्थिकनयसे एकप्रदेशस्व-
भाव, कालपुद्गलसे इतर धर्माधर्माकाशजीवोंको भी, अखंड होनेसे है । १६ ।

भेदकल्पनासापेक्षसे शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे, एक छूटे परमाणुविना
सर्वद्रव्यको अनेकप्रदेशस्वभाव; और पुद्गलपरमाणुको भी अनेकप्रदेश
होनेकी योग्यता है, तिसवास्ते उपचारसे तिसको भी अनेकप्रदेशस्व-
भाव कहिये. और कालाणुमें सो उपचार कारण नहीं है, तिसवास्ते
तिसको सर्वथा यह स्वभाव नहीं है । १७ ।

शुद्धाशुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसे, विभावस्वभाव है । १८ ।

शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसे, शुद्धस्वभाव है । १९ ।

अशुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसे, अशुद्धस्वभाव है । २० ।

असद्भूतव्यवहारनयके मतसे, उपचरितस्वभाव है । २१ ।

येह नयोंके मतसे स्वभावोंका वर्णन कथन किया. अथ किञ्चिन्मात्र
नयका स्वरूप लिखते हैं.

“॥ नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्त्यैकस्मिन् स्वभावे वस्तुनयनं नयः ॥”

भावार्थः—नाना स्वभावसें हटाके, वस्तुको एक स्वभावमें प्राप्त
करना, सो नय है.

अथवा । “॥ प्रमाणेन संगृहीतार्थैकांशो नयः ॥”

भावार्थः—प्रमाणकरके जो संगृहीतार्थ है, तिसका जो एक अंश, सो नय.

अथवा । “॥ ज्ञातुरभिप्रायः श्रुतविकल्पो वा इत्येके ॥”

भावार्थः—ज्ञाताका जो अभिप्राय, वा श्रुतविकल्प, सो नय. ।

अथवा । “॥ सर्वत्रानंतधर्माध्यासिते वस्तुनि एकांशग्राहको बोधो
नयः ॥”

भावार्थः—सर्वत्र अनंतधर्माध्यासितवस्तुमें एक अंशका ग्राहक जो बोध है, सो नय है.—इत्यनुयोगद्वारवृत्तौ. ॥

अथवा । “॥ अनंतधर्मात्मके वस्तुन्येकधर्मोन्नयनं ज्ञानं नयः ॥”
इति नयचक्रसारे ॥

भावार्थः—अनंतधर्मात्मक जो वस्तु अर्थात् जीवादिक एक पदार्थमें अनंतधर्म है, उसका जो एक धर्म ग्रहण करना, और दूसरे अनंतधर्म उसमें रहे है, उनका उच्छेद नहीं, और ग्रहण भी नहीं, केवल किसी-एक धर्मकी मुख्यता करनी, सो नय कहिये.

अथवा । “ ॥ नीयते येन श्रुताख्यप्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्यांश-
स्तदितरांशौदासीन्यतः सप्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नयः ॥ ”

अर्थः—यह सूत्र स्याद्वादरत्नाकरका है । प्रत्यक्षादि प्रमाणसें निश्चित किया जो अर्थ, तिसके अंशको, अंशोंको, वा ग्रहण करें, और इतर अंशोंमें औदासीन रहे, अर्थात् इतर अंशोंका निषेध न करे, सो नय, कहिये हैं. यदि मानें अंशके सिवाय तदितर दूसरे अंशोंका निषेध करे तो, नयाभास हो जावे. जैनमतमें जो कथन है, सो नयविना नहीं है.

यदुक्तं विशेषावश्यके ॥

णत्थि णएहिं विहुणं सुत्तं अत्थो य जिणमए किंचि ॥

आसज्जउ सोआरं नए नयविसारओ बूआ ॥ १ ॥

अर्थः—जिनमतमें नयविना कोई भी सूत्र, और अर्थ, नहीं है; इसवास्ते नयविशारद, नयका जानकार गुरु, योग्य श्रोताको प्राप्त होकर, विविध नय कथन करे. इति. ॥

अथ प्रसंगसें नयाभासका लक्षण कहते हैं.

“ ॥ स्वाभिप्रेतादंशादितरांशापलापी नयाभासः ॥ ”

भावार्थः—अपने इच्छित अंशसें पदार्थके अन्य अंशको जो निषेध करे, और नयकीतरें भासन होवे, सो नयाभास है; परंतु नय नहीं. जैसे अन्य-

तीर्थीयोंके मतमें एकांत नित्यअनित्यादिके कथन करनेवाले वाक्य है-
इति. ॥

वे नय, विस्तारविवक्षामें अनेक प्रकारके हैं. क्योंकि, नानावस्तुमें अनंत अंशोंके एकएक अंशको कथन करनेवाले जे वक्ताके उपन्यास है, वे सर्व, नय हैं. ।

यदुक्तं सम्मतौ अनुयोगद्वारवृत्तौ च ॥

जावइया वयणपहा तावइया चेव हुंति नयवाया ॥

जावइया नयवाया तावइया चेव परसमया ॥ १ ॥

अर्थः—जितने वचनके पथ—रस्ते हैं, उतनेही नयोंके वचन हैं, और जितने नयोंके वचन हैं, उतनेही परमत हैं, एकांत माननेसें. इसवास्ते विस्तारसें सर्व नयोंके स्वरूप लिख नहीं सकते हैं, संक्षेपसें लिखते हैं.

सो, पूर्वोक्तस्वरूप नय, दो तरेंके हैं. द्रव्यार्थिकनय (१), और पर्या-
यार्थिकनय (२).

यदुक्तं ॥

णिच्छयववहारणया मूलिमभेदा णयाण सव्वाणं ॥

णिच्छयसाहणहेऊ दव्व पज्जत्थिया मुणह ॥ १ ॥

अर्थः—निश्चयनय, और व्यवहारनय, येह सर्व नयोंके मूल भेद हैं. और निश्चयनयके साधनहेतु, द्रव्यार्थिक, और पर्यायार्थिक, जानो. इति. ॥

इनमें पूर्वोक्त द्रव्यही अर्थ प्रयोजन है, जिसका, सो द्रव्यार्थिक. उसके युक्तिकल्पनासें दश भेद हैं.

तथाहि ॥

अन्वयद्रव्यार्थिक—जो एकस्वभाव कहिये; जैसें एकही द्रव्य गुणपर्यायस्वभाव कहिये, अर्थात् गुणपर्यायके विषे द्रव्यका अन्वय है, जैसें द्रव्यके जाननेसें द्रव्यार्थादेशसें तदनुगत सर्वगुणपर्याय जाने कहिये; जैसें सामान्यप्रत्यासत्ति परवादीकी सर्वव्यक्ति जानी कहै, तैसें यहां जानना. यह अन्वयद्रव्यार्थिकः । १ ।

स्वद्रव्यादिग्राहक—जैसे अर्थ, जो घटादिकद्रव्य सो स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव, इन चारोंकी अपेक्षा सत् है, स्वद्रव्य मृत्तिका, स्वक्षेत्र पाटलिपुरादि, स्वकाल विवक्षितहेमंतादि, स्वभाव रक्ततादि, इनोंसे जो घटादिककी सत्ता, सो प्रमाण है, सिद्ध है. इति स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकः । २ ।

परद्रव्यादिग्राहक—जैसे अर्थ जो घटादिक, सो, परद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा सत् नहीं है; यथा परद्रव्य तंतुप्रमुख, परक्षेत्र काशीप्रमुख, परकाल अतीत अनागतादि, परभाव श्यामतादि, इन चारोंकी अपेक्षा, घट, असत् है, इति परद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिकः । ३ ।

परमभावग्राहक—जिस नयानुसार आत्माको ज्ञानस्वरूप कहते हैं; यद्यपि दर्शन, चारित्र, वीर्य, लेख्यादिक आत्माके अनंत गुण है, तो भी, सर्वमें ज्ञानस्वभाव सार उत्कृष्ट है. क्योंकि, अन्य द्रव्यसे आत्माका भेद ज्ञानस्वभाव दिखाता है, तिसवास्ते शीघ्रोपस्थितिकपणे आत्माका ज्ञानही परमभाव है, इसवास्ते 'ज्ञानमय आत्मा' यहां अनेक स्वभावोंके बीचसे ज्ञानाख्यपरमभाव ग्रहण किया. ऐसे दूसरे द्रव्योंके भी परमभाव, असाधारण गुण लेने. इति परमभावग्राहकद्रव्यार्थिकः । ४ ।

कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिक—जैसे सर्वसंसारी प्राणीमात्रको सिद्धसमान शुद्धात्मा गिणीये कहिये, अर्थात् सहजभाव जो शुद्धात्मस्वरूप उसको अग्रगामी करिये, और भवपर्याय जो संसारके भाव उनको गिणिये नहीं, अर्थात् उनकी विवक्षा न करिये. इति ।

यदुक्तं द्रव्यसंग्रहे ॥

मग्गणगुणठाणेहिं चउदसहिं हवंति तह असु द्दणया ॥

विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥ १ ॥

चतुर्दशमार्गणा. औरगुणस्थानकरके अशुद्ध नय होते हैं, ऐसे जानना, और सर्वसंसारी, शुद्धनयापेक्षा शुद्ध है, ऐसे जानना. इति कर्मोपाधिनिरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकः । ५ ।

उत्पादव्ययकी गौणतासें, और सत्ताकी मुख्यतासें, शुद्धद्रव्यार्थिक-जैसें द्रव्य नित्य है, यहां तीनोंही कालमें अविचलितरूपसत्ताका मुख्य-पणे ग्रहण करनेसें, यह भाव संभव होता है. क्योंकि, यद्यपि पर्याय, प्रतिक्षण परिणामी है, तो भी, जीवपुद्गलादिकद्रव्यसत्ता कदापि चलती नहीं है. इति उत्पादव्ययगौणत्वे सत्ताग्राहकः शुद्धद्रव्यार्थिकः । ६ ।

भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिक-जैसें निजगुणपर्यायस्वभावसें, द्रव्य, अभिन्न है. । ७ ।

कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिक-जैसें क्रोधादिकर्मभावमय आत्मा, जिस समय जो द्रव्य जिस भावे परिणमे, तिस समय सो द्रव्य तन्मय जानना; यथा लोहपिंड अग्निपणे परिणत हुआ तिस कालमें अग्निरूप जानना, ऐसेही क्रोधमोहादि कर्मोदयकेसमय क्रोधादिभाव परिणत आत्मा क्रोधादिरूप जानना. इसी वास्ते आत्माके आठ भेद सिद्धांतमें प्रसिद्ध है. इति । ८ ।

उत्पादव्ययसापेक्ष सत्ताग्राहक अशुद्धद्रव्यार्थिक-जैसें एकसमयमें द्रव्य को उत्पादव्ययध्रुवयुक्त कहना, यथा जो कटकादिका उत्पादसमय, सोही केयूरादिका विनाशसमय, और कनकसत्ता तो, अवर्जनीयही है. इति । ९ ।

भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिक-जैसें ज्ञानदर्शनादिक शुद्ध गुण आत्माके हैं. यहां षष्ठी विभक्ति, भेद कथन करती है. ' भिक्षोः पात्रमिति-वत् ' भिक्षुसाधुका पात्र; यहां साधु, और पात्रका भेद है. इसीतरें आत्मा, और गुणका भेद षष्ठी विभक्ति कहती है; और गुणगुणीका भेद है नहीं, तो भी, भेदकल्पनाकी अपेक्षासें अशुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें ऐसें कथन करनेमें आता है. इति । १० ।

येह द्रव्यार्थिकके दश भेद हुए. ॥

अथ पर्यायार्थिकनयके भेद लिखते हैं:-पर्यायनाम, जो उत्पत्ति, और विनाशको प्राप्त होवे.

यदुक्तम् ॥

अनादिनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम् ॥

उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥ १ ॥

भावार्थः—अनादि अनंतद्रव्यमें स्वपर्याय समयसमयमें उत्पन्न होते हैं, और विनाश होते हैं, जैसे जलमें जलकल्लोल, तरंग इत्यर्थः ।

पूर्वोक्त षट् २ हानिवृद्धिरूप, और नरनारकादिरूप, यहां पर्यायशब्दकरके ग्रहण करिये हैं. पर्याय दो प्रकारके हैं, सहभावी पर्याय (१) क्रमभावी पर्याय (२). जो सहभावीपर्याय है, तिसको गुण कहते हैं. पर्यायशब्दसे पर्यायसामान्य स्वव्यक्तिव्यापीको कथन करनेसे दोष नहीं. तहां सहभावीपर्यायोंको गुण कहते हैं; जैसे आत्माका विज्ञान व्यक्तिशक्तिआदिक. और क्रमभावीको पर्याय कहते हैं; जैसे आत्माके सुख दुःख शोकहर्षादि.

पर्याय भी, स्वभाव (१) विभाव (२) और द्रव्य (१) गुण (२) करके चार प्रकारके हैं. । तथाहि—स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्याय, यथा चरमशरीरसे किंचित् न्यूनसिद्धपर्याय. । १ । स्वभावगुणव्यंजनपर्याय, यथा जीवके अनंतज्ञानदर्शन सुखवीर्य आदि गुण. । २ । विभावद्रव्यव्यंजनपर्याय, यथा चौरासीलाख योनि आदि भेद. । ३ । विभावगुणाव्यंजनपर्याय, यथा मत्तिआदि. । ४ । पुद्गलके भी द्व्यणुकादि विभावद्रव्यव्यंजन पर्याय है. । ५ । रससे रसांतर, गंधसे गंधांतर, इत्यादिकका होना, सो पुद्गलके विभावगुणव्यंजनपर्याय है. । ६ । अविभागी पुद्गलपरमाणु जे हैं, वे स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्याय है. । ७ । एकएक वर्ण गंध रस और अविरुद्ध दो स्पर्श येह स्वभाव गुणव्यंजनपर्याय है. । ८ । ऐसे एकत्वपृथक्त्वादि भी पर्याय है.

उक्तंच ॥

एगत्तं च पटुत्तं च संखा संठाणमेवय ॥

संजोगो य विभागो य पज्जयाणं तु लक्खणं ॥ १ ॥

भावार्थः—एकका जो भाव, सो एकत्व; भिन्न भी परमाणुआदिकमें जैसे यह घट है, ऐसी प्रतीतिका हेतु, सो एकत्व. पृथक्त्व यह इससे पृथक् (अलग) है, ऐसे ज्ञानका हेतु. संख्या, संस्थान, संयोग, विभाग, च शब्दसे नव पुराणादि, येह सर्व पर्यायके लक्षण है.

पूर्वोक्तस्वरूप, पर्यायही है, अर्थ प्रयोजन जिसका, सो पर्यायार्थिक. नय. सो छ (६) प्रकारका है.

तद्यथा ॥

अनादि नित्य शुद्धपर्यायार्थिक—जैसें पुद्गलपर्याय मेरुप्रमुख प्रवाहसें अनादि, और नित्य है. असंख्याते कालमें अन्योन्य पुद्गलसंक्रम हुए भी, संस्थान वोही है, ऐसेही रत्नप्रभादिक पृथिवीपर्याय जानने. । १ ।

सादि नित्य शुद्धपर्यायार्थिक—जैसें सिद्धके पर्यायकी आदि है. क्योंकि, सर्व कर्म क्षय हुए, तब सिद्धपर्याय उत्पन्न हुआ, तिससें आदि हुई; परंतु तिसका नाश अंत नहीं है, इसवास्ते नित्य है. एतावता सिद्धपर्याय सादिनित्य सिद्ध हुआ. । २ ।

सत्ताकी गौणतासें, उत्पादव्ययग्राहक अनित्य शुद्धपर्यायार्थिक—जैसें समयसमयमें पर्याय विनाशी है. यहां विनाशी कहनेसें विनाशका प्रतिपक्षी उत्पाद भी, आगया; परंतु ध्रुवताको गौणकरके दिखाइ नहीं. । ३ ।

सत्तासापेक्ष नित्यअशुद्धपर्यायार्थिक—जैसें एकसमयमें, पर्याय, उत्पाद व्यय ध्रुव तीनोंकरके रुद्ध है, ऐसा कहना. परंतु पर्यायका शुद्ध रूप तो, तिसकोही कहिये, जो सत्ता न दिखलानी. परंतु यहां तो, मूलसत्ता भी दिखाइ, इसवास्ते अशुद्ध भेद हुआ. । ४ ।

कर्मोपाधिनिरपेक्ष नित्य शुद्धपर्यायार्थिक—जैसें संसारीजीवके पर्याय, सिद्धके जीवसदृश है. यद्यपि कर्मोपाधि है, तथापि तिसकी विवक्षा न करिये; और ज्ञानदर्शनचारित्रादिक शुद्धपर्यायकीही विवक्षा करिये, तबही पूर्वोक्त कहना बनसकता है. । ५ ।

कर्मोपाधिसापेक्ष अनित्य अशुद्धपर्यायार्थिक—जैसें संसारवासी जीवोंको जन्ममरणका व्याधि है. यहां जन्मादिक जीवके जे पर्याय कर्मसंयोगसें है, वे अनित्य और अशुद्ध है, तिसवास्तेही जन्मादिपर्यायके नाश करनेके वास्ते, मोक्षार्थी जीव, प्रवृत्तमान होता है. । ६ ।

येह पर्यायार्थिकके षट् (६) भेद कथन किये. ॥

अथ इन पूर्वोक्त दोनों नयोंके स्थानप्रधान कहते हैं:—

द्रव्यार्थिक जो नय है, सो, नित्यही स्थानको कहता है; द्रव्यको नित्य, और सकल कालमें होनेसें. पर्यायार्थिक जो नय है, सो, अनित्यही स्थानको कहता है, प्रायः पर्यायोंको अनित्य होनेसें.

तदुक्तं राजप्रश्रीयवृत्तौ ॥

“ ॥ द्रव्यार्थिकनये नित्यं पर्यायार्थिकनयेत्वनित्यं द्रव्यार्थिकनयो द्रव्यमेव तात्त्विकमभिमन्यते नतु पर्यायान् द्रव्यचान्वयि परिणामित्वात् सकलकालभावि भवति ॥ ”

भावार्थः—द्रव्यार्थिकनयसें नित्य और पर्यायार्थिकनयसें अनित्य वस्तु है. द्रव्यार्थिकनय द्रव्यहीको तात्त्विक वस्तु माने हैं, परंतु पर्यायोंको नहीं. क्योंकि, द्रव्य अन्वयि है, परिणामी होनेसें, तीनों कालमें सद्रूप है.

पूर्वपक्षः—गुणप्रधान, तीसरा गुणार्थिक नय, क्यों नहीं कहा ?

उत्तरपक्षः—पर्यायोंके ग्रहण करनेसें साथ गुणका भी ग्रहण हो गया, इसवास्ते गुणार्थिक नय, पृथक् नहीं कहा.

प्रश्नः—पर्याय तो द्रव्यहीके हैं, तब द्रव्यार्थिक, और पर्यायार्थिक, येह दो नय कैसें होसकते हैं?

उत्तरः—द्रव्य और पर्यायके स्वरूपकी विवक्षासें कुछक विशेष है. तथाहि—पर्याय, द्रव्यसें भी सूक्ष्म है. एक द्रव्यमें अनंत पर्यायोंके संभव होनेसें. द्रव्यकी वृद्धिके हुए, पर्यायोंकी निश्चयही वृद्धि होती है. प्रति-द्रव्यमें संख्याते असंख्याते पर्याय, अवधिज्ञानसें परिच्छेद होनेसें. और पर्यायोंकी वृद्धि हुए, द्रव्यवृद्धिकी भजना.

तदुक्तं ॥

भयणाए खेत्तकाला परिवर्द्धतेसु दब्बभावेसु ॥

दब्बे वट्टइ भावो भावे दब्बं तु भयणिज्जं ॥ १ ॥

भावार्थः—द्रव्यभावकी वृद्धिमें क्षेत्रकालकी वृद्धिकी भजना है, द्रव्यकी वृद्धि हुए भावकी वृद्धि अवश्यमेव होती है, और भावकी वृद्धिमें द्रव्यवृद्धिकी भजना है. तथा क्षेत्रसें द्रव्य अनंतगुणे हैं, और द्रव्यसें अवधिज्ञानके विषयभूत पर्याय, संख्येयगुणे असंख्येयगुणे हैं.

तदुक्तं ॥

खित्तविसेसेहिंतो दब्बमणंतगुणियं पएसेहिं ॥

दब्बेहिंतो भावो संखगुणो असंखगुणिओ वा ॥ १ ॥

भावार्थः—क्षेत्रप्रदेशोंसें द्रव्य अनंतगुणा है, द्रव्यसें भाव संख्यातगुणा, वा, असंख्यातगुणा है; इत्यादि नंदिटीकामें विस्तारसहित कहा है. इसवास्ते द्रव्यपर्यायोंका स्वरूपविवक्षासें भिन्न होनेसें, नय भी दो तरेके हैं. यद्यपि दोनों नय, परस्पर मिलते भी हैं, तो भी, पृथक्भावको नहीं त्यागते हैं. इनका स्वभावभेद आगे कहेंगे.

प्रश्नः—द्रव्यपर्यायसें व्यतिरिक्त सामान्य विशेष है, तो फिर, सामान्यार्थिक, और विशेषार्थिक, नय क्यों नहीं ?

उत्तरः—द्रव्यपर्यायसें व्यतिरिक्त सामान्यविशेष है नहीं, इसवास्ते सामान्यार्थिक विशेषार्थिक नय नहीं कहे.

तद्यथा । तहां प्रसंगसें सामान्यका स्वरूप लिखते हैं. सामान्य दो प्रकारके हैं. तिर्यक्सामान्य (१) और ऊर्द्धतासामान्य (२).

प्रथमका लक्षण कहते हैं. ।

“ ॥ प्रतिव्यक्तितुल्यापरिणतिः तिर्यक्सामान्यं यथा शब-
लशाबलेयर्पिण्डेषु गोत्वमिति ॥ ”

गवादिकमें गोत्वादिस्वरूप तुल्यपरिणतिरूप तिर्यक्सामान्य है; उदाहरण जैसें, तिसही जातिवाला यह गोर्पिण्ड है, अथवा गोसदृश गवय है. ॥ १ ॥

दूसरे सामान्यका लक्षण. ।

“ ॥ पूर्वापरपरिणामसाधारणद्रव्यमूर्द्धतासामान्यम् यथा
कटककंकणाद्यनुगामिकांचनमिति ॥ ”

ऊर्द्धतासामान्य सो है, जो, पूर्वापरविवर्तव्यापि मृदादिद्रव्य यह त्रिकालगामि है.

तदुक्तं ॥

“ ॥ पूर्वापरपर्याययोरनुगतमेकं द्रवति तांस्तान् पर्यायान्
गच्छतीति व्युत्पत्त्या त्रिकालानुयायी यो वस्त्वंशस्तदूर्द्धतासामा-
न्यमित्यभिधीयते ॥ ”

पूर्वापरपर्यायोंमें एक अनुगत उन उन पर्यायोंको प्राप्त होवे, इस व्युत्पत्तिसे त्रिकालानुयायी, जो वस्त्वंश है, सो उर्द्धतासामान्य कहा जाता है. उदाहरण जैसे कटककंकनमें सोही सोना है. अथवा सोही यह जिनदत्त है. तहां तिर्यक्सामान्य तो, प्रतिव्यक्तिमें सादृश्यपरिणतिलक्षण व्यंजनपर्यायही है. क्योंकि, व्यंजनपर्याय, स्थूल है, कालांतर स्थायी है, शब्दोंके संकेतके विषय है, ऐसे प्रावचनिकोंमें अर्थात् जैनाचार्योंमें प्रसिद्ध होनेसे. और उर्द्धतासामान्य तो, द्रव्यहीको विवक्षासे कहता है. और विशेष भी, सामान्यसे विसदृश विवर्तलक्षण व्यक्तिरूप पर्यायोंके अंतर्भूतही कहे हैं. इसवास्ते द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयोंसे, अधिक नयोंका अवकाश नहीं है.

अथ सात नयकी संख्या कहते हैं:-द्रव्यार्थिकनयके तीन भेद हैं. नैगम (१) संग्रह (२) व्यवहार (३). पर्यायार्थिकनयके चार भेद हैं. ऋजुसूत्र (१) शब्द (२) समभिरूढ (३) एवंभूत (४). येह सर्व सात नय हुए. पांच भी नयभेद होते हैं, षट् भेद भी हैं, चार भेद भी हैं; यह कथन प्रवचनसारोद्धारवृत्तिमें विस्तारसहित है, सो आगे कहेंगे.

यदुक्तमनुयोगतद्वृत्त्यादिषु ॥

णेगेहिं माणेहिं मिणई इति णेगमस्स यनिरुत्ती सेसाणंपि
णयाणं लक्खणमिणं सुणह वोच्छं ॥ १ ॥

संगहियपिंडियत्थं संगहवयणं समासओ विंति वच्चइ विणि-
च्छियत्थं ववहारो सव्वद्वेसु ॥ २ ॥

पच्चुपन्नग्गाही उज्जुसुओ णयविही मुणेयवो इच्छइ विसेसि-
यतरं पच्चुपन्ननओ सदो ॥ ३ ॥

वत्थूओ संकमणं होइ अवत्थू णए समभिरूढे वंजणअत्थत-
दुभए एवंभूओ विसेसेति ॥ ४ ॥

णायंमि गिण्हियव्वे अगिण्हियव्वे य इत्थ अत्थंमि जइयव्वमेव
इइ जो उवएसो सो नओ नाम ॥ ५ ॥

अर्थः—जो एक मान महासत्ता सामान्यविशेषादि ज्ञानोंकरके वस्तु, न मापे, न परिच्छेद करे, किंतु सामान्यविशेषादि अनेक रूपसे वस्तुको माने, सो नैगम; यह नैगमकी निरुक्ति व्युत्पत्ति है. अथवा निगम, लोकमें बसता हूं, तिर्यग्लोकमें बसता हूं, इत्यादि जो सिद्धांतोक्तही बहुत परिच्छेदरूपही निगम है, उनमें जो होवे, सो नैगम. । १ ।

सम्यक्प्रकारसे जो ग्रहण करा है पिंडित एक जातिको प्राप्त हुआ अर्थविषय जिसने, सो ग्रहितपिंडितार्थ संग्रहका वचन, संक्षेपसे तीर्थकर गणधर कहते हैं. यह नय, सामान्यही मानता है, विशेष नहीं. इसवास्ते इसका वचन सामान्यार्थही है. और सामान्यरूपकरके सर्ववस्तुको ऋडी-करता है, अर्थात् सामान्यज्ञान विषय करता है. । २ ।

वस्त्रइत्यादि—‘चयनं चयः’ पिंडरूप होना, सो चय है. ‘निराधिक्येन’ अधिक जो चय सो कहिये निश्चय. ऐसा सामान्य है. सो, सामान्य, गया है जिससे, सो विनिश्चय, अर्थात् सामान्याभाव, तिसके अर्थे जो सदा प्रवर्ते, सो व्यवहारनय है. यह व्यवहार, सर्वद्रव्यमें प्रवर्त्ते है. क्योंकि, जगत्में घट स्तंभ कमलप्रमुख विशेषही प्रायः जलहरणादि क्रियामें काम आते हैं, परंतु तिससे अतिरिक्त सामान्य नहीं; इसवास्ते यह नय सामान्य नहीं मानता है. इसवास्तेही लोकव्यवहारप्रधान जो नय, सो व्यवहारनय. अथवा विशेषकरके जो निश्चय, विनिश्चय, गोपालस्त्रीबालकादि भी जिस अर्थको जानते हैं, तिस अर्थमें जो प्रवर्त्ते, सो व्यवहारनय है. यद्यपि निश्चयसे घटादिवस्तु-योंमें पांच (५) वर्ण, दो (२) गंध, पांच (५) रस, आठ (८) स्पर्श, है; तो भी, गोपालांगनादि जिसमें जिस वर्णादिककी अधिकता देखते हैं, तिसही नी-लादि वर्णवाली वस्तु कहते हैं; शेष नहीं मानते हैं. इतिव्यवहारनय. । ३ ।

वर्त्तमान कालमें जो वस्तु होवे, तिसको ग्रहण करनेका शील है जिसका, सो प्रत्युत्पन्नग्राही ऋजुसूत्रनय है. सो, अतीत अनागतको कुटिल जानके त्याग देता है, और ऋजु सरल वर्त्तमानकालभावीवस्तुको जो माने, सो ऋजुसूत्रनय, अतीत अनागत दोनों, नष्ट अनुत्पन्न होनेसे असत् है. और असत्का जो मानना है, सोही कुटिलता है, इस-

वास्ते नहीं मानता है। अथवा ऋजु अवक्र श्रुत है इसका, सो ऋजुश्रुत, शेष ज्ञानोंमें मुख्य होनेसें. तथाविध परोपकार साधनसें, श्रुतज्ञानहीको ज्ञान मानता है. परकी वस्तुसें अपना कार्य सिद्ध नहीं होता, इसवास्ते परकी जो वस्तु है, सो वस्तु नहीं. तथा भिन्नलिंग भिन्नवचनवाले शब्दोंकरके एकही वस्तु कहता है, 'तटः तटी तटं' इत्यादि; 'गुरुः गुरु गुरवः' इत्यादि. तथा इंद्रादिके नामस्थापनादि जे निक्षेप भेद है, उनको पृथक् २ मानता है. आगे जे नय कहेंगे, सो अतिशुद्ध होनेसें लिंगवचनके भेदसें वस्तुका भेद मानते हैं, और नाम स्थापना द्रव्य इन तीनों निक्षेपोंको नहीं मानते हैं. इति ऋजुसूत्र. १४।

अर्थको गौणपणे, और शब्दको मुख्यपणे जो माने, सो नय भी, उपचारसें शब्दनय कहा जाता है. यह नय, वर्तमान वस्तुको ऋजुसूत्रसें विशेषतर मानता है. तथाहि । 'तटः तटी तटं' इत्यादि शब्दोंके भिन्नही वाच्य मानता है, भिन्नलिंगवृत्ति होनेसें, स्त्रीपुरुष नपुंसकशब्दवत्. ऐसें यह नय मानता है. तथा 'गुरुः गुरु गुरवः' यहां भी अभिधेयका भेद है, वचनका भेद होनेसें 'पुरुषः पुरुषौ पुरुषाः' इत्यादिवत्. तथा नाम १, स्थापना २, द्रव्य ३, निक्षेप नहीं मानता है, कार्यसाधक न होनेसें; आकाशपुष्पवत्. पिछले नयसें विशुद्ध होनेसें इसका मानना विशेषतर है, समानलिंगवचनवाले बहुतसें शब्दोंका एक अभिधेय शब्दनय मानता है, जैसें इंद्र शक्र पुरंदरइत्यादि. इति शब्दनय. १५।

वत्थूइत्यादि-वस्तु, इंद्रादि, तिसका संक्रमण अन्यत्र शक्रादिमें जब होवे, तब अवस्तु होवे; समभिरूढनयके मतमें. यह नय, वाचकशब्दके भेद हुए, वाच्यार्थका भी भेद मानता है. शब्दनय तो, इंद्रशक्रपुरंदरादि शब्दोंका वाच्यार्थ एकही मानता है, परंतु यह समभिरूढनय, वाचकके भेदसें वाच्यका भी भेद मानता है. 'इंदतीति इंद्रः, शक्रोतीति शक्रः, पुरंदारयतीति पुरंदरः'. परमैश्वर्यादिक भिन्नही यहां प्रवृत्तिके निमित्त है. जेकर एकार्थिक मानीये तो, अतिप्रसंगदूषण होता है. घटपटादि शब्दोंको भी एकार्थिताका प्रसंग होवेगा. ऐसे हुए, जब इंद्रशब्द शक्रशब्दके साथ

एकार्थी हुआ, तब वस्तु परमैश्वर्यका, शकनलक्षणवस्तुमें संक्रमण करा, तब वे दोनोंको एकरूप कर दीया, तिसका संभव है नहीं. क्योंकि, जो परमैश्वर्यरूप पर्याय है, सोही, शकनपर्याय नहीं हो सकता है. जेकर होवे तो, सर्व पर्यायोंको संकरताकी आपत्ति होनेसें अतिप्रसंगदूषण होवे. इति समभिरूढनयः । ६ ।

व्यंजनइत्यादि—जो पदार्थ, क्रियाविशिष्टपदसें कहा जाता है, तिसही क्रियाको करता हुआ, वस्तु, एवंभूत कहा जाता है. एवंशब्दकरके, चेष्टा क्रियादिकप्रकार कहते हैं; तिस 'एवं' को 'भूतं' अर्थात् प्राप्त होवे जो वस्तु, तिसको 'एवंभूत' कहते हैं. तिस एवंभूत वस्तुका प्रतिपादक नय भी, उपचारसें एवंभूत कहा जाता है. अथवा 'एवं' शब्दसें कहिये, चेष्टा-क्रियादिकप्रकार; तद्विशिष्टही वस्तुको स्वीकार करनेसें, तिस 'एवं' को, 'भूतं' प्राप्त हुआ जो नय, सो एवंभूत. उपचारविना भी ऐसे एवंभूत-नयका व्याख्यान है. प्रकट करिये अर्थ इसकरके, सो व्यंजन अर्थात् शब्द. अर्थ जो है, सो शब्दका अभिधेयवस्तुरूप है. व्यंजन, अर्थ, और व्यंजन अर्थ दोनोंको, जो नैयत्यसें स्थापन करे. तात्पर्य यह है कि, शब्दको अर्थकरके और अर्थको शब्दकरके जो, स्थापन करे. जैसे 'घटचेष्टायां घटते' स्त्रीके मस्तकादिऊपर आरूढ हुआ चेष्टा करे, सो घट; जो चेष्टा न करे, सो घटपदका वाच्य नहीं. चेष्टारहित घटपदका वाचक शब्द भी, नहीं. इति एवंभूत. । ७ ।

जब यह सातोंही नय, सावधारण होवे, तब दुर्नय है; और अवधारणरहित, सुनय है. जब सर्व सुनय मिलें, तब स्याद्वाद जैनमत है. इन सर्व नयोंका संग्रह करिये तो, द्रव्यार्थिक (१) पर्यायार्थिक (२) येह दो नय होते हैं. तथा ज्ञाननय (१) क्रियानय (२) होते हैं. तथा निश्चयनय (१) व्यवहारनय (२) होते हैं. क्योंकि, सप्तशतारनामा नय-चक्राध्ययन पूर्वकालमें था, तिसमें एक एक नयके सौ सौ (१००) भेद कथन करे थे; सो तो व्यवच्छेद गया, परंतु इस कालमें द्वादशारनय-चक्र है, तिसमें एक एक नयके द्वादश (१२) भेद कथन करे हैं. यदि किसीको विस्तारसें देखना होवे तो, पूर्वोक्त पुस्तक देख लेना. जिसकी श्लोकसंख्या

अनुमान अष्टादशसहस्र (१८०००) प्रमाण है. यहां तो, विस्तारके भयसे ज्ञाननय क्रियानयका किञ्चिन्मात्र स्वरूप लिखते हैं.

नायमिदित्यादिव्याख्या-सम्यक्प्रकारसे उपादेय हेयके स्वरूपको ज्ञानके पीछे, इस लोकमें उपादेय, फूलमाला स्त्री चंदनादि; हेय त्यागने-योग्य, सर्प विष कंटकादि; और उपेक्षा करनेयोग्य, तृणादि; परलोकमें ग्रहण करनेयोग्य, सम्यग्दर्शन चारित्र्यादि; नहीं ग्रहण करनेयोग्य, मिथ्यात्वादि; उपेक्षणीय, स्वर्गलक्ष्म्यादि; ऐसे अर्थमें यत्न करना, अर्थात् ज्ञानसे इन वस्तुओंको यथार्थ जानना, ऐसा जो उपदेश, सो ज्ञाननय जानना. इत्यक्षरार्थः॥

भावार्थ यह है कि ज्ञाननय, ज्ञानको प्रधान करनेवास्ते कहता है. इस-लोक परलोकमें जिसको फलकी इच्छा होवे, तिसको प्रथम सम्यग्ज्ञान हुएही अर्थमें प्रवर्तना चाहिये, अन्यथा प्रवृत्ति करे फलमें विसंवाद होनेसे, अयुक्त है.

यदुक्तमागमे ॥

“॥ पढमं नाणं तओ दया इत्यादि ॥”-प्रथम ज्ञान पीछे दया. ।

तथा । “॥ जंअन्नाणीत्यादि ॥”-जितने कर्म, अज्ञानी क्रोडों वर्षोंमें जपतपादिकसे क्षय करता है, उतने कर्म, ज्ञानवान्, त्रिगुप्त हुआ, एक उत्स्वासमें क्षय करता है.

तथा ॥

पावाओ विणिउत्ति पवत्तणा तहय कुसलपक्खंमि ॥

विणयस्स य पडिवत्ती तिन्निवि नाणे विसप्पंति ॥ १ ॥

भावार्थ:-पापसे निवर्तना-हटजाना, कुशलकाममें प्रवृत्त होना, विनयकी प्रतिपत्ति, येह तीनोंही ज्ञानके आधीन है. ।

अन्योंने भी कहा है. ।

विज्ञातिः फलदा पुंसां न क्रिया फलदा मता ॥

मिथ्याज्ञानप्रवृत्तस्य फलासंवाददर्शनात् ॥ १ ॥

भावार्थः—पुरुषोंको ज्ञानही फल देता है, क्रिया फल नहीं देती है. क्योंकि, विनाज्ञानके क्रिया करे तो, यथार्थ फल नहीं होता है. इसवास्ते ज्ञानहीको प्राधान्यता है. तीर्थकर गणधरोंने भी, एकले अगीतार्थको विहार करना निषेध करा है.

तथाच तद्वचनम् ॥

गीयत्थो य विहारो बीओ गीयत्थमीसिओ भणिओ ॥

इत्तो तइओ विहारो नाणुन्नाओ जिणवरिंदेहिं ॥ १ ॥

भावार्थः—गीतार्थ विहार करे, वा गीतार्थके साथविहार करे, इन दोनों विहारोंके विना, अन्य तीसरा विहार, तीर्थकरोंका अननुज्ञात है, अर्थात् तीसरे विहारकी तीर्थकरोंने आज्ञा नहीं दीनी है. अंधा अंधेको रस्ता नहीं बता सकता है, इति. यह तो क्षायोपशम ज्ञानकी अपेक्षा कथन है. क्षायिकज्ञानकी अपेक्षासें भी, विशिष्टफलका साधन ज्ञानही है. क्योंकि, अर्हन्भगवान्को भवसमुद्रके कांटे रहे दीक्षा लेके उत्कृष्ट तप चारित्रवान् होनेसें भी, सुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती है, जबतक केवलज्ञान नहीं होता है. इसवास्ते ज्ञानही, पुरुषार्थका हेतु होनेसें, प्रधान है. । इति ज्ञाननयमतम् ॥

अथ क्रियानय । नायम्मीत्यादि—यहां ज्ञान ग्रहण करने योग्य अर्थमें, और न ग्रहण करने योग्य अर्थमें, सर्व पुरुषार्थकी सिद्धिवास्ते यत्न करना. यहां प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षण क्रियाहीकी मुख्यता है. और ज्ञान, क्रियाका उपकरण होनेसें गौण है. इसवास्ते सकल पुरुषार्थकी सिद्धिवास्ते क्रियाही, प्रधान कारण है. ऐसा जो उपदेश, सो क्रियानय जानना. यह नय भी, अपने मतकी सिद्धिवास्ते युक्ति कहता है. क्रियाही, प्रधान पुरुषार्थकी सिद्धिमें कारण है. क्योंकि, आगममें तीर्थकर गणधरोंने क्रिया रहितोंका ज्ञान भी, निष्फल कहा है.

तदुक्तम् ॥

सुबहुंपि सुयमहीयं किं काही चरणविप्पमुक्कस ॥

अंधस्स जह पलित्ता दीवसयसहस्सकोडीवि ॥

भावार्थः—चारित्र्यरहितको बहुत पढ़या भी ज्ञान क्या करेगा? जैसे अंधेको लाख कौड दीवे भी प्रकाश नहीं कर सकते हैं. तथा कोई पुरुष रस्ता तो जानता है, परंतु चलता नहीं तो, क्या वो मजलसिर इच्छित ग्राम वा नगरको पहुंचेगा? कदापि नहीं. तथा जो, तरना जानता है, परंतु नदीमें हाथ पग नहीं हिलाता है तो, क्या वो पार हो जायगा? नहीं डूब जायगा? ऐसेही क्रियाहीन ज्ञानी, जानना. ॥

तथा ॥“जहा खरो चंदनभारवाही इत्यादि”—जैसे गदहे ऊपर चंदन लावा, परंतु गर्दभको चंदनका सुख नहीं, ऐसेही क्रियाहीन ज्ञानवान्को सुगति नहीं. अन्योंने भी कहा है. ॥

क्रियैव फलदा पुंसां न ज्ञानं फलदं मतं ॥

यतः स्त्रीभक्षभोगज्ञो न ज्ञानात् सुखितो भवेत् ॥ १ ॥

भावार्थः—क्रियाही पुरुषोंको फलदात्री है, ज्ञान नहीं. क्योंकि, स्त्री और मोदकादिके ज्ञानसे कामी और भूखे, तृप्त नहीं होते हैं.

यह तो क्षायोपशम चारित्र्यक्रियाकी अपेक्षा प्राधान्यपणा कहा. अब क्षायिकी क्रियापेक्षा कहते हैं. अर्हन् भगवान्को केवलज्ञान भी होगया है, तो भी, जबतक सर्वसंवररूप पूर्णचारित्र्य चतुर्दशगुणस्थान नहीं आता है, तबतक मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती है. इस वास्ते क्रियाही प्रधान है. इति क्रियानयमतम् ॥

इन पूर्वोक्त दोनों नयोंको पृथक् २ एकांत माने तो, मिथ्यात्व है; और स्याद्वादसंयुक्त माने तो, सम्यग्दृष्ट है. ऐसेही सर्वनयभेदमें निष्कर्ष जानना.

अब द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकका थोडासा विस्तार लिखते हैं. उनमें नैगमद्रव्यार्थिकनय, धर्मधर्मी द्रव्यपर्यायादि प्रधानअप्रधानादि गोचर-करके ग्रहण करी वस्तुके समूहार्थको कहता है. ॥ १ ॥

संग्रहद्रव्यार्थिकनय, अभेदरूपकरके वस्तुजातको एकीभावकरके ग्रहण करता है. ॥ २ ॥

व्यवहारद्रव्यार्थिकनय, संग्रहने ग्रहण किया जो अर्थ, तिसके भेदरूप-करके जो वस्तुका व्यवहार करे, सो व्यवहार द्रव्यार्थिकनय है. ॥ ३ ॥

नैगम, और व्यवहार, अशुद्ध द्रव्यार्थिक है. और संग्रह शुद्ध द्रव्यको कहता है, इसवास्ते, शुद्धद्रव्यार्थिकनय है.

तदुक्तमनुयोगवृत्तौ ॥

“ ॥ नैगमव्यवहाररूपोऽविशुद्धः कथं यतो नैगमव्यवहारौ अनंतद्वयणुकाद्यनेकव्यक्तात्मकंकृश्राद्यनेकगुणाधारं त्रिकालविषयं चाविशुद्धं द्रव्यमिच्छतःसंग्रहश्च परमाण्वादिसामान्यादेकं तिरोभूतगुणकलापमविद्यमानपूर्वापरविभागं नित्यं सामान्यमेव द्रव्यमिच्छत्येव तच्च किलानेकताभ्युपगमकलंकेनाकलंकितत्वात् शुद्धं ततः शुद्धद्रव्याभ्युपगमपरत्वात् शुद्धमेवायमिति ॥ ”

भाषार्थः—नैगमव्यवहाररूपनय, अविशुद्ध है. क्योंकि, नैगमव्यवहार, अनंतद्वयणुकादि, अनेकव्यक्तात्मक. कृश्रादि अनेक गुणोंका आधार, त्रिकालविषय, ऐसें अशुद्ध द्रव्यको द्रव्य मानते हैं. और संग्रहनय, परमाणुआदि सामान्यसें एक तिरोभूत गुणसमूह अविद्यमान पूर्वापरविभाग नित्यसामान्यही द्रव्य मानता है. सो संग्रहनय, अनेकता माननेरूप कलं-कसें अकलंकित होनेसें और शुद्ध द्रव्य माननेसें शुद्धद्रव्यार्थिक है.

अथ नैगमनयकी प्ररूपणा करते हैं:—नही है एक गम, बोधमार्ग, जिसका, सो नैगमनय है. पृषोदरादि होनेसें ककारका लोप जानना. तिस नैगमनयके तीन भेद हैं. धर्मद्वयगोचर (१) धर्मिद्वयगोचर (२) धर्मधर्मिगोचर (३). यहां धर्मीधर्म शब्दकरके, द्रव्य और व्यंजनपर्या-योंको कहते हैं. अथ प्रथमभेदमें उदाहरण कहते हैं. “ । सच्चैतन्यमात्मनि इति । ” आत्मामें सत् चैतन्य धर्म है, यहां चैतन्य नाम व्यंजनपर्या-यको, विशेष्य होनेसें, तिसकी मुख्यताकरके विवक्षा करी; और सत्ताख्य-व्यंजनपर्यायको, विशेषण होनेसें, तिसकी अमुख्यता, गौणताकरके, विवक्षा करी है. । इतिधर्मद्वयगोचरोनैगमः प्रथमः । १ ।

अथ दूसरे नैगमका उदाहरण कहते हैं:—“। वस्तु पर्यायवद्द्रव्यम् । ” पर्यायवाला द्रव्य, वस्तु है. यहां पर्यायवाले द्रव्याख्यधर्मिको, विशेष्य होनेसे, प्रधानपणा है; और वस्तुनामक धर्मिको, विशेषण होनेसे, अप्रधानपणा है. अथवा ‘किं वस्तु’ वस्तु क्या है? ‘पर्यायवद् द्रव्यम्’ पर्यायवाला द्रव्य. ऐसी विवक्षामें, वस्तुको, विशेष्य होनेसे प्रधानपणा है. और पर्यायवद् द्रव्यको, विशेषण होनेसे, गौणपणा है. इति धर्मिद्वय-गोचरो नैगमो द्वितीयः । २ ।

अथ तीसरे भेदका उदाहरण कहते हैं:—“। क्षणमेकं सुखी विषयास-
क्तजीव इति । ” एक क्षणमात्र सुखी विषयासक्त जीव है. यहां विष-
यासक्त जीव द्रव्यको, विशेष्य होनेसे, प्रधानपणा है; और सुखलक्षण-
पर्यायको, विशेषण होनेसे, अप्रधानपणा है. इति धर्मिधर्मालंबनो नैगमः
तृतीयः । ३ ।

अथवा निगम, विकल्प, तिसमें जो होवे, सो नैगम. तिसके
तीन भेद हैं. भूत (१) भविष्यत् (२) वर्तमान (३). जिसमें अतीत
वस्तुको वर्तमानवत् कथन करना, सो भूतनैगम. यथा । आज सोही
दीपोत्सव (दीवाली) पर्व है, जिसमें श्रीवर्द्धमानस्वामी मुक्ति गये. । १ ।
भाविनि अर्थात् होनहारमें, होगईकीतरें उपचार करना, सो भविष्यत्-
नैगम. जैसे अर्हत सिद्धपणेको प्राप्तही होगये हैं । २ । करनेका आरंभ
करा, वा थोडासा निष्पन्न हुआ, तिसको हुआ वस्तु, जिसमें कहना, सो
वर्तमाननैगम. जैसे, ‘ओदनः पच्यते.’ । ३ ।

अथ नैगमाभासका स्वरूप कहते हैं:—दो आदिधर्मोंको एकांत पृथक् २
जो माने, सो नैगमाभास, इति. आदिपदकरके दो द्रव्य, और द्रव्य-
पर्यायों दोनोंका ग्रहण है. उदाहरण जैसे, आत्तामें सत्, और चैतन्य,
परस्पर अत्यंत पृथग्भूत है, इत्यादि. आदिशब्दसे वस्तुपर्यायवाले द्रव्य
दोका, और क्षणएक सुखी, इति सुखजीवलक्षण द्रव्यपर्याय दोनोंका ग्रहण
है. इन दोनोंकी सर्वथा भिन्नरूपप्ररूपणा करनेसे, नैगमाभास दुर्नय है.
नैयायिक, वैशेषिक, येह दोनों मत नैगमाभाससे उत्पन्न हुए हैं, इति. ॥

अथ द्रव्यार्थिकनयका दूसरा भेद संग्रह नामा, तिसका वर्णन करते हैं:-“सामान्यमात्रग्राही परामर्शः संग्रहः” सामान्यमात्रग्राही जो ज्ञान, सो संग्रह ‘मात्रं कात्स्न्येऽवधारणे च’ मात्रशब्द संपूर्णका और अवधारणका वाचक है, ‘सामान्यमशेषविशेषरहितं’ सामान्य संपूर्णविशेषरहित सत्त्व द्रव्यत्वादिक ग्रहण करनेका शील है ‘सं’ एकीभावकरके पिंडीभूत विशेष राशिको ग्रहण करे, सो संग्रह. तात्पर्य यह है “स्वजातेर्दृष्टेष्टाभ्यामविरोधेन विशेषाणामेकरूपतया यद्ग्रहणं स संग्रहः इति” स्वजातिके दृष्टेष्टकरके अविरोध विशेषोंको एकरूपकरके जो ग्रहण करे, सो संग्रह, अर्थात् विशेषरहित पिंडीभूत सामान्यविशेषवाले वस्तुको शुद्ध अनुभव करनेवाला ज्ञान विशेष, संग्रहकरके कहा जाता है. सो संग्रह दो प्रकारका है. परसंग्रह (१) अपरसंग्रह (२). संपूर्ण विशेषोंमें उदासीनता भजता हुआ, शुद्धद्रव्यसन्मात्रको, जो माने, सो परसंग्रह है. जैसे विश्व एक है, सत्से अविशेष होनेसें.

अथ परसंग्रहाभासका लक्षण कहते हैं:-सत्ता अद्वैतको स्वीकार करता हुआ, सकलविशेषोंका निषेध करे, सो परसंग्रहाभास. जैसे उदाहरण, सत्ताही तत्त्व है, तिससें पृथग्भूत विशेषोंके न देखनेसें, इति. अद्वैतवादियोंके जितने मत है, वे सर्व, परसंग्रहाभासकरके जानने; और सांख्यदर्शन भी ऐसेही जानना.

अथ दूसरे अपरसंग्रहका लक्षण कहते हैं:-द्रव्यत्वादि अवांतरसामान्योंको मानता हुआ, और तिसके भेदोंमें उदासीनताको अवलंबन करता हुआ, अपरसंग्रह है. जैसे धर्म अधर्म आकाश काल पुद्गल जीवद्रव्योंको द्रव्यत्वके अभेदसें एक मानना. यहां द्रव्यसामान्यज्ञानकरके अभेदरूप छहोंही द्रव्योंको एकपणे ग्रहण करना, और धर्मादि विशेष भेदोंमें गज-निमिलिकावत् उपेक्षा करनी. ऐसेही चैतन्याचैतन्य पर्यायोंका एकपणा मानना, पर्यायसाधर्म्यतासें.

प्रश्न:-चैतन्यज्ञान, और तद्विपरीत अचैतन्य, येह दोनों एक कैसे होसकते हैं ?

उत्तर:-चैतन्याचैतन्यकी विशेष विवक्षा न करनेसे, और द्रव्यत्वकरके अभेदबुद्धि माननेसे.

अथ अपरसंग्रहाभासका लक्षण कहते हैं:-द्रव्यत्वको एकांत तत्त्व जो मानता है, और तिसके विशेषोंको निषेध करता है, सो अपरसंग्रहाभास है. जैसे द्रव्यत्वही तत्त्व है, और धर्मादि द्रव्य नहीं है. यथा वस्तु है, परंतु सामान्यविशेषत्व कहां वर्ते हैं? ऐसेही सामान्यविशेषात्मक वस्तुको जानना.

अथवा संग्रहनय दो प्रकारका है. सामान्यसंग्रह (१) विशेषसंग्रह (२). सामान्यसंग्रहका उदाहरण जैसे, सर्वद्रव्य आपसमें अविरोधी है. । १ । विशेषसंग्रहका उदाहरण जैसे, जीव आपसमें अविरोधी है. । इतिसंग्रहद्रव्यार्थिकनयः । २ ।

अथ व्यवहारद्रव्यार्थिक नयका स्वरूप लिखते हैं:-

“॥ संग्रहेण गृहीतानां गोचरीकृतानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं येनाभिसंधिना क्रियते सव्यवहारइति ॥”

भावार्थ:-संग्रहने ग्रहण किया जो सत्त्वादि अर्थ, तिसका, विधिसे जो विवेचन करे, सो अभिप्राय विशेष, व्यवहारनामा नय है. उदाहरण जैसे, जो सत् है, सो द्रव्य है, अथवा पर्याय है. आदिशब्दसे अपरसंग्रहगृहीतार्थ व्यवहारका भी उदाहरण जानना. जैसे जो द्रव्य है, सो जीवादि षड्विध है, इति. पर्यायके दो भेद है. क्रमभावी (१) और सहभावी (२), इति. ऐसे जीव भी मुक्त (१) और संसारी (२). जे क्रमभावी पर्याय है, वे दो प्रकारके हैं. क्रियारूप (१) और अक्रियारूप (२), इति. ॥

अथ व्यवहाराभास कहते हैं:-जो अपारमार्थिक द्रव्यपर्यायविभागको मानता है, सो व्यवहाराभास है. जैसे चार्वाकमत. क्योंकि, नास्तिक जीवद्रव्यादि नहीं मानता है. स्थूलदृष्टिसे चारभूत यावत् जितना इन्द्रियोपर आवे, उतनाही लोक मानता है. ऐसे स्वकल्पित होनेकरके कृत होनेसे चार्वाकमत व्यवहाराभास है.

तथा अन्यग्रंथसें व्यवहारनयका कितनाक स्वरूप लिखते हैं:-भेदो-
पचारकरके जो वस्तुका व्यवहार करे, सो व्यवहारनय. गुणगुणिका
(१) द्रव्यपर्यायका (२) संज्ञासंज्ञिका (३) स्वभावस्वभाववालेका (४)
कारककारकवालेका (५) क्रियाक्रियावालेका (६) भेदसें जो भेद करे,
सो सद्भूतव्यवहार. । १ ।

शुद्धगुणगुणिका, और शुद्धपर्यायद्रव्यका भेद कथन करना, सो
शुद्धसद्भूतव्यवहार. । २ ।

उपचरित सद्भूतव्यवहार. तहां सोपाधिक अर्थात् उपाधिसहित गुण-
गुणिका जो भेदविषय, सो उपचरितसद्भूतव्यवहार. जैसें जीवके मति-
ज्ञानादिक गुण है. । ३ ।

निरुपाधिक गुणगुणिकाभेदक, अनुपचरितसद्भूतव्यवहार. जैसें, जी-
वके केवलज्ञानादि गुण है. । ४ ।

अशुद्ध गुणगुणिका, और अशुद्ध द्रव्यपर्यायका भेद कहना, सो अशु-
द्धसद्भूतव्यवहार. । ५ ।

स्वजातिअसद्भूतव्यवहार. जैसें, परमाणुको बहुप्रदेशी कथन करना. । ६ ।

विजातिअसद्भूतव्यवहार. जैसें, मतिज्ञान मूर्तिवाला है, मूर्तिद्रव्यसें
उत्पन्न होनेसें. । ७ ।

उभयअसद्भूतव्यवहार. जैसें, जीव अजीव ज्ञेयमें ज्ञान है, जीव
अजीवको ज्ञानके विषय होनेसें. । ८ ।

स्वजातिउपचरितासद्भूतव्यवहार. जैसें, पुत्र भार्यादि मेरे हैं. । ९ ।

विजातिउपचरित असद्भूतव्यवहार. जैसें, वस्त्र भूषण हेम रत्नादि
मेरे हैं. । १० ।

तदुभयउपचरित असद्भूतव्यवहार. जैसें, देश राज्य कीर्ति गढादि
मेरे हैं. । ११ ।

अन्यत्र प्रसिद्ध धर्मका अन्यत्र समारोप करना, सो असद्भूत-
व्यवहार. । १२ ।

असद्भूत व्यवहारही उपचार है, जो उपचारसें भी उपचार करे, सो उपचरित असद्भूतव्यवहार. जैसें, देवदत्तका धन. यहां संश्लेषरहित वस्तु-संबंध विषय है. । १३ ।

संश्लेषसहित वस्तुसंबंधविषय, अनुपचरित असद्भूतव्यवहार. जैसें, जीवका शरीर. । १४ ।

उपचार भी नव प्रकारका है. द्रव्यमें द्रव्यका उपचार (१) गुणमें गुणका उपचार (२) पर्यायमें पर्यायका उपचार (३) द्रव्यमें गुणका उपचार (४) द्रव्यमें पर्यायका उपचार (५) गुणमें द्रव्यका उपचार (६) गुणमें पर्यायका उपचार (७) पर्यायमें द्रव्यका उपचार (८) पर्यायमें गुणका उपचार (९). यह सर्व भी, असद्भूतव्यवहारका अर्थ जानना. इसीवास्ते उपचारनय, पृथक् नहीं है, इति. ।

मुख्याभावके हुए, प्रयोजन, और निमित्तमें उपचार वर्तता है; सो भी संबंधके विना नहीं होता है. संबंध चार प्रकारका है. संश्लेष-संश्लेषीसंबंध (१) परिणामपरिणामिसंबंध (२) श्रद्धाश्रद्धेयसंबंध (३) ज्ञानज्ञेयसंबंध (४), उपचरित असद्भूतव्यवहारके तीन भेद है. सत्यार्थ (१) असत्यार्थ (२) सत्यासत्यार्थ (३) इति. येह १४ भेद व्यवहार-नयके जानने. यही व्यवहारनयका अर्थ है. व्यवहारनय भेदविषय है. ॥ इतिद्रव्यार्थिकस्य तृतीयोभेदः ॥ ३ ॥

अथ पर्यायार्थिकनयके चार भेद लिखते हैं. उनमें प्रथम ऋजुसूत्रका स्वरूप लिखते हैं:-

“ ॥ ऋजुवर्तमानक्षणस्थायिपर्यायमात्रप्राधान्यतः सूत्रयज्ञ-भिप्रायऋजुसूत्रनय इति ॥ ”

अर्थ:-भूतभविष्यत्क्षणलवविशिष्ट कुटिलतासें विमुक्त होनेसें, ऋजु सरलही, द्रव्यकी अप्रधानताकरके, और क्षणक्षयीपर्यायोंकी प्रधानताकरके, जो कथन करे, सो ऋजुसूत्रनय है. उदाहरण जैसें, संप्रति सुख विवर्त्त है. इस वचनसें क्षणिक सुखनामा पर्यायमात्रको मुख्यताकरके कहता है, परंतु तदधिकरण जीव द्रव्यको गौणत्वकरके नहीं मानता है, इति.

अथ ऋजुसूत्राभास कहते हैं:—सर्वथा द्रव्यका जो निषेध करता है, सो ऋजुसूत्राभास है. उदाहरण जैसे, तथागतमत. क्योंकि, बौद्ध क्षणक्षयिपर्यायोंकोही प्रधानतासे कथन करते हैं, और तत्तत्तत्आधारभूत द्रव्योंको नहीं मानते हैं; इसवास्ते बौद्धमत, ऋजुसूत्राभासकरके जानना.

ऋजुसूत्रके दो भेद हैं. सूक्ष्मऋजुसूत्र, जैसे पर्याय एकसमयमात्र रहनेवाला है (१) स्थूलऋजुसूत्र, जैसे मनुष्यादिपर्याय, अपने २ आयुःप्रमाणकालतक रहते हैं. । इतिपर्यायार्थिकस्य प्रथमोभेदः ॥ १ ॥

अथ दूसरा भेद लिखते हैं:—

“ ॥ कालादिभेदेन ध्वनेरर्थभेदं प्रतिपद्यमानः शब्दइति ॥ ”

अर्थ:—व्याकरणके संकेतसे प्रकृतिप्रत्ययके समुदायकरके सिद्ध हुआ कालकारक लिंग संख्या पुरुष उपसर्गके भेदकरके ध्वनिके अर्थ भेदको जो कथन करे, सो शब्दनय है. कालभेदमें उदाहरण जैसे, ‘बभूव भवति भविष्यति सुमेरुरिति’ हुआ, है, होवेगा, सुमेरु. यहां कालत्रयके भेदसे सुमेरुका भी भेद, शब्दनयकरके प्रतिपादन करीये हैं. द्रव्यत्वकरके तो, अभेद इसके मतमें उपेक्षा करीये हैं. । कारकभेदमें उदाहरण जैसे, ‘ करोति क्रियते कुंभ इति. ’ । लिंगभेदमें ‘ तटस्तटीतटमिति ’ । संख्याभेदमें ‘ दाराः कलत्रं ’ । पुरुषभेदमें ‘ एहि मन्ये रथेन यास्यसि नहि यास्यति यातस्ते पिताइत्यादि ’ । उपसर्गभेदमें ‘ संतिष्ठते अवतिष्ठते. ’ । इति ।

अथ शब्दनयाभास लिखते हैं:—कालादिभेदकरके विभिन्नशब्दके अर्थको भी, भिन्न मानता हुआ, शब्दाभास होता है. उदाहरण जैसे, ‘ बभूव भवति भविष्यति सुमेरुः ’ इत्यादिक भिन्नकालके शब्द, तिनका भिन्नही अर्थ कहता है, भिन्नकालशब्द होनेसे. तैसें सिद्ध अन्यशब्दवत्, इति. । ‘ बभूव भवति भविष्यति सुमेरुः ’ इसवचनकरके शब्दभेदसे अर्थका एकांत भेद मानना, शब्दाभास है. ॥ इतिपर्यायार्थिकस्य द्वितीयोभेदः ॥ २ ॥

अथ पर्यायार्थिकका तीसरा भेद समभिरूढनयका स्वरूप लिखते हैं:—

“ ॥ पर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन् समभिरूढइति ॥ ”

अर्थः—शब्दनय, शब्दपर्यायके भिन्न भी हुए, द्रव्यार्थका अभेद मानता है. और समभिरूढनय, शब्दपर्यायके भेद हुए, द्रव्यार्थका भी, भेद मानता है. पर्यायशब्दोंके अर्थतः एकत्वकी उपेक्षा करता है. उदाहरण जैसे, 'इंद्रनादिन्द्रः, शक्रनात् शक्रः, पूरदारणात् पुरंदरइत्यादिः' इस वाक्य-करके इंद्र शक्र पुरंदर इत्यादि एकार्थ पर्यायशब्दमें भी, व्युत्पत्तिभेदसें इसके अर्थका भी, भेद मानता है. शब्दके भेदसें, अर्थका भेद, यह नय मानता है. इतितात्पर्यार्थः । ऐसेही अन्यत्र कलश घट कुट कुंभादिकोंमें जानना.

अथ समभिरूढाभास कहते हैंः—पर्यायध्वनियोंके अभिधेयको एकांत नानाही मानना, सो समभिरूढाभास है. उदाहरण जैसे, इंद्रशक्रपुरंदर इत्यादि शब्दोंके भिन्नही अभिधेय हैं, भिन्नशब्द होनेसें. करिकुरंग तुरंग करभशब्दवत्. यहां इंद्रशक्रपुरंदर नाम एक भी है, तो भी भिन्नशब्द होनेसें वाच्यार्थ भी, भिन्न है. जैसे हाथी हिरण घोडा जंट आदि भिन्नवाच्य है, तैसें यह भी है. यह समभिरूढाभास है। इतिपर्याया-र्थिकस्य तृतीयोभेदः ॥ ३॥

अथ चौथा भेद लिखते हैंः—

॥ “ शब्दानां स्वप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियाविशिष्टमर्थं वाच्य-
त्वेनाभ्युपगच्छन्नेवंभूतइति ॥ ”

अर्थः—समभिरूढनयसें इंद्रनादि क्रियाविशिष्ट इंद्रका पिंड होवे, अथवा न होवे, परंतु इंद्रादिकका व्यपदेश लोकमें, तथा व्याकरणमें, तैसेंही रूढी होनेसें, समभिरूढ. तथाच रूढशब्दोंकी व्युत्पत्ति शोभामात्रही है. 'व्युत्पत्तिरहिता शब्दा रूढा इति वचनात्' एवंभूतनय, जिस समयमें इंद्रनादिक्रियावि-शिष्ट अर्थको देखता है, तिसकालमेंही इंद्रशब्दका वाच्य मानता है; परंतु तिससें रहित कालमें नहीं मानता है. इस नयके मतमें तो सर्वक्रिया शब्दही है. यद्यपि भाष्यादिकमें जाति (१) गुण (२) क्रिया (३) संबंध (४) यदृच्छा (५) लक्षण पांचप्रकारकी शब्दप्रवृत्ति कही है, सो

व्यवहारमात्रसें जाननी; परंतु निश्चयसें नही. ऐसें यह नय, स्वीकार करता है. जातिशब्द जे हैं, वे क्रियाशब्दही हैं. 'गच्छतीति गौः' जो गमन करे सो गौ. 'आशुगामित्वादश्वः' आशु-शीघ्रगामी होनेसें अश्व. गुणशब्द जैसें 'शुचिर्भवतीति शुक्लः' शुचि होवे, सो शुक्ल. 'नीलभवन्नालीलः' नील होनेसें नील. । यदृच्छाशब्द जैसें 'देव एनं देयात् यज्ञ एनं देयात्' । संयोगी समवायीशब्द जैसें 'दंडोस्यास्तीति दंडी, विषाणमस्यास्तीति विषाणी' अस्ति क्रियाको प्रधान होनेसें अस्तित्वार्थमें प्रत्यय है. येह सर्व क्रियाशब्दही हैं. अस्ति भू इत्यादि क्रियासामान्यको सर्व-व्यापी होनेसें. उदाहरण जैसें, इंदनके अनुभवनसें इंद्र, शकनक्रियापरिणत शक्र, पूर्वार्णप्रवृत्तको पुरंदर कहते हैं, इति.

अथ एवंभूताभास कहते हैं:-अपनी क्रियारहित, सो वस्तु भी, शब्दका वाच्य नहीं. तत्त्वशब्दवाच्य यह नहीं है, ऐसा एवंभूताभास है. उदाहरण जैसें, विशिष्टचेष्टाशून्य घटनामक वस्तु, घटशब्दका वाच्य नहीं. घटशब्दप्रवृत्तिनिमित्तभूत क्रियासें शून्य होनेसें, पटवत्. इस वाक्यसें अपनी क्रियारहित घटादिबस्तुको घटादिशब्दवाच्यताका निषेध करना प्रमाणबाधित है. ऐसें एवंभूताभास कहा है, इति.

इन सातों नयोंमेंसें आदिके चार नय, अर्थ निरूपणेमें प्रवीण होनेसें, अर्थनय हैं. अगले तीन नय, शब्दवाच्यार्थगोचर होनेसें, शब्दनय हैं.

अथ इन पूर्वोक्त नयोंके कितने भेद हैं, सो लिखते हैं:—

गाथा ॥

इकैको य सयविहो सत्त नयसया हवन्ति एमेव ॥

अन्नो वि य आएसो पंचेव सया नयाणं तु ॥ १ ॥

अर्थ:-नैगमादि सातों नयोंके एकैकके प्रभेदसें सौ सौ भेद हैं, सर्व मिलाके सातसौ (७००) भेद होते हैं. प्रकारांतरसें पांचही नय होते हैं. सो यदा शब्दादि तीनोंको एकही शब्दनय, विवक्षा करीये, और एकैकके सौ सौ भेद करीये, तब पांचसौ भेद नयोंके होते हैं. ऐसेंही

छसौ, चारसौ, दोसौ भी, भेद नयोंके होते हैं. तथाहि—जब सामान्यग्राही नैगमकी संग्रहके अंतर्भूत, और विशेषग्राही नैगमकी व्यवहारके अंतर्भूत विवक्षा करीये, तब मूल नय छ होते हैं. एक एकके सौ सौ भेद होनेसे, छसौ भेद होते हैं. । जब नैगम १ संग्रह २ व्यवहार ३, तीन तो अर्थनय और एक शब्दनय, ऐसी विवक्षा करीये, तब चार ४ नय; एकैकके सौ सौ भेद होनेसे चारसौ भेद होते हैं. । और द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, इन दोनोंके सौ सौ भेद होनेसे, दोसौ भेद होते हैं. यदि उत्कृष्ट भेद गिणीये तो, असंख्य भेद होते हैं.

यदुक्तम् ॥

जावंतो वयणपहा तावंतो वा नया वि सदाओ ॥

ते चेव परसमया सम्मत्तं समुदिआ सव्वे ॥ १॥

व्याख्या:—जितने वचनके प्रकार हैं शब्दात्मक ग्रहण किया हैं सावधारणपणा जिनोंने, वे सर्व नय, परसमय अन्य तीर्थियोंके मत है. और जो अवधारणरहित 'स्यात्' पदकरी लांछित है, वे सर्व नय, इकठे करें, सम्यक्त्व जैनमत है.

प्रश्न:—सर्वनय प्रत्येक अवस्थामें मिथ्यात्वका हेतु है तो, सर्व एकठे मिले महामिथ्यात्वका हेतु क्यों नहीं होवेंगे? जैसे कण कणमात्र विष एकठा करे तो, बृहद्विष हो जावे है.

उत्तर:—परस्पर विरुद्ध भी सर्व नय, एकत्र हुए, सम्यक्त्व होते हैं, एक जैनमतके साधुके वशवर्त्ति होनेसे. जैसे नाना अभिप्रायवाले राजाके नौकर, आपसमें धन धान्य भूमि आदिकके वास्ते लड़ते भी हैं, तो भी, सम्यग् न्यायाधीशके पास जावें, तब पक्षपातरहित न्यायाधीश, युक्तिसे झगडा मिटायके मेल कराव देता है, तैसेही यहां परस्पर विरोधी नय, स्याद्वादन्यायाधीशके वश होके परस्पर एकत्र मिलजाते हैं. तथा बहुते जहरके टुकड़े बड़े मंत्रवादीके प्रयोगसे निर्विष हुए कुष्ठादि रोगीको दीए अमृतरूप होके परिणमते हैं, तैसे नयस्वरूप भी जानलेना.

तदुक्तम् ॥

सत्ये समिति सम्मं वेगवसाओ नया विरुद्धावि ॥

णिच्चव्वहरिणो इव राओ दासाण वसवत्ती ॥ १ ॥

इति. ॥

पूर्वोक्त नयोंमें पूर्व पूर्व नय बहुविषयवाले हैं, और उत्तर उत्तर नय अल्पविषयवाले हैं. यह नयका स्वरूप, नयप्रदीपादिकसें किञ्चिन्मात्र लिखा है. विशेष देखनेकी इच्छा होवे तो, शब्दांभोनिधिगंधहस्तिमहा-भाष्यवृत्ति, (विशेषावश्यक), द्वादशारनयचक्रादि शास्त्रोंसें देख लेना.

इति नयस्वरूपवर्णनम् ॥

तत्समाप्तौ च समाप्तोयं षट्त्रिंशः स्तम्भः ॥ ३६ ॥

दृष्टिदोषान्मतेर्मीयादनाभोगात्प्रमादतः ॥

यजिनाज्ञाविरुद्धं तच्छोधनीयं मनीषिभिः ॥ १ ॥

यदशुद्धमिह निरूपितमार्थैस्तत्क्षम्यतां प्रसादं मे ॥

कृत्वा विशोध्यतां यत् को न स्वलति प्रमादविवशो हि ॥ २ ॥

यद्यपि बहुभिः पूर्वा-चार्यैरचितानि विविधशास्त्राणि ॥

प्राकृतसंस्कृतभाषा-मयानि नयतर्कयुक्तानि ॥ ३ ॥

तदपि मयेदं शास्त्रं, पूर्वमुनेः पद्धतिं समाश्रित्य ॥

भव्यजनबोधनार्थं, रचितं सम्यक् स्वदेशगिरा ॥ ४ ॥

युग्मम् ॥

श्रीमन्मोहनपार्श्वनाथविमले पट्टीपुरे प्रस्तुतः ॥

श्रीचिंतामणिपार्श्वनाथनिरघे जीरेतिनाम्ना पुरे ॥

ग्रंथोऽयं परिपूर्णतां च गमितश्चंद्रेषुनंदैणभू-

द्वर्षे (१९५१) भाद्रपदे च शुक्लदशमीघसे गभस्तौ शुभे ॥५॥

सुनक्षत्रपुरे रम्ये धर्मनाथप्रतिष्ठिते ॥
 घर्सेजनशलाकायाः पादोनद्विशतार्हताम् ॥ ६ ॥
 शिखिबाणांकचंद्राब्दे (१९५३) वल्लभेन मुमुक्षुणा ॥
 राकायां प्रथमादर्शेऽलेखि माधवमासके ॥ ७ ॥

युग्मम् ॥

सूर्याचंद्रमसौ यावद् यावच्छ्रीवीरशासनम् ॥
 ग्रंथोऽयं नंदतात्तावत् परोपकृतिहेतवे ॥ ८ ॥
 कियानप्यस्य शास्त्रस्य श्राद्धैः पट्टीनिवासिभिः ॥
 पांडितामृतचंद्राद्वैर्भागोऽस्ति परिशोधितः ॥ ९ ॥
 ॥ इति शुभं भूयात् ॥

॥ इति श्रीमद्भुद्धिविजयगणिशिष्यश्रीमद्विजयानंद-
 सूरिविरचिततत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथः समाप्तः ॥

यह ग्रंथ मरुदेशवासी (हाल मुंबई निवासी) ओसवाल बालफेना
 (बाफणा) परमार गोत्रीय जैन (श्वेतांबरी-तपगच्छीय) अमरचंद पी०
 (पद्माजी) परमारने स्वमत्यनुसार पदच्छेद प्रूफ आदि शोधन करके प्रसिद्ध
 किया. याचना है कि पाठक वर्ग दृष्टिदोषकी क्षमा करे.

श्रेयांसि सन्ति बहुविघ्नहतानि लोके ।

कस्येदमस्त्यविदितं भुवि मानवस्य ॥

श्रेयस्तरोऽयमिति यः समयात्ययोऽभूत् ।

तं क्षन्तु मर्हति सदा विदुषां समूहः ॥ १ ॥

अर्थः—किसको विदित नहीं है कि “ अच्छे कार्योंमें बहुत विघ्न होते
 हैं.” यह ग्रंथ एक बड़ा सत्कार्य है, जिससे (कीतनीक आफत—मुश्केलीके
 सबबसें) प्रसिद्ध करनेमें विलंब हुवा जिसकी सुज्ञ साक्षरवर्ग क्षमा करेंगे.

अंतर्लपिका अगम धर्मचंद्र दनपत दन मान जीन ।

पकर क्षमाधरम सुपरद तन तलीन ॥

॥ शुभम् ॥

अथ प्रस्तावना शुद्धिपत्रम्-

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३ १०-१४	पाणिनी	पाणिनि
" १२	व्योर्लेघु	व्योर्लेघु
४ २	श्रद्धकाश	श्रद्धःकाश
" २३	श्रद्धकाश	श्रद्धःकाश
" "	शकटायनः	शकटायनः
" "	न्यगर जैनै.	न्यगरजैनै.
५ १९	श्रेष्ठोत्तम	श्रेष्ठोत्तम
६ २२	सत्यनिष्ठ	सत्यनिष्ठ
" २७	सम्यक्बो.	सम्यक्बो.
७ ३५	सूक्ष्म	सूक्ष्म
८ १०	ग्रंथोसै	ग्रंथोसै
" १२	सद्ग्रंथोके	सद्ग्रंथोके
" २२	महास्त	माहात्म्य
" ३३	निष्ठावान्	निष्ठावान्
९ ५	अंग्रेजी	अंग्रेजी
१० १४	ऋग	ऋग्
" "	यजुस्	यजुस्
" २६	बौधकी	बौद्धकी
" ३१	विनयत्रीपी	विनयत्रयीपी
११ २	ऐक	एक
" २१-२५	ऋषभ	ऋषभ
१२ ३	ऋषि	ऋषि
१३ २	(तीर्थोकी स्थापन करने वाले हैं)	(तीर्थों की स्थापना करनेवाले हैं)
" ५	प्रमाण	प्रणाम
" १०	स्वस्तिनः	स्वस्तिन
" "	वृद्धश्रवा	वृद्धश्रवाः
" ११	स्ताक्षो	स्ताक्ष्यो

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
" १२	बलायु	बलायु
" १३	वामदेव सांत्वर्थम	वामदेवशांत्वर्थम्
" "	सोऽस्माक अरि	सोऽस्माकमरि
" "	पुरुहुत	पुरुहूत
" २७	शिष्टान्त्रपि	शिष्टानपि
" २८	महामुनीना	महामुनीनां
१४ ३	उनक	उनके
" २९	होनसे	हेनेसे
१५ ११	ऋषिकृत	ऋषिकृत
" १६	वेस भी	वे सभी
" ३०	कुण्डसना	कुण्डासना
" ३१	जिनेद्रा	जिनेन्द्रा
१६ २	सरस्वती हैंस,	सरस्वती, हैंस
" ५	तत्त्वः	तत्त्वतः
" १२	विप्रैः य	विप्रैर्य
" १४	ब्राह्मणोंको	ब्राह्मणोंको
" १९	मरुदेवी	मरुदेवी
" "	भरतेः	भरतः
" २०	मरुदेव्यां	मरुदेव्यां
२० १७	मूल	मूलक
" १८	मूलके	मूलकके
" २३	धर्मकी	धर्मको
" २७	पंडितोंमें	पंडितोंमें
२२ २१	कचा	काचा
" २४	जीज्ञासु	जिज्ञासु
२३ १	हैं	हैं
" २	कीसी	किसी

इति प्रस्तावना शुद्धिपत्रम्

अथ तत्त्वनिर्णयप्रासादस्य शुद्धिपत्रम् ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१२	जीन	जिन	२७	७	पृच्छकके	पृच्छकके
"	२२	समकित	सम्यक्त्व	"	१२	एकनिष्ठ	एकनिष्ठ
२	१	पारंगामी	पारगासी	"	१९	परवादियोंको	परवादियोंको
"	३	ऋषभदेव	ऋषभदेव	"	२३	तहां	तहां
"	१९	जीन	जिस	२८	७	मास	मास
"	"	देवप्रधान	देवार्थ	"	१०	अंधकारक	अंधकारका
"	१	चिन्ताचिताः	चिन्ताचिताः	"	१८	अनिवडा	अनित्या
३	९	रूपमद	रूपमद	"	१९	द्रव्य	द्रव्य
"	२०	मुद्रामुत्रिको	मुद्रा मूर्त्तिको	२९	४	स्वभावसें	स्वभावसें
"	२३	देवकी	देवीकी	"	५	के	०
४	१०	सांसारिक	सांसारिक	३२	४	कयीये	करीये
५	२५	भद्रबाहु	भद्रबाहु	३५	४	जीवनमोक्षावस्थामें	०
६	१५	और जो	और	३६	२	द्रव्यार्थिक	द्रव्यार्थिक
"	१९	प्रमुख	प्रमुख	३९	७	और	और
"	२०	अनपांगादि	अंग उपांगादि	४०	४	कारण	क्रियाकारण
१	८	कोटे कीतने	कोटेकी तरें	४१	१	ब्रह्म	ब्रह्मा
९	६	कालमें आचारादि	कालमें आचारादि ^१	"	२३-२५	सम्यक्तं	सम्यक्त्वं
"	२७	उपासक	उपाशक	"	*२६	गुणमयी	} गुणमय }
१०	१०	पाणिनी	पाणिनि	"	अर्हन्की	} अर्हन्का }	
१२	२५	लिखत	लिखते	४२	२१		परन्तप
"	२८	कोई अजाण	कोई अनजान	४३	१०	सृष्ट्यर्थ	सृष्ट्यर्थ
१४	६	ऋचाचें	ऋचामें	"	२१	यावदष्टशतं	यावदब्दशतं
"	२४	शुनःशेषादि	शुनःशेषादि	४४	२८	अध्याय	०
"	"	रक्तस्त्रावमें	रक्तस्त्रावमें	४७	६	सवासां	सर्वासां
५	१०	तदन	तदनु	" ४८	२१-१५	स्त्रियाओंके-को	स्त्रियोंके-को
"	"	ऋचामें	ऋचामें	५०	१९	भृकुटी	भृकुटी
"	१२	ऋत्विजो	ऋत्विजो	५७	१०	मृत्युं	मृत्युं
१६	२०	दुत	दूत	६१	१९	पुरुषा	पुरुषा
२४	५	जैमिनीयाः पुनः	जैमनीयाः पुनः	६२	१	मुखातटः	मुखावटः
"	६	मानं	मान्यं	"	१९	चाभरीता	चाभवरीता
"	१९	जमें	जैसें	६६	१६	पिङ्गला	पिंगला
"	२२	जनमतवाले	जैनमतवाले	६७	२१	योजम्	योजनम्
२५	९	कोई लोक	कई लोक	६९	१९	प्रमाण	प्रणाम
"	२१	सर्व	सर्व	७१	१५-१७	अद्भुत	अद्भुत
				७३	३	प्रसन्नान्	प्रपन्नान्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१६	और	और
१	२४	कहे	कह
७४	२६	असीष्ट	अभीष्ट
७५	२५	- दाकाशः	- दाकाश
७७	१६-२७	देवभृणि	देवभृणि
७९	१३	श्रीमहादेव	श्रीमहादेव
१	२२	विबुधाचित	विबुधाचित
८०	७	जगज्जीतयस्य	जगज्जीतयस्य
१	१७	पुरुषोत्तम	पुरुषोत्तमः
८३	२३	अयोग्य-योग्य	अयोग-योग
८५	१	'सात्यतगमने	'सात्यतगमने'
८६	१७	समीचा नही	समीचीनही
८७	५	अर्थवालीया	अर्थवालीयां
८८	२५	उपदेशकपणे	उपदेशकपणेका
		काव्य वच्छेद	व्यवच्छेद
८९	२०	धर्मास्तिकाय	धर्मास्तिकाय
		आ-	अधर्मास्तिकाय आ-
९०	१९	पर्यायोक्ती	पर्यायोक्ती
९०-९१	२४-२५	श्रृंग	शृंग
	२-९		
९१	२	प्रवर्त्तन	प्रवर्त्तन
१	१२	पांच	ज्ञानेन्द्रिय, (पांच-
		(पांच	ज्ञानेन्द्रिय, पांच-
९२	५	योग्य	योग
१	१९	(भवस्तु)	(भवस्तु)
१	२१	अथात्	अर्थात्
१	२५	प्रवर्त्त	प्रवृत्त
९३	१७	मसूयान्धा	मसूयान्धा
१	१८	करको	करके
९५	२७	(स्वादौ अत्यंत)	(स्वादौ) अत्यंत
१००	१७	नही क्या? खद्योत	नहीं. क्या खद्योत
१०१	११	ऐसें	सूत्र
१०५	१५	करता है.	कराता है.
१०७	३५	-स्वामी फेर	अयोग्य
		-स्वामीमें फेर	अयोग्य
१०९	११८	भगयोगीनाथ	
		जितनाचिर योगीनाथ	

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१९	तितना चिरयोगी	जनोंकों
		तितनाचिर	योगीजनोंकों
११०	९	शंक	शंख,
१११	३	वा सना	कुवासना
१	४	सम्यक्त्व	सम्यक्त्व
१	१२	सर्वकुंजाना;	सर्वकुच्छ जाना;
१	१६-१८	परीक्षमाणा	परीक्ष्यमाणा
१	२०	(तत्र)	(तत्र)
११२	२	-वृणैर्वि-	-वृणैर्वि-
१	१७	-वंधः	-बंधः
११६	१५	हरभ ब्रसूरीपादैः	हरिभद्रसूरिपादैः
१	२४	चन्द्राशु	चन्द्राशु
१	२१	(तमःपृशाम्)	(तमःपृशाम्)
११८	१	राग	रागसें
११९	१	जिनोत्तमरूप	जिनोत्तमरूप
१	२३	मुद्रशैलवत्	मुद्रशैलवत्
१२४	१	यवै नेया	ये वनेया
१	८-९-१०-१७	सुवर्ण	सुवर्ण
१	१३	बाह्य	ग्राह्य
१२६	२४	ऋषभदेव	ऋषभदेव
१२७	६	समुद्धत-	समुद्यत-
१	७	-पाली	-माली
१	१८	पूर्वोक्त	पूर्वोक्त
१	२५	श्रीमवीर	श्रीमहावीर
१३०	१८	ब्राह्मगया	ब्राह्मगया
१३८	५	गौतमऋषिने	गौतमऋषिने
१३९	१०	निरच्छयमवच्छयं	निरत्थयमवत्थयं
१	१५	अच्छावत्ती	अत्थावत्ती
१	१६	पदच्छ	पदत्थ
१	२५	डिच्छादिबत्	डिन्धादिबत्
१४३	१८	चन्द्रास्तेप्यागरी	चन्द्रास्तेप्यामरी
१४५	१	एकात	एकांत
१४७	१६	जगन्मनुष्याद्यम्	जगन्मनूष्याद्यम्
१४९	२७	आपके	आपको
१५१	१९	कालकृत	कालकृत
१५२	९	एको	एकोहं
१५४	५	छंदासि	छंदासि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५६	१२	स्थूलरूप	स्थूलरूप
१५८	१३	न्नाणीयोइ	त्राणीयोइ
"	"	कश्चिदक्ष	कश्चिदक्ष
"	१४	स्तब्धोदिवि	स्तब्धोदिवि
१६०	३	अमरणभव	अमरणभाव
१६२	१७	विचित्रितां	विचित्रतां
१६३	९	क्षरका	०
१६६	१८	श्रीहरी	श्रीहरी
१७१	१४	नहीं है. ?	नहीं है.
१७६	"	अश्वत्रिमः	अश्वत्रिमः
"	"	शाश्वत	शाश्वतः
१७७	१	निर्मितनैका	निर्मितनैका
"	१२	अरे !	अरे,
"	२०	दिळे	दळे
१८५	१२	ब्रह्मादि	ब्रह्मादि
१८६	१२	बतलाउं	बतलाओ
१९१	१८	तदानीमम्	तदानीम्
१९५	१	तो	तो
१९७	२१	द्विर-	द्विर-
२००	५	यद	यह
२००	१८	जायान्	ज्यायान्
२०४	१८	साम्येद	सौम्येद
२०५	१७	अनित्यं	अनित्य
२०८	५	वा अभावका	या अभावका
"	९	वा असत्	या असत्
"	१२	सौ-जो	जौ-सो
"	१७	एकांत	एकांत
२०९	९	पंचरूप	प्रपंच
२१०	१	जाल	जाला
२१२	८	जीवों करके	जीवोंके करे
"	"	पंच	पंच
"	२५	अप्समार,	अपस्मार,
"	"	क्षयी	क्षय
२१३	१४	सपादन	उपादान
"	२१	विचारोंकेही	विकारोंकेही
"	२६	जिसमें	जिसमें

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१५	४	आपना	अपना
"	१४	करनेसे	करनेसे
२१७	१	सीनोसीत्-सीनोसदासीत्	
"	२	ठहरेगी	ठहरेगा
२१८	२	होवेगी;	न होवेगी;
२२३	१५	इत्यदि	इत्यादि
"	१८	चक्कु	चकु
२२४	११	शूद्रणी	शूद्री
"	१५	ब्राह्मणी	ब्राह्मणी
२२५	७	कोंकी	कोंकी
२२९	४	अधार	आधार
"	९	तदण्डम्	तदण्डम्
२२९-२३०		सर्वाश्च	सर्वाश्च
"		व्युष्टीः	व्युष्टीः
२३२	९	ऋग्वेद	ऋग्वेद
"	१५	भावानुसार	भावानुसार
२३४	१७	हुआ, था,	हुआथा,
२३५	२३	इसमें	इसमें
२३८	६	हैं	है
२३८	१७	भस्मधनाग्नि	भस्मच्छनाग्नि
२३९	२२	सर्वशक्तिमान्	सर्वशक्तिमान्
२४१	२१	विद्यमान	विविद्यमान्
२४३	६	स्वप्नन्तम्	स्वप्नन्तम्
२४४	९-१२	उत्थास	निःश्वास
२४५	१२	(आजायत)	(अजायत)
२४६	४	करता	करता
२४७	१	दूसरा	दूसरा
"	१७	ऋग्वेद	ऋग्वेद
२५७	८	शृ	शृ
२५८	१७	पठण	पठन
२५९	७	प्रणित	प्रणीत
२६०	१०	वसिष्ठके	वसिष्ठके
२६५	१	उद्देश्यके	उद्देश्यके
"	८	इसमें	इसमें
२६६	२२	खैचके	खैचके
२६७	१	वर्गमें	वर्ग में

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७०	१४	सर्वोकी	सर्पोकी
२७०	२९-१	नमस्कारहै ?	नमस्कार करताहै ?
२७१			
२७२	१९	मेऽअस्तु	मेऽस्तु
२७५	२६	सुरात् 'पिबेइति	सुरां पिबेत् 'इति
		श्रुतिः	श्रुतिः
२७९	१४	रचे	रच
२८१	१	(उँम्)	(उम्)
"	८	भूर्भुवः	भूर्भुवः
"	२३	उवम्भाया	उवम्भाया
"	"	पंचरकर	पंचकख
"	"	परमेष्टी	परमिष्टी
२८४	५	ब्रह्माका भी	ब्रह्मा कामी
२८६	५	इंद्रिया	इंद्रियां
२८७	१७	अमर्त्त	अमूर्त्त
२९२	२७	साक्षाद्द्रष्टा	साक्षाद्द्रष्टा
२९३	१९	ताइ	ताई
"	२४	किविष्टे	किविशिष्टे
२९४	१६	पर्यायमेही	पर्यायमेही
२९४	२७	जिसवेद	जिस वेदमें
२९६	१९	वद्	वट्
३००	२	वेदांश्छंदांसि	वेदांश्छंदांसि
३०४	१०-१२	करैं	करैं
"	१५	१८८९	१८८४
३०७	२५	धर्मही है.	ही धर्म है.
३१२	११	तमसा	तपसा
"	१५	॥४२॥	॥१४२॥
३१३	२७	हिंसको	हिंसाके
३१८	१४	चौसष्ट	चौसठ
३२०	१	स्वच्छ	सवृत्थ
"	११	सावज्ज	सावज्ज
"	"	वज्जणाओ	वज्जणाओ
"	१८	परकपहो	पक्खपहो
"	२५	गिहच्छ	गिहत्य
"	२६	सविग्र	संविग्र
३२१	८	खयोय	खज्जोय
"	९	गिहच्छ	गिहत्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
"	२५	व्यवहारो	ववहारो
"	"	छनुमच्छं	छउमत्थं
३२३	३	विजयं	विजयं
"	४	विद्या	विज्जा
३२४	६	श्लोकः	श्लोक
३२५	१८	स्वति	स्वस्ति
३२८	७	श्रीमदिजिन	श्रीमदादिजिन
३२८	१५	करता	करता
३२९	४	विस्सुऊ	विस्सुओ
"	५-६	च्छ-च्छे	त्थ-त्थे
"	१५	कौसुमसुत्र	कौसुमसूत्र
३३२	१९	यशःच	यशः सुखेच
"	२५	शुक्रःसूर्यसतो	शुक्रःसूर्यसुतो
३३३	७	ध्वा	झा
"	१०	वृद्धै	वृद्धै
३३७	१५	सौष्ठवं । वर्द्धतां	सौष्ठवं वर्द्धतां ।
३३८	२	स्तभमे	स्तंभमे
३४०	२१	ददता	ददतां
३४२	१३	पर्यन्त	पर्यन्तं
३४३	२०	जातकर्म	नामकर्म
३४५	२	वज्जस्त	वज्जहस्त
"	६	वासरकेवंकरेह	वासक्खेवंकरेह
"	१९	ऽष्ट	ऽष्टम
३४६	१७	षट्क्कियोंको त्याग करे	षट्क्कितियोंको एकत्र करे
३४८	२७	भयात्	भूयात्
३४९	१६	बुध,	बुध, गुरु,
३५०	१४	ध्रवं	ध्रुवं
३५१	७	सवच्छ	सवत्थ
३५१	७	साड्ढाणं	सट्ढाणं
"	१३	उम्मप्रेण	उम्मगेण
"	"	जणवऊव्व	जणवओव्व
"	२१	भिरकाग	भिक्षाग
३५२	१	उग्रकुलेसु	उगगकुलेसु
"	२	ईरकाग	इक्खाग
"	४	ईति	इति
"	"	अच्छि	अस्थि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
"	"	लोगच्छेय	लोगच्छेरय
"	५	उसप्पिणि	ओसप्पिणि
"	"	समुपचइ	समुप्पजइ
"	६	अरकीणस्स	अक्खीणस्स
"	"	अणिधिणस्स	अणिजिणस्स
"	"	उदण्णं	उदण्णं
"	८	भिरकाग	भिक्षवाग
"	"	आयाइंसुं वा	आयाइंसु वा
"	९	निरकमणेणं	निकखमणेणं
"	"	निरकमिसु	निकखमिसु
"	१२	कुल	कुले
"	१३	उम्र	उमग
"	"	इरकाग	इक्खवाग
३५४	६	श्रद्धोको	शुद्धोको
३५७	२४	पितृतिथि	पित्रतिथि
३५९	१८	स्वकरकारणा	स्वकरणकारणा
३६०	१५	अरकरेसु	अक्खरेसु
"	१६	डिउ	डिओ
"	१७	चितियमत्तोइ	चितियमित्तोवि
३६१	१४	सापाने मंत्रे	सोपानं मंत्रं
३६२	१	मंत्रत्रत्यागे	मंत्रत्यागे
"	१०	वेद	वेदी
३६३	१९	समादिष्टं	समादिष्टं
"	२७	भगवत्	भगवन्
३६४	१२	सामायिक	सामायिक
३६५	१६	परमेष्ठि	परमेष्ठि
३७३	२-२०	दश	एकादश
३७७	१९	पूर्णानुज्ञा	पूर्णानुज्ञा
३७८	१	वेदिकरण	वेदीकरण
३७९		चतुवश	चतुर्विंश
३७९	१४	स्याग न	स्यागन
३८७	३	ताइ	ताइ
३८८	२८	पाणिग्रहत्रय	पाणिग्रहत्रयं
३९०	२	स्सकृज्ज-	स्सकृज्ज-
"	"	ल्पन्ति	ल्पन्ति
"	३	राजाओ	राजे
"	१३	इद्धने	वृद्ध

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९१	२०	पूर्ववत्	पूर्ववत्
३९५	९	पीपकी	पीपलकी
३९६	१०	ज्ञातकयोप	ज्ञातकायोप
४००	१२	निबेडा	निविडो
४०१	१४	निविड	निविड
४०४	५	निविडेन	निविडेन
४०७	१४	विवेयस हिया	विवेयसहिय
४०८	२	समच्छो	समत्थो
"	६	संग्रहसीलो	संग्रहसीलो
"	"	अभिग्रह	अभिग्गह
"	७	अविकच्छगो	अत्रिकत्थगो
४१०	३ ४-	उ; ढो; च्छो; दहं; ब्रू; बद्धाच्छ	
"	५-६	ओ; ढो; त्थो; हदं; ण्णु बुद्धा; त्थ	
४११	३	मर्तिते	मर्हिते
४१२	१९	क्षमाश्रवण	क्षमाश्रमण
४१३	१७	स्वधरमें	स्वरवसें
४१२	२५	वायणच्छं	वायगत्थं
४१३	२४	ठइयाइं	ठइयाइं
"	२५	मुख	मुख
४१४	९	मच्छएण	मत्थएण
"	१६	सम्म	सम्म
"	१७	बंदावेह	बंदावेह
"	२१-२२	वत्तियाण	वत्तियाए
४१५	७ २०	अन्नच्छ	अन्नत्थ
"	१४	खवउ	खवेउ
४१६	८-१६	अन्नच्छ	अन्नत्थ
"	१३	युक्तानां	युतानां
"	२०	शासने	शासनं
४१७	१०	निद्वु	निद्वु
४१९	१९	निदाविअ	विदाविय
४२०	८	महच्छ पुव्वच्छ परमच्छो	
"		महत्थ पुव्वत्थ परमत्थो	
"	१९	अन्नच्छ	अन्नत्थ
४२१	२-१९	अहणं	अहण्णं
"	५	अद्य	अज्ज
"	६	च्छि	त्थि
"	१०	च्छ	त्थ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
"	११	महेण	महेण
४२२	६	"	"
"	१९	स माइयं	सामाइयं
"	२१	वदित्तु	वदित्ता
"	२२	तुज्जेहि	तुज्जेहि
"	२३	च्छे	त्थे
"	२४	निच्छा	नित्था
४२३	१	पवेमि	पवेमि
"	७	च्छे; च्छ	त्थे; त्थ
"	१२	च विगईअणाय	चउ विगईअणाय
"	२३	पस्तकांतरमे	पुस्तकांतरमे
४२४	३	जिणपणत्तं	जिणपणत्तं
"	२६	पचम	पंचम
४२६	१३	देवके	देवके विषे
४२८	९	यह	यह
"	१२	जिवोको	जीवोको
४२९	२२	देवके	अदेवके
४३२	१८	यहि	यदि
४३४	१२	सम्पक्खो	सम्यक्खो
४३५	१२	मासायिक	सामायिक
४३५	७	अहणं	अहणं
"	२१	उरालिय	ओरालिय
४३६	"	अहणं	अहणं
४३९	१५	मत्ताण	मित्ताण
४४०	२४	तिथि	तिथि
४४१	७	गुरु	गुरु
४४५	४	।४९।	।४७।
४४५	१८	जोग	जोगं
"	१४	च्छमासं	छमासं
४४६	३	सम्यक्त्वारो	सामायिकारो
४४७	१०	अहणं	अहणं
"	१२	उत्थिए	उत्थिए
"	२२	महेण	महेण
४४८	२६	रोपणधि	रोपणविधि
४४९	६	सुधारोपण	श्रुतारोपण
४५३	१९	देसियाणं	दसयाणं
"	२४	विअट्टउमाणं	विअट्टउमाणं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४५५	१६	विहुरयमला	विहूरयमला
४५६	१०	देवदाणव	देवदाणव
४५७		एकोत्रिंश	एकोनत्रिंश
"	१०	सक्कच्छंयमि	सक्कत्थंयमि
"	२३	एगेए	एगेण
४५८	८	गिण्हओ उवहाणं	होओ
"		गिण्ह उ उवहाणं	होऊ
"	१४	अगिण्हमाणोण	अगिण्हमाणोण
४५९		एकोत्रिंश	एकोनत्रिंश
"	१	मुहुत्तनरकत्त	मुहुत्तनक्खत्त
"	७	मललंकेणं	मलकलंकेणं
४६१-४६३		एकोत्रिंश	एकोनत्रिंश
"	१४	निव्विण	निव्विण्ण
४६५	१५	इंधनकौ	इंधनको
४६६	२३	पुव्वएहे	पुव्वण्हे
४६६	२६	वांदऊण निअमेण	वांदऊण निअमेण
४६८	३	अयकनी	अयसनी
"	५	भोवआ	पभावओ
"	६	रूवाग्ग	रूवारुग्ग
"	१२	अन्निरमेउ	अभिरमेउ
"	१३	उत्तम	उत्तम
"	"	सुदरा	सुंदरा
"	१६	निव्विण	निव्विण्ण
४६९	१३	श्रुवि	शुचि
४७०	१४ १५	भूयासं	भूयासं
"	१६	निःपापा भूयासुः॥	
"		निःपापा भूयासुः निरुपद्रवा भूयासुः॥	
"	२४	वंतुः ॥	वंतु ॥
"	२०	पृथिव्यप्	पृथिव्यप्
४७१	४	सुखीभवंतु	सुखीभवंतु
४७२	६	सन्नोपचारो	सन्नोपचारो
"	११	अभिषेक	अभिषेक
४७२	१३	बृहणं	बृहणं
४७३	१५	धूपोस्तु	धूपोस्तु
४७४	१४	धूपोस्तु	धूपोस्तु
४७५	२४	शतं	शत
४७७	७	सत्तभीतिविवाताई	सत्तभीतिविवाताई

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४७८	२५	धान	ध्यान
४८०	६	क्षितिर्न	क्षतिर्न
"	१२	श्रेयसां संनिधानं	श्रेयसां संनिधानं
"	१९	जगन्नयगुरोस्सौभाग्य	जगन्नयगुरोस्सौभाग्य-
४८१	६	दूसरी बेर छपी हैं.	
"	१७	ढया ढया	
४८४	७	जगन्नय जगन्नय	
४८५	६	विघ्न विघ्न	
४८६	६	इह० इह०	
"	२३	विघ्न विघ्न	
४८७	१	दिक्पाल दिक्पाल	
"	१५	जगन्नयस्य जगन्नयस्य	
४८८	२२	जगन्नयी जगन्नयी	
४८९	२४	शक्रस्तव शक्रस्तव	
४९०	४	जगन्नय जगन्नय	
"	५	पूष्पां	पुष्पां
"	११	पूष्पादि	पुष्पादि
४९१	२०	षडावश्यक	षडावश्यक
४९१	२३	परमेष्ठि	परमेष्ठि
४९१	२३	लोहेण	पंचिदिअहेण
		लोहेण वा	पंचिदिअहेण
४९४	१३	भय	भव
४९५	७	रिअसुव	रिअसुव
"	२१	गरिहामि	गरिहामि
४९७	१६	परमेष्ठि	परमेष्ठि
"	२४	वसहेणं	वसहेणं
४९८	१५	किंचि जंजं ॥ किंचि ॥ जंजं	
४९९	९	दसणं	दसण
५०१	२१	पुष्प	पुष्प
"	२५	यात्राणां	त्रयाणां
५०२	१०	चंद्राद्धे	चंद्राद्धे
५०३	२०	प्रियकर	प्रियवर
५०४	१२	कृत	कृद्
५०६	११	व्यवच्छेद	व्यवच्छेद
५०७	१२	बध्यते	बध्यते

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५२०	६	इति	ईति
५२१	४	धारासामान	धारासमान
५२२	२३	(स्तौत्येवैनमेतत्)	(स्तौत्येवैनमेतत्)
५२६	११	श्रीन्मु	श्रीमन्मु
३१	२२	खंडके	खंडके
५३३	१४	तिनको	तिनके
"	१६	समाचारी	सामाचारी
५३४	२०	२१ के	२१ वें
५३५	७	बौधमपसें	बौद्धमतसें
"	९	Jacobi,	Jacobi,
"	२४	करमें	करनेमें
५३५	२९	तिस विषयक	तिस विषयक-
		हकीकातसें	तहकी कानसें
५४१	१६	मोरको	मोक्खो
५४१	१७	केवल	केवल
५४२	१४	सिद्धि	सिद्धि
५४४	५	उपाधि	उपधि
५४५	२	श्रीजिनभद्राणि	श्रीजिनभद्राणि
"	२३	जैनभासाः	जैनाभासाः
"	२२	मत्यानु-	मत्यनु
५४९	१३	अठ	अठ्ठ
५६३	१०	व्रतिके	वृत्तिके
५६५	१०	सैवना	सैवना
५६८	८	मुक्तिका	मुक्तिका
"	१२	केवल	कवल
५७१	३	सकुल	संकुल
"	२१	केवली	केवलि
५७२	१०	करनेसें ?	करनेसें ? (५)
५७४	२४	संसारक	सांसारिक
५८०	१४	अनेकांतिक	अनेकांतिक
५८२	१०	एण्हविऊण	एण्हविऊण
५८३	२२	मोक्षका मानके	मोक्षका हेतु मानके
५८४	१०	ब्रह्माचारी	ब्रह्माचारी
५९३	१२-१३	सो महाभिषेक	
		सो माला महाभिषेकके	
५९९	१६	पुजन	पुजन
"	२१	नैवेद्य	नैवेद्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६००	८	कपिथ	कपित्थ
६०१	८	देशपरत्न	देशरत्न
६०७	२६	इरखु	इम्खु
६०८	२	वण्णया	विण्णया
६१३	३	यताः	यतः
"	२५	साध	साधु
६१६	१४	निषव्या	निषद्या
६२७	२२	चप्रांवाला	चठियांवाला
६२९	२४	दिसला	दिखला
६३०	७	सहस्व	सहस्र
"	१२	उपरात	उपरांत
६३१	१	चलनेमें	चलनेसें
६३८	२	चारिकाक्षिणाम्	चारित्रकाक्षिणाम्
६५०	२१	शीतल	शील
६५८	४	रामश्वर	रामेश्वर
६६१	१०	वक्तमें	वक्तव्यमें
"	१४	विभजया	विभजनया
६६२	१८	वास्वे	वास्ते •
६६७	९	उपकारके	उपकार करके
"	२१	नानी	नाना
६७५	२५	-मितिः ॥ "	-मिति ॥ "
६७७	९	घंटातरके	घटांतरके
"	१५	संयोगके	संयोगके

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६८२	१	तो हेतु	हेतु तो
"	१९	प्रसंगमें	प्रसंगसें
६८५	२१	जान सकेगा	न जान सकेगा
६८७	१२	अनुमा-	अनुमान
६९०	१७	जीवोंका	जीवोंको
६९१	२३	परका	परको
६९८	१५	भोक्ताद्	साक्षाद्
७०५	१३	जर्वि	जर्वि
"	१५	इति	०
७०७	२४	निर्विशेष	निर्विशेष हि
७०८	१६	वतुस्की	वस्तुकी
७०९	१	यादि	यदि
"	२२	'चलती'	'चलति'
७१२	८	मतस	मतसे
७१८	२२	विभावद्रव्यजन	विभावद्रव्यव्यजन
"	१३	गुणा	गुण
"	१५	गंधांतर	गंधांतर
७२८	६	नहीं डूब जायगा?	नहीं, डूबजायगा.
७३०	४२	तृतायः	तृतीयः
७३३	२०	व्हवयार	व्यवहार
७३५	३	द्रव्योंको	द्रव्योंको
७३६	३	भेद	भेद

इति तत्त्वनिर्णयप्रासादस्य शुद्धिपत्रम् ।



SETH VEERCHUND DEEPCHUND, J.P., C.I.E.

रा. ब. शेट माणेकचंद कपूरचंद और स्व. शेट मगनभाई कपूरचंद.

ये दोनों भाई जिनका गंभीर, संयुक्त फोटो सामने दृष्टिगोचर हो रहा है, बीसा ओसवाल जैन जातिके हैं, और पूना तथा मुंबईमें निवास करते हैं. असलमें ये अहमदाबादके हैं, और इनके पूर्वजोंमेंसे शेट दीपचंदके पुत्र, शेट कीकाचंदको लालभाई और वजेचंद दो पुत्र थे. लालभाईका वंश अहमदाबादमें है, और लगभग सो वर्ष पहिले शेट वजेचंद पूनामें जाकर आबाद हुवे. जवाहरातके धंधेमें अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त करके ये पेश्वा सरकारके जवहरी नियत किये गये; और उन्हींकी सहायतासे एक बड़ा मकान शनिवार पेठमें बनवाया.

पूनामें सवाई माधवराव पेश्वाके समयमें जब किलेका काम आरंभ हुवा, तब नाना फडनवीसकी ईच्छानुसार इन्होंने किलेके बाहर जवहरीवाडा बसाकर व्यापारकी बड़ी उन्नति की. ये प्रत्येक जैनकार्यमें अग्रणी बनते थे, और बहुतसे जैन मंदिर बनवानेमें इन्होंने सहाय दीथी. संवत १९०१ में ८८ वर्षकी वयमें इन्होंने स्वर्गवास किया. इसी समयसे यह दूकान शा. वजेचंद कीकाचंदके नामसे आजपर्यंत चल रही है. वह दूकान कई बार मरहटाओंसे लूटी गई थी.

उक्त शेट वजेचंदको कपूरचंद, बमलचंद उपनाम वापूभाई और उत्तमभाई तीन पुत्र थे. शेट कपूरचंद बहुतही शांत प्रकृतिके महाशय थे. वे सांसारिक कार्यसे बहुधा विरक्त रहते थे; उनको एकांतवास बहुत पसंद था और वे धर्ममें दृढ श्रद्धावान थे.

शेट बापुभाईने व्यापारादि भली प्रकार चलाकर अच्छा धन और प्रतिष्ठा प्राप्त किया. पूनाकी पीजरापोल पहलेही बनानेमें और उसके निर्वाहके लिये अच्छा प्रबंध करानेमें इन्होंने बहुतही परिश्रम उठाया था, और अंत समयतक उसके ट्रस्टी थे.

उक्त शेट कपूरचंदके बड़े पुत्र शेट मगनभाईका जन्म संवत १८९३ में हुआ था. वह पूनाहीमें रहकर सराफी और जवहरातका काम करते थे. मंदिरोंका कारबार जो पहलेसे इनके घरानेमें है, वह अच्छी तरह चल रहा है, और वह पीजरापोलके ट्रस्टी थे. इनके छोटे भाई शेट माणेकचंदका जन्म संवत १८९८ में हुआ था. संवत १९१६ में इनकी दूकान मुंबईमें भी स्थापित हुई और दूसरेही वर्ष शेट माणेकचंद अपनी दूकानपर किल्लीदारीका काम करने लगे. शेट बापुभाईकी शिक्षासे इस छोटीही अवस्थासे इन्होंने बड़े होसलेके साथ धन और मान प्राप्त करना प्रारंभ किया.

सन १८७६ में सोलापुरके दुष्कालके समयमें हजारों जानवरोंकी प्राण-रक्षा करनेमें इन्होंने बहुत परिश्रम कर सब कार्यका भार अपने हाथमें लेकर बहुतही अच्छा प्रबंध किया. वणिकबुद्धि, कार्यकुशलता और दीर्घदृष्टीसे जो काम ये हाथमें लेते हैं, उसे आप अच्छी तरह पूरा करनेमें कभी कमी नहीं रखते हैं.

ये दाबुद सासून मिल और पायोनीयर मिलकी एजेंसी, आढत, जवाहरात, सराफी, इस्ते, रुई आदिका धंधा सफलतासे करते आये हैं. अपनी मीठी जवान, उद्योग और बुद्धिबलसे इन्होंने अनेक मित्र करलिये. किसीके बीचमें टंटाबखेडा पड़ता है तो ये मिटा देते हैं.

संवत् १९४८ में बंबईके श्री गोडीजी पार्श्वनाथजीके जैनमंदिरमें ये मेनेजींग टूस्टी हुवे। ये मंदिर अन्वल गिना जाता है और वह देवसूर-तप गच्छकी मालकीका है। यहांसे बाहरगांवके बहुतसे मंदिरोंको सहायता पहुंचती रहती है। आप वहांका कार्य बहुत भली प्रकार चला रहे हैं और जातिश्रम करके मंदिरका देवद्रव्य और इस्टेटकी अच्छी उधति करते हैं। इन्हींके समयमें भगवानके मुकुट आदि आभूषण सुंदर बनवाये गये; मंदिरका हिसाब छपाकर प्रसिद्ध करनेका सुधारा अवश्य ये श्रेष्ठ अंगीकार करेंगे ऐसी आशा है।

सं० १९५२ में जब मुंबईमें प्लेगकी बीमारी हुई तब अगुआ होकर इन्होंने एक चंदा करके पहलेही पहले जैन हॉस्पिटल स्थापन किया और सेक्रेटरी मी० अमरचंद पी० परमारकी स्तुतिपात्र सहायतासे सेग्रेसन, हास्पिटल आदिका अच्छा प्रबंध प्लेग कमीटीको भी जोर शोर दे करारकर लोकोंकी नासभाग, छिपछिपी, धर्मभ्रष्ट होने आदिकी आपत्ति दूर करा दिया। इनको इस सेवाके उपलक्षमें ता. २१ जुलाई सन १८९७ को जैनबंधु और कपोलकोमकी ओरसे प्लेगकमीटीके चेअरमेन जनरल डबल्यु गेटेकरके हाथसे माधवबागमें एक महती सभामें मानपत्र दिया गया। मान्यवर गवर्नमेन्टने भी आपको दिसंबर सन १८९८ में रावबहादुरकी उपाधि प्रदान की। सं. १९५६ के भीषण दुकालमें जब प्रतिष्ठावाले घरानेके जैन लोग भी अन्नको तरसते थे तो आपने उनकी सहायता अमेरिकन काँसल मि. विलियम टी. फीके उद्योगसे प्राप्त तथा यहांपर फंडद्वारा तथा निजके धनसे बहुत अच्छी तरह की थी।

श्रेष्ठ बापुभाईका स्वर्गवास संवत् १९३६ में हुवा। उनको एक पुत्र और एक पुत्री है पुत्र मी. अंबालालका जन्म सं. १९३३ में, श्रेष्ठ माणिकचंदके पुत्र मी० नेमकचंदका सं० १९३२ में, और श्रेष्ठ मगनभाईके पुत्र बाबुभाईका सं० १९५६ में हुवा। श्रेष्ठमगनभाईको दो पुत्री भी हैं। श्रेष्ठ मगनभाईका स्वर्गवास पूनामें सं. १९५९ के श्रावण सुदि १४ को हुवा।

आशा की जाती है कि भविष्यत्में मी० अंबालाल एक अच्छे अर्थशास्त्री और मी० नेमचंद एक नामी जवहरी होंगे। मी. अंबालाल जैन कॉन्फरन्सकी इंटेलीजंस, हेल्थ और वॉलंटियर कमिटीके अध्यक्ष नियत किये गये थे जो कार्य उन्होंने कुशलतासे किया।

यद्यपि ये पूनानिवासी हो गये हैं, तो भी राह रसम अहमदाबादकी रस्कर अपनी पुत्रियोंका विवाह वहांही करते हैं। सात पीढीतक इनकी प्रतिष्ठा एक समान चली आई है।

जैनोंके मुकदमें आदि धर्मकार्यमें ये अच्छा लक्ष देते हैं। गुप्त द्रव्यद्वारा गरीब जैन कुटुंबोंको और पुस्तकद्वारा मुनिराज और विद्यालयोंको सदा सहायता करते रहते हैं।

अहमदाबादमें इनके पूर्वजोंका बनाया हुआ जैनमंदिर है। उसके जीर्णोद्धारके लिये आप तयारी कर रहे हैं; और इनके पूना तथा बंबईके दोनों निवासस्थानमें शोभनीय घर देरासर हैं।

दूसरी जैन (स्वेतांबर) कॉन्फरन्सकी “मंडप कमिटी” के आप अध्यक्ष नियत किये गये थे। और मंडपके और स्थायी फंडके कार्यमें इन्होंने स्तुतिपात्र मदद दी थी।

श्रेष्ठ माणिकचंद स्वभावके बड़े नम्र, विचारशील, निराभिमानी, कुटुंबप्रेमी, श्रद्धालु, बचनके पूरे, विनयी और शीलवान हैं, और मित्रोंको सहायता करने, दीनोंकी रक्षा तथा परोपकारमें सदा तत्पर रहते हैं।

हम इस कुटुंबकी सदा वृद्धि और दीर्घायु चाहते हैं !!

रावसाहेब शेठ वसनजी त्रीकमजी मूलजी, जे. पी. मुंबई.

अगले पृष्ठके उपर सुंदर चित्र उन महाशयका है कि जिन्होंने बहुत छोटी उमरसे ही ज्ञानवृद्धि और परोपकार वृत्तिमें अपना दिल लगाना आरंभ किया है.

शेठ वसनजी कच्छके दशा ओसवाल जातिके जैन गृहस्थ हैं. कच्छमें सूथरी ग्राम इनकी जन्मभूमि है; परंतु बहुत कालसे ये मुंबईके रहनेवाले हो गये हैं. इनका जन्म विक्रम संवत् १९२२ के द्वितीय ज्येष्ठ वदि ११ के दिन हुआ था. भाग्यवान पुत्रके उत्पन्न होनेसे पिताका व्यापार बहुत बढ़ गया. अंतराय कर्मके उदयसे माता इनको चार दिनका छोड़के कालका प्रास बन गई. इनके पिता और पितामह (दादा) शेठ मूलजी देवजीने बड़ी होशियारीके साथ इनका पालन किया. जन्मसे ही पिताके प्रेममें पूर्ण रीतिसे रहनेसे माताका वियोग मान्य न हुआ. दुर्भाग्यसे ८ वर्षकी उमरमें इनके पिता भी स्वर्गवासी हो गये. वृद्ध पितामहके उपर पौत्रकी लालन पालनकी चिंता आपड़ी. पितामहका इनपर प्यार बहुत गया. अभाग्यवश पितामह भी संवत् १९३२ में इनको १० वर्षका छोड़के देवलोकको प्राप्त हो गये, परंतु जन्मसे ही इष्ट वियोगका दुःख सहन करनेका अभ्यास होनेसे दुःखको इन्होंने वश कर लिया. इनका धंधा सत्यवादी, निमकहलाल, और अनुभवी मुनीम शा. लखमसी गोविंदजीके हाथमें होनेसे बहुत अच्छी तरह चलता रहा. शेठ वसनजीने जैनशालामें गुजराती भाषाका और कुछ अंग्रेजीका भी अभ्यास कर लिया. कई श्रीमंतके लड़के लाडसे और मातापिताके अभावसे अभिमानी, स्वेच्छाचारी, उद्धत और दुर्व्यसनी बन जाते हैं, वैसा हाल इनके मुनीमके पूर्ण अंकुशसे और निजकी बुद्धिसे न होने पाया, वरन बालक सोदागर बने रहे.

संवत् १९३४ की सालमें ज्ञातिनायक शेठ नरसी नाथाके कुलकी कन्या खेतवाईसे इनका लग्न हुआ, और प्रेमावाई और लीलवाई दो पुत्री उत्पन्न हुई. इनकी प्रथम स्त्रीके कालवश होनेसे उक्त नरसी शेठकी पौत्री रतनवाईसे संवत् १९४६ में इनका दूसरा विवाह हुआ. और संवत् १९५१ में मेघजी उपनाम काकुभाई नामक पुत्र उत्पन्न हुआ.

शेठ वसनजी अपने रोजगारमें पूरी उन्नति करते रहे. इनके चेहरे और वर्तानसे नम्रता, सादापन, विनय, गुण, शांति, धर्मप्रेम, निराभिमान, सत्यता, शुद्धांतःकरण और नीति स्पष्ट प्रकट होती है. इन गुणोंसे अलंकृत होकर इन्होंने अपनी प्रतिष्ठा अपनी ज्ञातिमें ही नहीं वरन मुंबईके नामी सोदागरोंमें बहुत बढ़ा ली है. हुबली, धारसी, अहमदनगर, खंडवा, धुलीया, आकोला, खानगाम, आकोट, वढवाण आदि नगरोंमें इनकी दुकानें हैं; और सेंकड़ों मनुष्य इनकी बदौलत उदरपोषण कर रहे हैं. इनके मुनीम गोविंदजी शामजीकी नेकी प्रसंशनीय होनेसे भी शेठ वसनजीको बड़ा सुविधा रहा. वह मुनीम अब कालवश हो गये.

यह महाशय बड़े उदार हैं, और इस छोटी उमरमें भी आजपर्यंत अनुमान रु. चार लाख सुकृत और धर्मकार्यमें लगा चुके हैं, और आगेके लिये भी धर्मकार्यमें कटिबद्ध हैं. धर्ममें ऐसे दृढ़ हैं कि, हुबलीके जैन मंदिरका प्रबंध स्वयं करते हैं, और इनके सुप्रबंधसे बहुत रुपैया भंडारमें जमा होगया है. संवत् १९३४ में इनके पिताने सायेरा-कच्छमें जो जैन

मंदिर बनवाया था, उसका प्रतिष्ठा महोत्सव आपने मुंबईसे संघ ले जाकर बड़ी धूमधामसे किया था. और रु. १२ हजार खर्च कर दक्षिणमें बारसी नगरमें एक जैन मंदिर बनवाया है.

संवत् १९४९ में ब्राह्मणोंको भोजन कराने न करानेके विषयमें इनकी ज्ञातिमें दो पक्ष पडगयेथे, उस समय शेट वसनजी पुरानी रीति भांति और प्रणाली अच्छी समझकर ज्ञाति शेट नरसीनाथाके पक्षमें रहे थे. दोनों पक्षके इसमें लाखों रुपये व्यय हो गये. इस बातको बहुत बुरी समझके इस रगडेको मिटानेके लिये आप ऐसा उद्यम करने लगे कि दूसरे पक्षके समझदार पुरुष भी इनकी प्रशंसा कर रहे हैं. अब झगडा मिट गया.

संवत् १९५२ में अपनी ज्येष्ठ पुत्रीका लग्न इन्होंने बड़ी धूमधामसे किया. उसी सालमें इतनी छोटी उमरमें इनके शुभ गुणों और परोपकार वृत्तीको देखकर ब्रिटिश सरकारने इनको जस्टीस आफ थी पीस (J. P.) की सुप्रतिष्ठित उपाधि दी. इनकी सादगीकी जितनी प्रशंसा की जाय इतनी थोड़ी है. यात्रासे वापस आनेपर मानपत्र देनेकी तयारी देखकर इन्होंने यही कहा कि, जो पैसा आप इस कार्यमें लगावें, वो कोई अच्छा कार्यमें लगावें तो उचित है. जनहितमें सुवृत्तिको प्रवर्त करना मनुष्यमात्रका कर्त्तव्य है.

अपने ज्ञातिभाईओंका श्रेय करनेके लिये यह सदा तत्पर रहते हैं. सुना जाता है कि, इनका विचार एक जैन सेनिटेरियम (आरोग्य भवन) बनानेका है.

संवत् १९५२ में जब हिंदुस्थानभरमें दुर्भिक्ष पडा था, तब इन परोपकारी शेटने दुकालके चंदोंमें अच्छी सहायता दी, इतनाही नहीं बरन गरीबोंको सस्ते भावसे अनाज बेचनेके लिये, आपने दुकानें खोल दी; और खरीद भावसे भी बहुत कम दामोंमें अनाज बिकवाते रहे. इसी सालमें जब बंबईमें प्लेगका प्रकोप भयंकर रूपसे फैला हुआ था, लोगोंमें भागाभूगी तथा धरपकड हो रही थी और सरकारी “प्लेग कमिटी” बीमारोंको सरकारी होस्पिटलमें लेजा रहीथी, उस समय आपने ज्ञातिबंधुओंको ऐसी दुःखी हालतमें देखकर अपने खर्चसे ता. २७ मार्च १८९७ को एक “कच्छी दशा ओसवाल जैन हास्पिटल” स्थापन की जिससे रोगी सरकारी होस्पिटलमें जानेके बदले अपनी ज्ञाति होस्पिटलमें जाने लगे जहांपर बहुतसे आरोग्य होगये, और शेट वसनजीको धन्यवाद देने लगे. धनका सदुपयोग ऐसैही सत्कार्यमें करना उचित है. होस्पिटलका प्रबंध ऐसा उमदा रहा कि, प्लेग कमिटी और समाचार पत्रोंने बड़ी प्रशंसा की थी. अनुमान ६००० रुपये इन्होंने निजके खर्च किये. कच्छ मांडवीकी प्लेगमें और सैंकडों फंडोंमें आपने अच्छा चंदा दिया और प्रत्येक अच्छे कार्यमें सहायक होना आप अपना कर्त्तव्य समझते हैं.

विद्यावृद्धिके प्रत्येक कायमें शेट वसनजी मदद देते ह. “साक्षर साहायक-प्रजाबोधक मंडली” के यह पेट्रोन है. और गरीब विद्यार्थियोंको, स्कूल फी व दूसरी मदद देते रहते हैं. शेट वसनजी “शेट तापीदास वरजदास मिल” के डीरेक्टर है और हरेक सार्वजनिक कार्यमें आप प्रसन्नतासे शामिल होते हैं. इनकी उदार वृत्तीसे प्रसन्न होकर ब्रिटिश सरकारने इनको रावसाहेबकी उपाधि प्रदान की.

सहायताके सिवाय इस ग्रंथकी १२५ प्रति इन्होंने मुनिराज और पुस्तकालय आदिको भेंट देनेके लिये खरीदी हैं.

हम शेट वसनजीकी दीर्घ आयु चाहते हैं और देशहित, धर्महित और ज्ञातिहितके और भी अच्छे कार्य आप सदा करते रहें, यही हमारी अभिलाषा है. तथास्तु !!

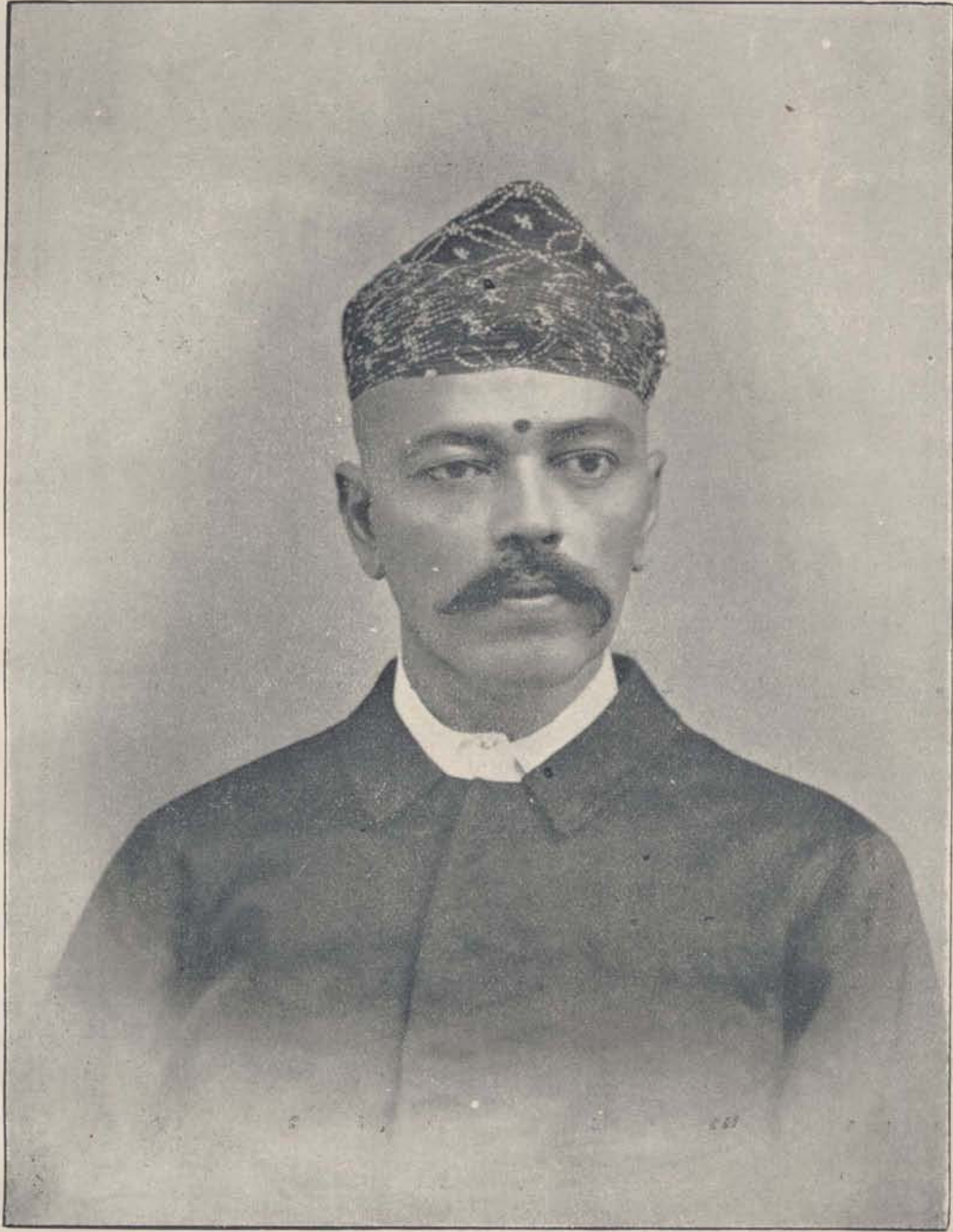


श्री. माणेशचंद्र-कपूरचंद्र-सुबई
(१८७५-७६ ई.स.)

Supplied by
A P PARMAR



श्री. माणेशचंद्र-कपूरचंद्र-सुबई
(१८७५-७६ ई.स.)



RAO SAHEB SETH VUSSONJI TRICUMJI MOOLJI, J.P.

राव साहेब शेट वसनजी त्रीकमजी मूलजी, जे. पी.

जन्म-सं० १९२२.

स्वर्गवासी शेट तलकचंद माणेकचंद, जे. पी. मुंबई.

शेट तलकचंद जिनकी सुंदर तस्वीर अगले पृष्ठपर है, असलमें सूरतके रहनेवाले थे. डच, फ्रेंच, फिरंगी, इंग्रेज आदिने प्रथम सूरत बंदरमेंही आकर अपनी कोठीएं की थी.

इनके पूर्वज शेट नानाभाई गलालचंद डचोंके सराफ थे. उक्त नानाभाईके पौत्र शेट माणेकचंदके ये पुत्र थे. इनकी माता बाई विजयकुंवर बड़ीही धर्मात्मा थी. इनका जन्म सं १८९९ के वैशाख सुदि १३ को हुआ था. उनके चार भाई और तीन बहनोमेंसे दो भाई और दो बहन विद्यमान हैं, सो भी अच्छे सुखी हैं.

छोटी उमरसेही इनको विद्यापर भारी मिति थी, और उस समयमें भी इंग्रेजी आपने पढ लिया था. इनका प्रथम विवाह सं० १९१५ में बाई जीवकोरके साथ हुआ था. बारह वर्ष पीछे वह कालको प्राप्त हो गई. उनसे एक पुत्र मि० सोभागचंद और एक पुत्री हुई. इनका दूसरा विवाह सं. १९२८ में चंदनबाईके साथ हुआ था.

शेट तलकचंद मुंबईमें आतेही रुई, जवाहरात, शेर और बैककी हुंडीकी दलाली आदिमें अच्छा धन और मान, प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगे. मेसर्स तलकचंद शापुरजीके नामसे धंधा करके इन्होंने लाखों रुपये पैदा किया. मि० शापुरजी एक लायक पारसी महाशय हैं.

पालीताणाके जुलम केसमें, मक्षीजी आदि केसोंमें इन्होंने अपने समय और धनका भोग देके जैन धर्मकी अच्छी सेवा कीथी.

बंबईकी “ धी जैन एसोसिएशन आफ इंडिया ” के ये सेक्रेटरी, वाइस प्रेसिडेंट और अध्यक्ष भी थे. महुवा रीलीफ फंड, गुजरात फीवर रिलीफ फंड आदिके भी ये अध्यक्ष थे, और बंबईकी प्रत्येक कमेटीमें ये मेम्बर नियत किये जाते थे. जैन पंचायत फंडका बीज भी इनहीके उद्योगसें रुपाया; और कई जैन मंदिरके ये ट्रस्टी भी थे.

शेट तलकचंदने बड़ी वीरतासें Society for the Prevention of Cruelty towards Animals (प्राणि रक्षक मंडली) की स्थापना करवाके उसके स्वरचेके लिये लागें लगाकर अच्छा प्रबंध करवाया. “लेडी साकरबाई दीनशा पीटीट हॉस्पिटल ” के यह ट्रस्टी थे. बहुतसी कंपनीओंके ये डीरेक्टर थे और मरकंटाईल प्रेस, कुकावाव प्रेस आदिके एजेंट थे. बैंक संबंधी कार्यमें इनका अनुभव बहुत ठीक था और अच्छे मनुष्य इनकी सलाहसें चलते थे.

इन्होंने लगभग एक लाख रुपैया धर्मकार्यमें व्यय किया होगा. जैन निराश्रित फंडमें रु. पांच हजार दिए थे और सूरतमें अपनी वाडीमें एक जैन मंदिर बनवाया. श्री पालीताणामें एक जैन लायब्रेरी और मुंबईमें अपनी धर्मपत्नीके नामसें “ चंदनबाई कन्याशाला ” स्थापन की; जैन विद्यार्थीओंको स्कॉलरशीप देते थे और कुलीन गरीब जैन कुटुंबोंकी गुप्त सहायता भी करते थे. ये मुंबईके जस्टीस आफ धी पीस थे. लगभग पचास लाख रुपैया इन्होंने प्राप्त किया और धर्मकार्यमें अच्छा धन व्यय करनेके कांक्षी थे. परंतु देवकी गति विधित्र है. नया विल करते करतेही आप ता. १२ फरवरी सन १८९७ को फ्लेगसें चोपाटीके अपने बंगलेमें स्वर्गवासी हो गये. मरण समय इनका वय ५६ वर्षका था. इनको दूसरी स्त्रीसें नानाभाई और रतनचंद २ पुत्र और ३ पुत्री हुई. मी. शापुरजीकी संभालमें ये पुत्र अच्छा विद्याभ्यास कर रहेहैं, और मी. नानाभाई इस छोटी उमरसें भी धर्मकार्यमें अच्छा लक्ष देने लगे हैं.

ऐसे धर्मात्मा पुरुषको धन्य है, इनकी आत्माको शांति हो ! यह हमारी प्रार्थना है !!!

स्व० मी. वीरचंद राघवजी गांधी, बी. ए., एम. आर. ए. एस.

इन वीर पुरुषका जन्म महुवा-काठीआवाडमें ता. २५ अगस्त सन १८६४ ई. को हुआ था. इनके पिता बड़े धर्मात्मा थे. इन्होंने भावनगरमें सन १८८० में पहले नंबर "मेट्रीक्युलेशन" में पास होकर सर जसवंतसिंहजी स्कालरशिप प्राप्त की; ये एल्फिन्स्टन कॉलेजमें बी. ए. पास करके सरकारी स्कालरशिपके भी भागी बने.

सन १८८५ में जैन एसोसिएशन ऑफ इंडियाके ये सेक्रेटरी हुवे. सरकारी सोली-सीटरके वहां ये आरटीकलड कलार्क हुवे. इन्होंने पालीताणा जुलमकेसमें और मखसीजी केसमें भी अच्छी मदद दी थी.

सन १८९१ में समतसीखरके तीर्थपर चरबीके कारखानेके मुकदमेंकी अपीलमें युक्तिके साथ रायबहादुर बद्रीदासजीको सहायता देकर जीत लिया.

सन १८९३ में चिकागो-अमेरिकामें जब विश्व प्रदर्शनी हुई थी और वहांकी धर्मसमाज (World's Parliament of Religions) में श्रीमद् आत्मारामजीको निमंत्रण आया तब जैन धर्मके प्रतिनिधि होकर आप चिकागो गये और अध्यक्ष डा० बैरोस आदिकी ओरसे अच्छा मान पाया. धर्मसमाजमें जैनधर्मपर एक सार गर्भित व्याख्यान दिया. अमेरिकामें दो वर्ष रहकर बोस्टन, वॉशिंगटन, न्यूयॉर्क, रोचेस्टर, क्लीवलैंड, केसाडेगा, बटेबीया, आदि नगरोंमें फिरकर आपने ५३५ भाषण दिये. किसी २ भाषणमें दस २ हजार मनुष्य एकत्र हो जातेथे. कई जगह जैन धर्मके अभ्यासके लिये क्लास खोले गये. चिकागो और केसाडेगासमाजकी ओरसे इनको पदक दिये गये थे. वॉशिंगटनमें "गांधी फीलोसोफीकल सोसायटी" इन्होंने स्थापित की, जिसके अध्यक्ष वहांके पोस्टमास्टर जनरल मी. जोसफ स्टुअर्ट हुए. इनके उपदेशसे हजारों मनुष्य मांसाहार त्यागी (वेजीटेरीयन) हो गये, कई लोग ब्रह्मचर्यव्रत पालने और नवकार मंत्रका ध्यान धरने लगे.

सन १८९५ में साऊथ प्लेस चापल और रोयल एशिएटिक सोसायटीमें इन्होंने लंडनमें लॉर्डरेके अध्यक्षपणमें भाषण दिये, और ये सोसायटीके मेंबर नियत हुवे. फ्रांस, जर्मनी होते हुए, आप जुलाई मासमें मुंबई आये. विलायतादि विदेशमें ये शुद्ध आहार लेते रहे हजारों विद्वानोंके साथ परिचय करके बड़ा अनुभव लियाथा. बंबईमें पीछा आनेपर एक बड़े वीर पुरुषके समान इनका आदर हुआ. जैनोंकी ओरसे शेट प्रेमचंद रायचंदके सभापतित्वमें एक भारी सभामें ता. २०-७-९६ को एक "मानपत्र" दिया गया था.

यहां आनेपर इन्होंने सोलीसीटरका अभ्यास पीछा आरंभ किया था. परंतु अमेरिकनोंने इनको वापस बुलाया तो जैनभाईयोंकी ओरसे अच्छा सत्कार और विदाई पाकर ये अपनी स्त्री और पुत्र मोहनको साथ लेकर गये. पंडित फतेहचंद लालन भी इनको लंडनमें जा मिले.

अगस्त सन १८९८ में ये वापस आये. स्व० मी. जस्टीस महादेव गोविंद रानाडेके सभापतित्वमें ता. २३ सितंबरको इनको मानपत्र दिया गया. दूसरेही दिन आप अमेरिकाको प्रयाण कर गये. हिंदुस्तानके दुर्भिक्ष पीडित लोकोंके फोटो पेश करके वहांके लोकोंको प्रेरणा करके आपने मकईकी स्टीममें हिंदुस्तानको भिजवाई थी. हिंदकी स्त्रियोंको शिक्षा दिलानेकी ओर भी इन्होंने वहांके लोकोंका ध्यान आकर्षित किया था. आपने कई पुस्तक भी बनवाये हैं.

आप बारीष्ठरकी परीक्षा पास करके सन १९०१ में मुंबई पधारे. आतेही बीमार हो गये और वृद्ध अंधी माता, स्त्री, पुत्रादि कुटुंबको और समग्र जैन समुदायको शोकसागरमें डूबा गये. हाय ! धन्य है ये वीररत्नको ! ऐसे पुरुष सदा अमर हैं ! !



SUPPLIED BY A. P. FARMAR.

TULLOCKCHAND MANEKCHAND, ESQ., J.P.
BOMBAY.

मी० वीरचंद राघवजी गांधी, बी. ए.

ब्यारिस्टर-एट-लॉ.

मेम्बर ऑफ थी रॉयल एशिएटिक सोसायटी (लंडन.)



जैन धर्मोपदेशक (अमेरिका.)

जन्म—सन १८६४.

स्वर्गवास—सन १९०१.

मी० अमरचंद पी० परमार. (सिरौही-सूरत-मुंबई.)

इनका जन्म सं. १९२० के महा सुदी ८ को हुवा था. ये मूल इलाके सिरौहीके झाडोली ग्रामके रहनेवाले हैं. इनके पूर्वज उदेपुरसे आये थे और ये दसा ओसवाल बालेफना (बाफणा) परमार गोत्रके हैं. सर्पके फनसे बालकका रक्षण हुआजिससे बाफणा कहलाये. कि इस गोत्रमें सर्पके काटनेसे कोई नहीं मरा.

मी. अमरचंदके परदादा शा. वजाजी राजाजीको चार पुत्र शा. पन्नाजी, ठाकरसी, दुर्लभजी, रणछोडजी और देवजी हुए. शा. पन्नाजी और रणछोडजीका परिवार सूरतजिल्लेमें है और ठाकरसीका नाणा, मारवाडमें है. शा. दुर्लभजीके पांच पुत्र शा. डाह्याभाई, परागजी, पदमाजी, गोविंदजी और हीराचंद थे. उनमेंसे तीन भाईयोंके कुटुंबमें हरजी, पानाचंद, रामचंद, भगवान, उमदेचंद, पुनमचंद, माणिकचंद, मगन, दलीचंद आदि विद्यमान है.

पदमाजीको श्वेचंद, नरसई, मूलचंद, अमरचंद, गुलाबचंद ये पुत्र और रामकोर और कंकुबाई नामक पुत्री हुई थी. उनमेंसे श्वेचंद, अमरचंद और बाई रामकोर विद्यमान है. श्वेचंदके तीन पुत्र धनराज, रायचंद और तलकचंद तथा तीन पुत्री हैं.

मी. अमरचंदके दादाने मारवाडसे आकर सूरतके पास बडोद, भेस्तान आदि ग्रामोंमें निवास करके अच्छा धन प्राप्त किया था. इनके पिता बहुतही मोले स्वभावके थे इसलिये उनके दूसरे भाईओंने उनको घरसे कुछ भी दिये बिना निकाल दिये थे, और उनको फेरी आदिसे अपना निर्वाह करना पडाथा. एकबार ऐसा भी कठिन समय इनपर आ पडा था कि एक पुत्रके जन्मके समय खर्चके रुपयेके लिये उनको घर घर फिरना पडाथा. परंतु ईश्वर कृपासे फिर उनकी स्थिति अच्छी होगई थी. उनके भाई श्वेचंदने पिताको अच्छी मदद देकर उनके धंधेकी ठीक जमा दिया था और लवुभाईको पिताकी इच्छानुसार सूरतमें जाकर पढाना आरंभ किया था. कडोद-गुजरातके रहनेवाले स्व० दलपतराम नथुराम व्यास इनके बालछेही थे, दोनों एकही साथ पढते थे. दोनोंमें ऐसी गाढी मित्रता थी कि साधारणतः ऐसा छेह देखनेमें आताही नहीं हैं. वह मित्ररत्न सन १८९९ में इन्हीके मकानपर कालवश हुए, जिसका इनको पूरा रंज रहा.

इनकी बहन रामकोर छोटी अवस्थाहीसे विधवा होगई थी, परंतु उसी समयसे उन्होंने धर्मविद्याका अभ्यास कर धर्मकार्यमें रुचि लगाई और समय २ पर भीड पढनेके समय अपने भाईयोंको अभीतक मदद करती रही. मी. अमरचंद दस वर्षकी अवस्थामें प्रथम गोपीपुरा ब्रांच स्कूलमें भरती हुए और चढते नंबर पास होकर पारितोषिक और मास्ट्रोकी कृपा संपादन करते रहें. पढनेमें इनका ऐसा अनुराग था कि एक समय इनके भाई किसी संबंधीके विवाहमें जानेके लिये लुट्टी लेनेको मास्टरके पास जाने लगे परंतु इस बातकी इनको खबर मिलतेही इन्होंने अपने मास्टरसे खानगीमें कह दिया कि मेरी लुट्टी स्वीकार मत करना. इनका इनको बहुत अनुराग था, इसलिये इसी छोटी वयमें पुस्तकोंकी जित्द बांधनी, साईन बोर्ड लिखना, १ और रेशमके बढिया फूल-वृक्ष बनाना, एनप्रेविंग, ड्राइंग, प्लास्टर, घडी बनाना आदि कई काम २ कर सीखलिये थे; और स्कूलके साथी इनको बहुत चाहते थे. ये गरीबी और सादगीसे पढते रहे; यहांतक कि पढनेकी पुस्तकें भी उधार लेकर अपना काम चलाते थे. थोडा अभ्यास होजानेपर इन्होंने एक रात्रिशाला खोली और दूसरे लडकोंको खानगीमें पढाकर अपने खर्चेका ाझा पितापर नहीं पढने दिया. इनके मातापिताको सुख भोगनेका समय नहीं आया. सोला बरसकी उमरमें इनकी माताका स्वर्गवास होगया और बादमें इनके पिता भी इस संसारको छोड गये.

सन १८८२ में सूरत हायस्कूलसे इन्होंने मट्रीकुलेशनकी परिक्षा पास की. मेसर्स पाठक, मोदक, वाढीआ आदि मास्ट्रोकी पूरी प्रीति संपादान की थी. स्कूलमें कृषिशालाका भी अभ्यास करलिया. छोटी उमरसे इनको हिंदुस्तानी कवित्त याद करने और नये बनानेका बडा भारी प्रेम था. स्कूलके प्राईज-एक्सीबिशनमें सारा हॉल गुंजा देते थे; इन्होंने सूरतके डीस्टीकट जज (बादमें होईकोर्टके जज और कौंसलर) ऑन० डा. बर्डेवडकी और मुंबईके ना. गवर्नर सर जेम्स फरग्युसनकी शीघ्र कविताइसे विशेष कृपा प्राप्त की थी.

केवल इनके विद्याभ्याससे प्रसन्न होकर सर्वाधिक एक मुझ गृहस्थ श्रेष्ठ मानाजने कईयोंके विरोध करने पर भी अपना पुत्री केसरबाईका विवाह सं. १९३४ में इनसे करा दिया तदनंतर ये बड़ोदा कालेजमें भरती हुए। वहाँसे प्रोबेशनर्सकी परीक्षा देकर इनको अपने भाईकी आज्ञानुसार उनके दूसरे विवाहका यत्न करनेके लिये पढ़ना छोड़कर सिरोंहा जाना पड़ा ये प्रथम रु० ४ महावारके भोकर हुये। अपने बुद्धिबल और कार्यकुशलतासे इन्होंने सिरोंहा दरबारकी पूरी कृपा प्राप्त की। महकमे महालमें नोकरी करके पो० एजेंट करनल पाउलेट साहबके पास ये सिरोंहाके एजसी बर्काल मुकरर हुये। जोधपुर, आबू, जेसलमेर आदिके दौरमें इन्होंने एजेंट, दरबार आदिकी अच्छी कृपा संपादन की। सन १८८९ में उक्त कर्नल पाउलेट साहबने इनको घाणेरामके ठाकुरके दायर मुकरर किये। इन्होंने मथो कालेजमें कर्नल लोक साहबसे अच्छी कृपा पाई और राजकुमारोंसे दोस्ताना पैदा किया इसके बाद जोधपुरके महाराजाधिराज कर्नल सर प्रतापसिंहजीके पास रहकर इन्होंने अच्छा यश पाया और उनकी पूरी कृपा प्राप्त की। उनके और श्री जोधपुर दरबारके विलायतसे आनेपर मुंबईमें उनके सम्मानार्थ बड़ी सभाका प्रबंध करके मानपत्र दिये थे। रायवहादुर मुनशी हरदयालसिंहजी इनको एक सच्चा प्रेमपात्र गिनते थे। वे जोधपुरमें कई बार इनको अच्छा पद भी देने लगे थे। परंतु घाणेरामके नगरशेठ चैनाजी नरसागजी उनके साझेमें इन्होंने सन १८८९ में “घो इंडियन एंड फारिन एजसी कंपनी” खोली जो विलायती माल और रजवाड़ाका काम करके अच्छी तरह चल निकली।

बाद इनके उद्योगसे “धी रीपन प्रॉटिंग प्रेस कु० ली०” स्थापित हुई। बहुतसे शेर अपने मित्रवर्गमेंही दिये, परंतु देखरेखकी कमी, और एजेंट डीरेक्टरोंके कुसंपसे वह टूट गई, जिससे इनको बड़ा खेद हुआ और नुकसानभी पूरा रहा।

मुंबईमें आनेके बाद ये धर्मसेवा और सभा आदि कामोंमें लक्ष्य देने लगे। और हरेक धर्मसभामें अगुआ बनते हैं। इनकी वक्तुत्व और शीघ्र कविता बनानेकी शक्ति प्रसिद्ध है। नेशनल कॉंग्रेसमें, प्रोवीन्सियल कॉन्फरन्स आदि सभाओंमें ये बहुधा हिंदी कविता सुनाते हैं। जैन युनियन क्लब, हेमचंद्राचार्य अभ्यास वर्ग, मेवाड मंदीर जीर्णोद्धार सभा, मुंबईकी जैन फ्लेग होस्पिटल, एन्टांबीवीसेक्शन सोसायटी और कई कमीटीके ये सेक्रेटरी, और जैन तथा दूसरी सभाके मेबर रहे हैं, और सन १९०२ में “गुजरात फीवर रिलीफ फंड” का प्रबंध सेक्रेटरी बनके इन्होंने बहुत सफलतासे चलाके सुवर्णपदक (चांद) प्राप्त किया है। जैन सीप्रेगेशन और हास्पिटलके संबंधी इन्होंने बहुत परिश्रम उठाया था। गुल अफशान पत्रके ये एडीटर थे। और परमारध्वनिके रमुजी लेखको याद करते हैं। मुंबई समाचार और जैन पत्रोंके ये लेखक हैं, तथा ओत्सव, आत्मारामजी चरित्र, अमरकाव्य, जैन तीर्थावली, नियमावली आदि कई पुस्तक भी इन्होंने लिखी है। श्री वीरचंद गांधीके साथ अमेरिका जानेकी इनकी भी तयारी हुई थी, परंतु सांसारिक विघ्नसे रुक गये।

सन १८९९ में इनकी धर्मपत्नी जो पढ़ी लिखी और धर्मिष्ठ थी कालवश होगई, जिससे इनको दो पुत्र और दो पुत्री हुये थे, परंतु अभी एकही पुत्री हीरावती है। इनका दूसरा विवाह सिरोंहामें हुआ।

इन्होंने मद्रास, कर्नाटक, दक्षिण, दिल्ली, आगरा, उत्तर हिंदुस्तान, पंजाब, काश्मीर, कांगडा, हिमालय, राजपूताना आदि प्रदेशोंमें बहुत मुसाफरी की है। और स्वपराक्रम तथा बुद्धिबलसे हजारोंही मित्र इनके होगये हैं।

इनपर कई तरहकी आपदाएं आनेसे तत्विनिर्णयप्रासाद ग्रंथ देरसे प्रसिद्ध हो सका। परंतु इस ग्रंथको अद्वितीय बनानेमें इन्होंने पूरा परिश्रम किया है, और ग्रंथकी एक अच्छी प्रस्तावना लिखी है।

इनमें यह एक बड़ी बात है और इनका अनुभव हरेक लाइनमें इतना बढ़ा हुआ है, कि कैसाही कठिन काम हो परंतु यह उसको पूरा करही देते हैं। परंतु प्रारब्ध इनकी तरफ कुछ टेढ़ा नजरसे देख रहा है।

सन १९०३ के सितंबरमें मुंबईमें दूसरी जैन (श्वेतांबर) कॉन्फरन्स जो भरी गई, उसकी इन्टे-लिजंस, हेल्थ, एंड वोलन्टीयर कमिटीके ये सेक्रेटरी मुकरर हुये थे। कॉन्फरन्सका काम बहुतही अच्छी तरह इन्होंने बजाया जा इनकी पेश की हुई लबी रिपोर्टसे जाहर होता है। प्रेसिडेंट आदिके पूरे प्रेमपात्री बने। वहां हानिकारक रीवाजोंके उपर उमदा भाषण भी दिया था। और २०० बॉलंटीयरकी फौजने अपने कार्य, ड्रेस, और दमामसे सबको चकित कर दिये थे। इनको दीर्घायु चाहते हैं कि ये धर्मकार्यमें सदा कटिबद्ध रहें।

लेखक—भग फतेहचंद कारभारी (एडिटर, जैनपत्र.)— एक सच्चा प्रिय मित्र,



આભાન્કિત અમરચંદ પી૦ પરમાર, પ્રસિદ્ધકર્તા તત્ત્વનિર્ણયપ્રાસાદ ગ્રંથ.
મુંબઈ,(જન્મ સં૦ ૧૯૨૦.)

MR. A. P. PARMAR.

